आर्थिक विकास के सिद्धान्त
एवं
भारत में आर्थिक नियोजन

आर्थिक विकास के सिद्धान्त

एवं

भारत में आर्थिक नियोजन

THEORY OF ECONOMIC GROWTH AND ECONOMIC PLANNING IN INDIA

प्राक्कथन

डॉ ओम प्रकाश

भूतपूर्व कुलपति

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

लेखक

प्रो जी. एल. गुप्ता

सदस्य, समाज विज्ञान संकाय

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

संशोधक

प्रकाश जैन

कॉलेज बुक डिपो, जयपुर

AARTHIK VIKAS KE SIDHANT
EVEM
BHARAT MEN AARTHIK NIYOJAN

Published by P. C. Jain for College Book Depot, Tripolia Bazar, Jaipur
Printed at Hema Printers, Jaipur.

प्राक्कथन

द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त जिस युग का शुभारम्भ इस विश्व में हुआ उसकी दो मुख्य उपलब्धियां उल्लेखनीय हैं। एक ओर तो राजनीतिक परतन्त्रता को समाप्त करने का बीड़ा उठाया गया और दूसरी ओर आर्थिक विकास की सम्भावनाओं पर अधिकाधिक प्रकाश डाल कर पिछड़े हुए राष्ट्रों का निराशायुक्त निद्रा से जगाने के अनेक प्रयास किए गए। सम्भवत पहली उपलब्धि में सफलता की अधिक झलक देखी जा सकती है क्योंकि भारत तथा विश्व के अनेक उपनिवेशों ने इस युग के अन्तर्गत दासत्व की बेडियों को काट कर स्वतन्त्रता प्राप्त की। साम्राज्यवादी राष्ट्रों को भी प्राय इस बात का आभास हो गया कि किसी दूसरे राष्ट्र की भूमि पर शासन करना न तो व्यावहारिक ही है और न लाभदायक।

किन्तु आर्थिक क्षेत्र का इतिहास कुछ भिन्न प्रतीत होता है। यद्यपि विकास के सिद्धान्त को आगे बढ़ाने में विश्व के प्रमुख अर्थशास्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है (जिसकी पुष्टि का प्रतीक 1969 से अब तक के अनेक नोबेल प्राइज विजेताओं को माना जा सकता है), चिन्ता का विषय यह है कि विकसित राष्ट्रों को आर्थिक क्षेत्र में उपनिवेशवादी नीति का अन्त दिखाई नहीं देता। ऐसा लगता है कि राजनीतिक उपनिवेशवाद की बहुत कुछ प्रतिभा का आर्थिक नीतियों में समावेश हो गया है जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक उपनिवेशवाद ने भयकर रूप धारण कर लिया है। यह स्पष्ट है कि इसी प्रवृत्ति का सामना करने के लिए 1973 में खनिज तेल का उत्पादन एव निर्यात करने वाले देशों (O.P.E C) ने मूल्य वृद्धि की कटु नीति अपनाई, और उसी के परिणामस्वरूप 1974 में अन्तर्राष्ट्रीय सघ की महा सभा द्वारा नए अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रारूप (New International Economic Order) स्थापित करने का प्रस्ताव पारित किया गया। किन्तु जब मई 1976 में अन्तर्राष्ट्रीय सघ के व्यापार एवं विकास सम्मेलन (UNCTAD) में इस प्रारूप

को व्यवहार में लाने का प्रश्न उठा तो कुछ शक्तिशाली राष्ट्रों के विरोध के कारण केवल सहमति प्रकट करके सम्मेलन भंग हो गया कि कठिन समस्याओं पर फिर कभी विचार किया जाए।

इस पृष्ठभूमि में श्री जी एल गुप्ता की पुस्तक 'आर्थिक विकास के सिद्धान्त एवं भारत मे आर्थिक नियोजन' विशेष महत्त्व रखती हैं। इस पुस्तक में 'आर्थिक सिद्धान्त' का गहन विश्लेषण किया हैं और दूसरी ओर 'भारत में आर्थिक नियोजन' का विद्वतापूर्ण दृश्य प्रस्तुत किया है। नवीनतम आंकड़े उपलब्ध करके सामयिक विषयों पर–जैसे बेरोजगारी, आय की असमानता तथा पांचवी पंचवर्षीय योजना (1974-79) की प्रगति पर रोचक टिप्पणी प्रस्तुत की गई हैं। राजस्थान मे आर्थिक नियोजन का विशेष रूप से सर्वेक्षण किया गया हैं।

प्रकाशक का प्रयास प्रशंसनीय हैं। मुझे आशा हैं कि यह पुस्तक भारतीय विश्वविद्यालयों के वाणिज्य तथा अर्थशास्त्र के छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ओमप्रकाश

प्रकाशकीय

'आर्थिक विकास के सिद्धान्त एव भारत मे आर्थिक नियोजन' अपने सशोधित सस्करण के रूप मे आपके सामने है। पूर्व-सस्करण का जो स्वागत हुआ और विभिन्न क्षेत्रो से जो रचनात्मक सुझाव प्राप्त हुए, उन्हे सामने रखकर पुस्तक मे कितने ही परिवर्तन और सशोधन किए गए हैं। इस सस्करण मे अनेक अध्याय तो सर्वथा नए जोडे गए हैं और उनमे से कुछ ऐसे हैं जिन पर विषय-सामग्री हिन्दी मे प्रकाशित पुस्तको मे प्राय उपलब्ध नही है। उदाहरणार्थ, विकास के दौरान उत्पादन, उपभोग, रोजगार, विनियोग और व्यापार मे सरचनात्मक परिवर्तन, विकास-दर के विभिन्न तत्त्वो के योगदान के सन्दर्भ मे डेनीसन का अध्ययन, योजनाओ मे नियोजित तथा वास्तव मे प्राप्त बचत एव विनियोग दरें, योजनाओ मे क्षेत्रीय लक्ष्य, वित्तीय आवटन और उपलब्धियाँ, विनियोग-वृद्धि और उत्पादिता, सुधार के उपाय, भारत मे गरीबी और असमानता आदि टॉपिक्स ऐसे हैं जिन पर सामग्री हिन्दी पुस्तको मे प्राय कम उपलब्ध है और जो है वह अधिकाँशत अपर्याप्त है। प्रस्तुत सस्करण मे इन विषयो पर प्रामाणिक ग्रन्थो के आधार पर व्यवस्थित ठोस जानकारी देने का प्रयास किया गया है। आवश्यकतानुसार गणितीय विधि का प्रयोग किया गया है, लेकिन पुस्तक बोझिल न बने, इसका विशेष ध्यान रखा गया है। यथासाध्य नवीनतम आँकडे देकर विषय-सामग्री को अद्यतन बनाया गया है। मार्च, 1977 मे काँग्रेस के लगभग 30 वर्षीय एकछत्र शासन के पराभव के उपरान्त बनी जनता सरकार ने देश की अर्थ-व्यवस्था को नया मोड देने की जो नीतियाँ अपनाई हैं उनका सविस्तार विवेचन किया गया है। योजना आयोग का जो पुनर्गठन किया गया है और 1 अप्रेल, 1978 से जो नई छठी राष्ट्रीय योजना लागू की गई है उन सब पर आलोचनात्मक प्रकाश डाला गया है। 'आवर्ती योजना' (Rolling Plan) कोई सर्वथा नया विचार नही है, तथापि भारतीय अर्थ-व्यवस्था मे इसका प्रयोग नूतन है और देश निश्चय ही इस

प्रणाली से अधिक लाभान्वित होगा । पुस्तक के परिशिष्ट भी विशेष महत्त्वपूर्ण हैं । उनसे आर्थिक विकास के विभिन्न पहलुओ पर प्रकाश पड़ता है। पुस्तक मे सन् 1978 के प्रथम चरण तक के आँकड़े प्रामाणिक स्रोतो के आधार पर दिए गए है। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के बुलेटिनों, भारत सरकार की सन् 1977–78 की वार्षिक रिपोर्टों, विभिन्न आर्थिक पत्र-पत्रिकाओ आदि से सभी आवश्यक सहायता ली गई है।

इस संस्करण मे हमारा यह प्रयास रहा है कि विद्यार्थियों को आर्थिक विकास के सिद्धान्तो और देश के आर्थिक नियोजन के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पहलुओं का सुगमतापूर्वक किन्तु समुचित ज्ञान प्राप्त हो सके। पुस्तक के अन्त मे विभिन्न विश्वविद्यालयों के प्रश्न-पत्र भी दिए गए हैं ताकि विद्यार्थियों को प्रश्न-शैली का बोध हो सके।

जिन आधिकारिक विद्वानों की कृतियों से पुस्तक के प्रणयन मे सहायता ली गई है, उसके लिए हृदय से आभारी हैं।

अनुक्रमणिका

भाग–1 आर्थिक विकास के सिद्धान्त
(Theory of Economic Growth)

भाग-2. भारत में आर्थिक नियोजन
(Economic Planning in India)

APPENDIX

1

आर्थिक विकास का अर्थ और अवधारणा

(THE MEANING AND CONCEPT OF ECONOMIC GROWTH)

"भविष्य में बहुत वर्षों तक अल्पविकसित देशों का विकास अमेरिका और रूस के बीच गहन प्रतियोगिता का क्षेत्र रहेगा। विश्व की समस्याओं में अपनी महत्वपूर्ण स्थिति के कारण ऐसे अर्द्ध-विकसित क्षेत्र विशेष रुचि का विषय रहेंगे जो या तो ऐसे सुविशाल प्राकृतिक साधनों से सम्पन्न हो जिनकी आवश्यकता विश्व-शक्तियों को हो अथवा जो सैनिक दृष्टि से सामरिक महत्त्व की स्थिति रखते हों।" —एल डब्लू. शैनन

विकास का अर्थशास्त्र मुख्यतः अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की समस्याओं का निरूपण करता है। द्वितीय महायुद्ध के बाद आर्थिक विकास विश्व की एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या बन गया है और विश्व के पिछड़े देशों के विकास में, मूलतः अपने प्रभाव क्षेत्र की वृद्धि के लिए, विश्व की महाशक्तियों के बीच गहन प्रतियोगिता छिड़ी हुई है। वर्तमान शताब्दी के पाँचवें दशक में और विशेषकर द्वितीय महायुद्ध के बाद ही विकसित देशों तथा अर्थशास्त्रियों ने अल्पविकसित देशों की समस्याओं के विश्लेषण की ओर, उनके आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने की ओर ध्यान देना शुरू किया और आज तो अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास के प्रति वह जागरण पैदा हो चुका है कि विकास एक युग-नारा बन गया।

विकसित राष्ट्र दुनिया के अल्पविकसित देशों की ओर यकायक ही सहानुभूति से उमड़ पड़े हों, यह बात नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि विकसित देश महायुद्ध के बाद खासतौर पर यह महसूस करने लगे हैं कि "किसी एक स्थान की दरिद्रता प्रत्येक दूसरे स्थान की समृद्धि के लिए खतरा है।" एशिया और अफ्रीका में राजनीतिक पुनरुत्थान की जो लहर फैली उसने भी विकसित देशों को यह महसूस करने के लिए बाध्य किया कि यदि वे अल्पविकसित देशों की आकांक्षाओं की पूर्ति

की दिशा मे सहयोगी नही हुए तो उनके अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव-क्षेत्र को गहन और व्यापक आघात पहुँचेगा । विश्व की महाशक्तियाँ आर्थिक-राजनीतिक प्रभाव-क्षेत्र के विस्तार मे एक दूसरे से पिछड जाने के भय से अल्पविकसित देशो को आर्थिक सहयोग देने की दिशा मे इस तरह प्रतियोगी हो उठी ।

इसमे सन्देह नही कि अल्पविकसित देशो मे व्याप्त गरीबी को दूर करने मे धनिक राष्ट्रो की रुचि कुछ हद तक मानवतावादी उद्देश्यो से भी प्रेरित है, लेकिन मूल रूप से प्रधानतया प्रेरणा-स्रोत प्रभाव-क्षेत्र के विस्तार की प्रतिस्पर्द्धा ही है । प्रो० एल. डब्लू. शैनन ने वास्तविकता का सही मूल्यांकन किया है कि "भविष्य मे बहुत वर्षो तक अल्पविकसित देशो का विकास अमेरिका और रूस के बीच गहन प्रतियोगिता का क्षेत्र रहेगा । विश्व की समस्याओ मे अपनी महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण ऐसे अर्द्ध-विकसित क्षेत्र विशेष रुचि का विषय रहेगे जो या तो ऐसे सुविशाल प्राकृतिक साधनो से सम्पन्न हो जिनकी आवश्यकता विश्व शक्तियो को हो अथवा जो सैनिक दृष्टि से सामरिक महत्त्व की स्थिति रखते हो ।"[1]

आर्थिक विकास का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Economic Growth)

आर्थिक विकास से अभिप्राय विस्तार की उस दर से है जो अर्द्ध विकसित देशो को जीवन-निर्वाह स्तर (Subsistence level) से ऊँचा उठाकर अल्पकाल मे ही उच्च जीवन-स्तर प्राप्त कराए । इसके विपरीत पहले से ही विकसित देशो के लिए आर्थिक विकास का आशय वर्तमान वृद्धि की दर को बनाए रखना या उसमे वृद्धि करना है । आर्थिक विकास का अर्थ किसी देश की अर्थ-व्यवस्था के एक नही वरन् सभी क्षेत्रो की उत्पादकता मे वृद्धि करना और देश की निर्धनता को दूर करके जनता के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना है । आर्थिक विकास द्वारा देश के प्राकृतिक और अन्य साधनो का समुचित उपयोग करके अर्थ-व्यवस्था को उन्नत स्तर पर ले जाया जाता है । आर्थिक विकास के विभिन्न पक्षो पर यद्यपि आज भी काफी असहमति है, तथापि इसको हम ऐसी *प्रक्रिया (Process)* कह सकते है जिसके द्वारा किसी भी देश के साधनो का अधिकाधिक कुशलता के साथ उपयोग किया जाए । आर्थिक विकास की कोई निश्चित और सर्वमान्य परिभाषा देना बडा कठिन है । विभिन्न लेखको ने इसकी परिभाषा भिन्न-भिन्न विकास के माप के आधारो पर की है ।

(क) विद्वानो के एक पक्ष ने कुल देश की आय मे सुधार को आर्थिक विकास कहा है । प्रो० कुजनेट्स, पाल एल्बर्ट, मेयर एव बाल्डविन, ऐ जे यंगसन आदि इस विचारधारा के प्रतिनिधि है ।

(ख) *विद्वानो का दूसरा पक्ष प्रति व्यक्ति वास्तविक आय मे सुधार को* आर्थिक विकास मानता है । इस विचारधारा के समर्थक डॉ हिगिन्स, आर्थर लेविस, विलियमसन, वाइनर, हॉर्वे लिबिन्स्टीन आदि है ।

1. *L W. Shannon* Underdeveloped Areas, p 1

(ग) अनेक विद्वान आर्थिक विकास को सर्वांगीण विकास के रूप मे लेते है। अग्रिम पंक्तियों म हम इन तीनो ही पक्षो को लेंगे।

(क) आर्थिक विकास का अर्थ राष्ट्रीय आय मे वृद्धि

श्री मेयर और बाल्डविन के अनुसार "आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी अर्थ-व्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय म दीर्घकालीन वृद्धि होती है।"[1]

आर्थिक विकास की इस परिभाषा म तीन बातें विचारणीय है —

1. प्रक्रिया (Process) —इसका आशय अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न अगो मे परिवर्तन से है। आर्थिक विकास म वास्तविक राष्ट्रीय आय म वृद्धि आर्थिक चर-राशियो (Variables) म परिवर्तन के परिणामस्वरूप होती है। इन परिवर्तन का सम्बन्ध साधनो की माँग और उनकी पूर्ति मे परिवर्तन से है। साधनो की पूर्ति मे परिवर्तन के अन्तर्गत जनसंख्या म वृद्धि अतिरिक्त साधनो का पता, पूँजी का सचयन, उत्पादन की नवीन विधियो का प्रयोग तथा अन्य सस्थागत परिवर्तन सम्मिलित हैं। साधनो की पूर्ति मे परिवर्तन के साथ ही साथ इनकी माँग के स्वरूप मे भी परिवर्तन होता है। आय स्तर तथा उसके वितरण के स्वरूप म परिवर्तन, उपभोक्ताओ के अधिमान म परिवर्तन अन्य सस्थागत तथा सगठनात्मक परिवर्तन माँग के स्वरूप मे परिवर्तन क उदाहरण है। इस प्रकार आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप माग और पूर्ति के स्वरूप मे कई परिवर्तन होते हैं। किन्तु ये परिवर्तन आर्थिक विकास के कारण और परिणाम दोनो होते हैं। इन परिवर्तनो की सीमा आर्थिक विकास की गति तथा समय पर निर्भर करती है। आर्थिक विकास के क्षेत्र मे हम विकास प्रक्रिया के कारण होने वाली वास्तविक राष्ट्रीय आय मे वृद्धि का ही अध्ययन नही करते अपितु इसके लिए उत्तरदायी इस प्रक्रिया या इन परिवर्तनो का अध्ययन भी करते है।

2 वास्तविक राष्ट्रीय आय (Real National Income)—आर्थिक विकास का सम्बन्ध वास्तविक राष्ट्रीय आय मे वृद्धि से है। वास्तविक राष्ट्रीय आय का आशय मूल्य स्तर मे हुए परिवर्तनो के लिए समायोजित शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन (Net National Product adjusted for Price Changes) से है। इसका अर्थ देश मे उत्पादित वस्तुओ एव सेवाओ के कुल योग के समायोजित मूल्य से है। मूल्यो मे वृद्धि के कारण प्रकट होने वाली राष्ट्रीय आय मे वृद्धि आर्थिक विकास नही कहलाती है। अर्थ व्यवस्था मे वस्तुओ और सेवाओ का उत्पादन वस्तुत निरन्तर बढना चाहिए। सर्वप्रथम निश्चित वर्ष मे देश मे उत्पादित वस्तुओ तथा सेवाओ का वर्तमान मूल्य के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है। इसके पश्चात् इस राशि को किसी आधार वर्ष के मूल्य स्तर के सदर्भ मे समायोजित किया जाता है। इसके अतिरिक्त आर्थिक विकास मापने के लिए कुल राष्ट्रीय उत्पादन का प्रयोग न करके शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन का प्रयोग किया जाता है। किसी देश मे एक वर्ष की अवधि

1 *Meier and Baldwin* Economic Development, p 3

मे पैदा की जाने वाली समस्त अन्तिम वस्तुओ तथा सेवाओ के मौद्रिक मूल्य को कुल राष्ट्रीय उत्पादन कहते हैं। इसे उत्पन्न करने के लिए जिन साधनो, यन्त्रो आदि का उपयोग किया जाता है उनमे मूल्य ह्रास या घिसावट (Depreciation) होता है जिनका प्रतिस्थापन आवश्यक है। अत कुल राष्ट्रीय उत्पादन में से मूल्य ह्रास की राशि निकाल देने के पश्चात् शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन बचता है। आर्थिक विकास मे मूल्य-स्तर मे हुए परिवर्तन के लिए समायोजित इस शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन या वास्तविक राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होनी चाहिए।

3. दीर्घ काल (Long period of time)—आर्थिक विकास का सम्बन्ध दीर्घकाल से है। आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन मे दीर्घकाल तक वृद्धि हो। आय मे होने वाली अस्थायी वृद्धि को आर्थिक विकास नही कहा जा सकता। किसी वर्ष विशेष मे यथोचित वर्षा के कारण कृषि उत्पादन मे विशेष वृद्धि आदि अनुकूल परिस्थितियो के कारण राष्ट्रीय आय मे होने वाली अस्थायी वृद्धि आर्थिक विकास नही है। इसी प्रकार व्यापार-चक्रो (Trade cycles) के कारण तेजी के काल मे हुई राष्ट्रीय आय मे वृद्धि भी आर्थिक विकास नही है। आर्थिक विकास पर विचार करते समय पन्द्रह, बीस या पच्चीस वर्ष की अवधि तक राष्ट्रीय आय मे होने वाले परिवर्तनो पर ध्यान देना होता है।

(ख) आर्थिक विकास का अर्थ प्रति-व्यक्ति आय मे वृद्धि

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि आर्थिक विकास का आशय वास्तविक राष्ट्रीय आय मे दीर्घकालीन वृद्धि से है। किन्तु कुछ अर्थशास्त्रियो के मतानुसार आर्थिक विकास को राष्ट्रीय आय की अपेक्षा प्रति व्यक्ति आय के सदर्भ मे परिभाषित करना चाहिए। वस्तुत आर्थिक विकास का परिणाम जनता के जीवन-स्तर मे सुधार होना चाहिए। यह सम्भव है कि राष्ट्रीय आय मे तो वृद्धि हो, किन्तु जनता का जीवन-स्तर ऊँचा न उठे। जनसख्या मे वृद्धि की दर अधिक होने के कारण प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होने पर भी नही बढे या कम हो जाए। ऐसी स्थिति मे राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होते हुए भी देश विकासोन्मुख नही कहा जाएगा। जब प्रति व्यक्ति आय घटने के कारण लोगो का जीवन-स्तर गिर रहा हो तो हम यह नही कह सकते कि आर्थिक विकास हो रहा है। अत आर्थिक विकास मे प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होनी चाहिए। इस प्रकार का मत कई विकासवादी अर्थ-शास्त्रियो ने प्रकट किया है।

प्रो लेविस के अनुसार "आर्थिक वृद्धि का अभिप्राय प्रति व्यक्ति उत्पादन मे वृद्धि से है।"[1]

प्रो विलियमसन के अनुसार "आर्थिक विकास या वृद्धि से आशय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा किसी देश या क्षेत्र के लोग उपलब्ध साधनो का प्रति व्यक्ति वस्तुओ या सेवाओ के उत्पादन मे स्थिर वृद्धि के लिए उपयोग करते है।"[2]

1 *W. A. Lewis* : The Theory of Economic Growth, p. 10
2 *Williamson and Buttrick* : Principles and Problems of Economic Development, p 7.

प्रो वेरन के शब्दो मे "आर्थिक विकास या वृद्धि को निश्चित समय मे प्रति व्यक्ति भौतिक वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि के रूप मे परिभाषित किया जाना चाहिए।"

बुकानन और एलिस ने भी इसी प्रकार की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "विकास का अर्थ अर्द्ध-विकसित क्षेत्रो की वास्तविक आय की सभावनाओ मे वृद्धि करना है जिसमे विनियोग का उपयोग उन परिवर्तनो को प्रभावित करने और उन उत्पादक साधनो का उपयोग करने के लिए किया जाता है जो प्रति व्यक्ति वास्तविक आय मे वृद्धि का वादा करते है।"

(ग) आर्थिक विकास सर्वांगीण विकास के रूप मे

अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्री आर्थिक विकास की उपर्युक्त परिभाषाओ को अपूर्ण मानते है। वास्तव मे उपरोक्त परिभाषाएँ आर्थिक प्रगति को स्पष्ट करती हैं जबकि आर्थिक विकास आर्थिक प्रगति से अधिक व्यापक है। आर्थिक विकास मे उपरोक्त आर्थिक प्रगति के अतिरिक्त कुछ परिवर्तन भी सम्मिलित है। आर्थिक विकास का आशय राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि से ही नही है। यह सभव है कि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि होने पर भी जनता का जीवन स्तर उच्च न हो क्योकि प्रति व्यक्ति उपभोग कम हो रहा हो। जनता बढी हुई आय मे से अधिक बचत कर रही हो या सरकार इस बढी हुई आय का एक बडा भाग स्वय सैनिक कार्यों पर उपयोग कर रही हो। ऐसी दशा मे राष्ट्रीय और व्यक्ति आय मे वृद्धि होने पर भी जनता का जीवन-स्तर उच्च नही होगा। इसी प्रकार राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होने पर भी सभव है। अधिकाश जनता निर्धन रह जाए और उसके जीवन-स्तर मे कोई सुधार न हो क्योकि बढी हुई आय का अधिकाँश भाग विशाल निर्धन वर्ग के पास जाने की अपेक्षा सीमित धनिक वर्ग के पास चला जाए। अत कुछ अर्थ शास्त्रियो के अनुसार आर्थिक विकास मे धन के अधिक उत्पादन के साथ-साथ उनका न्यायोचित वितरण भी होना चाहिए। इस प्रकार कुछ विचार आर्थिक विकास के साथ कल्याण का भी सम्बन्ध जोडते हैं। उनके अनुसार आर्थिक विकास पर विचार करते समय न केवल इस बात पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए कि कितना उत्पादन किया जा रहा है अपितु इस पर भी विचार किया जाना चाहिए कि किस प्रकार उत्पादन किया जा रहा है। अत आर्थिक विकास का आशय राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि, जनता के जीवन-स्तर मे सुधार अर्थ-व्यवस्था की सरचना मे परिवर्तन, देश की उत्पादन-शक्ति मे वृद्धि, देशवासियो की मान्यताओ एव दृष्टिकोणो मे परिवर्तन तथा मानव के सर्वांगीण विकास से है। विकास को परिमाणात्मक एव गुणात्मक दोनो पक्षो से देखा जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण से सयुक्त राष्ट्रसघ की एक रिपोर्ट मे दी गई आर्थिक विकास की यह परिभाषा अत्यन्त उपयुक्त है—"विकास मानव की भौतिक आवश्यकताओ से नही अपितु उसके जीवन की सामाजिक दशाओ मे सुधार से भी सम्बन्धित है अत विकास न केवल आर्थिक वृद्धि ही है, किन्तु आर्थिक वृद्धि और सामाजिक, सांस्कृतिक, सस्थागत तथा आर्थिक परिवर्तनो का योग है।"

किन्तु वस्तुत उपरोक्त परिवर्तनो को माप सकना अत्यन्त असम्भव है और जैसा कि श्री मेयर और बाल्डविन ने बतलाया है, "विकास की अनुकूलतम दर की व्याख्या करने के लिए हमें आय के वितरण, उत्पादन की संरचना, पसन्दगियाँ, वास्तविक लागते (Real costs) एव वास्तविक आय मे वृद्धि से सम्बन्धित अन्य विशिष्ट परिवर्तनों के बारे मे मूल्य-निर्णय (Value Judgements) देने होगे।"

अत मूल्य निर्णय से बचने एव सरलता के लिए अधिकाँश अर्थशास्त्री आर्थिक विकास का तात्पर्य जनसख्या मे वृद्धि को ध्यान में रखते हुए वास्तविक आय मे वृद्धि से लेते है।

अन्य परिभाषाएँ

श्री पाल एलबर्ट के अनुसार, 'यह (आर्थिक विकास) इसके सबसे बड़े उद्देश्य के द्वारा सर्वोत्तम प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है जो वास्तविक आय मे विस्तार के लिए एक देश के द्वारा अपने समस्त उत्पादक साधनो का शोषण है।"

प्रो ए जे यगसन के अनुसार, "आर्थिक प्रगति का आशय आर्थिक उद्देश्यो को प्राप्त करने की शक्ति मे वृद्धि है।" उन्होने वास्तविक राष्ट्रीय आय को आर्थिक उद्देश्यो को प्राप्त करने की शक्ति का सूचकांक माना है।

प्रो डी ब्राइटसिह के मत मे, "आर्थिक वृद्धि का अर्थ एव देश के समाज के अविकसित स्थिति से आर्थिक उपलब्धि के उच्च स्तर मे परिवर्तित होने से है।"

श्री साइमन कुजनेत्स के शब्दो मे, "आर्थिक विकास को मापने के लिए हम उसे या तो सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय मे वृद्धि के रूप में या स्थिर कीमतो पर सम्पूर्ण जनसख्या के उत्पादन के रूप मे अथवा प्रति व्यक्ति उत्पादन के रूप मे परिभाषित कर सकते है।"

आर्थिक विकास, आर्थिक वृद्धि तथा आर्थिक उन्नति
(Economic Development, Economic Growth and Economic Progress)

आर्थिक विकास, आर्थिक वृद्धि, आर्थिक उन्नति एव दीर्घकालीन परिवतन (Secular Change) आदि बहुधा एक ही अर्थ मे प्रयुक्त किए जाते है। किन्तु, शुम्पीटर, श्रीमती उर्सुल्ला हिक्स आदि अर्थशास्त्रियो ने आर्थिक विकास (Economic Development) और आर्थिक वृद्धि (Economic Growth) में अन्तर किया है।

आर्थिक विकास और आर्थिक वृद्धि

दोनो मे अन्तर करने वाले अर्थशास्त्रियो का सामान्य मत है कि आर्थिक विकास का सम्बन्ध अर्द्ध-विकसित देशो की समस्याओ से है जबकि आर्थिक वृद्धि का सम्बन्ध विकसित देशो की समस्याओ से है। आर्थिक विकास का प्रयोग विकासशील देशो के लिए किया जाता है जहाँ पर अप्रयुक्त या अशोषित साधनो के शोषण की पर्याप्त सम्भावनाएँ होती हैं। इसके विपरीत आर्थिक वृद्धि का प्रयोग आर्थिक दृष्टि से विकसित देशो के लिए किया जाता है जहाँ अधिकाँश साधन विकसित होते है।

शुम्पीटर के अनुसार विकास स्थिर स्थिति (Static situation) में असतत् (Discontinuous) और स्वाभाविक (Spontaneous) परिवर्तन है जो पूर्व स्थित साम्य की स्थिति को भंग कर देता है (Displaces the equilibrium state previously existing) जबकि आर्थिक वृद्धि जनसंख्या और बचत की दर में सामान्य वृद्धि के द्वारा आने वाला क्रमिक और स्थिर परिवर्तन (A gradual and static change) है।[1] 'एवरीमेन्स डिक्शनरी ऑफ इकानॉमिक्स' ने इन दोनों के भेद को और भी स्पष्ट रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

"सामान्य रूप से आर्थिक विकास का आशय केवल आर्थिक वृद्धि से ही है। अधिक विशिष्टता के साथ इसका उपयोग वृद्धिमान अर्थ-व्यवस्था (Growing economy) परिमाणात्मक (Quantitative) मापों (जैसे प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि की दर आदि) का नहीं बल्कि आर्थिक सामाजिक तथा अन्य परिवर्तनों का वर्णन करने के लिए किया जाता है जिनके कारण वृद्धि होती है। अतः वृद्धि मापनीय (Measurable) और वस्तुगत (Objective) है। यह श्रम शक्ति, पूंजी व्यापार तथा उपभोग की मात्रा के प्रसार का वर्णन करती है और आर्थिक विकास शब्द का प्रयोग आर्थिक वृद्धि अन्तर्निहित निर्धारकों (Underlying determinants) जैसे उत्पादन-तकनीक, सामाजिक दृष्टिकोण और संस्थागत परिवर्तन आदि का वर्णन करने के लिए हो सकता है। इस प्रकार के परिवर्तन आर्थिक वृद्धि को जन्म देते हैं।'

प्रो० बोन ने आर्थिक विकास तथा आर्थिक वृद्धि के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है 'विकास किसी भी प्रकार निर्देशक, नियन्त्रण और निर्देश चाहता है तथा उस अन्तग्रस्त करता है ताकि विस्तार की शक्तियों को कायम रखा जा सके। यह बात लगभग सभी अविकसित देशों पर लागू होती है। दूसरी ओर, आर्थिक वृद्धि की स्वचालित (Spontaneous nature of growth) मुक्त अर्थ-व्यवस्था (Free enterprise economics) का लक्षण है।'[2]

मैडिसन ने दोनों के भेद को बहुत ही सरल शब्दों में व्यक्त किया है। तदनुसार "आय-स्तरों को ऊँचा करना साधारणतया अमीर देशों में आर्थिक वृद्धि कहलाता है और गरीब देशों में आर्थिक विकास।"[3]

आर्थिक वृद्धि तथा आर्थिक प्रगति

आर्थिक वृद्धि (Economic Growth) तथा आर्थिक प्रगति (Economic Development) में भी अन्तर किया जाता है। श्री एन० एन० बरेरी के अनुसार आर्थिक प्रगति का अर्थ प्रति व्यक्ति उपज (Per capita Product) में वृद्धि से है जबकि आर्थिक वृद्धि का आशय जनसंख्या और कुल वास्तविक आय दोनों में वृद्धि से है। उनके अनुसार आर्थिक वृद्धि के तीन रूप हो सकते हैं। प्रथम प्रगतिशील

1 *Schumpeter* The Theory of Economic Development, pp 63 66
2 *Alfred Bonne* Studies in Economic Development, p 7
3 *Maddison* Economic Progress and Policy in Developing Countries 1970

(Progressive) वृद्धि, जो तब होती है जबकि कुल आय मे वृद्धि जनसख्या मे वृद्धि की अपेक्षा अनुपात से अधिक होती है। द्वितीय प्रयोगमी वृद्धि (Regressive growth), जब जनसख्या मे वृद्धि कुल आय मे वृद्धि की अपेक्षा अधिक अनुपात में होती है। तृतीय स्थिर आर्थिक वृद्धि (Stationary growth), जब दोनो मे एक ही दर से वृद्धि होती है।

इतना सब होते हुए भी आर्थिक विकास, आर्थिक वृद्धि, आर्थिक प्रगति आदि शब्दो को अधिकांश अर्थशास्त्री पर्यायवाची शब्द के रूप मे ही प्रयुक्त करते है। प्रो० पाल ए० बेरन का कथन है कि, 'विकास' और 'वृद्धि' की धारणा ही कुछ ऐसे परिवर्तन का सकेत देती है जो समाप्त हुए पुराने कुछ की अपेक्षा नया है। प्रो० विलियम आर्थर लेविस ने 'वृद्धि' शब्द का उपयोग किया है किन्तु परिवर्तन के लिए यदा-कदा 'विकास' और 'प्रगति' शब्द का भी उपयोग करना उन्होंने वांछनीय समझा है।

आर्थिक विकास की प्रकृति
(Nature of Economic Growth)

आर्थिक विकास के अर्थ को विशद् रूप से समझ लेने के उपरान्त इसकी प्रकृति बहुत कुछ स्वत स्पष्ट हो जाती है। हम यह जानते है कि प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था जन्म (Birth), विकास (Growth) पतन (Decay) और मृत्यु (Death) की प्रक्रियाओ से गुजरती है। आर्थिक विकास इसका कोई अपवाद नही है। अविकसित अथवा अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था शनै-शनै विकास की ओर अग्रसर होती है और पूर्ण विकास की अवस्था प्राप्त करने के बाद क्रमश पतन की ओर बढती है। हाँ, आज के वैज्ञानिक युग मे इस पतन की क्रिया पर अकुश लगाना अवश्य बहुत कुछ संभव हो गया है। आज वैज्ञानिक ज्ञान के विकास के कारण किसी भी राष्ट्र को पुराने होने की सज्ञा देना मुश्किल है पर ऐसे देशो को ढूंढ निकालना असम्भव नही है जिनकी अर्थ-व्यवस्थाएँ पुरानी हो गई है और अपनी अवनत अवस्था के कारण न केवल अपने देश के लिए वरन् अन्य देशो के लिए भी समस्या बनी हुई है। किन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी यह सुनिश्चित है कि आर्थिक विकास की ओर बढते रहना एक सतत् प्रक्रिया है, जो समाप्त नही होती। आर्थिक विकास की प्रकृति गतिशील है जिसका मुख्य उद्देश्य आर्थिक प्रगति के अध्ययन के आधार पर दीर्घकालीन अवस्था मे आर्थिक गतिविधियो का विश्लेषण करके महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान निष्कर्ष प्राप्त करना है। आर्थिक विकास के सम्बन्ध मे आर्थिक उतार चढावो का अध्ययन अल्पकाल मे नही किया जा सकता। आर्थिक विकास दीर्घकाल की देन है। आर्थिक विकास मे एक देश की अर्थ-व्यवस्था के सभी क्षेत्रो मे उत्पादन के उच्चतम स्तर को प्राप्त करना होता है और इसके लिए आर्थिक शक्तियो मे आवश्यकतानुसार फेर-बदल करते रहना पडता है और इन सब का अध्ययन करना पडता है। आर्थिक विकास की प्रकृति को समझने के लिए हमें स्थिर (Static) और गतिशील (Dynamic)—इन दो आर्थिक स्थितियो को समझ लेना चाहिए।

भौतिक-शास्त्र मे स्थिर अथवा स्थैतिक (Static) दशा वह होती है जिसमे गति तो होती है, किन्तु परिवर्तन नही अथवा दूसरे शब्दो मे गति का पूर्ण अभाव नही होता, किन्तु फिर भी गति की दर समान रहती है। यह गति एकरस रहती है अर्थात् इसमे सामयिक रूप से अचानक झटके नही लगते। इसमे अनिश्चितता का अभाव रहता है। कहने का अर्थ यह है कि स्थिरावस्था कोई अकर्मण्यता की अवस्था नहीं है वरन् यह अर्थ-व्यवस्था का एक ऐसा रूप है जिसमे कार्य बिना किसी बाधा के समान गति और सरल रूप मे चलता रहता है। जब अर्थशास्त्र मे प्रयुक्त की गई आर्थिक मात्राएँ समान होती है तो इसे स्थिरता की अवस्था कहा जाएगा। अर्थ-व्यवस्था इन स्थिर मात्राओ की सहायता से ही प्रगति के पथ पर बढती रहती है। मार्शल के कथनानुसार, 'किसी कार्यशील किन्तु अपरिवर्तित प्रणाली को स्थिर [illegible] एवं उपायों [illegible] अर्थशास्त्र का नाम दिया जाता है।"

प्रो मैकफाई ने माना था कि स्थिर अवस्था एक ऐसी आर्थिक प्रणा जिसमे उत्पादन, उपभोग विनिमय तथा वितरण को नियन्त्रित करने वाले साधन स्थिर होते है अथवा स्थिर मान लिए जाते हैं। जनसंख्या उम्र अथवा मात्रा की दृष्टि से बढती ही नही है और यदि बढती है तो उत्पादन की मात्रा भी उसी अनुपात मे बढ जाती है। प्रो स्टिगलर (Stigler), प्रो क्लाक (Clark) तथा प्रो टिनबर्गन (Tinbergan) आदि ने भी स्थिर अर्थशास्त्र का अर्थ स्थिर अर्थ-व्यवस्था से लिया है। क्लाक का कहना है कि 'वह अर्थ व्यवस्था स्थिर है जिसमे जनसख्या, पूंजी, उत्पादन प्रणाली मनुष्य की आवश्यकता और वैयक्तिक इकाइयो के स्वरूप मे कोई परिवर्तन नही होता।" स्टिगलर महोदय का मत था कि "स्थिर अर्थ-व्यवस्था मे रुचि, साधन एव तकनीकी—इन तीनो मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही होता।" प्रो जे के मेहता ने स्थिरता का अर्थ बताते हुए इसे ऐसी स्थिति माना है जो निश्चित समय के बाद भी उसी रूप मे बनी रहती है। यदि निश्चित समय के बाद उसकी अवस्था मे परिवर्तन आ जाए तो वह गत्यात्मक स्थिति कहलाएगी।

स्थिर अर्थशास्त्र का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। इसके कई लाभ हैं। यदि इसकी सहायता न ली जाए तो परिवर्तनशील अर्थ-व्यवस्था का अध्ययन करना अत्यन्त जटिल बन जाए। आर्थिक परिवर्तनो की प्रकृति स्वमेव ही जटिलतापूर्ण होती है। गतिशील अर्थ व्यवस्था का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करने के लिए छोटी से छोटी स्थिर अवस्थाओ मे विभाजित कर लिया जाता है। निरतर होने वाले परिवर्तन पर्याप्त अनिश्चितता ला देते है और इसलिए गतिशीलता का अध्ययन कठिन बन जाता है। इस सम्बन्ध मे यह कहना उपयुक्त है कि गतिशील अर्थशास्त्र स्थिर अर्थशास्त्र पर लगातार टिका है इसलिए स्थिर अर्थशास्त्र के कानून गतिशील अर्थशास्त्र पर भी लागू होने चाहिए।

स्थिर अर्थशास्त्र के विपरीत गतिशील अर्थशास्त्र परिवर्तन से सम्बन्ध रखता है। दिन प्रतिदिन जो परिवर्तन होते है उनका अध्ययन स्थिर अर्थशास्त्र मे नही किया जा सकता। गतिशील अर्थशास्त्र अर्थ-व्यवस्था मे निरन्तर होने वाले परिवर्तनो,

इन परिवर्तनो की प्रक्रियाओ और परिवर्तन को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारणों का अध्ययन करता है । गतिशील अर्थशास्त्र को अनेक प्रकार से परिभाषित किया गया है । रिचार्ड लिप्से (Richard Lipsay) के कथनानुसार इसमे व्यवस्था की प्रणालियाँ, वैयक्तिक बाजारो अथवा सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था की असतुलित दशाओ का अध्ययन किया जाता है । अर्थ-व्यवस्था मे प्राय परिवर्तन होते रहते है । इनके फलस्वरूप असतुलन उत्पन्न होता है । इस असतुलन का अध्ययन गतिशील अर्थशास्त्र करता है । जे बी क्लार्क (J B Clarke) के मतानुसार गतिशील अर्थ-व्यवस्था मे जनसख्या, पूँजी, उत्पादन की प्रणालियाँ और औद्योगिक सगठन का रूप बदलता रहता है । इसमे उपभोक्ताओ की आवश्यकताओ मे वृद्धि होती रहती है । गतिशील विश्लेषण मे इन समस्त परिवर्तनो का विश्लेषण किया जाता है ।

प्रो० विलियम आर्थर लेविस ने 'वृद्धि' शब्द का उपयो[illegible] परिवर्तन के लि[illegible]

हैरोड (Harod) यह मानते थे कि गतिशील अर्थशास्त्र अर्थ-व्यवस्था मे निरन्तर होने वाले परिवर्तनो का विश्लेषण है । उनके शब्दो मे "गतिशील अर्थशास्त्र विशेष रूप से निरन्तर होने वाले परिवर्तनो के प्रभावो और निश्चित किए जाने वाले मूल्यो मे परिवर्तन की दरो से सम्बन्ध रखता है ।"

जीवन की विभिन्न समस्याएँ गतिशील अर्थशास्त्र के अध्ययन को आवश्यक बना देती है क्योकि स्थिर विश्लेषण उनके सम्बन्ध मे अधिक उपयोगी सिद्ध नही होता । एक सन्तुलन बिन्दु से लेकर दूसरे सन्तुलन बिन्दु तक जो परिवर्तन हुए उनका अध्ययन स्थिर अर्थशास्त्र मे नही कहा जा सकता । वे केवल गतिशील अर्थशास्त्र के अध्ययन द्वारा ही जाने जा सकते हैं ।

वास्तव मे गतिशील और स्थिर विश्लेषण दोनो की ही अपनी-अपनी सीमाएँ है और इन सीमाओ मे रहते हुए वे अपने कार्य सम्पन्न करते हैं तथापि वास्तविकता तो यह है कि इनमे कोई भी विश्लेषण अपने आप मे पूर्ण नही है । प्रत्येक दूसरे के बिना अधूरा है । यहाँ तक कि वह जिन कार्यों को सम्पन्न कर सकता है उन्हे भी दूसरे की सहायता के बिना सन्तोषजनक रूप से नही कर पाएगा । इनमे गतिशील अर्थशास्त्र अपेक्षाकृत एक नई शाखा है और इसका विकास अभी भी वाँछित स्तर को प्राप्त नही कर सका है । यद्यपि अनेक विचारको ने इसके विकास मे अपना योगदान दिया है, किन्तु अभी तक इसका कोई अत्यन्त सामान्य सिद्धान्त आविष्कृत नही हो सका है ।

विकास का अर्थशास्त्र (Economics of Growth) एक गतिशील अथवा प्रावैगिक (Dynamic) अर्थशास्त्र है । आर्थिक विकास का एक क्रमिक चक्र होता है जिसमे सदैव परिवर्तन चलते रहते हैं । एक देश की अर्थ-व्यवस्था मे अनेक घटक होते हैं जिनमे समय-समय पर परिवर्तन होते ही रहते है और इन परिवर्तनो से आर्थिक विकास की गति तथा दिशा का भान होता है । आर्थिक विकास की प्रक्रिया का अध्ययन करने के लिए गतिशील अर्थ-शास्त्र का ही सहारा लेना पडता है और इसीलिए यह कहना समीचीन है कि आर्थिक विकास की प्रकृति गतिशील है । इसका अध्ययन स्तर यथा स्थैतिक न होकर मूलत गतिशील या प्रावैगिक होना है ।

आर्थिक विकास का माप
(Measurement of Economic Growth)

आर्थिक विकास का सम्बन्ध दीर्घकालीन परिवर्तनों से होता है, अत इसकी कोई सही या निश्चित माप देना बड़ा कठिन है। आर्थिक विकास के माप के सम्बन्ध म प्राचीन और आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने अपने-अपने विचार प्रकट किए है।

(क) प्राचीन अर्थशास्त्रियों के विचार

प्राचीन अर्थशास्त्रियों मे वाणिज्यवादियों का विचार था कि देश मे सोना-चाँदी के ढाप मे वृद्धि होना ही आर्थिक विकास का माप है। इसी दृष्टिकोण के आधार पर उन्होंने देश के आर्थिक विकास के लिए निर्यात बढ़ाने के सिद्धान्तो पर बल दिया और ऐसे उपायों [illegible] का पक्ष लिया जिनसे निर्यात म वृद्धि सम्भव हो। बाद मे एडम स्मिथ ने विचार प्रकट किया कि वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन मे वृद्धि होने से देश का आर्थिक विकास होता है। अतः इसी विचार के आधार पर उसने कहा कि आर्थिक क्षेत्र मे सरकार द्वारा स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए ताकि लोग अधिकाधिक उत्पादन कर सके और अधिकाधिक लाभ प्राप्त कर सके जिससे लोक-कल्याण मे अधिकाधिक वृद्धि हो। एडम स्मिथ के समकालीन अर्थशास्त्रियों ने भी कुछ इसी प्रकार के विचार प्रकट किए। उन्होंने कहा कि यदि देश म उत्पादन की मात्रा तीव्र होगी तो स्वत ही आर्थिक विकास की गति बढ़ेगी, अन्यथा आर्थिक विकास सम्भव नही हो सकेगा। इन सब अर्थशास्त्रियों के विपरीत कार्लमार्क्स ने सहकारिता के सिद्धान्त का समर्थन किया। उसने कहा कि पूँजीवाद को समाप्त करके साम्यवाद या समाजवाद पर चलने मे ही कुशल है और तभी देश मे लोक-कल्याण व आर्थिक विकास लाया जा सकता है। जे एस मिल ने स्वतन्त्र व्यापार की नीति के कुपरिणामो को दिखाकर, यह विचार प्रकट किया कि लोक-कल्याण और आर्थिक विकास के लिए सहकारिता के सिद्धान्त को महत्त्व देना चाहिए। उसने कहा कि सहकारिता ही आर्थिक विकास का माप है और जिस देश मे जितनी अधिक सहकारिता का चलन होगा, वह देश उतना ही अधिक लोक-कल्याण और आर्थिक विकास की ओर अग्रसर होगा।

(ख) आधुनिक विचारधारा

आधुनिक अर्थशास्त्र ने उत्पादन के साथ-साथ वितरण को भी आर्थिक विकास का माप माना। उन्होंने आर्थिक विकास के माप के लिए किसी एक तत्त्व पर नही वरन् सभी आवश्यक तत्त्वो पर बल दिया और कहा कि इन तत्त्वो के सामूहिक प्रयासो के फलस्वरूप ही किसी राष्ट्र का आर्थिक विकास सम्भव हो सकता है। यदि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के विचारो का विश्लेषण करे तो आर्थिक विकास के मुख्य मापदण्ड य ठहरते हैं—

1. राष्ट्रीय आय—आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास की दृष्टि से सकल राष्ट्रीय उत्पादन को न लेकर शुद्ध उत्पादन को ही लिया है। सकल राष्ट्रीय उत्पादन आर्थिक विकास का माप इसलिए नही हो सकता क्योंकि इसमे मशीनो व

उपकरणो पर होने वाली घिसाई या ह्रास की राशि को घटाने की व्यवस्था नही की जाती, जबकि शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन मे ऐसा किया जाता है। इस शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि आर्थिक विकास का सूचक होती है, पर शर्त यह है कि यह वृद्धि दीर्घकालीन और निरन्तर होनी चाहिए।

2. आय का वितरण—आधुनिक विचारधारा के अनुसार आर्थिक विकास का दूसरा माप-दण्ड आय का वितरण है। राष्ट्रीय आय तो बढ रही हो, किन्तु उसका न्यायोचित ढग से वितरण न हो तो उसे विकास की अवस्था नही कहा जा सकता। आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय का इस ढग से [illegible] हो कि सबको पर्याप्त आय प्राप्त हो सके। यदि बढी हुई राष्ट्रीय आय का एक बडा भाग केवल गिने चुने व्यक्तियो की ही [illegible] है तो इस स्थिति को आर्थिक विकास का सूचक नही माना जा सकता। इस बात की पूरी सम्भावना है कि राष्ट्रीय आय बढने पर भी देश में दरिद्रता व्याप्त हो। उदाहरणार्थ भारत मे नियोजन के प्रथम 15 वर्षों मे राष्ट्रीय आय 9,530 करोड रुपये से बढ कर 20,010 करोड रुपये प्रति वर्ष तक पहुँच गई और इस तरह प्रति व्यक्ति आय 266 रुपये से बढ कर 421 रु वार्षिक हो गई, लेकिन फिर भी अमीर अधिक अमीर और गरीब अधिक गरीब होते गए, क्योकि बढी हुई राष्ट्रीय आय का न्यायोचित ढग से वितरण नही हो पाया। यही स्थिति आज भी विद्यमान है।

3. गरीब जनता को अधिक लाभ—जब तक देश की गरीब जनता की आय मे वृद्धि होकर उसे अधिकाधिक लाभ प्राप्त नही होगा तब तक उस देश की आर्थिक व्यवस्था विकसित नही कही जा सकती। आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है कि राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि हो और गरीब जनता को अधिकाधिक लाभ मिले।

4. सामान्य एव वास्तविक विकास दर—आर्थिक विकास का चौथा मापक सामान्य और वास्तविक विकास की दर है। सामान्य विकास की दर वह है जिस पर प्रति वर्ष विकास सामान्यत हुआ करता है। यह दर अनुमान पर आधारित होती है। वास्तविक दर वह है जो वास्तव मे होती है। जिस देश की अर्थ-व्यवस्था मे सामान्य दर और वास्तविक दर समान होती है वहाँ आर्थिक विकास की स्थिति पाई जाती है। यदि सामान्य विकास दर वास्तविक विकास दर से कम होती है तो वह अर्थ-व्यवस्था अर्द्ध-विकसित मानी जानी चाहिए। इसी प्रकार यदि सामान्य विकास दर वास्तविक दर से अधिक होती है तो उस अर्थ-व्यवस्था को अधिक विकासशील स्थिति मे माना जाना जाए।

5. प्रति व्यक्ति आय—राष्ट्रीय आय मे वृद्धि के साथ ही प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होना भी आवश्यक है। यदि प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि न हो तो आर्थिक विकास की स्थिति नही मानी जाएगी। यह सम्भव है कि राष्ट्रीय आय बढने पर भी जनता की निर्धनता बढती जाए। उदाहरणार्थ राष्ट्रीय आय बढ रही है, लेकिन जनसख्या की मात्रा मे भी तेजी से वृद्धि हो रही है तो प्रति व्यक्ति आय समान रह

सकती है या कम हो सकती है और तब ऐसे राष्ट्र को आर्थिक विकास की श्रेणी मे नही रखा जा सकता।

इस प्रकार निष्कर्ष यही निकलता है कि एक देश मे आर्थिक विकास का कोई एक निश्चित माप नही हो सकता। प्रो. डी. ब्राइटसिह ने लिखा है—"एक देश द्वारा प्राप्त की गई आर्थिक सम्पन्नता के स्तर का माप उस देश द्वारा प्राप्त की गई उत्पादक सम्पत्ति की मात्रा से लगाया जा सकता है। अर्थ-व्यवस्था के विकसित होने पर नए उत्पादक साधनो को खोज लिया जाता है विद्यमान साधनो का अधिक उपयोग सम्भव होता है तथा उपलब्ध राष्ट्रीय एव मानवीय सम्पत्ति का उपयोग किया जाता है। एक देश मे जितने अधिक साधन होते है उतनी ही अच्छी उसकी आर्थिक स्थिति होती है।"

आर्थिक विकास का महत्त्व
(Importance of Economic Growth)

पूर्व विवरण से आर्थिक विकास का महत्त्व स्वत स्पष्ट है। आधुनिक युग मे आर्थिक विकास ही एकमात्र वह है जिसके द्वारा मानव अपनी विभिन्न आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता है। आर्थिक विकास के अभाव मे किसी भी देश का सर्वांगीण विकास नही हो सकता। मानवीय आवश्यकताओ को पूरा करना और निर्धनता व बेरोजगारी को मिटाने के लिए आर्थिक विकास ही एकमात्र और सर्वोत्तम उपाय है। आज के भौतिकवादी युग का नारा ही आर्थिक विकास का है।

आर्थिक विकास का महत्त्व प्रत्येक क्षेत्रो मे प्रकट है। इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि होती है। राष्ट्रीय उत्पादन बढने से राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय बढती है जिससे बचत क्षमता का विकास होता है। बचत बढने से पूँजी निर्माण बढता है और फलस्वरूप विनियोग दर मे पूर्वापेक्षा अधिक वृद्धि हो जाती है।

आर्थिक विकास के फलस्वरूप देशो म नए नए उद्योगो का जन्म और विकास होता है। नए उद्योगो के पनपने से जनता को रोजगार के अच्छे अवसर प्राप्त होते हैं। परिणामस्वरूप बेरोजगारी मिटने लगती है। इनके अतिरिक्त श्रमिको के समुचित प्रशिक्षण, विशिष्टीकरण, श्रम विभाजन, श्रम-गतिशीलता आदि को पर्याप्त प्रोत्साहन मिलता है। उत्पादन के विभिन्न साधनो का समुचित उपयोग होने से उत्पादन मे वृद्धि होती है और राष्ट्रीय आय अधिकतम होने की सम्भावना बढ जाती है।

आर्थिक विकास के कारण पूंजी निर्माण और विनियोजन दर मे वृद्धि होने लगती है जिससे पूँजी की गतिशीलता बढ जाती है और फिर भविष्य मे पूँजी निर्माण और भी अधिक होने लगता है। आर्थिक विकास से देश मे औद्योगीकरण प्रोत्साहित होता है। फलत जनता की आय मे वृद्धि होती है और उसकी कर दान क्षमता बढ जाती है। आर्थिक विकास के कारण नए-नए उद्योगो की स्थापना होने से व्यक्ति का चुनाव क्षेत्र भी अधिक व्यापक हो जाता है। उसे मन चाहे क्षेत्रो मे कार्य करने का अवसर मिलता है।

आर्थिक विकास के फलस्वरूप जब व्यक्ति को रुचि के अनुकूल कार्य मिलता है तो उसकी कार्य क्षमता से वृद्धि होती है जिससे देश में कुल उत्पादन प्रोत्साहित होता है। साथ ही जनता को अधिकाधिक सेवाएँ और पदार्थ उपलब्ध होने लगते है। इसके अतिरिक्त नागरिको की प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होने से उनका मनोवैज्ञानिक झुकाव मानवता की ओर अधिक होने लगता है। जब नागरिक भूखे और नंगे नही रहते तो वे अधिक दयालु और सहनशील बन जाते है। आर्थिक विकास के कारण देश मे उपलब्ध प्राकृतिक साधनो का कुशलता और मितव्ययितापूर्वक विदोहन सम्भव हो जाता है। कृषि पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। निष्क्रिय भूमि पर कृषि होने लगती है। नवीन वैज्ञानिक साधनो के प्रयोग के कारण प्रति हैक्टर [illegible] जनसंख्या का भार भी [illegible] स्थापना होती है।

आर्थिक विकास के कारण मनुष्य प्राकृतिक प्रकोपो पर विजय प्राप्त करने मे समर्थ होता है। तकनीकी साधनो के बल पर अल्प श्रम से ही पर्याप्त खाद्य सामग्री और उत्पादन की अन्य वस्तुएँ प्राप्त की जाना सम्भव हो जाता है जिससे अकाल और अभाव आदि के कष्ट बहुत कम हो जाते है। सामाजिक सेवाओ और मनोरंजन के साधनो में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। फलस्वरूप मृत्यु-दर घटकर लोगो की औसत आयु बढ़ जाती है। आर्थिक विकास का महत्त्व सामरिक क्षेत्र मे भी प्रकट होता है। औद्योगिक दृष्टि से सम्पन्न देश अपनी सामरिक व प्रतिरक्षा शक्ति को भली प्रकार सुदृढ बना सकता है। आर्थिक विकास के कारण देश में इस प्रकार के साधन जुटाना सम्भव हो जाता है जिनसे सामाजिक व्यवस्था को सुचारु ढग से विकसित किया जा सके।

इस प्रकार प्रकट है कि आर्थिक विकास के फलस्वरूप एक देश के सम्पूर्ण जीवन मे विकास होने लगता है। आर्थिक विकास इस भौतिक युग में सर्वांगीण विकास की कुंजी है।

आर्थिक विकास के दोष—इस ससार मे कोई भी वस्तु, सिद्धान्त या विचार सर्वथा दोषमुक्त नही माना जा सकता और आर्थिक विकास भी इसका कोई अपवाद नहीं है। जहाँ आर्थिक विकास एक राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति के लिए आवश्यक है वहाँ उसके कुछ दोष भी हैं जिनसे यथासम्भव बचते रहना चाहिए। आर्थिक विकास में विशाल पैमाने पर उत्पादन की जाने की प्रवृत्ति पाई जाती है और उपभोक्ताओं की व्यक्तिगत रुचि पर ध्यान नही दिया जाता। आर्थिक विकास के कारण मनुष्य का जीवन मशीनी हो जाता है। विशिष्टीकरण के कारण वह सदैव एक ही क्रिया दोहराता है और इस प्रकार नीरसता का वातावरण पनपता है। पूँजी और श्रम के झगड़े भी सामाजिक-आर्थिक जीवन को अभिशप्त किए रहते हैं। पूँजीपति उद्योगो से अधिकाधिक लाभ कमाने के लिए श्रमिको का शोषण करने लगते हैं। फलस्वरूप पूँजीपतियो और श्रमिको मे विवाद उठ खड़े होते है जो ताला-बन्दी, हड़ताल और हिंसा का रूप ले लेते है। इन झगड़ों के कारण कभी-कभी तो देश की सम्पूर्ण आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था बिगड़ जाती है।

आर्थिक विकास से एकाधिकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता है। भौतिकवाद इतना छा जाता है कि मानवीय मूल्यों का ह्रास होने लगता है और नास्तिक मनोवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। आर्थिक विकास व्यक्तिवादी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देता है जिससे संयुक्त और व्यापक परिवार प्रथा समाप्त होने लगती है। व्यक्ति धीरे-धीरे इतना स्वार्थी बन जाता है कि उसे अपने परिवार और गांव की चिन्ता नहीं रहती। ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर पलायन की प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती है।

आर्थिक विकास के फलस्वरूप उद्योगों के केन्द्रीकरण का भय बढ़ जाता है। महत्त्वपूर्ण उद्योग पूंजीपतियों के हाथों में केन्द्रित हो जाते हैं जिनसे प्राप्त होने वाले लाभ का अधिकांश भाग वे खुद ही हड़प जाते हैं। आर्थिक केन्द्रीकरण की इस प्रवृत्ति से समाज में आर्थिक कल्याण की वृद्धि नहीं हो पाती और गंदी बस्तियों, बीमारियों आदि के दोष देश में घर कर जाते हैं।

आर्थिक विकास देश में धन के असमान वितरण के लिए भी बहुत कुछ उत्तरदायी होता है। पूंजीपति और उद्योगपति औद्योगिक क्षेत्र में छा जाते हैं। वे लाभ का बहुत बड़ा भाग स्वयं हड़प जाते हैं जबकि श्रमिकों को बहुत कम भाग मिल पाता है। फलस्वरूप आर्थिक विषमताएँ पूर्वापेक्षा बढ़ जाती हैं। इसके अतिरिक्त देश के कुटीर और लघु उद्योगों को प्रोत्साहन नहीं मिल पाता। मशीनों के उपयोग के कारण बड़े पैमाने पर उत्पादन करके बड़े पैमाने के लाभ प्राप्त करने का लालच बना रहता है। लघु और कुटीर उद्योगों की ओर पूंजीपतियों की रुचि नहीं जाती। इसके अतिरिक्त इन उद्योगों की वस्तुएँ भी मँहगी होती हैं जो प्रतिस्पर्द्धा में टिक नहीं पातीं।

निष्कर्षतः आर्थिक विकास के अच्छे और बुरे दोनों ही पहलू हैं। कुल मिलाकर अच्छे पहलू ही अधिक सबल और ग्राह्य हैं। आर्थिक विकास के अभाव में कोई देश व समाज जिन बुराइयों और अभिशापों से ग्रस्त रहता है, उनकी तुलना में आर्थिक विकास की अवस्था में पाई जाने वाली बुराइयाँ बहुत कम गम्भीर और पीड़ाकारक हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक विकास की बुराइयाँ ऐसी नहीं हैं जिनका कोई समाधान न हो सके। प्रयत्न करने पर इसकी अनेक बुराइयों को बहुत कम किया जा सकता है।

आर्थिक विकास की प्रमुख बाधाएँ : जेकब वाइनर तथा जेराल्ड एम० मायर के विचार

ब्राजील के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में जेकब वाइनर ने वर्षों पूर्व आर्थिक विकास पर एक भाषण दिया था जिसमें अन्यान्य बातों के साथ उन्होंने आर्थिक विकास की कुछ प्रमुख बाधाओं का उल्लेख किया था। इसी प्रकार जेराल्ड एम० मायर ने वर्षों पूर्व अपने एक लेख में सीमित आर्थिक विकास की समस्या पर प्रकाश डाला था। इन विद्वानों द्वारा आर्थिक विकास की जिन बाधाओं और समस्याओं को प्रस्तुत किया गया वे बहुत कुछ अंशों में आज भी उतनी ही सत्य हैं जितने पहले थीं। इन दोनों अर्थशास्त्रियों के विचारों का सारांश हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

जेकब वाइनर के विचार

जेकब वाइनर ने 'अल्प विकास' के सर्वाधिक सामान्य मापदण्डो पर विचार व्यक्त करने के उपरान्त आर्थिक विकास की कुछ प्रमुख बाधाओ को प्रस्तुत किया है। इस सम्बन्ध मे उन्होने 'आर्थिक विकास' शब्द का प्रयोग केवल आर्थिक प्रगति के अर्थ में ही नही किया है परतुत ऐसी आर्थिक प्रगति के अर्थ मे भी किया है जिसके साथ या तो प्रति व्यक्ति स्तर को बढाना या वर्तमान उच्च आय स्तर को स्थापित रखना सम्बन्धित है। जेकब वाइनर ने आर्थिक विकास की जिन बाधाओ को गिनाया है वे न केवल एक दूसरे से प्रभावित है वरन् एक दूसरे को अतिव्याप्त भी करती है[1]—

(क) **निम्न उत्पादिता फलन**—प्रथम प्रकार की बाधाओ मे 'निम्न उत्पादिता फलन' है। इनके लिए सबसे अधिक उत्तरदायी गुणात्मक तत्त्व है, जो ...उपलब्ध होते हैं। [illegible] चाहे प्राकृतिक हो अथवा मानवीय, यथा—

(i) प्रतिकूल प्राकृतिक वातावरण आर्थिक विकास के मार्ग मे बहुत बड़ा बाधक बन सकता है, किन्तु स्विट्जरलैण्ड का उदाहरण यह सिद्ध करता है कि प्रतिकूल प्राकृतिक वातावरण 'एक घातक बाधा' नही हो सकता और मानवीय साधनो के उत्तम गुणो द्वारा इस पर काबू पाया जा सकता है।

(ii) श्रमिक जनसख्या का 'गुण' भी बहुत महत्त्व रखता है। इसमे औद्योगिक तथा कृषक मजदूर, उद्यमकर्त्ताओ तथा सगठको का वरिष्ठ वर्ग तथा कुशल इन्जीनियर और तकनीकी विशेषज्ञ आदि सब सम्मिलित हैं। वर्तमान परिस्थितियो मे उच्च श्रम उत्पादिता के लिए सबसे पहली आवश्यकता यह है कि साधारण जनता साक्षर, स्वस्थ, सुपोषित, सशक्त परिश्रमी हो। वाइनर ने लिखा है, "मुझे विश्वास है कि बहुत से देशो मे यदि यह शर्त कर ली जाए तो तेज आर्थिक विकास के लिए अन्य सब आवश्यकताएँ अपने आप और आसानी से पूरी हो जाएँगी। मुझे यह भी विश्वास है कि जहाँ यह शर्त पूरी नही की गई और जहाँ इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उस सीमा तक कोशिश नही की जाती जहाँ तक राष्ट्रीय साधन इसे सम्भव बनाते है, वहाँ व्यापक गरीबी और मन्द आर्थिक विकास के कारण स्पष्ट करने के लिए अन्य कारण ढूँढने की आवश्यकता नही। यद्यपि यह निश्चित है कि ये अन्य कारण भी वहाँ विद्यमान होगे।" नई शिक्षा के प्रति जनसाधारण मे पर्याप्त उत्साह की कमी तो पायी ही जाती है लेकिन वास्तविक कठिनाई तो "इस शिक्षा तथा इसे प्रदान करने मे योग्य शिक्षको की कमी" है। इस कमी को दूर किया जा सकता है—यदि शिक्षको को प्रशिक्षित करने के लिए शिक्षको को विदेश बुलाया जाए, अथवा शिक्षको के प्रशिक्षण कार्य को सीखने के लिए चुने हुए देशवासी विदेश भेजे जाएँ। "राष्ट्रीय लक्ष्य केवल कुल आय मे वृद्धि करना नही प्रत्युत प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि करना है, उसका मुख्य उद्देश्य अपने लोगो की समृद्धि है, समग्र ससार की समृद्धि नही।"

1. अग्रवाल एव सिह : अल्पविकास का अर्थशास्त्र, पृष्ठ 3-25.

(ख) पूँजी की दुर्लभता— इस बाधा पर वाइनर का विचार है कि—"पूँजी की दुर्लभता निरपेक्ष हो सकती है अथवा लाभदायक निवेश के अवसरों की दृष्टि से केवल सापेक्ष हो सकती है। प्रथम विश्वयुद्ध के थोड़ी देर पहले तक संयुक्तराज्य अमेरिका ब्याज की उच्च दर वाला और ऋण लेने वाला देश था। परन्तु सम्भवत तब भी उसकी प्रति औद्योगिक-श्रमिक पूंजी कुछ ऐसे देशों से अधिक थी, जिनसे वह ऋण लेता था। प्रस्तुत उद्देश्यों की दृष्टि से देश के अन्दर विद्यमान प्रति व्यक्ति पूँजी की अपेक्षा देश में प्रयोग हो रही प्रति व्यक्ति पूँजी अधिक महत्त्व रखती है, क्योंकि जब पूँजी का प्रयोग करने वाला पूँजी देने वाला देश एक ही नही होता, तो ऐसी पूंजी, पूँजी देने वाले देश की अपेक्षा पूंजी लेने वाले देश के आर्थिक विकास को प्राय, और कदाचित् सदा ही, अधिक प्रोत्साहित करती है। कनाडा इसका एक उचित उदाहरण है। परन्तु किसी देश की आर्थिक प्रगति पर लाभांश और ब्याज के अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों और वसूलियों के प्रभाव को भुलाया नहीं जा सकता।"

"किसी गरीब देश में आन्तरिक पूंजी संचय की गति धीमी होना जरूरी है। आय ही बचतों का साधन है, और जहाँ प्रति व्यक्ति आय कम होगी, वहाँ प्रति व्यक्ति स्वैच्छिक बचत की वार्षिक दर भी कम होगी। परन्तु, इस विचार पर सामान्य सहमति पाई जाती है कि किसी किसी निश्चित समय पर एक निश्चित जनसंख्या में कम आय वाले वर्गों की अपेक्षा अधिक आय वाले वर्गों की आय में वार्षिक बचत की प्रतिशतता अधिक होती है, इसलिए आय का वितरण जितना अधिक असम होगा, कुल आय में से होनी वाली बचत की प्रतिशतता उतनी ही अधिक होगी। यह भी सत्य हो सकता है कि समय अनुसार जैसे-जैसे औसत आय बढ़ती जाती है, राष्ट्रीय आय म होने वाली वार्षिक बचत की प्रतिशतता भी वैसे-वैसे ही बढ़ती जाती हैं। परन्तु इसकी पुष्टि करने वाले आनुभविक तथ्यों का अभाव है और इस पर सन्देह होने के कुछ सैद्धान्तिक कारण हैं, परन्तु जो बात अधिक विश्वास से कही जा सकती है, यह है कि समय के साथ-साथ जैसे-जैसे औसत आय बढ़ती जाती है, वैसे वैसे प्रति व्यक्ति वार्षिक बचत की कुल मात्रा भी बढ़ती जाएगी। यह भी ध्यान में रहना चाहिए, कि प्रति व्यक्ति आय तथा धन की मात्रा जितनी अधिक होगी, उतनी ही लोगों की साख अधिक होगी, और परिणामस्वरूप यदि वे चाहें तो विदेशों से प्रति व्यक्ति अधिक ऋण लेने में समर्थ होंगे। सम्पत्तिवान् व्यक्ति को अधिक और आसानी से ऋण मिल जाता है।"

वाइनर ने यहाँ सामान्य प्रवृत्तियों की ही बात की है, "और हो सकता है कि विशेष देशों तथा विशेष अवसरों पर ये प्रवृत्तियाँ सांस्थानिक अथवा विशेष अन्य कारणों से विफल हो जाएं।"

(ग) विदेश व्यापार की परिस्थितियों से सम्बद्ध बाधाएँ—वाइनर के अनुसार तीसरे प्रकार की बाधाएँ विदेश व्यापार की परिस्थितियों से सम्बद्ध हैं। "कहा जाता है कि इन परिस्थितियों का गरीब देशों पर और उन देशों पर विशेष रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिनके निर्यात मुख्यत मूल उत्पादन होते हैं और

जिनके आयात मुख्यतः विकसित उद्योगों वाले देशो में बने पदार्थ होते हैं।" जेकब वाइनर का विचार है कि यद्यपि पण्य-व्यापारिक स्थिति मे कोई प्रतिकूल परिवर्तन अपने-आप मे सदा एक अलाभकारी तत्त्व होता है, तथापि यह आवश्यक नही कि इसके कारण विदेशी व्यापार से प्राप्त होने वाला भौतिक लाभो अथवा इसकी लाभदायकता मे भी प्रतिकूल परिवर्तन आए। व्यापार की मात्रा मे वृद्धि अथवा निर्यातो की कीमतों की अपेक्षा उनकी वास्तविक लागतो में अधिक कमी जैसे अन्य तत्त्व व्यापारिक स्थिति के प्रतिकूल परिवर्तन के कारण होने वाली हानि को, न केवल पूरा कर सकते हैं, अपितु उसे लाभो मे भी परिवर्तित कर सकते हैं।"

वाइनर ने आगे लिखा है—"किसी देश की व्यापारिक शर्ते इस बात पर निर्भर करती हैं कि निर्यात बाजार मे वह अपने पदार्थों की विश्व माँग के मुकाबले मे कितनी मात्रा प्रस्तुत करता है। किसी देश की जनसख्या मे जितनी अधिक वृद्धि होगी, शेष परिस्थितियो के समान रहने पर, उसके प्रमुख निर्यातों की वह मात्रा भी, जो वह विदेशो को बेचने के लिए प्रस्तुत करेगा, उतनी ही अधिक होगी, बशर्ते कि ये पदार्थ देशीय उपभोग के भी, प्रमुख पदार्थ नही, और इस कारण उसकी व्यापारिक स्थिति उतनी ही अधिक खराब होने की प्रवृत्ति रखेगी। परन्तु यह प्रवृत्ति सब देशो पर लागू होती है, चाहे वे कृषि प्रधान हो अथवा उद्योग प्रधान, और ऐसी स्थिति मे दोनों प्रकार के देशो के लिए जनसख्या की वृद्धि की दर को घटाना ही उचित उपाय होगा। *किसी कृषि प्रधान देश मे मण्डी की अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर,* जनसंख्या की तीव्रगति से वृद्धि, जिसके साथ-साथ उसके कृषि पदार्थों के लिए माँग सानुपात न बढे, अपने-आप ऐसी शक्तियो को क्रियान्वित करेगी जिनसे देश के उद्योगीकरण की प्रवृत्ति बढ जाएगी, क्योकि इससे कृषि उत्पादन के लाभ कम हो जाएँगे।"

वाइनर की दृष्टि मे "किसी अल्पविकसित देश को विदेशी व्यापार के क्षेत्र में उपलब्ध अवसर उसकी आर्थिक प्रगति की दर निर्धारित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण कारक होता है।"

"सामान्यत किसी भी व्यक्तिगत देश के वश मे यह निर्णय नही है, कि विदेशी बाजारो मे उसके निर्यातो का क्या होगा। न ही वे शर्ते उसके वश मे होती हैं जिनके अनुसार वह अपने आयात प्राप्त कर सकता है। जिस बात पर उसका पूरा नियन्त्रण होता है, वह यह है कि कृत्रिम रोको द्वारा वह उस सीमा का निर्धारण कर सकता है, जहाँ तक आयातो के प्रवेश को रोका जा सकता है। परन्तु कोई ऐसा अल्पविकसित देश नही है, जिसके विदेशी व्यापार के बन्धनों को हटाने अथवा कम करने के लिए बहुत दाँव न लगाने पड़ते हो।"

(घ) जनसख्या-वृद्धि की तीव्र गति से सम्बद्ध बाधाएँ—वाइनर के अनुसार आर्थिक विकास की चौथी और अन्तिम प्रकार की बाधाएँ जनसख्या की वृद्धि की तीव्र गति से सम्बद्ध है। "उच्च स्तर की प्रति व्यक्ति आय प्राप्त करके तथा व्यापक गरीबी को हटा कर आर्थिक समृद्धि के मार्ग मे यह एक बहुत बडी बाधा है। सभी

गरीब देशों के ऊपर जनसंख्या की वृद्धि डरावने वाले बादलों की तरह मँडराती है। यह आर्थिक समृद्धि के लिए शेष सब कारकों के योगदान को विफल कर सकती है। तकनीकी ज्ञान की प्रगति, नए प्राकृतिक साधनों की खोज, विदेशों से प्राप्त होने वाली आर्थिक सहायता, तथा विदेशी व्यापार के प्रतिबन्धों के निवारण के फलस्वरूप सुलभ होने वाले आर्थिक प्रगति के अवसर, चाहे कितने भी क्यों न हों उन सबका प्रमुख परिणाम केवल ऐसे बच्चों की संख्या में वृद्धि मात्र हो सकता है जो एक अल्पायु और दुःखी जीवन बिताने को बने रहते हैं। जनसंख्या की वृद्धि आर्थिक प्रगति को कम कर सकती है, और कुछ परिस्थितियों में यह आर्थिक कल्याण में भागीदारों की संख्या बढ़ाकर इस आर्थिक कल्याण को बढ़ा भी सकती है। यह तभी हो सकता है जब जनसंख्या की वृद्धि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि का परिणाम हो। जो बढ़िया पौष्टिकता, बढ़िया शिक्षा, बढ़िया सफाई सुविधाओं द्वारा अधिकाधिक बच्चों को एक स्वस्थ तथा क्रियाशील वयस्क जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाती है। यह बहुत ही हानिकारक होगा, यदि जनसंख्या की वृद्धि मुख्यतः आधुनिक सार्वजनिक स्वास्थ्य की तकनीकों के प्रयोग का परिणाम हो, जिनके कारण बाद की आयु अवस्थाओं में स्वास्थ्य दशाओं के सुधार तथा उत्पादक रोजगार के अवसरों के विस्तार की दर की अपेक्षा शिशु मृत्यु दर अधिक तीव्र गति से घटती है।"

"सबसे निराशाजनक विषय यह है कि जनसंख्यातिरेक की समस्या के कोई सरल तथा निश्चित उपचार उपलब्ध नहीं हैं, और सन्तति निरोध का उपाय, जो बहुत से समाज-वैज्ञानिकों की दृष्टि से एक मात्र प्रभावशाली उपाय है, समझदारी और प्रभावी ढंग से प्रयुक्त होने के लिए काफी ऊँचे स्तर की शिक्षा और आय की माँग करता है।

जेराल्ड एम मायर के विचार

जेराल्ड एम मायर की मान्यता है कि 'किसी देश का सामाजिक तथा राजनीतिक परिवेश विकास के अनुकूल भी हो सकता है और नहीं भी हो सकता है। कुछ धार्मिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियाँ अन्य प्रवृत्तियों की अपेक्षा विकास के लिए अधिक अनुकूल होती है, और विकास सम्बन्धी साहित्य भी इस समस्या के राजनीतिक तथा सामाजिक पक्षों पर प्राय जोर देता है।" मायर ने 'विकास में सम्भावित बाधाओं' को अपने लेख में निम्न प्रकार गिनाया है[1]—

(अ) विकास सम्बन्धी सामाजिक तथा राजनीतिक अपेक्षताओं का अभाव—'आर्थिक प्रगति नहीं होगी जब तक वातावरण अनुकूल न हो। देश की जनता में प्रगति की आकांक्षा होनी चाहिए, और उसकी सामाजिक, आर्थिक, कानूनी तथा राजनीतिक संस्थाएँ इसके अनुकूल होनी चाहिए।" जेराल्ड मायर का विचार है कि कुछ क्षेत्रों के अल्पविकास के लिए वहाँ "विकास सम्बन्धी तथा राजनीतिक अपेक्षताओं का अभाव" उत्तरदायी है। अर्द्ध-सामन्ती समस्याओं का प्रतिबन्धपूर्ण

[1] वही, पृष्ठ 48-69.

स्वभाव, शक्तिहीन शासन, सामाजिक विधान का अभाव, प्रोत्साहनों का अभाव, अपर्याप्त शिक्षा और कमजोर स्वास्थ्य, ये सब इस बात के साक्षी है। वस्तुत: यह बहुत-कुछ सत्य है कि कोई देश आर्थिक रूप से इसलिए पिछडा रहता है क्योंकि वह राजनीतिक, सामाजिक तथा भौतिक रूप से पिछडा होता है। इस समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से आगे बढकर यदि शुद्ध आर्थिक दृष्टिकोण से सोचा जाए तो अल्प विकास की समस्या का एक सर्वसाधारण उत्तर साधनो का अभाव तथा जनसंख्यातिरेक है। यदि किसी देश मे प्रयोग करने योग्य प्राकृतिक साधन नही होगे तो विकास की सम्भावना स्वाभाविक तौर पर नही होगी। प्रति व्यक्ति साधनो की वर्तमान अल्पमात्रा या तो साधनो की समाप्ति का परिणाम होती है या जनसंख्या की वृद्धि मे ऐसी तीव्र गति है जिसके कारण उपलब्ध साधनों पर जनसंख्यातिरेक का दबाव पड रहा है। "किसी पिछडे हुए देश मे स्थिरता सिद्धान्त के विपरीत जनसंख्या की वृद्धि ऐसे अथवा नवीन कार्यो को प्रोत्साहित नही करती जिनसे पूंजी प्रयोग का विस्तार। इसकी जगह, यह पूंजी सचय की दर कम करती है, निस्सारक उद्योगो मे लागतो को बढा देती है, छिपी हुई बेरोजगारी की मात्रा को बढा देती है, और एक बडी सीमा तक यह पूंजी निवेश की दिशा को इस प्रकार बदल देती है कि यह ऐसे बच्चो के पालन-पोषण मे खर्च हो जाती है, जो उत्पादक अवस्था को प्राप्त होने से पहले ही मर जाते है। सक्षेप मे, साधन पूंजी-निर्माण मे नही प्रत्युत् जनसंख्या-निर्माण मे खप जाते हैं।"

(ब) बाजार सम्बन्धी अपूर्णताएँ—अल्पविकास की समस्या का उत्तर जनसंख्यातिरेक ही नही है, अन्य बाधाएँ भी विशेष महत्त्वपूर्ण हैं, और इनमें एक है बाजार सम्बन्धी अपूर्णताएँ। जेराल्ड मायर का कथन है कि–

"यदि हम अल्पविकसित देश के सम्बन्ध मे उत्पादन-सीमा सम्भावना वक्र या रूपान्तरण वक्र की सकल्पना कर सकते हो, तो हम यह कह सकते है कि वास्तविक उत्पादन-सीमा उस अधिकतम सम्भव सीमा के बहुत अन्दर रही है, जहाँ साधनो के इष्टतम विनियोजन द्वारा पहुँचा जा सकता था। जिन उत्पादन फलनो का वास्तव मे प्रयोग किया गया है वे बहुत ही 'घटिया' अथवा 'कूट' उत्पादन फलन रहे है। बहुत-सी मण्डियो सम्बन्धी अपूर्णताओ को ऐसी सूची मे रखा जा सकता है जिनके कारण साधनो का इष्टतम विनियोजन नही हो सका है और इस कारण वास्तविक उत्पादन-सीमा बढकर अधिकतम सम्भव सीमा से मिल नही पायी है। जिन अपूर्णताओं का अधिकतम बार उदाहरण दिया जाता है, वे हैं अपूर्ण ज्ञान अपूर्ण गतिशीलता, साधनो की अपूर्ण विशिष्टता तथा साधनो की अपूर्ण विभाज्यता। सम्भाव्य साधनो का अज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान की अनभिज्ञता अपूर्ण ज्ञान की दो अभिव्यक्तियाँ थीं। विश्व बाजार को तो छोड ही दीजिए, देशीय बाजार की परिस्थितियो का अज्ञान इसका एक अन्य उदाहरण है। रूढि तथा पद के बन्धनो के कारण देशीय श्रम भौगोलिक तथा व्यावसायिक दोनो दृष्टियों से गतिहीन रहता है। इस गतिहीनता को दूर करने के लिए उच्चतर आर्थिक प्रतिफल भी प्रभावी नही होते।"

"अल्प विकसित अर्थ-व्यवस्था की अपूर्णताओं को भुलाया नहीं जा सकता, लेकिन उन्हें आवश्यकता से अधिक महत्त्व मिल जाएगा यदि हम केवल यह कहें कि विकास की समस्या केवल यह है कि "साधनों के इष्टतम विनियोजन द्वारा वास्तविक उत्पादन सीमा को बढ़ाकर अधिकतम सम्भव सीमा के साथ मिला देने के लिए इन बाधाओं को दूर किया जाए।" मायर का लिखना है कि—"इस बात पर प्रबल सन्देह हो सकते हैं कि क्या साधनों के इष्टतम विनियोजन की उपलब्धि, जहाँ तक यह सीमान्त शर्तों की पूर्ति पर निर्भर है, एक अल्पविकसित देश के लिए कोई विशेष सम्बन्ध रखती है। उत्पादन में कोई विशेष वृद्धि प्राप्त करने के लिए 'सीमान्त शर्तों की अपेक्षा' कुल शर्तों की पूर्ति अधिक आवश्यक है। 'अर्थ-व्यवस्था की उत्पादन-कुशलता' बढ़ाने की अपेक्षा यह बात अधिक महत्त्व रखती है कि क्या उत्पादन सामर्थ्य का निर्माण करना चाहिए अथवा इसका नाश करना चाहिए—क्या किसी पदार्थ का उत्पादन अथवा उपभोग आरम्भ या त्याग करके कुल उत्पादन बढ़ाया नहीं जा सकता? किसी नए पदार्थ के उत्पादन अथवा रेलवे के आरम्भ करने की क्रिया को, जो प्रदेश की कुल उत्पादन सरचना को बदल सकती है, सीमान्त समजन का नाम नहीं दिया जा सकता। सीमान्त परिष्कारों के सफल बनने से पहले कई केवल एक बार होने वाले सरचनात्मक परिवर्तन तथा एक विस्तृत सीमा पर एक ही समय पर वितरित होने वाले, और एकदम अधिक मात्रा में किए जाने वाले निवेश का होना आवश्यक है ताकि निवेशों का प्रयोग कुल सामर्थ्य तक हो सके।"

"इसलिए पिछड़े हुए देशों में निम्न उत्पादन का वास्तविक कारण सीमान्त शर्तों की अपूर्ति की बजाय इन बड़े-बड़े परिवर्तनों का अभाव बताया जा सकता है। वास्तविक निम्न उत्पादन सीमा को आगे बढ़ाकर उच्चतम सीमा के साथ मिलाने के लिए सीमान्त समजन का सहारा लेना मृगतृष्णा सिद्ध होगी। यदि निराधार रूप में यह मान भी लिया जाए कि इस मनोरथ में सफलता प्राप्त की जा सकती है, तो भी इससे उत्पादन में इतनी वृद्धि नहीं हो सकती जितनी कि कुल शर्तों की पूर्ति से उत्पन्न होने वाले बड़े-बड़े परिवर्तनों से सम्भव हो सकती है। जहाँ तक उत्पादन में वृद्धि का सम्बन्ध है न केवल तेज निवेश के लिए, अपितु जनसंख्या वृद्धि की अपेक्षा उत्पादन वृद्धि को अधिक करने के लिए और इस प्रकार प्रति व्यक्ति पूँजी बढ़ाने के लिए भी निवल पूँजी निर्माण की आधारभूत शर्त के मुकाबले में सीमान्त समजनों का महत्त्व गौण रहा है।"

'किन्तु कुल शर्तों के उपर्युक्त महत्त्व पर जोर देने, तथा इस दृष्टिकोण के महत्त्व को कि सीमान्त परिवर्तनों से विकास किया जा सकता है, न्यूनतम बताने का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि बाजार सम्बन्धी अपूर्णताओं तथा बाधाओं का नितान्त कोई महत्त्व नहीं रहा है। इसके विपरीत, उनका बहुत महत्त्व है, न केवल इसीलिए कि उनके कारण सीमान्त समजन सीमित रहा है, प्रत्युत इस कारण भी कि वे कुल शर्तों की पूर्ति के मार्ग में बाधा बन कर खड़ी रही हैं और इस प्रकार

अल्पविकसित अर्थ-व्यवस्था के निर्यात क्षेत्रों में होने वाले विकास की शेष अर्थ-व्यवस्था मे सब ओर फैलने से रोकती रही हैं।"

(स) 'कुचक्र'—अल्प विकास के एक अन्य दृष्टिकोण के अनुसार "एक पिछड़ी अर्थ-व्यवस्था इसलिए पिछडी रहती है, क्योंकि इसका कुल उत्पादन इतना कम होता है, और आरक्षण भण्डार इतने नगण्य होते हैं कि उपभोग सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति के पश्चात् पूंजी सचय के लिए बहुत ही कम भाग शेष रह पाता है। इसके फलस्वरूप उत्पादन मे कोई विशेष वृद्धि नही हो सकती। अपनी चरम सीमा पर ऐसी अर्थ-व्यवस्था एक निर्वाह अर्थ-व्यवस्था ही रह पाती है।" अनेक प्रकार की परिस्थितियों के सयोग के कारण पूँजी सचय परिसीमित रह सकता है, यथा-सम्भाव्य साधनो का पर्याप्त ज्ञान न होना, साधनो का ज्ञान हो भी तो आवश्यक सहयोगी साधनो की कमी, जैसे पूँजी तथा उद्यमकर्त्ताओ का अभाव, औद्योगिक तकनीको के ज्ञान का अभाव, प्रशासन तथा सगठन सम्बन्धी कौशलो का अभाव आदि। उत्पादन श्रम प्रधान अथवा भू-प्रधान होने से अल्प-विकास की स्थितियो को बल देता है। सीमित पूँजी, गोदामो की सुविधा का अभाव, अपर्याप्त नक्दी आरक्षण, सीमित बाजार आदि अन्य अनेक छोटे मोटे कारण पिछड़ी अर्थ-व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होते है। सरकार की राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियाँ यदि समुचित रूप से परिष्कृत नही होती तो भी बचत की बचतो द्वारा आन्तरिक विकास सम्भव नहीं हो पाता। मायर के विचारानुसार "जहाँ तक विकास का सम्बन्ध है, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के विपरीत परिणाम सम्भव हो सकते है— कुछ अवस्थाओ मे इनके कारण विकास को प्रोत्साहन मिल सकता है और अन्य अवस्थाओ मे इनसे विकास सीमित रह सकता है।"

(द) विदेशी निवेश के प्रभाव—विदेशी ऋणो की आवश्यकता से यह अर्थ नही लिया जाना चाहिए कि विकास की समस्या केवल एक वित्तीय समस्या है जिसे केवल विदेशी निवेश उपलब्ध होने पर ही सुलझाया जा सकता है। कई देशो ने, जिन्होने प्रथम महायुद्ध के पूर्व काल मे भारी मात्रा मे ब्रिटिश पूँजी अन्तर्वाह की मात्रा और विकास की मात्रा मे कोई स्पष्ट पारस्परिक सम्बन्ध नही था। विकास को निश्चित बनाने के लिए केवल विदेशी पूँजी की उपलब्धता पर्याप्त नही है। विदेशी निवेश के प्रभाव इन बातो पर महत्त्वपूर्ण होते है—विदेशी निवेश की दिशा, इसके साथ आने वाले आर्थिक सगठन का प्रभाव तथा इसके आय-प्रभाव। हो सकता है कि विदेशी निवेशकर्त्ता अल्पविकसित देश के देशीय बाजार के अवसरो से आकर्षित न हुआ हो वरन् वह इसके निर्यात उद्योगों से अधिक लाभो की प्रत्याशा तथा विदेशी मुद्रा कमाने की सम्भावनाओ से आकर्षित हुआ हो।

जेराल्ड मायर ने विदेशी निवेश के एक परम्परागत सिद्धान्त को अल्पविकसित अर्थ-व्यवस्था के प्रसंग मे अमान्य ठहराया है। उनका लिखना है कि—"विदेशी निवेश के परम्परागत सिद्धान्त के अनुसार, जब पूंजी उन क्षेत्रो से जहाँ इसकी सापेक्ष बहुलता होती है और इसका सीमान्त उत्पादन होता है, ऐसे क्षेत्रो की ओर प्रवाहित

होती है जहाँ यह सापेक्ष दुर्लभ होती है और इसका सीमान्त उत्पादन सापेक्ष अधिक होता है, तो इस प्रवाह से विश्व-अर्थव्यवस्था में साधनों का इष्टतम वितरण सम्भव होता है, और इसके परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्रीय आयों में वृद्धि होती है। परन्तु यह निष्कर्ष एक सार्वभौमिक दृष्टिकोण की स्वीकृति अर्थात् इस अन्तर्निहित पूर्व-धारणा पर आधारित है कि व्यक्तिगत सीमान्त निवल उत्पादन तथा समष्टिगत सीमान्त निवल उत्पादन बराबर होते हैं, और यह इस शर्त पर भी आधारित है कि अन्य बातें स्थिर रहें। विशेषतः व्यापार स्थिति में कोई परिवर्तन न हो। यदि इस समस्या पर केवल अल्पविकसित देश के दृष्टिकोण से विचार किया जाए, अथवा यह स्वीकार किया जाए, कि समष्टिगत तथा व्यक्तिगत प्रतिफलों में अन्तर हो सकता है (विशेषकर बाहरी आर्थिक व्यवस्थाओं के प्रसग में), अथवा अन्य बातें स्थिर रहे की शर्त हटा दी जाए, तो परम्परागत निष्कर्ष का खण्डन हो सकता है। जहाँ एक विकास का सम्बन्ध है, हम केवल इतना ही कह सकते है कि एक अल्प विकसित देश के लिए विदेशी निवेश के बिल्कुल न होने की जगह इसका कुछ मात्रा में होना अच्छा है, परन्तु व्यक्तिगत लाभ की प्रत्याशाओं द्वारा निर्देशित निवेश आवश्यक रूप से उत्तम दिशा में नहीं होता।"

तथापि, विदेशी ऋणों का एक बड़ा परिणाम यह हुआ है कि इनके कारण ऋणकर्ता देशों के निर्यातों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है और यह वृद्धि दीर्घकालीन दृष्टि से प्रभावपूर्ण है। तुलनात्मक लागतों के आधारभूत अन्तर का निरन्तर बने रहना और उन्नत देशों की कच्चे पदार्थों के लिए निरपेक्ष माँग का बराबर विद्यमान रहना ही इस बात के मुख्य कारण रहे हैं कि पिछड़े देशों के निर्यातों में वृद्धि हुई है। अल्प-विकसित अर्थ-व्यवस्था में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति अधिक होने के साथ ही विदेशोन्मुख आय-स्खलन भी अधिक पाया जाता है जिसके कारण 'गुणक-विपाक' क्षीण हो जाता है। इसी प्रकार एक उन्नत देश की तुलना में अल्प-विकसित देश में 'त्वरण-विपाक' होते हैं।

यह भी कहा जा सकता है कि दीर्घकाल में पिछड़े देश में आय का वितरण मुनाफों तथा अधिशेषों के अनुकूल होने की प्रवृत्ति रखता है क्योंकि जब भी कार्य-स्तर बढ़ता है, प्रायः एक बड़ी सख्या में बिचौलिए व्यापारी पैदा हो जाते हैं, जो चिरकालिक स्फीति की परिस्थितियों का लाभ उठा लेते हैं, भूमि की माँग बढ़ जाती है और सौदा करने की योग्यता न रखने वाले अकुशल मजदूरों की अधिकता होने के कारण नकद मजदूरी सानुरूप नहीं बढ़ पाती है। यह माना जा सकता है कि व्यापारियों और जमींदारों की सीमान्त-आयात-प्रवृत्ति अन्य वर्गों की अपेक्षा अधिक होती है, अतः इस कारण भी कुल समुदाय की सीमान्त-आयात-प्रवृत्ति आय के बढ़ने के साथ-साथ बढ़ती जाती है। इन सब तत्त्वों के मिलने से प्रायः ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि निर्यातों के विस्तार से होने वाली आय वास्तव में आयातों पर व्यय हो जाती है, और निर्यातों की ऊर्ध्वोन्मुख उपनति का देशीय बाजार के लिए होने वाले उत्पादन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

प्रकट है कि अपूर्णताओं, कुचक्र तथा विदेशोन्मुख आय स्खलन के कारण उत्पन्न होने वाली बाधाओं ने इतिहास में विकास को परिसीमित बनाया है। पिछले कुछ अर्से से ये बाधाएँ धीरे-धीरे खण्डित हो रही हैं और पिछड़ी अर्थ-व्यवस्थाएँ पूर्वापेक्षा अधिक तीव्र गति से विकासोन्मुख हैं।

आर्थिक विकास के मॉडल : उनका महत्त्व (Models of Economic Development and Growth : Their Importance)

अर्थशास्त्र में मॉडल प्रस्तुत करने का रिवाज 1939 के बाद, जबकि प्रो० हरोड की पुस्तक (Towards Dynamic Economics) प्रकाशित हुई, चला और आज तो 'मॉडल-युग' की बात की जाती है। अधिकांश विकास-मॉडल विकसित देशों के सन्दर्भ में हैं, पर विकासशील देश भी मॉडल बनाने में पिछड़े नहीं रहना चाहते। भारत की पचवर्षीय योजनाएँ आम जनता के सामने तो सरल रूप में प्रस्तुत की जाती हैं, किन्तु योजना आयोग मॉडल बनाकर काम करता है अर्थात् अपनी योजनाओं के लक्ष्यों और नीतियों के सम्भावित परिणामों को गणित सूत्रों में जाँच लेता है। प्रो० जे० के० मेहता ने ठीक ही लिखा है—"आज हम सभी मॉडल बनाने वाले होते जा रहे हैं।" (We are all becoming model builders to-day) प्रो० हेवरलर ने मॉडलों के प्रचलन के महत्त्व और उसकी व्यापकता को इन शब्दों में दर्शाया है, "एक देश और यहाँ तक कि सम्पूर्ण विश्व के बारे में पूर्णतः गणित की भाषा में व्यक्त मॉडल (जिनमें अचल राशियों को स्पष्ट संख्या दे दी जाती है) अर्थशास्त्रियों द्वारा उसी तरह प्रस्तुत किए जा रहे हैं जिस तरह मोटरों के कारखानों से मोटरें निकल रही हैं।"

'सिद्धान्त' और 'मॉडल' में अन्तर है। 'सिद्धान्त' को भाषा में सरल रूप में व्यक्त किया जाता है और उन्हें वर्णनात्मक प्रस्तुत करके विश्लेषित किया जा सकता है जबकि 'मॉडल' में कतिपय चल-राशियों अथवा आर्थिक परिवर्तनों के परिणाम जाँचे जाते हैं। राजनीतिज्ञ नियोजन के लक्ष्य प्रस्तुत कर देते हैं और तब अर्थशास्त्री मॉडल बना कर यह देखते हैं कि उन लक्ष्यों को कम-से-कम व्यय पर किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। मॉडल हमें यह बतलाता है कि कौनसी शर्तों को पूरा करने पर और क्या-क्या करने पर कौन से परिणाम सम्भावित हैं।

'मॉडल' को अर्थशास्त्रियों ने विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है—

किन्डलबरगर के अनुसार, "एक आर्थिक मॉडल विभिन्न परिवर्तनशील आर्थिक तत्त्वों और घटकों के बीच सहसम्बन्धों (Relationships among Economic Variables) की व्याख्या करता है। इसका उद्देश्य प्रमुख तत्त्वों (Critical Variables) में कारण और परिणाम सम्बन्ध बताना है। मॉडल के अध्ययन से अर्थव्यवस्था की गति का अध्ययन किया जा सकता है। बहुधा इस बात को सरलता और शीघ्रता से समझने के लिए हम बहुत-सी जटिलताओं को निकाल देते हैं अर्थात् कुछ सरल मान्यताओं के आधार पर अध्ययन करते हैं। मॉडल गद्य

(Prose) मे, या रेखा गणितीय रूप मे या अक गणित की भाषा मे (In geometric form, or in mathematics) व्यक्त किए जा सकते है। मॉडल की विशेषता यह होती है कि हम आर्थिक तत्वो और घटको के सहसम्बन्धो को सॉख्यिकी द्वारा माप सकते हैं।"

प्रो० जे० के० मेहता के अनुसार "मॉडल बनाने से पूर्व हम कुछ ऐसी मान्यताएँ लेते है जिनके आधार पर अर्थ-व्यवस्था चलती है। फिर हम उन मान्यताओ पर आधारित सह-सम्बन्धो को गणित के साँचो मे ढाल देते हैं। तब इन सह-सम्बन्धो के आधार पर एक साथ समीकरण बनाए और हल किए जाते हैं। तत्पश्चात् इन गणित के सह-सम्बन्धो के समीकरणो से आर्थिक सम्बन्धो का निष्कर्ष रूपी विश्लेषण हो जाता है।"

प्रो० मीयर ने लिखा है, "एक आर्थिक मॉडल किसी भी आर्थिक इकाई (चाहे वह एक घर हो, या एक उद्योग हो, या राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था हो) का सचालित करने वाले सगठित सह-सम्बन्धो को बतलाना है। हम अपने आर्थिक सम्बन्धो का वर्णन प्राय करते ही रहते हैं, लेकिन जब हम इन सम्बन्धो को गणित के शब्दो मे व्यक्त करते हैं तो वे स्पष्ट या सुव्यक्त मॉडल (Explicit Model) होते हैं, अन्यथा शब्दो के माध्यम से विश्लेषण को हम उपलक्षित मॉडल (Implicit Model) कहते हैं।'

आर्थिक मॉडल हम अपने आर्थिक लक्ष्यो को प्राप्त करने के रास्ते बतलाते हैं। गुनार मिरडल के शब्दो म 'मॉडल द्वारा उन चीजो को सुव्यक्त रूप मे प्रस्तुत कर दिया जाता है जो प्राय अस्पष्ट और परस्पर विरोधी रहती है। मॉडल से हमारे चिन्तन म निखार आता है और हम बहुत सी उथली तथा धुँधली बातो म बच जाते है।"

मॉडलो की विश्वसनीयता इस बात पर निर्भरता करती है कि हम जिन मान्यताओ को लेकर चले हैं वे कहाँ तक वास्तविकता है। यदि हमारी मान्यताएँ अवास्तविक अथवा मनमानी हैं तो मॉडल गलत होगे। मॉडल विभिन्न मान्यताओ के आधार पर कई आर्थिक राशियो को स्थिर मान लेते हैं ताकि चल राशियाँ, जो समीकरण मे शामिल की जाती हैं, कम से कम रहे। मॉडल बनाने से पूर्व हम जो मान्यताएँ मानते हैं, वे प्राय इस प्रकार की होती हैं—(1) देश मे पूँजी की कमी नही है, (2) देश मे श्रम-शक्ति, साधन और तकनीक तथा पूँजी वाँछित मात्रा म उपलब्ध है, (3) श्रम पूर्ति स्थिर है, (4) उत्पादन और उत्पादकता बढ रही है, (5) लाभ-दर स्थिर है, (6) दीर्घकालीन पूँजी निपज अनुपात स्थिर है, (7) राज्य की मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियाँ तटस्थ हैं, (8) गैर आर्थिक तत्त्व विकास म बाधक नही है, (9) वास्तविक मजदूरी उत्पादकता-वृद्धि के साथ बढ रही है, आदि।

विकास मॉडलो से हमे पता चलता है कि विभिन्न विकास घटको के बीच क्या सह-सम्बन्ध हैं, अथवा क्या सह-सम्बन्ध होने चाहिएँ। उनसे हमे यह भी ज्ञात होता है कि विकास-लक्ष्यो को प्राप्त करने का सुगम मार्ग क्या है। यदि हम मॉडल

के घटकों के सह-सम्बन्धों के परिवर्तन की मात्रा का अनुमान लगा सके तो हम आवश्यक सुधार भी कर सकते है।

मॉडल विभिन्न प्रकार के होते हैं—यथा—अल्पकालीन और दीर्घकालीन मॉडल, वृहद प्रावैगिक आर्थिक विकास (Macro-dynamic Economic Growth Models), विश्लेषणात्मक, गणितीय तथा ऐकोनोमैट्रिक मॉडल (Descriptive, Mathematical and Econometric Models), लाइनियर तथा नॉन-लाइनियर मॉडल (Linear and Non-linear Models), बन्द एव खुले मॉडल (Closed and Open Models) आदि। नियोजन एव विकास मे तीन प्रकार के मॉडल मुख्य रूप से बनाए जाते हैं—समष्टि मॉडल (Aggregate Models), क्षेत्रीय मॉडल (Sector Models) एवं अन्तर-उद्योग मॉडल (Inter-Industry Models)। समष्टि या एकाग्र मॉडल सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था के लिए एक ही होते हैं। इनमे उत्पादन, उपभोग और विनियोजन को एकाग्र इकाई के रूप मे लिया जाता है और सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय मे वृद्धि की दरो का अनुमान लगाया जाता है। इन वृद्धि दरों को प्रभावित करने वाले तत्वो और विकास के सम्भावित पथों को आँका जाता है। क्षेत्रीय मॉडल अर्थ-व्यवस्था के क्षेत्रो के बारे मे बनाए जाते है, उदाहरणार्थ उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रो—कृषि, उद्योग, यातायात आदि के बारे मे। क्षेत्रीय मॉडल समष्टि अथवा एकाग्र मॉडलो के लघु रूप होते है और इन्ही के जोड़ से समष्टि मॉडल बनाए जाते हैं। अन्तर-उद्योग मॉडलो से अर्थ-व्यवस्था से अन्तर-क्षेत्रीय प्रभावो का अध्ययन किया जाता है।

विकास मॉडलो की अपनी सीमाएँ हैं। अत्यधिक साहसी अथवा काल्पनिक मान्यताओं पर आधारित मॉडल प्रायः गलत परिणाम देते हैं।

2 अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं की विशेषताएँ

(CHARACTERISTICS OF UNDER-DEVELOPED ECONOMIES)

"एक अर्द्ध-विकसित देश अफ्रीका के जिराफ की तरह है जिसका वर्णन करना कठिन है, किन्तु जब हम उसे देखते हैं तो समझ जाते हैं।"

—सिंगर

आधुनिक आर्थिक साहित्य में विश्व की अर्थ-व्यवस्थाओं को विकसित और अर्द्ध विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में वर्गीकरण करने का चलन-सा हो गया है। पूर्व प्रचलित शब्द अर्थात् 'पिछड़े हुए' (Backward) और 'उन्नत' (Advanced) के स्थान पर अर्द्ध-विकसित एवं विकसित शब्दों का प्रयोग श्रेष्ठ समझा जाने लगा है। 'पिछड़े हुए' शब्द की अपेक्षा 'अर्द्ध विकसित' शब्द वास्तव में अच्छे भी हैं, क्योंकि इसमें विकास की सम्भावना पर बल दिया गया है।

अर्थ व्यवस्था का विकास एक अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है। यह अनेक प्रकार के भौतिक और मानवीय घटकों के अन्तर्सम्बन्धों एवं व्यवहारों का परिणाम होता है। इसीलिए विकसित या अल्प-विकसित अथवा अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं का अन्तर स्पष्ट करना और उनके लक्षणों को सर्वमान्य रूप में ढूंढ पाना बहुत कठिन है।

विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं अथवा देशों के ज्ञान और परिभाषा के सम्बन्ध में प्रायः इतनी कठिनाई पैदा नहीं होती जितनी अर्द्ध-विकसित या अल्प विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं के सम्बन्ध में। विकास के अर्थ-शास्त्र में अर्द्ध-विकसित व्यवस्था की कोई ऐसी परिभाषा देना जिसमें इसके सब आवश्यक तत्त्व शामिल किए गए हों, अत्यन्त कठिन है। एच डब्लू सिंगर (H W Singer) का मत है कि अर्द्ध-विकसित देश की परिभाषा का कोई भी प्रयास समय और श्रम का अपव्यय है क्योंकि "एक अर्द्ध विकसित देश अफ्रीका के जिराफ की भाँति है जिसका वर्णन करना कठिन है, लेकिन जब हम उसे देखते हैं तो समझ जाते हैं।"

वस्तुत अर्द्ध-विकसित अवस्था एक तुलनात्मक व्यवस्था है। विभिन्न देशों मे उपस्थित विभिन्न समस्याओ और दशाओ के अनुसार विभिन्न अवसरो पर यह भिन्न अर्थो को सूचित करता है। अधिक जनसख्या वाले कई देश जनसख्या वृद्धि की उच्च दर के कारण अपने-आपको अर्द्ध-विकसित कहते है। कम जन-सख्या और साधनो के विकास की विशाल सम्भावनाओ वाले देश पूंजी की स्वल्पता को अर्द्ध-विकास का निर्णायक तत्त्व मानते है। परतन्त्र देश चाहे उनमे विदेशी शासन के अन्तर्गत पर्याप्त आर्थिक विकास हुआ हो, जब तक विदेशी शासन मे रहेगे अपने आपको अर्द्ध-विकसित कहेगे। इसी प्रकार किसी देश मे सामन्तवादी व्यवस्था की उपस्थिति 'अर्द्ध-विकसित' होने का पर्याप्त प्रमाण माना जाएगा चाहे इस प्रकार के कुछ समाजों मे लोगो को स्वीकृत न्यूनतम जीवन-स्तर उपलब्ध हो। वास्तव मे विश्व के मान-चित्र मे एक प्रतिनिधि अर्द्ध-विकसित देश को बता सकना कठिन कार्य है तथा यह इसलिए और भी कठिन है कि अर्द्ध-विकसित विश्व विभिन्न प्रकार क देशो का समूह है जिसमे स्वय मे विभिन्नताएँ पायी जाती है।

अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था का आशय और प्रमुख परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Under-developed Economy)

कोई देश अर्द्ध-विकसित है या विकसित है इसका निर्णय इस बात पर निर्भर करता है कि हम विकसित देश किसे मानते हैं या विकास का आधार किसे मानते है। प्रो० एस हरबर्ट फ्रेंकेल ने कहा है कि "एक देश आर्थिक दृष्टि से विकसित है या अर्द्ध-विकसित है यह उस विशिष्ट मापदड पर निर्भर करेगा जिसे व्यक्ति द्वारा विकास का आधार माना गया है। इस आधार की अनुपस्थिति या कम उपस्थिति अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था की सूचक होगी।" यही कारण हैं कि अर्द्ध-विकसित देशो की विभिन्न आधारो पर व्याख्या की जाती है। पाल हॉफ मेन ने एक अर्द्ध-विकसित देश का निम्न शब्दो मे चित्रण किया है,—

"प्रत्येक व्यक्ति जब किसी अर्द्ध-विकसित देश को देखता है तो उसे जान जाता है। यह एक ऐसा देश होता है जिसमे निर्धनता होती है, नगरो मे भिखारी होते हैं और ग्रामीण क्षेत्रो मे ग्रामीण जन-जीवन निर्वाह भर कर लेते है। यह एक ऐसा देश होता है जिसमे स्वयं के कारखाने नही होते है और बहुधा शक्ति और प्रकाश की अपर्याप्त पूर्ति होती है। इसमें बहुधा अपर्याप्त सडकें, रेले, सरकारी सेवाएँ और पिछड़े हुए सचार साधन होते हैं। इसमे थोड़े ही अस्पताल और उच्च शिक्षण संस्थाएँ होती हैं। इसके अधिकाँश लोग लिख और पढ नही सकते हैं। सामान्य जनता निर्धन होने पर भी इसमे कुछ व्यक्ति धनी होते हैं और विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। इसकी बैंकिंग प्रणाली अविकसित होती है छोटे-छोटे ऋण, ऋणदाताओ के द्वारा प्राप्त करने होते हैं जो शोषण करते है। अर्द्ध-विकसित देश का एक प्रमुख लक्षण यह होता है कि बहुधा इसके सब निर्यातो मे कच्चा माल, कच्चे खनिज, फल या कुछ रेशो का उत्पादन होते है जिनमे कुछ विलासितापूर्ण दस्तकारियाँ होती

है। बहुधा निर्यात किए जाने वाले इन पदार्थों का उत्पादन या उत्खनन विदेशी कम्पनियों के हाथों मे होना है।"

अर्द्ध-विकसित देश अथवा अर्द्ध विकसित अर्थ-व्यवस्था का चित्रण कुछ अन्य प्रमुख विद्वानों ने इस प्रकार किया है –

श्री पी टी बावर एव बी एस यामे के मतानुसार, "अर्द्ध-विकसित देश शब्द बहुधा मोटे रूप से उन देशो या प्रदेशो की ओर सकेत करते है जिनकी वास्तविक आय एव प्रति व्यक्ति पूँजी का स्तर उत्तरी अमेरिका, पश्चिमी यूरोप और ऑस्ट्रेलिया के स्तर से नीचा होता है।"[1]

इसी प्रकार की परिभाषा सयुक्त राष्ट्र सघ के एक प्रकाशन मे भी दी गई है जो इस प्रकार है—

"एक अर्द्ध-विकसित देश वह है जिसकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय, सयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और पश्चिमी यूरोपीय देशो की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की तुलना मे कम हो।"[2]

उपरोक्त परिभाषाओं के अनुसार जिन देशो की प्रति व्यक्ति आय उत्तरी अमेरिका, पश्चिमी यूरोप और आस्ट्रेलिया आदि देशो की प्रति व्यक्ति आय से कम होती है उन्हे अर्द्ध विकसित कहते है। ये परिभाषाएँ अर्द्ध-विकसित देश का एक अच्छा आधार प्रस्तुत करती है, किन्तु प्रति व्यक्ति आय ही किसी देश के विकसित और अविकसित होने का उचित मापदण्ड नही है। प्रति व्यक्ति आय विश्व मे सबसे ज्यादा रखने वाला कुवैत केवल इसी आधार पर विकसित नही कहला सकता है।

प्रो जे आर हिक्स के मतानुसार, "एक अर्द्ध-विकसित देश वह है जिसमे तकनीकी और मौद्रिक सीमाएँ व्यवहार मे उत्पत्ति और बचत के वास्तविक स्तर के बराबर नीची होती है जिसके कारण श्रम की प्रति इकाई (प्रति कार्य-शील व्यक्ति) पुरस्कार उससे कम होता है जो ज्ञात तकनीकी ज्ञान का ज्ञात साधनो पर उपयोग करने पर होता।"[3]

इस परिभाषा मे मुख्यत तकनीकी तत्त्वो पर ही अधिक जोर दिया गया है और इसमे प्राकृतिक साधन, जनसख्या आदि आर्थिक तथा अन्य अनार्थिक तत्त्वो पर जोर नही दिया गया है।

भारतीय योजना आयोग के अनुसार, "एक अर्द्ध-विकसित देश वह है जिसमे एक ओर अधिक या कम अश मे अप्रयुक्त मानव शक्ति और दूसरी ओर अशोषित प्राकृतिक साधनों का सह-अस्तित्व हो।"[4]

1 *Baner and Yame* · Economics of Under developed Countries p 3
2 *United Nations* Measures for the Economic Development of Under-developed Countries, p 3
3 *J R Hicks* · Contribution to the Theory of Trade Cycles
4 India's First Five Year Plan

यह परिभाषा इस आधार पर अधिक अच्छी है कि इसमे अशोषित साधनो को अर्द्ध-विकास का संकेत माना गया है जो अर्द्ध-विकसित देश का एक प्रमुख लक्षण होता है, किन्तु इसमे इस बात का स्पष्टीकरण नही मिलता कि ऐसा क्यो हुआ है। इसके अतिरिक्त यदि ये साधन पूँजी, साहस आदि की कमी के कारण अशोषित हैं तब तो ठीक है किन्तु यदि आर्थिक मदी आदि के कारण मानवीय या अन्य साधन अप्रयुक्त रहते हैं तो यह अनिवार्य रुप से अर्द्ध-विकसित देश की पहचान नही है।

प्रो जेकब वाइनर के मतानुसार, "एक अर्द्ध-विकसित देश वह है जिसमे अधिक पूँजी या अधिक श्रम-शक्ति या अधिक उपलब्ध साधनो या इनमे से सभी के उपयोग की अधिक सम्भावनाएँ होती हैं जिससे इसकी वर्तमान जनसख्या का उच्च जीवन-स्तर पर निर्वाह किया जा सके या यदि इस देश की प्रति व्यक्ति आय का स्तर पहले से ही ऊँचा हो तो जीवन स्तर को नीचा किए बिना ही अधिक जनसख्या का निर्वाह किया जा सके।"[1]

उपरोक्त परिभाषा का सार यह है कि अर्द्ध-विकसित देश वह होता है जहाँ आर्थिक विकास की अन्य समावनाएँ समाप्त नही हुई हो और जहाँ पर वर्तमान जनसख्या के जीवन स्तर को उच्च करने या वर्तमान जीवन स्तर पर अधिक जनसख्या का निर्वाह किए जाने की गुंजाइश हो। इस परिभाषा की एक अच्छी बात यह है कि इसमे इस बात पर बल दिया गया है कि ऐसे देशो मे साधनो का उपयोग करके जीवन स्तर को उच्च बनाया जा सकता है, किन्तु यह परिभाषा प्राकृतिक साधनो के पूँजी द्वारा प्रतिस्थापना को कम महत्त्व देती है जैसा कि जापान, हॉलैण्ड और स्विट्जरलैण्ड मे हुआ है। डॉ. आस्करलेन्गे के शब्दो मे, "एक अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था वह है जिसमे उपलब्ध पूँजीगत वस्तुओ का स्टॉक उत्पादन की आधुनिक तकनीक के आधार पर कुल उपलब्ध श्रम-शक्ति को नियोजित करने के लिए अपर्याप्त होता है।"

प्रो० नर्कसे ने भी उन देशो को अर्द्ध-विकसित देश बतलाया है जो प्रगतिशील देशो की तुलना मे अपनी जनसख्या और प्राकृतिक साधनो के सम्बन्ध मे कम पूँजी से सम्पन्न होते हैं।

डॉ० लेंगे और नर्कसे ने पूँजी की कमी पर ही जोर दिया है अत ये परिभाषाएँ एकाँगी होने के साथ-साथ विकास की सम्भावनाओ तथा सामाजिक और राजनीतिक दशाओ के महत्त्व के बारे मे कुछ नही बताती है जैसा कि स्वय प्रो० नर्कसे ने लिखा है—

"आर्थिक विकास का मानव व्यवहार, सामाजिक दृष्टिकोण, राजनीतिक दशाओ और ऐतिहासिक आकस्मिकताओ से गहरा सम्बन्ध है। पूँजी आवश्यक है, किन्तु यह प्रगति की पर्याप्त शर्त नही है।" अत: अर्द्ध-विकसित देशो की परिभाषा मे वहाँ की सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

1 *Jacob Viner* ; International Trade and Economic Development, p. 128.

श्री यूजीन स्टेनले ने अर्द्ध-विकसित देश की व्याख्या करते हुए बतलाया है कि "यह एक ऐसा देश होता है जिसमे जन-दरिद्रता व्याप्त होती है, जो किसी अस्थाई दुर्भाग्य का परिणाम नही होकर स्थाई होती है, जिसमे उत्पादन तकनीक पुरानी और सामाजिक सगठन अनुपयुक्त होता है, जिसका अर्थ यह है कि देश की निर्धनता पूर्णरूप से प्राकृतिक साधनो की कमी के कारण नही होती है और इसे अन्य देशो मे परीक्षित उपायो द्वारा कम किया जा सकता है।"[1]

श्री स्टेनले की उपरोक्त परिभाषा मे अर्द्ध-विकसित देश के कुछ लक्षणो की ओर सकेत किया गया है, किन्तु अर्द्ध-विकास की परिभाषा इन तीन लक्षणो के आधार पर पर्याप्त नही हो जाती। इस परिभाषा मे सामाजिक दशाओ पर भी आर्थिक विकास की निर्भरता स्वीकार की गई है।

वस्तुत प्रति व्यक्ति उत्पादन एक ओर प्राकृतिक साधनो और दूसरी ओर मानव व्यवहार पर निर्भर करता है। लगभग समान प्राकृतिक साधन होते हुए भी कई देशो की आर्थिक प्रगति मे अन्तर प्रतीत होता है। इसका एक प्रमुख कारण मानव व्यवहार का अन्तर है। श्री अल्फ्रेड बोने के अनुसार मानव व्यवहार विशेप रूप से जन-रुचि आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे एक बहुत महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। श्री डब्ल्यू० ए० लेविस ने भी इसी बात पर बल देते हुए लिखा है कि "जन उत्साह योजना के लिए स्निग्धता देने वाला तैल और आर्थिक विकास का पेट्रोल।" अत अर्द्ध-विकसित देशो की परिभाषा मे इस तत्त्व की भी अवहेलना नही की जानी चाहिए। इस सम्बन्ध मे डॉ० डी० एस० नाग की परिभाषा उचित जान पडती है जो इस प्रकार है —

"एक अर्द्ध-विकसित देश या प्रदेश वह होता है जिसमे इसकी वर्तमान जनसख्या को उच्च जीवन-स्तर पर निर्वाह करने या यदि जनसख्या बढ रही हो तो जनसख्या वृद्धि की दर से अधिक गति से जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए अधिक पूँजी, या अधिक श्रम शक्ति या अधिक उपलब्ध या सम्भाव्य प्राकृतिक साधनो या उनके सयुक्त उपयोग के लिए पर्याप्त सम्भावनाएँ हो और इसके लिए जनता मे उत्साह हो।"

'अर्द्ध-विकसित', 'अविकसित', 'निर्धन' और 'पिछडे हुए' देश
('Under-developed', 'Undeveloped', 'Poor' and 'Backward' Countries)

कभी-कभी इन सभी शब्दो को पर्यायवाची शब्द माना जाता है और अर्द्ध-विकसित देशो को 'अविकसित', 'निर्धन' और 'पिछडे हुए' आदि शब्दो से सबोधित किया जाता है। किन्तु आजकल इन शब्दो मे भेद किया जाता है और अर्द्ध-विकसित शब्द ही अधिक उपयुक्त माना जाने लगा है। अधिकाँश साम्राज्यवादी देशो के लेखको ने अपने उपनिवेशो के बारे मे लिखते हुए 'गरीब' या 'पिछडे हुए' शब्दो का प्रयोग किया है। बहुधा इन शब्दो से और जिस प्रकार इनका प्रयोग किया गया है यह निष्कर्ष

1 *Eugene Stanley* The Future of Under developed Countries, p 13

निकलता है कि ईश्वर ने विश्व को धनी और गरीब दो भागो मे विभाजित किया है, एक गरीब देश इसलिए गरीब है क्योकि इसके प्राकृतिक साधन कम है और उसे आर्थिक स्थिरता के उसी निम्न स्तर पर रहना है किन्तु अब यह नही माना जाता है कि इन निर्धन देशो के प्राकृतिक साधन भी कम हैं और यही इनकी निर्धनता का मुख्य कारण है। इसके अतिरिक्त 'निर्धनता' केवल देश की प्रति व्यक्ति निम्न आय को ही इगित करती है, अर्द्ध-विकसित देश की अन्य विशेषताओ को नही। इसीलिए 'निर्धन' एव 'पिछडे हुए' शब्दो का प्रयोग अलोकप्रिय हो गया है। इसी प्रकार 'Undeveloped' शब्द भी अर्द्ध-विकसित देश का समानार्थक माना जाता है, किन्तु दोनो मे भी यह स्पष्ट अन्तर किया जाता है कि अविकसित देश वह होता है जिसमे विकास की सम्भावनाएँ नही होती। इसके विपरीत अर्द्ध-विकसित देश वह होता है जिसमे विकास की पर्याप्त सम्भावनाएँ हो। अन्टार्कटिक, आर्कटिक और सहारा के प्रदेश अविकसित कहला सकते हैं क्योकि वर्तमान तकनीकी ज्ञान एव अन्य कारणो से इन प्रदेशो के विकास की सम्भावनाएँ सीमित हैं किन्तु भारत, पाकिस्तान, कोलम्बिया, युगांडा आदि अर्द्ध-विकसित देश कहलाएँगे क्योकि इन देशो मे विकास की पर्याप्त सम्भावनाएँ है। इसी प्रकार अविकसित शब्द स्थैतिक स्थिति का द्योतक है। वस्तुत किसी देश के बारे मे यह धारणा बना लेना कठिन है कि उस देश मे निरपेक्ष रूप मे साधनो की स्वल्पता है क्योकि साधनो की उपयोगिता तकनीकी ज्ञान के स्तर, माँग की दशाएँ और नई खोजो पर निर्भर करती है। वस्तुत इन देशो के प्राकृतिक साधन, तकनीकी ज्ञान और उपक्रम के इन साधनो पर उपयोग नही किए जाने के कारण अधिकाँश मे अविकसित दशा मे होते है पर इनके विकास की पर्याप्त सम्भावनाएँ होती हैं। सयुक्त राष्ट्रसघ की एक विशेष राय के अनुसार, "सब देश, चाहे उनके प्राकृतिक साधन कैसे ही हो, वर्तमान मे अपने इन साधनो से अधिक अच्छे उपयोग के द्वारा अपनी आय को बड़ी मात्रा मे बढा सकने की स्थिति मे है।"

अत 'अविकसित' शब्द के स्थान पर 'अर्द्ध-विकसित' शब्द का उपयोग किया जाने लगा है। ये अर्द्ध-विकसित देश आजकल आर्थिक विकास का प्रयत्न कर रहे है जिसके परिणामस्वरूप इन्हे 'विकासशील' (Developing) देश भी कहते है, किन्तु सामान्यतया इन सब शब्दो को लगभग समान अर्थ मे प्रयुक्त किया जाता है।

अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था की विशेषताएँ या लक्षण (Characteristics of Under-developed Economies)

अर्द्ध-विकसित विश्व विभिन्न प्रकार के देशो का समूह है। इन देशो की अर्थ-व्यवस्था मे विभिन्न प्रकार के अन्तर पाए जाते हैं। किन्तु इतना सब होते भी इन अर्द्ध-विकसित देशो मे एक आधारभूत समानता पायी जाती है। यद्यपि किसी एक देश को प्रतिनिधि अर्द्ध-विकसित देश की संज्ञा देना कठिन है, किन्तु फिर भी कुछ ऐसे सामान्य लक्षणो को बताना सम्भव है जो कई अर्द्ध-विकसित देशो मे आमतौर से पाए जाते हैं। यद्यपि ये सामान्य लक्षण सब अर्द्ध-विकसित देशो में समान अशो मे नही पाए जाते और न केवल ये ही अर्द्ध-विकसित देशों के लक्षण होते हैं, किन्तु ये

सब मिलकर एक अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था को बनाने मे समर्थ हैं। अर्द्ध-विकसित देशो के इन लक्षणो को मुख्यत. निम्नलिखित वर्गो मे विभाजित करके अध्ययन किया जा सकता है--

(अ) आर्थिक लक्षण
(ब) जनसख्या सम्बन्धी लक्षण
(स) सामाजिक विशेषताएँ
(द) तकनीकी विशेषताएँ
(इ) राजनीतिक विशेषताएँ

(अ) आर्थिक लक्षण (Economic Characteristics)

आर्थिक लक्षणो मे निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं--

1. अर्द्ध-विकसित प्राकृतिक साधन (Under-developed Natural Resources) —अर्द्ध-विकसित देशो का एक प्रमुख लक्षण इनके साधनो का अर्द्ध-विकसित होना है। इन देशो मे यद्यपि ये साधन पर्याप्त मात्रा मे होते है, किन्तु पूँजी और तकनीकी ज्ञान के अभाव तथा अन्य कारणो से इन साधनो का देश के विकास के लिए पर्याप्त और उचित विदोहन नहीं किया गया होता है। उदाहरणार्थ एशिया, अफ्रीका, लेटिन अमेरिका, आँस्ट्रेलिया एव द्वीप समूहो मे बहुत बडी मात्रा मे भूमि ससाधन अप्रयुक्त पडे हुए है। श्री केलोग (Kellog) के अनुसार, उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका तथा न्यूगायना, मेडागास्कर, बोर्नियो आदि द्वीपो की कम से कम 20% अप्रयुक्त भूमि कृषि योग्य है जिसका कृषि कार्यो मे उपयोग करके विश्व की कृषि भूमि मे एक बिलियन एकड अतिरिक्त भूमि की वृद्धि की जा सकती है। प्रो० बोन द्वारा हाल ही मे किए गए मध्यपूर्व के आठ देशो के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि इन देशों के कुल 118 मिलियन हैक्टेयर कृषि योग्य भूमि मे से केवल एक तिहाई से भी कम भूमि मे कृषि की जाती थी और 85 मिलियन एकड कृषि योग्य भूमि बेकार पडी हुई थी। श्री कालिन क्लार्क ने बतलाया है कि विश्व की वर्तमान कृषि योग्य भूमि से उपभोग और कृषि के डेनिश स्टेण्डर्ड के अनुसार 12,000 मिलियन व्यक्तियो का निर्वाह किया जा सकता है जबकि वर्तमान मे केवल 2,300 मिलियन लोगो का ही निर्वाह किया जा रहा है। स्पष्टत भूमि के ये अप्रयुक्त साधन अधिकाँश मे अर्द्ध-विकसित देशों मे ही है।

इसी प्रकार अर्द्ध-विकसित देशो मे खनिज एव शक्ति के साधनो की सम्पन्नता है, किन्तु यहाँ इनका विकास नही किया गया है। अकेले अफ्रीका मे विश्व की सभावित जल-शक्ति के 44% साधन हैं, किन्तु यह महाद्वीप केवल 0 1% जल साधनो का ही उपयोग कर रहा है। श्री बोयटिन्सकी और बोयटिन्सकी के ... एशिया, मध्य-अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका भी अपने जल-विद्युत साधनो के क्रमश केवल 13%, 5% और 3% भाग का ही उपयोग कर रहे है। इसी प्रकार ... मे ताँबा, टिन और सोने के तथा एशिया मे पेट्रोल, लोहा, टिन और बाक्साइट

के अपार भंडार हैं, किन्तु इनका भी पूरा विदोहन नहीं किया जा रहा है। इसी प्रकार बर्मा, थाइलैंड, इण्डोचीन तथा अफ्रीका, एशिया और लेटिन अमेरिकी देशों की वन सम्पत्ति का उपयोग नहीं किया गया है या साम्राज्यवादी शासकों द्वारा शासक देशों के हित के कारण दुरुपयोग किया गया है।

भारत में भी उसके खनिज सम्पत्ति, जल-साधन, भूमि-साधन और वन-साधन पर्याप्त मात्रा में हैं, किन्तु उनका पर्याप्त विकास और उचित विदोहन नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ भारत में विश्व में उपलब्ध लोहे का लगभग 25% अर्थात् 2,160 करोड़ टन लौह भण्डार होने का अनुमान है, किन्तु यहाँ लोहे का वार्षिक खनन लगभग 1 70 करोड टन से कुछ ही अधिक है। इसी प्रकार सन् 1951 तक देश में सिंचाई के लिए उपलब्ध जल का केवल 17% और कुल जल-प्रवाह का केवल 5 6% ही उपयोग में लाया जा रहा था तथा 31 मार्च, 1970 तक भी सिंचाई के लिए उपलब्ध जल का केवल 39% ही उपयोग में था। आँकड़ों में लें तो विभिन्न एजेंसियों द्वारा मोटे तौर पर लगाए गए अनुमानित आँकड़ों के अनुसार भारत की जल-क्षमता भूमि के ऊपर 1,67,300 करोड़ घन मीटर से लेकर 1,88,100 करोड़ मीटर है और भूमिगत जल-क्षमता 42,400 करोड़ घन मीटर के लगभग है। ...चाई आयोग ने सन् 1972 में उपयोग में लाए जाने वाले जल का अनुमान 87,000 करोड़ घन मीटर लगाया था। सन् 1950-51 में लगभग 17,250 करोड़ घन मीटर जल का उपयोग किया गया था जो मार्च, 1975 से बढ़कर 34,300 करोड़ घन मीटर के लगभग हो गया था। भारत में अब नदियों के पानी को सिंचाई की नहरों में डालने की सारी सम्भावनाएँ प्राय समाप्त हो चुकी हैं। इसलिए भविष्य में सिंचाई का विकास करने की योजनाओं का उद्देश्य बरसात के अतिरिक्त जल को बाँध बना कर संग्रहित करना है जिससे सूखे के दिनों उसका उपयोग किया जा सके, तथा छोटी सिंचाई कार्यक्रमों के अन्तर्गत भूमिगत जल के उपयोग का विकास करना है।[1]

2. कृषि की प्रधानता और उसकी निम्न उत्पादकता (Importance of Agriculture and its Low Productivity)—अर्द्ध-विकसित देशों में कृषि की प्रधानता होती है। उन्नत देशों में जितने लोग कृषि करते हैं, अर्द्ध-विकसित देशों में उससे प्राय. चार गुना अधिक लोग कृषि में लगे होते हैं। साधारणतया 65 से 85% तक लोग अपनी आजीविका के लिए कृषि और उससे सम्बन्धित उद्योगों पर आश्रित रहते हैं। हम भारत को ही लें तो यहाँ लगभग 70% लोग आज भी कृषि पर आश्रित हैं। अर्द्ध-विकसित देशों में राष्ट्रीय आय का लगभग आधा या इससे भी अधिक भाग कृषि से प्राप्त होता है। प्रमुख उत्पादन खाद्य-सामग्री और कच्चा माल रहता है। कृषि में इतना अधिक सकेन्द्रण वस्तुत पिछड़ेपन और दरिद्रता का चिह्न है।.प्रमुख व्यवसाय के रूप में भी कृषि अधिकतर अनुत्पादक है क्योंकि कृषि पुराने ढंग से और उत्पादन के अप्रचलित और पिछड़े हुए तरीकों से की जाती है जिससे

1 India 1976

पैदावार अनिश्चित रूप से कम रहती है और किसान प्राय गुजारे के स्तर पर जीवित रहते हैं। कृषि पर अत्यधिक भार होने से भूमि के पट्टे, उप विभाजन, उपखण्डन, अनार्थिक जोत, भूमिहीन ग्रामीण आदि की समस्याएँ उपस्थित रहती हैं। कृषि-साख की कमी रहने से कृषक प्राय ऋण-ग्रस्त होते हैं। अर्द्ध-विकसित देशों मे कृषि को 'मानसून का जुआ' कहा जाता है। ग्रम्वरिट, हल्ट एव किन्टर के शब्दो मे—"इन देशो मे कृषि का मानसून पर अत्यधिक निर्भर होने से आज के राजकुमार कल के भिखारी और आज के भिखारी कल के राजकुमार बन जाते हैं।"

अर्द्ध-विकसित देशो मे भूमि की उत्पादकता अत्यन्त कम रहने अर्थात् कृषि का लाभदायक व्यवसाय न बन पाने का अनुमान हम कतिपय विकसित देशो के मुकाबले भारत की स्थिति की तुलना द्वारा सरलता से लगा सकते हैं—

विभिन्न देशों में भूमि उत्पादिता, 1966–67

फसल	देश	प्रति हैक्टर भूमि उत्पादिता
		(00 किलोग्राम)
चावल (धान)	जापान	50 90
	अमेरिका	48 50
	सोवियत सघ	28 70
	भारत	12 90
कपास	सोवियत सघ	8 30
	अरब गणराज्य	5 90
	अमेरिका	5 40
	भारत	1 10
गेहूँ	इग्लैण्ड	38 40
	फ्रांस	28 30
	इटली	22 00
	भारत	8 90

यदि कुल राष्ट्रीय आय मे कृषि से प्राप्त आय का प्रतिशत लें तो स्थिति निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है—

देश	वर्ष	कुल राष्ट्रीय आय में कृषि से प्राप्त आय का प्रतिशत
1 कनाडा	1960	7 0
2 अमेरिका	1960	4 0
3. इग्लैण्ड	1960	4 0
4 भारत	1964	47 0

कृषि उत्पादन की मात्रा कम होने का एक बड़ा कुप्रभाव यह होता है कि बड़ी मात्रा मे छिपी बेरोजगारी बनी रहती है।

3. औद्योगीकरण का अभाव (Lack of Industrialisation)—इन अर्द्ध-विकसित देशो का एक प्रमुख लक्षण यह है कि इनमे आधुनिक ढंग के बड़े पैमाने के उद्योगो का अभाव रहता है। यद्यपि इन देशों मे उपभोक्ता वस्तुओ के उद्योग तो यत्र-तत्र स्थापित होने लगते हैं, किन्तु आधारभूत उद्योगों जैसे मशीन, यन्त्र, इस्पात आदि उद्योगों का लगभग अभाव रहता है और शेष उद्योगो के लिए भी ये मशीन आदि के लिए आयात पर निर्भर होते है। विकसित देशो में जबकि आधुनिक उद्योगो की बड़े पैमाने पर स्थापना होती है वहाँ ये देश मुख्यतः प्राथमिक उत्पादन मे ही लगे रहते हैं। कुछ अर्द्ध-विकसित देशों में इन प्राथमिक व्यवसायों का उदाहरण खान खोदना है। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व विश्व मे टिन उत्पादन मे महत्त्व के क्रम मे मलाया, इण्डोनेशिया, बोलेविया, श्याम और चीन थे और ये सभी देश अर्द्ध-विकसित हैं। एशिया और दक्षिणी अमेरिका महाद्वीपों में विश्व के 58% टंगस्टन और 44% ताँबे का उत्पादन होता है। एशिया और अफ्रीका मे विश्व का 52% मैंगनीज और 61% क्रोमाइट का उत्पादन होता है। एशिया महाद्वीप से विश्व के पेट्रोल का एक-तिहाई भाग और दक्षिणी अमेरिका से 16% प्राप्त होता है। इस प्रकार इन अर्द्ध-विकसित देशो में प्राथमिक व्यवसायो मे ही अधिकाँश जनसंख्या नियोजित रहती है और औद्योगिक उत्पादन का अभाव रहता है। अग्रांकित तालिका से आर्थिक विकास और औद्योगीकरण का घनात्मक सह-सम्बन्ध स्पष्ट होता है—

राष्ट्रीय आय में विभिन्न क्षेत्रों का योगदान[1]

प्रति व्यक्ति आय वर्ग	कुल राष्ट्रीय धन का प्रतिशत			
	प्राथमिक उत्पादन	उद्योग	सेवायें	कुल
125 डॉलर से कम आय वाले देश	47	19	33	100
125 से 249 डॉलर आय वाले देश	40	25	35	100
250 से 374 डॉलर आय वाले देश	30	26	45	100
375 या अधिक डॉलर आय वाले देश	27	28	46	100
अधिक आय वाले विकसित देश	13	49	30	100

आधुनिक युग मे किसी देश के औद्योगीकरण मे शक्ति के साधनो का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान होता है और प्रति व्यक्ति विद्युत शक्ति के उपयोग से भी किसी देश के औद्योगिक विकास का अनुमान लगाया जा सकता है। अर्द्ध-विकसित देशो मे प्रति व्यक्ति विद्युत शक्ति का उपभोग बहुत कम होता है जो इन देशो मे औद्योगीकरण के अभाव का प्रतीक है।

4. प्रति व्यक्ति आय का निम्न स्तर (Low level of Per Capita Income)—अर्द्ध-विकसित अथवा विकासमान देशों का एक प्रमुख लक्षण इनकी निर्धनता अथवा सामान्य दरिद्रता है जो प्रति व्यक्ति आय के निम्न स्तर मे झलकती है। इस दृष्टि से विकसित और अर्द्ध-विकसित देशों मे जमीन-आसमान का अन्तर

1. Source : U. N. World Economic Survey, 1961.

है। विकसित देशों में जहाँ समृद्धि इठलाती है वहाँ अर्द्ध विकसित देशों में निर्धनता का नग्न नृत्य होता है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के आँकड़ों के अनुसार सातवें दशक के शुरू में विकसित पूँजीवादी राज्यों में प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय 1,037 डॉलर और नवोदित स्वाधीन देशों में 83 डॉलर थी। इन आँकड़ों की तुलना करने से प्रकट होता है कि भूतपूर्व उपनिवेश और अर्द्ध-उपनिवेश अपने आर्थिक विकास में 12 गुना (1,037 83) पीछे हैं। 1964 में जेनेवा में वाणिज्य तथा विकास सम्बन्धी संयुक्त राष्ट्रसंघ के सम्मेलन में भाषण देते हुए कीनिया के प्रतिनिधि, वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री जे० जी० कियानो ने संकेत किया था कि "सैद्धान्तिक रिपोर्टों और अर्थशास्त्र-सम्बन्धी पाठ्यपुस्तकों में विकासमान देशों में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 30 डॉलर, 60 डॉलर, यहाँ तक कि 100 डॉलर बताई जाती है, परन्तु विकासमान देशों के लाखों लोग वस्तुत: जिन विषम परिस्थितियों का सामना कर रहे हैं वे इन आँकड़ों से प्रकट नहीं होती। उनमें बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी कोई आय नहीं है। वे नहीं जानते कि कल उन्हें खाना नसीब होगा या नहीं, अथवा रात में वे कहाँ सोएँगे। पाठ्यपुस्तकों में उद्धृत प्रति व्यक्ति आय में उनका कोई हिस्सा नहीं होता है।"[2] वक्ता ने यथार्थ का बिलकुल सच्चा चित्र प्रस्तुत किया है, जिससे वास्तविक विषमता की ओर ध्यान आकृष्ट होता है और जिस पर औसत आय सम्बन्धी आँकड़े आवरण डालते हैं।[3] विश्व बैंक के 1968 के एक सर्वेक्षण के अनुसार उस समय भारत का GNP 100 डॉलर था।

निम्न जीवन-स्तर और निम्न जीवन-आयु-स्तर (Low Standard of Living and Low Level of Life-age)—आर्थिक विषमता की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करने वाले अन्य आँकड़ों को ले तो भी पूँजीवादी दुनिया के अति विकसित औद्योगिक राज्यों से एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के पिछड़े देशों की भिन्नता स्पष्ट प्रकट होती है। यह पता चलता है कि अर्द्ध विकसित अथवा नवोदित स्वाधीन देशों में मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता भी भली प्रकार पूरी नहीं हो पाती। "एक मनुष्य की दैनिक आहार आवश्यकता 2,500 से 4,000 कैलोरी तक होती है, जो इस पर निर्भर करता है कि वह किस तरह काम करता है। औसत आवश्यकता 3,000 कैलोरी निश्चित की जा सकती है। आगे दी गई तालिका पर विचार करते समय इसे ध्यान में रखना होगा। आप देखेंगे कि भूतपूर्व उपनिवेशों तथा अर्द्ध-उपनिवेशों से सम्बन्धित आँकड़े हमेशा ही औसत आँकड़ा से और कई अवस्थाओं में

1. यू० बुकोव व अन्य तीसरी दुनिया, पृष्ठ 112
2. Proceeding of the United Nations Conference on Trade and Development, Geneva March 23—June 16 1964, Vol II, Policy Statements, p 251. ('तीसरी दुनिया' से उद्धृत)
3. यू० बुकोव एव अन्य तीसरी दुनिया, पृष्ठ 112

तो 2,200 कैलोरी की न्यूनतम सीमा से भी कम हैं, जो अपर्याप्त पोषण अर्थात् भुखमरी के द्योतक हैं।"

"इन आंकड़ो से केवल एक ही निचोड़ निकाला जा सकता है, वह यह कि भूतपूर्व उपनिवेशो और अर्द्ध-उपनिवेशो के निवासी अपौष्टिक भोजन ग्रहण करते है जिसका परिणाम उनके बीच व्याप्त कुपोषण तथा ऊँची मृत्यु-दर है। बेरीबेरी, सूखे का रोग, स्कर्वी, पिलैग्रा, क्वाशिओर्कोर आदि अनेक रोग सीधे अपौष्टिक भोजन तथा पौष्टिकता की कमी के फलस्वरूप होते हैं। मिसाल के लिए, मध्य पूर्व मे पाँच साल तक के बच्चो में से एक तिहाई इन्ही रोगो के शिकार होकर मरते हैं। अफ्रीका मे 6 महीने से 6 साल तक की उम्र के 96% बच्चो को प्रोटीन की कमी से पैदा होने वाली क्वाशिओर्कोर नामक बीमारी हो जाती है।"

सारांश रूप मे प्रति व्यक्ति निम्न आय लोगो के निम्न जीवन स्तर की सूचक है। अर्द्ध-विकसित देशो मे खाद्य पदार्थ उपभोग की प्रमुख वस्तु है जिस पर लोगो की आय का 65 से 70% तक खर्च होता है जबकि उन्नत देशो मे लगभग 20%। अर्द्ध-विकसित देशो की अधिकांश जनसख्या के भोजन मे माँस, अण्डा, मछली, दूध, मक्खन आदि पोषक खाद्य पदार्थ बिलकुल नही होते। लोग बडी अस्वास्थ्यप्रद परिस्थितियो मे रहते हैं और समुचित चिकित्सा सुविधाएँ भी उपलब्ध नही होती। वास्तव मे निर्धनता अर्द्ध-विकसित देशो का एक ऐसा रोग है जो उन्हे विभिन्न सकटो मे उलझाए रखता है। प्रो० कैरनक्रास ने ठीक ही लिखा है कि अर्द्ध-विकसित देश विश्व अर्थ-व्यवस्था की गदी बस्तियाँ है। प्रति व्यक्ति आय कम होने से ही अन्ततोगत्वा लोगो की कार्य-क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

खाद्य-खपत और जीवन-अवधि के दो महत्त्वपूर्ण सूचकों को लेकर विकसित पूँजीवादी राज्यो और पिछड़े देशो के बीच जो भारी अन्तर है, उसे सोवियत सघ की विज्ञान अकादमी के सदस्य यू० जूकोव एव उनके सहलेखको ने आगे दी गई दो तालिकाओ के आँकडो से बहुत अच्छी तरह स्पष्ट किया है—

सातवें दशक में कुछ देशों में खाद्य-खपत

(देश मे उत्पादित + आयातित खाद्य-पदार्थ : प्रति दिन प्रति व्यक्ति)

कैलोरी	देश	प्रोटीन (ग्राम)
3,510	न्यूजीलैण्ड	109
3,270	ग्रेट ब्रिटेन	89
3,140	ऑस्ट्रेलिया	90
3,100	सयुक्त राज्य अमेरिका	92
3,100	कनाडा	94
3,000	जर्मन सघात्मक गणराज्य	80

औसत आवश्यकता— 3,000 कैलोरी			औसत आवश्यकता— 80 ग्राम
	2,690	ब्राजील	65
	2 620	संयुक्त अरब गणराज्य	77
निम्नतम निरापद— 2,500 कैलोरी			
	2 490	वेनिजुएला	66
	2,330	सीरिया	78
2,200 कैलोरी— इससे नीचे अपर्याप्त पोषण की कैलोरी स्थिति आता है		देश	प्रोटीन (ग्राम)
	2,100	लीबिया	53
	2 050	पेरू	51
	2 040	भारत	53
	1,980	पाकिस्तान	44
	1,830	फिलिपाइन	43

सातवें दशक मे विकसित पूंजीवादी राज्यों और नवोदित स्वाधीन राज्यो मे तुलनात्मक (प्रति एक हजार आबादी के हिसाब से)

विकसित पूंजीवादी राज्य	
पश्चिमी यूरोप	7 8—12·5
उत्तरी अमेरिका	7 7— 8 4
जापान	7 3
ऑस्ट्रेलिया	8 6
स्वाधीनता प्राप्त उपनिवेश और अर्द्ध-उपनिवेश—	
एशिया	19— 24
अफ्रीका	25·6—33 3
लैटिन अमेरिका	6 7—17 0

सातवें दशक मे कुछ इलाकों मे औसत जीवन-अवधि	
उत्तरी अमेरिका	70–73
ऑस्ट्रेलिया	70–73
पश्चिमी यूरोप	68–70
लैटिन अमेरिका	50–55
एशिया	40–50
अफ्रीका	30–40

नोट : कुछ अफ्रीकी और लैटिन अमेरिकी देशों मे औसत जीवन-आयु उसी स्तर पर है, जिस पर प्राचीन रोम के समय मे थी—30 वर्ष।[1]

1. यू० जुकोव एवं अन्य · तीसरी दुनिया, पृष्ठ 114-115.

5. पूँजी की कमी (Deficiency of Capital)—अर्द्ध-विकसित देशों की अर्थ-व्यवस्थाएँ पूँजी मे निर्धन (Capital Poor) और कम बचत और विनियोग करने वाली (Low Saving and Low Investing) होती है। देश के साधनों के उचित उपयोग नही होने और साधनो के अविकसित होने के कारण पर्याप्त मात्रा मे उत्पादन के साधनो का सृजन नही हो पाता और साथ ही इसी कारण वहाँ की पूँजी की मात्रा वर्तमान तकनीकी ज्ञान के स्तर पर साधनो के उपयोग और आर्थिक विकास की आवश्यकताओ से बहुत कम होती है। किन्तु इन देशो मे न केवल पूँजी की ही कमी होती है अपितु पूँजी निर्माण की दर (Rate of Capital Format on) भी बहुत निम्न होती है। इन अर्द्ध-विकसित देशो मे आय का स्तर बहुत नीचा होता है अत बचत की मात्रा भी कम होती है। स्वाभाविक रूप से बचत की मात्रा कम होने का परिणाम कम विनियोग और कम पूँजी निर्माण होता है। इन अर्द्ध-विकसित देशो मे *उपभोग की प्रवृत्ति (Propenc.ty to Consume)* अधिक होती है और आर्थिक विकास के प्रयत्नो के फलस्वरूप आय मे जो वृद्धि होती है उसका अधिकांश भाग उपभोग पर व्यय कर दिया जाता है। बढी हुई आय मे से बचत की मात्रा नही बढने का एक कारण जैसा कि श्री नर्कसे ने बतलाया है प्रदर्शनात्मक प्रभाव (Demonstration effect) है जिसके अनुसार व्यक्ति अपने ... के पडोसी के जीवन-स्तर को अपनाने का प्रयास करते हैं। इसके साथ ही इन देशो मे जनसख्या मे वृद्धि होती रहती है। इन सब कारणो से उत्पादन के लिए उपलब्ध घरेलू बचतें बहुत कम होती है। डॉ ओन की गणना के अनुसार भारत के *ग्रामीण क्षेत्रो की 90% जनसख्या के पास व्यय के ऊपर आय का कोई आधिक्य* नही होता।

इस प्रकार अर्द्ध-विकसित देशो मे बचत की दर कम होती है जिससे विनियोग के लिए पूँजी प्राप्त नही होती। जो कुछ थोडी बहुत बचत होती है वह उच्च आय वाले वर्गो मे होती है जो इन्हे विदेशी प्रतिभूतियो मे विनियोजित करना चाहते हैं जिनमे जोखिम कम होती है। अर्द्ध-विकसित देशो को विनियोग की आवश्यकताओ की इस कमी को विदेशी पूँजी के द्वारा पूरा करने का प्रयास किया जाता है, किन्तु इन देशो की साख, भुगतान की योग्यता और राजनैतिक स्थिति इस दृष्टि से बहुत उत्साहवर्द्धक नही होती। अत. अर्द्ध-विकसित देशो मे पूँजी निर्माण की दर 5–6% होता है। इसके विपरीत विकसित देशो मे कुल राष्ट्रीय आय के 15 से 20% तक कुल विनियोग होता है। श्री कालिन क्लार्क के कुछ वर्षो पूर्व के एक अध्ययन के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और पश्चिमी यूरोप के देशो मे पूँजी निर्माण की दर 15 से 18%, स्वेडन मे 17%, नार्वे मे 25% थी जबकि यह भारत मे केवल 6% थी।

6. निर्यातों पर निर्भरता और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रतिकूलता—अर्द्ध-विकसित देशों का एक प्रमुख लक्षण निर्यातों पर उनकी अत्यधिक निर्भरता है। अधिकांश पिछड़े देशो से कच्चा माल भारी मात्रा में निर्यात किया जाता है।

यू० ज़ूकोव के अनुसार, "अधिकांश देश विश्व-मण्डियों मे अपनी कृषि उपज बेचते हैं और औद्योगिक माल खरीदते हैं।" सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के सदस्य यू ज़ूकोव और उनके सह-लेखकों ने अग्रिम तालिका मे 24 देशों के नाम सम्मिलित किए है जो उपनिवेश अथवा अर्द्ध उपनिवेश रह चुके है पर *आज स्वाधीन है अर्थात्* जो अर्द्ध विकसित देशों की पंक्तियो मे है। इनमे से प्रत्येक के सामने ऐसी वस्तु का उत्पादन सम्बन्धी आँकड़ा प्रस्तुत किया गया है, जिसका उसकी अर्थ-व्यवस्था मे विशेष महत्त्व है। देश के निर्यात तथा राष्ट्रीय आय मे भी उसका हिस्सा दिखाया गया है। इन आँकडो से यह पुष्टि होती है कि इन देशो का आर्थिक ढाँचा अधिकांशत एक ही फसल पैदा करने वाला एकांगी है। साथ ही इन आँकडो से तीसरी दुनिया के अर्द्ध-विकसित देशो तथा औद्योगिक दृष्टि से समृद्ध विकसित पूंजीवाद देशो के बीच वर्तमान सम्बन्धो के आर्थिक ढांचे के एक पहलू पर भी प्रकाश पडता है और हमे पता चलता है कि दोनो को पृथक करने वाली आर्थिक खाई चौडी होती जा रही है।

विकासमान देशो की अर्थ-व्यवस्था और निर्यात का एकांगी विशेषीकरण[1]

देश	मुख्य पैदावार और निर्यात	निर्यात से प्राप्ति, प्रतिशत मे	
		कुल निर्यात से हुई प्राप्ति का भाग	कुल राष्ट्रीय आय का भाग
कुवैत	खनिज तेल	99	97
इराक	खनिज तेल	99	40
सेनेगाल	मूंगफली	92	—
वेनेजुएला	खनिज तेल	91	55
सऊदी अरब	खनिज तेल	90	83
नाइजीरिया	मूंगफली	87	—
ईरान	खनिज तेल	85	33
कोलम्बिया	काफी	74	29
बर्मा	चावल	74	26
हेटी	काफी	77	25
साल्वेडोर	कॉफी	73	—
ग्वाटेमाला	काफी	73	25
मिस्र	कपास	70	18
पनामा	केला	67	12
श्रीलंका	चाय	66	41
घाना	कोकोआ	66	40
चिली	ताम्बा	63	20
मलाया	रबड	62	40
लाइबेरिया	रबड	62	—
ब्राजील	कॉफी	62	12
पाकिस्तान	जूट	58	9
उरुग्वे	ऊन	58	9
बोलीविया	टीन	57	29
इक्वेडोर	केला	56	25

1 यू ज़ूकोव एव अन्य तीसरी दुनिया, पृष्ठ 120-121

जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सवाल है, गैर-समाजवादी दुनिया के विदेश व्यापार मे विकासमान देशो का हिस्सा 1953 के 28% प्रतिशत से गिरकर 1966 मे 21% रह गया था। इस बीच इनका कर्ज बढ़ता जा रहा है और उनकी स्वर्ण तथा मुद्रानिधि कम होती जा रही है।

यू० जुकोव ने अपने अध्ययन मे आगे लिखा है—"1964 मे जेनेवा में हुए वाणिज्य एवं विकास सम्बन्धी संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मेलन ने 1970 के पूर्वानुमान सहित कुछ दस्तावेजे प्रचारित की थी। अन्य बातो के साथ-साथ उनमे यह चेतावनी भी दी गई थी कि 1970 तक विकासमान देशो के निर्यात का मूल्य आयात के मूल्य की अपेक्षा 9 अरब से 13 अरब डॉलर कम होगा। इसके अलावा उन्हें ऋण को निबटाने, कर्ज का ब्याज चुकाने तथा विदेशी कम्पनियो को प्राप्त होने वाले मुनाफे तथा लाभांश की रकम को अदा करने के लिए करीब 8 अरब डॉलर की और जरूरत पड़ेगी। इस हिसाब को लगाने वालो ने सुझाव दिया था कि तीसरी दुनिया के बकाए मे जो भारी कमी है, उसकी पूर्ति अंशत नूतन विदेशी पूंजी-निवेश और सरकारी ऋणो से की जा सकती है। यह आशा प्रकट करते हुए वे स्पष्टत: काफी आशावादी थे, क्योकि उनके अनुसार इन साधनो से होने वाली प्राप्तियां 12 अरब डॉलर तक पहुँच सकती है। यदि उनका तखमीना ठीक साबित हो, तो भी 5 अरब से 9 अरब डॉलर तक की कमी बनी रहेगी। परन्तु इससे भी अधिक निराशाजनक पूर्वानुमान लगाया गया है, संयुक्त राष्ट्र संघ के कुछ विशेषज्ञो के मतानुसार 1975 तक विकासमान देशो को केवल अपने आयात के भुगतान के लिए शायद दसियो अरब डॉलर की कमी का सामना करना पड सकता है।"[1]

निर्यातो पर निर्भरता सामान्यत हानिकारक नही है, लेकिन इसके दुष्प्रभाव उस समय प्रकट होते हैं जबकि अर्द्ध-विकसित देश एक, दो या कम वस्तुओ का ही निर्यात करते है। अर्द्ध-विकसित देशो की निर्यातो पर मुख्य रूप से एक दो पदार्थों पर निर्भरता से इनकी अर्थ-व्यवस्था एकाँगी हो जाती है और देश का सन्तुलित आर्थिक विकास नही हो पाता। विदेशी माँग की कमी होने पर देश की आर्थिक स्थिति विषम हो जाती है। इन अर्द्ध-विकसित देशो मे विदेशी व्यापार की निर्भरता का एक कुप्रभाव यह हुआ है कि इन उपनिवेशो में विदेशी पूँजी की मात्रा में वृद्धि हुई है जिसने इन देशो के हित के लिए ही नही, अपितु विदेशी हितो के लिए भी कार्य किया है।

7. बेरोजगारी और अर्द्ध-बेरोजगारी (Unemployment and Under-employment)—कई अर्द्ध-विकसित देश बहु-जनसख्या वाले हैं और जनसंख्या वृद्धि की दर भी इनमे अपेक्षाकृत अधिक होती है। दूसरी ओर, इनके साधन अविकसित एवं अपर्याप्त होते हैं। परिणामस्वरूप इन देशो मे बहुत से व्यक्तियो को उपयुक्त कार्य नही मिल पाता और वे बेरोजगार तथा अर्द्ध-बेरोजगार होते हैं। बावर

1. Ibid, p 121-122

एच यामे के अनुसार, "अकुशल श्रमिकों का व्यापक बेरोजगारी और अर्द्ध-बेरोजगारी पिछड़ी हुई अर्थ-व्यवस्थाओं की एक उल्लेखनीय विशेषता होती है। कई व्यक्ति अनियोजित या अर्द्ध-नियोजित केवल इसलिए नहीं होते कि वे कार्य करना पसन्द नहीं करते, बल्कि इसलिए कि उन्हें कार्य में लगाने के लिए आवश्यक सहयोगी उत्पादन के साधन अपर्याप्त होते हैं।" इन देशों में भूमि पर जनसंख्या का भार अधिक होने के कारण जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी होती है वहाँ छिपी हुई बेरोजगारी (*Disguised Employment*) भी होती है, इसका आशय है, भूमि पर आवश्यकता से अधिक आदमी कार्यरत रहते हैं।

यद्यपि विकसित देशों में भी बेरोजगारी होती है, किन्तु उसकी प्रकृति भिन्न होती है। वहाँ चक्रीय (*Cyclical*) बेरोजगारी होती है *क्योंकि प्रभावपूर्ण माँग की* कमी होती है, किन्तु अर्द्ध-विकसित देशों में बेरोजगारी का स्वरूप संरचनात्मक होता है क्योंकि देश की श्रम शक्ति के पूर्ण उपयोग के लिए पूँजी आदि साधनों का अभाव होता है किन्तु बावर और यामे का मत है—"छिपी हुई बेरोजगारी और अर्द्ध-बेरोजगारी सब अर्द्ध-विकसित देशों का सामान्य लक्षण नहीं है।" उदाहरणार्थ, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका के कई अर्द्ध विकसित देश अधिक जनसंख्या या बेरोजगारी की समस्याओं से ग्रस्त नहीं हैं।

8. आर्थिक कुचक्रों की उपस्थिति (Presence of Vicious Circles)—अर्द्ध-विकसित देशों में आर्थिक कुचक्रों के प्रभाव के कारण एक देश निर्धन है क्योंकि वह निर्धन है' (A country is poor because it is poor) वाली श्री नर्क्से की उक्ति चरितार्थ होती है। इन देशों में अर्द्ध-विकसित साधनों, पूँजी का अभाव, बाजार की अपूर्णताएँ, तकनीकी ज्ञान का निम्न स्तर होने के कारण अर्थ-व्यवस्था की उत्पादकता (Productivity) कम होती है। कम उत्पादकता के कारण आय का स्तर नीचा होता है। जिससे बचत दर और परिणामस्वरूप विनियोग दर कम होती है। फलस्वरूप उत्पादकता भी कम होती है और इसी प्रकार यह क्रम चलता रहता है।

9. बाजार की अपूर्णताएँ (Imperfections of the Market)—डॉ डी एस नाग के अनुसार, "आर्थिक गत्यात्मकता में साधनों के अनुकूलतम आवंटन और राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में अधिकतम उत्पादक क्षमता प्राप्त करने की प्रवृत्ति होती है""""किन्तु *स्थिर अर्थ-व्यवस्था में कई बाजार की अपूर्णताएँ* इसे 'उत्पादन सीमा' (Production Frontier) की ओर बढ़ने से रोकती हैं।" निर्धन देश इस दृष्टिकोण से स्थिर अर्थ-व्यवस्था वाले होते हैं। जाति, धर्म, स्वभाव, प्रवृत्तियों की भिन्नता, निर्धनता, अशिक्षा, यातायात के साधनों का अभाव आदि श्रम की गतिशीलता में बाधा पहुँचाते हैं। इसी प्रकार पूंजी की गतिशीलता भी कम होती है। अर्द्ध विकसित देशों में साधनों की इस गतिहीनता के अतिरिक्त एकाधिकारिक प्रवृत्तियाँ, देश-विदेश के बाजारों का ज्ञान नहीं होना, बेलोच आर्थिक ढाँचा, विशिष्टीकरण का अभाव, पिछड़ी हुई समाज व्यवस्था आदि के कारण साधनों का सन्तुलित और उचित

आवंटन नहीं हो पाता है। अर्थ-व्यवस्था गतिहीन होती है जिससे इसके विभिन्न क्षेत्र के मूल्य *आय के प्रति संवेदनशील नहीं होते।* इस प्रकार *साधनों का असन्तुलित* संयोग, अर्द्ध-विकसित देशों के अर्द्ध-विकास का कारण होता है।

10. आर्थिक विषमता (Economic Disparities)—अर्द्ध-विकसित देशों मे व्यापक रूप मे धन और आय की विषमता तथा उन्नति के अवसरों की असमानता पायी जाती है। देश की अधिकांश सम्पत्ति, आय और उत्पत्ति के साधनो पर एक छोटे से समृद्ध वर्ग का अधिकार होता है जबकि देश के बहुत बड़े निर्धन वर्ग को आय का थोड़ा सा भाग प्राप्त होता है। इसी प्रकार प्रगति के अवसर भी योग्यता की अपेक्षा जाति और आर्थिक क्षमता पर निर्भर करते हैं। धनिक वर्ग में बचत क्षमता अधिक होती है जिसके द्वारा और अधिक धन कमाने के साधन इनके हाथ मे आते जाते हैं। निर्धन वर्ग को लाभ पहुँचाने वाले कार्यों जैसे, सामाजिक सुरक्षा, समाज सेवाओ, श्रम-सघो, प्रगतिशील करारोपण आदि संस्थाएँ अधिक विकसित नही होती हैं। परिणामस्वरूप, इन निर्धन देशों मे धनी देशो की अपेक्षा व्यापक आर्थिक विषमता पायी जाती है। प्रो. साइमन कुजनेट्स के अग्रांकित अनुमान इस तथ्य के परिचायक है—

देश	सम्पूर्ण आय का जनसख्या के 20% धनिक वर्ग को प्राप्त होने वाला प्रतिशत	सम्पूर्ण आय का जनसख्या के 70% निर्धन वर्ग को प्राप्त होने वाला प्रतिशत
विकसित देश		
सयुक्त राष्ट्र अमेरिका	44	34
ब्रिटेन	45	35
अर्द्ध-विकसित देश		
भारत	55	28
श्रीलका	50	30

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि विकसित देशो की अपेक्षा अर्द्ध-विकसित देशो मे आर्थिक असमानता अधिक है। प्रो महालनोबीस रिपोर्ट के अनुसार सन् 1955–56 मे देश के 50% लोगों के पास देश की कुल आय का 20% भाग था और इसमे भी सर्वोच्च वर्ग के 1% व्यक्तियो को 11% आय प्राप्त होती थी। इसके विपरीत सबसे निम्न वर्ग के 25% लोगो को समस्त आय का केवल 10% भाग प्राप्त होता था।

(द) जनसंख्या सम्बन्धी लक्षण (Demographic Characteristics)

समस्त अर्द्ध-विकसित देशो मे जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताएँ समान नही पायी जातीं। ये देश जनसंख्या के घनत्व, आयु संरचना और जनसंख्या मे परिवर्तन की दर में भी भिन्नता रखते हैं। बावर एवं यामे के अनुसार भारत और पाकिस्तान मे सन् 1800 के पश्चात् जनसख्या वृद्धि की दर कई पश्चिमी देशों की जनसख्या वृद्धि

की दरो से भिन्न नही रही है। इसके अतिरिक्त अधिक जनसख्या वाले देशो की जनसख्या वृद्धि की दर ही सर्वाधिक हो, ऐसी बात नही है। फिर भी अर्द्ध-विकसित देशो की जनसख्या सम्बन्धी निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ हैं—

1. जनसख्या की अधिकता (Over Population)—कई अर्द्ध-विकसित देशो की जनसख्या अधिक होती है। यद्यपि इन अधिक जनसख्या वाले देशो के लिए भी निरपेक्ष (Absolute) रूप मे अधिक आबादी वाले देश कहना उचित नही है, क्योकि जनसख्या की अधिकता या न्यूनता (Over population or under population) को उस देश के प्राकृतिक साधनो के सन्दर्भ मे देखना चाहिए। इसके अतिरिक्त सभी अर्द्ध विकसित देश जनसख्या की समस्या से ग्रसित नही है। लेटिन अमेरिका और आस्ट्रेलिया कम जनसख्या (Under-Population) वाले देश है। अफ्रीका महाद्वीप भी तकनीकी ज्ञान के वर्तमान स्तर पर कम जनसख्या वाला क्षेत्र ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार भारत आदि कुछ देशो मे अधिक जनसख्या हो सकती है, किन्तु समस्त अर्द्ध-विकसित देश अधिक जनसख्या के भार से ग्रस्त नही हैं।

2. जनसख्या वृद्धि की उच्च दर (High rate of population growth)—अर्द्ध विकसित देशो मे जनसख्या वृद्धि की दर भी अधिक है। इकाफे क्षेत्र के 17 देशो मे से 8 देशो मे जनसख्या वृद्धि की दर 2% और 3% के मध्य है और कुछ देशो की इससे भी अधिक है। लेटिन अमेरिका मे भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति पायी जाती है। इसके विपरीत विकसित देशो मे जनसख्या वृद्धि की दर कम है। अर्द्ध-विकसित देशो मे जनसख्या वृद्धि की उच्च दरो का कारण जन्म-दर का ऊँची होना और मृत्यु दर का कम होना है।

3. जीवनावधि की अल्पता (Low life Longevity)—जीवनावधि का आशय देशवासियो की औसत आयु है। अर्द्ध विकसित देशो मे आय की कमी के कारण जीवन-स्तर नीचा होता है और निर्धनता तथा आर्थिक विषमताओ की अधिकता के कारण औसत आयु कम होती है। वस्तुत प्रति व्यक्ति आय और जीवनावधि मे सकारात्मक सह-सम्बन्ध होता है, यही कारण है कि जहाँ विकसित देशो मे लोग अधिक समय तक जीवित रहते हैं, वहाँ अर्द्ध-विकसित देशो मे औसत आयु बहुत कम होती है। अर्द्ध-विकसित देशो मे जीवनावधि कम होने का परिणाम है—धनी देशो की अपेक्षा इन देशो मे अधिक व्यक्ति छोटी आयु मे मर जाते हैं एव इस प्रकार कार्य करने की अवधि भी कम ही होती है।

4. आयु वितरण (Age distribution)—अर्द्ध विकसित देशो की जनसख्या मे कम उम्र वाले लोगो का अनुपात अपेक्षाकृत अधिक होता है और इनमे बालको की सख्या अधिक होती है। एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिकी देशो मे जो अर्द्ध-विकसित क्षेत्र हैं 15 वर्ष से कम आयु वाली सख्या कुल जनसख्या का 40% है जबकि सयुक्तराज्य अमेरिका और इग्लैण्ड आदि मे यह अनुपात केवल 23 से 25% तक है। इस प्रकार इन देशो मे अनुत्पादक उपभोक्ताओ का भाग अधिक होता है।

5. सक्रिय जनसंख्या का भाग कम होना (Less active population)—अर्द्ध-विकसित देशों की जनसंख्या में बालकों का अनुपात अधिक होने के कारण सक्रिय जनसंख्या का भाग कम होता है। यहाँ कार्य में करने वाले आश्रितों का भाग अधिक होता है। बालकों और अनुत्पादक व्यक्तियों का अनुपात अधिक होने के कारण उनके जन्म, पालन-पोषण आदि पर अधिक व्यय होता है और अर्थ-व्यवस्था पर बोझ बढ़ जाता है। भारत में सन् 1961 में 14 वर्ष तक का आयु-वर्ग जनसंख्या का 41% था, जबकि जर्मनी में 21% और फ्रांस में 24·7 प्रतिशत था।

6. ग्रामीण क्षेत्र की प्रधानता (Pre-dominance of Rural Sector)—अर्द्ध-विकसित देशों में ग्रामीण क्षेत्र की प्रधानता रहती है। इन देशों की अधिकाँश जनता ग्रामों में निवास करती है और ग्रामीण व्यवसायों जैसे कृषि, वन, मत्स्य पालन आदि से जीविका निर्वाह करती है। आर्थिक विकास के साथ-साथ इस स्थिति में परिवर्तन होता है। प्रति-व्यक्ति आय की वृद्धि के अनुपात में खाद्यान्नों की माँग में वृद्धि नहीं होती और दूसरी ओर कृषि में पूँजी के अधिक उपयोग के कारण गहन और विस्तृत दोनों प्रकार की कृषि-प्रणालियों द्वारा कृषि-उत्पादन बढ़ता है। परिणामस्वरूप, कृषि एवं ग्रामीण व्यवसायों में जनसंख्या का अनुपात कम होता जाता है और दूसरी ओर औद्योगीकरण के कारण बड़े-बड़े नगरों का विकास होता है और शहरी जनसंख्या का प्रतिशत बढ़ता जाता है।

(स) सामाजिक विशेषताएँ (Social Characteristics)

अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में आर्थिक विकास की दृष्टि से पाए जाने वाली मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. अर्द्ध-विकसित मानव पूँजी (Under-developed human capital)—आर्थिक विकास में मानव पूँजी का निर्धारक महत्त्व है। विकसित मानवीय पूँजी अर्थात् स्वस्थ, शिक्षित, कुशल एवं नैतिकता सम्पन्न देशवासी आर्थिक विकास में बहुत सहायक होते हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश अर्द्ध-विकसित देशों में यह मानव पूँजी भी अर्द्ध-विकसित ही होती है। देश में वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा का तथा कुशल श्रमिकों का अभाव होता है। स्वास्थ्य का स्तर भी प्राय. नीचा होता है। लोगों में विवेकपूर्ण विचारधारा का भी अभाव होता है। इसके अतिरिक्त धनाभाव के कारण लोगों के विकास के लिए अधिक पूँजी लगाना सम्भव नहीं होता। उदाहरणार्थ, भारत में जहाँ वैज्ञानिक अनुसंधान पर प्रति व्यक्ति लगभग 15 पैसे वार्षिक व्यय किया जाता है वहाँ अमेरिका और रूस में यह व्यय-राशि क्रमशः लगभग 154 रुपये और 110 रुपये है।

2. अन्य सामाजिक विशेषताएँ—अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाएँ अनेक सामाजिक दोषों से ग्रस्त होती हैं। प्रायः समाज विभिन्न वर्गों में विभाजित होता है और ये वर्ग अपने-अपने रूढ़िगत परम्पराओं पर आचरण करते हैं तथा नवीन प्रयत्नों को सरलता से एवं प्रसन्नतापूर्वक अपनाने को तैयार नहीं होते। समाज में गहनों का

प्रयोग लोकप्रियता के लिए होता है। स्त्रियों के अतिरिक्त पुरुष भी गहने पहिनना पसन्द करते हैं। रीति रिवाज बहुत महँगे होते हैं जिन्हें निभाने में आय का बड़ा अंश व्यय करना पड़ता है। फलस्वरूप बचत की मात्रा कम हो जाती है और पूँजी का निर्माण नहीं हो पाता। स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा गौण स्थान प्राप्त होता है। उनकी जाति पर तरह-तरह के अंकुश होते हैं। आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े रहने के कारण स्त्रियाँ समाज के उत्थान में सहायक नहीं हो पाती। सामाजिक स्तर (Status) का भी विशेष महत्त्व होता है। मजदूरी आदि के निर्धारण में संविदा की अपेक्षा परम्पराओं का प्रभाव अधिक पड़ता है। इन सब बातों का मिला कर यह प्रभाव होता है कि अर्द्ध विकसित देश की अर्थ-व्यवस्था तेजी से आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर नहीं हो पाती।

(द) तकनीकी विशेषताएँ
(Technological Characteristics)

अर्द्ध विकसित अर्थव्यवस्थाओं में उत्पादन की प्राचीन परम्परागत विधि का उपयोग किया जाता है। फलस्वरूप प्रति व्यक्ति उत्पादन विकसित राष्ट्रों की अपेक्षा बहुत कम रहता है। तकनीकी और सामान्य दोनों ही प्रकार की शिक्षा का अभाव होने के कारण अर्द्ध विकसित देशों में विकसित देशों की अपेक्षा उत्पादन में बहुत अधिक पिछड़ापन रहता है। परिवहन और संचार साधनों का अभाव भी अर्थ-व्यवस्था को पीछे धकेलता रहता है। प्राविधिक ज्ञान के अभाव के कारण अकुशल श्रमिकों की संख्या अधिक होती है और इसलिए आर्थिक विकास के लिए प्रयत्नशील अर्द्ध विकसित देशों को तकनीकी ज्ञान प्राप्त करने के लिए विकसित देशों का मुँह देखना पड़ता है। वास्तव में, प्राविधिक प्रगति और आर्थिक विकास एक दूसरे के कारण और परिणाम हैं। अर्द्ध विकसित देशों में जहाँ तकनीकी प्रगति के कारण द्रुत आर्थिक विकास नहीं हो पाता वहाँ अपर्याप्त आर्थिक साधनों के कारण तकनीकी प्रगति के लिए अधिक प्रयास करना भी सम्भव नहीं हो पाता।

(इ) राजनीतिक विशेषताएँ
(Political Features)

राजनीतिक क्षेत्र में अर्द्ध विकसित राष्ट्रों की स्थिति प्रायः बड़ी दयनीय होती है। ये राष्ट्र राजनीतिक दृष्टि से प्रायः कमजोर होते हैं और उन पर अन्य देशों के दबाव अथवा आक्रमण का सदैव भय बना रहता है। समुचित साधन उपलब्ध न होने के कारण देश की रक्षार्थ आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित सैनिक शक्ति का अभाव भी बहुत कष्टप्रद होता है। जनता गरीब होने के कारण अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में ही लगी रहती है और राजनीतिक अधिकारों के प्रति विशेष सजग नहीं होती। अधिकांश व्यक्तियों में यथार्थ रूप में राजनीतिक अधिकारों के बारे में अज्ञानता ही पायी जाती है। अर्द्ध विकसित देशों में प्रथम तो मध्यम वर्ग का अभाव पाया जाता है और यदि यह वर्ग होता भी है तो सामान्यतः बहुत निर्बल होता है। प्रायः विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में मध्यम वर्ग के इस अभाव की समस्या नहीं होती।

आर्थिक विकास की दृष्टि से यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि अधिकांशत. मध्यम वर्ग से ही साहसी, कुशल प्रशासक और योग्य व्यक्ति प्राप्त होते हैं।

(ई) अन्य विशेषताएँ
(Other Characteristics)

अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं की अन्य उल्लेखनीय विशेषताओं में हम योग्य प्रशासन के अभाव, उत्पत्ति के साधनो मे असमानता, स्थिर व्यावसायिक ढाँचे, दोषपूर्ण प्राशुल्किक व मौद्रिक सगठन आदि को ले सकते है। इन देशो मे जो प्रशासनिक यन्त्र होता है वह प्राय कुशल और योग्य नही होता। अधिकारीगण व्यक्तिगत स्वार्थों को ऊँचा स्थान देते हैं। ईमानदार अधिकारियो के अभाव मे आर्थिक विकास के साधनो का दुरुपयोग होता है और राष्ट्र की प्रगति अवरुद्ध होती है।

उत्पत्ति के साधनो मे असमानता होते से आशानुकूल उत्पादन सम्भव नही होता। *विकासशील अर्थ-व्यवस्थाओं के विपरीत अर्द्ध-विकसित देशो मे* उत्पत्ति के साधनो मे वाँछित गतिशीलता नही पाया जाती। फलस्वरूप राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था मे अधिकतम उत्पादन सम्भव नहीं हो पाता। अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ का व्यावसायिक ढाँचा प्रायः स्थिर रहता है। इस कारण भी उत्पत्ति के साधनो मे गतिशीलता नही पायी जाती। परिणामत न तो उद्योगो मे विशिष्टीकरण ही हो पाता है और न देश आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर होता है।

ऐसी अर्थ-व्यवस्थाओ मे प्राशुल्किक और मौद्रिक सगठन प्राय दोषपूर्ण होता है। राजस्व प्राय अप्रत्यक्ष करो के माध्यम से प्राप्त होता है जिनकी प्रकृति अधोगामी (Regressive) होती है। *आय के साधन के रूप मे प्रत्यक्ष करो का* महत्त्व कम होता है। प्रगतिशील कर प्राय नही पाए जाते। कर-सग्रह-विधि मितव्ययी नही होती और कर अपवचन भी बहुत कम होता है। मुद्रा बाजार प्राय अविकसित होते है। सरकारी मौद्रिक नीति परिस्थितिवश प्रायः इतनी दुर्बल होती है कि देश की अर्थ-व्यवस्था को समुचित ढग से नियन्त्रित नही कर पाती।

निष्कर्षत हम यही कह सकते है कि प्राय उपरोक्त सभी विशेषताएँ अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ मे न्यूनाधिक मात्रा मे पायी जाती है। विश्व के समस्त अर्द्ध-विकसित देशो की सम्मिलित ढग से एक प्रकार की विशेषताएँ बतलाना बहुत कठिन है क्योकि विभिन्न देशो की आर्थिक, सामाजिक, औद्योगिक और कृषि सम्बन्धी अवस्थाएँ व प्रवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं। यद्यपि इन देशो मे विकास की पद्धतियाँ, गतियाँ, *जनसंख्या की विशेषताएँ और आन्तरिक परिस्थितियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं तथापि* इन भिन्नताओ के बावजूद अधिकाँश परिस्थितियो मे एक बड़ी मात्रा तक उनकी विशेषताओ मे एकता व समानता पायी जाती है। इन्ही विशेषताओ के आधार पर हम अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ को, विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ से भिन्न करके, भली प्रकार पहिचान पाते हैं।

अर्द्ध-विकसित देशों की समस्याएँ
(Problems of Under-Developed Countries)

अर्द्ध-विकसित देशों की समस्याएँ अग्रलिखित वर्गो मे विभाजित की जा सकती हैं—

(1) आर्थिक समस्याएँ,
(2) सामाजिक समस्याएँ,
(3) प्रशासनिक समस्याएँ,
(4) राजनीतिक समस्याएँ,
(5) अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ।

आर्थिक समस्याएँ

अर्द्ध-विकसित देश अनेक आर्थिक समस्याओं से ग्रस्त है, जैसे—

(1) बचत एवं पूंजी निर्माण की समस्या, (2) निर्धनता का विषैला कुचक्र, (3) उपभोग और घरेलू बाजार की अपर्याप्तता, (4) समुचित आर्थिक रचना का न होना, (5) कृषि एवं भूमि से सम्बन्धित बाधाएं तथा (6) बेरोजगारी।

अर्द्ध विकसित देशों में राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय बहुत कम होती है, अतः बचत नहीं हो पाती। बचत न होने से पूँजी का वांछित निर्माण नहीं होता, फलस्वरूप आर्थिक विकास के क्रिया-कलाप गति नहीं पाते। प्रति व्यक्ति आय कम होने से देश में उपभोग की मात्रा कम होती है, परिणामतः घरेलू बाजार का क्षेत्र सीमित रहता है, अन्ततोगत्वा देश की अर्थ-व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। आय कम होने से बचत और पूँजी निर्माण को आघात पहुँचता है और माँग व उपभोग के कम होने से पूंजी विनियोग के प्रति कोई आकर्षण नहीं रह पाता। लघु पैमाने पर उत्पादन कार्य होने से बड़े उत्पादन की बचत सम्भव नहीं हो पाती। समुचित आर्थिक रचना का अभाव इन समस्याओं को और भी विषम बना देता है। आर्थिक संरचना में रेलों, सड़कों परिवहन के अन्य साधनों, चिकित्सालयों, स्कूलों, बिजली पानी, पुलों, आदि को सम्मिलित किया जाता है। यदि इन साधनों की समुचित व्यवस्था नहीं होती तो आर्थिक विकास की गति अवरुद्ध हो जाती है। कृषि एवं भूमि से सम्बन्धित विभिन्न समस्याएँ अर्द्ध विकसित देशों को ग्रस्त किए रहती हैं। प्रायः यह देखा गया है कि अर्द्ध विकसित देश कृषि पर अधिक दबाव, कृषिजोतों के उप विभाजन व उप-खण्डन, कृषि ऋण, अधिक लगान, सिंचाई साधनों के अभाव, कृषि विपणन की असुविधा, प्रति इकाई कम उपज, सुख सुविधाओं की कमी आदि विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त रहती हैं। आर्थिक विकास अवरुद्ध होने से देश में बेरोजगारी की समस्या खड़ी हो जाती है। अर्द्ध विकसित देशों में बेरोजगारी के अतिरिक्त अर्द्ध-बेरोजगारी (Under-employment) अथवा अदृश्य बेरोजगारी (Disguised un employment) की समस्या भी विशेष रूप से गम्भीर होती है।

सामाजिक समस्याएँ

अर्द्ध-विकसित देश विभिन्न सामाजिक समस्याओं से ग्रसित रहते हैं। आर्थिक विकास की दृष्टि से इन देशों की मूलभूत सामाजिक समस्याएँ निम्नलिखित होती हैं—(1) जनसंख्या में वृद्धि और जनसंख्या का निम्न गुण-स्तर होना, (2) सामाजिक और संस्थागत बाधाएँ व रूढ़ियां, एवं (3) कुशल साहसियों का अभाव।

अर्द्ध विकसित देशों की प्रमुख सामाजिक-आर्थिक समस्या जनसंख्या की तीव्र वृद्धि है। एक ओर तो आय और पूँजी का अभाव होता है तथा दूसरी ओर जनसंख्या की तीव्र वृद्धि आर्थिक विकास के प्रयत्नों को विफल बनाती है। इन देशों

की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं होती कि जनसख्या-वृद्धि के भार को वहन कर सकें एव रोजगार के समुचित अवसर उपलब्ध करा सकें। सामाजिक और संस्थागत रूढियाँ व कुरीतियाँ भी देश को आगे बढने से रोकती हैं। इनके कारण जनता नवीन परिवर्तनो और परिस्थितियो को अपनाने से यथासम्भव बचना चाहती हैं, फलस्वरूप देश मे तकनीकी और वैज्ञानिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त नही हो पाता। अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे साहसी वर्ग का भी अभाव पाया जाता है जबकि यही वर्ग मूलत: उत्पत्ति के विभिन्न साधनो को जुटाने और सक्रियता देने का उत्तरदायित्व वहन करता है। अव्यवस्थित सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक ढाँचे के कारण अर्द्ध-विकसित देशो मे आर्थिक वातावरण ऐसा नही होता जो साहसी वर्ग को आगे लाए, परिणामत देश की प्रगति धीरे-धीरे होती है।

राजनीतिक समस्याएँ

अर्द्ध-विकसित देशो की प्रमुख राजनीतिक समस्याओ मे हम राजनीतिक अस्थिरता, नियोजन के प्रति उदासीनता, श्रमिको के शोषण व बन्धन आदि को ले सकते हैं। राजनीतिक जागरूकता का अभाव होने से प्राय दीर्घजीवी राजनीतिक ... या दल नही पनप पाते और शासन-सत्ता मे स्थायित्व नहीं आ पाता। यह ... नीतिक अस्थिरता एक ओर तो आर्थिक विकास के लिए दृढ और स्थाई नीतियों को अवरुद्ध करती है, दूसरी ओर राष्ट्रीय प्रतिरक्षा को निर्बल बनाती है। अशिक्षित और रूढिवादी जनता नियोजन के महत्त्व को स्वीकार नही करती। राजनीतिक दृष्टि से अस्थिर सरकारें जनता मे नियोजन कार्यक्रमो के प्रति विश्वास पैदा नहीं कर पाती, फलस्वरूप देश को नियोजन के लाभ नही मिल पाते। अर्द्ध-विकसित देश विभिन्न श्रमिक समस्याओ से भी ग्रस्त रहते हैं। प्राय स्थायी श्रमिक वर्ग की कमी बनी रहती है। रूढिवादिता और सामाजिक बन्धनो के कारण श्रम की गतिशीलता नही पायी जाती। राजनीतिक जागरूकता के अभाव के कारण श्रमिकों मे श्रम-सघो जैसी संस्थाएँ समुचित ढग से नही पनप पाती। जब देश का श्रमिक वर्ग ही अकुशल, अजागरुक और अशिक्षित हो तो देश के आर्थिक विकास को स्वभावत गति नहीं मिल सकती।

प्रशासनिक समस्याएँ

अर्द्ध-विकसित देश प्रशासनिक दृष्टि से बहुत अकुशल, अवैज्ञानिक और पिछडे हुए होते हैं। देश की गरीबी और अशिक्षा जनता मे चारित्रिक स्तर को ऊँचा नही उठने देती, फलस्वरूप कुशल और ईमानदार प्रशासनिक अधिकारियो की सदा कमी बनी रहती है और राष्ट्रीय हितो की अपेक्षा निजी हितो को अधिक महत्त्व दिया जाता है। भ्रष्टाचार का दानव देश के आर्थिक विकास का गला घोंटता रहता है। इसके अतिरिक्त प्राथमिकता की समस्या भी बनी रहती है। अर्द्ध-विकसित देश सभी क्षेत्रों मे पिछडे होते है और इन सभी क्षेत्रो का समुचित रूप से विकास करना आवश्यक होता है, लेकिन पूंजी और उत्पत्ति के आवश्यक साधनो के अभाव के कारण ... नही हो पाता कि सभी क्षेत्रों का सन्तुलित विकास किया जा सके।

फलस्वरूप प्राथमिकता की समस्या निरन्तर विद्यमान रहती है। देश के सन्तुलित विकास के लिए विकास कार्यक्रमों को प्राथमिकता का क्रम देना पड़ता है।

अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ

'गरीब की जोरू सब की भाभी' वाली कहावत अर्द्ध-विकसित देशों पर पूरी तरह लागू होती है। ये देश आर्थिक, सामाजिक और राजनीति दृष्टि से तो परेशान ही है, लेकिन विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ भी इन्हें दबाए रहती हैं। विकसित राष्ट्र इस प्रकार की प्रतिस्पर्द्धात्मक परिस्थितियाँ पैदा कर देते है जिनका अविकसित देश प्राय समुचित ढग से सामना नहीं कर पाते और उन्हें अनेक रूपों मे विकसित राष्ट्रों का आश्रय स्वीकार करना पड़ता है।

अन्य समस्याएँ

उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त अर्द्ध विकसित देश और भी अनेक समस्याओं से ग्रस्त रहते है। अर्द्ध विकसित देशो मे आर्थिक विकास के साथ-साथ मूल्य भी बढते है। यदि यह बढोत्तरी मौद्रिक आय की अपेक्षा कम होती है तब तो कोई समस्या पैदा नही होती, किन्तु यदि यह वृद्धि मौद्रिक आय की अपेक्षा अधिक हो जाती है तो समाज-मुद्रा स्फीति के सकट मे फँसने लगता है। दूसरी गम्भीर समस्या विदेशी मुद्रा का होती है। आर्थिक विकास के लिए आवश्यक अनेक साधनो को विदेशों से आयात करना होता है जिसके लिए वांछित विदेशी मुद्रा नही मिल पाती। विदेशी मुद्रा के अभाव मे आवश्यक साधनों के आयात को रोकने से आर्थिक विकास की गति अवरुद्ध होने का खतरा रहता है, इसीलिए अर्द्ध विकसित देशो को सहायता व ऋण के लिए विकसित राष्ट्रों पर निर्भर रहना पड़ता है। यह निर्भरता पूँजी व यान्त्रिक ज्ञान दोनो क्षेत्रो मे होती है।

अर्द्ध-विकसित देशो की इन विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु विभिन्न उपायो के अतिरिक्त एक प्रभावशाली और अनुशासित राजकोषीय नीति का महत्त्व सर्वोपरि है। राजकोषीय नीति का अर्थ विकसित अर्थ-व्यवस्था मे सबसे महत्त्वपूर्ण यह होना चाहिए कि वह पूँजी-निर्माण और पूँजी की गति को बढाने मे सहायक बने ताकि यहाँ स्थाई वृद्धि की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिले। इस उद्देश्य की पूर्ति मे प्रभावशाली कर-नीति, सार्वजनिक व्यय-नीति, सार्वजनिक ऋण-नीति और हीनार्थ प्रबन्ध की नीति, बड़ी सहायक हो सकती है जिन्हें आवश्यकतानुसार प्रयुक्त किया जाना चाहिए। प्रभावशाली राजकोषीय नीति अर्थ व्यवस्था की उन्नति मे निर्णायक योगदान कर सकती है।

अर्द्ध-विकसित देशों की एक कठिन समस्या विदेशी मुद्रा से सम्बन्धित है। इन राष्ट्रों को कृषि, यन्त्रों, खाद्यान्नों, सिंचाई साधनों, खाद, बीज आदि की पूर्ति के लिए बहुत कुछ विदेशों पर निर्भर करना पड़ता है। इन साधनों की उपलब्धि तभी सम्भव है जब या तो निर्यात किया जाए अथवा भुगतान हेतु पर्याप्त मात्रा मे विदेशी मुद्रा प्राप्त की जाए। विदेशी मुद्रा के अभाव मे आर्थिक विकास अवरुद्ध न हो, इसके लिए अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों को विकसित राष्ट्रों से समय-समय पर पूँजी व तकनीकी

ज्ञान दोनों रूपों में सहायता माँगनी पड़ती है। कभी-कभी यह सहायता ऋणों के रूप में भी मिलती है। आयात नियन्त्रण व निर्यात प्रोत्साहन के द्वारा भी विदेशी विनिमय की समस्या को हल करने का प्रयास किया जाता है। कभी-कभी अवमूल्यन का सहारा भी लिया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ विदेशी मुद्रा सम्बन्धी सहायता विभिन्न शर्तों पर प्रदान करती हैं।

अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास की सामान्य आवश्यकताएँ (General Requisites for Development of Under-developed Countries)

अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास के लिए केवल समस्याओं को दूर करना ही काफी नहीं है और न ही पूंजी-निर्माण अथवा नवीन खोजों से ही समस्या का पूर्ण समाधान सम्भव है बल्कि आर्थिक विकास के लिए निम्नलिखित सामान्य *आवश्यकताओं का होना भी आवश्यक है—*

1. स्वदेशी-शक्तियाँ (Indeginious Forces)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया स्वदेशी शक्तियों पर आधारित होनी चाहिए। बाह्य शक्तियाँ केवल स्वदेशी शक्तियों को प्रोत्साहन दे सकती हैं, किन्तु उनका प्रतिस्थापन (Substitute) नहीं बन सकती। यदि केवल विदेशी सहायता के बल पर ही किसी योजना को प्रारम्भ किया गया और लोगों की विकास-सम्बन्धी चेतना को जागरुक न बनाया गया तो आर्थिक विकास क्षणिक होगा। विदेशी सहायता पर पूर्ण रूप से निर्भरता के परिणामस्वरूप देश के प्राकृतिक साधनों का उपयोग भले ही हो जाए, लेकिन श्रमिकों की कार्यकुशलता नहीं बढ सकेगी। अत आर्थिक विकास के लिए विदेशी सहायता को केवल सीमान्त रूप में ही हितकर मानते हुए अन्तिम रूप से उसे स्वदेशी शक्तियों पर ही आधारित करना चाहिए। विदेशी सहायता अल्पकालीन रूप में ही हितकारी सिद्ध हो सकती है, *स्थायी रूप से नहीं। मेयर और बाल्डविन के* अनुसार "यदि विकास की प्रक्रिया संचयी और दीर्घकालीन (Cumulative and long-lasting) हो तो विकास की शक्तियाँ विकासशील राष्ट्र के अन्तर्गत ही होनी चाहिएँ।"

2. पूंजी-सचय में वृद्धि (Increase in Capital Accumulation)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों के लिए वास्तविक पूँजी का सचय अत्यावश्यक है। पूँजी-संचय मुख्यत. तीन बातों पर निर्भर करता है—(i) वास्तविक बचतों की मात्रा मे वृद्धि हो, (ii) देश में पर्याप्त मात्रा में वित्त एवं साख सुविधाएँ हों, तथा (iii) पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन मे वृद्धि करने के लिए विनियोग कार्य हों। अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों मे पूंजी-निर्माण आन्तरिक और वाह्य दोनों ही साधनों द्वारा किया जा सकता है। घरेलू साधनों में वृद्धि तभी सम्भव है जबकि बचत की मात्रा मे वृद्धि, श्रम-शक्ति और प्राकृतिक साधनों का उपयोग, उपभोग पर रोक, गतिशीलता एवं उचित निर्देशन आदि हो। घरेलू पूंजी का निर्माण सम्भव न होने पर वाह्य साधनों से अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय साधनों से पूंजी-निर्माण किया जा सकता है। इन साधनों में प्रत्यक्ष

वास्तविक विनियोग, विदेशी अनुदान, सहायता व ऋण आदि सम्मिलित हैं। पूंजी-सचय की वृद्धि के साथ ही यह भी आवश्यक है कि उसके उपभोग या विनियोग करने की समुचित व्यवस्था हो। इसके अतिरिक्त प्राविधिक और सगठन सम्बन्धी विकास भी उच्च स्तर का होना चाहिए।

3. **बाजार-पूर्णता (Perfectness of the Market)**--बाजार की अपूर्णताओं को दूर करने के लिए सामाजिक एव आर्थिक सगठनो के वैकल्पिक स्वरूपो का होना आवश्यक है। अधिक उत्पादन के लिए वर्तमान साधनो का अधिकतम उपयोग किया जाना जरूरी है। यह आवश्यक है कि बाजार मे एकाधिकारी प्रवृत्तियो को दूर या कम कर पूंजी और साख का पूर्ण रूप से विस्तार करने, उत्पादन की सीमाओ को पर्याप्त रूप से बढाने, उद्योगो के उत्पादन मे वृद्धि करने, कृषि पर निर्भरता को कम करने, जरूरतमन्द लोगो को साख-सुविधाएँ समय पर उपलब्ध कराने आदि के लिए प्रभावशाली और सफल प्रयत्न करना आवश्यक है। मेयर और बाल्डविन के अनुसार "देश की राष्ट्रीय आय को तीव्र गति से बढाने के लिए नवीन आवश्यकताओ, नवीन विचारधाराओ, उत्पत्ति के नए ढगो और नई सस्थाओ की आवश्यकता है। आधुनिक आर्थिक विकास मे धार्मिक रुकावटे आदि होने से या तो प्रगति कम गति से होगी या उसके स्वभाव को ही बदलना होगा।"

4. **पूंजी सचय की शक्ति (Capital Absorption)**—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे पूंजी-निर्माण की मन्द गति, प्राविधिक ज्ञान की कमी, कुशल श्रमिको के अभाव आदि के कारण पूंजी सोखने या विनियोग करने की शक्ति प्राय सीमित होती है इन देशो मे एक बार विकास आरम्भ हो जाने पर पूंजी सोखने या विनियोग करने की शक्ति बढने लगती है, यद्यपि प्रारम्भ मे मुद्रास्फीति (Inflation) का भय सदा बना रहता है। इसके अतिरिक्त यदि इन राष्ट्रो मे पूंजी-सचय उनकी सोखने की शक्ति से अधिक हो जाता है तो वहाँ भुगतान-सन्तुलन सम्बन्धी कठिनाइयाँ उठ खडी होती हैं अर्थात् अर्द्ध-विकसित देशो मे पूंजी-निर्माण की मात्रा के अनुरूप ही पूंजी-विनियोग करने की शक्ति बढनी चाहिए।

5. **मनोवैज्ञानिक एव सामाजिक आवश्यकताएँ (Sociological and Psychological Requirements)**--अर्द्ध-विकसित देशो मे आर्थिक विकास के लिए मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आवश्यकताओ का भी महत्त्व है। राष्ट्र की विनियोग-नीति पर सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक-धार्मिक-आर्थिक मूल्यो और प्रेरणाओ का सयुक्त प्रभाव पडता है। देश के नागरिको द्वारा नवीन विचारो और विवेक का आश्रय लेने पर तथा धार्मिक और रूढिगत अन्धविश्वासो और परम्पराओ से उन्मुक्त रहने पर वहाँ आर्थिक विकास तीव्र गति से होना सम्भव है। अर्द्ध-विकसित देश आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर हों, इसके लिए आवश्यक है कि देशवासियो मे भौतिक दृष्टिकोण उत्पन्न करने वाली सामाजिक परिस्थितियाँ पैदा की जाएँ और यह भावना जाग्रत की जाए कि मनुष्य प्रकृति का स्वामी है। यह भी उपयोगी है कि सयुक्त परिवार-प्रथा के स्थान पर एकाकी परिवार प्रथा को स्थान दिया जाए।

अर्द्ध-विकसित देशो के निवासियो मे प्राय. साहस की भारी कमी रहती है। इसकी पूर्ति मुख्यत तीन बातो पर निर्भर करती है—योग्यता, प्रेरक शक्ति एवं सामाजिक तथा आर्थिक वातावरण। योग्यता मे दूरदर्शिता, बाजार-अवसरो को पहचानने की क्षमता, कार्य की वैकल्पिक सम्भावनाओ को पहचानने का विवेक, व्यक्तिगत योग्यता आदि बाते सम्मिलित रहती हैं। प्रेरक शक्ति मे मौद्रिक लाभ, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि को सम्मिलित किया जाता है जिससे कि व्यक्ति को प्रेरणा प्राप्त हो। आर्थिक व सामाजिक वातावरण मे आन्तरिक शान्ति, सुरक्षा, आर्थिक स्थिरता आदि बाते सम्मिलित की जाती है। आर्थिक विकास मे नेतृत्व का भी बहुत महत्त्व है। बारबारा वार्ड का यह कथन बिलकुल ठीक है कि "आर्थिक विकास की प्रभावशाली नीति के लिए यह विचारधारा आवश्यक है कि अपेक्षित पूंजी व संचालन के लिए योग्यता एव कुशल व्यक्ति हो। भ्रष्टाचार और स्वार्थ से उन्नति नही हो सकती।"

6. विनियोग का आधार (Investment Criteria)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो के आर्थिक विकास के लिए विनियोग का सर्वोत्तम आवटन करना कठिन कार्य है। इसके लिए कोई निश्चित मापदण्ड निर्धारित करना भी सुगम नही है क्योकि उद्योगो का उत्पादन विभिन्न ढगो से प्रभावित होता है। फिर भी अर्थशास्त्रियो ने विनियोग का आधार निर्धारित करने के लिए कुछ बाते आवश्यक ठहराई हैं। प्रो मौरिस डाब (Maurice Dobb) के अनुसार अर्द्ध-विकसित देशों को अपनी विनियोग नीति (Investment Policy) के सम्बन्ध मे निम्नांकित बातो का ध्यान रखना चाहिए—

(i) विनियोग राशि का कुल आय से अनुपात,
(ii) विनियोग की जाने वाली राशि का विभिन्न क्षेत्रो मे वितरण, एव
(iii) उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रो मे अपनाई जाने वाली तकनीक का चुनाव।

इनके अतिरिक्त अनेक अर्थ-शास्त्रियो ने विनियोग के अन्य मापदण्ड भी बताए हैं जैसे—

(i) न्यूनतम पूंजी-उत्पादन-अनुपात (Minimum Capital Output Ratio),
(ii) अधिकतम रोजगार, एव
(iii) अधिकतम बचत की जाने वाली राशि की मात्रा जिसका पुन विनियोजन किया जा सके।

व्यावहारिक रूप मे उपर्युक्त मापदण्डों का उपयोग नही किया जाता था क्योकि इनका क्रियान्वयन अत्यन्त कठिन है तथा ये मापदण्ड प्राय परस्पर सगत (Consistent) नही होते। यद्यपि विनियोग के लिए प्रस्तावित साधनो के सर्वोत्तम आवंटन 'सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त' (Marginal Productivity Theory) द्वारा किया जाना चाहिए, लेकिन इस सिद्धान्त के व्यावहारिक कियान्वयन मे भी अनेक बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं जिनके *कारण यह मापदण्ड भी प्रायः अव्यावहारिक बन* जाता है तथापि इसके द्वारा विविध योजनाओं को चुनने या रद्द करने के औचित्य को तो जांचा ही जा सकता है। वर्तमान मे राष्ट्रीय आय को अधिकतम करने के लिए

कम-पूंजी उत्पादन-अनुपात (Low capital output ratio) की नीति अपनाना श्रेयस्कर है, किन्तु जब ध्येय भविष्य म प्रति व्यक्ति उपज को अधिकतम करना हो तो पूंजी प्रधान-तकनीक को अपनाना अधिक अच्छा है। प्रो हार्वेलिबेस्टिन की मान्यता है कि विकसित देशो की नीति निर्माताओ को चाहिए कि वे विविध उद्योगो मे सीमान्त प्रति व्यक्ति पुनर्विनियोग अश (Marginal per Capita re-investment Quotient) की चिन्ता करें, न कि पूंजी की सीमान्त उत्पादकता बराबर करने की।

पश्चिमी देशों का अर्थशास्त्र पिछड़े देशो के लिए अनुपयुक्त

पश्चिमी देशो का अर्थशास्त्र नवोदित और पिछड़े देशो के शासको को सम्मोहित किए जा रहा है। यह एक विशेष मनोवृत्ति की उपज है। औपचारिक रूप से साम्राज्यो का अन्त भले ही हो गया हो, लेकिन आर्थिक साम्राज्य अब भी कायम है, और वे पुरानी तर्क पद्धति को ही नए तरीके से पोषित करते है। यद्यपि तीसरी दुनिया के देशो ने अकटाड, सयुक्तराष्ट्र सघ, निर्गुट देश सम्मेलन आदि मचो से सामूहिक स्वर से इस तर्क पद्धति का विरोध करना शुरू कर दिया है। स्वीडन के विख्यात अर्थशास्त्री प्रोफेसर गुनार मिर्डल ने अपने 'एशियन ड्रामा' मे सकलित तथ्यो के आधार पर पश्चिम के असन्तुलित अर्थशास्त्र का मायाजाल ध्वस्त करने मे उल्लेखनीय भूमिका निभाई और उसम जो कमी रह गई उसे उन्होंने अपनी पुस्तक 'द चैलेन्ज ऑफ वर्ल्ड पावरटी' मे पूरा कर दिया है। इस पुस्तक मे गुनार मिर्डल ने यद्यपि इस बात का विवेचन विस्तार से नही किया है कि अल्प विकसित देशो के विकास को सम्भव बनाने और तीव्र करने के लिए विकसित तथा अविकसित देशो को क्या प्रमुख नीतियाँ अपनानी चाहिए, तथापि उन्होने पश्चिमी देशो के दृष्टिकोण की कमियो को बताते हुए नीति-निर्धारको के लिए सोचने विचारने की यथेष्ट सामग्री प्रस्तुत की है।

गुनार मिर्डल ने प्रथम अध्याय मे ही पश्चिमी देशो के दृष्टिकोण की कमियाँ बताते हुए कहा है कि "उन देशो मे अनुसधान भी प्राय राजनयिक होता है और अनुसधान का समारम्भ विश्लेषणात्मक पूर्वसकल्पनाओ अथवा मान्यताओ के आधार पर होता है।" उनकी मान्यता है कि विकसित देशो मे शुद्ध आर्थिक दृष्टि से किया गया विश्लेषण अल्प विकसित देशो पर इसलिए लागू नही होता क्योंकि उनकी सकल्पनाएँ, नमूने और सिद्धान्त विकसित देशो के यथार्थ के अनुरूप होते हैं।

इस अनुसधान मे बुनियादी कमी है कि यह दृष्टिकोण प्रवृतियो और सस्थाओ से प्रेरित होता है। विकसित देशो मे ये या तो इस दृष्टि से सगत बन गए हैं कि वे विकास के उत्साह का मार्ग प्रशस्त करते हैं अथवा तीव्रता से और बिना किसी व्यवधान के व्यवस्थित होकर विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं, लेकिन यह मान्यता कम विकसित देशो के बारे मे सही नहीं हो सकती। इनकी प्रवृतियाँ अथवा रुझान सस्थाएँ ऐसी है कि वे बाजारो के सन्दर्भ मे विश्लेषण को अव्यावहारिक बना देती हैं।

विकसित तथा अविकसित देशो के वैज्ञानिक अध्ययन के बारे मे उनका

निष्कर्ष है कि "इस समय वह कार्य जिस रूप मे हो रहा है, साधारणतया उनमें अल्पविकसित देशो की उन परिस्थितियों को छिपाने का प्रयास किया जाता है जो आमूल और दूरगामी सुधारो की आवश्यकता को सर्वाधिक प्रमाणित करते हैं। इसने अर्थशास्त्र के एक प्राचीन पूर्वाग्रह का भी अनुसरण किया है। यह कार्य सीधे ढंग से यह मानकर किया गया है कि समानतावादी सुधार आर्थिक विकास के विपरीत हैं जबकि स्थिति यह है कि ये सुधार आर्थिक विकास को प्रेरणा देते है और इसकी गति तीव्र बनाते हैं।"

एक अन्य प्रसंग में पश्चिम के व्यापारियो के बारे में उनका विचार है कि "जन समुदाय की प्राय: यन्त्रवत् निष्क्रियता और अल्प-विकसित देशो मे सुधारो के प्रयास का अभाव पश्चिम के उन व्यापारिक हितों को अच्छा लगता है जो अल्प विकसित देशो में अपनी पूँजी लगाना और अपने उद्योग चालू रखना चाहते हैं। सत्तारूढ समूह इन कम्पनियो के स्वाभाविक सहयोगी होते हैं। यह उपनिवेशी नीति को उसी रूप मे जारी रखने का प्रमाण है और इससे इस आरोप का औचित्य सिद्ध होता है जो पश्चिम के व्यापारियों पर उन्हे 'नव-पूँजीवादी' कहकर लगाया जाता है।"

भूमि-सुधार और खेती—अल्प-विकसित देशो मे भूमि की उत्पादिकता का प्रश्न भूमि-वितरण, खेती के तरीको, सामाजिक विषमता आदि अनेक परिस्थितियों से सम्बद्ध होता है, जिसका कोई उचित समाधान नही है। काफी छानबीन और विश्लेषण के पश्चात् अध्येता गुन्नार मिर्डल आग्रह करते हैं कि "विकासशील देशो मे नई कृषि विधियाँ तथा टेक्नोलाजी ऐसी हो, जिसमे श्रम का अधिक से अधिक उपयोग किया जा सकता हो, यह इस कारण भी जरूरी है कि खेती मे लगी श्रम-शक्ति का इस समय कम उपयोग हो रहा है और अधिकांश अल्प-विकसित देशो मे आगामा अनेक दशको तक कृषि मे लगी श्रम-शक्ति मे निरन्तर तेजी से वृद्धि होती रहेगी।" लेकिन किसी नई व्यवस्था के लिए जरूरी है कि खेतिहर का भूमि से लगाव हो। "बटाई पर खेत करने की व्यापक प्रणाली न तो टेक्नोलॉजी सम्बन्धी परिवर्तन के उपयोग की दृष्टि से लाभदायक है और *न ही श्रम और धन के रूप मे विनियोग की* दृष्टि से।" गुन्नार मिर्डल की दृष्टि मे यह एक ऐसा बुनियादी कार्य है जिसे किए बिना जो कुछ भी किया जाएगा उसका लाभ केवल ऊँचे स्तर के लोग उठाते रहेंगे और असमानता में वृद्धि होती रहेगी।

मिर्डल की दृष्टि में, अल्प-विकसित देशो में अनाज की पूर्ति बढाने के लिए उनका दाम उचित स्तर से ऊँचा बनाए रखने का तर्क भी, अमीर किसानो के ही हित में होगा, क्योकि बटाईदार या छोटा किसान मुश्किल से जरूरत भर का अनाज पैदा करता है–यदि कटाई के समय उसे कर्ज की अदायगी या अन्य आवश्यकताओ के लिए गल्ला बेचना पड़ा तो बाद मे अपना पेट भरने के लिए महँगे दामों मे खरीदना पड़ता है।

यही स्थिति उन्नत बीज, उर्वरक आदि के कारण उपजें, 'अतिशय तकनीकी आशावाद के सन्दर्भ में पायी जाती है·········' नए बीजो के उपलब्ध होने की बात का

इस्तेमाल करके बड़े पैमाने पर भू-स्वामित्व और दस्तकारी प्रणाली के सुधारों की बात को पीछे डाल दिया गया है। इन सुधारों के अभाव में नए बीज का उपलब्ध होना उन अन्य प्रतिक्रियावादी शक्तियों से गठजोड़ करेगा जो इस समय अल्प विकसित देशों में ग्रामीण जनसंख्या और असमानता बढ़ाने में सहायक बन रही है।

शिक्षा—वर्तमान शिक्षा प्रणाली ने, जो उपनिवेशकालीन प्रणाली का मात्र विस्तार है, समाज में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया है, और न ही वह कर सकती है, क्योंकि इस प्रणाली में प्रशासकों, अध्यापकों, विद्यार्थियों और सर्वाधिक शक्तिशाली उच्च वर्ग के परिवारों के शक्तिशाली स्वार्थ निहित हैं। यदि दक्षिण पूर्वी एशिया में साक्षरता और प्रौढ़ शिक्षा के सन्दर्भ में यह वाक्य खास दिलचस्प है—"जब वयस्कों को शिक्षा देने के प्रयासों को एक ओर उठा कर रख दिया गया तो साक्षरता के लक्ष्य को प्राईमरी स्कूलों में बच्चों की भर्ती की संख्या में तेजी से वृद्धि के कार्यक्रम में बदल दिया गया।"

नरम राज्य—अन्य पश्चिमी लेखकों की तरह मिर्डल का भी यह मत है कि विभिन्न सीमाओं तक सभी अल्प विकसित देश 'नरम राज्य' हैं, लेकिन उनकी यह भी मान्यता है कि विकसित देशों में भी नरम राज्य के लक्षण पाए जाते हैं—अमेरिका के लोग, अल्पविकसित देशों के लोगों के समान, लेकिन उत्तर पश्चिम यूरोप के देशों के लोग विपरीत, अपने कानूनों में ऐसे आदर्शों को स्थान देते हैं, जिन्हें संयुक्तराज्य अमेरिका में कभी भी प्रभावशाली ढंग से लागू नहीं किया गया। यद्यपि संयुक्तराज्य अमेरिका में प्रशासन कभी भी बहुत अधिक प्रभावशाली नहीं रहा तथापि इस देश ने बहुत तेजी से आर्थिक उन्नति की। यह उन अनेक परिस्थितियों के कारण सम्भव हुआ, जो आज गरीबी से ग्रस्त अल्पविकसित देशों से बहुत भिन्न थीं। विकासशील देशों में होता यह है कि राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ ऐसे कानून नहीं बनने देतीं जो लोगों के ऊपर अधिक उत्तरदायित्व डालते हों। जब कभी कानून बन जाते हैं तो उनका पालन नहीं होता और इन्हें लागू करना भी आसान नहीं होता। इसका मूल कारण यह है कि स्वाधीनता के प्रारम्भिक दौर में सत्तारूढ़ राजनीतिक दृष्टि से विशिष्ट लोगों ने ये नए कानूनी अधिकार (वयस्क मताधिकार आदि) लोगों को दिए, लेकिन वे लोग इन अधिकारों को वास्तविकता के आधार पर स्थापित करने के लिए उत्सुक नहीं थे। इस कार्य से बच निकलना भी आसान था, क्योंकि नीचे से कोई दबाव नहीं था। ऐसी स्थिति में यदि सरकार बदलती है और सख्त सरकार (जैसे पाकिस्तान में जब अय्यूब की तानाशाही आई) बागडोर संभालती है तो भी वह नरम ही रहती है, क्योंकि (1) वह उपयोगी सांस्थानिक परिवर्तन नहीं करा पाती और (2) सरकार में परिवर्तन समाज के सर्वोच्च वर्ग के लोगों के आपसी झगड़े के परिणामस्वरूप होते हैं ये परिवर्तन कहीं भी गरीब जन समुदाय द्वारा अपने उत्पीड़न के विरुद्ध विद्रोह के परिणामस्वरूप नहीं आए।[1]

1 दिनमान, 25-31 जुलाई 1976, पृष्ठ 9-10

पश्चिमी देशों के आर्थिक साम्राज्यवाद के विरुद्ध तीसरी दुनिया की रणनीति

तीसरी दुनिया के राष्ट्र, जो पाश्चात्य आर्थिक साम्राज्यवाद के दीर्घकाल तक शिकार रहे है और आज भी है, अब एक नए अर्थतन्त्र और नए समाज की रचना के लिए प्रयत्नशील है । पश्चिम के आर्थिक साम्राज्यवाद के प्रति उनकी रणनीति बदल रही है जो पिछले कुछ अर्से मे सम्पन्न हुए विभिन्न सम्मेलनो मे प्रकट हुई है ।

तीसरी दुनिया के देश, जिन्हे औपनिवेशिक जुआ उतार फैंकने के बाद आशा थी कि सयुक्तराष्ट्र संघ के माध्यम से या सीधे पश्चिमी देशो की आर्थिक सहायता (अनुदान और मुख्यत ऋण) उनकी औद्योगिकी और उनसे व्यावारिक लेनदेन, नया अर्थतन्त्र और नए समाज की रचना का मौका देगा, समझ गए हैं कि उन्नत देशो के सामन्तीतन्त्र को उनसे सहानुभूति नहीं है । यही नही, उन्होंने यह भी महसूस कर लिया है कि सभी क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मचों पर पश्चिमी देशो के विरुद्ध जेहाद (धर्म-युद्ध) छेडा जाना चाहिए। इसका स्वर दिल्ली मे "एशिया और प्रशान्त क्षेत्र के लिए आर्थिक-सामाजिक आयोग के वार्षिक अधिवेशन (26 फरवरी से 7 मार्च, 1975) मे ही नहीं, बल्कि तेल उत्पादक देशों के अल्जीयर्स सम्मेलन (मार्च, 1975) मे भी सुनाई पडा ।" लीमा मे सयुक्तराष्ट्र उद्योग विकास सगठन के दूसरे सम्मेलन और हवाना मे तटस्थ देशो के सम्मेलन मे भी यही स्वर मुखर हुआ है । इसका लक्ष्य औद्योगिक देशो से अधिक साधन और सुविधाएँ प्राप्त करना तो है ही, साथ ही विकासशील देशो को एकता के सूत्र मे बांधना, तीसरी दुनिया के साधनो का उपयोग करना और आपसी लेनदेन बढाना, ताकि स्वावलबन के मार्ग पर बढा जा सके । तेल उत्पादक देशो द्वारा मूल्य बढाने से उसे एक नई शक्ति मिली है—विश्व के उत्पादन मे विकासशील देशो के वर्तमान 7% योग को सन् 2000 तक बढाकर 25 फीसदी करने का नारा हाल के अल्जीयर्स सम्मेलन मे ही दिया गया था—मगर उतना नही जितना होना चाहिए था, क्योंकि तेल उत्पादक देशो मे पश्चिम से जुडने का मोह पैदा हो गया है ।[1]

"लीमा मे भारत के तत्कालीन उद्योग और नागरिक पूर्ति मन्त्री श्री टी. ए पै ने संयुक्तराष्ट्र उद्योग विकास सगठन के दूसरे सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय सामन्ती अर्थतन्त्र की खासी बखिया उधेडी । श्री पै ने कहा कि विकासशील देशों के प्रयत्नो के बावजूद विकसित और विकासशील देशो मे औद्योगिक अन्तर बढता जा रहा है, क्योंकि अमीर देश पूंजी निवेश की मात्रा बढाने मे समर्थ है । यही नहीं, वे अन्य उन्नत देशों से ही व्यापार करना पसन्द करते हैं । उन्होने अपने बाजार और लाभ सुरक्षित रखने के लिए तरह-तरह के प्रतिबन्ध ईजाद कर रखे हैं । धनिक देशो की मुनाफाखोरी और शोषण की प्रवृत्ति का उदाहरण देते हुए भारतीय उद्योग मन्त्री ने बताया कि विकासशील देशों को विवश किया जाता है कि वे विना धुला

1. दिनमान, मार्च 1976.

कपडा (Gray-cloth) निर्यात करें। यह कपडा धनिक देशो मे रासायनिक तथा अन्य विधियो द्वारा साफ होकर ऊँचे दामो मे बिकता है। इसी प्रकार, उन्होने पूछा, क्या वजह है कि हमारी चाय सिर्फ पेटियो मे ही खरीदी जाती है ? क्या इसलिए कि फिर उसे आकर्षक डिब्बो मे भरकर मुनाफा कमाया जा सके ? विकासशील देशो को कच्चा माल मुहैया करने वाला क्षेत्र ही माना जाता है। विकासशील देश जो जिसे निर्यात करते हैं उसका भाव भी विकसित देशो के ग्राहक इस तरह नियन्त्रित करते हैं कि तीसरी दुनिया के देशो की आमदनी मे उतनी बढोतरी नही होती जितनी कि आयात करने वाले माल के—मशीन, उर्वरक आदि के—भाव मे हो जाती है। श्री पै ने स्पष्ट शब्दो मे कहा कि पश्चिमी देशो के माल—इस्पात, तैयार माल, मशीन आदि सबके मूल्य तेल का भाव बढने के पहले से चढने लगे थे।"

"आयात-निर्यात, सहायता, श्रम बहुल औद्योगिकी आदि के अलावा विकासशील देशो की सीमा मे कोशिश यह रही कि इस उद्योग के सगठन को सयुक्त राष्ट्र का स्थायी और स्वतन्त्र सगठन बना दिया जाए। लेकिन पश्चिमी देश इसके पक्ष मे नही थे। ब्रितानी प्रतिनिधि ने स्पष्ट शब्दो मे कहा—हमे सन्देह है कि इससे आप लोगो को कोई लाभ नही होगा। स्विट्जरलैण्ड के प्रतिनिधि ने औद्योगिक उत्पादन का लक्ष्य 25% निर्धारित करने का विरोध किया—यह व्यावहारिक नही है।"

भारतीय अर्थ-व्यवस्था पर एक दृष्टि

अग्रेजो के जाने के वक्त भारत की जो आर्थिक स्थिति थी उसके मुकाबले कांग्रेसी शासन उखडने के समय की स्थिति एक अर्थ मे बदतर है—विदेशी शासको ने निहित स्वार्थों पर आधारित जो सामती ढाँचा भारत पर थोपा था, वही आज अपने बदले हुए स्वरूप मे दस गुनी शक्ति के साथ भारत पर हावी है। उस सम्पन्नतर वर्ग की अर्थ रचना अलग है जो अपनी अतिरिक्त आमदनी रेफ्रीजरेटर, स्कूटर, मोटर, कूलर, मधुर सगीत सुनने के महँगे उपादान (रिकार्ड प्लेयर, टेप रिकार्डर, एल पी रिकार्ड आदि), कीमती घडी, कृत्रिम रेशे के महँगे कपडो आदि पर खर्च करता है। इसके नीचे हैं साधारण किसान, खेतिहर मजदूर, साधारण मजदूर तथा रोजगार की तलाश मे शिक्षित या अशिक्षित युवक, जिसकी क्रय शक्ति हर साल कम होती जाती है। जब दाम घटते हैं तो सबसे पहले कृषि जन्य पदार्थों के क्योकि अधिकाँश साधारण किसान, अपनी फसल बेचने को मजबूर होते हैं। क्रय शक्ति के अभाव का सीधा परिणाम है—भुखमरी और उपभोग्य वस्तुओ की माँग मे कमी। गल्ला मौजूद होता है लेकिन बिकता नही, मोटा कपडा भी वह नही खरीद पाता जिसके लिए वह बनता है। तब मन्दी के नाम सरकार से रियायतो की माँग की जाती है जो सम्पन्न उत्पादक वर्ग को ही मिलती है। महँगाई भत्ता और बोनस भी सगठित श्रमिक वर्गों या सरकारी कर्मचारियो के लिए ही होता है—यह सब लेने देने के बाद उपेक्षित वर्गों के लिए कुछ नही बचता, या इतना कम बचता है कि मूल समस्या जहाँ की तहाँ जमी रहती है।

देश की आर्थिक स्थिति का और खासकर आपात्काल के दौरान, कांग्रेस

सरकार की उपलब्धियों के दावो का विश्लेषण श्री बाबूलाल वर्मा ने फरवरी, 1977 में उस समय किया था जब वह बरेली जेल मे थे। कालवाचक क्रिया पदो में यथा आवश्यक हेरफेर के साथ प्रकाशित यह आलेख[1] आर्थिक चुनौतियों की पृष्ठभूमि को उजागर करता है। श्री वर्मा बाद मे उत्तर प्रदेश के क्षेत्रीय विकास उपमन्त्री बने। भारत एक विकासशील (Developing) देश है जो "अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था की सीमाओं और समस्याओं से अभी भी ग्रस्त है।"

"कांग्रेस सरकार का दावा रहा है कि आपात्काल में देश का आर्थिक विकास हुआ है। कारखानो मे रिकार्ड तोड़ उत्पादन हुआ और मुद्रा-स्फीति पर काबू पा लिया गया, विदेशी मुद्रा का भण्डार भर गया था और कीमतों मे काफी कुछ कमी हो गई।"

आपात्काल मे मजदूरो ने जी तोड़ कर काम किया, कोई हड़ताल या तालाबन्दी नही हुई, जिसके कारण सरकारी क्षेत्र के कारखानो मे काफी उत्पादन बढ़ा। इन कारखानो ने अपनी क्षमता का अच्छा उपयोग किया। सरकार ने इन कारखानो मे काफी पूंजी लगाई। सरकारी उद्योगो मे इस्पात, कोयला, भारी उद्योग-अल्यूमूनियम आदि का सर्वाधिक उत्पादन हुआ।

लेकिन इसके दूसरे पहलू को भी देखना होगा। कोयले का 1 20 करोड टन का भण्डार जमा हो गया, उसी तरह इस्पात का भी भण्डार जमा हो गया, क्योकि देश मे न तो इस्पात की माँग थी न कोयले की। देश मे न तो खपत होने के कारण सरकार को विदेशी बाजारो की खोज करनी पड़ी। इस्पात का घाटे मे निर्यात किया जाने लगा। इस्पात उत्पादन का लगभग मूल्य 6000 रु प्रति टन है और विदेशों को 1180 रु प्रति टन के भाव से निर्यात किया गया, जिसका परिणाम था उद्योग मे भारी घाटा। सन् 1975 मे इस्पात उद्योग को 1·50 करोड़ रुपये का घाटा हुआ। इस तरह की उत्पादन वृद्धि से उद्योगो की प्रगति सम्भव नही। आज इस्पात उद्योग की स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि जितना अधिक उत्पादन उतना ही अधिक घाटा। इस उद्योग मे सरकार की अरबो रुपये की पूंजी लगी हुई है। अकेले बोकारो इस्पात कारखाने मे अभी तक लगभग 25 अरब की पूंजी लगाई जा चुकी है, लेकिन प्लांट अभी तक अधूरा है। इतनी बडी लागत के उद्योग चलाने से और बराबर घाटे मे रहने से देश के आर्थिक विकास मे इसका क्या योगदान हो सकता है ? हम निर्यात घाटे को राजकीय अनुदान से पूरा कर रहे हैं।

आपात्काल मे निजी क्षेत्र के कारखानो के उत्पादन मे कोई वृद्धि नही हुई अपितु बहुत से कारखानों का उत्पादन गिर गया। सन् 1976 मे चीनी का उत्पादन पिछले वर्ष की अपेक्षा 5 60 लाख टन कम हुआ। चाय, कपडा, जूट, शक्कर, इंजीनियरी आदि अनेक उद्योग बीमार हो गए, यानी इन उद्योगों को घाटे पर चलना पड़ा, केवल जूट, कपड़ा और शक्कर उद्योगों के इलाज के लिए 13·40 अरब रुपया

1. दिनमान, नवम्बर 1977, पृष्ठ 21-24.

चाहिए तभी ये उद्योग लाभ कमाने मे सक्षम हो सकेंगे। अनेक उपभोक्ता वस्तुएँ पैदा करने वाले कारखानो का उत्पादन इस दौरान गिरा है। इस उद्योग नीति का परिणाम सामने आया, असमानता। गरीब की गरीबी और अमीर की अमीरी बढ़ गई। जनता की आय मे वृद्धि न होने के कारण उसकी क्रय शक्ति दिन-प्रतिदिन गिरती गई, जिसके कारण बाजार गिर रहे हैं और माँग न होने के कारण इस्पात, कोयला, कपड़ा, कार, टेलीविजन वातानुकूल यन्त्र, रासायनिक खाद, सीमेंट आदि के उद्योग लड़खड़ाने लगे। सन् 1976–77 मे भरपूर रियायतों के बाद भी परिणाम अनुकूल नही निकले।

उद्योग किसके ?—उद्योग नीति का एक दूसरा पहलू भी है जो चौकाने वाला है। देश मे सरकारी या निजी क्षेत्र मे जितने भी कारखाने है और इनमे जितनी भी पूंजी लगी हुई है उसका 95 प्रतिशत हिस्सा विदेशी ऋण या सहायता से प्राप्त हुआ है, इसे तत्कालीन वित्त मन्त्री श्री सी सुब्रह्मण्यम् ने 31-12-76 को स्वय स्वीकार किया था। रिजर्व बैंक ने भी अपनी रिपोर्ट मे कहा कि कुल उद्योगो के उत्पादन का करीब 40 प्रतिशत हिस्सा 20-22 बडे घरानो के कब्जे मे है। इस उद्योग नीति पर गर्व नही किया जा सकता। देश का सारा आर्थिक ताना-बाना विदेशी आर्थिक ऋण पर निर्भर करता है और यह निर्भरता दिन-प्रतिदिन बढती जा रही है। परिवार नियोजन, गाँवो मे विद्युतीकरण, शहरो, कस्बो की जलपूर्ति, मल निकासी की योजनाएँ, बडे-बडे योजना कार्य सभी विदेशी सहायता पर चलाए जा रहे है, लेकिन कांग्रेस सरकार कहती रही है कि देश आत्म-निर्भर हो गया। उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन के बहुत बडे हिस्से पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियो का कब्जा है, जैसे टायरो मे मैंसफील्ड, गुडईयर, डनलप, फायरस्टोन, दर्दनाशक एस्प्रो, एनासिन, क्रोसिन, एनलजीन आदि, मजनो मे कालगेट, बिनाका, मेक्लीन्स, सिगनल आदि, सौन्दर्य प्रसाधन—पौण्ड्स, जानसन्, कालगेट आदि। पेय पदार्थों मे फैण्टा, कोका-कोला (जनता सरकार ने कोका-कोला बनाने का लाइसेंस नया नही किया) आदि, सिगरेटो मे विल्स, कैंप्सटन, सीजर, बर्कले, रेड एण्ड व्हाइट, साबुनो मे रेक्सोना, लक्स आदि-आदि। इसी तरह नेस्कैफे, लिपटन, बोर्नवीटा, पैरी आदि पर विदेशी हितो का स्वामित्व है। इस्पात, कोयला, इजीनियरिंग का सामान, स्टेनलेस स्टील, रासायनिक खाद, जूट, कार, सूती कपडा एसलरी, टायर आदि उद्योग मदी के शिकार हो गए।

इण्डियन चैम्बर्स ऑफ कामर्स के (पिछले) अध्यक्ष श्री अरुणाचलम् ने कहा था कि इस समय मदी का प्रभाव वर्ष 1967–68 से अधिक है। मदी लोगो की क्रय शक्ति गिरने से आती है। सन् 1976–77 मे औद्योगिक प्रगति की गति तेजी के स्थान पर मद रही, यह मोटा लेखा जोखा औद्योगीकरण एव उत्पादन वृद्धि का है। भारी उद्योगों की भरमार का जो परिणाम होना चाहिए था नहीं हुआ।

आपात्काल और कीमते

कांग्रेस सरकार का दावा रहा है कि आपात्काल मे कीमतें तेजी से गिरी,

आपात्काल की घोषणा 25 जून, 1975 को की गई थी। सितम्बर, 1974 को मूल्य सूचनांक 330 2 था जो वृद्धि का सर्वोच्च शिखर था। अक्तूबर, 1974 से कीमतें तेजी से गिरना शुरू हुई और जून, 1975 को मूल्य सूचकांक 310 2 पर आ गया, यानी 5 7 प्रतिशत कीमतें अक्तूबर, 1974 से जून, 1975 के बीच गिरी। मूल्य सूचक अक गिरते-गिरते मार्च, 1976 तक 282 9 पर आ गया। मार्च, 1976 मे पुन मूल्य-वृद्धि तेजी से हुई। नवम्बर, 1976 तक (9 मास मे) कीमतो में 13 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई और फरवरा, 1977 मे मूल्य सूचक अंक गत सर्वोच्च बिन्दु से केवल 5 प्वाइट ही कम रह गया। इसलिए यह कहना ही गलत है कि आपात्काल मे कीमते गिरी।

अक्तूबर, 1974 से मार्च, 1976 तक यानी 18 मास मे खाद्य वस्तुओं—कच्चा माल और उद्योग उत्पादन की कीमते किस तरह गिरी, यह देखना भी आवश्यक है। इन 18 ही महीनो मे इन तीनो के सम्मिलित मूल्य 13 3 प्रतिशत गिरे। इसमे खाद्य पदार्थो के दाम 21 7 प्रतिशत और कच्चे माल के दाम 31·3 प्रतिशत गिरे। लेकिन औद्योगिक उत्पादन के दाम केवल 2·8 प्रतिशत गिरे, यानी खाद्य पदार्थ एव कच्चे माल के मूल्य में ही भारी गिरावट आई, औद्योगिक उत्पादन के दामो मे नही। ऐसा क्यो ? कृषि पर आधारित उत्पादन के ही दामो में गिरावट से किसान लड़खडा गया और उद्योगपति और धनी हो गया। जब कच्चे माल के दाम 31 3 प्रतिशत गिरे तब औद्योगिक उत्पादन के दाम केवल 2 8 प्रतिशत ही क्यो गिरे ? क्या इसे समाजवादी व्यवस्था कहेगे ? आपात्काल मे मार्च, 1975 से नवम्बर, 1976 तक 13 प्रतिशत दामो की वृद्धि का दोषी कौन था ?

मुद्रा-स्फीति—कांग्रेस सरकार कहती थी कि आपात्काल मे मुद्रा-स्फीति पर काबू पा लिया गया है। वास्तविकता यह है कि अक्तूबर, 1974 से जून, 1975 के बीच मुद्रा-स्फीति पर काबू पा लिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप कीमतें गिरी थी। परन्तु आपात्काल मे मार्च से ही मुद्रा स्फीति पुनः सिर उठाने लगी। तत्कालीन प्रधान मन्त्री (इन्दिरा गांधी), वित्त मन्त्री सुब्रह्मण्यम तथा रिजर्व बैंक के गवर्नर ने इसे स्वीकार किया था और रोकथाम के लिए बैंक ऋणों पर कठोर पाबंदी लगाई थी। इसलिए यह कहना गलत है कि मुद्रा स्फीति पर आपात्काल मे काबू पा लिया गया था।

विदेशी मुद्रा भण्डार—आपात्काल की उपलब्धियो मे विदेशी मुद्रा भण्डार, जो कि 30 अरब रुपये तक पहुँच गया, एक उपलब्धि बताया गया। दिसम्बर, 1976 तक विदेशी आयात-निर्यात व्यापार ने भारत को 40 करोड़ रुपये का घाटा हुआ, जो पिछले सभी वर्षो से कम रहा क्योकि इस दौरान देश ने गल्ला, रासायनिक खाद तथा कच्चे तेल का आयात कम किया। हमारे निर्यात का भविष्य अच्छा नही है। कपडा, कोयला, दवाइयां, इस्पात, रेल परिवहन आदि का निर्यात हम घाटे पर कर रहे हैं और घाटे की पूर्ति के लिए सरकार द्वारा अनुदान दिए जा रहे हैं। विश्व के निर्यात व्यापार मे भारत का हिस्सा मई, 1976 मे गिरकर 5·4 प्रतिशत रह गया।

30 अरब विदेशी मुद्रा का भण्डार भारत द्वारा किसी उत्पादन के निर्यात के माध्यम से अस्तित्व मे नही आया, अपितु विदेशो मे जो भारतीय रहते हैं उन्होंने अपनी बचत का धन, पौण्ड, स्टर्लिंग और डॉलर के रूप मे भारत मे रह रहे अपने सम्बन्धियो को भेजा है, जो अमानत के रूप मे सरकार के पास जमा है और जिसकी अदायगी सरकार को रुपयो के रूप मे उन लोगो को करनी होगी जिनके लिए धनराशि विदेशो से भेजी गई है। तस्करी पर कडी रोक एव विदेशी सहायता के कारण 30 अरब की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई। जहाँ यह विदेशी मुद्रा शुभ है वही खतरे का कारण भी बन रही है तथा मुद्रा स्फीति का खतरा इससे अधिक बढ गया है।

कृषि उत्पादन—इन दो वर्षों मे कृषि उत्पादन थोडा बढा है, लेकिन इसे सन्तोषजनक नही कहा जा सकता। काँग्रेस के सरकारी सूत्रो का कथन रहा है कि कि सन् 1976 की खरीफ का उत्पादन सन् 1975 की अपेक्षा गिरा है। खेती मौसम पर पूरी तौर से निर्भर है। हम अभी केवल 29 प्रतिशत जमीन के लिए जो हल के नीचे है, सिंचाई की व्यवस्था कर रहे हैं और केवल ½ पानी का उपयोग कर रहे हैं। सरकारी आँकडो के अनुसार 75–76 मे 11 80 करोड टन गल्ला पैदा हुआ। सरकार ने 1 70 करोड टन का भण्डार सरकारी खरीद द्वारा जमा किया, जिसमे सरकार का 30 अरब रुपया बैंक से ऋण लेकर खर्च करना पडा। गोदाम के अभाव मे कितना गल्ला सडा या खराब हुआ इसके आँकडे सरकार के पास उपलब्ध नही थे। यह सुरक्षित भण्डार देश की अर्थ-व्यवस्था के लिए चिन्ता का कारण बन गया है। गल्ला बिक न सकने के कारण इतनी बडी पूंजी जाम हो गई। फिर एक के बाद दूसरी फसल तैयार हो गई। सरकार इस गल्ले को कितने दिन रोक सकेगी, यह स्पष्ट नही। आगामी फसल के गल्ले की खरीद के लिए रुपये के अभाव मे काँग्रेस की केन्द्र सरकार ने राज्यो को लिखा है कि किसानो को गल्ले की कीमत के बदले बाण्ड दिए जाएँ। (ऐसा नही हो पाया वरना निश्चित ही कृषि उत्पादन को भारी क्षति पहुँचती और किसानो को सोचना पडता कि वे खेती करें अथवा नही) । भारत को केवल खाने के लिए हर साल 13 करोड टन गल्ला चाहिए। सुरक्षित भण्डार का गल्ला बिका क्यो नही ? क्या लाखो लोग भूख से पीडित नही हैं ? गल्ले की किस्म खराब, व क्रय शक्ति कम होने के कारण ही सुरक्षित भण्डार का गल्ला नही बिक सका।

सन् 1960 से 1975 तक यानी 15 वर्ष का कृषि विकास बहुत ही असन्तोषजनक रहा और हमे विदेशो से आयोजित गल्ले पर निर्भर रहना पडा। सन् 1973–74 मे 43 41 लाख टन गल्ले का आयात किया गया जबकि सन् 1975–76 मे हमने 1 03 अरब रुपये का गल्ला आयात किया। आपात्काल के (1976–77) स्वर्ण युग मे 1 अरब 41 करोड 81 लाख रुपये का 81 लाख टन गेहूँ व 60 लाख टन चावल आयात किया गया।

केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन ने अपने श्वेतपत्र मे कहा था कि कृषि उत्पादन को अगर जनसख्या मे बांटे तो उत्पादन वृद्धि मात्र 1 8 प्रतिशत ही थी और इसी प्रकार कृषि और उद्योग की सम्मिलित विकास दर जनसख्या मे बांटने पर मात्र 1 3 प्रतिशत (सन् 1961–62 की कीमतो पर) रही।

पिछले दिनों तत्कालीन प्रधानमन्त्री (श्रीमती गांधी) ने भी स्वीकार किया था कि भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है और हम कृषि प्रधान देश बनाना चाहते हैं। हमें देश के आर्थिक विकास के लिए प्राथमिकता देकर कृषि का ही विकास करना होगा, अपनी पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि के विकास को ही प्रधानता देनी होगी। देश के 32 करोड़ क्षेत्रफल में से 16 करोड़ क्षेत्रफल में खेती होती है। *यह खेती बैलों द्वारा ही सम्भव है, क्योंकि 76 प्रतिशत किसान छोटी जोत वाले हैं जो ट्रेक्टर का उपयोग करने में सक्षम नहीं है।* 12.5 एकड़ से ऊपर की जोत वाले किसान केवल 4 प्रतिशत है। वही ट्रेक्टर का उपयोग करने में समर्थ हैं। फिर भी उन्हें बैलों की जरूरत है। भारतवर्ष की सम्पूर्ण खेती की जुताई के लिए साढ़े सात करोड़ बैलों की जरूरत है। सन् 1947 में भारत में साढ़े सात करोड़ बैल थे। सन् 1971 की जनगणना के अनुसार बैलों की संख्या काफी घट गई। बैलों के दाम इतने अधिक है कि वे छोटे किसानों की खरीद के बाहर हैं, फिर खेती कैसे होगी? दूध का उत्पादन भी खाद्य की पूर्ति में बहुत अंशों में सहायक होता है। भारत में दूध का औसत उत्पादन बहुत कम है। 4 व्यक्ति पीछे प्रतिदिन 1 छटांक (गत वर्षों में हुई श्वेत क्रान्ति से पूर्व यह इससे भी कम 9 व्यक्तियों के पीछे 1 छटांक दैनिक था)। स्वीडन में 5 कि.ग्रा. दूध प्रति व्यक्ति प्रतिदिन का औसत आता है जिसे वह पाउडर बनाकर भारत तथा अन्य देशों में भेजता है। भारत उसके बदले में गोमांस निर्यात करता है। भारत ने अमेरिका, कनाडा, स्वीडन आदि देशों से गोमाँस सप्लाई का 25 वर्ष का ठेका किया है। इससे 3 अरब रुपये की विदेशी मुद्रा प्रति वर्ष कमाई जाती है जबकि बैलों के अभाव में उत्पादन न होने के कारण अरबों रुपये का गल्ला भारतवर्ष को विदेशों से मँगाना पड़ता है। रासायनिक उर्वरकों का अन्धाधुन्ध उपयोग गत वर्षों में किसानों ने शुरू किया। परन्तु कम्पोस्ट खाद व गोबर की देशी खाद के अभाव में खेती की उर्वरा शक्ति क्षीण होने लगी और अब किसान रासायनिक उर्वरक प्रयोग करने में *भय खाने लगा है। पशुओं के अभाव के कारण गोबर की खाद का घोर अभाव है इसी कारण गत वर्ष से उर्वरक की उठान बहुत कम हो गई है।*

रोजगार—जून, *1975* में 87,95,445 शिक्षित नाम रोजगार कार्यालय में दर्ज थे। आपात्काल में यह संख्या *92,54,550* हो गई। इस समय 20 लाख डॉक्टर, इंजीनियर, *वैज्ञानिक बेरोजगार हैं। देश की सम्पूर्ण बेरोजगारी करोड़ों में है। विश्व के किसी भी देश में बेरोजगारी की इतनी विस्फोटक स्थिति नहीं है।* सरकार की उद्योग नीति के *रोजगार बहुत न होने के कारण बेरोजगारी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।* सरकार ने सन् 1976-77 में नए कारखाने लगाने वालों को लागत मूल्यों पर 25 प्रतिशत अनुदान देना तय किया। इसका अर्थ यह हुआ कि जो उद्योगपति जितनी लागत का उद्योग लगाएगा उसे उतना ही अनुदान मिलेगा, अर्थात् उस उद्योग में कितनों को रोजगार मिला यह बात अनुदान में महत्त्वपूर्ण नहीं होगी। चाहिए यह था कि अधिक रोजगार और कम पूंजी के आधार पर चलने वाले उद्योगों को अधिक अनुदान मिलता। संविधान में परिवर्तन करके समाजवाद लिख देने मात्र

से समानता नही आ सकती, उसके लिए उद्योग नीति का तदनुरूप परिवर्तन आवश्यक है।

आपातकाल मे 300 बडे उद्योग और 40 हजार छोटे उद्योग बन्द हो गए। इनमे काम करने वाले मजदूरो की छुट्टी कर दी गई। 43 हजार बेरोजगार हो गए। मजदूरो के वेतन मे कटौती कर दी गई। महँगाई भत्ते को जमा कर दिया गया और बोनस काट दिया गया।

हम कितने कर्जदार—हमने ऊपर प्रगति का लेखा-जोखा देखा। इस प्रगति के लिए हमे कितनी कीमत चुकानी पडी, इसे भी जरा देखे। हमारी सरकारी और निजी उद्योगों की कुल लागत पूँजी का 95 प्रतिशत विदेशी कर्ज का है। कर्ज लेने मे हम यहाँ तक बढ चुके हैं कि मलेशिया का मात्र 60 लाख रुपये का ऋण हमने भूमि विकास एव उच्च शिक्षा के लिए स्वीकार किया। 13 अरब डॉलर (1डॉलर=8रुपया) कर्ज हमारे ऊपर है। हम कर्ज लेकर कर्ज का ब्याज चुका रहे हैं। सोवियत सघ का हम पर 4 19 अरब रुपया कर्ज है। रूस ने रूबल का मूल्य बढा दिया है (8 22 रु के स्थान पर 8 50 रु), जिसके कारण भारत 15 5 करोड रुपये की अतिरिक्त धनराशि का देनदार होगा। इसी प्रकार करीब 60 अरब रु अमेरिकी ऋण भारत पर है जिसका कई अरब रुपया ब्याज के रूप मे भारत को प्रतिवर्ष चुकाना पडता है। देश की कौनसी योजना है जो विदेशी सहायता से मुक्त है? विदेशी कर्ज के अतिरिक्त देशी कर्ज भी हमारे ऊपर कम नही है। भारत का हर शिशु 583 रुपया का कर्ज लिए हुए जन्म लेता है। 30 अरब 66 करोड रुपया प्रान्तो पर बाजार और प्रोविडेन्ट फण्ड का है। राज्यों एव केन्द्रो के सन् 1976–77 के बजटो के घाटे को पूरा करने के लिए विदेशी ऋणो पर हम आज भी निर्भर हैं।

पाँचवी पचवर्षीय योजना 69 हजार 300 करोड रुपये की बनी है उत्तर प्रदेश को 24 अरब 45 करोड रुपया मिलेगा, जबकि महाराष्ट्र को 23 अरब 24 करोड रुपया। कहा यह जाता है कि उत्तर प्रदेश के लिए अधिकतम धनराशि का प्रावधान पाँचवी योजना मे किया गया है जबकि उत्तर प्रदेश की आबादी महाराष्ट्र से दुगुनी है और प्रति व्यक्ति आय 690 रु है जबकि महाराष्ट्र मे 1334 रु। प्रचार तन्त्र के द्वारा इन पहलुओ पर पर्दा डालने का प्रयास किया गया है, क्योंकि प्रचार की रफ्तार आपातकाल मे तेज रही है।

कर भार—देश की गरीब जनता पर करो का भार प्रतिवर्ष बढता जा रहा है। ब्रितानी शासनकाल मे उत्तर प्रदेश मे भू-राजस्व से 21 करोड रुपये की आय थी जो अब बढकर 42 करोड हो गई है। इसमे भूमि विकास कर जोड दे तो 66 करोड रुपये तक होने की सम्भावना है।

सन् 1971–72 से 1975 तक के वर्षों मे कर वृद्धि—सन् 1971–72 मे 2 6 प्रतिशत, सन् 1972–73 मे 16 5 प्रतिशत, 1973–74 मे 12 5 प्रतिशत, 1974–75 मे 20 9 प्रतिशत तथा 1975–76 मे 11 1 प्रतिशत हुई। करो के बढने के साथ-साथ गरीबी बढती जा रही है।

गरीबी कितनी हटी ?—सन् 1971 के संसदीय चुनाव के अवसर पर तत्कालीन प्रधानमन्त्री (श्रीमती गाँधी) ने गरीबी हटाओ का नारा दिया था। आइए, देखें गरीबी कितनी हटी ? या कितनी बढ़ी ? सन् 1966 के पूर्व गरीबी से नीचे के स्तर पर जीने वाले मजदूरों की संख्या 40 प्रतिशत थी, जो सन् 1975 के आते-आते 66 प्रतिशत हो गई। दूसरे शब्दों में, श्रीमती इन्दिरा के कार्यकाल में 26 प्रतिशत की वृद्धि उन लोगों की संख्या में हुई जिनका जीवन स्तर गरीबी की सीमा रेखा से नीचे है और जिन्हें दो जून भर पेट भोजन भी नहीं जुट पाता। गरीबी की सीमा रेखा से नीचे उन्हें रखा जाता है जिनकी प्रति माह आय 15 रुपया तथा 18 रुपया तक होती है। भारत की बढ़ती गरीबी के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ के महानिदेशक ने लिखा है कि हिन्दुस्तान की 66 9 प्रतिशत जनसंख्या गम्भीर रूप से गरीब है। यह गरीबी बराबर बढ़ती जा रही है। भारत विश्व के 16 गम्भीरतम गरीब देशों में एक है। विवश होकर लिखना पड़ता है कि तेज आर्थिक प्रगति किस के पास चली गई ? राष्ट्रीय आय का क्या हुआ ? इसका लाभ मिला देश के केवल 22 बड़े घराने को। क्या यही कॉंग्रेस का समाजवाद है ?

तेल का धनी कुवैत एक रेगिस्तानी देश है जिसे पीने का पानी भी बाहर से मँगाना पड़ता है। उसकी आबादी केवल साढ़े सात लाख है। दुनिया में जितने अरबपति हैं उसके 60 प्रतिशत कुवैत में हैं। अन्य साधनों के लिए सर्वथा दूसरे देशों पर निर्भर इस छोटे से देश की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 12,050 डॉलर है। चिकित्सा व शिक्षा नि:शुल्क है। प्राथमिक कक्षा से लेकर विश्वविद्यालय तक 400 डॉलर से लेकर 1300 डॉलर छात्रवृत्ति हर छात्र को वार्षिक मिलती है। यहां कोई कर नहीं है फिर भी गत वर्ष 500 करोड़ रुपया अतिरिक्त बच गया, जिसे भारत को दिया गया। कुवैत, मारिशस, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, कनाडा आदि में 3 से 5 व्यक्तियों के पीछे 1 मोटरकार है, जबकि भारत में 60 व्यक्तियों के पीछे 1 साइकिल आती है। ऑस्ट्रेलिया की 1 करोड़ 30 लाख आबादी में 40 कारें हैं जबकि भारत की 60 करोड़ आबादी में केवल 20 लाख है।

समान परिस्थितियों वाला चीन सन् 1948 में भारत के बाद स्वाधीन हुआ आज उसकी आबादी 78 करोड़ है। परन्तु उसकी राष्ट्रीय आय प्रति व्यक्ति 270 डॉलर प्रति वर्ष है, जबकि भारत की राष्ट्रीय आय प्रति व्यक्ति 120 डॉलर वार्षिक है। चीन ने गत वर्ष 22 करोड़ टन गल्ला पैदा किया, जबकि भारत में 11 80 करोड़ टन गल्ला पैदा करने का दावा किया गया है। भारत में अरबों रुपये की लागत से खड़े किए विशालकाय इस्पात कारखानों में वर्तमान उत्पादन 22 लाख टन को रिकार्ड उत्पादन बनाया गया है, जबकि चीन में छोटे-छोटे संयन्त्रों द्वारा ही 2 करोड़ टन इस्पात का उत्पादन किया गया। अग्रांकित तालिकाओं से स्पष्ट है कि भारत विश्व में कहाँ खड़ा है—

	देश	डॉलर
1	कुवैत	12,050
2.	युनाइटेड अरब	11,630
3.	अमेरिका	6,200
4	क्यूबा	6 040
5	स्विटजरलैण्ड	6 010
6	स्वीडन	6,900
7.	कैनाडा	5,450
8	पश्चिमी जर्मनी	5 320
9	डेनमार्क	5 210
10	पूर्व जर्मनी	3,000
11	चेकोस्लोवाकिया	2,870
12	पोलैण्ड	2,090
13	रूस	
14	चीन	260
15.	भारत	120

भारत मे प्रति व्यक्ति आय (सन् 1973–74)

	राज्य	रुपये
1	पंजाब	1385
2	महाराष्ट्र	1334
3	गुजरात	1034
4	पश्चिमी बगाल	910
5	हिमाचल प्रदेश	902
6	तमिलनाडु	870
7.	आन्ध्र	808
8	केरल	785
9	राजस्थान	769
10	मध्यप्रदेश	720
11	कश्मीर	708
12	कर्नाटक	704
13	उत्तरप्रदेश	698
14.	मणिपुर	609
15	बिहार	6C4
16	असम	601

गरीबी की सीमा रेखा से नीचे ? (सन् 1970)

	राज्य	जनसंख्या का प्रतिशत
1	पंजाब	15 30
2.	हिमाचल प्रदेश	12 26
3	गोआ दमन दीव	16 52
4.	असम	16 63

5.	केरल	51·13
6.	आन्ध्र	46 94
7.	कर्नाटक	43·55
8.	उत्तरप्रदेश	37 43
9.	बिहार	46·48
10.	पश्चिमी बंगाल	44·67
11.	हरियाणा	24 95
12.	तमिलनाडु	59·23
13.	उडीसा	56·58

सन् 1947 मे स्वाधीनता के बाद भारत 5 अरब पाउण्ड का धनी था। यह धनराशि ब्रितानी सरकार के पास कर्ज के रूप में थी जिसे उसने बाद मे भारत सरकार को अदा किया। पर विगत वर्षों के कांग्रेस शासन मे भारत भिखारी बन गया। अरबो रुपये की देशी व विदेशी सहायता तथा ऋरण कहाँ गए? गरीबी मिटी नही, वरन् बढती गई तथा अमीर और अमीर हो गए देश की सम्पदा वैभव आर्थिक विकास चंद बड़े हाथों मे केन्द्रित हो गया, जो आज भी सत्ता पर हावी है और उन्ही के हित मे सरकारी योजनाएँ व नीतियाँ बनती हैं। वे सत्तारूढ दल को प्रत्येक चुनाव मे भारी धनराशि प्रदान करते हैं। आज देश मे 9 ऐसे बडे उद्योग घराने हैं जिनकी पूंजी 48 अरब 93 करोड रुपये है। उनका 100 कम्पनियाँ कार्यरत हैं।

उद्योग घराने		उद्योग संख्या	पूँजी (करोड़ रु.)	प्रतिशत
1.	टाटा	10	783·4	100
2.	बिड़ला	11	569·5	12
3.	मफतलाल	5	175·2	3 6
4.	ए. सी. सी.	2	149·7	3 6
5.	आई. सी. सी.	2	100·6	2·6
6.	मोदी	2	284·7	6 0
7.	विदेशी नियन्त्रण	19	906·1	18·5
8.	स्वतन्त्र कम्पनियाँ	25	815·2	16 7
9.	अन्य	24	1323·7	26 0
	योग	100	4893·1	100

इसके अतिरिक्त सार्वजनिक और निजी क्षेत्र मे 102 अन्य बड़े उद्योग घराने तथा कम्पनियाँ हैं जिनकी पूंजी 1 अरब 15 करोड़ से अधिक है। सन् 1974-75 मे इनकी कुल पूँजी 2223 4 करोड़ रुपये थी जो आज दूने से ऊपर पहुँच गई है। देश की सत्ता कुछ हाथो में केन्द्रित होने के साथ-साथ आर्थिक सत्ता भी देश के कुछ बड़े पूँजीपतियों के हाथ मे केन्द्रित हो गई है। विगत 30 वर्षो के सत्ता कांग्रेस के शासन की गरीबों को यही भेंट है। सारा विदेशी ऋरण तथा बैंको में जमा जनता का धन इन्हीं बड़े लोगों के हाथो में सिमट कर रह गया और गरीब जनता के हाथो तक पहुँचाने के लिए न तो सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया गया और न ही आर्थिक सत्ता का।

विदेशी एवं बैंकों के ऋणों पर चलने वालो इन व्यापारियों, संस्थानों और उद्योगों द्वारा उत्पादित उपभोक्ता वस्तुओं का नमूना भी देखिए—

भारत मे 8 करोड 20 लाख टन कोयला निकाला जाता है। खनिज तेल 71 लाख 98 हजार टन है। खनिज लोहे का उत्पादन 3 करोड 40 लाख टन, वनस्पति घी का 4 लाख 49 हजार टन, सिगरेट 6600 करोड अदद जबकि कपडा 780 करोड मीटर बनता है अर्थात् कपडे का औसत प्रति व्यक्ति 12 मीटर है। एक गरीब आदमी 10 मीटर की दो धोतियों के अलावा एक बनियान भी नहीं पहन सकता है। जूते 5 करोड 40 लाख जोडे बनते हैं। जिसमे दो करोड जूतो का निर्यात किया जाता है कुछ बडे लोग प्रति वर्ष 3–4 जोडे जूते प्रयोग करते हैं। इसे भी छोड दें तो भी देश मे 58 करोड गरीब लोगो के पैर मे जूते नहीं हैं। वे अपनी जिंदगी नंगे पैर ही काट रहे हैं। बिजली के बल्ब 13 करोड 30 लाख बनते हैं। भारत में इस समय 30 लाख पंखे हैं। रेडियो लाइसेंसो की संख्या 1 करोड 40 लाख है। 1 लाख 40 हजार टेलिविजन है जबकि सन् 1966 में केवल 200 थे। भारत मे मोटरो की संख्या 20 लाख 8 हजार है जबकि देश मे साइकिलें इस समय केवल 1 करोड 25 लाख 77 हजार हैं।

उपरोक्त आंकडो से स्पष्ट है कि देश का सारा आर्थिक विकास केवल 3 लाख व्यक्तियों के लिए किया गया है। यही है आर्थिक विकास का लेखा-जोखा, जिस पर कांग्रेस सरकार गरीबी हटाने का दावा करती थी।"

आर्थिक विकास के अन्तर्गत संरचनात्मक परिवर्तन : उत्पादन, उपभोग, रोजगार, निवेश और व्यापार के संगठन में परिवर्तन

(STRUCTURAL CHANGES UNDER DEVELOPMENT : CHANGES IN THE COMPOSITION OF PRODUCTION, CONSUMPTION, EMPLOYMENT, INVESTMENT AND TRADE)

आर्थिक विकास के अन्तर्गत संरचनात्मक परिवर्तन (Structural Changes under Development)

किसी देश के औद्योगिक उत्पादन मे दीर्घकालीन और सतत् वृद्धि को प्राय आर्थिक विकास कहा जाता है। पैरीक्लीज युग का यूनान, ऑगस्टकालीन रोम, मध्ययुगीन फ्रांस, आधुनिक अमेरिका और भारत तथा मिस्र के कुछ युग इस परिभाषा की परिधि में आते है।[1] सरचनात्मक परिवर्तनों की ओर सकेत करते हुए साइमन कुजनेट्स ने लिखा है—"आधुनिक युग मे, मुख्य सरचनात्मक परिवर्तनो का लक्ष्य कृषि मदो के स्थान पर औद्योगिक मदो का उत्पादन (औद्योगीकरण की प्रक्रिया), ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रो मे जनसख्या वितरण (शहरीकरण की प्रक्रिया); लोगो की सापेक्ष आर्थिक स्थिति मे परिवर्तन (रोजगार की स्थिति तथा आय-स्तर आदि के द्वारा) और माँग के अनुरूप वस्तुओं एव सेवाओ का वितरण रहा है।"[2]

एक अन्य स्थल पर साइमन कुजनेट्स ने लिखा है—"आधुनिक आर्थिक विकास सारभूत रूप मे औद्योगिक व्यवस्था को लागू करना अर्थात् आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के बढते हुए प्रयोग पर आधारित उत्पादन की एक व्यवस्था को लागू करना है, किन्तु इसका अर्थ सरचनात्मक परिवर्तनों से ही है, क्योंकि महत्त्व की दृष्टि से नए उद्योग

1. *Simon Kuznets* : Six Lectures on Economic Growth, p. 13.
2. *Simon Kuznets* : Modern Economic Growth, p. 1.

स्थान लेते हैं और विकसित होते है जबकि पुराने उद्योग लुप्त होते जाते हैं—यह प्रक्रिया बदले मे समाज की उस क्षमता की माँग करती है जो ऐसे परिवर्तनो को ग्रहण कर सके। एक समाज को इतना समर्थ और योग्य होना चाहिए कि वह प्रति व्यक्ति उत्पादन मे अभिवृद्धि करने वाले उत्तरोतर नव-प्रवर्तनो को ग्रहण कर सके और स्वय को उनके अनुकूल ढाल सके। इस प्रकार प्रति व्यक्ति उत्पादन मे वृद्धि महत्त्वपूर्ण है क्योकि इसमे सरचनात्मक परिवर्तन आवश्यक रूप से सन्निहित है और ये परिवर्तन प्राविधिक नव-प्रवर्तनो तथा समाज की बढती हुई माँगो और परिवर्तनो के अनुकूल समाज के ढलने की क्षमताओ के फलस्वरूप होते जाते है।"[1]

नियमित आर्थिक विकास के दो मूल स्रोत है—(1) प्राविधिक ज्ञान (Technology) एव (2) सामाजिक परिवर्तन (Social Change)। इन दोनो की अन्त क्रिया का परिणाम ही आर्थिक विकास होना है। इस सम्बन्ध मे साइमन कुजनेट्स के मतानुसार, "किसी भी युग मे आर्थिक वृद्धि अर्थ-व्यवस्था मे मात्र प्राविधिक ज्ञान अथवा सामाजिक परिवर्तनो के कारण ही नही होती बल्कि यह कृषि, उद्योग और सेवा क्षेत्रो मे विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप होने वाले कतिपय सरचनात्मक परिवर्तनो के कारण होती है।"[2] पुराने उद्योगो का नवीनीकरण होने लगता है तथा नए उद्योग अस्तित्व मे आते हैं। आय के वितरण की स्थिति परिवर्तित होने लगती है। उत्पादन, उपभोग, रोजगार, विनियोजन, व्यापार आदि के ढाँचो मे क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लगते हैं।

सरचनात्मक परिवर्तनो को निम्नलिखित कुछ मुख्य शीर्षको के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है जैसे—

(1) औद्योगिक ढाँचे मे परिवर्तन,
(2) औद्योगिक क्षेत्र के आन्तरिक ढाँचे मे परिवर्तन,
(3) आय के वितरण मे परिवर्तन, एव
(4) जनसख्या के विकास की प्रवृत्तियाँ।

1 औद्योगिक ढाँचे मे मुख्यत दो परिवर्तन होते है। प्रथम, उत्पादन मे कृषि क्षेत्र का अश कम हो जाता है तथा द्वितीय, उद्योग और सेवा क्षेत्रो का उत्पादन प्रतिशत अधिक हो जाता है। कुजनेट्स के अनुसार, सामान्यत विकास के पूर्व की स्थिति मे कृषि क्षेत्र के उत्पादन मे औसतन योग लगभग 50% था, और कुछ देशो मे तो यह अनुपात दो-तिहाई से भी अधिक था। विकास की एक लम्बी अवधि के पश्चात् कृषि-उत्पादन का भाग घटकर 20% और कुछ देशो मे 10%से भी कम हो गया। ऑस्ट्रेलिया की स्थिति इस दृष्टि से अपवाद रही। उद्योग का अश जो विकास से पूर्व इन देशो मे कुल उत्पादन का 20 से 30% था, वह दी हुई अवधि मे बढकर 40 से 50% हो गया।[3]

1 *Simon Kuznets* Six Lectures on Economic Growth, p 15
2 *Simon Kuznets* Modern Economic Growth p 13
3 Ibid, p. 47, Tab 3 1.

2 औद्योगिक क्षेत्र के आन्तरिक ढाँचे के परिवर्तन तकनीकी (Technology) तथा अन्तिम माँग (Final Demand) से सम्बन्धित होते हैं। इन परिवर्तनों के अन्तर्गत निम्नांकित परिणाम आते है—

(i) उत्पादन वस्तुओं का अनुपात अधिक हो जाता है।
(ii) खाद्य और वस्तुओं के उपभोग मे कमी होती है, किन्तु कागज, धातु तथा रासायनिक पदार्थों का उपभोग बढ जाता है।
(iii) उत्पादक इकाइयों का आकार बढ जाता है।
(iv) शहरीकरण की प्रवृत्ति अधिक बढ जाती है।
(v) निजी व्यवसाय मे रहने की प्रवृत्ति के स्थान पर वेतनभोगी व्यवसायों के प्रति आकर्षण बढ़ता है।
(vi) श्वेत-पोषी व्यवसायों के प्रति लोग अधिकाधिक आकर्षित होते हैं।

3 सरचनात्मक-परिवर्तन आय के वितरण से सम्बन्धित होते है । इन परिवर्तनों के अन्तर्गत परिवारों की आय का राष्ट्रीय आय मे प्रतिशत घट जाता है। प्रसगान्तर अध्ययन के अनुसार यह 90% से घटकर लगभग 75% रह जाता है। सरकार की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण होती है और निगमो का महत्त्व भी बढ जाता है। सरकारी अनुदानो की राशि और हस्तान्तरण आय (Transfer incomes) के भाग मे वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त सम्पत्ति से प्राप्त आय (Property Income) का भाग 20-40% से घटकर केवल 20% या इससे भी कम हो जाता है। निजी व्यवसाय मे सलग्न व्यक्तियों के स्थान पर वेतन भोगियो की सख्या बढ़ने लगती है। व्यक्तिगत आय की विषमताएँ कम हो जाती हैं। उत्पादन-साधनो को मिलने वाली आय और व्यक्तिगत आय के वितरण (Distribution of the Factoral and Personal Income) मे परिवर्तन आने लगता है।

4 अर्थ-व्यवस्थाओ में कुछ सरचनात्मक परिवर्तन जनसख्या के ढाँचे से सम्बन्धित होते हैं। आर्थिक वृद्धि की स्थिति मे जनसख्या भी तीव्र गति से बढती है। पश्चिमी यूरोप के अनेक देशो मे जहाँ पूँजी प्रचुर और श्रम दुर्लभ था, वहाँ जनसख्या की वृद्धि का आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण योग रहा है। किन्तु ऐसे अल्प-विकसित देशो में जहाँ पूँजी दुर्लभ और श्रम प्रचुर होता है, जनसख्या वृद्धि का प्रभाव विपरीत होता है। आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप प्राय शैशवकालीन मृत्यु-दर कम हो जाती है। शैशवकालीन मृत्यु-दर में कमी के कारण उत्पादक आयु का अनुत्पादक आयु में अनुपात बढ जाता है। श्रमिकों मे स्त्रियो का अनुपात कम हो जाता है, किन्तु सेवा क्षेत्र में शिक्षित स्त्रियो की सख्या मे पर्याप्त वृद्धि होती है।

प्रायः पूर्व विकास की स्थिति मे कुल जनसख्या का अधिकतम अनुपात 15 वर्ष की आयु तक होता है। भारत मे जनसख्या का 50 प्रतिशत से भी अधिक भाग 18 वर्ष की आयु मे कम वाला है। आर्थिक विकास के कारण मृत्यु-दर में कमी आती है, परिणामस्वरूप उत्पादकीय वर्ग का अनुपात बदल जाता है।

आर्थिक विकास की प्रक्रिया विदेशी व्यापार के अनुपातो को भी प्रभावित

करती है। विदेशी व्यापार के औसत अनुपात विकसित देशो मे लगभग 31% तथा अविकसित देशो मे 20% से भी कम रहे है। अविकसित देशो के लिए विदेशी व्यापार का अत्यधिक महत्त्व होते भी उत्पादन की आधुनिक तकनीकी के अभाव मे, विकसित देशो की प्रतिस्पर्द्धा मे नही टिक पाते। आर्थिक विकास की गति के साथ-साथ एक ओर जहाँ उत्पादन मे पूँजी-निर्माण का अनुपात बढने लगता है तथा कुछ उपभोग व्यय मे भोजन तथा आवास सम्बन्धी व्यय का अनुपात घटने लगता है, वही दूसरी ओर विदेशी व्यापार की मात्रा, स्वरूप तथा दिशा मे भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं।

आर्थिक विकास के कारण न केवल आर्थिक ढाँचे मे ही परिवर्तन होते हैं, वरन् गैर-आर्थिक ढाँचे मे भी अनेक ऐसे क्रान्तिकारी परिवर्तन होते है जो प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से देश की आर्थिक सरचना को प्रभावित करते है। प्राय अविकसित देशो मे राजनीतिक अस्थिरता, राष्ट्रीय हित के विषयो पर भी राजनीतिक दलो मे मतैक्य का अभाव, प्रभावहीन सरकार आदि इन देशो के आर्थिक विकास तथा आर्थिक स्थायित्व पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है। सांस्कृतिक मूल्यो के अन्तर्गत एकता, सहयोग तथा सामूहिक रूप से कार्य करने की प्रवृत्ति आदि वे मूल्य लिए जाते हैं जो प्रत्यक्ष रूप मे श्रम विभाजन व बाजार सम्बन्धो को प्रभावित करते है तथा अप्रत्यक्ष रूप से उस राजनीतिक सगठन को प्रभावित करते हैं जो देश के आर्थिक विकास से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने व नीति निर्धारण की शक्ति रखते हैं।

सक्षेप मे, आर्थिक विकास के कारण सभी प्रकार के आर्थिक कार्यो (Economic Functions) की सरचना मे परिवर्तन आते हैं। उत्पादन-कार्यो (Production Functions) मे तकनीकी भूमिका प्रमुख हो जाती है। बचत के अन्तर्गत विकास की स्थिति मे व्यक्तिगत बचत *(Personal Savings)* का अनुपात कम हो जाता है। सरकारी बचत का अनुपात प्राय बहुत कम होता है। अविकसित देशो मे व्यक्तिगत बचत का अनुपात बहुत अधिक होता है। बचत की यह स्थिति आर्थिक सगठन की ओर सकेत करती है अर्थात् अविकसित देशो मे असगठित क्षेत्रो मे बचतें प्राप्त होती है जबकि विकसित देशो मे सगठित क्षेत्र का कुल बचतो मे अनुपात सर्वाधिक होता है। विदेशी व्यापार की स्थिति मे भी अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन होते है।

उत्पादन की सरचना, उपयोग व प्रवृत्तियाँ (Structure, Use & Trends of Output)

कृषि, उद्योग आदि क्षेत्र मिलकर राष्ट्रीय उत्पादन करते है। उत्पादन का उपभोग तीन मदो पर होता है—(i) उपभोग, (ii) पूँजी-निर्माण, तथा (iii) निर्यात।

(i) उपभोग दो प्रकार के हैं—(a) निजी उपभोग, एव (b) सरकारी उपभोग। निजी उपभोग की मद मे भूमि व आवासीय भवनो के सभी प्रकार के उपभोग-पदार्थों के क्रय सम्मिलित हैं। यह तीनो उपभोगो मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है

विकसित देशो मे उत्पादन का लगभग 64% निजी उपभोग पर व्यय होता है। सरकारी उपभोग के अन्तर्गत वस्तुओ व सेवाओ की खरीद आती है। इसमें से उन वस्तुओ व सेवाओ की मात्रा को घटा दिया जाता है जिसकी पुनः बिक्री की जाती है। राजकीय व्यावसायिक प्रतिष्ठानो व निगमों द्वारा क्रय को सरकारी उपभोग में सम्मिलित नही किया जाता, किन्तु सुरक्षा व्यय को इस मद के अन्तर्गत लिया जाता है। "इस प्रकार परिभाषित सरकारी व्यय राष्ट्रीय उत्पादन के लगभग 14% से कुछ अधिक भाग के लिए उत्तरदायी रहा है।"[1]

(ii) पूँजी-निर्माण वस्तुओ के उस मूल्य को प्रकट करता है, जिससे देश के पूंजी-सचय मे वृद्धि होती है। विशुद्ध पूंजी-निर्माण मे पूँजी के उपभोग व ह्रास पर विचार भी किया जाता है। कुजनेट्स के अनुसार कुल राष्ट्रीय उत्पादन का 20 से 25% भाग सकल पूंजी-निर्माण हेतु काम आता है। विशुद्ध पूँजी-निर्माण में राष्ट्रीय उत्पादन का 15% भाग होता है। देश की बचत राष्ट्रीय पूंजी-निर्माण को प्रकट करती है तथा देश के पूँजी-संचय मे होने वाली वृद्धि घरेलू पूँजी-निर्माण कहलाती है। अधिकांश देशो मे सकल पूंजी-निर्माण मे यह अनुपात 10 से 20% बढ गया। विकास मे वृद्धि के साथ-साथ यह अनुपात 10 से 20% तक बढ जाता है। किन्तु इंग्लैण्ड एव अमेरिका मे 19वी शताब्दी के मध्य से यह अनुपात स्थिर चला आ रहा है। उल्लेखनीय है कि एक शताब्दी की दीर्घ अवधि के उपरान्त भी कुल बचतों का अनुपात इन दो देशो मे स्थिर बना रहा जबकि प्रति व्यक्ति उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हुई।

इस प्रकार राष्ट्रीय उत्पादन मे पूँजी-निर्माण का भाग या तो स्थिर रहा अथवा कुछ बढा किन्तु सरकारी उपभोग व्यय के अनुपात मे वृद्धि के साथ, कुल राष्ट्रीय उत्पादन मे निजी उपभोग व्यय के अनुपात मे निश्चित रूप से गिरावट आई। विश्व युद्ध से पूर्व यह अनुपात 80 प्रतिशत था जो युद्ध से दो दशाब्दी बाद की अवधि मे गिरकर 60% रह गया। अर्थात् कुल राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि-दर की अपेक्षा कुल घरेलू उपभोग की वृद्धि-दर बहुत कम रही।

इस सन्दर्भ मे सोवियत रूस के आँकड़े अधिक दिलचस्प हैं, क्योंकि स्वतन्त्र बाजार वाले देशो की भाँति वहाँ भी विकास के परिणामस्वरूप घरेलू उपभोग का अनुपात कम तथा सरकारी उपभोग व कुल पूंजी का राष्ट्रीय उत्पादन मे अनुपात अधिक हुआ, किन्तु इन परिणामो की प्राप्ति रूस ने स्वतन्त्र उद्यम वाली अर्थ-व्यवस्थाओं की तुलना मे केवल $\frac{1}{3}$ अवधि मे ही कर ली।

देश की स्थायी सम्पत्ति मे पूंजी-निर्माण की वृद्धि के रूप को देखते हुए दो महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आते हैं—प्रथम, स्थायी सम्पत्ति मे वृद्धि, तथा द्वितीय, वस्तुओ की संचित मात्रा में कमी। इस कमी की पृष्ठभूमि मे यातायात व संचार के साधनो में सुधार, कृषि-क्षेत्र के अंश मे कमी तथा माँग मे अल्पकालीन परिवर्तनो की

1 Ibid, p. 110

पूर्ति के लिए वस्तुओं की संचित-मात्र के स्थान पर बढ़ी हुई उत्पादन-क्षमता का प्रयोग है। इसके अतिरिक्त स्थायी सम्पत्ति व कुल पूंजी-निर्माण मे भवन-निर्माण के अनुपात मे गिरावट आती है, किन्तु उत्पादक साज-सामान (Producer's Equipment) के अनुपात मे वृद्धि होती है। उत्पादन-वृद्धि का कारण विकास के परिणामस्वरूप जनसख्या की वृद्धि-दर मे कमी तथा औद्योगिक सयत्रो का विस्तार होना है।

कुजनेट्स ने कुछ देशो की पूंजी-प्रदा अनुपातों (Capital Output Ratios) की गणना की है। इनके अनुसार, "इटली के राष्ट्रीय उत्पादन की दर ने, पूंजी-प्रदा अनुपातो मे कमी के कारण, पर्याप्त वृद्धि प्रदर्शित की। नार्वे मे पूंजी-प्रदा अनुपातो मे गिरावट बहुत कम रही। किन्तु इग्लैण्ड, जर्मनी, डेनमार्क, स्वीडन, अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, जापान आदि देशो मे सकल सीमान्त पूंजी-प्रदा अनुपातो (*Gross Incremental Capital-output Ratios*) ने वृद्धि प्रदर्शित की—प्रारम्भिक अवधि मे वृद्धि 3 व 4 5 के मध्य थी तथा वर्तमान अवधि मे 4 व 6 के बीच रही।"[1]

सीमान्त पूंजी-प्रदा अनुपातो मे इस वृद्धि का कारण न तो सकल घरेलू पूंजी-निर्माण की सरचना मे परिवर्तन रहे हैं, और न ही कृषि, खान व निर्माण आदि उद्योगो द्वारा पूंजी-निर्माण मे उत्पन्न सरचनात्मक परिवर्तन। श्रम-साधन मे हुए परिवर्तनो के कारण भी इन अनुपातो मे होने वाली वृद्धि प्रमाणित नही होती। यह स्थिति इस सिद्धान्त को असत्य प्रमाणित करती है कि जब श्रम-शक्ति मे वृद्धि की दर घटती है तब पूंजी-प्रदा अनुपात बढते हैं। इन अनुपातो मे वृद्धि के कारण तथा विभिन्न देशो मे पाए जाने वाले इन अनुपातो के स्तर मे अन्तर उन अनेक अवस्थाओ मे अन्तर्निहित हैं जो भौतिक पूंजी की मांग को प्रभावित करती हैं तथा जिनके कारण उत्पादन की एक ही मात्रा श्रम व पूंजी के विभिन्न सयोगो द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

इग्लैण्ड व अमेरिका के अतिरिक्त अधिकांश देशो मे पूंजी-निर्माण का उत्पादन अधिक हुआ। "यदि पूंजी-निर्माण का भाग अधिक होना है तो सीमान्त पूंजी-प्रदा अनुपात उसी स्थिति मे स्थिर रहते हैं जब राष्ट्रीय उत्पादन मे सानुपातिक वृद्धि होती है।"[2] इस स्थिति को कुजनेटस् ने एक उदाहरण द्वारा प्रस्तुत किया है। मान लीजिए कुल घरेलू उत्पादन = \$ 1000, सकल घरेलू पूंजी-निर्माण = \$ 150, वास्तविक वृद्धि-दर = 50 प्रतिशत तथा सीमान्त सकल पूंजी-प्रदा अनुपात = 3 0 है। यदि कुल उत्पादन मे पूंजी-निर्माण का अनुपात $\frac{150}{1000}$ से बढकर $\frac{210}{1000}$ (40% की वृद्धि) हो जाता है, तब सीमान्त पूंजी-प्रदा अनुपात उसी स्थिति मे 3 0 रहेगा जब उत्पादन की वृद्धि दर 5 से बढकर 7 (अथवा 40% की वृद्धि) हो जाती है।

1. Ibid, p. 122.
2 Ibid, p. 123

उत्पादन की संरचना मे जनसंख्या का वृद्धि-दरो का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। "यदि जनसख्या घटती हुई दर से बढती है, जैसाकि अनेक विकसित देशों में होना है, तो कुल उत्पादन मे स्थिर दर से भी वृद्धि होने पर, प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ती हुई दर से बढ़ता है। पूंजी-निर्माण के भाग मे निरन्तर वृद्धि होती रहने की स्थिति मे यदि पूंजी-प्रदा अनुपात को स्थिर रखना है और कुल उत्पादन की वृद्धि में तीव्र से तीव्रतर गति बनाए रखनी है तो प्रति व्यक्ति उत्पादन मे वृद्धि की दर कुल उत्पादन की वृद्धि-दर से भी कही अधिक होनी चाहिए। इस प्रकार, प्रति व्यक्ति उत्पादन की उत्तरोत्तर बढती हुई दरो के कारण अधिक बचतें होती हैं। अधिक बचत के परिणामस्वरूप पूंजी-निर्माण का भाग भी बढता है—जिसका आशय यह है कि यदि सीमान्त पूंजी-प्रदा अनुपात को बढती हुई स्थिति मे रखना है तो कुल उत्पादन व प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि-दर और भी अधिक तीव्र की जानी चाहिए।"[1]

उपभोग में संरचनात्मक परिवर्तन
(Structural Changes in the Composition of Consumption)

उपभोग की सरचना की विवेचना व्यक्तिगत बचत व उपभोग्य आय (Disposable Income) के अनुपातो की दीर्घकालीन प्रवृत्तियो के आधार पर की जा सकती है। व्यक्तिगत करो (आयकर आदि) के भुगतान के पश्चात् जो आय परिवारो के पास शेष रहती है, उसे उपभोग्य आय कहते हैं। यह वह आय होती है जिसे लोग अपनी रुचि के अनुसार खर्च कर सकते हैं अथवा बचा सकते हैं। इस आय का वह भाग जिसे वे वस्तुओ व सेवाओं पर व्यय नही करते, व्यक्तिगत बचत की श्रेणी मे आता है।

विगत वर्षों मे, विशुद्ध बचत का लगभग 48 से 49% भाग परिवारो से प्राप्त हुआ है। विशुद्ध बचत कुल बचतो का 60 प्रतिशत व कुल राष्ट्रीय उत्पादन का 23 प्रतिशत रही। इस प्रकार परिवारो की विशुद्ध बचत का भाग कुल राष्ट्रीय उत्पादन मे 6·7 प्रतिशत रहा। उपभोग आय कुल उत्पादन का 70 3 प्रतिशत रही। अत. विशुद्ध बचत, उपभोग आय का औसतन $\frac{6\,7}{70{\cdot}3}$ अथवा 9 5 रही।[2]

कुजनेट्स के अध्ययनानुसार गत एक शताब्दी की अवधि में प्रति व्यक्ति उपभोग्य आय की वृद्धि-दर अवधि के अन्त मे अपने प्रारम्भिक मूल्य का 4·5 गुना हो गई। उपभोग्य आय में इतनी अधिक वृद्धि के बावजूद, बचत का अनुपात बहुत कम रहा, क्योंकि उपभोग्य आय का बड़ा भाग उपभोग व्यय के रूप में काम आया। उपभोग प्रवृत्ति के अधिक रहने के मुख्यत: दो कारण है—आधुनिक आर्थिक उत्पादन के शहरी ढांचे के कारण जीवन-लागत मे अतिरिक्त वृद्धि तथा शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के लिए मानव पर अधिकाधिक विनियोजन।[3]

1. Ibid, p 124
2. Ibid, p 125.
3. Ibid, p. 128, Table 5.2.

सारणी 5 2 मे कुजनेट्स ने उपभोग के ढाँचे मे परिवर्तनो की पाँच श्रेणियो मे प्रस्तुत किया है—भोजन, पेय, वस्त्र, आवास तथा अन्य। इन मदो मे सरकार द्वारा प्रदत्त शिक्षा, स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाएँ सम्मिलित नही है।

उपभोग (वर्तमान मूल्यो पर)
(Current Prices)

	भोजन	पेय पदार्थ व तम्बाकू	वस्त्र	आवास	अन्य
	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
इंगलैण्ड					
1880–99	34 2	13 8	—	10 7	41 3
1950–1959	31 3	14·1	11 7	12 8	30 1
इटली					
1861–80	52 0	17 2	—	5 8	25 0
1950–1959	46 6	10 7	11 5	5 2	26 0
नार्वे					
1865–1875	45 2	7 0	10 9	19 8	17 1
1950–59	30 3	8 1	16 7	10 1	34 7
कनाडा					
1870–1890	32 2	5 7	16 9	26 7	18 5
1950–59	23 7	8 3	10 2	21 2	34 6

निष्कर्षत कुल उपभोग मे भोजन-व्यय का भाग कम हुआ, वस्त्रो के व्यय का भाग अधिक हुआ। आवासी भवनो पर किए गए व्यय की स्थिति स्पष्ट नही है। 'अन्य' मदो के अन्तर्गत घर के फर्नीचर व साज-सामान, वाहन, चिकित्सा-सुविधा मनोरजन आदि को जो भार दिया गया है, उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जैसे-जैसे प्रति व्यक्ति उपभोग-वस्तुओ के क्रय मे वृद्धि होती है, उक्त वस्तुओ के भाग म वृद्धि होगी।

वस्त्र वाली मद मे पाए जाने वाले अन्तर और भी अधिक उल्लेखनीय हैं। जर्मनी, नार्वे व स्वीडन मे वस्त्रो की मद वाले भाग मे पर्याप्त वृद्धि होती है, किन्तु इग्लैण्ड म वस्त्रो का अनुपात वर्तमान कीमतो पर स्थिर रहता है, स्थिर कीमतो पर यह अनुपात गिरता है।

कुल उपभोग मे आवासीय व्यय के अनुपात मे उक्त पदो की अपेक्षा अधिक अन्तर पाए गए है। किन्तु कुजनेट्स द्वारा प्रस्तुत अनुमानो के अनुसार नार्वे, स्वीडन व इग्लैण्ड मे आवासीय भवनो के अनुपात मे गिरावट रही। अमेरिका व कनाडा मे इस पद की प्रवृत्ति स्थिरता की रही—विशेषकर द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व की अवधि मे प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व जर्मनी मे इस मद मे वृद्धि की प्रवृत्ति रही। उक्त निष्कर्षो से दो तथ्य स्पष्ट होते हैं। प्रथम, आधुनिक आर्थिक वृद्धि के दौरान, उपभोग वस्तुओ

की क्रय के स्तर व ढांचे का यदि विश्लेषण किया जाता है तो उपभोग प्रवृत्ति की सीमा का अधिक रहना निश्चित है, किन्तु दूसरी ओर उपभोग की मदों के उपवर्गों की प्रवृत्तियो मे स्वाभाविक अनुमानो के विपरीत अनेक असंगतियाँ सम्भव हैं। भोजन की किसी विशेष मद पर व्यय की प्रवृत्ति गिरने के स्थान पर बढ़ने की हो सकती है और इसी प्रकार वस्त्रो के किसी मद पर व्यय की प्रवृत्ति बढने के स्थान पर घटने की हो सकती है।

उपभोग की उक्त समस्त मदो के निष्कर्षों के कारण को तीन श्रेणियो मे रखा जा सकता है—(1) आधुनिक अर्थ-व्यवस्था के बदलते हुए उत्पादन-ढांचे मे परिवर्तनो के कारण जीवन की अवस्थाएँ भिन्न हो गई हैं; जिन्होंने उपभोग की सरचना व स्तर मे अनेक बड़े परिवर्तन ला दिए हैं, (2) प्रायोगिक परिवर्तन (Technolog cal Changes) विशेषकर उपभोग-वस्तुओं के क्षेत्र मे तथा (3) क्रियाशील जनसख्या के व्यावसायिक वितरण व आय-वितरण के विभिन्न पहलुओं मे परिवर्तन। इन तत्त्वो के कारण उपभोग प्रवृत्ति प्रभावित होती है तथा कुल उपभोग मे अनेक उपवर्गों का अनुपात परिवर्तित होता रहता है। यद्यपि ये तत्त्व परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं, किन्तु पृथक् रूप से इनका विश्लेषण श्रेष्ठ हो सकता है।

रहन-सहन की अवस्थाओं मे परिवर्तनो के अन्तर्गत सबसे प्रमुख प्रवृत्ति शहरीकरण की है। श्रम-विभाजन व विशिष्टीकरण की प्रवृत्ति मे वृद्धि होती है, परिवारो की क्रियाएँ बाजारोन्मुख (Shifts from non-market activities to market activities) होने लगती हैं।

यह क्रिया पूंजी-निर्माण के अनुपात मे उपभोग वस्तुओ के उत्पादन को निश्चित रूप से बढाती हो, यह आवश्यक नही है, क्योंकि अतीत मे भी विशिष्टीकरण व श्रम-विभाजन की स्थिति से पूर्व पूंजीगत वस्तुओ का उत्पादन सापेक्ष रूप से इतना अधिक होता रहा है जितना कि उपभोग्य वस्तुओ का। किन्तु इस परिवर्तन का प्रभाव उपभोग्य वस्तुओ के क्रय के ढांचे की प्रवृत्तियो पर अवश्य होता है।

द्वितीय, शहरीकरण से जीवन-लागत बढ़ जाती है। जीवन-लागत की इस वृद्धि का उपभोग्य वस्तुओ के क्रय पर प्रभाव पड़ता है। बचत व पूंजी-निर्माण भी प्रभावित होते हैं। इस स्थिति का विभिन्न उपभोग्य वस्तुओ पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, शहरी आबादी की खरीदों का शहरों मे उत्पादित उन वस्तुओं की अपेक्षा जिनका ग्रामीण क्षेत्रो मे उपभोग होता है, कृषि-पदार्थों पर कहीं अधिक प्रभाव पड़ता है।

शहरी जीवन 'प्रदर्शनकारी प्रभाव' (Demonstration Effect) से प्रभावित होता है। प्रदर्शनकारी प्रभाव के कारण उपभोग का स्तर बढ़ जाता है। नए उपभोग्य पदार्थो के प्रति आकर्षण में वृद्धि होती है। इसके परिणामस्वरूप सापेक्ष रूप से बचत व पूंजी-निर्माण की अपेक्षा उपभोग-व्यय की प्रवृत्तियाँ अधिक स्पष्ट रूप से प्रभावित होती हैं।

उपभोग के ढांचे को प्रभावित करने वाले अन्य परिवर्तन प्रायोगिक परिवर्तन (Technological Changes) हैं। ये परिवर्तन ही आधुनिक आर्थिक वृद्धि के मूल

स्रोत हैं। इन परिवर्तनो के कारण नई प्रकार की उपभोग वस्तुएँ अस्तित्व मे आती है और पुरानी वस्तुओ मे अनेक सुधार होते हैं। खाद्य पदार्थो के अन्तर्गत भी रेफ्रीजरेशन, केनिंग (Refrigeration and Canning) आदि नवीन प्रक्रियाओ के कारण भोजन की कुल मांग और विभिन्न वर्गो मे इसके वितरण पर प्रभाव पडता है। मानव निर्मित वस्त्रो, विद्युत प्रसाधनो, रेडियो, टेलीविजन, मोटरगाडियाँ हवाई यातायात आदि नई उपभोग वस्तुओ का बढता हुआ उपभोग इसी प्रकार के परिवर्तनो के कारण होता है। यद्यपि तकनीकी परिवर्तनो के पूँजीगत वस्तुओ व उपभोग वस्तुओ पर सापेक्ष प्रभाव की माप कठिन है, तथापि आज के विकसित देशो मे अनेक प्रकार के नए से नए उपभोग-पदार्थों के बढते हुए उपभोग मे प्रायोगिक परिवर्तनो का प्रभाव उपभोग की सरचना पर स्पष्टत परिलक्षित होता है।

प्रायोगिक प्रगति के कारण उपभोक्ता अधिमानो मे भी क्रान्तिकारी परिवतन आते हैं। उदाहरणार्थ, पोषण तत्त्वो के सम्बन्ध म अधिक ज्ञान-वृद्धि के कारण भोजन की वस्तुओ के प्रति उपभोक्ताओ की रुचि मे अन्तर आ जाता है। यह निर्विवाद मत है कि प्रायोगिक प्रगति के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय का स्तर काफी अधिक बढा है तथा समाज के विभिन्न वर्गों म उपभोग्य वस्तुओ के वितरण की स्थिति मे मौलिक भिन्नता आ गई है।

उपभोग प्रभावित करने वाले तीसरे प्रकार के परिवर्तन आय वितरण से सम्बन्धित होते हैं। जब क्रियाशील श्रमिक निजी व्यवसाय से हटकर सेवा-क्षेत्र के प्रति आकर्षित होते हैं तब वेतनभोगी श्रमिको का कुल श्रम शक्ति मे अनुपात अधिक हो जाता है। परिणामस्वरूप, उपभोग्य वस्तुओ का वितरण व बचतें प्रभावित होती है। अप्रशिक्षित व्यवसायो से हटकर श्रमिको का श्वेतपोशी व्यवसायो की ओर उन्मुख होना भी उपभोग के ढाँचे मे बडा परिवतन लाता है। निजी अन्यवसायियो की अपेक्षा श्वेतपोशी व्यवसायो मे कार्यरत वेतनभोगी-वर्ग जीवन का न्यूनतम स्तर अधिक ऊँचा रहता है। उनकी इस प्रवृत्ति का उपभोग की सरचना पर विशेष प्रभाव होता है।

"आय वितरण सम्बन्धी परिवर्तनो के कारण व्यक्तियो का जीवन-स्तर इस प्रकार प्रभावित होता है कि उपभोग व्यय का उन वस्तुओ पर अनुपात बढ जाता है जिनकी आय लोच इकाई से कम होती है तथा जिन वस्तुओ की आय लोच इकाई मे अधिक होती है, उन पर उपभोग व्यय का अनुपात कम हो जाता है। इसी कारण भोजन की मद का व्यय आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप कम हो जाता है क्योकि विकसित देशो मे इस मद की आय लोच सामान्यत 5 तथा निर्धन देशो मे 7 पायी जाती है। दूसरी ओर वस्त्रो के मद की आय लोच इकाई से अधिक प्राय 1 7 के लगभग होनी है। कुछ देशो म मोटर आदि ओटोमोबाइल्स की आय लोच 1 8 तथा शराब आदि मादक पदार्थों के लिए आय लोच 1 94 पायी जाती है। अत आय मे वृद्धि के कारण इकाई से अधिक आय लोच वाली वस्तुओ—वस्त्र, ओटोमोबाइल्स,

मादक पदार्थ आदि पर उपभोग व्यय का अनुपात आय में वृद्धि से अधिक हो जाता है।"[1]

उपभोग की सरचना मे परिवर्तनो के लिए उत्तरदायी उक्त तत्त्वो के अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी हैं, जिनमे प्रमुख जीवन के मूल्यो से सम्बन्धित होते हैं। यदि आज का व्यक्ति वर्तमान मे उपभोग को अधिक महत्त्व देता है, भौतिक आवश्यकताओ की तुष्टि के प्रति अधिक व्यग्र रहता है अपेक्षाकृत भविष्य के लिए बचत की राशि मे वृद्धि करने के, तो ऐसी स्थिति मे उपभोग का अनुपात, उपभोग आय मे, बचत व पूंजी-निर्माण की अपेक्षा कही अधिक बढ़ जाता है।

सामान्यत: उपभोग के लिए राष्ट्रीय आय का 85 से 100 प्रतिशत उपयोग किया जाता है। अत. पूंजी निर्माण मे राष्ट्रीय आय का भाग प्राय. शून्य से 15 प्रतिशत तक रहता है। अल्पकाल मे अथवा किसी व्यापार चक्रीय अवधि के कालान्तर मे उपभोग व पूंजी-निर्माण मे राष्ट्रीय आय के अनुपात उक्त अनुपातो की तुलना मे कुछ कम अथवा अधिक हो सकते है। किन्तु हम उपभोग के विश्लेपण को दीर्घकाल से सम्बन्धित रखते हुए यह मान्यता लेकर चलते है कि दीर्घकाल मे राष्ट्रीय आय का उपभोग पर अनुपात 82 से 98 प्रतिशत की सीमाओ मे रहता है। विकसित देशो मे यह प्रतिशत यदि 82 तथा अर्द्ध-विकसित देशो मे 98 रहता है तो अर्द्ध-विकसित क्षेत्रो की प्रति व्यक्ति आय जो विकसित क्षेत्रो की प्रति व्यक्ति आय का लगभग 17वाँ भाग होती है, उपभोग पर इस प्रकार व्यय होती है कि अर्द्ध-विकसित क्षेत्रो मे प्रति व्यक्ति उपभोग का स्तर विकसित क्षेत्रो की अपेक्षा 1/13 रहता है।[2]

व्यापार में संरचनात्मक परिवर्तन
(Structural Changes in the Composition of Trade)

आर्थिक विकास के कारण उपभोग व उत्पादन की सरचना मे होने वाले परिवर्तन आय के स्तर पर निर्भर करते है। किन्तु विकास की अवस्था विदेशी व्यापार की संरचना के लिए सापेक्ष रूप से कम उत्तरदायी है। विदेशी व्यापार के अनुपात (Foreign Trade Proportions) मुख्यत: देश के आकार द्वारा निर्धारित होते हैं। देश के आकार व विदेशी व्यापार के अनुपातो मे विपरीत सम्बन्ध होता है। छोटे देश के विदेशी व्यापार-अनुपात प्राय: बडे तथा बड़े देश के व्यापार-अनुपात छोटे होते हैं। इसके दो मुख्य कारण हैं—(i) प्राकृतिक साधनों की विविधता क्षेत्रफल के आकार पर निर्भर करती है। इसीलिए छोटे आकार वाले देश के आर्थिक ढाँचे मे कम विविधता पायी जाती है। (ii) छोटे देश आधुनिक स्तर के औद्योगिक सयन्त्र के अनुकूलतम पैमाने (Optimum Scale of Plant) के सचालन की क्षमता नही रखते हैं। अत: विदेशी बाजारों पर निर्भर रहना पडता है। इसके अतिरिक्त कुछ छोटे राष्ट्र कतिपय प्राकृतिक ससाधनों की दृष्टि से एक विशेष लाभ की स्थिति मे .

1. Ibid, p. 135.
2. *Simon Kuznet* : Economic Growth and Structure, p. 149.

हो सकते हैं। अरब राष्ट्रो का उदाहरण लिया जा सकता है। तेल के क्षेत्र मे इन्हें विशेष लाभ प्राप्त है। इस विशेष स्थिति के कारण विश्व के सभी बाजार इन छोटे राष्ट्रो को अपने व्यापार के लिए उपलब्ध होते हैं। अत विशेष लाभ की स्थिति वाला छोटा देश अपने साधनो को एक बडे अनुपात मे एक अथवा कुछ चुने हुए क्षेत्रो म केन्द्रित कर सकता है। दूसरी ओर, एक बडा राष्ट्र तुलनात्मक लाभ की दृष्टि से अपने साधनो को अनेक क्षेत्रो मे लगाने की स्थिति मे होता है।

व्यापार की सरचना से सम्बन्धित दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य माँग ढाँचा (Structure of Demand) अथवा उपभोग व पूँजी-निर्माण मे वस्तुओ का प्रवाह है। दोनो प्रकार के देशो मे माँग के ढाँचे मे विविधता पायी जाती है क्योकि प्रति व्यक्ति आय का स्तर बढा हुआ होने पर एक छोटे देश मे भी उन वस्तुओ की माँग होगी, जिनका वहाँ उत्पादन नही होता है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि घरेलू उत्पादन के केन्द्रित ढाँचे व अन्तिम माँग के विविधतापूर्ण ढाँचे मे अन्तर की सीमा बडे राष्ट्रो की अपेक्षा छोट राष्ट्रो मे अधिक होगी। घरेलू उत्पादन के केन्द्रित ढाचे व अन्तिम माँग के विविधतापूर्ण ढाँचे की यह विषमता (D sparity) विदेशी व्यापार के कारण ही सम्भव हो सकी है।

एक देश की विविधतापूर्ण माँग की पूर्ति आयातो द्वारा की जा सकती है। छोटे राष्ट्रो के बाजारो मे बडे राष्ट्रो की अपेक्षा विदेशी प्रतियोगिता अधिक होती है। प्रत्येक देश के विदेशी व्यापार-अनुपात की गणना वस्तुओ के निर्यात व आयातो के योग को राष्ट्रीय आय तथा आयातो के योग से विभाजित करके की गई है।

यह अनुपात चरम स्थितियो मे शून्य व इकाई हो सकता है। यह अनुपात शून्य तब होता है जब किसी देश मे आयात निर्यात शून्य होते हैं तथा यह अनुपात इकाई तब होता है जब देश म घरेलू उत्पादन बिलकुल नही होता है तथा सम्पूर्ण माँग की पूर्ति केवल आयातो से की जाती है व आयातो का भुगतान पुन निर्यातो (Re-exports) से किया जाता है। यदि आयात घरेलू उत्पादन के बराबर होते हैं और निर्यात व आयात परस्पर समान होते है तब भी यह अनुपात 1 होता है। आयातो के बराबर निर्यातो के होने पर, 2 अनुपात यह प्रदर्शित करता है कि आयात राष्ट्रीय उत्पादन के दसवें भाग से कुछ अधिक होते हैं तथा 4 अनुपात का अर्थ यह होता है कि राष्ट्रीय उत्पादन मे आयातो का भाग 25 है।

समान आकार वाले विभिन्न देशो को यदि विभिन्न समूहो मे रखा जाए तब भी देश के आकार व विदेशी व्यापार अनुपात म विपरीत सम्बन्ध मिलेगा। प्रति व्यक्ति आय की अपेक्षा प्रस्तुत स्थिति मे देश का आकार विदेशी व्यापार के अनुपात को प्रभावित करने वाला अधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। जनसख्या के आकार की उपेक्षा करते हुए प्रति व्यक्ति आय के आधार पर जब देशो को विभिन्न समूहो मे रखा जाता है, तब आय के पैमाने पर नीचे की ओर आने पर विदेशी व्यापार के अनुपात मे कोई क्रमिक परिवर्तन नही पाया जाता है।

Relation Between Foreign Commodity Trade, Size of Country and Level of Income per Capita (1938–39 and 1950–54)

Groups of Countries		Number of Countries	1938-39 Average Population (Millions) or Average Income per Capial (S)	Average Foreign Trade Ratio	Number of Countries	1950-54 Average Population (Million) or Average Income per Capita (S)	Average Foreign Trade Ratio
		1	2	3	4	5	6
A Countries Arrayed in Descending Order of Population Size							
1.	I	10	135·4	0·17	10	103·9	0·21
2.	II	10	16·2	0·24	10	22·0	0·24
3.	III	10	7·3	0·31	10	10·4	0·41
4	IV	10	3·7	0·38	10	5·3	0·41
5.	V	12	1·5	0·38	10	2·7	0·41
6.	VI				7	0·8	0·41
B. Countries Arrayed in Descending Order of Income per Capita							
7	I	10	429	0·29	10	1,021	0·35
8	II	10	214	0·32	10	514	0·41
9.	III	10	106	0·19	10	291	0·40
10.	IV	10	66	0·36	10	200	0·24
11.	V	12	40	3·24	10	115	0·38
12.	VI				7	67	0·26

छोटे देशो के विदेशी व्यापार की दो महत्त्वपूर्ण विशेपताएँ होती हैं। प्रथम, इन देशो के निर्यात एक अथवा दो वस्तुओ से केन्द्रित रहते है। तेल, कॉफी, टिन आदि कुछ इसी प्रकार की मदे है जिनकी निर्यात माँग विश्व मे बहुत अधिक पायी जाती है। निर्यातो का यह केन्द्रीकरण बडे अविकसित देशो मे पाया जाता है, जिनमे निम्न-स्तरीय उत्पादन तकनीकी प्रयोग मे ली जाती है। निम्न-स्तरीय तकनीकी के कारण ऐसे देशो मे कुछ ही वस्तुओ मे तुलनात्मक लाभ की स्थिति पायी जाती है। द्वितीय, छोटे देशो के आयात व निर्यातो का सीधा सम्बन्ध किसी एक बडे राष्ट्र से होता है, किन्तु बडे आकार वाले देशो का आयात-निर्यात व्यापार अनेक देशो के साथ होता है।

विदेशी व्यापार बडे देशो की अपेक्षा छोटे देशो के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इन देशो मे घरेलू उत्पादन कुछ ही क्षेत्रो मे केन्द्रित रहता है। अत घरेलू उत्पादन का क्षेत्र सीमित होने के कारण अन्तिम माँग के एक बडे भाग की पूर्ति विदेशी व्यापार द्वारा ही सम्भव है किन्तु छोटे देशो के व्यापार की भी सीमाएँ होती हैं। इन सभी सीमाओ को विदेशी व्यापार द्वारा दूर कर पाना सम्भव नही है। सरकारी हस्तक्षेप व अन्तर्राष्ट्रीय सघर्षो के कारण विदेशी व्यापार मे अवरोध उपस्थित हो जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ आवश्यक वस्तुओ के निर्यात का अर्थ बहुत बडी लागत चुकाना होता है।

जनसख्या के आकार मे कमी के साथ-साथ एक विशेष विन्दु तक ही विदेशी व्यापार का औसत अनुपात बढता है। उस बिन्दु के पश्चात् अनुपात का बढना रुक जाता है। उदाहरणार्थ, उक्त सारणी मे 1938-1939 के वर्ष मे समूह IV मे यह अनुपात 38 तक पहुँचता है आगे वाले समूह मे जनसख्या मे 1 5 मिलियन की कमी होने पर भी यह अनुपात 38 ही बना रहता है। सन् 1950-54 म अनुपात की उच्चतम सीमा सम्बन्धी तथ्य की अधिक पुष्टि होती है। समूह III मे 10 5 मिलियन जनसख्या की स्थिति मे भी यह अनुपात 41 का अधिकतम स्तर प्राप्त कर लेता है और इस स्तर के बाद एक मिलियन से कम वाले समूह मे भी इस अनुपात मे कोई वृद्धि नही होती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि समय विशेष मे वर्तमान राजनीतिक सस्थागत व आर्थिक परिस्थितियो मे कुल उत्पादन के उस भाग की जो व्यापार के लिए उपलब्ध होता है, एक उच्चतम सीमा होती है।

विदेशी व्यापार पर बडे देशो की तुलना मे छोटे देशो की निर्भरता अधिक होती है। "विदेशी व्यापार का प्रति व्यक्ति आय के स्तर के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। अत बडे देश अपक्षाकृत कही छोटे विदेशी व्यापार के अनुपातो से 'आर्थिक वृद्धि' करने की स्थिति मे होत हैं। आर्थिक वृद्धि की त्रिया व राष्ट्रीय उत्पादन की एक महत्त्वपूर्ण दिशा (विदेशी व्यापार) मे छोटे व बडे देशो की स्थिति मे अन्तर पाया जाता है अर्थात् विभिन्न घरेलू व विदेशी क्षेत्रो के योगदानो के अनुपातो की दृष्टि से छोटे व बडे देशो की स्थिति भिन्न होती है।"[1]

1 *Simon Kuznets* · Quantitative Aspects of the Economic Growth of Nations.

विदेशी व्यापार के क्षेत्र मे अविकसित देशों की राष्ट्रीय आय व निर्यातों का अनुपात प्राय 10% होता है जबकि समृद्ध अथवा विकसित देशों के लिए प्राय: 20 से 25% पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अविकसित देश मुख्यत: कच्चे माल के निर्यातक होते है, जबकि विकसित देश निर्मित वस्तुओं के निर्यातक होते हैं।

GATT के अनुसार अल्प-विकसित देश निर्मित वस्तुओ के कुल उपभोग का केवल एक-तिहाई भाग का ही आयात करते हैं और यह अनुपात उत्तरोत्तर कम होता जा रहा है।[1]

आर्थिक पिछड़ेपन की स्थिति (Under-development) विदेशी व्यापार के अनुपातो पर दो विपरीत तरीको से प्रभाव डालती है। प्रथम, यह स्थिति कुल उत्पादन के आकार को सीमित करती है, परिणामत. विदेशी व्यापार के अनुपात में वृद्धि होती है तथा आर्थिक हीनता की स्थिति निम्नस्तरीय तकनीकी को प्रकट करती है।

विनियोग के स्वरूप में परिवर्तन
(Changes in the Composition of Investment)

अविकसित देशो की मुख्य समस्या उत्पादकता में कमी होना है और यही इनकी दरिद्रता के लिए उत्तरदायी है। उत्पादकता मे वृद्धि पूंजी-सचय की वृद्धि पर तथा पूंजी-सचय की वृद्धि विनियोग की मात्रा पर निर्भर करती है अर्थात् आर्थिक विकास के कार्यक्रमो के प्रारम्भ तथा इनकी गति को तीव्र करने के लिए अधिक से अधिक विनियोगो की आवश्यकता है। किन्तु विनियोग नीति किस प्रकार की होनी चाहिए, इस सम्बन्ध मे दो दृष्टिकोण है—(i) क्रमिक विकास का दृष्टिकोण (Gradual Approach) तथा (ii) विनियोग की विशाल योजना का दृष्टिकोण (Big Push Approach)। प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार विनियोगों का प्रयोग प्रारम्भ मे कृषि विकास, सामाजिक ऊपरी पूंजी-निर्माण (Social Overhead Capital) तथा लघु उद्योगो के विकास के लिए होना चाहिए। फिर जैसे-जैसे राष्ट्रीय आय मे वृद्धि हो, शनै:-शनै: क्रमिक रूप से भी उद्योगो मे विनियोग किया जाना चाहिए। लेटिन अमेरिका, अफ्रीका के पूर्वी भाग तथा दक्षिणी एशिया के कुछ भागो मे यही नीति अपनाई गई है।

दूसरा दृष्टिकोण विनियोग की विशाल योजना का समर्थन करता है। यह विचार इस मान्यता पर आधारित है जब तक सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र मे विकास कार्यक्रमो मे विशाल पैमाने पर परिवर्तन नही होते तब तक विकास प्रक्रिया स्वत: सचालित व सचयी गति प्राप्त नही कर सकती। इस मत के समर्थकों मे लिबिन्स्टीन (Leibenstein) व नैलसन (Nelson) उल्लेखनीय हैं। लिबिन्स्टीन का 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास का विचार' (Critical Minimum Effort Thesis) तथा नैलसन का 'निम्नस्तरीय सतुलन जाल' (The low level Equilibrium Trap) का सिद्धान्त इस दृष्टिकोण की श्रेणी मे आते है। इन सिद्धान्तो के अनुसार

1. International Trade 1951, GATT, 1900 Kuznets-MEG, p 202.

भारी विनियोगो की आवश्यकता होती है ताकि उत्पादन मे वृद्धि की दर जनसख्या की विकास-दर से अधिक हो सके।

विनियोग बचत पर निर्भर करते हैं, किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो मे बचत-दर बहुत कम है। इन देशो मे बचत-दर जहाँ 4 व 5% के बीच है, वहाँ विकसित देशो मे यह दर 15% व इससे भी अधिक है। आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गति देने के लिए बचत की निरन्तर बढती हुई दर आवश्यक होती है और विनियोग के स्तर को 5% बढाकर राष्ट्रीय आय 15 से 18% तक करना आवश्यक हो जाता।

"1870-1913 की अवधि मे ब्रिटेन के जो तथ्य उपलब्ध हैं, वे यह प्रमाणित करते हैं कि इस अवधि मे वहाँ विनियोग की औसत दर 10 प्रतिशत थी तथा समृद्ध वर्षों मे यह 15 प्रतिशत भी रही। अमेरिका मे 1867-1913 का अवधि मे शुद्ध विनियोग दर 13 से 16 प्रतिशत रही, जबकि कुल विनियोग 21 से 24 प्रतिशत के मध्य रहा। जापान मे 1900-1901 मे 12 प्रतिशत तथा आगे की दशाब्दियो मे इसके *17 प्रतिशत तक बढने का अनुमान है।*"[1] इसके विपरीत भारत मे पूँजी-निर्माण की दर बहुत कम है, परिणामस्वरूप विनियोग-दर यथेष्ठ विकास दर प्राप्त करने के लिए अपर्याप्त है अर्द्ध-विकसित देशो मे पूँजी-निर्माण की निम्न दर निम्नलिखित सारणी मे प्रस्तुत की गई है—

कुल राष्ट्रीय उत्पादन में पूँजी-निर्माण का अनुपात[2]

विकसित देश	वर्ष	कुल पूँजी-निर्माण	अर्द्ध-विकसित देश	वर्ष	कुल पूँजी निर्माण
नार्वे	1959	29%	बर्मा	1960	17%
ऑस्ट्रिया	1960	24%	पुर्तगाल	1959	17%
नीदरलैंड	1960	24%	श्रीलका	1960	13%
कनाडा	1960	23%	आयरलैंड	1959	13%
स्विट्जरलैंड	1959	23%	चिली	1959	11%
स्वीडन	1960	22%	फिलीपाइन्स	1959	8%
ब्रिटेन	1960	16%	भारत	1959	8%
अमेरिका	1960	16%			

इसके अतिरिक्त साइमन कुजनेट्स ने भी विकसित व अविकसित देशो मे पूँजी-निर्माण की औसत-दर के अन्तर को अग्रलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया है।

1. Planning Commission The First Five Year Plan, p 13.
2. U N Statistical Year Book, 1961.

प्रति व्यक्ति आय स्तर व पूँजी निर्माण की दर[1]

देशो का समूह	कुल उत्पादन मे कुल पूँजी-निर्माण की दर
1	21 3%
2	23 3%
3	17 2%
4	15 7%
5	18 2%
6	13 3%
7	17 1%

प्रथम व द्वितीय समूह की औसत पूंजी-निर्माण-दर 22 2% तथा *तृतीय,* चतुर्थ व पचम समूहो की औसत दर 16·3% तथा 5, 6 और 7 मे इसका औसत 16·2% है। इस प्रकार धनी देशो मे निम्न आय वाले देशो की अपेक्षा पूंजी-निर्माण की दर काफी कम है। अत. स्पष्ट है कि अधिक पूंजी-निर्माण वाले देशों मे प्रति व्यक्ति पूँजी का उपभोग-दर कम आय वाले देशो की अपेक्षा बहुत कम है। इस विषमता को निम्नलिखित सारणी मे प्रस्तुत किया गया है—

कुछ उद्योगों में प्रतिव्यक्ति नियोजित पूँजी[2]

उद्योग	अमेरिका	मैक्सिको	भारत
ब्रेड और बेकरी उद्योग	5 0	1·7	3 5
वस्त्र उद्योग	8 7	2 1	1 8
इस्पात उद्योग	32 1	10 8	5 7
चीनी उद्योग	26 8	8 2	2 6
कागज, लुग्दी व कागज के सामान से सम्बन्धित उद्योग	10 2	8 9	6 6

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आर्थिक विकास की प्रकिया के अन्तर्गत सर्वाधिक महत्त्व विनियोगो को दिया जाता है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री केज के अनुसार रोजगार का स्तर प्रभावपूर्ण माँग (Effective Demand) पर निर्भर करता है। प्रभावपूर्ण माँग के दो अनुभाग होते है—(i) उपभोग माँग, व (ii) विनियोग माँग। अल्पकाल मे उपभोग के प्रति अभिमानों मे परिवर्तन लाना कठिन होता है। विनियोगो का वर्गीकरण निजी विनियोग, सार्वजनिक *विनियोग व वित्तीय* विनियोगो के रूप मे किया जा सकता है। व्यापारिक प्रतिष्ठानो व परिवारो द्वारा किए गए ऐसे व्यय जो पूँजी सचय में वृद्धि करते हैं, निजी विनियोग कहलाते है। राजकीय प्रतिष्ठानों द्वारा पूंजी-निर्माण के लिए व्यय सार्वजनिक विनियोग की श्रेणी मे आता है। एक व्यक्ति *अथवा* प्रतिष्ठान जब *अन्य व्यक्ति या* प्रतिष्ठान से केवल परिसम्पत्ति का

1. *Simon Kuznets* : Six Lectures on Economic Growth, pp. 72 & 73.
2. *Tinbergen* : The Design of Development, 1958, p. 73.

क्रय-विक्रय करता है, जिससे किसी नई परिसम्पत्ति का निर्माण नही होता है, वित्तीय विनियोग कहलाता है ।

विकासोन्मुख देशो मे जहाँ विकास दर को अधिक से अधिक बढाने का लक्ष्य होता है, विनियोग का स्वरूप निर्धारित करने से पूर्व विनियोग नीति के लक्ष्य निश्चित करना अनिवार्य है । इन देशो मे विनियोग के लक्ष्य रोजगार को अधिकतम करना, निर्यातो को अधिकतम करना, सन्तुलित विकास, आय व पूँजी का न्यायोचित वितरण आदि हो सकते हैं । यदि अल्पकाल मे अधिकतम उत्पादन का लक्ष्य रखा जाता है तो कृषि तथा उपभोग वस्तुओ के उद्योगो मे विनियोग किया जाता है, क्योकि इन उद्योगो की परिपक्वता अवधि (Gestat on Period) कम होती है । यदि उत्पादन मे दीर्घकालीन एव सतत् वृद्धि आवश्यक समझी जाती है तो पूँजीगत वस्तुओ के उद्योगो (Capital Goods Industries) मे विनियोग वांछनीय होता है । अर्थात् विनियोगो की सरचना का निर्धारण आर्थिक विकास के लक्ष्यो पर निर्भर करता है । अत सभी अविकसित देशो के लिए समान विनियोग नीति सभव नही है ।

सामान्यत आर्थिक विकास के दौरान ऐसे उद्योगो मे विनियोगो को प्राथमिकता दी जाती है, जिनमे (i) वर्तमान उत्पादन व विनियोग का अनुपात (Ratio of Current Output to Investment), (ii) श्रम व विनियोग का अनुपात (Ratio of Labour to Investment), तथा (iii) निर्यात वस्तुओ व विनियोग का अनुपात (Ratio of Export Goods to Investment) अधिकतम होना सभव हो ।

पूँजी के उचित वितरण तथा आय की विषमताओ को दूर करने की दृष्टि से कृषि व लघु उद्योगो मे विनियोग आवश्यक होता है । विकासोन्मुख देशो मे आय की विषमताएँ बहुत अधिक पायी जाती हैं, अत विकास के दौरान प्राय कृषि व लघु उद्योगो मे विनियोग की मात्रा बढाने पर बल दिया जाता है, किन्तु दीर्घकालिक व स्थाई विकास की दृष्टि से भारी उद्योगो मे विनियोग भी आवश्यक होता है । अत आर्थिक विकास के दौरान इन दोनो लक्ष्यो मे सतुलन (Balance) रखा जाता है ।

आर्थिक विकास की दीर्घकालीन अवधि मे सरकारी प्रतिष्ठानो मे विनियोग का अनुपात बढता जाता है तथा निजी विनियोग के अनुपात मे कमी की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो जाती है । अल्प-विकसित देशो मे विकास के लिए अर्द्ध-सरचना (Infra-structure) जैसे रेलो, सडको, नहरो, शक्ति परियोजनाओ तथा अन्य प्रकार की आर्थिक और सामाजिक ऊपरी पूँजी (Economic and Social Overheads) आवश्यक होती है । निजी विनियोगो द्वारा इन कार्यों के लिए पूँजी-सचय सभव नही होता है । यद्यपि निजी विनियोगो की तुलना मे सार्वजनिक विनियोग दर प्राय कम होती है, तथापि सार्वजनिक क्षेत्र का आर्थिक विकास के साथ-साथ अधिक से अधिक विस्तार किया जाता है, क्योकि सार्वजनिक विनियोगो का मुख्य उद्देश्य प्रतिफल की दर की अधिकता न होकर, सामाजिक उत्पादकता (Social Productivity) को

अधिक से अधिक बढाना एव निजी विनियोगों के आकर्षण के लिए बाह्य बचत (External Economies) को उत्पन्न करना होता है।

इटली में राजकीय प्रतिष्ठानो की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण है। अधिकांश उद्योग सरकारी क्षेत्र मे आते हैं। इनमे से अनेक उद्योगो में लाभ-दर काफी ऊँची है। किन्तु वी. लुट्ज के अनुसार, "रोजगार के स्तर को बनाए रखने के लिए अनेक हानिकारक उद्योगो मे भी विनियोग किया गया है।"[1] सार्वजनिक विनियोग व निजी विनियोग का अनुपात लगभग 60 . 40 है।

विनियोग के क्षेत्र मे सरकार की दूसरी भूमिका अनुदान, सहायता आदि देने की होती है। सरकारी अनुदान व सहायता के माध्यम से नए स्थानो पर उद्योग विकसित करने के प्रयत्न होते है। इगलैण्ड व फ्रांस ने लन्दन व पैरिस से कारखानो को अन्यत्र स्थापित करने मे सरकारी अनुदानो का प्रयोग किया है। नार्वे ने जनसख्या का उत्तर से स्थानान्तरण रोकने का प्रयत्न किया है।

सरकार निजी क्षेत्र के विनियोगो पर भी अपना नियन्त्रण रखती है। अब प्रश्न उठता है कि विनियोग नियोजन (Investment Planning) मे सरकार की बढ़ती हुई भूमिका आवश्यक है अथवा अहितकर। सभी देशो के लिए इस प्रश्न का एक उत्तर सभव नही है। इस प्रश्न का उत्तर निजी व्यवसाय के प्रतिस्पर्द्धी, सरकारी अधिकारी तथा व्यापारियो की सापेक्ष कुशलता व योग्यता पर निर्भर करता है। फ्रांस की नियोजन पद्धति मे सरकार व निजी व्यवसाय की दोहरे सहयोग से विनियोग निर्णयो मे पर्याप्त सुधार हुए हैं। परिणामत. फ्रांस, विनियोगो से, विकास की बढती हुई दर प्राप्त करने मे समर्थ रहा है।

पूँजी-प्रदा अनुपात (Capital Out-put Ratio)

किसी भी देश के लिए पूँजी की आवश्यकता के अनुमान पूँजी-प्रदा अनुपात (Capital Out-put Ratio) की धारणा पर निर्भर करते हैं। अर्थ-व्यवस्था के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे पूँजी-प्रदा अनुपात भिन्न होता है। अर्द्ध-विकसित देशों के कृषि क्षेत्र मे यह अनुपात कम होता है। तथा औद्योगिक क्षेत्र मे अधिक रहता है। सार्वजनिक कल्याण के उद्योगो (Public Utilities) मे यह अनुपात और भी अधिक होता है। अत विनियोग की सरचना मे पूँजी-प्रदा अनुपात की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

तकनीकी (Technology)

विनियोगों पर तकनीकी स्तर का भी प्रभाव पडता है। अर्द्ध-विकसित देशो में तकनीकी स्तर निम्न होने के कारण पूंजी की उत्पादकता कम होती है और इसलिए पूंजी-प्रदा अनुपात अधिक रहता है। किन्तु जब कोई नई तकनीकी किसी अर्द्ध-विकसित देश मे प्रयोग मे ली जाती है तो आश्चर्यजनक लाभ प्राप्त होते हैं। यदि अधिक पिछड़े हुए देशों मे पूंजी का विनियोजन शिक्षा, प्रशिक्षण आदि पर

1. *Vera Lutz*: *Italy*, A study in Economic Development, pp. 276-284

किया जाता है तो विकसित देशो की अपेक्षा कही अधिक तेजी से विकास की बढती हुई दरो को प्राप्त किया जा सकता है।[1]

सक्षेप मे, विनियोग की सरचना बचत-दर, आर्थिक लक्ष्य, पूँजी-प्रदा अनुपात, तकनीकी आदि के स्तर पर निर्भर करती है। सभी अर्द्ध-विकसित देशो के लिए कोई एक विनियोग नीति उपयुक्त नही हो सकती।

रोजगार के ढाँचे मे परिवर्तन (Structural Changes in Employment)

आर्थिक विकास की प्रक्रिया के दौरान रोजगार की दिशा, स्तर व सरचना के परिवर्तनो को मुख्यत निम्न वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है---

(1) कार्यारम्भ की आयु व कार्य मुक्ति की आयु मे परिवर्तन,
(2) क्रियाशील श्रम शक्ति का व्यावसायिक वितरण,
(3) कार्यशील श्रम शक्ति मे स्त्री व पुरुष का अनुपात,
(4) कुशल व अकुशल श्रम के अनुपात,
(5) निजी व्यवसाय कर्त्ता व कर्मचारी वर्ग का अनुपात

सामान्यत, आर्थिक विकास के कारण विकसित देशो मे कार्यारम्भ करने की आयु मे जहाँ एक ओर उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, वहाँ साथ ही कार्य-मुक्ति की आयु मे कमी की गई है।

साइमन कुजनेट्स के अध्ययन के अनुसार प्रारम्भ मे कर्मचारियो का कुल राष्ट्रीय आय मे जो अनुपात 40 प्रतिशत था, वह बढकर वर्तमान वर्षो मे 60 और 71 प्रतिशत हो गया है। इस प्रवृत्ति का मुख्य कारण श्रम शक्ति मे कर्मचारी वर्ग की सख्या मे वृद्धि रहा है। साहसी व निजी उद्यमकर्त्ताओ का प्रतिशत 35 से घटकर केवल 20 रह गया। दूसरी ओर कर्मचारियो का प्रतिशत 65 से बढकर 80 हो गया। इस प्रवृत्ति के लिए औद्योगिक ढाँचे के परिवर्तन उत्तरदायी हैं।

आज भी अर्द्ध विकसित देशो के कृषि मे लगी कुल श्रम-शक्ति मे उद्यमियो का अनुपात, उद्योग व सेवा क्षेत्रो की अपेक्षा बहुत अधिक है। यह अनुपात क्रमश 66, 31 और 35 प्रतिशत है जबकि विकसित देशो मे यह अनुपात क्रमश 61, 11 व 17 प्रतिशत पाया जाता है। आर्थिक विकास के कारण कृषि मे श्रम का अनुपात कम होने लगता है, परिणामस्वरूप, साहसियो व निजी उद्यमकर्त्ताओ का कुल श्रम-शक्ति मे अनुपात भी बहुत कम रह जाता है। उद्योग व सेवा क्षेत्र के आकार मे वृद्धि तथा इनके असगठित से सगठित स्वरूप मे परिवर्तन के कारण भी साहसियो व निजी व्यावसायियो की कुल श्रम शक्ति का अनुपात गिर जाता है।

छोटे किसान, व्यवसायी, आदि का अपने निजी व्यवसायो से हट कर कर्मचारी वर्ग की ओर आकर्षित होना, देश के आर्थिक जीवन व योजना के आधार मे एक मूलभूत परिवर्तन उत्पन्न करता है। व्यावसायिक स्तर मे इस अन्तर का कई

1 *W A Lewis*, Theory of Economic Growth, p. 204

दिशाओं में प्रभाव होता है—परिवार व बच्चों के प्रति सुख में परिवर्तन, उपभोग के स्तर मे भिन्नता, बचत करने की अपेक्षा शिक्षा व प्रशिक्षण में विनियोजन की प्रवृत्ति आदि।

कुजनेट्स ने कर्मचारियों के व्यावसायिक ढाँचे में परिवर्तन निम्नलिखित सारणी द्वारा स्पष्ट किए है—

कर्मचारियों का व्यावहारिक ढाँचा (1900-1960)

	व्यावसायिक समूहों का अनुपात (%)		स्त्रियों का व्यावसायिक अनुपात (%)	
	1900	1960	1900	1960
1. कुल श्रम-शक्ति में कर्मचारियों का अनुपात (%)	74 9	93·0	22·7	34·3
2. व्यावसायी तकनीशियन	5·7	12·2	35 2	38 1
3. प्रबन्धक व अधिकारी	0 8	5 8	16 4	36 4
4. दफ्तरी बाबू	4 0	16 0	24·2	67 6
5 बिक्री कर्मिकर्त्ता	6·0	8 0	17 4	36 4
6. श्वेतपोशी कर्मचारी	16 6	42·0	24 5	45 6
7. क्राफ्टमैन, फोरमैन आदि	14·1	15 4	2 5	2 9
8. कारीगर एवं ऐसे ही अन्य लोग	17 1	15·4	34·0	28 1
9. खेत व खानों के अतिरिक्त श्रमिक	16·6	5·9	3 8	3·5
10 खेत पर काम करने वाले श्रमिक तथा फोरमैन	23 6	2·6	13 6	17·3
11 Manual Workers	71·4	45·4	14·0	15 7
12. भृत्य वर्ग	4.8	9 6	34·3	52 4
13. घरेलू श्रमिक	7·3	3·0	96 6	96 4

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि—

(1) शारीरिक श्रम का अनुपात सन् 1900 की तुलना मे सन् 1960 में बहुत अधिक गिरा है। श्वेतपोशी बाबुओं की संख्या मे अत्यधिक वृद्धि हुई है, परन्तु अकुशल श्रम के स्थान पर कुशल श्रम का अनुपात अधिक हुआ है।

(2) ये परिवर्तन सेवा क्षेत्र मे श्रम-शक्ति के अनुपात मे वृद्धि तथा कृषि-क्षेत्र में गिरावट को प्रदर्शित करते हैं।

(3) व्यावसायियों (Professionals), तकनीकी कर्मचारी, प्रबन्धक, अधिकारी, बाबू आदि की माँग मे वृद्धि हुई है।

(4) अधिक कुशलता की माँग मे वृद्धि हुई है तथा अकुशल श्रम के अवसर कम हुए है।

सामान्यत. लोगों का झुकाव मजदूरी के कार्यों से हटकर वेतनभोगी व्यवसायों की ओर अधिक रहा है। औद्योगिक क्षेत्र मे इन दोनों प्रकार के श्रमिकों के अनुपात

मे भारी अन्तर पाया जाता है—कृषि मे वेतनभोगी कर्मचारियो का अनुपात 4 से 13 प्रतिशत, उद्योग मे 11 से 18 प्रतिशत तथा सर्वाधिक सेवा-क्षेत्र मे 42 से 83 प्रतिशत रहा है ।

60 वर्ष की अध्ययन अवधि मे स्त्रियो का अनुपात 23 से 34% तक बढा है । इसका कारण, आर्थिक विकास के कारण स्त्रियोचित कार्यों की सुविधाओ मे वृद्धि होना है ।

अधिक जनसख्या वाले देशो मे आर्थिक विकास से पूर्व की स्थिति मे गुप्त बेरोजगारी (Disguised Un-employment) की स्थिति पायी जाती है । तकनीकी व उत्पादन-साधनो के दिए हुए होने पर, कृषि म श्रम की सीमान्त उत्पादकता का शून्य पाया जाना गुप्त बेरोजगारी की स्थिति को प्रकट करना है । बेरोजगारी की यह स्थिति प्राय उस स्थिति में पायी जाती है, जब रोजगार के विकल्प कम होने के कारण अधिकाँश श्रम कृषि मे लगा हुआ होता है । आर्थिक विकास के कारण उद्योग व सेवा क्षेत्रो का विस्तार होता है । वैकल्पिक रोजगारो के अवसरो म वृद्धि होती है, परिणामत गुप्त बेरोजगारी विलुप्त होने लगती है । विकसित देशो मे गुप्त बेरोजगारी नही पायी जाती ।

आर्थिक विकास के प्रमुख तत्त्व एवं डेनिसन का अध्ययन

(MAJOR GROWTH FACTORS, DENISON'S ESTIMATE OF THE CONTRIBUTION OF DIFFERENT FACTORS TO GROWTH RATE)

आर्थिक विकास के प्रमुख तत्त्व
(Major Growth Factors)

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास के आधार के रूप मे विभिन्न तत्त्वों का उल्लेख किया है। इस प्रकार के तत्त्व जो विकास का प्रारम्भ करते है 'प्राथमिक तत्त्व' या 'प्रधान चालक' (Prime-mover) या 'उपक्रम' (Initiator) कहलाते हैं। जब विकास की गति प्रारम्भ हो जाती है तो कई अन्य ऐसे तत्त्व जो इस विकास को तीव्रता प्रदान करते हैं, 'गौण तत्त्व' या 'प्रभावक' या 'पूरक तत्त्व' कहलाते है। उक्त तत्त्वों का वर्गीकरण आर्थिक और अनार्थिक तत्त्वो (Economic and Non-economic Factors) के रूप मे भी किया जाता है। विभिन्न राष्ट्रों के आर्थिक विकास में भिन्न-भिन्न तत्त्व महत्त्वपूर्ण रहे हैं। आर्थिक विकास के मुख्य कारक या घटक निम्नलिखित है—

1. प्राकृतिक साधन (Natural Resources)
2. मानवीय साधन (Human Resources)
3. पूंजी (Capital)
4. तकनीकी ज्ञान (Technical Knowledge)
5. साहसी एवं नव प्रवर्तन (Entrepreneur and Innovation)
6. संगठन (Organisation)
7. राज्य की नीति (State Policy)
8. संस्थाएँ (Institutions)
9. अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ (International Circumstances)

1. प्राकृतिक साधन (Natural Resources)—प्राकृतिक साधनो का आशय उन भौतिक साधनो से है जो प्रकृतिप्रदत्त हैं। एक देश मे उपलब्ध भूमि, पानी, खनिज सम्पदा, वन, वर्षा, जलवायु आदि उस देश के प्राकृतिक साधन कहलाते हैं। किसी भी देश के आर्थिक विकास मे इन प्राकृतिक साधनो का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी देश के प्राकृतिक साधन जितने अधिक होंगे वहाँ उतना ही आर्थिक विकास अधिक होगा। एक अर्थ-व्यवस्था मे उत्पादन की मात्रा अत्यधिक सीमा तक इसकी मिट्टी और उसका स्थानीय वन सपदा—कोयला, लोहा, खनिज तेल एव अन्य कई पदार्थों पर निर्भर करता है। जैसाकि रिचार्ड टी गिल ने लिखा है, "जनसख्या एव श्रम की पूर्ति के समान प्राकृतिक साधन भी एक देश के आर्थिक विकास मे महत्त्वपूर्ण योगदान देते है। उर्वर भूमि और जल के अभाव के कारण कृषि का विकास नहीं हो पाएगा। लोहा, कोयला आदि खनिज सपदा के अभाव मे औद्योगीकरण द्रुतगति नही ले पाएगा। प्रतिकूल जलवायु आदि भौगोलिक परिस्थितियों के कारण आर्थिक क्रियाओ के विस्तार मे बाधा पहुँचेगी। अत प्राकृतिक साधनो का आर्थिक विकास को सीमित करने या प्रोत्साहित करने मे निर्णायक महत्त्व होता है। आर्थिक विकास के उच्च स्तर पर पहुँचे हुए अमेरिका, कनाडा आदि देश प्राकृतिक साधनो मे भी सम्पन्न हैं।"

आर्थिक विकास के लिए प्राकृतिक साधनो का बहुलता ही पर्याप्त नही है बल्कि उनका सुविचारित उपयोग देश की आर्थिक प्रगति के लिए होना चाहिए। इन साधनो का विदोहन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे देश को अधिकतम लाभ प्राप्त हो और देश की आर्थिक स्थिरता मे सहायता मिल सके। इनका देश की आवश्यकताओ के लिए इस प्रकार योजनाबद्ध उपयोग होना चाहिए जिनसे इनका न्यूनतम अपव्यय हो और भविष्य के लिए भी अधिक समय तक उपयोग मे आते रहे। तभी दीर्घकालीन आर्थिक विकास मे सहायता मिल पाएगी। यदि इनके वर्तमान को ध्यान मे रखकर ही उपयोग किया गया तो यद्यपि वर्तमान काल मे आर्थिक प्रगति कुछ अधिक सम्भव है किन्तु इनके शीघ्र समाप्त हो जाने या कम प्रभावपूर्ण रह जाने के कारण भावी आर्थिक विकास कुठिन हो जाएगा। आर्थिक विकास के लिए न केवल वर्तमान साधनो अपितु सम्भावित (Potential) साधनो का भी महत्त्व है। अत नए प्राकृतिक साधनो की खोज तथा वर्तमान प्राकृतिक साधनो के नए-नए उपयोग भी खोजे जाने चाहिएँ। अमेरिका, कनाडा आदि विकसित देशो मे उनका विकास प्रारम्भ होने के पूर्व भी सम्पन्न प्राकृतिक साधन थे, किन्तु उनका उचित विकास और विदोहन (Exploitation) नही किया गया था। इस प्रकार किसी देश के प्राकृतिक साधनो की अधिकता और उनका उचित उपयोग आर्थिक विकास मे बहुत सहायक होते हैं। प्राकृतिक साधनो की अपर्याप्तता मे भी अन्य तत्त्वो द्वारा द्रुत आर्थिक विकास किया जा सकता है स्विट्जरलैण्ड और जापान प्राकृतिक साधनो मे अपेक्षाकृत कम सम्पन्न हैं, किन्तु फिर भी विकास के अन्य तत्त्वो के द्वारा इन्होंने अपनी अर्थ-व्यवस्थाओ को अत्यधिक विकसित किया है।

2. मानवीय साधन (Human Resources)—मानवीय साधन का आशय उस देश मे निवास करने वाली जनसख्या से है। यद्यपि केवल कार्यशील जनसंख्या (Working Population) ही, जो कुल जनसख्या का एक भाग होती है, आर्थिक विकास को प्रत्यक्ष रूप से अधिक प्रभावित करती है, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से समस्त जनसख्या का ही आर्थिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। वस्तुत देश की जनसंख्या, उसका आकार (*Size*), कार्यक्षमता (*Efficiency*), सरचना (*Composition*), वृद्धि दर (Growth rate), विभिन्न व्यवसायो मे वर्गीकरण आदि उस देश के आर्थिक विकास पर गहरा प्रभाव डालते है। आर्थिक विकास का आशय उत्पादन मे वृद्धि है और श्रम या जनशक्ति (Man-Power) उत्पादन का एक प्रमुख, सक्रिय (Active) और अत्याज्य (Indispensable) साधन है। अतः देश का आर्थिक विकास उस देश के मानवीय साधनो पर ही बहुत कुछ निर्भर करता है। यदि किसी देश मे विकास की आवश्यकताओ के अनुरूप जनसख्या है, यदि उस देश के निवासी स्वस्थ, परिश्रमी, शिक्षित, कुशल, उच्च चरित्र और विवेकपूर्ण दृष्टिकोण वाले है तो अन्य बातें समान होने पर उस देश का आर्थिक विकास भी अधिक होगा। जैसा कि श्री रिचार्ड टी गिल का कथन है, "आर्थिक विकास एक यांत्रिक प्रक्रिया नही है""" अन्तिम रूप से यह एक मानवीय उपक्रम हे एव अन्य मानवीय उपक्रमो के समान इसका परिणाम अन्तिम रूप से इसको सचालित करने वाले मनुष्यो की कुशलता, गुण और प्रवृत्तियो पर निर्भर करता है।"

किन्तु जनसख्या और आर्थिक विकास का सम्बन्ध दिलचस्प और जटिल है। मनुष्य आर्थिक क्रियाओ का साधन और साध्य दोनो ही है। साथ ही जनसख्या मे वृद्धि जहाँ एक ओर उत्पादन के आधारभूत साधन श्रम की पूर्ति मे वृद्धि करके उत्पादन वृद्धि मे सहायक होती है दूसरी ओर यह उन व्यक्तियो की सख्या मे भी वृद्धि कर देती है जिनमे उत्पादन का वितरण होता है। इस प्रकार आर्थिक विकास मे बाधक सिद्ध होती है। किन्तु ऐसा केवल उन अर्द्ध-विकसित देशो के बारे मे ही कहा जा सकता है जहाँ जनसख्या और श्रम-शक्ति का बाहुल्य है। शेष अर्द्ध-विकसित देशो मे जहाँ जनसख्या की अधिकता नही है जैसे लेटिन अमेरिकी देशो मे तथा अन्य विकसित देशो मे जनसख्या वृद्धि अब भी आर्थिक विकास मे सहायक है। वस्तुत इतिहास के प्राचीन काल से आधुनिक समय तक जनसंख्या मे वृद्धि विश्व मे उत्पादन वृद्धि का एक बड़ा साधन (Major source) रहा है।

अतः बढती हुई जनसंख्या विकसित अर्थव्यवस्था वाले देशों के विकास मे सहायक होती है क्योकि इससे उत्पादन और आर्थिक क्रियाओं के विस्तार के लिए आवश्यक श्रम प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त बुद्धिमान जनसंख्या से वस्तुओं और सेवाओं की माँग मे वृद्धि होती है, बाजार का विस्तार होता है और उत्पादन मे वृद्धि होती है, किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो मे जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त तेजी से बढती हुई जनसख्या के भोजन, वस्त्र, आवास एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु देश के बहुत से साधन प्रयुक्त हो

जाते हैं और विकास की गति धीमी हो जाती है। इस प्रकार इन अर्द्ध-विकसित देशों में अतिरिक्त मानव शक्ति (Surplus Man Power) विकास में बाधक बन जाती है। किन्तु कुछ लोगों के मतानुसार इन अर्द्ध-विकसित देशों में इस अप्रयुक्त अतिरिक्त अर्द्ध-नियोजित और अनियोजित (Un-employed) मानव शक्ति में ही पूंजी निर्माण की सम्भावनाएँ छिपी हुई हैं। लॉर्ड कीन्स के अनुसार, छिपी हुई बचत की सम्भावनाएँ (Concealed saving potential) है। प्रो ए बी माउन्टजोय के अनुसार, "कुछ परिस्थितियों में अनेक अर्द्ध विकसित देशों में पायी जाने वाली अपार श्रम-शक्ति एक महान् आर्थिक सम्पत्ति है जिसका पूरा पूरा उपयोग किया जाना चाहिए। मानव-शक्ति पूंजी का उपयोग करने के साथ-साथ पूंजी-निर्माण (कार्य द्वारा) भी करती है।" इस प्रकार विकास के प्रयत्नों में सलग्न अर्द्ध-विकसित देशों में भी अधिक जनसख्या विकास में सहायक बन सकती है। यदि उसका उचित नियोजन द्वारा उपयोग (Proper Planning) किया जाए। अत स्पष्ट है कि आर्थिक विकास में विकसित मानवीय साधन एक महत्त्वपूर्ण कारक है। आर्थिक विकास के लिए शिक्षा, प्रशिक्षण, अनुभव, प्रेरणा सगठन आदि द्वारा मानवीय साधनों का विकास किया जाना चाहिए। डॉ वी के आर वी राव के अनुसार उत्पादन प्रक्रिया में मानवीय साधन (Human Factor) की कुशलता मानव सम्बन्धी चार तत्त्वों—(अ) शारीरिक (Physical), (ब) मानसिक (Mental), (स) मनोवैज्ञानिक (Psychological) और (द) सगठनात्मक (Organizational) पर निर्भर करती है।

3. **पूंजी (Capital)**—वास्तव में पूंजी आधुनिक आर्थिक विकास की कुंजी है। एक देश की पूंजी उत्पादित या मानव-कृत उत्पादन के साधनों जैसे भवन, कारखाने, मशीनें यन्त्र-उपस्कर रेलें आदि होती है। इन पूंजीगत वस्तुओं के अभाव में आर्थिक विकास सम्भव नहीं है। जिस देश के पास पूंजीगत साधनों (Capital Goods) की अपर्याप्तता होगी वह देश अपेक्षाकृत अधिक विकसित नहीं हो पाएगा। अत आर्थिक विकास की मुख्य समस्या इन पूंजीगत वस्तुओं में वृद्धि या पूंजी के सचय अथवा पूंजी-निर्माण (Capital formation) की है। आर्थिक विकास हेतु साधनों में वृद्धि आवश्यक है और यह वृद्धि पूंजी सचय से ही हो सकती है। पूंजी-सचय (Capital accumulation) यन्त्र, औजार, भवन आदि में वृद्धि करने की प्रक्रिया है। यदि पूंजीगत वस्तुओं की मात्रा वर्ष के आरम्भ की अपेक्षा अन्त में अधिक है तो देश में पूंजी सचय हुआ है और इस अन्तर के बराबर देश में पूंजी की वृद्धि हुई। इसे विनियोग भी कहते हैं। इस प्रकार पूंजीगत वस्तुओं की वृद्धि का आशय है कि देश में पहले से अधिक कारखाने, बाँध, नहरें रेलें, सडकें, यन्त्र, उपस्कर, कच्चा माल, ईंधन, इन्वेन्ट्रीज (Inventories) आदि हैं जिसका परिणाम अधिक उत्पादन और आर्थिक विकास के रूप में प्रकट होता है। प्रो नर्क्से के शब्दों में—"आर्थिक विकास की प्रक्रिया का अर्थ भविष्य में उपभोग की वस्तुओं का विस्तार करने के लिए वर्तमान समय में समाज के उपलब्ध साधनों के कुछ भाग को

पूंजीगत वस्तुओं के कोष मे वृद्धि के लिए लगाना है।" आर्थिक विकास का आशय उत्पादन मे वृद्धि है और इसके लिए कृषि के क्षेत्र मे उर्वरक, यन्त्र और औषधियो की पूर्ति और सिंचाई योजनाओं का निर्माण, औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि के लिए विभिन्न कारखानो की स्थापना और समग्र उत्पादन मे वृद्धि के लिए विद्युत एव शक्ति तथा यातायात एव सचार साधनो का विकास करना आवश्यक है और इसके लिए पूंजी आवश्यक है। रिचार्ड टी गिल के अनुसार "पूंजी-सचय वर्तमान युग मे निर्धन देशो को धनवान बनाने और औद्योगिक युग का प्रारम्भ करने वाले कारको मे से एक प्रमुख कारक है।"

अत पूंजी-निर्माण के लिए वर्तमान उपभोग को कम करके बचत मे वृद्धि करना आवश्यक है। तत्पश्चात् बैंक, बीमा कम्पनियो आदि वित्तीय सस्थाओ के द्वारा इस बचत को एकत्र करके विनियोगकर्त्ताओ के पास पहुँचाया जाता है। इसके बाद पूंजी-निर्माण के लिए आवश्यक है कि इस बचत को विनियोग करके नई पूंजीगत वस्तुओ का निर्माण किया जाए। अर्द्ध-विकसित देशो मे पूंजी की अत्यन्त कमी रहती है और पूंजी का यह अभाव उसके विकास मे प्रमुख बाधक तत्त्व बन जाता है। अत आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है कि इनमे पूंजी-निर्माण की दर बढाई जाए। इसके लिए यह जरूरी है कि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि की जाए, बढी हुई आय मे से अधिक बचत की जाए एव उसे विनियोजित किया जाए जैसा कि प्रो पाल अलबर्ट ने लिखा है, "आर्थिक विकास की उच्चतम दरें आम तौर से उन्ही देशो मे पायी गई है जहाँ उत्पादन के विनियोग के लिए आवटिन अनुपात अपेक्षाकृत ऊँचा रहा है।" किन्तु यदि घरेलू पूंजी निर्माण आवश्यकता से कम हो तो विदेशी पूंजी के द्वारा भी आर्थिक विकास मे योग लिया जा सकता है। भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देश अपनी बचत (Saving) और निवेश (Investment) की मात्रा बढाकर तथा निजी पूंजी (Domestic Capital) की कमी को विदेशी पूंजी (Foreign Capital) से पूरी करके आर्थिक विकास के मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं।

4. तकनीकी ज्ञान (Technical Knowledge)—विभिन्न देशो के आर्थिक विकास मे तकनीकी ज्ञान भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। तकनीकी ज्ञान का अभाव एक अर्द्ध-विकसित देश के मार्ग मे बडी बाधा उपस्थित करती है और तकनीकी ज्ञान का विस्तार और उत्पादन की नई-नई प्रविधियो की खोज उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि गुणो मे श्रेष्ठता और मूल्यो मे न्यूनता के द्वारा आर्थिक विकास मे प्रत्यक्ष सहायता करती है। डब्ल्यू ए एल्टिस के अनुसार, "तकनीकी ज्ञान की प्रगति को ऐसे नवीन ज्ञान के रूप मे परिभाषित कर सकते हैं जिसके कारण या तो वर्तमान वस्तुएँ कम लागत पर पैदा की जा सकें या नई वस्तुओ का उत्पादन हो सके।" इस प्रकार तकनीकी ज्ञान के द्वारा वस्तुओ का मूल्य कम किया जा सकता है, उनके गुणो मे विस्तार किया जा सकता है, विभिन्न प्रकार की नई वस्तुओ का उत्पादन किया जा सकता है, पदार्थों के विभिन्न उपयोग किए जा सकते है, नवीन साधनों का पता लगाया जा सकता है। इसके कारण माँग मे वृद्धि, बाजार में वृद्धि, उत्पादन में वृद्धि

और अन्ततः आर्थिक विकास होता है। उत्पादन की तकनीक में सुधार करके या नवीन प्रविधियों का उपयोग करके ही अर्द्ध-विकसित देश अपने कृषि व्यवसाय का विकास कर सकते हैं। भारत में 3/4 जनसंख्या कृषि पर निर्भर होते हुए भी खाद्यान्नों की कमी और कृषि की दशा शोचनीय है। इसका मुख्य कारण कृषि की परम्परागत विधियों का अनुसरण करना है। ऐसे देशों के आर्थिक विकास के लिए कृषि का विकास अत्यन्त आवश्यक है और वह उपलब्ध तकनीकी ज्ञान के पूर्ण उपयोग और उसमें वृद्धि करके ही प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार अर्द्ध-विकसित देशों में खनिज व्यवसाय, मत्स्य पालन, उद्योग-धन्धा आदि में भी परम्परागत तरीकों का ही उपयोग किए जाने के कारण ये पिछड़ी हुई अवस्था में रहते हैं। इनके विकास के लिए अध्ययन, अनुसंधान द्वारा तकनीकी ज्ञान में वृद्धि तथा उत्पादन में उपयोग आवश्यक है।

केवल अर्द्ध-विकसित देशों के लिए ही तकनीकी ज्ञान का महत्त्व नहीं है, बल्कि विकसित देशों के विकास में भी इसका उपयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन देशों ने नवीन प्रविधियों के सहारे अपने प्राकृतिक साधनों का पर्याप्त विदोहन करके तथा श्रमिकों की कार्यक्षमता बढ़ा कर द्रुत आर्थिक विकास किया है। इन विकसित देशों की भावी आर्थिक वृद्धि के लिए भी तकनीकी ज्ञान का विशेष महत्त्व है। डब्ल्यू ए एल्टिस के मतानुसार, "इसकी (पूर्ण रोजगार वाले देश की) वृद्धि दर बुनियादी रूप से तकनीकी प्रगति और जनसंख्या में वृद्धि पर निर्भर करती है। कोई भी नीति जिससे तकनीकी प्रगति होती है, वृद्धि की दर को बढ़ाती है।" इसी प्रकार रिचार्ड टी गिल का मत है—"आर्थिक विकास अपने लिए महत्त्वपूर्ण पौष्टिकता नवीन विचारों, आविष्कारों, विधियों और तकनीकों के स्रोतों से प्राप्त करता है जिसके अभाव में चाहे अन्य साधन कितने ही पक्ष में हों, आधुनिक विकास अनिवार्य रूप से असम्भव था।"

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में तकनीकी ज्ञान के विकास और उपभोग का जहाँ इतना अधिक महत्त्व है वहाँ दूसरी ओर ये देश इस क्षेत्र में अत्यन्त पिछड़े हुए हैं। यही नहीं, ये देश ज्ञान, विज्ञान और तकनीक के विकास के लिए अध्ययन, अनुसंधान आदि पर अधिक धन व्यय नहीं कर पाते, किन्तु इनके समक्ष विकसित देशों द्वारा अपनाए गए तकनीकी ज्ञान का कोष होता है जिसे अपने देश की परिस्थितियों के अनुसार प्रयुक्त करके ये देश अपने यहाँ आर्थिक विकास कर सकते हैं। वस्तुतः भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देश, विकसित देशों में अर्जित तकनीक और प्रविधियों में अपनी परिस्थितियों के अनुसार समायोजन करके उत्पादन में वृद्धि करने में संलग्न हैं।

डब्ल्यू ए एल्टिस के अनुसार तकनीकी ज्ञान में वृद्धि दो प्रकार की होती है। जिस तकनीकी प्रगति का नई पूँजी के अभाव में विदोहन नहीं किया जा सकता उसे 'Embodied' तकनीकी प्रगति कहते हैं तथा दूसरी प्रकार की 'Disembodied' तकनीकी प्रगति कहलाती है जिसका बिना नवीन पूँजी के ही विदोहन किया जा सकता है।

अत: आर्थिक विकास मे तकनीकी ज्ञान एक महत्त्वपूर्ण साधन बन गया है। एल्टिस के अनुसार "तकनीकी प्रगति सम्भवत: आर्थिक विकास को सम्भव बनाने वाला महत्त्वपूर्ण साधन है।"

5. साहसी एव नव-प्रवर्तन (Entrepreneur and Innovation)—नए आविष्कार और तकनीकी ज्ञान आर्थिक विकास मे, उपयोगी नही हो सकते जब तक कि इनका आर्थिक रूप से विदोहन नहीं किया जाए या उत्पादन मे उपयोग नही किया जाए। रिचार्ड टी. गिल के अनुसार "तकनीकी ज्ञान आर्थिक दृष्टिकोण से प्रभावपूर्ण तभी होता है जबकि इसका नव-प्रवर्तन के रूप मे प्रयोग किया जाए जिसकी पहल समाज के साहसी या उद्यमकर्त्ता करते हैं।" श्री याले ब्राजन के मतानुसार, "न तो आविष्कार की योग्यता और न केवल आविष्कारक ही आर्थिक विधि का उत्पादन करते हैं या उस विधि को कम मितव्ययतापूर्ण विधियो के स्थान पर प्रयुक्त करने को तैयार करते हैं।" किसी आविष्कार या उत्पादन की नवीन तकनीक की खोज के पश्चात् भी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है जो दूरदर्शी होता है, जिसमे आत्म-विश्वास होता है और जो इसे उत्पादन मे प्रयुक्त करता है जिससे उत्पादन मे वृद्धि या इसकी लागत मे कमी होती है। तत्पश्चात् यह तकनीकी ज्ञान या आविष्कार उपयोगी सिद्ध होता है। ऐसे व्यक्तियो को 'साहसी' और उत्पादन मे उसके नवीन विधियो के प्रयोग को 'नव-प्रवर्तन' कहते हैं। शुम्पीटर के अनुसार, "नव-प्रवर्त्तन का आशय किसी भी सृजनात्मक परिवर्तन (Creative Change) से है।" इसका सम्बन्ध आर्थिक क्रियाओं के किसी भी पहलू से हो सकता है। उत्पादन मे इसके उपयोग का परिणाम आर्थिक विकास होता है। इस प्रकार आर्थिक विकास मे नव-प्रवर्तन और उद्यमी एक महत्त्वपूर्ण घटक प्रमाणित होते हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री शुम्पीटर का विश्वास था कि साधनो की वृद्धि से भी बढ कर ये ही वे घटक हैं जो आर्थिक विकास की कुन्जी हैं क्योंकि आर्थिक विकास वर्तमान साधनो को नवीन विधियो से प्रयुक्त करने मे निहित हैं। प्रो याले ब्राजन के अनुसार भी "आर्थिक विकास उद्यम या साहस के साथ इस प्रकार सम्बद्ध है कि उद्यमी को उन व्यक्तियों के रूप मे परिभाषित किया गया है जो 'नवीन सयोगो' का सृजन करते हैं।" के ई. बोल्डिग के अनुसार, "आर्थिक प्रगति की समस्याओ मे से एक व्यक्तियो को 'नव-प्रवर्तक' बनने को प्रोत्साहन देने की है।"

क्लेरेन्स डानहोफ ने उद्यमियो को निम्न श्रेणियो मे विभाजित किया है—

1 नव-प्रवर्तक उद्यमी (Innovating Entrepreneurs) जो आकर्षक सम्भावनाओं और प्रयोगों को सर्वप्रथम कार्य रूप मे परिणत करते है।

2. अनुकरण करने वाले उद्यमी (Imitative Entrepreneurs) जो सफल नव-प्रवर्तनों को ग्रहण करने को प्रस्तुत रहते हैं।

3. 'फेबियन' उद्यमी (Fabian Entrepreneurs) बड़ी सावधानी से उस समय ही नव-प्रवर्तन को ग्रहण करते हैं जब यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसा नही करने पर उन्हें हानि होगी।

4 ड्रान उद्यमी (Drone Entrepreneurs) जो अन्य समान उत्पादकों की अपेक्षा अपनी आय कम होने पर भी उत्पादन मे परिवर्तन नही करते ।

अत स्पष्ट है कि विभिन्न देशो के आर्थिक विकास मे उद्यमी और नव-प्रवर्तन महत्त्वपूर्ण साधन हैं, किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो मे इन उद्यमियो की कमी रहती है । इन देशो मे विभिन्न उत्पादन क्रियाओ को अपनाए जाने के विस्तृत क्षेत्र रहते हैं जिनके विदोहन हेतु उद्यमियो की आवश्यकता होती है । स्वदेश मे योग्य साहसियो की कमी रहती है जिनकी पूर्ति विदेशो से उद्यम का आयात करके की जाती है । प्रजातान्त्रिक पद्धति वाले देशो मे अधिकांश निजी उद्यमी होते है जबकि समाजवादी देशो मे समस्त आर्थिक क्रियाएँ सरकार द्वारा सचालित की जाती है । अब स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्थाओ मे भी ये आर्थिक क्रियाएँ सरकार द्वारा सचालित की जाती हैं क्योंकि निजी उद्यमियो से वाँछनीय आर्थिक विकास की आशा नही की जा सकती, अत सरकार आर्थिक क्रियाओ मे उद्यमी के रूप मे सम्मिलित हो रही है । भारत मे पचवर्षीय योजनाओ द्वारा देश के आर्थिक विकास मे निजी उद्यमियो के साथ-साथ सरकार ने भी कोई उद्योग व्यवसाय स्थापित किए हैं । विदेशी उपक्रमो का भी लाभ उठाया जा रहा है ।

6 सगठन (Organisation)—आर्थिक विकास का एक प्रमुख तत्त्व उचित व्यवस्था या सगठन है । वाँछनीय गति से आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि आर्थिक एव अन्य क्रियाएँ उचित ढग से सगठित की जाएँ । उत्पादन वृद्धि के लिए उत्पादन के साधनो मे वृद्धि आवश्यक है, किन्तु यदि समाज बिना उत्पादन की तकनीक और सगठन मे परिवर्तन किए केवल उत्पादन के साधनो मे वृद्धि करने पर ही पूर्णत निर्भर रहता तो पिछले दो सौ वर्षो मे हुए आर्थिक विकास का होना कठिन था । जिस किसी भी देश मे आर्थिक विकास हुआ है उसका यह एक प्रमुख लक्षण रहा है कि कुल उत्पादन वृद्धि उससे अधिक तीव्र गति से हुई है जो उत्पादन के साधनो मे हुई है अर्थात् इसका श्रेय उत्पादन के साधनो के उचित सगठन को है । बजर भूमि को कृषि योग्य बनाना उसमे सिंचाई की व्यवस्था करना, अच्छे खाद, बीज एव यन्त्रो का उपयोग करना, देश के खनिज, वन, जल एव शक्ति के साधनो तथा मानव शक्ति का उचित उपयोग और विकास करना, उद्योगो का उचित पैमाने तक विस्तार करना, विशिष्टीकरण आदि आर्थिक सगठन से सम्बन्धित ऐसे प्रश्न हैं जिनमे सुधार से आर्थिक विकास को गति मिलती है । प्रो पी आर पी डॉब के कथनानुसार "आर्थिक विकास की समस्या मुख्यत वित्तीय समस्या नही है बल्कि आर्थिक सगठन व व्यवस्था की समस्या है ।"

इस प्रकार आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले तत्त्वो मे उत्पादन के साधनो के उपयोग के तरीको मे परिवर्तन का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है । इस प्रकार का एक परिवर्तन या सगठन से सम्बन्धित एक तत्त्व उत्पादन के पैमाने और विशिष्टीकरण मे वृद्धि है । प्रो रिचार्ड टी गिल ने तो उत्पादन के पैमाने और विशिष्टीकरण वृद्धि को आर्थिक विकास का प्राकृतिक, मानवीय साधन और पूँजी के सचय

के समान एक अलग ही कारक माना है। वस्तुत. बड़े पैमाने पर उत्पत्ति (Large Scale Production), श्रम विभाजन (Division of Labour) और विशिष्टीकरण (Specialization) आर्थिक विकास मे अत्यन्त सहायक है। बड़े पैमाने के उत्पादन से आन्तरिक और बाह्य मितव्ययिताएँ प्राप्त होती हैं जिससे बड़ी मात्रा में सस्ती वस्तुओं का उत्पादन होता है। आर्थिक विकास के लिए आवश्यक कुल विशाल सामग्री का निर्माण भी विस्तृत पैमाने के उत्पादन पर ही सम्भव है। श्रम-विभाजन उत्पादकता मे वृद्धि करता है। अर्थशास्त्र के जनक स्वय एडम स्मिथ के अनुसार, "श्रम की उत्पादक शक्तियो मे सर्वाधिक सुधार श्रम-विभाजन के प्रभावों के परिणामस्वरूप हुआ प्रतीत होता है।" जैसा कि रिचार्ड टी. गिल ने बतलाया है, "अर्थव्यवस्था को व्यक्तिगत कुशलता या विशेष प्रादेशिक या भौगोलिक लाभो का उपयोग करने के योग्य बना कर, वृद्धिमान विशेषज्ञता का विकास करके, उत्पादन का अप्रमापीकरण और यन्त्रीकरण को सुविधाजनक बना कर, उद्योगो के सगठन मे इस प्रकार के परिवर्तन आर्थिक विकास मे शक्तिशाली योगदान देते है।"

अर्द्ध-विकसित देशो मे आर्थिक विकास के लिए अनुकूल आर्थिक सगठन नही होता। उत्पादन छोटे पैमाने पर बहुधा कुटीर और लघु उद्योगो के द्वारा होता है। श्रम-विभाजन और विशिष्टीकरण का अभाव होता है क्योकि बाजारो का विस्तार सीमित होता है और बहुधा उत्पादन जीवन-निर्वाह के लिए किया जाता है विनिमय के लिए नही। व्यावसायिक सगठन के विभिन्न विकसित रूपो जैसे सयुक्त पूँजी कम्पनी सहकारिता आदि का प्रभावपूर्ण उपयोग नही हो पाता है। अत ऐसे अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक सगठन मे उचित परिवर्तन अपेक्षित है। भारत मे भी इस ओर प्रयास किया जा रहा है। विस्तृत पैमाने पर उत्पादन, श्रम-विभाजन, विशिष्टीकरण आदि बढ रहे हैं। लघु उद्योगो का भी पुनर्गठन किया जा रहा है। सयुक्त-पूँजी कम्पनियाँ, सार्वजनिक निगम (Public Corporations) और सहकारिता का क्षेत्र विस्तृत हो रहा है।

7. राज्य की नीति (State Policy)— विभिन्न देशों के आर्थिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व उपयुक्त सरकारी नीति है। आर्थिक विकास के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता राजनीतिक स्थिरता, आन्तरिक और बाह्य सुरक्षा तथा शान्ति है। बिना स्थिर सरकार के आर्थिक विकास असम्भव है। इसके साथ ही आर्थिक विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि सरकार आर्थिक विकास के उपयुक्त नीति अपनाए। यद्यपि प्राचीन काल मे राज्य का क्षेत्र सीमित था, किन्तु आधुनिक सरकारें ऐसे बहुत से आर्थिक कार्य सम्पन्न करती हैं जिनका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक विकास पर प्रभाव पडता है। यदि किसी देश की सरकार ऐसी है जो आर्थिक विकास मे रुचि नहीं रखती और उसके लिए प्रयत्न नही करती तो उस देश के आर्थिक विकास की कोई सम्भावना नही है। इसके विपरीत यदि किसी देश की सरकार आर्थिक विकास के लिए रुचि रखती है और प्रयत्न करती है तो अन्य बाते समान रहने पर भी उस देश के आर्थिक विकास की गति अधिक होती है। प्रो डब्ल्यू. ए. लेविस का

कथन है कि कोई भी देश बुद्धिमान सरकार से सक्रिय प्रोत्साहन के अभाव मे आर्थिक विकास नही कर सका है।

अर्द्ध विकसित देशो मे पूँजी, कुशल श्रम, तकनीकी ज्ञान का अभाव रहता है। इन देशो मे विकास के लिए यातायात और सन्देशवहन के साधन, शक्ति के साधन, नवीन तकनीक आदि का विकास करना होता है तथा इस प्रकार की कर नीति, मूल्य नीति मौद्रिक नीति राजकोषीय नीति, विदेशी व्यापार नीति, औद्योगिक नीति, श्रम नीति, अपनानी होती है जिससे विकास के लिए आवश्यक वित्तीय साधन उपलब्ध हो सके, लोग पूंजी की बचत और विनियोजन को प्रोत्साहन दें, देश मे आवश्यक उद्योगों की स्थापना हो सके, विकास के लिए आवश्यक देशी और विदेशी कच्चा माल, यन्त्र-उपकरण उपलब्ध हो सके, विदेशो से आवश्यक साज-सज्जा मगाने के लिए पर्याप्त विदेशी मुद्रा प्राप्त हो सके, कुशल जनशक्ति का सृजन हो सके। यही नही अर्द्ध-विकसित देशो मे विनियोजन के कुछ ऐसे क्षेत्र होने हैं जहाँ निजी उद्यमी पूँजी विनियोजन नही करते या जो अर्थव्यवस्था मे महत्वपूर्ण स्थान रखते है, ऐसे क्षेत्रो मे सरकार को स्वय प्रत्यक्ष रूप से उद्यमी का कार्य करना पडता है। आर्थिक विकास का आशय देश के वर्तमान और सम्भाव्य साधनो का इस प्रकार उपयोग करना है जिससे अधिकतम उत्पादन हो और अधिकतम लाभ हो। यही कारण है कि आज विश्व के समस्त अर्द्ध-विकसित देशों मे आर्थिक विकास का कार्य सरकार द्वारा एक योजनाबद्ध तरीके से सचालित किया जाता है जिसमे सरकार का उत्तरदायित्व और भी अधिक बढ जाता है। नियोजित अर्थव्यवस्था वाले देशो मे सरकारी क्षेत्र (Public Sector) का विस्तार होता जाता है। अर्द्ध-विकसित देशो के आर्थिक विकास मे सरकारी नीति का महत्त्व भारत के उदाहरण से पूर्णत स्पष्ट हो जाता है जिसने सरकार द्वारा निर्मित पचवर्षीय योजनाओ के द्वारा पर्याप्त आर्थिक विकास किया है।

8. सस्थाएँ (Institutions)—आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त वातावरण भी आवश्यक है। इसके लिए न केवल आर्थिक सस्थाएँ ही अपितु राजनीतिक, सामाजिक सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और धार्मिक वातावरण, मान्यताएँ एव सस्थाएँ इस प्रकार की होनी चाहिएँ जो विकास को प्रोत्साहित करे। राष्ट्रसघ की समिति रिपोर्ट के अनुसार, "उपयुक्त वातावरण की अनुपस्थिति मे आर्थिक प्रगति असम्भव है। आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है कि मनुष्यो मे प्रगति की इच्छा हो और उनकी सामाजिक आर्थिक राजनीतिक एव वैधानिक सस्थाएँ इस इच्छा को क्रियान्वित करने मे सहायक हो।" प्रोफेसर पार्ल अलबर्ट के मतानुसार, 'किसी भी आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य शर्त इसकी सभ्यता मे लोच होने के साथ-साथ इसके समाज और अर्थ-व्यवस्था की सरचना परिवर्तन की सम्भावनाओ के लिए खुली हो।'''''''''आर्थिक विकास के लिए धनात्मक प्रेरणा एक ऐसी सभ्यता है जो अपने मूल्यो (Values) मे भौतिक समृद्धि को उच्च प्राथमिकता देती है।" इसी प्रकार के विचार हरमन फाइनर ने भी प्रकट किए हैं, "वर्तमान सन्दर्भ मे 'वातावरण' का क्या आशय हो सकता है? इसका अर्थ जीवन निर्वाह स्तर मे उच्चता की इच्छा की उपस्थिति है जो अन्य मूल्यो की अपेक्षा उच्च प्राथमिकता रखती है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि आर्थिक विकास में जनता के जीवन स्तर को उच्च बनाने की इच्छा एक चालक शक्ति (Motive Power) है जो उस देश की संस्थाओं पर निर्भर रहती है। जहाँ भारत जैसी जमीदारी या जागीरदारी प्रथा प्रचलित होगी, जिसके कारण कृषको के परिश्रम द्वारा उत्पन्न कमाई का उपयोग शोषण द्वारा जमीदार और जागीरदार लोग करते हों, वहाँ कृषक की अधिक परिश्रम की प्रेरणा समाप्त होगी और कृषि का द्रुत आर्थिक विकास नही हो सकेगा। इसके विपरीत जहाँ लोगो को अपने प्रयत्नो का पूरा प्रतिफल मिलने की व्यवस्था होगी, वहाँ लोगों को अधिक परिश्रम की प्रेरणा मिलेगी और आर्थिक विकास होगा।

अर्द्ध-विकसित देशो मे कई सस्थान ऐसे होते हैं जो आर्थिक विकास मे बाधक होते हैं। भू-धारण की प्रतिगामी प्रणालियाँ, सयुक्त-परिवार प्रथा, जाति-प्रथा, उत्तराधिकार के नियम, स्त्रियो की स्थिति, भूमि का मोह, सविदा (Contract) की अपेक्षा स्तर (Status) पर निर्भरता, अधविश्वास, परम्परागत रूढ़िग्रस्तता, सामाजिक अपव्यय, परिवर्तन के प्रति असहिष्णुता, आध्यात्मिक दृष्टिकोण कुछ धार्मिक भावनाएँ आदि आर्थिक विकास को हतोत्साहित करते है। ये सस्थाएँ आर्थिक विकास के लिए 'आवश्यक परिवर्तन' को कठिन बनाकर आर्थिक विकास मे बाधा उपस्थित करती है। अतः अर्द्ध-विकसित देशो मे उन धार्मिक एव सामाजिक सस्थाओ मे इस प्रकार परिवर्तन करना चाहिए और नवीन सस्थाओ का निर्माण किया जाना चाहिए जिससे आर्थिक विकास मे सहायता मिले। इन देशो की सामाजिक संस्थाओं मे विकास के लिए क्रान्तिकारी परिवर्तनो की आवश्यकता है जो वैधानिक तरीको से या शिक्षा का प्रचार करके या उच्च जीवन की इच्छा जाग्रत करके की जानी चाहिए।

सक्षेप मे किसी देश के आर्थिक विकास मे उन सस्थाओ का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान होता है जो देशवासियो मे मितोपयोग की इच्छा, भौतिक समृद्धि की आकांक्षा, आर्थिक लाभ के अवसरो को प्राप्त करने की अभिलाषा जाग्रत करती हो।

9. अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ—आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण निर्धारक तत्त्व अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ है। आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय परस्पर-निर्भरता के युग मे दूसरे देशो के सहयोग के बिना आर्थिक विकास की बात ही क्या, कोई भी देश जीवित नही रह सकता। यदि कोई देश दीर्घकालीन युद्ध मे सलग्न है तो उसका आर्थिक विकास असम्भव है। अर्द्ध-विकसित देशो के आर्थिक विकास मे तो अनुकूल बाह्य परिस्थितियो का भी महत्त्व होता है। इन देशो मे पूंजी का अभाव होता है जिसे विदेशों से अनुदान, ऋण एव प्रत्यक्ष विनियोग द्वारा प्राप्त किया जा सकता है जो निजी और सार्वजनिक दोनो प्रकार का हो सकता है। इन देशो मे तकनीकी ज्ञान का भी अभाव होता है जिसे विकसित देशो मे देशवासियो के प्रशिक्षण या विदेशियों की सहायता द्वारा पूरा किया जाता है। आर्थिक विकास के लिए कृषि और औद्योगिक विकास आवश्यक है। कृषि के विकास के लिए उर्वरक, औषधियाँ, यन्त्रोपकरण तथा विशाल सिंचाई योजनाओ के लिए आवश्यक सामग्री विदेशो से प्राप्त

करनी होती है। औद्योगीकरण के लिए कच्चे माल, मशीनों आदि का भारी मात्रा में आयात करना पड़ता है जिसका भुगतान निर्यातों में वृद्धि द्वारा अर्जित विदेशी मुद्रा के द्वारा करना होता है। यह कार्य तभी अच्छी प्रकार से सम्पन्न हो सकता है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण सद्भावनापूर्ण हो, सम्बन्धित देश का विदेशों से अधिकाधिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध हो और वे उस देश के आर्थिक विकास में पर्याप्त सहायता देते हों। यदि एक देश दीर्घकालीन युद्ध में संलग्न हो तो उसके आर्थिक विकास की सम्भावनाएँ अत्यन्त क्षीण होंगी। अतः अनुकूल बाह्य परिस्थिति, आर्थिक विकास का एक प्रभावशाली तत्त्व है।

आर्थिक विकास के कारक और उनकी सापेक्षिक देन
(Relative Contribution of Growth Factors)

सब कारण परस्पर सम्बन्धित होते हैं और एक की वृद्धि से दूसरे का विकास होता है। उदाहरणार्थ, यदि प्राकृतिक साधन अधिक होंगे तो उत्पादन अधिक होगा। पूँजी का निर्माण अधिक होगा जिसको विनियोजित करके आय में वृद्धि की जा सकेगी। आय में इस वृद्धि के कारण मानवीय साधनों का विकास होगा, अध्ययन एवं अनुसंधान पर अधिक धन व्यय करके तकनीकी ज्ञान का विकास किया जा सकेगा और सरकार भी आर्थिक विकास के उत्तरदायित्व को अच्छी प्रकार निर्वाह कर सकेगी। इसी प्रकार यदि देश में स्थिर सरकार है जो आर्थिक विकास के अनुरूप नीतियों को अपनाती है तो देश के प्राकृतिक साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जा सकेगा। देश में विकास के लिए आवश्यक संस्थाओं का सृजन किया जाएगा जिससे उत्पादन में वृद्धि होगी और पूँजी-निर्माण की गति बढ़ेगी। इसी प्रकार देश में विकसित जनशक्ति होगी तो अपनी योग्यता और परिश्रम से प्राकृतिक साधनों का अच्छा विदोहन कर सकेगी। यदि पूँजी की पर्याप्तता होगी तभी प्राकृतिक साधनों और नवीन तकनीकी ज्ञान का उचित उपयोग किया जा सकेगा। यदि संगठन या व्यवस्था अच्छी होगी तो उत्पादन के साधनों—श्रम, पूँजी, प्राकृतिक साधनों का उचित और लाभप्रद उपयोग किया जा सकेगा और उनकी उत्पादकता में वृद्धि होगी। इसी प्रकार यदि देश में स्थिर, ईमानदार और विकास-नीतियों को अपनाने वाली सरकार होगी और प्राकृतिक साधनों के विकास की पर्याप्त सम्भावनाएँ होंगी तो विदेशों से अधिकाधिक सहायता उपलब्ध हो सकेगी।

अतः आर्थिक विकास के उपरोक्त समस्त कारक परस्पर सम्बन्धित हैं और समान रूप से आवश्यक हैं। एक के अभाव में अन्य का महत्त्व कम हो सकता है। उदाहरणार्थ, यदि देश में प्राकृतिक साधनों का अभाव है तो अन्य घटक कितने ही सशक्त हों, आर्थिक विकास सीमित ही होगा। जापान, स्विट्जरलैण्ड आदि देशों के अतिरिक्त समस्त विकसित देशों में प्राकृतिक साधनों का आर्थिक विकास में अत्यधिक योगदान रहा है। भूतकाल में आर्थिक विकास में प्राकृतिक साधनों की देन कितनी महत्त्वपूर्ण रही है, इसके बारे में प्रो. रिचार्ड टी. गिल ने लिखा है, "पश्चिमी सभ्यता का अधिकांश इतिहास भूमि और साधनों के अधिग्रहण के सन्दर्भ में लिखा जा

सकता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक विश्व के सर्वोच्च जीवन-स्तर वाले देश कनाडा और अमेरिका मे आर्थिक विकास की प्रक्रिया तथा नवीन साधनो की खोज और उपयोग दोनो साथ-साथ होते रहे।" इस प्रकार भूतकाल मे प्राकृतिक साधनो की देन महत्त्वपूर्ण रही है, किन्तु इनका भविष्य मे क्या महत्त्व रहेगा, यह अनिश्चित है, क्योकि अब समस्त विश्व के दृष्टिकोण से साधनो मे धनी अछूते क्षेत्र कम ही हैं, यद्यपि मानव मे 'नवीन साधनो' के सृजन की क्षमता को भी नजर-अन्दाज नहीं किया जा सकता।

इसी प्रकार, आर्थिक विकास मे पूँजी की देन भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पूँजी के बिना प्राकृतिक साधनो का विदोहन नही किया जा सकता, वर्तमान युगीन विशालकाय कारखानो की स्थापना नही हो सकती, श्रम की उत्पादकता नही बढाई जा सकती। सच तो यह है कि आर्थिक विकास मे पूँजी का योगदान भी कम महत्त्वपूर्ण नही है। प्रो डब्ल्यू ए लेविस ने पूँजी-निर्माण को आर्थिक विकास की एक केन्द्रीय समस्या बतलाते हुए लिखा है, "यह एक केन्द्रीय समस्या है क्योकि आर्थिक विकास का केन्द्रीय तथ्य (ज्ञान और कुशलता को सम्मिलित करते हुए) तीव्रता के पूँजी सचय है।" कुछ अर्थशास्त्री आर्थिक विकास का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व तकनीकी ज्ञान को मानते हैं। वस्तुतः तकनीकी ज्ञान की इतनी अधिक प्रगति के बिना आर्थिक विकास इस सीमा तक असम्भव होता है। इसी प्रकार कुछ अर्थशास्त्री नव-प्रवर्तन (Innovation) और उद्यम (Enterprise) को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारक स्वीकार करते हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री शुम्पीटर के अनुसार उद्यमी और उनकी नव-प्रवर्तन की क्रियाओं को ही आर्थिक विकास का श्रेय है। किन्तु आर्थिक विकास मे उत्पादन के साधनो की उचित व्यवस्था, अनुकूल वातावरण, विकास की इच्छा को प्रेरित करने वाली सामाजिक सस्थाओ का भी कम महत्त्व नही रहा है। इनके अभाव मे भौतिक, मानवीय और वित्तीय साधनो की पर्याप्तता होने पर भी उनका सदुपयोग या दुरुपयोग नही होने पर आर्थिक विकास नहीं हो पाएगा। इसी प्रकार कुछ लोग राज्य की उचित नीति को आर्थिक विकास का मुख्य घटक बतलाते हैं। सोवियत रूस और अन्य समाजवादी देशो की उच्च आर्थिक प्रगति का बहुत बडा श्रेय वहाँ की विकास के लिए प्रयत्नशील सरकारो को ही है। किन्तु वस्तुत इन सब मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटक किसी देश की कुशल, विवेकपूर्ण दृष्टिकोण और दृढ सकल्प वाली जन-शक्ति ही है. उत्पादन के अन्य कारको जैसे प्राकृतिक साधन, वित्तीय साधन, तकनीकी ज्ञान, सगठन, वातावरण, सस्थान, सरकार एव अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण का निर्माण और विकास मनुष्यो के द्वारा ही किया जाता है। डॉ वी. के. आर. वी राव ने इस सम्बन्ध मे लिखा है कि आर्थिक विकास सम्बन्धी अध्ययन से पता चलता है कि पूँजी सचय आर्थिक विकास की मात्रा और गति को निर्धारित करने वाले कारको मे से केवल एक है। नव-प्रवर्तन, प्रविधि और ज्ञान आदि भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने यन्त्र और उपस्कर। किन्तु ये सब मानवीय तत्त्व से बहुत अधिक सम्बन्धित है और आर्थिक विकास के लिए अपना कार्य मानवीय प्रयत्नो की गहनता और गुणो पर इनके प्रभाव द्वारा ही करते है।

इस प्रकार यद्यपि कई विचारको ने आर्थिक विकास के लिए भिन्न-भिन्न कारको का महत्त्व दिया है किन्तु वे सभी आवश्यक और महत्त्वपूर्ण हैं। विकसित देशो के आर्थिक विकास का श्रेय किसी तत्त्व को नही दिया जा सकता यद्यपि भिन्न-भिन्न देशो मे विभिन्न कारको का कुछ अधिक महत्त्व हो सकता है। अमेरिका के आर्थिक विकास मे न केवल भौगोलिक दशाओ, किन्तु सामाजिक, राजनीतिक सभी परिस्थितियो ने योग दिया है। सोवियत रूस के आर्थिक विकास मे सरकार का योगदान सराहनीय है। डॉ नोल्स ने इगलैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति का श्रेय वहाँ के लोगो की साहस भावना को दिया है। जापान आदि मे प्राकृतिक साधनो का योगदान कम रहा है। अत आर्थिक विकास मे किस कारक का अधिक महत्त्व है यह विभिन्न देशो की परिस्थितियो, विकास की अवस्था और विकास की विचारधाराओ पर निर्भर करता है। ये सब कारक परस्पर सम्बन्धित हैं और उनके महत्त्व मे विभिन्न परिस्थितियों के सन्दर्भ मे अन्तर हो जाता है। अन्त मे हम वी शेपर्ड से सहमत हैं जिनके अनुसार किसी एक कारक के नही अपितु विभिन्न महत्त्वपूर्ण कारको को उचित अनुपात मे मिलाने से आर्थिक विकास होता है। इस सम्बन्ध मे जोसफ एल फिशर का यह कथन उल्लेखनीय है कि "आर्थिक विकास के लिए किसी एक विशेष तत्त्व को पृथक् करना और इसे ऐसे आर्थिक विकास का प्रथम या प्राथमिक कारण बताना न तो ठीक ही है और न ही विशेष सहायक है। प्राकृतिक साधन, कुशल श्रम, मशीनें और उपस्कर, वैज्ञानिक एव प्रबन्धात्मक साधन एव आर्थिक स्थानीयकरण सभी महत्त्वपूर्ण हैं। यदि उन्हे आर्थिक समृद्धि प्राप्त करनी है तो क्षेत्रो और राष्ट्रो को इन कारको को प्रभावपूर्ण ढग से मिलाना चाहिए।"

आर्थिक विकास की अवस्थाएँ
(Stages of Economic Growth)

विश्व के विभिन्न देशो मे आर्थिक विकास की गति और प्रक्रिया मे पर्याप्त अन्तर रहा है। अर्थशास्त्रियो ने आर्थिक विकास के ऐतिहासिक क्रम को विभिन्न अवस्थाओ मे विभक्त करने का प्रयत्न किया। इस सम्बन्ध मे प्रो रोस्टो का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आर्थिक विकास की अवस्थाओ को निम्न श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है—

(1) परम्परागत समाज की स्थिति (Stage of Traditional Society),
(2) स्वय-स्फूर्त-विकास से पूर्व की स्थिति (*Stage of Pre-condition* of take-off),
(3) स्वय-स्फूर्त की स्थिति (Stage of take-off),
(4) परिपक्वता की स्थिति (Stage of Maturity), एव
(5) उच्च-स्तरीय उपभोगो की अवस्था (*Stage of Mass-consumption*)

1. परम्परागत समाज की स्थिति—प्रो रोस्टो के अनुसार, "परम्परागत समाज से आशय एक ऐसे समाज से है जिसका ढांचा सीमित उत्पादन कार्यों के अन्तर्गत विज्ञान, प्रविधि एव भौतिक विश्व को न्यूटन के पूर्व की स्थिति के आधार

पर विकसित हुआ है।" परम्परागत समाज में साधारणतः कृषि और उद्योगों में परम्परागत तरीको से कार्य किया जाता है। यन्त्रों, विशेषकर शक्ति-चालित यन्त्रों का सामान्यत उपयोग नही किया जाता। उद्योग अत्यन्त अविकसित अवस्था में पाए जाते हैं और सीमित उत्पादन होने के कारण विनिमय व्यवस्था भी सीमित रहती है। परम्परागत समाज मे राजनीतिक सत्ता प्राय. भू-स्वामियों के हाथ मे केन्द्रित होती है। अपनी भूमि की उपज के बल पर ही यह वर्ग आर्थिक शक्ति हथिया कर समाज के अन्य वर्गों पर शासन करने लगता है। कही-कही उद्योग और कृषि मे नवीन पद्धतियाँ दिखाई देती है, किन्तु मूलत. सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था अविकसित स्थिति मे पायी जाती है।

2. स्वय-स्फूर्त-विकास से पूर्व की स्थिति—रोस्टो ने इसे विकास की दूसरी अवस्था माना है। यह अवस्था वस्तुत स्वय-स्फूर्त-अवस्था (Stage of Take-off) की भूमिका (Prelude) मात्र है। इससे एक ऐसे समाज का बोध होता है जिसमें परिवर्तन होने प्रारम्भ हो जाते हैं और समाज-परम्परागत स्थिति से निकलकर द्वितीय अवस्था की ओर अग्रसर होने लगता है। समाज को इतनी सुविधाएँ मिलना शुरू हो जाती हैं कि वह आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतियो को अपना सके, नवीन तकनीको का उपयोग कर सके तथा इनके आधार पर अपने विकास की गति मे तेजी ला सके। सारांश मे, जब परम्परागत समाज में पुराने मूल्यो के स्थान पर नवीन वातावरण को प्रस्थापित करने के प्रयास होने लगते हैं तभी 'स्वयं-स्फूर्त विकास से पूर्व की स्थिति' उत्पन्न होती है। इस अवस्था मे बैंको, बीमा कम्पनियों, व्यावसायिक सस्थाओं आदि विभिन्न आर्थिक संस्थाओ का आविर्भाव होता है और सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था या इसके एक बडे भाग मे चेतना जाग्रत हो जाती है। परम्परागत समाज की सभी अथवा अधिकाँश परिस्थितियो मे मूलाधार परिवर्तन होने लगते है। उत्पादन प्रक्रिया मे वाष्प अथवा किसी सीमा तक विद्युत् शक्ति का उपयोग होता है तथा वृहद् स्तर पर उत्पादन होने के कारण विनिमय का क्षेत्र भी विस्तृत हो जाता है। परिवहन को सुगम बनाने के लिए सामाजिक ऊपरी लागतो (Social overheads) का निर्माण होने लगता है, कृषि मे प्रविधिक क्रान्ति (Technological Revolution) आने लगती है तथा अधिक कुशल उत्पादक और प्राकृतिक साधनो के विक्रय से वित्त प्राप्त करके आयात मे वृद्धि की जाने लगती है और जहाँ तक सम्भव हो पूँजी का आयात प्रोत्साहित होता है। इस अवस्था मे जो भी परिवर्तन प्रारम्भ होते हैं उनमे विदेशी पूँजी और प्रविधि का योगदान मुख्य रहता है। फिर भी इस अवस्था मे आर्थिक विकास का एक सामान्य क्रम नही बन पाता। इसके पश्चात् अर्थ-व्यवस्था स्वयं-स्फूर्त (Take-off) की ओर अग्रसर हो जाती है।

3. स्वयं-स्फूर्त अवस्था—आर्थिक विकास की तृतीय अवस्था को रोस्टो ने स्वयं-स्फूर्त-अवस्था (Stage of Take-off) की संज्ञा दी है। इस अवस्था को परिभाषित करना कठिन है, रोस्टो के अनुसार स्वय-स्फूर्त एक ऐसी अवस्था जिसमे विनियोग की दर बढ़ती है और वास्तविक रूप से प्रति व्यक्ति उत्पादन मे वृद्धि हो

जाती है तथा इस प्रारम्भिक परिवर्तन से उत्पादन-तकनीकी मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आ जाते हैं और आय का प्रवाह इस तरह होने लगता है कि विनियोगो द्वारा प्रति व्यक्ति उत्पादन की प्रवृत्ति बढती रहती है।

स्वय-स्फूर्त-अवस्था मे आर्थिक विकास कुछ सीमित क्षेत्रो मे तीव्र गति से होने लगता है और आधुनिक औद्योगिक-तकनीकी का प्रयोग होता है। विकास सामान्य एव नियमित गति से होने लगता है तथा प्रविधि अथवा पूंजी के लिए देश पर निर्भर नही रहता। विकास मार्ग मे आने वाली प्राचीन रूढियाँ एव बाधाएँ समाप्त हो जाती हैं तथा शक्तियाँ अधिक शक्तिशाली होकर विकास मे सहयोग प्रदान करती है। नई प्रविधियो के माध्यम से उद्योगो और कृषि मे उत्पादन वृद्धि का क्रम स्वयमेव चलता रहता है। औद्योगिक विकास की गति कृषि की अपेक्षा सामान्यत अधिक तीव्र रहती है। देश की अर्थ-व्यवस्था बिना किसी बाहरी सहायता के विकास कर सकती है और उत्पादन को अधिकतम सीमा तक पहुँचाना सम्भव हो जाता है। विनियोग और बचत का राष्ट्रीय आय मे अनुपात 10 प्रतिशत या इससे अधिक रहता है। कल्याणकारी उद्योगो का तीव्र गति से विकास होता है और ऐसे सस्थागत ढाँचे का निर्माण होने लगता है जो घरेलू साधनो से विकास के लिए पूंजी एकत्रित करने की क्षमता रखता हो। रोस्टो के अनुसार, विकास की इस अवस्था मे शिक्षा तथा प्रविधिक प्रशिक्षण के साथ-साथ रेलो, सडको और सचार वाहन के साधनो का भी विकास हो जाता है। प्रो रोस्टो ने कुछ प्रमुख देशो की स्वय-स्फूर्त-अवस्था की अवधियाँ भी दी हैं—

स्वय-स्फूर्त अवस्था

देश	स्वय स्फूर्त अवस्था की अवधि	देश	स्वय-स्फूर्त अवस्था की अवधि
ग्रेट ब्रिटन	1783—1802	रूस	1870—1914
फ्रास	1830—1860	कनाडा	1896—1914
बेल्जियम	1833—1860	अर्जेण्टाईना	1935
स रा. अमेरिका	1843—1860	टर्की	1937
जर्मनी	1850—1873	भारत	1952
स्वीडन	1868—1890	चीन	1952
जापान	1878—1900		

प्रो रोस्टो के अनुसार स्वय-स्फूर्त-अवस्था की अनेक आवश्यक शर्तों मे मुख्य ये है—राष्ट्रीय आय मे जनसख्या से अधिक वृद्धि, निर्यात मे वृद्धि, मूल्यो मे स्थायित्व, यातायात एव शक्ति के साधनो का विस्तार, मानवीय साधनो का उपयोग, सहकारी सस्थापन, पूंजीगत एव आधारभूत उद्योगो की स्थापना, कृषि-क्षेत्र की उत्पादकता मे वृद्धि, कुशल प्रबन्धक और साहसी वर्ग का उदय, सरकारी क्षेत्र मे व्यवसाय आदि।

4. परिपक्वता की स्थिति—चौथी अवस्था मे अर्थ-व्यवस्था परिपक्वता की ओर उन्मुख होती है। रोस्टो के शब्दो मे, "आर्थिक परिपक्वता को परिभाषित करने

की विविध पद्धतियाँ हैं, किन्तु इस उद्देश्य के लिए इसे काल के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है, जब समाज अपने अधिकांश साधनों मे आधुनिक तकनीकी को प्रभावपूर्ण ढग से अपनाए हुए है।" परिपक्वता की स्थिति मे विनियोग और बचत की दर 20 प्रतिशत तक पहुँच जाती है। विभिन्न नए उद्योगो की स्थापना हो जाती है और देश की अन्य देशो पर सामान्य निर्भरता समाप्त हो जाती है। आधुनिक प्रविधियों के इच्छित उपयोग द्वारा राष्ट्रीय आय की वृद्धि का क्रम जारी रहता है। जनसख्या की वृद्धि की अपेक्षा आय वृद्धि की दर अधिक हो जाती है। स्वय-स्फूर्त-अवस्था के प्रमुख क्षेत्रों की सहायतार्थ नवीन क्षेत्रो को प्रोत्साहन मिलने लगता है। रोस्टो के अनुसार साधारणतः स्वय-स्फूर्त-अवस्था से परिपक्वता की स्थिति मे पहुँचने मे किसी देश को 60 वर्ष लग जाते हैं। परिपक्वता के लिए सभी राष्ट्रों मे एक ही समान नियम, विशेषता और प्रकृति का होना जरूरी नही है। अमेरिका, ब्रिटेन, स्वीडन, जापान, रूस आदि देशों ने विभिन्न ढगो से परिपक्वता की अवस्था को प्राप्त किया है।

5. उच्च स्तरीय उपभोग की अवस्था—विकास की अन्तिम अवस्था उच्च स्तरीय उपभोग की अवस्था है। प्रथम तीन अवस्थाओं मे जिन वस्तुओं के उपभोग को विलासिता माना जाता है, वही वस्तुएँ विकास की इस अन्तिम अवस्था मे सामान्य बन जाती हैं और सर्व-साधारण जनता उनका उपयोग करने की स्थिति मे आ जाती है। उच्च स्तरीय अथवा अधिक उपयोग की अवस्था (Stage of Mass Consumption) मे औद्योगिक विकास अपनी चरम सीमा पर होने लगता है। अब समाज में रहने वाले पूर्ति की अपेक्षा माँग को अधिक महत्त्व देने लगते हैं। उत्पादन की समस्या से ध्यान हटा कर उपभोग की समस्या और कल्याण की ओर उन्मुख हो जाते हैं। उपभोग मे वृद्धि, शक्ति-प्राप्ति के प्रयास, कल्याणकारी राष्ट्र की स्थापना के प्रयास, आदि के द्वारा प्रत्येक राष्ट्र इस अवस्था मे आर्थिक कल्याण मे वृद्धि करने मे जुट जाता है। इससे पूर्व की अवस्थाओ मे उत्पादन की वृद्धि को उपयोग की अपेक्षा अधिक प्राथमिकता दी जाती है पर इस अवस्था मे उपभोग की वस्तुओ की प्राप्ति साधारण मूल्यो पर होने लगती है। आर्थिक अवस्था के परिपक्व स्तर के बाद वास्तविक आय मे सीमान्त ह्रास का उपयोगिता नियम लागू हो जाता है और अर्थ-व्यवस्था को इस स्थिति से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का सामना करना पडता है।

अर्थशास्त्रियो ने विकास दर का अनेक विधियो से विश्लेषण किया है। एडवर्ड डेनिसन ने जिस विधि से इटली, जर्मनी, फ्रांस, डेनमार्क, नीदरलैण्ड्स, नार्वे, बेल्जियम, इंग्लैण्ड, संयुक्तराज्य अमेरिका आदि 9 पश्चिमी देशो की विकास दरो का विश्लेषण किया है, उसमे उत्पादन कारकों के परिवर्तनो के योगदान तथा उत्पादन मे प्रति इकाई साधन के परिवर्तनो के योगदान का पृथक्-पृथक् विवेचन किया गया है। श्रम पूँजी, भूमि तथा इनके परिवर्तनो की माप के लिए सर्वप्रथम इन साधनो को असम्भव अनुभागों (Components) मे विभक्त किया है, साधन के प्रत्येक अनुभाग की विकास-दर मे अंशदान की गणना की है तथा इसके पश्चात् सभी अनुभागो के अंशों के योग से प्रत्येक साधन की विकास-दर पर होने वाले प्रभाव को पृथक् से ज्ञात किया गया

है। अत से प्रत्येक साधन की विकास-दर को उस साधन के राष्ट्रीय आय के प्रतिफल से गुणा किया गया है। यह गुणनफल राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर मे उस साधन के अश को प्रकट करता है। इस प्रकार सभी साधनो के सम्मिलित योगदान को कुल साधनो की विकास-दर (Growth rate of total factor input) की परिभाषा दी है।

इस विधि का प्रयोग सर्वप्रथम डेनिसन ने सन् 1909 से 1957 की अवधि मे अमेरिका के अन्तिम विकास के विश्लेषण के लिए किया। प्रस्तुत अध्ययन मे जिन 9 पश्चिमी देशो की आर्थिक प्रगति का अध्ययन किया गया है उनकी विकास दरे सन् 1950–1962 की अवधि मे निम्नाकित प्रकार से रही—

	(प्रतिशत बिन्दुओं मे)
पश्चिमी जर्मनी	7·3
इटली	6 0
फ्रास	4 9
नीदरलैण्ड्स	4 7
डेनमार्क	3 5
नार्वे	3 5
सयुक्तराज्य अमेरिका	3 3
बेल्जियम	3 2
यू. के.	2 3

किसी साधन का प्रति इकाई उत्पादन मे क्या योगदान रहता है, इसे देखने के लिए उत्पादन के प्रत्येक स्रोत के लिए एक भिन्न तकनीकी आवश्यक समझी गई। इस सन्दर्भ मे डेनिसन ने प्रत्येक स्रोत के योगदान का निम्न तत्त्वो के आधार पर विवेचन करने का प्रयास किया है—

(1) साधन आवटन मे महत्वपूर्ण परिवर्तन
(2) पैमाने की बचतें
(3) पूंजी-सचय का प्रारम्भिक वर्षों मे सन्तुलन

इसके अतिरिक्त प्रयुक्त साधनो (Employed Resources) पर माँग के दबाव का जिन अवधियो मे उत्पादन पर विशेषकर कृषि-उत्पादन पर प्रभाव रहा है, उन अवधियो के अन्तर को दृष्टि मे रखते हुए साधन का प्रति इकाई उत्पादन की विकास दर पर जो प्रभाव हुआ है उसको भी विवेचित करने का प्रयत्न किया गया है।

उक्त स्रोतो के अतिरिक्त भी विकास-दर को प्रभावित करने वाले कुछ स्रोत शेष रह जाते हैं—जैसे ज्ञान मे प्रगति (Advances in Knowledge), औद्योगिक प्रगति (Technolog cal Progress), मनुष्य किस सीमा तक कठिन परिश्रम करते हैं, विलास दर मे असतिपूरक क्षतियां (Non-compensating Errors in Growth rates) आदि को डेनिसन ने अवशिष्ट स्रोतो (Residuals) की सज्ञा दी है। सक्षेप मे जिन स्रोतो का पृथक् से स्पष्ट रूप से विवेचन व वर्गीकरण सम्भव नही हो सका उन स्रोतो को डेनिसन ने अवशिष्ट स्रोतो की श्रेणी मे लिया है।

श्रम के योगदान की माप के लिए निम्नलिखित तत्त्वों का अध्ययन किया है–

(1) रोजगार मे परिवर्तन,
(2) रोजगार में लगे हुए काम के वार्षिक घण्टों में परिवर्तन,
(3) आयु व लिंग के आधार पर वर्गीकृत श्रमिकों मे मानव घण्टो (Man hours) का वितरण,
(4) प्रत्येक श्रमिक की शिक्षा के स्तर के अनुसार प्रदत्त भारों (Weight) के आधार पर मानव घण्टों की संरचना मे परिवर्तन ।

सन् 1950–62 की अवधि मे रोजगार मे वृद्धि की दृष्टि से जर्मनी का प्रथम तथा अमेरिका का द्वितीय स्थान रहा । रोजगार की सरचना को स्थिर मानते हुए भी, रोजगार की मात्रा मे निरपेक्ष वृद्धि के परिणामस्वरूप विभिन्न देशो की विकास दर उनके सामने दिए हुए प्रतिशत बिन्दुओ से प्रभावित हुई––

जर्मनी	1·5
सयुक्तराज्य अमेरिका	·9
नीदरलैण्ड, डेनमार्क, यू. के., इटली व बेल्जियम	·8 से 4 तक
फ्रास व नार्वे	·1

पूरे समय काम करने वाले मजदूरो व वेतनभोगी गैर-कृषि श्रमिको द्वारा किए गए काम के वार्षिक घण्टो मे गिरावट की प्रवृत्ति उक्त अवधि मे प्राय नगण्य रही । सयुक्तराज्य अमेरिका व फ्रास की स्थिति मे तो इस सन्दर्भ मे कोई अन्तर नही आया, किन्तु जर्मनी मे गिरावट का प्रतिशत 93 रहा । कुछ अन्य देशो मे स्थिति मध्यवर्ती रही । सयुक्तराज्य अमेरिका मे रोजगार की मात्रा मे वृद्धि का मूल कारण स्त्रियो व विद्यार्थियो द्वारा अपने अवकाश के समय कार्य करने की बढती हुई प्रवृत्ति रही है । स्त्रियो व छात्रो द्वारा सप्ताह मे केवल कुछ घण्टो का काम करने के कारण अमेरिका मे श्रमिको के घण्टो का औसत गिर गया । इटली मे इनके विपरीत रोजगार के अवसरो मे वृद्धि के कारण (Involuntary Part-time Employment) कम हो गया । अन्यत्र आधे समय रोजगार (Part-time Employment) की स्थिति मे बहुत कम परिवर्तन हुए ।

डेनिसन ने काम के पूरे घण्टो मे जिस वर्ष परिवर्तन हुए है उनके काम पर पड़ने वाले शुद्ध प्रभाव का अनुमान भी लगाया है । आंशिक उत्पादकता की क्षति की मान्यता लेते हुए अर्द्ध-कालीन रोजगार के महत्व मे परिवर्तनो पर भी विचार किया है । इन सबके परिणामस्वरूप अमेरिका की विकास दर मे ·2 की कमी आई और शेष 8 मे से 5 देशो मे कमी का यही स्तर रहा । जर्मनी मे सर्वाधिक कमी आई । फ्रास में कमी की स्थिति नगण्य रही किन्तु इटली मे कुछ धनात्मक रही ।

श्रम औसत कुशलता पर आयु तथा लिंग की सरचना मे परिवर्तनो का क्या प्रभाव होता है, इसकी माप प्रति घण्टा प्राप्त आय भारो (Hourly earning rates) के आधार पर की गई । स्त्रियो के काम के घण्टो के अनुपात मे अत्यधिक वृद्धि के परिणामस्वरूप संयुक्तराज्य अमेरिका मे उक्त परिवर्तन का प्रभाव सर्वाधिक प्रतिकूल

रहा । इससे वहाँ की विकास दर मे ·1% की कमी आई, किन्तु अनेक देशो जैसे फास व इटली मे लगभग 1% की वृद्धि हुई ।

शिक्षा मे विस्तार के कारण श्रमिको की कुशलता मे औसत वृद्धि के प्रतिशत विभिन्न देशो मे इस प्रकार रहे—

सयुक्तराज्य अमेरिका	·5
बेल्जियम	·4
इटली	·3
फ्रास व यू के	·2
नीदरलैण्ड, डेनमार्क व जर्मनी	·1

श्रम के उक्त चारो अनुभागो के सम्मिलित परिणामस्वरूप सयुक्तराज्य अमेरिका की विकास दर मे 1 1% की वृद्धि हुई । जर्मनी मे वृद्धि की मात्रा इससे भी अधिक रही ।

इस अध्ययन मे पूँजी को चार वर्गो मे विभाजित किया गया है । विकास दर मे आवासीय भवनो के योगदान की माप राष्ट्रीय खातो मे आवासीय सेवाओ के शुद्ध मूल्य को देखकर प्रत्यक्ष रूप से की जा सकती है । इस मद के कारण सयुक्त राज्य अमेरिका मे विकास दर की वृद्धि 25% तथा जर्मनी मे 14% रही । अन्तर्राष्ट्रीय परिसम्पत्तियो के योगदान को भी प्रत्यक्षत मापा जा सकता है । अमेरिका मे इसका योगदान 05% तथा नीदरलैण्ड मे इससे कुछ अधिक रहा । गैर-आवासीय निर्माण इक्विपमैण्ट व वस्तु सूचियो के सग्रहो का अमेरिका मे योगदान 5% रहा और बेल्जियम को छोडकर यूरोप के अन्य देशो मे इस मद का विकास दर मे योग कम रहा, किन्तु जर्मनी मे सर्वाधिक वृद्धि इस स्रोत से 1 4% की हुई ।

सभी प्रकार की पूँजी मे सन् 1950–62 की अवधि मे विकास दर मे अमेरिका मे 8%की वृद्धि हुई तथा यूरोप के सभी देशो मे वृद्धि का यही स्तर रहा । नीदरलैण्ड व डेनमार्क मे यद्यपि अमेरिका की तुलना मे पूँजी के कारण विकास दर मे कुछ अधिक वृद्धि हुई, किन्तु बेल्जियम व यू के मे वृद्धि स्तर बहुत ही कम रहा ।

उत्पादन कारको के विकास दर मे योगदान की दृष्टि से तथा यह मानते हुए कि सभी देशो मे पैमाने का स्थिर प्रतिफल नियम(Constant Returns to Scale) क्रियाशील है । सन् 1950–62 की अवधि मे विभिन्न देशो मे विकास-दर की स्थिति निम्न प्रकार रही—

जर्मनी	2·8
डेनमार्क	1 6
सयुक्त राज्य अमेरिका	2 0
फ्रास व बेल्जियम	1 2
नीदरलैण्ड	1·9
यू के	1·1
नार्वे	1·0

इस अवधि में राष्ट्रीय आय एवं उत्पादन साधनों की वृद्धि दर में इतनी कम अनुरूपता देखी गई कि साधनों के आवंटन की दृष्टि से इसके समाधान के लिए तीन पहलुओं का विश्लेषण किया गया है—(1) कृषि का संकुचन (Contraction of Agriculture), (2) गैर-कृषि निजी व्यवसाय का सकुचन (The contraction of non-farm self-employment), और (3) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिबन्धो की कमी (The reduction of barriers to International Trade)।

सन् 1950 मे, सभी देशों मे साधनो का एक बड़ा अनुपात, विशेषकर मानव-श्रम कृषि मे लगा हुआ था। सन् 1950–62 की अवधि मे उक्त सभी 9 देशों में कृषिगत रोजगार का प्रतिशत 30 से 47 तक कम हो गया। कृषि मे लगे हुए मानव श्रम की सभी देशो मे भारी कमी हुई, *किन्तु कृषिगत रोजगार के महत्त्व और* गैर-कृषि रोजगार पर इसके प्रभाव मे इन देशो मे भारी असमानता रही। सन् 1950 मे यु. के मे कुल रोजगार मे कृषिगत रोजगार का प्रतिशत 5 था, बेल्जियम मे 11, अमेरिका मे 12, जर्मनी, डेनमार्क व फ्रांस मे 25 से 29 तथा इटली मे 43% था।

प्रति इकाई (Input) से सामान्यत. कृषि मे गैर-कृषि उद्योगो की तुलना मे राष्ट्रीय उत्पादन बहुत कम होता है। इसके अतिरिक्त एक दी हुई अवधि मे गैर-कृषि क्षेत्र की आय को साधनों मे वृद्धि के अनुपात मे बढाया जा सकता है जबकि कृषि पहले से ही साधनो के भार से इतनी अधिक दबी हुई होती है कि कृषि क्षेत्र से यदि श्रम की सम्पूर्ण मात्रा को हटा भी लिया जाता है तो कृषि उत्पादन पर कोई विशेष प्रतिकूल प्रभाव नही हो सकता।

सन् 1950–62 मे कृषि-क्षेत्र से गैर-कृषि-क्षेत्र के उद्योगो मे साधनों का स्थानान्तरण करने के परिणामस्वरूप विलास दर मे वृद्धि की स्थिति इस प्रकार रही—

यू. के.	·1 से कुछ कम
सयुक्तराज्य अमेरिका	2
बेल्जियम	·7
फांस	8
जर्मनी	1·0
इटली	1·0

गैर-कृषि निजी व्यवसाय (Non-farm self-employment) मे श्रम की अधिक मात्रा के लगे रहने का प्रभाव भी कृषि की भाँति श्रम की सीमान्त उत्पादकता का बहुत कम होने के रूप मे होता। गैर-कृषि व्यवसायो पर स्वामित्व के अधिकार रखने वाले, बिना किसी पारिश्रमिक के कार्य करने वाले श्रमिक भिन्न-भिन्न देशो मे गैर-कृषि रोजगार के भिन्न-भिन्न अनुपातो को दर्शाते हैं। 9 मे से 5 देशो मे यह अनुपात सन् 1950–1962 की अवधि मे कम हुआ है। श्रमिको की एक बडी संख्या को इन क्षेत्रों से हटा कर वेतन व मजदूरी के रूप मे पारिश्रमिक देने वाले रोजगारो मे

लगाया गया। इन हटाए गए व्यक्तियो का कार्य या तो शेप श्रमिको द्वारा कर लिया गया और इस प्रकार उत्पादकता पर कोई प्रभाव नही हुआ अथवा हटाए गए श्रमिको की सख्या के अनुपात से बहुत कम अनुपात मे नए श्रमिक लगा कर उनके हिस्से के कार्य को करवा लिया गया। इस परिवर्तन के लाभो की स्थिति निम्न प्रकार रही—

अमेरिका व इग्लैण्ड मे	·04
इटली, फ्रास नार्वे, व नीदरलैंड्स मे	·22 से ·26 तक

अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबन्धो को हटाने से लाभ इस प्रकार रहे—

अमेरिका	·0
इग्लैण्ड	·2
बेल्जियम, नीदरलैंड्स, नार्वे और इटली	·15 या ·16

साधन आवटनो के इन तीन पहलुओ के योग से सन् 1950–1962 की अवधि मे विकास दरो पर जो सयुक्त प्रभाव हुआ, उसकी स्थिति निम्न प्रकार रही—

यू के.	1
अमेरिका	·3
बेल्जियम	·5
नीदरलैण्ड्स	6
नार्वे	·9
फ्रांस	1 0
जर्मनी	1 0
इटली	1·4

ये अन्तर सापेक्ष रूप से बहुत अधिक हैं।

सन् 1950–1962 की अवधि मे साधनो (Inputs) व साधन आवटनो की विकास दरो मे सम्मिलित योगदान के आधार पर अध्ययनगत 9 देशो को एक श्रेणी क्रम (Ranking) दिया जाना सम्भव हो सका। किन्तु मांग के दबाव व मौसम के परिवर्तनो के कारण साधनो का प्रति इकाई उत्पादन पर जो प्रभाव हुआ, उसकी परस्पर तुलना सम्भव नही हो सकती थी। इस तथ्य का विवेचन अवशिष्ट साधनो (Residuals) के सन्दर्भ मे किया गया। अवशिष्ट साधनो के योगदान को डेनिसन ने विकास दर की कुल वृद्धि मे से स्पष्ट रूप से अनुमानित साधनो के योगदान को घटाकर प्राप्त किया। अमेरिका मे अवशिष्टो (Residuals) का योगदान सन् 1950–55 व 1955–62 की अवधियो मे 76 रहा तथा कुछ मामूली समायोजनो के बाद सन् 1920 से आगे तक की अवधि के परिणाम भी यही रहे हैं। अवशिष्टो मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अमेरिका मे शिक्षा मे वृद्धि (Advances in Knowledge) की रही है। सन् 1955–1962 की अवधि मे 7 अन्य देशो में अवशिष्ट साधनो का प्रभाव 75 से ·97 के मध्य रहा। अमेरिका के अतिरिक्त ये

साधनों का योगदान 1·50 तथा इटली में 1·30 रहा। इस प्रकार फ्रांस में इस स्रोत की वृद्धि अमेरिका से भी अधिक रही। फ्रास मे इन साधनो के अन्तर्गत तकनीकी प्रगति, प्रबन्ध कुशलता में सुधार, गैर-कृषि मजदूरी व वेतन वाले रोजगार से अतिरिक्त श्रम को हटाना, साधनो के आवटन में सुधार, प्रोत्साहन देने की कुछ श्रेष्ठ विधियाँ, *अधिक कड़ा परिश्रम करने की प्रवृत्ति और इसी प्रकार के कुछ अन्य साधन* अपनाए गए।

सन् 1950–1955 की अवधि मे जर्मनी में अधिक तथा इटली में कुछ कम अशों मे विकास दरों मे जो भारी वृद्धि हुई उसका मुख्य कारण युद्धकालीन विध्वसों (D.stortions) की पुनर्रचना था।

सामान्य निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि विकास दर की दृष्टि से देशों श्रेणीकरण (सन् 1950–1962 की अवधि मे) कुल मिलाकर साधनो मे परिवर्तनों, श्रेष्ठ साधन आवटन, तकनीकी सुधार तथा युद्धकालीन विध्वसों की पुनर्रचना आदि द्वारा निर्धारित हुआ है।

विकास दर मे अन्तर मे वृद्धि का मूल कारण पैमाने की बचतें (Economics of Scale) भी रही है। *कुछ सीमा तक यह इसलिए भी होता है, क्योंकि पैमाने की बचत के लाभ बाजारो के आकार के विस्तार पर निर्भर करते हैं,* इसलिए जहाँ एक ओर विकास दर मे अन्य कारणो से वृद्धि होती है, यह वृद्धि पैमाने की बचतों व बाजारो के विस्तार के कारण कही अधिक बढ जाती है।

यूरोपीयन कीमतो के स्थान पर यदि अमेरिकी कीमतो के भावों के आधार पर उपभोग की मदों को पुन· मूल्यांकित किया जाए तो यूरोपीयन देशो की विकास दर *और अधिक कम होगी।* सन् 1950–1962 मे कुल मिलाकर इस कमी की सीमा बेल्जियम, नार्वे और यू. के मे 1, डेनमार्क व नीदरलैण्ड्स मे 2, फ्रास मे ·5, इटली मे ·6 तथा जर्मनी मे ·9 रही। विकास दर मे उक्त कमी इसलिए भी होती है कि विभिन्न वस्तुओ का यूरोप मे उपभोग अमेरिका की तुलना मे कम रहता है, जबकि यूरोप की कीमतें अमेरिका की कीमतो की तुलना मे अधिक ऊँची रही हैं तथा वस्तु की *आय लोच भी अधिक है।*

यूरोप के देशो मे प्रति इकाई उपभोग मे वृद्धि ऊँची आय लोच वाली वस्तुओं मे केन्द्रित रही है तथा जिन वस्तुओ की कीमतें अमेरिका की तुलना में अधिक थी, प्रति इकाई उपभोग मे जितनी अधिक वृद्धि हुई, विकास दरो का अन्तर उतना ही अधिक बढता गया। इन निष्कर्षो का परीक्षण उपभोग कीमतो के भारो के आधार *पर किया जा सकता है। डेनिसन की यह मान्यता है* कि सर्वाधिक उत्तरदायी तत्त्व पैमाने की बचतें हैं। विकसित देशो मे जैसे ही प्रति इकाई उपभोग मे वृद्धि हुई, वृद्धि का केन्द्र वे वस्तुएँ अधिक रही, जिनका उत्पादन कम मात्रा में हुआ और विशेषकर वे वस्तुएँ जिनकी प्रति इकाई लागत अमेरिका की तुलना मे अधिक ऊँची रही। अमेरिका मे बड़े पैमाने के उत्पादन की तकनीकी उपलब्ध थी और इसलिए *जैसे ही बाजारो का विस्तार हुआ, इस तकनीकी का अपनाना सम्भव हो सका।*

विकास दर के स्रोतो के अतिरिक्त डेनिसन ने रोजगार मे लगे हुए प्रति व्यक्ति के अनुसार राष्ट्रीय आय के स्तर सम्बन्धी अन्तरो के स्रोतो का भी पृथक् से अध्ययन करने का प्रयास किया है। अमेरिका की कीमतो के माप करने पर रोजगार मे लगे हुए प्रति व्यक्ति के अनुसार यूरोप के देशो की राष्ट्रीय आय, इटली को छोडकर सन् 1960 मे अमेरिका की आय की लगभग 58 से 65% थी। इटली मे यह 40% थी।

विकास के स्रोतो व आय के अन्तरो की तुलना के आधार पर डेनिसन दो प्रकार के निष्कर्ष (Observation) प्रस्तुत करते है।

डेनिसन की प्रथम प्रत्यालोचना (Comment) का सम्बन्ध साधनो के आवटन से है। अमेरिका की तुलना मे फ्रास व जर्मनी मे गैर-कृषि रोजगार की वृद्धि द्वारा तथा कृषिगत निजी स्वामित्व वाले रोजगार की कमी द्वारा राष्ट्रीय आय वृद्धि की अधिक सम्भावना (Potentiality) थी। यह तथ्य इस निष्कर्ष की पुष्टि करता है कि साधन की प्रति इकाई से उत्पादन की मात्रा मे फ्रास व जर्मनी मे अधिक वृद्धि क्यो हुई। फ्रास व जर्मनी इस स्रोत का तेजी से विदोहन (Exploitation) कर रहे है, किन्तु राष्ट्रीय आय के अन्तर को अमेरिका की तुलना म विशेष कम नही कर पाएगा।

साधनो का पुनर्आवटन भी इसकी बडे अशो मे पुष्टि करते है कि ब्रिटेन की विकास दर से फ्राम व जर्मनी की विकास दर अधिक क्यो रही ? किन्तु प्रति श्रमिक राष्ट्रीय आय का स्तर सन् 1960 मे इग्लैण्ड मे भी उतना ही ऊँचा था जितना कि फ्रांस व जर्मनी मे। इसका कारण इग्लैण्ड मे साधनो के आवटन मे असगतियो को कम किया जाना माना जाता है। गैर कृषि उद्योगो मे इग्लैण्ड का प्रति व्यक्ति उत्पादन इटली से भी कम था। साधनो के आवटन मे सुधार एक ओर इग्लैण्ड, फ्रास एव जर्मनी मे आय के अन्तर का मार्ग खोल रहा है तथा दूसरी ओर यू के व इटली मे इस अन्तर को समाप्त कर रहा है।

कृषि व निजी व्यवसाय की प्रवृत्ति इटली की आय के स्तर को बहुत अधिक गिरा रही है। इटली मे यूरोप के अन्य देशो की तुलना मे आय के कम होने का यही मुख्य कारण है। शिक्षा व पूँजी की कमी के कारण भी अन्तर मे वृद्धि होती है।

डेनिसन की दूसरी प्रत्यालोचना (Comment) का सम्बन्ध अवशिष्ट साधनो की उत्पादकता (Residual Productivity) से है। डेनिसन का निष्कर्ष है कि यदि प्रति श्रमिक, मात्रा व कुशलता मे, भूमि व पूँजी के अनुपात मे, बाजारो के आकारों मे, साधनो के गलत आवटन की लागतो मे, साधनो पर माँग के दबाव आदि मे कोई अन्तर नही होते तो यूरोप के देशो मे अवशिष्ट उत्पादकता सन् 1960 मे इटली के अतिरिक्त अमेरिका से 28% कम होती। किसी भी प्रकार के सुधार किए जाएँ या अन्तर उत्पन्न किए जाएँ, यूरोप की प्रति व्यक्ति आय अमेरिका के स्तर पर तब तक नही पहुँच सकती जब तक कि इस अवशिष्ट उत्पादकता के अन्तर को कम नही किया जाता। डेनिसन के अनुसार, सन् 1962 तक फ्रास के अतिरिक्त किसी भी देश मे यह अन्तर नही आ सका।

सन् 1925 मे इटली के अतिरिक्त अमेरिका का राष्ट्रीय आय का स्तर इतना ऊपर पहुँच चुका था जितना कि यूरोप के देशों का सन् 1960 में था। सन्1960 में अवशिष्ट उत्पादकता (*Residual Productivity*) यूरोप के देशो मे सन् 1925 के अमेरिका से भी कम थी। अमेरिका की विकास दर में इन 35 वर्षों में अधिक बढ़ते रहने का कारण शिक्षा, तकनीकी व विज्ञान की प्रगति रहा है।

निष्कर्ष यह है कि महाद्वीपीय देश (Continental Countries) अमेरिका की तुलना मे विकास की अधिक दर प्राप्त करने में इसलिए असफल रहे कि उनका मुख्य लक्ष्य सन् 1950 से 'आर्थिक विकास' न होकर केवल 'आर्थिक वृद्धि' रहा। गुणात्मकता के स्थान पर परिमाणात्मकता पर उनका ध्यान केन्द्रित रहा। अमेरिका मे स्त्रियों को रोजगार मे अधिक लगाया गया, श्रम शक्ति मे शिक्षण-प्रशिक्षण मे वृद्धि की गई। शक्ति, अन्वेषण व विकास कार्यक्रमों की ओर अधिक ध्यान लगाया गया। कृषि व्यवसाय को कम किया गया तथा लघु स्तरीय गैर-कृषि निजी व्यवसायों को निरुत्साहित करने की नीति अपनाई गई। पूँजी के संचय को भी सापेक्ष रूप से इतना नही बढ़ाया गया जितना कि यूरोप के अधिकांश देशो में हुआ। केवल जर्मनी ही ऐसा देश रहा जो अमेरिका की अपेक्षा विकास की अधिक दर प्राप्त कर सका।[1]

1. "Sources of Post-war Growth in Nine Western Countries," American Economic Review, May 1967, pp. 325 to 332.

5 आर्थिक विकास से सम्बन्धित विचारधाराएँ: लेविस, हैरड-डोमर, महालनोबिस तथा अन्य

(APPROACHES TO THE THEORY OF DEVELOPMENT: LEWIS, HARROD-DOMAR, MAHALNOBIS AND OTHERS)

"आर्थिक विकास का सभी देशों के लिए सभी परिस्थितियों में सर्वमान्य कोई प्रामाणिक सूत्र नहीं है, अतः आर्थिक विकास का एक सामान्य सिद्धान्त बताना अति कठिन है।" —**प्रो. फ्रीडमेन**

आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कम आय वाली आर्थिक व्यवस्था का अधिक आय वाली व्यवस्था मे रूपान्तरण होता है। यदि आर्थिक विकास को इस रूप मे परिभाषित करें तो स्वाभाविक रूप से जिज्ञासा होती है कि यह रूपान्तरण किस प्रकार और किन परिस्थितियो मे होता है। आर्थिक विकास के सिद्धान्त इस जिज्ञासा को बहुत कुछ शान्त करने मे सहायक होते हैं। उनसे पता चलता है कि अर्द्ध-विकसित देश किस प्रकार दूषित चक्रो (Vicious Circles) को तोडकर सतत् विकास की शक्तियो का सृजन कर सकता है। आर्थिक विकास के सिद्धान्तो से ज्ञात होता है कि विश्व के कुछ राष्ट्र विकसित और दूसरे राष्ट्र अविकसित क्यो रह गए।

आर्थिक विकास का विचार नया नही है। समय-समय पर अर्थशास्त्री आर्थिक विकास के कारको और सिद्धान्तो पर विचार प्रकट करते रहे हैं। कीन्स के 'सामान्य सिद्धान्त' के प्रकाशन के बाद आर्थिक विकास के आधुनिक मॉडलो (Models) का निर्माण किया जाने लगा। आर्थिक विकास से सम्बन्धित निम्नलिखित तीन विचारधाराएँ हैं—

(1) लेविस का आर्थिक विकास का सिद्धान्त,
(2) हैरड-डोमर मॉडल;
(3) महालनोबिस मॉडल।

आर्थर लेविस का आर्थिक वृद्धि का सिद्धान्त
(W. Arther Lewis' Theory of Economic Growth)

पृष्ठभूमि
(Background)

'आर्थिक वृद्धि' के सिद्धान्त की रचना मे आर्थर लेविस ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो (Classical Economists) की परम्परा का ही अनुसरण किया है। स्मिथ से लेकर मार्क्स तक सभी अर्थशास्त्रियों ने इमी अभिमत की पुष्टि की है कि अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओ मे 'निर्वाह-मजदूरी पर श्रम की असीमित पूर्ति उपलब्ध है।' इन अर्थशास्त्रियो ने आर्थिक वृद्धि का कारण पूँजी सचय (Capital Accumulation) मे खोजने का प्रयत्न किया है। इसकी व्याख्या उन्होने आय-वितरण के विश्लेषण के रूप मे की है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो के मॉडलो मे 'आय-वृद्धि' (Income-growth) व 'आय-वितरण' (Income-distribution) का विवेचन एक साथ हुआ है। लेविस भी इन अर्थशास्त्रियो की भाँति आर्थिक वृद्धि के अपने मॉडल मे यही मान्यता लेकर चलते हैं कि "अर्द्ध-विकसित देशो मे निर्वाह-मजदूरी पर असीमित मात्रा मे श्रम उपलब्ध है।" लेविस ने अपने मॉडल मे दो क्षेत्र लिए हैं—(1) पूँजीवादी क्षेत्र (Capitalist Sector) व (2) निर्वाह-क्षेत्र (Subsistence Sector)।

परिकल्पना
(Hypothesis)

मॉडल मे यह परिकल्पना की गई है कि आर्थिक वृद्धि पूँजी सचय का फलन है और पूँजी सचय तब होता है जब श्रम को निर्वाह-क्षेत्र से स्थानान्तरित करके पूँजीवादी क्षेत्र मे प्रयुक्त किया जाता है। पूँजीवादी क्षेत्र पुन. उत्पादित होने वाली पूँजी (Reproducible Capital) का प्रयोग करता है, जबकि निर्वाह-क्षेत्र में इस प्रकार की पूँजी प्रयुक्त नही होनी तथा इस क्षेत्र मे प्रति व्यक्ति प्रदा (Per Capita Output) पूँजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा कम होता है।

मॉडल की सैद्धान्तिक संरचना
(Theoretical Frame-work of the Model)

लेविस के मॉडल का मुख्य केन्द्र-बिन्दु इस तथ्य की विवेचना करना है कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के मूल सैद्धान्तिक ढांचे मे रहते हुए, वितरण, सचय व विकास से सम्बन्धित समस्याओ का समाधान किस प्रकार सम्भव है। इन समस्याओं का विवेचन बन्द एवं खुली दोनो प्रकार की अर्थव्यवस्थाओ मे किया गया है।

(i) **बन्द अर्थ-व्यवस्था (Closed Economy)**—बन्द अर्थ-व्यवस्था से सम्बन्धित मॉडल का प्रारम्भ लेविस इस मान्यता से करते हैं कि निर्वाह-मजदूरी पर श्रम की पूर्ति पूर्णत लोचदार (Infinitely Elastic) होती है। वे इस कथन को विश्व के सभी भागो मे क्रियाशील मानकर नही चलते हैं। इस मान्यता की क्रियाशीलता को लेविस केवल उन देशो से ही सम्बद्ध करते हैं जो घनी आबादी वाले है तथा जहाँ पूँजी व प्राकृतिक साधनो की तुलना मे जनसंख्या इतनी अधिक है कि उनकी अर्थ-व्यवस्थाओ मे अधिकांश "श्रम की सीमान्त उत्पादकता नगण्य, शून्य या ऋणात्मक पायी जाती है।" कुछ अर्थशास्त्रियो ने इस स्थिति को गुप्त बेरोजगारी (Disguised Unemployment) की संज्ञा दी है तथा मूलत कृषि-क्षेत्र को गुप्त बेरोजगारी के प्रति उत्तरदायी पाया है।

(ii) **श्रम की सीमान्त-उत्पादकता शून्य है या नगण्य**—लेविस अपने मॉडल मे इसे विशेष महत्वपूर्ण न मानते हुए, इस तथ्य पर अधिक बल देते हैं कि अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ मे श्रम का प्रति इकाई मूल्य निर्वाह मजदूरी के स्तर पर होता है। अत जब तक इस मूल्य पर श्रम-पूर्ति माँग से अधिक बनी रहती है, तब तक श्रम-पूर्ति को असीमित कहा जाता है। श्रम-पूर्ति की इस स्थिति मे मजदूरी के वर्तमान स्तर पर निर्वाह क्षेत्र से श्रम को पूँजीवादी क्षेत्र मे स्थानान्तरित करते हुए एक बडी सीमा तक नए उद्योग स्थापित किए जा सकते है तथा पुराने उद्योगो का विस्तार किया जा सकता है। श्रम की न्यूनता रोजगार के नए स्रोतो के निर्माण मे किसी अवरोध (Constraint) का कार्य नही करती। कृषि, आकस्मिक श्रम, छोटे-मोटे व्यापारी घरेलू सेवक, गृह-सेविकाएँ, जनसंख्या-वृद्धि आदि वे स्रोत हैं जिनसे निर्वाह मजदूरी पर श्रम, पूँजीवादी क्षेत्र मे स्थानान्तरित किया जा सकता है। किन्तु यह स्थिति अकुशल श्रम के लिए ही लागू होती है। जहाँ तक कुशल श्रम का प्रश्न है, समय विशेष पर किसी विशेष प्रकार के कुशल श्रम की पूँजीवादी क्षेत्र मे कमी सम्भव है। कुशल श्रम के अन्तर्गत वस्तुकार, विद्युत कार्यकर्त्ता (Electricians), वैल्डस (Welders) जीव विशेषज्ञ (Biologists), प्रशासक (Administrators), आदि आते हैं। लेविस के मतानुसार, कुशल श्रम का अभाव केवल आंशिक बाधा (Quasi-bottlenecks) है। प्रशिक्षण सुविधाएँ प्रदान करके अकुशल श्रम की इस बाधा को दूर किया जा सकता है। विकास या विस्तार के मार्ग मे वास्तविक बाधाएँ (Real bottlenecks) पूँजी और प्राकृतिक साधनो का अभाव है। अत लेविस के अनुसार जब तक पूँजी व प्राकृतिक साधन उपलब्ध हैं, आवश्यक कुशलताएँ (Necessary Skills) कुछ समयान्तर (Time-lag) से प्राप्त की जा सकती है।

(iii) यदि श्रम असीमित पूर्ति में उपलब्ध है और पूँजी दुर्लभ है तो पूँजी का श्रम के साथ उस बिन्दु तक प्रयोग किया जाना चाहिए जहाँ श्रम की सीमान्त उत्पादकता मजदूरी के वर्तमान स्तर के समान रहती है। इसे चित्र 1 मे दर्शाया गया है[1]—

चित्र–1
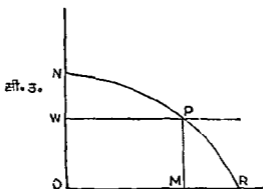
उक्त चित्र मे क्षितिजीय अक्ष पर श्रम की मात्रा तथा लम्बवत् अक्ष पर सीमान्त उत्पादकता की माप की गई है। पूँजी की मात्रा स्थिर (Fixed) है। OW=वर्तमान मजदूरी; OM=पूँजीवादी क्षेत्र मे प्रयुक्त श्रम, MR=निर्वाह क्षेत्र में प्रयुक्त श्रम, OR=कुल श्रम, $OWPM$=पूँजीवादी क्षेत्रों मे श्रमिकों की मजदूरी, WNP=पूँजीवादियो का अतिरेक (Capitalists Surplus) प्रकट करते हैं। यदि पूँजीवादी क्षेत्र से बाहर श्रम की सीमान्त उपयोगिता शून्य हो तो श्रम की OR मात्रा को रोजगार मे रखा जाना चाहिए था, किन्तु पूँजीवादी क्षेत्र मे श्रम की OM मात्रा को रोजगार देने पर ही लाभ कमाया जा सकता है। श्रम की इस मात्रा से पूँजीपति $OWPM$ के बराबर मजदूरी देकर $ONPM$ के बराबर आय अर्जित करते हैं, अतः दोनों का अन्तर ($ONPM$-$OWPM$)=WNP पूँजीपतियों का अतिरेक दर्शाता है। M से आगे की श्रम-मात्रा निर्वाह-मजदूरी प्राप्त करती है।

(iv) पिछड़ी हुई अर्थ-व्यवस्थाओं में पूँजीपतियों को कुछ विशेष प्रकार के विनियोगों का अधिक अनुभव होता है–विशेषकर व्यापार व कृषि सम्बन्धी विनियोगों का तथा निर्माण-उद्योगों का अनुभव कम अथवा नगण्य होता है। परिणामतः ये अर्थ-व्यवस्थाएँ इस अर्थ में असन्तुलित (Lopsided) रहती हैं कि कुछ क्षेत्रो मे अनुकूलतम से अधिक (More than optimum) तथा कुछ अन्य क्षेत्रो मे अनुकूलतम से बहुत कम (Much less than optimum) विनियोग किया जाता है।

कुछ कार्यों के लिए वित्तीय सस्थाएँ (Financial Institutions) अत्यधिक विकसित होती हैं, जबकि दूसरी ओर कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बच रहते है जिनको वित्तीय सस्थाओ का सहयोग नही मिल पाता है। व्यापार हेतु पूँजी सस्ती मिल सकती है, किन्तु गृह-निर्माण अथवा कृषि के लिए नही।

(४) लेविस के अनुसार निर्वाह-मजदूरी की तुलना मे पूँजीवादी-मजदूरी 30 प्रतिशत या अधिक होती है। इस अन्तर के प्रभाव को चित्र-2 मे प्रदर्शित किया गया है[1]—

चित्र-2
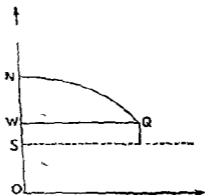
OS=निर्वाह क्षेत्र की प्रति इकाई आय।

OW=पूँजीवादी क्षेत्र की प्रति इकाई आय (वास्तविक)।

समुद्र से उपमा लेते हुए यह कहा जा सकता है कि पूँजीपति-श्रम व निर्वाह-श्रम के मध्य प्रतिस्पर्द्धा की सीमान्त रेखा अब किनारे के रूप में नही अपितु एक शिखर के रूप मे प्रतीत होती है।"[2]

उपरोक्त अन्तर पर पूँजी निर्माण निर्भर करता है। आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे सर्वाधिक महत्त्व इस तत्त्व का है कि पूँजीवादी अतिरेक का प्रयोग किस प्रकार किया जाता है। यदि इसका उपयोग नई पूँजी की उत्पत्ति के लिए होता है तो इसका परिणाम पूँजीवादी क्षेत्र का विस्तार होता है। निर्वाह क्षेत्र से हट कर अधिक सख्या मे श्रमिक पूँजीवादी क्षेत्र की ओर आकर्षित होते है। इससे पूँजीवादी अतिरेक मे और वृद्धि होती है तथा अतिरेक की अधिकता पूँजी निर्माण की मात्रा

1 Ibid, p 4 1

2 "To borrow an analogy from the sea, the frontier of competition between capitalist and subsistence labour *now* appears not as a beach but as a cliff" —Ibid, p 412

को अधिक से अधिकतर करती जाती है। जब तक अतिरिक्त श्रम पूँजीवादी क्षेत्र मे रोजगार प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक यह क्रम क्रियाशील रहता है। इस स्थिति को चित्र-3 मे दर्शाया गया है[1]—

चित्र-3
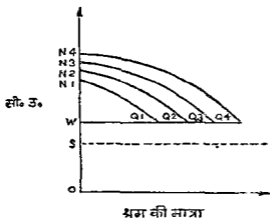
चित्र-2 के समान OS=निर्वाह-मजदूरी और OW=पूँजीवादी-मजदूरी। WN_1Q_1=प्रारम्भिक अतिरेक (Initial Surplus)। चूँकि इसका कुछ भाग पुनः विनियोजित कर दिया जाता है, जिससे स्थायी पूँजी की मात्रा मे वृद्धि होती है और इसलिए उसकी सीमान्त उत्पादकता N_2Q_2 स्तर तक बढ जाती है। इस दूसरी स्थिति मे अतिरेक व पूँजीवादी रोजगार दोनो अधिक हो जाते हैं। यह क्रम N_2Q_2 से N_3Q_3 तक तथा N_3Q_3 से N_4Q_4 तक और इसी प्रकार उस समय तक चलता रहता है, जब तक कि अतिरिक्त श्रम की स्थिति रहती है।

(vi) लेविस के मॉडल मे पूँजी, प्रोद्योगिक प्रगति तथा उत्पादकता के सम्बन्धों की विवेचना की गई है। पूँजीवादी क्षेत्र के बाहर तकनीकी ज्ञान की प्रगति से मजदूरी का स्तर बढता है, परिणामस्वरूप पूँजीवादी अतिरेक की मात्रा घटती है। किन्तु लेविस की यह मान्यता है कि पूँजीवादी क्षेत्र मे ज्ञान-वृद्धि व पूँजी एक ही दिशा में इस प्रकार कार्य करते हैं कि मजदूरी में कोई वृद्धि नही होती है, बल्कि राष्ट्रीय आय मे लाभों का अनुपात अधिक हो जाता है। नए तकनीकी ज्ञान के व्यावहारिक उपयोग के लिए नया विनियोग आवश्यक है। नया तकनीकी ज्ञान चाहे पूँजी को बचाने वाला हो, चाहे श्रम को, इससे उपरोक्त चित्र में प्रदर्शित स्थिति मे कोई अन्तर नही आता है। लेविस के मॉडल मे 'तकनीकी ज्ञान की वृद्धि और उत्पादक-पूँजी मे वृद्धि' एक ही तत्त्व के रूप मे माने गए हैं।

1. Ibid, p. 412.

पूँजी-निर्माण (Capital Formation)

लेविस ने पूँजी-निर्माण के दो स्रोतो का विवेचन किया है—

(1) लाभो द्वारा पूँजी-निर्माण, और

(2) मुद्रा पूर्ति मे वृद्धि द्वारा पूँजी-निर्माण ।

बचत की बडी राशि लाभो से प्राप्त होती है । यदि किसी अर्थ-व्यवस्था मे राष्ट्रीय आय मे बचत का अनुपात बढ रहा है तो हम उस अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से यह कह सकते है कि वहाँ राष्ट्रीय आय मे लाभो का अश वृद्धि पर है । समान आय वाले दो देशो मे से जिस देश मे लगानो की तुलना मे लाभो का राष्ट्रीय आय मे अश अधिक होता है, वहाँ अपेक्षाकृत वितरण की विषमताएँ कम पायी जाएँगी तथा बचत की मात्रा अधिक होगी । आय की असमानता यदि लगान की तुलना मे लाभो का अश अधिक होने के कारण होती है तो यह स्थिति पूँजी-निर्माण के अधिक अनुकूल मानी जाती है ।

नव-प्रतिष्ठापित मॉडल (Non-classical Model) मे पूँजी-निर्माण केवल उपभोग्य वस्तुओ के उत्पादन क्षेत्र से साधनो के स्थानान्तरण द्वारा ही सम्भव है है किन्तु लेविस के मॉडल मे भूमि व पूँजी को वैकल्पिक उपभोगो मे से हटाए बिना ही श्रम द्वारा पूँजी-निर्माण सम्भव है तथा उपभोग्य वस्तुओ के उत्पादन की मात्रा को बिना कम किए ही पूँजी-निर्माण किया जा सकता है ।

यदि किसी अर्थ-व्यवस्था मे पूँजी का अभाव है, किन्तु कुछ साधन अप्रयुक्त अवस्था मे हैं, जिनके प्रयोग से पूँजी-निर्माण किया जा सकता है तो यह अत्यन्त वांछनीय है कि उनके प्रयोग के लिए अतिरिक्त मुद्रा का निर्माण भी आवश्यक हो तो किया जाना चाहिए । अतिरिक्त मुद्रा से किसी प्रकार की अन्य दूसरी वस्तुओ के उत्पादन मे कोई कमी नही आती है । जिस प्रकार लाभो द्वारा पूँजी-निर्माण से उत्पादन व रोजगार मे वृद्धि होती है, उसी प्रकार साख द्वारा वित्तीयकरण से भी रोजगार व उत्पादन के स्तर बढते हैं । लाभो द्वारा निर्मित पूँजी व साख द्वारा निर्मित पूँजी का अन्तर उत्पादन पर प्रभाव के रूप मे परिलक्षित नहीं होता किन्तु कीमतो व आय-वितरण पर इस अन्तर का तत्काल प्रभाव होता है ।

लेविस के मॉडल मे, अतिरिक्त श्रम से पूँजी-निर्माण की स्थिति मे, विशेषकर जब श्रम का भुगतान अतिरिक्त मुद्रा से किया जाता है, मूल्य बढ जाते हैं, किन्तु *उपभोग वस्तुओ का उत्पादन स्थिर रहता है । रोजगार से कार्यरत एव श्रमिको के* बीच उपभोग वस्तुओ का पुन वितरण (Redistribution) अवश्य होता है, किन्तु इस प्रक्रिया का अर्थ 'बलपूर्वक बचत' (Forced Saving) के रूप मे नही लगाया जाना चाहिए । लेविस के मॉडल मे नव-प्रतिष्ठापित मॉडल की भाँति 'बलपूर्वक बचत' की स्थिति न होकर बलपूर्वक उपभोग वस्तुओ के पुन.वितरण की स्थिति अवश्य विद्यमान है (There is a forced redistribution of consumption, but not forced saving) । जैसे ही विनियोग वस्तुओ के कारण उत्पादन बढने लगता है, उपभोग स्तर भी ऊँचा होने लगता है । लेविस के अनुसार मूल्यो मे प्रसार

की स्थिति केवल अल्पावधि के लिए रहती है जब तक कि प्रारम्भिक अवस्था में श्रम तो बढ़ती है, किन्तु उपभोग-वस्तुओं का उत्पादन नहीं बढ़ता, किन्तु थोड़े समय बाद ज्यों ही पूँजीगत वस्तुएँ उपभोग-वस्तुओं का उत्पादन प्रारम्भ कर देती हैं, मूल्य गिरने प्रारम्भ हो जाते है। लेविस का तो मत इस सम्बन्ध मे यह है कि, "पूँजी निर्माण के लिए मुद्रा-प्रसार स्वयं विनाशक होता है और इससे यह भी आशा की जा सकती है कि *मूल्य चढ़कर उस स्तर से भी नीचे गिर सकते हैं जहाँ से उन्होंने गिरना शुरू किया था।*" इस प्रकार ज्यों-ज्यो पूँजी-निर्माण होता है, उत्पादन और रोजगार में निरन्तर वृद्धि होती रहती है। परिणामस्वरूप लाभ बढते हैं, जिन्हे विनियोजित करके पुन पूँजी-निर्माण को बढाया जा सकता है और आर्थिक विकास का यह क्रम जारी रहता है। किन्तु विकास की यह प्रक्रिया बन्द अर्थ-व्यवस्था में अनिश्चित काल तक नही चल सकती। निम्नलिखित परिस्थितियों मे यह प्रक्रिया रुक जाती है—

(i) जब पूँजी-निर्माण के परिणामस्वरूप अतिरिक्त श्रम शेष नही रहता।

(ii) *पूँजीवादी विस्तार की तीव्र गति के कारण निर्वाह क्षेत्र की जनसंख्या* इतनी कम हो जाती है कि पूँजीवादी व निर्वाह दोनो क्षेत्रो में श्रम की सीमान्त उत्पादकता बढ़कर मजदूरी का स्तर ऊँचा कर देती है।

(iii) निर्वाह क्षेत्र की अपेक्षा पूँजीवादी क्षेत्र का तीव्र विस्तार, कृषिगत पदार्थों के मूल्यों मे इतनी अधिक वृद्धि कर देता है कि व्यापार की शर्तें (Terms of Trade) पूँजीवादी क्षेत्र के प्रतिकूल हो जाती हैं, परिणामस्वरूप, श्रमिको को अधिक मजदूरी देनी पड़ती है।

(iv) निर्वाह क्षेत्र मे उत्पादन की नई तकनीकी के अपनाए जाने मे पूँजीवादी क्षेत्र मे भी वास्तविक मजदूरी बढ जाती है।

(v) पूँजीवादी क्षेत्र मे यदि श्रम-आन्दोलन ऊँची मजदूरी प्राप्त करने मे सफल हो जाता है।

उपरोक्त परिस्थितियो मे पूँजीवादी अतिरेक पर विपरीत प्रभाव होता है। यदि अन्य देशो मे अतिरिक्त श्रम की स्थिति विद्यमान हो तो पूँजीवादी अपने अतिरेक को विपरीत प्रभाव से निम्नलिखित किसी एक विधि से बचा सकते है—

जब देश मे श्रम की असीमित पूर्ति की स्थिति समाप्त हो जाती है तो पूँजीवादी असीमित श्रम वाले अन्य देशो से सम्बन्ध बनाते है। वे श्रमिको का बड़े पैमाने पर आवास करते हैं *या पूँजी का निर्यात करने लगते हैं*—

(i) श्रमिकों का बड़े पैमाने पर आवास (Mass Immigration)—सैद्धान्तिक दृष्टि से यह सम्भव है कि कुशल श्रमिकों का आवास (Immigration) देश के अकुशल श्रमिकों की माँग को घटा सकता है, किन्तु व्यवहार मे अत्यन्त कठिन है। अधिक सम्भावना इस बात की है कि इस प्रकार के आवास से नए विनियोगो और नए उद्योगों की सम्भावनाएँ बढकर पूर्ति की तुलना मे सभी प्रकार के श्रम की माँग में वृद्धि कर सकती है।

(ii) **पूँजी का निर्यात करना (Exporting Capital)**—दूसरा उपाय ऐसे देशों को पूँजी का निर्यात करना है जहाँ जीवन निर्वाह मजदूरी के स्तर पर पर्याप्त मात्रा में श्रम शक्ति उपलब्ध हो। इससे पूँजी निर्यातक देश में श्रम की माँग कम हो जाती है और मजदूरी की दर गिरने लगती है यद्यपि इसके परिणामस्वरूप मजदूरी का जीवन स्तर और इस प्रकार वास्तविक मजदूरी बढ़ भी सकती है।

लेविस के विकास-प्रारूप का सारांश

'असीमित श्रम-पूर्ति द्वारा आर्थिक विकास' पर लेविस के लेख का सारांश इस प्रकार है[1]—

"1 बहुत सी अर्थ-व्यवस्थाओं में निर्वाह मजदूरी पर असीमित मात्रा में श्रम उपलब्ध होता है। यह संस्थापित मॉडल था। यदि इन अर्थ-व्यवस्थाओं पर नव-संस्थापित मॉडल (जिसमें केन्जीय मॉडल भी सम्मिलित है) लागू किया जाए, तो उसके परिणामस्वरूप हमें गलत निष्कर्ष प्राप्त होंगे।

2 आर्थिक विकास की प्रगति के साथ-साथ श्रमिक मुख्यतः निर्वाहमूलक कृषि, अनियमित मजदूरों, छोटे व्यापार, घरेलू सेवा गृहिणियों तथा लड़कियों, तथा जनसंख्या की वृद्धि आदि साधनों से प्राप्त होते हैं। यदि देश के प्राकृतिक साधनों की तुलना में उसकी जनसंख्या अत्यधिक हो तो इन सब क्षेत्रों में तो नहीं किन्तु इनमें से अधिकांश में श्रम की सीमान्त उत्पादिता अत्यन्त कम अथवा शून्य अथवा ऋणात्मक भी होती है।

3 वह निर्वाह मजदूरी, जिस पर विनियोग के लिए देशी श्रम उपलब्ध होता है, निर्वाह के लिए कम से कम आवश्यक आय से सम्बद्ध प्रचलित मत द्वारा निर्धारित होती है, अथवा वह निर्वाहमूलक कृषि में प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन से कुछ अधिक हो सकती है।

4 ऐसी अर्थ-व्यवस्था में पूँजी-निर्माण के साथ-साथ पूँजीवादी क्षेत्र में रोजगार बढ़ता है।

5 पूँजी-निर्माण तथा तकनीकी प्रगति के परिणामस्वरूप मजदूरी नहीं बढ़ती प्रत्युत् राष्ट्रीय आय में लाभों का भाग बढ़ता है।

6 किसी अविकसित अर्थ-व्यवस्था में राष्ट्रीय आय की अपेक्षा बचत कम होने का यह कारण नहीं होता कि उसकी जनता गरीब होती है, प्रत्युत् यह कारण होता है कि राष्ट्रीय आय की तुलना में पूँजीपतियों के लाभ कम होते हैं। ज्यों-ज्यों पूँजीवादी क्षेत्र का विस्तार होता है, त्यों-त्यों लाभों में सापेक्षत अधिक वृद्धि होती है, और अधिकाधिक अनुपात में राष्ट्रीय आय का पुनर्निवेश होता है।

7 न केवल लाभों अपितु उधार निर्माण के आधार पर पूँजी का निर्माण होता है। प्रस्तुत मॉडल में मुद्रा-स्फीति द्वारा किए जाने वाले पूँजी निर्माण की असल लागत शून्य होती है, और इस पूँजी की उतनी ही उपयोगिता होती है

1 अग्रवाल एवं सिंह वही, पृष्ठ 447-48

जितनी अधिक उचित मानी जाने वाली विधि (अर्थात् लाभों के आधार पर) निर्मित पूँजी की।

8. युद्ध के लिए साधनों को प्राप्त करने के उद्देश्य से होने वाली स्फीति-संचयी होती है परन्तु उत्पादक पूँजी के निर्माण के उद्देश्य से की जाने वाली स्फीति स्वत समाप्त होती है। पूँजी-निर्माण के साथ-साथ कीमतो मे वृद्धि होती है, परन्तु ज्योंही इसका उत्पादन बाजार मे आने लगता है, त्योंही कीमतें फिर गिरने लगती हैं।

9. पूँजीवादी क्षेत्र का इस प्रकार अनिश्चित काल तक विस्तार नही हो सकता, क्योंकि यह सम्भव है कि जनसख्या की वृद्धि की तुलना मे पूँजी सचय की गति अधिक तेज हो जाए। जब वेशी श्रम खत्म हो जाता है, तो मजदूरी निर्वाह-स्तर से अधिक होने लगती है।

10. परन्तु इस देश के अतिरिक्त कुछ अन्य देशों मे अब भी वेशी श्रम उपलब्ध हो सकता है, परिणामतः ज्योंही यहाँ मजदूरी बढने लगती है, त्योंही बहुत बडी मात्रा मे होने वाले आप्रवास तथा पूँजी के निर्यात के कारण मजदूरी में वृद्धि की प्रवृत्ति कम हो जाती है।

11. अकुशल मजदूरों के सामूहिक आप्रवास के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति उत्पादन मे वृद्धि भी सम्भव है, किन्तु इसके कारण सभी देशो मे मजदूरी के सबसे अधिक गरीब देशो के निर्वाह-स्तर के समान होने की प्रवृत्ति होती है।

12. पूँजी के निर्यात के कारण देश मे पूँजी निर्माण की गति कम हो जाती है और परिणामत. मजदूरी कम रहती है। यदि पूँजी के निर्यात के कारण श्रमिको द्वारा आयात किए जाने वाले पदार्थ सस्ते हो जाएँ, अथवा प्रतियोगी देशो मे मजदूरी लागतें बढ जाएँ, तो इस प्रवृत्ति का प्रतिकार हो जाता है। परन्तु, यदि पूँजी के निर्यात के परिणामस्वरूप आयात किए जाने वाले पदार्थों की लागत मे वृद्धि हो अथवा प्रतियोगी देशो मे लागतें कम हो, तो यह प्रवृत्ति अधिक प्रबल हो जाती है।

13. यदि विदेशी पूँजी के आयात के परिणामस्वरूप उन पदार्थों के उद्योगों मे उत्पादिता न बढ़े, जिनका पूँजी आयात करने वाले अपने उपभोग के लिए उत्पादन करते हो, तो इसके कारण वेशी श्रम वाले देशो मे अमल मजदूरी नही बढ़ेगी।

14. उष्ण कटिबन्ध देशो के जीवन-स्तर की दृष्टि से उनके वाणिज्यिक पदार्थों के इतने सस्ते होने का यह प्रमुख कारण है कि इन देशो मे खाद्य का प्रति व्यक्ति उत्पादन बहुत कम है। निर्यात उद्योगो मे उत्पादिता की वृद्धि का प्रायः सारा लाभवि देशी उपभोक्ताओ को प्राप्त होता है, परन्तु निर्वाहमूलक खाद्य उत्पादन मे उत्पादिता की वृद्धि के परिणामस्वरूप वाणिज्यिक पदार्थ स्वाभाविकतः अधिक महँगे हो जाएँगे।

15 तुलनात्मक लागतो का सिद्धान्त बेशी श्रम वाले देशो मे वैसे ही लागू होता है। परन्तु, यदि अन्य देशो के सन्दर्भ मे यह सिद्धान्त मुक्त व्यापार का समर्थन करने वाले तर्कों का एक उचित आधार है, तो बेशी श्रम वाले देशो के सन्दर्भ मे यह संरक्षण का समर्थन करने वाले तर्कों का समान रूप से उचित आधार है।"

आलोचनात्मक समीक्षा

लेविस-मॉडल की समालोचना करने पर हमे इसमे बहुत सी कमियाँ दिखाई देती हैं, जिनमे प्रमुख निम्नलिखित हैं—

1. प्रो लेविस के सिद्धान्त का आधार अर्द्ध-विकसित देशो मे असीमित मात्रा मे श्रम की पूर्ति है, किन्तु दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका के कई देशो मे ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित नही है अत इस सिद्धान्त का क्षेत्र सीमित है।

2 लेविस के सिद्धान्त का आधार अर्द्ध-विकसित देशो मे उपलब्ध पर्याप्त अकुशल श्रम शक्ति है। उनके विचार से कुशल श्रमिको का अभाव एक अस्थायी अवरोध उपस्थित करता है जिसे श्रमिको के प्रशिक्षण आदि के द्वारा दूर किया जा सकता है। किन्तु वस्तुत पर्याप्त मात्रा मे श्रम शक्ति के उचित प्रशिक्षण आदि मे काफी समय लगता है और इस प्रकार कुशल श्रम शक्ति की कमी एक बडी कठिनाई उपस्थित करती है।

3 शुल्ट तथा लेबेन्सटीन यह नही मानते कि कम विकसित देशो मे श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है। यदि ऐसा होता तो मजदूरी की दरें भी लगभग शून्य पर आ जाती। इसी कारण यह ज्ञात करना बडा कठिन है कि कितने लोग आवश्यकता से अधिक (Surplus) हैं।

4 लेविस-मॉडल को कार्यान्वित करने मे एक मुख्य कठिनाई यह है कि 'अतिरेक या आवश्यकता से अधिक (Surplus) जनसख्या' को शहरो मे आसानी से नही ले जाया सकता। कम विकसित देशो मे श्रम-शक्ति इतनी गतिशील नहीं होती जितनी विकसित देशो मे होती है। जातीय और धार्मिक बन्धन, पारिवारिक मोह आदि के कारण व्यावसायिक गतिशीलता बहुत कम रहती है। भाषा, जनाभाव, आवासीय समस्या, निराशा, उत्साहहीनता, स्थान-विशेष से लगाव आदि के कारण भौगोलिक गतिशीलता बहुत कम पायी जाती है। कुशलता की कमी, प्रशिक्षण की कमी, अवसरो की असमानता आदि के कारण क्षैतिज (Horizontal) और खडी (Vertical) गतिशीलता भी कम रहती है।

5 आज के युग मे अर्द्ध विकसित अथवा कम-विकसित देशो मे 'जीवन निर्वाह' योग्य मजदूरी हर समय देते रहना सम्भव नही है। इसके अतिरिक्त 'सम्पूर्ण विकास क्रिया-काल' मे श्रम जीवन-निर्वाह योग्य मजदूरी पर ही कार्य करने को कठिनाई से ही तैयार होता है। वह बढती हुई महँगाई का मुआवजा माँगता है लाभ मे अपना हिस्सा चाहता है। 'न्यूनतम मजदूरी' से लेकर 'श्रम-कल्याण' के विविध महत्वपूर्ण नियम मजदूरो को सरक्षण देते है। अत लेविस मॉडल के अनुसार केवल 'जीवन निर्वाह' के बराबर मजदूरी देते रहकर पूँजी निर्माण द्वारा विकास

करना सम्भव प्रतीत नही होता। संक्षेप में, लेविस के सिद्धान्त के अनुसार पूँजीपति वर्ग द्वारा लाभो की विनियोजित करते रहने से पूँजी संचय होता है। इसका आशय है कि यहाँ 'विनियोग गुणक' (Investment multiplier) क्रियाशील रहता है, किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो के बारे मे ऐसा नही कहा जा सकता।

6. अर्द्ध-विकसित देशो के औद्योगिक क्षेत्रो मे श्रम की माँग इतनी तेजी से नही बढ पाती, जितनी तेजी से कृषि क्षेत्र मे अतिरेक या सरप्लस श्रमिको को काम देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, अर्द्ध-विकसित देशों मे कृषि क्षेत्र में लगे व्यक्तियो को कृषि जो आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती है वह औद्योगिक क्षेत्र मे उसे नही मिल पाती और फलस्वरूप कृषि क्षेत्र से श्रमिकों के निकलने की प्रवृत्ति लोचदार नही रहती।

7. लेविस के *विकास के इस द्वैध अर्थ-व्यवस्था वाले प्रारूप* (Dual Economy Model) मे कुल माँग (Aggregate Demand) की समस्या पर ध्यान नही दिया गया है। इस सिद्धान्त मे यह माना गया है कि पूँजीवादी क्षेत्र मे जो कुछ उत्पादन किया जाता है उसका या तो इसी क्षेत्र मे उपभोग कर लिया जाता है या निर्यात कर दिया जाता है। किन्तु इससे निर्वाह क्षेत्र को बेचे जाने की *सम्भावना है और यदि ऐसा होता है तो विकास की प्रक्रिया* पहले ही रुक सकती हैं।

8. कुजनेट्स की मान्यता है कि अर्द्ध-विकसित देशो मे धन की असमानताएँ पहले से ही अधिक होती है, और यदि लेविस-मॉडल को अपनाया गया तो ये असमानताएँ और अधिक बढ जाएँगी। मायर एवं बाल्डविन का मत है कि धन की *असमानताएँ बढने से ही उत्पादक विनियोजन मे वृद्धि नही हो जाती,* क्योकि अर्द्ध-विकसित देशो मे बचतकर्ता प्राय. जमीदार और पूँजीपति होते हैं जो अपने धन को भूमि के सट्टे, सोने-चाँदी के सचय आदि मे लगा देते है।

9. एस. जे. पटेल तथा यू. एन. ओर के सन् 1960 के सर्वेक्षण के अनुसार लेविस की यह धारणा ठीक नही है कि अर्द्ध-विकसित देशो मे केवल सम्पन्न या धनी व्यक्ति ही बचत करते हैं। सर्वेक्षण यह बताता है कि जहाँ जापान, काँगो, बर्मा आदि देशो मे कम आय वाले भी बचत करने के प्रति उत्साही है, वहाँ चिली, प्यूरटोरिको जैसे कम-विकसित देशो मे अधिक आय वाले भी कम बचत करते पाए गए हैं।

10. जूलियो एच. जी. ओलीवर के अनुसार लेविस का यह दावा अमान्य है कि अर्द्ध-विकसित देशों मे मुद्रा-स्फीति स्वय नष्ट हो जाएगी। इन देशो मे विभिन्न संरचनात्मक जटिलताओ के कारण उत्पादन उतनी आसानी से नही बढ़ता जितनी आसानी और तेजी से इन देशों मे मुद्रा स्फीति फैल सकती है। इन अर्थ-व्यवस्थाओं मे कृषि उपज बेलोचदार रहती है। इसके अतिरिक्त अर्द्ध-विकसित देशों में राज्य की कर-व्यवस्था भी इतनी परिपक्व नही होती कि बढी हुई आय को करों द्वारा कम या सन्तुलित किया जा सके।

इन विभिन्न दोषो के बावजूद भी लेविस के इस विकास-प्रारूप की यह विशेषता है कि इसमे विकास प्रक्रिया को स्पष्ट रूप मे समझाया गया है। इसमे स्पष्ट किया गया है कि पूँजी की कमी और श्रमिको की बहुलता वाले अर्द्ध-विकसित देशो मे पूँजी-सचय किस प्रकार होता है। इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त के सदर्भ मे किए गए 'साख-प्रसार' (Credit Inflation) जनसख्या वृद्धि, अन्तर्राष्ट्रीय तथा तकनीकी प्रगति सम्बन्धी समस्याओ का अध्ययन भी वास्तविकता लिए हुए है।

हैरड-डोमर मॉडल
(The Harrod-Domar Model)

हैरड और डोमर ने पूँजी-सचय (Capital Accumulation) को आर्थिक वृद्धि के अपने मॉडलो मे निर्णायक चल (Crucial Variable) के रूप मे लिया है। पूँजी-सचय को वे विनियोग का फलन मानते हैं तथा विनियोग की दो भूमिकाओ की विवेचना करते है—(1) विनियोग आय का निर्माण करता है, और (2) यह उत्पादन क्षमता (Productive Capacity) मे वृद्धि करता है। इन मॉडलो मे प्रमुख परिकल्पना यह है कि प्रारम्भ मे आय का सतुलित स्तर यदि पूर्ण रोजगार के बिन्दु पर है तो प्रतिवर्ष सतुलन के इस स्थायित्व को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि विनियोग द्वारा उत्पन्न अतिरिक्त क्रय-शक्ति की मात्रा इतनी होनी चाहिए जो विनियोग द्वारा बढाए गए उत्पादन को खपाने (Absorb) के लिए पर्याप्त हो। यदि वास्तविक आय बढती नही है, बल्कि स्थिर रहती है तो इस स्थिति के निम्नलिखित प्रभाव होंगे—

(1) नई पूँजी अप्रयुक्त रहेगी।

(2) नई पूँजी का उपयोग पूर्व उत्पादित पूँजी की लागत पर होगा।

(3) नई पूँजी का श्रम के लिए प्रतिस्थापन किया जाएगा।

इस प्रकार, यदि पूँजी-सचय के साथ आय मे वृद्धि नही होती है तो इसका परिणाम यह होगा कि श्रम और पूँजी दोनो ही अप्रयुक्त (Unemployed) रहेंगे। अत विनियोग वस्तुओ की अधिकता व बेरोजगार श्रम की स्थिति से अर्थव्यवस्थ को मुक्त रखने के लिए आय मे स्थायी व निरन्तर वृद्धि आवश्यक है। दूसरे शब्दो मे जिस समस्या का इन मॉडलो मे अध्ययन किया गया है, वह यह है कि क्या कोई ऐसी स्थाई निरन्तर विकास-दर सम्भव है जो दोहरा पूर्ण रोजगार मापदण्ड (The double full employment criterion) की पूर्ति करती है अर्थात् जिसके कारण पूँजी व श्रम के लिए पूर्ण रोजगार की स्थिति कायम रहती है। हैरड व डोमर के मॉडल समान निष्कर्षों पर पहुँचते हैं, अत इनका मॉडल सयुक्त रूप मे आधारभूत हैरड डोमर मॉडल (*Basic Harrod Domar Model*) के नाम से जाना जाता है। इस मॉडल का सामान्य लक्ष्य, पूर्ण क्षमता सम्बन्धी स्टॉक की शर्त (Full Capacity Stock Condition) तथा बचत/विनियोग सम्बन्धी बहाव की शर्त (Flow Condition of Saving/Investment) के साथ वस्तु-बाजार (Product Market) मे सतुलन रखना तथा इसके साथ श्रम-बाजार के सन्तुलन को सम्बद्ध करना है।

मान्यताएँ (Assumptions)

हैरड-डोमर मॉडल की निम्नलिखित मान्यताएँ है—

1 केवल एक प्रकार की वस्तु का उत्पादन होता है अर्थात् कुल आय अथवा उत्पादन एक समरूप प्रकृति अथवा आकृति का होता है (Total income is a homogeneous magnitude)।

2. पूँजी के स्टॉक तथा आय में एक निश्चित तकनीकी सम्बन्ध (a fixed technological relationship) होता है।

3 आय मे वचत का अनुपात स्थिर रहता है अर्थात् वचत की औसत प्रवृत्ति व सीमान्त प्रवृत्ति परस्पर समान होती है अर्थात् APS=MPS पूँजी गुणांक (Capital Coefficient) स्थिर रहता है।

4. विनियोग तथा उत्पादन क्षमता की उत्पत्ति के मध्य कोई विशेष समयान्तर (Significant time-lag) नही होता है।

5. राष्ट्रीय उत्पादन के केवल दो ही उपयोग होते हैं—

(i) उपभोग (Consumption)

(ii) विनियोग (Investment)

6. केवल एक ही उत्पादन-कारक पर विचार होता है अर्थात् केवल पूँजी का ही विवेचन किया जाता है।

7. पूँजी का ह्रास नही होता है अर्थात् पूँजी के स्टॉक की जीवनावधि अनन्त होती है।

8 श्रम शक्ति मे एक स्थिर दर (Constant rate) से वृद्धि होती है तथा इस बढी हुई श्रम शक्ति के लिए वस्तु-बाजार मे पूर्ण माँग रहती है।

9. पूँजी व श्रम दोनों मे पूर्ण रोजगार की स्थिति रहती है।

10. विदेशी व्यापार नही होता है और न ही किसी प्रकार का राजकीय हस्तक्षेप होता है।

11 हैरड मॉडल मे 'वचत व विनियोग' वास्तविक अथवा 'एक्सपोस्ट' (Expost) के अर्थ मे प्रयुक्त होते हैं।

हैरड डोमर मॉडल को पूर्णत. समझने के लिए हैरड व डोमर के मॉडलों का पृथक्-पृथक् विवेचन आवश्यक है।

हैरड-मॉडल (The Harrod Model)

हैरड मॉडल प्रतिष्ठापित सत्य $S=I$ (वचत=विनियोग) के साथ प्रारम्भ होता है। इसे हैरड निम्नलिखित समीकरण द्वारा व्यक्त करते हैं—

$$GC=S$$

उपरोक्त समीकरण इस तथ्य को प्रतिपादित करता है कि "विकास दर त्वरक और वचत की सीमान्त प्रवृत्ति का अनुपात होती है, अथवा वास्तविक बचत विनियोगों के बराबर होगी।" अतः

एक्सपोस्ट (Expost) अर्थ मे वास्तविक विनियोग आवश्यक रूप से प्राप्त बचत (Realized Savings) के बराबर होता है : इस प्रकार

$$SY_t = C(Y_t - Y_{t-1}) \quad (1)$$

प्राप्त विकास दर (Realized rate of growth) को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

$$G = Y_t - Y_{t-1} \quad (2)$$

समीकरण (1) के दोनो पक्षो को CY_t से विभाजित करते हुए—

$$\frac{S}{C} = \frac{Y_t - Y_{t-1}}{Y_t}$$

और इससे हम निम्न Identity प्राप्त कर लेते हैं—

$$G = \frac{S}{C} \quad \text{or} \quad GC = S$$

हेरड की यह मान्यता है कि एक्सपोस्ट बचतें (Expost Saving) सदैव एक्सएन्टे पूर्ण रोज़गार के स्तर (Exante full employment level) के बराबर होगी। किन्तु विनियोजित की जाने वाली राशि स्वय मे इतनी पर्याप्त होनी चाहिए कि प्राप्त विकास दर के कारण न तो पूँजी का अवाँछित सचय (Unintended accumulation) ही हो और न ही पूँजी के वर्तमान स्टॉक मे ही किसी प्रकार की कमी आए। यदि अवाँछित सचय होता है तो वास्तविक आय अपेक्षाकृत कम होगी और बचत वाँछित स्तर से नीचे गिर जाएँगी, क्योकि उत्पादन मे वृद्धि द्वारा समस्त वर्तमान विनियोग राशि का उपयोग नही हो सकेगा। पूँजी के अवाँछित ह्रास की स्थिति मे, बचत वाँछित स्तर से अधिक होगी और उत्पादक यह अनुभव करने लगेंगे कि उत्पादन मे वृद्धि के अनुपात मे, उन्होने पर्याप्त विनियोजन नही किया है। किन्तु यदि हम यह मानते हैं कि $S_t = S_t^1$ तो उत्पादको द्वारा किया जाने वाला विनियोजन उत्पादन मे वृद्धि की दृष्टि से उचित प्रमाणित होगा। इस औचित्य के कारण वे त्वरक C_r के अनुरूप विनियोजन करना चाहेंगे, जो विनियोग की गत समानुपाती दर C (Past Proportional rate C) के बराबर होगा, क्योंकि वे वास्तव मे प्राप्त विकास दर के बराबर भावी विकास दर को जारी रखना चाहते हैं। इसलिए भावी वास्तविक विकास दर आवश्यक विकास दर के रूप में जारी रहेगी। इस प्रकार, जब तक $C_r = C$, तब तक प्राप्त विकास दर (G) वाँछित विकास दर (G_w or Warranted Growth Rate) के बराबर होगी। इस सम्पूर्ण व्यवस्था को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है, $C_r = C$, तब $G = G_w$ तथा सभी अपेक्षाएँ इसमे पूरी होती ह। अब

$$G = \frac{S}{C} = \frac{Y_t + Y_{t-1}}{Y_t} \text{ और } G_w = \frac{S}{C_r} = \frac{Y_{t+1} - Y_t}{Y_{t+1}}$$

जब $G=G_w$, तब $G_{t+1}=G_t$

$G=G_w$ होने पर, व्यवस्था इस प्रकार के विकास पथ से बंध जाती है जिससे उत्पादन में परिवर्तन की वास्तविक दर के फलन के रूप में विनियोग सदैव उत्पादन के वर्तमान स्तर पर प्राप्त बचतों के बराबर होगा।

संतुलन की आवश्यकताओं को पुनः निम्न प्रकर व्यक्त किया जा सकता है—

$$\frac{\Delta Y}{Y}\cdot\frac{\Delta K}{\Delta Y}=\frac{S}{Y}$$

जो $GC=S$ अथवा $\frac{\Delta K}{Y}=\frac{S}{Y}$ है।

अब चूंकि $\frac{\Delta K}{\Delta Y}$ वह पूंजी-स्टॉक है, जो उत्पादन में अपेक्षित वृद्धि के लिए आवश्यक है, अन्य शब्दों में वांछित विनियोग की यह वह राशि है, जो वर्तमान वचत के बराबर होनी चाहिए। इसलिए इसे हम निम्न प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

$$\frac{\Delta K}{Y}=\frac{I}{Y}=\frac{S}{Y}$$

सन्तुलन मार्ग की सन्तुष्टि के लिए आवश्यक शर्तों से सम्बन्धित विभिन्न विधियों (Approaches) को निम्नलिखित सारणी में स्पष्ट किया गया है।

सारणी–1. सन्तुलन-शर्तें (Equilibrium Conditions)[1]

शर्तें (Condition)	संरचनात्मक प्राचल (Structural Parameters)			वांछित विकास दर (Required Growth Rate)		
	$\frac{S}{Y}$	$\frac{\Delta K}{\Delta Y}$	$\frac{\Delta Y}{Y}$	$\frac{S}{Y}$	$\frac{\Delta K}{\Delta Y}$	$\frac{\Delta Y}{Y}$
(1) $\frac{S}{Y}=\frac{\Delta Y}{Y}\ \frac{\Delta K}{Y}=\frac{\Delta K}{Y}$, $S=I$		4	0·05	0 20		
(2) $\frac{\Delta Y}{Y}=\frac{\frac{S}{Y}}{\frac{\Delta K}{\Delta Y}}$, $G=\frac{S}{C}$	0·20	4				0·05
(3) $\frac{\Delta K}{Y}=\frac{\frac{S}{Y}}{\frac{\Delta Y}{Y}}$, $C=\frac{S}{G}$	0 20		0·05		4	

1. *Stanley Bober* : The Economics of Cycles and Growth, p. 260.

सारणी-1, पैनल 1 में, विकास दर या आय वृद्धि=0 05 प्रति अवधि और सीमान्त पूँजी-प्रदा अनुपात=4 होने पर, इस विकास दर को बनाए रखने के लिए, बचत और विनियोग आवश्यक होंगे=20% [$I=4(0\ 05)=0\ 20=S$] यदि इस राशि से कम या अधिक बचत रहती है तो तदनुरूप ही आय में वृद्धि की दर 5% से अधिक अथवा कम रहेगी, परिणामस्वरूप, विनियोगों का परिवर्तन अनिवार्य होगा और इस परिवर्तन के कारण विकास दर भी बदल जाएगी।

पैनल 2 के अनुसार, यदि सरचनात्मक प्राचल (Structural Parameters) अर्थात् बचत $\left(\frac{S}{Y}\right)$ और सीमान्त पूँजी-प्रदा अनुपात $\left(\frac{\triangle K}{\triangle Y}\right)$ दिए हुए होते है तो विकास दर ज्ञात हो जाती है (i e $G=\frac{\cdot 02}{4}=0\ 05$)। इस विकास दर का स्थायी बने रहना प्राचलो के *स्थायित्व (Stability)* पर *निर्भर करता है*।

पैनल 3 के अनुसार, यदि कोई भी दो चल (Variables) दिए हुए होते हैं, तो आवश्यक तीसरा चल ज्ञात किया जा सकता है। जैसे $\frac{S}{Y}$ अथवा I(विनियोग) $=20$ तथा विकास दर $\left(\frac{\triangle Y}{Y} \text{ or } G\right)=0\ 5$ दिए हुए है। इनकी सहायता से तीसरा चल-सीमान्त पूँजी प्रदा-अनुपात $\left(\frac{\triangle K}{\triangle G}\right)$ इस प्रकार ज्ञात किया गया है— $\frac{\cdot 20}{05}=4$

उपरोक्त सन्तुलन पथ की पूर्ण रोजगार-पथ के रूप मे विवेचना इसलिए नही की गई है क्योंकि यह मान्यता आवश्यक नही है कि केवल पूर्ण रोजगार की अवस्थाओं के अन्तर्गत ही स्थायी व निरन्तर विकास दर की विशेषताओं (Properties) का स्वत सचालन सम्भव होता है। उदाहरणार्थ, हिक्स की $E\ E$ रेखा (Hicksian $E\ E$ line) पूर्ण रोजगार से पूर्व-स्थिति मे भी स्थायी विकास (Steady growth) को दर्शाती है। पूर्ण रोजगार की मान्यता के लिए, प्रारम्भिक शर्त (Initial condition) के रूप मे यह मान कर चलना आवश्यक है कि G=*पूर्ण रोजगार के है, अथवा हैरड की शब्दावली मे यह कहा जाना चाहिए की* $G=G_n$ G_n का आशय स्वाभाविक विकास दर (Natural Growth Rate) से है। यह वह दर (Rate of advance) है जिसकी अधिकतम सीमा जनसख्या को वृद्धि और तकनीकी सुधारो पर आधारित होती है। इसे एक अन्तिम उच्चतम विकास दर (Ceiling Growth Rate) के रूप मे भी परिभाषित किया जा सकता है जो G के अधिकतम औसत मूल्य की सीमा निर्धारित करती है। $G=G_w=G_n$ सन्तुलन मार्ग के निर्धारण के लिए हमको न केवल स्वतन्त्र रूप से निर्धारित S और C चलो के ही सयोग को लेना चाहिए बल्कि साथ ही यह भी निश्चित कर लेना

चाहिए कि विकास की यह दर तथा वह दर जिससे श्रम-शक्ति में वृद्धि होती है, परस्पर बराबर हैं। श्रम-शक्ति की वृद्धि दर अधिकांशतः उत्पादन की वृद्धि से स्वतन्त्र होती है। इसका निर्धारण डेमोग्राफिक शक्तियों द्वारा होता है।

ज्यामितीय विश्लेषण द्वारा इस स्थिति को और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है।

चित्र 4
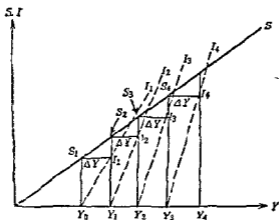
मॉडल का ज्यामितीय विश्लेषण[1]
(Geometric Analysis of the Model)

चित्र–4 में Y_0 से Y_1 तक उत्पादन में परिवर्तन ($\triangle Y$) प्रेरित (Induced) विनियोग की Y_1 पर वास्तविक राशि $= I_1 = S_1 \; (Y_1)$ होगी। विनियोग की इस राशि से उत्पादित आय $= Y_2$ होगी। पुनः उत्पादन में परिवर्तन i e $Y_2 - Y_1 = \triangle Y_2$ से प्रेरित विनियोग की राशि $I_2 = S_2 \; (Y_2)$ होगी। टूटी हुई विनियोग रेखा (Dashed Investment Line) तथा Y–अक्ष के समानान्तर ठोस रेखा का कटाव विन्दु (Intersection Point) उस आवश्यक विनियोग को प्रदर्शित करता है जो आय वृद्धि के कारण किया जा रहा है (i. e., it indicates the required investment that is forthcoming)। "यदि हम विनियोग गुणांक (Investment coefficient) में किसी परिवर्तन के न होने की मान्यता लेते हैं तो बचत का अनुपात जितना अधिक होगा, उतनी ही अधिक वृद्धि-दर उत्पादन अथवा आय में होनी चाहिए जिससे सन्तुलन के लिए पर्याप्त विनियोग प्रेरित हो सके।"[2]

1. *H Pilvin*: A Geometric Analysis of Recent Growth Models, AER. 42, Sept., 1952, pp 594-595
2. "The greater the proportion of savings, the greater must the rate of increase in output be to induce sufficient investment to maintain Equilibrium, if weassume no change in the investment coefficient".
—Ibid, p. 261.

सारणी-2 मे उन विभिन्न विकास-दरो को दर्शाया गया है जो S और C (S=बचत की सीमान्त प्रवृत्ति और C=पूँजी प्रदा अनुपात) के विभिन्न सयोगो (Different Combinations) पर आवश्यक होती हैं ।

सारणी-2. भिन्न शर्तों के अन्तर्गत आवश्यक विकास दर[1]
(Required Growth Rate under Different Combinations)

S	C			
	½	1	4	10
0	0	0	0	0
0 10	0 20	0 10	0 025	0 01
0 20	0 40	0 20	0 05	0 02

यदि $S= 10$ और $C=½$ हो तो $G= 20$ होगी, किन्तु $S= 20$ होने पर G (i e =20) को स्थिर रखने के लिए C को ½ से बढाकर 1 किया जाना आवश्यक होगा । परन्तु यदि हमको सारणी का विश्लेषण उत्पादन मे आवश्यक वृद्धि दर के रूप में करना है, तो बचत का अनुपात = 10 के दिए हुए होने पर, पूँजी-प्रदा-अनुपात मे ½ की कमी, अर्थात् 1 से ½ होने की स्थिति मे, सन्तुलन कायम रखने के लिए विकास-दर मे 100 प्रतिशत वृद्धि आवश्यक होती है । अर्थात् किसी दी हुई औसत बचत प्रवृत्ति (*APS*) का त्वरक गुणांक (Acceleration Coefficient) जितना कम होगा, उतना ही अधिक पूर्ण रोजगार की स्थिति बनाए रखने के लिए पर्याप्त विनियोग को प्रेरित करने के उद्देश्य से विकास-दर को ऊँचा रखना होगा । इसके अतिरिक्त, जैसा कि सारणी मे प्रदर्शित किया गया है, जितना ऊँचा गुणांक (C) होगा, उत्पादन में वृद्धि-दर उतनी कम होगी—*यथा जब* $C=½$, तब $G= 40$ है और जब $C=10$ है तब $G= 02$ है । उदाहरणार्थ, विनियोग फलन जितना अधिक लेटा हुआ (Flatter) है उतना ही अन्तर Y के स्तरो मे पाया जाता है, बशर्ते कि, $S=I$ हो ।

डोमर मॉडल
(The Domar Model)

हैरड के मॉडल को सरलता से डोमर के मॉडल मे परिवर्तित किया जा सकता है । दोनो के ही मॉडल यह प्रतिपादित करते हैं कि पूर्ण रोजगार को बनाए रखने के लिए, पूर्ण रोजगार के स्तर वाली आय से प्राप्त वांछित बचत की राशि वांछित विनियोगो के बराबर होनी चाहिए । डोमर मॉडल का मूल प्रश्न यह है कि बढते हुए पूँजी सचय से प्रतिफलित बढती हुई उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग करने के लिए किस दर से अर्थव्यवस्था का विकास किया जाना चाहिए ? इसके विपरीत हैरड मॉडल मे अन्तर्निहित प्रश्न इस प्रकार है कि अर्थव्यवस्था मे किस दर

1 *Paul A Samuelson* 'Dynamic Process Analysis', Survey of Contemporary Economics, H S Ellis (Ed), AEA-Series, p 362

से वृद्धि होनी चाहिए कि विनियोक्क विनियोजन की अपनी वर्तमान दर को जारी रखने में औचित्य का अनुभव करें। डोमर जहाँ बदलती हुई उत्पादन-क्षमता के तक्नीकी प्रभाव से सम्बन्ध रखते हैं, वहाँ हैरड अपने को मूलतः विनियोग निर्णयों पर केन्द्रित रखते हैं।

मॉडल की विवेचना (Interpretation of Model)

उक्त मॉडल में—

σ=उत्पादन क्षमता मे वृद्धि + नए विनियोग की राशि। सामान्यतः σ का मूल्य विनियोग के मूल्य से भिन्न होगा, क्योकि नई उत्पादन-क्षमता के एक अंश के लिए वर्तमान सुविधाएं (Existing facilities) उत्तरदायी होती हैं। इस प्रकार—

$I\sigma$=अर्थव्यवस्था की 'उत्पादन सम्भावना' (Productive Potential)

I मे परिवर्तन से गुणक द्वारा कुल माँग (Aggregate demand) मे परिवर्तन होता है, जिसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

$$\Delta Y=\frac{I}{S}\cdot\Delta I,$$

जहाँ $\frac{I}{S}$= गुणक, ΔI=विनियोग परिवर्तन, ΔY=माँग मे वृद्धि,

S=बचत की सीमान्त प्रवृत्ति या MPS. विनियोग मे परिवर्तन तथा साथ ही, उत्पादन-क्षमता मे भी वृद्धि उत्पन्न करता है, जिसे $I\sigma$ से दर्शाया जाता है। व्यवस्था में उत्पादन-क्षमता से न आधिक्य की स्थिति रहे और न न्यूनता की, इसके लिए कुल माँग व कुल पूर्ति की सापेक्ष वृद्धि दरें, स्थिर रहनी चाहिए। अत यह आवश्यक है कि—

$$\Delta I.\frac{I}{S}=\sigma I$$

उपरोक्त समीकरण के दोनो पक्षों को S से गुणा करते हुए और I से विभाजित करने पर प्राप्त परिणाम होगा—

$$\frac{\Delta I}{I}=\sigma S$$

इस समीकरण से स्पष्ट है कि पूर्ण क्षमता के उपयोग का संतुलन मार्ग तभी बना रह सकता है, जबकि विनियोग मे सापेक्ष परिवर्तन की दर विनियोग की उत्पादकता दर के बराबर रहती है। यदि यह दर कम है अर्थात् जब $\frac{\Delta Y}{Y}<\sigma S$ परिणाम अतिरिक्त क्षमता की उत्पत्ति होगा। आय का वर्तमान पर्याप्त स्तर कल और भी अधिक आय के स्तर की आवश्यकता पैदा करेगा। अर्थव्यवस्था के निर्बाध गति से चलते रहने के लिए विनियोग-दर का तीव्र गति से निरंतर बढ़ते रहना आवश्यक होगा।

मॉडल का गणितीय उदाहरण[1]
(Numerical Example of the Model)

यदि हम यह मानते हैं कि $S=0.25$ और $\sigma=0.10$ तो \$ 10 के नए विनियोग से \$ 1 के बराबर नई उत्पादन क्षमता का निर्माण होता है। निम्नलिखित सारणी में $t=1$ अवधि से सतुलन की स्थिति प्रारम्भ करते हुए, हम देखते हैं कि यदि विनियोग में $\sigma S=2.5\%$ की वाँछित दर से वृद्धि होती है तो प्रत्येक अवधि में उत्पादन-क्षमता की वृद्धि को पूर्ण उपयोग में रखने के लिए, आय में जो परिवर्तन होता है, वह पर्याप्त होगा। दूसरी अवधि में पूँजी का स्टॉक $400(0.025)=\$10$ से बढ़ता है, जिसके कारण उत्पादन-क्षमता में $10(0.10)=1$ की वृद्धि होती है। $t=2$ अवधि में 2.5% की दर से विनियोग बढ़कर 10.25 हो जाता है। इस विनियोग से वास्तविक माँग में जो वृद्धि होगी, वह बढ़ी हुई क्षमता के पूर्ण उपयोग के लिए आवश्यक है, किन्तु इस प्रक्रिया के क्रम में $t=3$ अवधि में पूँजी का स्टॉक बढ़कर 420.25 हो जाता है तथा उत्पादन क्षमता 1.025 से बढ़ जाती है। इस बढ़ी हुई उत्पादन-क्षमता के पूर्ण उपयोग के लिए विनियोग 2.5% की दर से बढ़कर 10.506 हो जाएगा। इस प्रकार जब तक विनियोग में वाँछित दर से वृद्धि जारी रहती है, पूर्ण क्षमता वाला पथ सतुलित बना रहता है (The full capacity path is maintained as long as investment keeps rising at the required rate)

सारणी के पैनल B में विनियोग स्थिर रहता है। इस स्थिति में हम यह देखते हैं कि प्रत्येक अवधि में उत्पादन क्षमता (Output Capacity) और वास्तविक माँग (Actual Demand) का अन्तर बढ़ता जाता है। यह स्थिति डोमर के मूल दृष्टिकोण को इन शब्दों में स्पष्ट करती है, 'जब प्रत्येक अवधि में विनियोग और आय स्थिर रहते हैं, तब क्षमता निरंतर बढ़ती जाती है। इस क्रम में एक ऐसा बिन्दु आ पहुँचेगा जिस पर साहसियों की अपेक्षित प्रत्याशाओं (Anticipations) के पूरा न होने पर विनियोग में गिरावट की प्रवृत्ति प्रारम्भ होने लगती है। इस प्रकार विकास क्रम की समाप्ति विनियोगों में गिरावट लाने के लिए पर्याप्त है (Thus a cessation of growth is sufficient to cause a decline)।"

पैनल C के अनुसार विनियोग में वृद्धि की धीमी दर से उत्पादन क्षमता में अतिरेक की स्थिति उत्पन्न होती है, पूर्ति और माँग में अन्तर स्पष्ट होता जाता है, क्योंकि विनियोग में 2·5% के स्थान पर केवल 1% से ही वृद्धि होती है।

1 *Gardner Ackley* Macro Economic Theory, p 516

डोमर-मॉडल की स्थितियां (The Domar Model Conditions)[1]

t	पूंजी का स्टॉक (Capital Stock)	क्षमता-उत्पादन (Capacity Output) पूर्ति (Supply)	मांग (Demand)	उपभोग (Consumption)	विनियोग (Investment)
			पैनल A		
1	400	40	40	30	10
2	410	41	41	30·75	10 25
3	420 25	42·025	42·025	31·518	10 506
			पैनल B		
1	400	40	40	30	10
2	410	41	40	30	10
3	420	42	40	30	10
			पैनल C		
1	400	40	40	40	10
2	410	41	40·4	30·3	10·1
3	420·1	42·01	40·08	30·6	10 2

डोमर-मॉडल के संतुलन-मार्ग को निम्न चित्र द्वारा भी प्रदर्शित किया जा सकता है—

चित्र—5
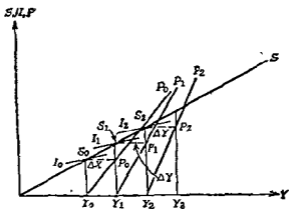
चित्र–5 में I_0 और S_0 का कटाव बिन्दु (Intersection point) आय का पूर्ण-क्षमता स्तर (Full-capacity level of income) प्रदर्शित करता है। इसके

1. *H. Pilvin* : op. cit., quoted from Stanley Bober, op. cit , p. 267.

अतिरिक्त, टूटी हुई लम्बवत् रेखा (The vertical dashed line) I_0 विनियोग के परिणामस्वरूप S_0P_0 मात्रा से बढी हुई उत्पादन-क्षमता को प्रदर्शित करती है। उत्पादन क्षमता मे इस वृद्धि के कारण आय मे भी इसी दर से वृद्धि आवश्यक हो जाती है। जब विनियोग I_0 से बढकर I_1 हो जाता है तब जिस दर से आय बढती है, उससे I_1 S_1 पर नया सतुलन स्थापित हो जाता है। इस नए सतुलन पर आय वृद्धि की सीमा S_2P_2 हो जाती है तथा विनियोग राशि मे भी वाँछित परिवर्तन आवश्यक हो जाता है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि—

1 क्षमता गुणाँक (Capacity coefficient) जितना कम होता है अथवा क्षमता रेखा (Capacity Line) का ढाल जितना अधिक (Steeper) होता है, विनियोग मात्रा मे उतना ही कम परिवर्तन आवश्यक होता है।

2 किसी दिए हुए क्षमता गुणाँक पर, बचत रेखा जितनी ढालू होगी जितनी अथवा जितनी अधिक बचत की सीमान्त प्रवृत्ति होगी, विनियोग राशि उतनी ही अधिक सतुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक होगी।

3 जिस प्रकार हैरड मॉडल मे जब एक बार अर्थव्यवस्था सतुलन के मार्ग से हट जाती है, तब बचन, फलन और विनियोग फलन मे परिवर्तन के मध्य नीति-विकल्प (Policy Choices) रहते है, किन्तु डोमर मॉडल हमको σ तत्त्व के रूप मे विनियोग के लिए तकनीकी आधार के प्रति सतर्क करता है।

दोनो मॉडल मे परस्पर सम्बन्ध
(Relation between two Models)

डोमर मॉडल मे

$$\frac{\triangle Y}{Y} = \triangle I\left(\frac{I}{S}\right) = \text{Demand (माँग)}$$

$$\frac{\triangle I}{I} = \sigma I = \text{Supply (पूर्ति)}$$

$$\text{और } \frac{\triangle Y}{Y} = \sigma I = G_r \text{ (Required Growth Rate)}$$

इस प्रकार के सतुलन-मार्ग मे $S = I$ होना है। यदि I से S अधिक या कम होता है तो इसके परिणामस्वरूप आवश्यक स्तर से कम अथवा अधिक उत्पादन-क्षमता की स्थिति उत्पन्न होती है अथवा विनियोग-दर बहुत अधिक अथवा बहुत कम रहती है। डोमर साहसियो को कोई ऐसा व्यवहार करने का सुझाव प्रस्तुत नही करते हैं, जो उनके लिए विनियोग की मात्रा के उचित परिवर्तन की निश्चयात्मकता का आधार बनता हो। वे केवल उस राशि का उल्लेख करते हैं, जिससे विनियोग की मात्रा मे वृद्धि होनी चाहिए।

हैरड मॉडल में—

$$\frac{\Delta Y}{Y} = \Delta I \left(\frac{I}{S}\right) = \text{Demand (माँग)}$$

$$\frac{\Delta I}{I} = \frac{S}{C} = \text{Supply (पूर्ति)}$$

और $$\frac{\Delta Y}{Y} = \frac{S}{C_r} = G_w \text{ (Warranted Rate of Growth)}$$

इस प्रकार के संतुलन में $S=I=C_r$. यदि $I \gtrless S$ है तो साहसी अपने गत विनियोग निर्णयों पर असंतुष्ट होते हैं इसलिए विनियोग को बढाना या घटाना चाहते हैं। हैरड साहसियो के लिए इस प्रकार के आचरण अथवा कार्य करने की प्रेरणा प्रस्तुत करते हैं, जिसके करने पर विकास की उचित दर जारी रहती है और विकास की दर के फलस्वरूप विनियोग मे उचित परिवर्तन स्वतः प्रेरित होता है, जबकि डोमर मॉडल मे विनियोग की उचित राशि एक बाह्य चल या तत्त्व (Exogeneous Variable or Element) के रूप मे प्रयुक्त होती है।

दोनो के संतुलन मार्गों को परस्पर सम्बन्धित करते हुए हम यह पाते हैं कि डोमर-मॉडल की निरन्तर बदलती हुई उत्पादन-क्षमता, प्रेरित विनियोग की उचित राशि का परिणाम होती है, अर्थात्

$$\frac{\Delta I}{I} = \sigma I = \frac{S}{G_r}$$

और विकास की वह दर भी जो क्षमता को वहन करती है, साहसियों के गत निर्णयों के औचित्य को प्रमाणित करती है, अर्थात्

$$G_r = G_w = G.$$

मॉडल की अर्द्ध-विकसित व्यावहारिकता (Applicability of the Models for UDCs)

प्रथम, मॉडल मे 'अस्थायित्व' (Instability) की समस्या वास्तव मे अर्द्ध-विकसित देशो की नही बल्कि विकसित देशों की समस्या है। अर्द्ध-विकसित देशों की समस्या स्वयं 'आर्थिक वृद्धि' (Growth) है।

द्वितीय, इस मॉडल में 'सैक्यूलर स्टेगनेशन' (Secular Stagnation) की विवेचना की गई है, जो कम आय वाले देशो की विशेषताओं के अन्तर्गत नही आता है।

इसके अतिरिक्त ये प्रयुक्त चल अर्थव्यवस्था के समष्टि स्वरूप को दर्शाते हैं। समूहों (Aggregates) के आधार पर निर्मित मॉडल क्षेत्रों के मध्य अन्त-सम्बन्धों को प्रदर्शित नही कर सकता है इसलिए अर्द्ध-विकसित देशों की अर्थ-व्यवस्थाओं में विकासजन्य-संरचनात्मक परिवर्तनों को प्रस्तुत करने मे अनुपयुक्त होता है।

अधिकांशत ये मॉडल मान्यताओं एव Abstractions पर आधारित हैं, इसलिए यथार्थता से दूर हैं।

उत्पादन फलन को स्थिर माना गया है, इसलिए उत्पादन-कारको मे परस्पर प्रतिस्थापन के लिए इन मॉडलो मे कोई स्थान नही है।

यद्यपि अर्द्ध विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ के लिए इन मॉडलो की व्यावहारिकता बहुत कम है, तथापि कुल मिलाकर आय, विनियोग और बचन के लक्ष्यो के सम्बन्ध मे एक उचित जानकारी प्रदान करने मे बडे उपयोगी हैं। साथ ही इन लक्ष्यो की पारस्परिक अनुकूलता (Cons stency) के परीक्षण हेतु भी ये मॉडल उपयुक्त समझे जाते हैं। कम आय वाले देश मुद्रा-प्रसार के प्रति बडे Suscep'ible होते हैं, इस तथ्य की विवेचना भी इन मॉडलो मे की गई है। इन देशो मे विनियोग-दर मे अल्प वृद्धि के परिणाम अथवा प्रभाव अत्यधिक तीव्र होते हैं, क्योकि प्रारम्भिक विनियोग दर एव विकास-दर बहुत निम्न होती है। इस तथ्य का प्रतिपादन भी इन मॉडलो मे समुचित रूप से किया गया है। इस प्रकार, मूलत विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ से सम्बन्धित होते हुए भी हैरड-डोमर मॉडल की अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ के के लिए उपयोगिता है।

हिक्स द्वारा हैरड-मॉडल की समालोचना (Hicks's Comments on Harrod Type Macro Dynamics)

प्रो हिक्स के शब्दो मे, "किसी ऐसी अर्थ-व्यवस्था की क्रियाओ को, जिसमे सम्पूर्ण विनियोजन प्रेरित विनियोजन होता है, समझना एक दिलचस्प स्थिति है।" प्रो हिक्स ने हैरड-डोमर मॉडलो की निम्नलिखित समालोचनाएँ प्रस्तुत की हैं—

1 पूंजी की समरूपता (Homogenity of Capital) की मान्यता अनावश्यक है। यदि हम इसे मान भी लें तब भी $K_t = K_t^*$ (K_t=पूंजी का प्रारम्भिक स्टॉक और K_t^*=पूंजी का वांछित स्टॉक) स्टॉक सन्तुलन की पर्याप्त शर्त न होकर, केवल एक आवश्यक शर्त है, क्योकि योग (Aggregates) समान हो सकते हैं, किन्तु कुछ पूंजियो के वास्तविक स्टॉक का कुछ अथवा सभी उद्योगो मे वांछित स्तर से अधिक तथा कुछ अन्य उद्योगो मे वांछित स्तर से कम होना सम्भव है।

2 प्रति अवधि मे बचत गुणांक (S) को स्थिर मानना भी तर्क-युक्त नही है। मॉडल के बीजगणितीय स्वरूप म यह अन्तर्निहित है कि अवधि के प्रारम्भ व अन्त म पूंजी प्रदा अनुपात वही रहता है, किन्तु सामान्यत वांछित पूंजी-उत्पादन पर आश्रित रहना आवश्यक नही है।

3 हैरड की G_w (Warranted Rate of Growth) सन्तुलन-मार्ग के निर्धारण के लिए पर्याप्त नही है। $GC=S$ केवल एक बहाव-शर्त (Flow Condition) है, क्योकि हैरड मॉडल मे पूंजी का कोई ऐसा भाग नही है जो स्वत निर्धारित होता हो, इसलिए एक निर्णायक सन्तुलन-पथ के लिए कुछ अधिक सरलीकरण (Simplification) की आवश्यकता है।

4 हैरड मॉडल को अधिक अर्थयुक्त बनाने हेतु यह शर्त आवश्यक है कि $C^{\circ}>S$ (C^{c}=पूँजी-प्रदा अनुपात और S=बचत गुणांक) यदि विचाराधीन अवधि केवल एक माह है, C° काफी बड़ा होना चाहिए, किन्तु यदि अवधि दीर्घ हो तो यह शर्त $C^{\circ}>S$ बहुत कम सन्तुष्ट हो सकेगी। परन्तु यह स्पष्ट है कि $C^{\circ}>S$ की शर्त मॉडल मे आवश्यक है। यह महत्त्वपूर्ण विचार है, क्योंकि 'हैरड मॉडल की अस्थायित्वता (Instability) सम्बन्धी केन्द्रीय स्थिति' इसी पर निर्भर करती है।

5 आय के साथ-साथ बचत मे वृद्धि की प्रवृत्ति को प्रकट करने का अन्य विकल्प उपभोग विलम्बनों (Consumption Lags) के माध्यम द्वारा हो सकता है। अत. यदि हम इस मान्यता को छोड दें कि वाँछित पूंजीगत अवधि के उत्पादन पर निर्भर करती है तब भी 'अस्थायित्वता' (Instability) के प्रमाण पर कोई गहरा प्रभाव नही होगा।

6 हैरड ने G_n (Natural Growth Rate) की परिकल्पना विकास की ऐसी उच्च-दर के रूप मे की है, जिसकी अधिकतम सीमा निर्धारण श्रम-पूर्ति की उच्चतम सीमा (Ceiling) करती है। हैरड के अनुसार, श्रम-पूर्ति की इस सीमा के उपरान्त उत्पादन का विस्तार आगे नही हो सकेगा, बल्कि उत्पादन मे कमी की प्रवृत्ति पैदा होगी, किन्तु यह आवश्यक नही है। वास्तव मे, श्रम-पूर्ति की अधिकतम सीमा के आ जाने के पश्चात्, पूंजी-प्रदा अनुपात बढने लगेगा और श्रम के रोजगार मे वृद्धि न होने की स्थिति मे भी उत्पादन का विस्तार जारी रह सकता है। श्रम-पूर्ति के स्थिर रहते हुए पूंजी की मात्रा मे वृद्धि द्वारा उत्पादन का विस्तार किए जाने की सम्भावना पर नव-प्रतिष्ठापित अर्थ-शास्त्रियों (Neo-classical Economists) द्वारा विचार किया गया है। इस सम्बन्ध मे केलडोर (Kaldor) का नाम उल्लेखनीय है।

जॉन रॉबिनसन द्वारा समालोचना[1]
(A Comment by John Robinson)

1 जॉन रॉबिनसन का $G=\frac{S}{V}$ के सम्बन्ध मे मत है कि पूंजी से प्राप्त लाभ (π) S और V को प्रभावित करता है। अत विभिन्न लाभ-दरों की स्थिति में विकास-दर कोई एक न होकर अनेक हो सकती हैं।

एक विकास-दर के स्थान पर विभिन्न लाभ-दरों के अनुरूप अनेक विकास-दरों की सम्भावना का उत्तर देते हुए हैरड ने कहा है कि यद्यपि एक गतिशील सन्तुलन की अवस्था मे (In a State of Dynamic Equilibrium) एक से अधिक लाभ-दरों की सम्भावना को अस्वीकारा नही जा सकता है, तथापि हैरड इसे एक असामान्य स्थिति मानते हैं।

1 *John Robinson*: "Harrod After Twenty One Years", September 1970, Vol. LXXX, p. 731

2 जॉन रॉबिनसन के अनुसार पूरी अवधि के दौरान स्थिर रहने वाली विकास-दर अर्थात् $G=\frac{I}{K}$ होती है। हैरड के अनुसार इसका तात्पर्य है कि सीमान्त पूँजी प्रदा अनुपात, अर्थ व्यवस्था मे औसत पूँजी-प्रदा अनुपात के समान होता है किन्तु हैरड इस मान्यता को असगत मानते हुए, रॉबिसन की विकास-दर i e $G=\frac{I}{K}$ की अवधारणा को अस्वीकार करते है।

3 तीसरी आलोचना है कि हैरड मॉडल मे यह मान्यता ली गई है कि 'सम्पूर्ण शुद्ध लाभ परिवारो मे वितरित होता है।' किन्तु इस आलोचना का उत्तर देते हुए हैरड का मत है कि अपने मॉडल मे उन्होने इस प्रकार की मान्यता की कभी भी किसी प्रकार से कल्पना नही की है।

निष्कर्ष (Conclusion)

हैरड डोमर मॉडल के विश्लेषण का सारांश निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

1 स्थायी व निरन्तर विकास की समस्या मे विनियोजन की भूमिका केन्द्रीय होती है।

2. बढी हुई उत्पादन क्षमता के परिणामस्वरूप अधिक उत्पादन अथवा अधिक बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। यह स्थिति आय के व्यवहार पर निर्भर करती है।

3. आय के व्यवहार के लिए ऐसी शर्तों की कल्पना की जा सकती है, जिनके अन्तर्गत पूर्ण रोजगार की स्थिति को कायम रखा जाना सम्भव है।

4 डोमर के अनुसार, सन्तुलन-विकास-दर गुणक के आकार तथा नए विनियोग की उत्पादकता पर निर्भर करती है। यह बचत की प्रवृत्ति गुणा त्वरक के विलोम के बराबर होती है। अत यदि पूर्ण रोजगार को बनाए रखना है तो सचय ब्याज-दर से आय मे वृद्धि होना आवश्यक है।

5 व्यापार चक्रो को स्थायी आर्थिक वृद्धि के मार्ग मे एक विचलन के रूप मे विचारा गया है।

महालनोबिस मॉडल
(The Mahalanobis Model)

महालनोबिस मॉडल विकास-नियोजन (Development-planning) का एक चार क्षेत्रीय अर्थसमिति मॉडल (A Four Sector Econometric Model) है। मॉडल का निर्माण अर्थसमिति की सकाय-प्रणाली (Operational-System) द्वारा किया गया है। मॉडल मे कुछ सीमा-दशाओ (Boundary-Conditions) तथा सरचनात्मक प्राचल (Structural Parameters) व साथ ही कुछ साधन-चलो (Instrument-Variables) एव लक्ष्य-चलो (Target-Variables) के एक समूह का प्रयोग किया गया है। भारतीय अर्थ-व्यवस्था को चार क्षेत्रो मे विभाजित किया

जा सकता है—(1) विनियोग वस्तु क्षेत्र (The Investment Goods Sector), (2) फैक्ट्री उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र (The Factory Consumer Goods Sector), (3) लघु-इकाई उत्पादन क्षेत्र अथवा घरेलू उद्योग क्षेत्र (Small Unit Production Sector or House-hold Industries' Sector), तथा (4) सेवा-उत्पादन क्षेत्र (The Sector Producing Services)। इन क्षेत्रों के लिए क्रमशः K, C_1, C_2, C_3, चिह्न (Symbols) को प्रयोग में लिया गया है। आय-निर्माण (Income Formation), रोजगार-वृद्धि (Employment Generation) तथा बचत व विनियोग की विधि (The Pattern of Saving and Investment) की दृष्टि से इन क्षेत्रों में परस्पर संरचनात्मक सम्बन्धों (Structural Relations) को देखा गया है। महालनोबिस के इस चार क्षेत्रीय अर्थमिति मॉडल का निर्माण सन् 1955 में हुआ। इससे पूर्व सन् 1952 में महालनोबिस ने एक क्षेत्रीय मॉडल तथा सन् 1953 में पूँजीगत वस्तु क्षेत्र तथा उपभोग वस्तु क्षेत्र वाले द्विक्षेत्रीय मॉडल की सरचना की थी।

परिकल्पना (Hypothesis)

प्रस्तुत मॉडल में देश में अनुमानित 5,600 करोड़ की धनराशि से द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में 5% वार्षिक विकास-दर (5% Annual Growth Rate) व 11 मिलियन व्यक्तियों के लिए अतिरिक्त रोजगार की उपलब्धि की परिकल्पना की गई है। अनुमानित धन-राशि को अर्थव्यवस्था के चारों क्षेत्रों में इस प्रकार वितरित करने का प्रयास किया गया है कि प्रत्येक क्षेत्र में जन्य राष्ट्रीय आय की वार्षिक वृद्धि तथा रोजगार वृद्धि का योग क्रमशः 5% तथा 11 मिलियन अतिरिक्त व्यक्ति हो सके। इसीलिए इस मॉडल को आर्थिक विकास के मॉडल के स्थान पर आय. वितरण मॉडल (Allocation Model) की सज्ञा दी जाती है।

मॉडल का प्रारूप (Structure of the Model)

मॉडल में लिए गए चारों क्षेत्रों—विनियोग वस्तु क्षेत्र, फैक्ट्री उत्पादित उपभोग वस्तु क्षेत्र, लघु या गृह उद्योगों द्वारा उत्पादित उपभोग वस्तु क्षेत्र, तथा सेवा उत्पादन क्षेत्र, के लिए चार उत्पादन-पूँजी अनुपात (Output Capital Ratios) अथवा उत्पादकता गुणांक (Productivity Coefficient) लिए गए हैं, जिनको β's (बीटाज़्) प्रकट करते हैं, पूँजी श्रम अनुपातों (Capital Labour Ratios) के लिए θ's (थीटाज़्), वितरण प्राचलों (Allocation Parameters) के लिए λ's (लेम्बड्राज़्) का प्रयोग किया गया है, जो कुछ विनियोग का प्रत्येक क्षेत्र में अनुपात प्रदर्शित करते है। मॉडल में विभिन्न आर्थिक मात्राओं (Economic Magnitudes) के समाधान हेतु युगपद समीकरण प्रणाली (System of Simultaneous Equations) अपनाई गई है। सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के लिए कुल आय तथा कुल रोजगार के रूप में लक्ष्य चलों की मान्यता लेते हुए, दिए हुए उत्पादकता गुणांकों और पूँजी श्रम अनुपातों तथा कुल विनियोग की मात्रा की सहायता से युगपद समीकरणों द्वारा प्रत्येक क्षेत्र में जनित रोजगार व आय के अनुभागों (Components) को ज्ञात किया गया है।

मॉडल मे निम्नलिखित तत्त्व अज्ञात (Unknown) हैं—

K	C_1	C_2	C_3
γk	γ_1	γ_2	γ_3
Nk	N_1	N_2	N_3
λk	λ_1	λ_2	λ_3

जिसमे γ's (गामाज) = क्षेत्रो मे जनित आय-वृद्धि,

N's = रोजगार वृद्धि,

और λ's(लेम्बडाज) = वितरण प्राचलो (Allocation Parameters) के लिए प्रयुक्त हुए है—

मॉडल के आँकड़ो (Datas) के लिए निम्न चिह्न प्रयोग मे लिए गए हैं—

I

βk	β_1	β_2	β_3
θk	θ_1	θ_2	θ_3

जिसमे β's = उत्पादन पूंजी अनुपात, I = कुल विनियोग

θ's = पूंजी श्रम अनुपात

मॉडल के समीकरण (Equations of the Model)

मॉडल मे 11 समीकरण तथा 12वाँ अज्ञात तत्त्व है। समीकरण निम्न प्रकार है—

(1) $\gamma k+\gamma_1+\gamma_2+\gamma_3=\gamma$ (प्रथम कल्पित स्थिरांक—First Arbitrary Constant)

(2) $Nk+N_1+N_2+N_3=N$ (द्वितीय कल्पित स्थिरांक - Second Arbitrary Constant)

(3) $\gamma KI+\lambda_1 I+\lambda_2 I+\lambda_3 I=I$ (तृतीय स्थिरांक–Third Constant)

(4) $\gamma K=I\lambda K\beta K$

(5) $\gamma_1=I\lambda_1\beta_1$

(6) $\gamma_2=I\lambda_2\beta_2$

(7) $\gamma_3=I\lambda_3\beta_3$

(8) $NK=\frac{I\lambda K}{\theta K}$

(9) $N_1=\frac{I\lambda_1}{\theta_1}$

(10) $N_2=\frac{I\lambda_2}{\theta_2}$

(11) $N_3=\frac{I\lambda_3}{\theta_3}$

11 समीकरण तथा 12वाँ अज्ञात तत्त्व होने के कारण, समीकरणो की इस व्यवस्था मे एक अंश की स्वतन्त्रता (One Degree of Freedom) है। महालनोबिस ने इस स्वतन्त्रता का उपयोग निम्न समीकरण मे किया है—

(12) $\lambda K + \frac{1}{3}$ or ·33.

युगपद समीकरणों की उपरोक्त व्यवस्था में

$\begin{bmatrix} Y \\ N \\ I \end{bmatrix}$ = काल्पनिक स्थिरांक, मॉडल की सीमा-दशाओं के प्रतीक हैं। ये कुल मिलाकर लक्ष्यो (Overall Targets) को भी प्रकट करते है।

$\begin{bmatrix} \theta's \\ \beta's \end{bmatrix}$ = प्राद्योगिकी द्वारा दिए हुए संरचनात्मक प्राचल (Technologically given Structural Parameters), जिनको योजनावधि मे अपरिवर्तनशील (Unchanged) माना गया है।

λ's = वितरण प्राचल (Allocation Parameters), जिनको वास्तविक नियोजन प्राचल (Actual Planning Parameter) माना जा सकता है। ये प्राचल व्यवस्था मे दिए हुए नही होते, किन्तु व्यवस्था की प्रक्रिया मे से स्वय उभर कर प्रकट होते हैं तथा ये नियोजको द्वारा की गई अपेक्षाओ की स्थिति को दिखाते हैं।

$\begin{bmatrix} Y's \\ N's \end{bmatrix}$ = प्रमुख क्षेत्रीय लक्ष्य-चल (Vital Sectoral Target-variables) तथा मॉडल के हल के रूप मे निर्धारित होते हैं।

उपर्युक्त युगपद समीकरण व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि वितरण प्राचलो को क्या मूल्य दिए जाने चाहिए अथवा विनियोजन के लिए उपलब्ध ससाधनो को अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न चार क्षेत्रो मे किस प्रकार वितरित किया जाना चाहिए कि क्षेत्रों मे जनित आय व रोजगार-वृद्धि का कुल योग निर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप कुल आय तथा कुल रोजगार की पूर्ति कर सके। महालनोबिस के समक्ष द्वितीय पचवर्षीय योजना की अवधि मे वार्षिक विकास-दर का तथा 11 मिलियन व्यक्तियो के लिए रोजगार की उपलब्धि का प्रश्न था, जिसके समाधान हेतु उन्होने देश के साधनो का अनुमान 5,600 करोड़ रुपये प्रथम बार लगाया इसके पश्चात् सांख्यिकी विधियो से β's और θ's का मूल्य निर्धारित करते हुए, समीकरणों के हल द्वारा, अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र के लिए विनियोग का वितरण निश्चित किया।

मॉडल का संख्यात्मक हल
(Numerical Solution of the Model)

प्रो महालनोबिस ने अपने मॉडल का निम्नलिखित संख्यात्मक हल प्रस्तुत किया है—

क्षेत्र (Sectors)	प्राचल (Parameters)	
	β's	θ's
K	$\beta K = \cdot 20$	θK=20,000 रु.
C_1	$\beta_1 = \cdot 35$	θ_1=8,750
C_2	$\beta_2 = 1 \cdot 25$	θ_2= ,500
C_3	$\beta_3 = 45$	θ_3=3,750

β's व θ's को तकनीकी की स्थिति (State of Technology) निर्धारित करती है। मॉडल में विनियोग वस्तु क्षेत्र के लिए वितरण प्राचल अनुपात (λK) दिया हुआ होता है तथा शेष तीन क्षेत्रों के अनुपात λ_1, λ_2, व λ_3 उपरोक्त युगपद समीकरणों के हल द्वारा प्राप्त होते हैं।

चूंकि $\lambda K = \frac{1}{3}$ or 33 और $I = 5{,}600$ करोड़ रु दिया हुआ है, अतः दिए गए आँकड़ों के आधार पर क्षेत्र (K) में विनियोजन की मात्रा का निर्धारण निम्न प्रकार किया गया है—

$$\lambda K\, I = 33 \times 5600 = \frac{33}{100} \times 5600 = 1850 \text{ करोड़ रु}$$

इस विनियोजन के परिणामस्वरूप आय में वृद्धि निम्न प्रकार होगी—

$$YK = I\ \lambda K\ \beta K$$

$$= \frac{1850 \times 20}{100}$$

i. e. 370 करोड़ रु, जबकि क्षेत्र K में रोजगार वृद्धि निम्न प्रकार होगी—

$$NK = \lambda K\, I / \theta K$$

$$= \frac{1{,}850}{20{,}000} = 9 \text{ मिलियन या 9 लाख}$$

इसी प्रकार, योजनावधि के 5 वर्षों में अन्य क्षेत्रों की आय-वृद्धि तथा रोजगार-वृद्धि को ज्ञात किया जा सकता है। सभी क्षेत्रों के सख्यात्मक हलों को निम्नलिखित सारणी में प्रदर्शित किया गया है—

क्षेत्र (Sectors)	विनियोजन (I) (करोड़ रु)	आय वृद्धि Δy	रोजगार वृद्धि (लाखों में) ΔN
K	1850	370	9 0
C_1	980	340	11 0
C_2	1180	1470	47 0
C_3	1600	720	43 0
	5610	2900	1100

आलोचनात्मक मूल्यांकन (A Critical Appraisal)

विकास-नियोजन का महालनोबिस मॉडल 'आर्थिक वृद्धि' का एक स्पष्ट व *सुनियोजित (Clear and well arranged) ऐसा मॉडल है, जिसमें एक अर्द्ध*-विकसित देश की विकास-नीति के आवश्यक तत्त्व अन्तर्निहित हैं। मॉडल की संरचना में भारतीय सांख्यिकी संस्थान (Indian Statistical Institute) द्वारा किए गए सांख्यिकी अन्वेषणों (Statistical Investigations) के निष्कर्षों का लाभ उठाया गया है। मॉडल का मौलिक स्वरूप अर्थमिति की सकाय प्रणाली पर आधारित है। इस मॉडल का उपयोग भारत की द्वितीय पंचवर्षीय योजना में किया गया। इस प्रकार मॉडल का व्यावहारिक स्वरूप (Operational Character) होते हुए भी, इसमें अनेक कमियाँ हैं। ये कमियाँ संक्षेप में अग्रलिखित हैं—

1. अधिक सुनिश्चित नही (Not so Deterministic)—यह मॉडल अधिक सुनिश्चित नही है। किसी मॉडल की पूर्णता समीकरणों तथा अज्ञातों (Unknowns) की संख्याओ की समानता पर निर्भर करती है, किन्तु प्रस्तुत मॉडल में 11 समीकरण और 12वाँ अज्ञात है। परिणामस्वरूप, समीकरण-व्यवस्था के एक अज्ञात को काल्पनिक मूल्य दिया गया है (1. e.$\lambda K = \frac{1}{3}$ Assumed)। काल्पनिक मूल्य देने की स्वतन्त्रता की इस स्थिति में स्पष्ट है कि विभिन्न काल्पनिक मूल्यों के आधार पर भिन्न-भिन्न हल सम्भव होंगे। यह कमी मॉडल की पूर्णता अथवा सुनिश्चितता को कम करती है किन्तु साथ ही यह विशेषता नियोजकों को अपनी निजी अवधारणाओ के प्रयोग की स्वतन्त्रता प्रदान करती है (This, however, introduces the element of choice into the model)।

2 कल्पित मूल्य के लिए केवल λK ही क्यो चुना गया, अन्य अज्ञात तत्त्व क्यो नही लिए गए ? इस प्रश्न का मॉडल मे कोई उत्तर नहीं है।

3 एक अंश की स्वतन्त्रता वाले मॉडल मे अनुकूलतम हल (Optimum Solution) के लिए पूर्वनिर्धारित सामाजिक-कल्याण-फलन (A Predetermined Social Function) का होना आवश्यक है, किन्तु दुर्भाग्यवश हमारे नियोजकों के समक्ष, द्वितीय पचवर्षीय योजना के निर्माण के समय, इस प्रकार का कोई निश्चित कल्याण-फलन (Welfare Function) नही था।

4. मॉडल मे माँग-फलनो की उपेक्षा की गई है। नियोजकों की यह मान्यता है कि एक नियोजित अर्थव्यवस्था मे जो कुछ उत्पादित किया जाता है, उसका उपभोग, उपभोक्ताओ के माँग-अधिमानों (Demand Preferences) तथा विभिन्न मूल्यों के बावजूद निश्चित है। इस प्रकार की मान्यता ने मॉडल को से (Say) के नियम 'Supply has its own demand' जैसा यांत्रिक स्वरूप (Mechanistic Type) प्रदान कर दिया है।

5 एक पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था के विकास-नियोजन के दौरान बाजार तत्त्व, मनोवैज्ञानिक वातावरण, लोक-उत्साह, विशिष्ट दबाव बिन्दु (Specific Pressure Points) आदि से सम्बन्धित जो महत्त्वपूर्ण परिस्थितियाँ उत्पन्न होती है, उनकी महालनोबिस ने अपने मॉडल मे, गणितीय सरलता के लिए, उपेक्षा की है।

6 मॉडल में, विनियोजन के एकल-समरूप-कोष (Single Homogeneous Fund) का संकेत है, जिसका समरूप विनियोजन-वस्तुओ के लिए ही उपयोग किया जा सकता है, किन्तु विनियोजन-वस्तुएँ प्राय विजातीय (Heterogeneous) होती हैं, जिनके लिए विनियोजन-व्यूह (Investment Matrix) के प्रयोग की आवश्यकता है। इसलिए जहाँ व्यवस्था समरूप (Homogeneous) नही होती है, वहाँ इस मॉडल का प्रयोग, खुली अर्थव्यवस्था (Open Economy) में सम्भव नही है।

7. कृषिगत पदार्थों तथा श्रम की पूर्ति भी पूर्णतः बेलोच नही होती है। इनकी पूर्ति को मॉडल में पूर्णतः बेलोच माना गया है।

8 मॉडल मे उत्पादन-तकनीकियो को स्थिर मानना भी त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि विकास प्रक्रिया के क्रम मे उत्पादन-तकनीकियाँ, प्राय परिवर्तित होती रहती हैं।

9 सरचनात्मक प्राचलो को काल्पनिक मूल्य प्रदान किए गए हैं।

10 विनियोजन मे निजी क्षेत्र व सार्वजनिक-क्षेत्रो के अनुपातो के सम्बन्ध मे मॉडल शान्त है।

सारांश—कुछ सरचनात्मक सम्बन्धो के समूह को लेकर सकाम-प्रणाली द्वारा किसी अर्थव्यवस्था के आर्थिक ढाँचे का इस प्रकार विश्लेषण करना कि नियोजन प्रक्रिया के दौरान उपलब्ध कुल विनियोग-राशि का अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे श्रेष्ठतम वितरण किया जा सके, मॉडल की मुख्य विशेषता है। किन्तु अन्य अर्थमिति मॉडलो के समान ही इस मॉडल की भी अनेक अव्यावहारिक व काल्पनिक मान्यताओ के कारण व्यावहारिक उपयोगिता बहुत कम हो गई है। प्रस्तुत मॉडल मे आँकडो से सम्बन्धित चलो (Data Variables i e, β's and θ's) के लिए अनेक अव्यावहारिक मान्यताएँ ली गई हैं।

किन्तु फिर भी भारतीय परिस्थितियो मे, *साहसपूर्ण द्वितीय पचवर्षीय योजना* (Bold Second Five Year Plan) के निर्माण मे एक सरचनात्मक आधार विकसित करने हेतु महालनोबिस मॉडल ने रचनात्मक भूमिका सम्पादित की है। अपनी यान्त्रिक विधियो के बावजूद, अत्यधिक भ्रामक स्थिति वाले समय मे, यह मॉडल भारतीय नियोजन को एक साकार दिशा देने मे समर्थ हो सका है।

कुछ अन्य दृष्टिकोण
(Some Other Approaches)

आर्थिक विकास के सम्बन्ध में निम्नलिखित अर्थशास्त्रियो के दृष्टिकोण का अध्ययन भी उपयोगी है—

(1) नर्कसे (Nurkse)
(2) रोडन (Rodan)
(3) हर्शमैन (Hirschman)
(4) मिन्ट (Myint)
(5) लेबेन्स्टीन (Leibenstein)

नर्कसे का दृष्टिकोण (Approach of Nurkse)

प्रो रेगना नर्कसे ने अपनी पुस्तक Problems of Capital Formation in Under-developed Countries' मे अर्द्ध-विकसित देशो मे पूँजी के महत्त्व, पूँजी निर्माण, सन्तुलित विकास आदि से सम्बन्धित विषयो एव छिपी हुई बेरोजगारी और उसके द्वारा पूँजी निर्माण के सम्बन्ध मे विचार प्रकट किए हैं।

प्रो नर्कसे के विकास सम्बन्धी विचारो का सारांश यह है कि अर्द्ध-विकसित अथवा अल्प विकसित देश आर्थिक विषमता से ग्रस्त हैं, इस विषमता को दूर करने के लिए *सन्तुलित विकास* (Balanced Growth) आवश्यक है और यह सन्तुलित विकास तभी सम्भव है जब अतिरिक्त जन शक्ति का प्रयोग करके पूँजी प्राप्त को

जाए। प्रो. नर्कसे के अनुसार "अर्द्ध-विकसित देशों में पूँजी की मात्रा बहुत कम होती है।" ये देश अपनी राष्ट्रीय आय का 5 से 8% तक ही बचा पाते है। इसके विपरीत विकसित देशों मे बचत की मात्रा कुल राष्ट्रीय आय की 10 से 30% तक होती है। अर्द्ध-विकसित देशों मे इस शोचनीय स्थिति का मुख्य कारण है बचत की पूर्ति की भी कमी रहती है और बचत की माँग की भी कमी रहती है। बचत की पूर्ति की कमी इसलिए रहती है क्योकि प्राय उसकी माँग कम होती है। इस प्रकार माँग इसलिए कम होती है क्योकि उसकी पूर्ति कम होती है। यह आर्थिक विषमता का चक्र (Vicious circle) निरन्तर चलता रहता है जो अर्द्ध-विकसित देशों को आर्थिक विकास की ओर अग्रसर नही होने देता। प्रो. नर्कसे के अनुसार. "आर्थिक दुष्चक्र की प्रक्रिया मे कम पूँजी के कारण विनियोजन कम होता है। फलस्वरूप उत्पादकता कम होती है। कम उत्पादकता के कारण लाभ कम होता है, परिणामस्वरूप, उत्पादन कम होता है। उपरोक्त उत्पादन से रोजगार के अवसर कम रहते हैं और इसीलिए आय कम होती है। परिणामत बचत कम होती है और पूँजी-निर्माण भी कम होता है।"

प्रो नर्कसे ने अर्द्ध-विकसित देशों की इस आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए सन्तुलित विकास पर बहुत बल दिया है। उनका सबसे अधिक आग्रह कृषि-क्षेत्रो की अतिरिक्त जन-शक्ति (Surplus Man-power) को अन्य पूँजीगत परियोजनाओं मे नियोजित करके प्रभावपूर्ण बचत (Effective Saving) और पूँजी निर्माण की अभिवृद्धि पर है। नर्कसे के कथनानुसार "कृषि करने की तकनीक को अपरिवर्तित रखते हुए भी कृषि उत्पादन में कमी किए बिना, कृषि मे नियोजित जनसख्या का बहुत बडा भाग कृषि क्षेत्र से हटाया जा सकता है।.........वहाँ समान कृषि उत्पादन बिना तकनीक मे परिवर्तन किए हुए कम श्रम-शक्ति से भी प्राप्त किया जा सकता है।" किन्तु नर्कसे की यह मान्यता है कि इस अनउत्पादक श्रम-शक्ति को उत्पादक श्रम-शक्ति मे बदलने की समस्त प्रक्रिया की वित्त-व्यवस्था स्वय इसमे से ही की जानी चाहिए। ऐसा होने पर ही देश मे बचत और पूँजी-निर्माण की मात्रा मे वृद्धि हो सकेगी। इसलिए नर्कसे ने ग्रामीण छिपी हुई बेरोजगारी (Disguised Unemployment) को छिपी हुई बचत की सम्भावनाएँ (D sguised Saving Potential) माना है। इस प्रकार उन्होने अर्द्ध-विकसित देशो की अप्रयुक्त जन-शक्ति के उपयोग द्वारा पूँजी-निर्माण पर बल देकर इन देशो के आर्थिक विकास पर जोर दिया है।

सन्तुलित विकास का विचार
(Concept of Balanced Growth)

प्रो. नर्कसे ने आर्थिक विकास के लिए सन्तुलित विकास पद्धति का प्रतिपादन किया है। उनके मतानुसार, "अर्द्ध-विकसित देशों में निर्धनता का विषैला चक्र (Vicious circle) व्याप्त रहता है जो आर्थिक विकास को अवरुद्ध करता है। यदि इस दूषित चक्र को किसी प्रकार दूर कर दिया जाए, तो देश का आर्थिक विकास

सम्भव हो सकेगा। निर्धन देशो मे निर्धनता का यह चक्र माँग और पूर्ति दोनो ओर से क्रियाशील रहता है। पूर्ति पहलू से विचार करें तो वास्तविक आय की कमी के कारण बचाने की क्षमता कम होती है। आय की कमी का कारण निम्न उत्पादकता और निम्न उत्पादकता का कारण पूँजी की स्वल्पता होती है। पूँजी की कमी बचत के नीचे स्तर का परिणाम होती है। यदि माँग पहलू से विचार करें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि आय की कमी के कारण क्रय की क्षमता भी सीमित होती है। इससे माँग कम होती है।" परिणामस्वरूप, उत्पादको मे विनियोग करने का कम उत्साह होता है। अर्थव्यवस्था की उत्पादकता विनियोजित पूँजी पर निर्भर करती है। विनियोगो की कमी के कारण उत्पादन और आय का स्तर कम होता है। पुन वही चक्र प्रारम्भ होता है। इस प्रकार इन दूषित चक्रो के कारण, अर्द्ध विकसित देशो के विकास मे बाधाएँ उपस्थित होती हैं।

आर्थिक विकास के लिए इस विषैले चक्र को दूर करना आवश्यक है। विनियोग सम्बन्धी व्यक्तिगत निर्णयो द्वारा सीमित क्षेत्रो मे अल्प मात्रा मे किए गए विनियोग से समस्या का समाधान नही हो सकता है प्रो नर्कसे के मतानुसार, 'विषैले चक्रो को दूर करने के लिए विभिन्न उद्योग विस्तृत रूप से एक साथ आरम्भ किए जाने चाहिए जो एक दूसरे के लिए विस्तृत बाजारो की स्थापना करेंगे और एक दूसरे के पूरक होंगे।" उनके अनुसार समस्या का हल इस बात म निहित है कि "व्यापक क्षेत्र मे विभिन्न उद्योगो म एक साथ पूँजी लगाई जाए और बहुत से उद्योगो को एक साथ विकसित किया जाए, ताकि सभी एक दूसरे के ग्राहक बन सकें और सभी का माल बिक सके।" प्रो नर्कसे रोजन्स्टेन रोडन (Rosenstein Rodan) के जूते के प्रसिद्ध कारखाने का उदाहरण देकर सन्तुलित विकास की आवश्यकता पर बल देते है। मानलो एक जूते का कारखाना स्थापित किया जाता है। इससे इसमे काम करने वाले श्रमिको, पूँजीपतियो और नियोजको को आय प्राप्त होगी किन्तु वे समस्त आय जूतो को खरीदने के लिए ही तो नही व्यय करेंगे। व अन्य वस्तुएँ भी क्रय करेंगे। इसी प्रकार साथ ही इस उद्योग के श्रमिक ही सारे जूते नही खरीद सकते। दूसरे उद्योगो के श्रमिक ही तो अतिरिक्त जूते खरीदेंगे। यदि अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रो या उद्योगो का विकास नहीं किया जाएगा तो यह कारखाना असफल हो जाएगा। अत यह कठिनाई एक साथ ही अनेक पूरक उद्योगो की स्थापना करने से हल हो सकती है। जो एक दूसरे के ग्राहक बन जाते हैं। इस सम्बन्ध मे प्रो नर्कसे ने लिखा है कि "अधिकांश उद्योग जो जन-उपभोग के लिए उत्पादन करते हैं इस अर्थ मे पूरक होते हैं कि वे एक दूसरे के लिए बाजार की व्यवस्था करके परस्पर सहारा देते हैं।" उनके अनुसार शारीरिक विकास के लिए सन्तुलित आहार (Balanced diet) जिस प्रकार आवश्यक है उसी प्रकार अर्थव्यवस्था के लिए सन्तुलित विकास (Balanced Growth) पद्धति आवश्यक है।

प्रो नर्कसे ने सन्तुलित विकास की धारणा का अकुर जे बी से (J B Say) के इस कथन से प्राप्त किया है कि पूर्ति अपनी माँग स्वय बना लेती है (Supply

creates its own demand)। उन्होंने इस नियम सम्बन्धी जे. एस मिल की व्याख्या को उद्धृत किया है कि "प्रत्येक प्रकार की उत्पादन वृद्धि यदि निजी हित द्वारा निर्देशित अनुपात मे सब प्रकार की उत्पत्ति मे गलत गणना के बिना विभाजित की जाए तो न केवल स्वय अपनी माँग का निर्माण कर लेती है, बल्कि उसे अपने साथ रखती है।" लेकिन किसी व्यक्तिगत उद्यमी द्वारा किसी विशिष्ट उद्योग में बड़ी मात्रा मे लगाई गई पूँजी बाजार के छोटे आकार के कारण लाभहीन हो सकती है। किन्तु विभिन्न उद्योगो मे व्यापक क्षेत्र मे एक साथ सुव्यवस्थित रूप से पूँजी विनियोग से बाजारो के आकार का विस्तार होता है और इससे आर्थिक कुशलता के सामान्य स्तर मे सुधार होता है। अत विभिन्न उद्योग विस्तृत रूप से एक साथ आरम्भ किए जाने चाहिए और विभिन्न प्रकार के उद्योगो मे पूँजी विनियोग की लहर (a wave of capital investments in a number of different industries) उठनी चाहिए। ऐसे होने पर उद्योग एक दूसरे के पूरक होंगे, जिससे विस्तृत बाजारों की स्थापना होगी और तीव्रता से आर्थिक विकास होगा। इसे ही नर्कसे ने 'सन्तुलित विकास' का नाम दिया है। अत. 'सन्तुलित विकास' का आशय उत्पादन-क्रियाओ मे विभिन्न प्रकार के सन्तुलन से है। यह सन्तुलन दो प्रकार का हो सकता है—प्रथम सम्मुखी (Forward) एव द्वितीय विमुखी (Backward)। सम्मुखी सन्तुलन के अनुसार कृषि-उत्पादन मे वृद्धि के साथ-साथ उन उद्योगो मे भी विस्तार आवश्यक है जो इसके अतिरिक्त उत्पादन को चाहेगे। विमुखी सन्तुलन के अनुसार यदि किसी उद्योग का विस्तार करना है तो इस उद्योग के सचालन के लिए आवश्यक कच्चा माल, ईंधन, यन्त्रोपकरण आदि से सम्बन्धित उद्योगो का भी विकास किया जाना चाहिए।

सन्तुलित विकास के प्रभाव—सन्तुलित विनियोग से आर्थिक विकास पर अच्छा प्रभाव पडता है। इसके साथ ही सन्तुलित विकास के कारण बाह्य मितव्ययिताओं (External economies) मे वृद्धि होती है। मितव्ययिताएँ दो प्रकार की होती हैं, प्रथम, क्षैतिजीय मितव्ययिताएँ (Horizontal economies) एव द्वितीय, उद्ग्रीय मितव्ययिताएँ (Vertical economies)। विस्तृत आकार-प्रकार वाले विभिन्न उद्योगो मे बडे पैमाने पर पूँजी विनियोग से उद्योगो का उद्ग्रीय और क्षैतिग्रीय एकीकरण सम्भव होता है और इससे भी दोनो प्रकार की मितव्ययिताओ का निर्माण होता है। श्रम के अधिक अच्छे विभाजन, पूँजी, कच्चे माल और तकनीकी कुशलता का सामूहिक प्रयोग, बाजारो का विस्तार तथा आर्थिक और सामाजिक ऊपरी पूँजी (Economic and Social overhead capital) का अधिक अच्छा और सामूहिक उपयोग आदि के कारण भी उत्पादक इकाइयो को लाभ होता है।

सन्तुलन के क्षेत्र—प्रो. नर्कसे द्वारा प्रतिपादित, सन्तुलित विकास का यह सिद्धान्त विकास प्रक्रिया मे अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे सन्तुलन की आवश्यकता पर बल देता है। कृषि और उद्योगो के विकास मे समुचित सन्तुलन रखा जाना चाहिए, क्योंकि ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इसी प्रकार अर्थ-व्यवस्था के घरेलू

क्षेत्र (Domestic Sector) और विदेशी क्षेत्र (Foreign Sector) में भी सन्तुलन स्थापित किया जाना चाहिए। विकास की वित्त-व्यवस्था मे निर्यात-आय (Export earnings) महत्त्वपूर्ण है। अत घरेलू क्षेत्र के साथ-साथ निर्यात क्षेत्र मे पूँजी-विनियोग किया जाना चाहिए। प्रो नर्क्से के अनुसार "सन्तुलित विकास अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अच्छा आधार है।" उनके विचार से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढाने के लिए यातायात सुविधाओ मे सुधार, उनकी लागत मे कमी, तटकर बाधाओ की समाप्ति और मुक्त व्यापार क्षेत्रो का विकास किया जाना चाहिए। इससे विकासशील देश परस्पर एक दूसरे के लिए बाजारो का कार्य करेंगे और उनका विकास होगा। कृषि और उद्योगो घरेलू और निर्यात क्षेत्रो के सन्तुलित विकास के समान ही भौतिक-पूँजी और मानवीय पूँजी मे साथ-साथ विनियोग किया जाना चाहिए। दोनो के सन्तुलित विकास के प्रयत्न किए जाने चाहिए क्योकि 'भौतिक पूँजी' में विनियोग तब तक व्यर्थ रहेगा जब तक कि उसके सचालन के लिए जनता शिक्षित और स्वस्थ न हो। इसी प्रकार, प्रत्यक्ष उत्पादन क्रियाओ और आर्थिक तथा सामाजिक ऊपरी सुविधाओ मे भी सन्तुलित विनियोग किया जाना चाहिए। इस प्रकार, नर्क्से ने तीव्र आर्थिक विकास हेतु सन्तुलित विकास की शैली का प्रतिपादन किया है जिसके अनुसार "अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे तथा एक उद्योग का विकास करने के लिए उससे सम्बन्धित अन्य उद्योगो मे एक साथ विनियोग किया जाना चाहिए।" कुछ क्षेत्रो या उद्योगो पर ही ध्यान देने से अन्य उद्योग 'अल्प विकसित सन्तुलन' से ग्रस्त रहेंगे और विकास मे बाधाएँ उपस्थित होगी। प्रो ए डब्ल्यू लेविस के अनुसार, "विकास कार्यक्रमो मे अर्थ-व्यवस्था के सभी क्षेत्रो का एक साथ विकास होना चाहिए ताकि उद्योग और कृषि के मध्य तथा घरेलू उपभोग के लिए उत्पादन और निर्यात के लिए उत्पादन मे उचित सन्तुलन रखा जा सके।"

सरकार एव सन्तुलित विकास– अर्द्ध-विकसित देशो मे निजी उपक्रम के द्वारा व्यापक क्षेत्र मे विभिन्न परियोजनाओ मे पूँजी विनियोग की लहर का एक साथ सचार किया जाना दुष्कर कार्य है। इसलिए सन्तुलित विकास मे राज्य द्वारा विकास प्रक्रिया के आयोजन, निर्देशन एव समन्वय के लिए पर्याप्त स्थान है। सरकार से यह आशा की जाती है कि वह उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रो मे एक साथ विनियोजन का आश्वासन दे। अत सन्तुलित विकास के लिए केन्द्रीय नियोजन आवश्यक होना चाहिए। किन्तु नर्क्से के अनुसार, "सन्तुलित विकास के लिए केन्द्रीय आर्थिक नियोजन अनिवार्य नही है। सरकारी नियोजन के पक्ष मे कई महत्त्वपूर्ण कारण है, लेकिन सन्तुलित विकास उनमे से कोई कारण नही है।"

नर्क्से की यह भी मान्यता है कि निजी उपक्रम द्वारा भी वाँछनीय प्रभाव कुछ प्रेरणाओ और प्रोत्साहन से प्राप्त किए जा सकते हैं। उन्होंने बतलाया है कि सामान्य मूल्य प्रेरणाओ द्वारा अल्प अश मे सन्तुलित विकास किया जा सकता है किन्तु बढती हुई जनसख्या की बढती हुई आवश्यकताओ के साथ सन्तुलित विकास का नीचा स्तर भी सह-विस्तार को प्राप्त कर लेता है। प्रारम्भिक विनियोग के मौद्रिक एव अन्य

प्रभावो के द्वारा विभिन्न उद्योगों मे पूँजी-विनियोग की नई लहर दौड़ाई जा सकती है। इस प्रकार प्रो नर्कसे का सन्तुलित-विकास का सिद्धान्त निजी उपक्रम वाली अर्थ-व्यवस्था मे लागू होता है। उनके सिद्धान्त मे बाजार विस्तार, बाह्य मितव्ययिताओं और मूल्य प्रेरणाओं द्वारा ही संतुलित विकास पर बल दिया गया है। उनके मतानुसार, *"आवश्यक विनियोग के लिए सार्वजनिक या निजी क्षेत्र का उपयोग प्रधानतः* प्रशासकीय कुशलता का प्रश्न है।"

नर्कसे के विचारों की आलोचना—नर्कसे के सन्तुलित विकास के विचारो की हर्षमैन, सिंगर, कुरिहारा आदि ने निम्न आधारो पर आलोचनाएँ की हैं—

1 सन्तुलित *विकास के अन्तर्गत बहुत-सी उत्पादन* इकाइयो *या* अनेक उद्योगों का एक साथ विकास करने के लिए बड़ी मात्रा मे पूँजी, तकनीकी ज्ञान, प्रबन्ध कुशलता आदि की आवश्यकता होगी। अर्द्ध-विकसित देशो में एक साथ प्रयोग के लिए इन साधनो का अभाव होता है। ऐसी स्थिति मे, इन उत्पादन इकाइयों की स्थापना से, इनकी मौद्रिक और वास्तविक लागत मे वृद्धि होगी और उनका मितव्ययतापूर्वक सचालन कठिन हो जाएगा।

2 प्रो किन्डल बर्जर के अनुसार, नर्कसे के विकास प्रारूप (Model) में नए उद्योगों की स्थापना की अपेक्षा वर्तमान उद्योगो मे लागत कम करने की सम्भावनाओं पर ध्यान नही दिया गया है।

3 नर्कसे ने विभिन्न उद्योगों को परिपूरक माना है, किन्तु हँस सिंगर (Hans Singer) के अनुसार ये परिपूरक *न होकर प्रतिस्पर्द्धी होते हैं।* जैसा कि जे मारकस फ्लेमिंग (J. Marcus Flemming) ने लिखा है—"जहाँ सन्तुलित विकास के सिद्धान्त मे यह माना जाता है कि उद्योगों के मध्य अधिकाँश सम्बन्ध *परिपूरक हैं साधनों की पूर्ति की सीमाएँ प्रकट करती हैं कि यह* सम्बन्ध अधिकतर प्रतिस्पर्द्धात्मक है।"

हर्षमैन (Hirschman) के अनुसार "सन्तुलित विकास का सिद्धान्त विकास सिद्धान्त के रूप मे असफल है।" विकास का आशय, एक प्रकार की अर्थ-व्यवस्था से अन्य प्रकार की और उन्नत अर्थ-व्यवस्था मे परिवर्तन की प्रक्रिया से है, किन्तु 'सन्तुलित विकास' का आशय एक पूर्णरूप से नई और स्वय सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था की ऊपर से स्थापना से है। हर्षमैन के मतानुसार, "यह विकास नही है, यह तो किसी पुरानी वस्तु पर नई वस्तु की कलम लगाना भी नही है। यह तो आर्थिक विकास का पूर्णरूप से द्वैध तरीका है।"

4 अर्द्ध-विकसित देशो मे उत्पादन के साधन अनुपात मे नही होते। कुछ देशो मे श्रम अत्यधिक है *तथा* पूँजी एवं साहसी कुशलता की कमी है। कुछ देशो मे श्रम और पूँजी दोनो की कमी है किन्तु अन्य साधन पर्याप्त मात्रा मे हैं। सन्तुलित विकास की धारणा को व्यावहारिक रूप देने मे ऐसी स्थिति बड़ी बाधक है।

5. सन्तुलित *विकास का सिद्धान्त इस मान्यता के आधार पर चलता है कि* अर्द्ध-विकसित देश बहुत ही प्रारम्भिक स्थिति से विकास आरम्भ करते हैं। किन्तु

वस्तुत. ऐसा नही होता । वास्तव मे प्रत्येक अर्द्ध विकसित राष्ट्र एक ऐसी अवस्था से विकास की शुरूआत करता है, जहाँ पूर्व-विनियोग या पूर्व-विकास की छाया विद्यमान रहती है । ऐसी स्थिति मे विनियोग के कुछ ऐसे वाँछित कार्यक्रम होते हैं, जो स्वय सन्तुलित नहो होते, किन्तु जो वर्तमान असन्तुलन के पूरक के रूप में असन्तुलित विनियोग का स्वरूप ग्रहण करते हैं ।

6 कुरिहारा के अनुसार, "सन्तुलित विकास निजी उपक्रम को प्रोत्साहित करने के लिए वाँछनीय नही है किन्तु जहाँ तक अर्द्ध-विकसित देशो का सम्बन्ध है, यह स्वय इसके लिए ही वाँछनीय है । नर्कसे की अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था के सीमित बाजार और निम्न वास्तविक आय द्वारा निजी व्यक्तियो की विनियोग की प्रेरणा को बाधा पहुँचाने की शिकायत अनावश्यक होगी यदि क्षमता-विस्तारक और आय-उत्पादक प्रकृति के स्वशासी सार्वजनिक विनियोग को महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने दी जाएगी ।"

7 सन्तुलित विकास के लिए विभिन्न क्षेत्रो मे विनियोग के लिए बडी मात्रा मे साधन होने चाहिए । किन्तु अर्द्ध विकसित देशो के साधन सीमित होते है यदि इन थोडे से साधनो को ही विभिन्न और अधिक क्षेत्रो मे फैलाया जाएगा, तो उनमे वाँछनीय गति नही आ पाएगी और सम्भव है कि किसी भी क्षेत्र मे प्रगति नही हो पाए तथा साधनो का अपव्यय हो । अत सन्तुलित विकास का सिद्धान्त इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—"एक सौ पुष्प भी उस भूमि पर उग सकते है जहाँ पोषक तत्त्वो के अभाव मे एक पौधा भी मुर्झा सकता है ।" डॉ हस सिगर के अनुसार, " सन्तुलित विकास की नीति को अपनाने के लिए जिन साधनो की आवश्यकता होती है उनकी मात्रा इतनी अधिक होती है कि उनको जुटाने वाले देश वास्तव मे अर्द्ध विकसित नही हो सकते ।" इसीलिए उन्होने इन देशो के लिए 'Think B g' को तो उचित बतलाया है, किन्तु 'Act Big' के सुझाव को अबुद्धिमतापूर्ण बतलाया है ।

8 सन्तुलित विकास के लिए केन्द्रीय नियोजन, निर्देशन आदि आवश्यक हैं, जिसका अर्द्ध विकसित देशो के विकास मे पर्याप्त महत्त्व है । नर्कसे ने सन्तुलित विकास के लिए इस बात को पूर्णरूप से नही स्वीकारा है ।

9 नर्कसे का सन्तुलित विकास का सिद्धान्त वस्तुत विकसित देशो के *मन्दजाद साम्य (Slump Equilibrium) की स्थिति की ही व्याख्या करता है, किन्तु* अर्द्ध-विकसित देशो म अर्द्ध-विकास साम्य की स्थिति होती है और यह उसकी *व्याख्या नही करता है ।*

वस्तुत सन्तुलित विकास का सिद्धान्त कीन्स के व्यापार चक्र के सिद्धान्त का ही परिवर्तित रूप है । कीन्स के इस सिद्धान्त के अनुसार, "एक साथ बहुमुखी विनियोग से आर्थिक क्रियाओ मे सन्तुलित पुनरुत्थान (Balanced Recovery) लाया जा सकता है क्योकि वहाँ उद्योग, मशीने, प्रबन्धक, श्रमिक तथा उपभोग की आदतें आदि सब कुछ प्रभावपूर्ण माँग की कमी के कारण अस्थायी रूप से स्थगित

कार्यों को पुन संचालित करने की प्रतीक्षा मे विद्यमान होते हैं।" किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो मे समस्या माँग की कमी नही, साधनो के अभाव की होती है, जिसके कारण व्यापक विनियोग दुष्कर होता है।

10 विभिन्न देशो के आर्थिक विकास का इतिहास भी यही स्पष्ट करता है कि इनमे आर्थिक विकास का स्वरूप असन्तुलित ही रहा है। इगलैंड मे सर्वप्रथम, वस्त्र-उद्योग, अमेरिका मे रेलो और जापान मे लोहा एव इस्पात उद्योगों का विकास हुआ, जिससे अन्य उद्योगो के विकास को बल मिला। जे. आर टी. हेग के अनुसार, "सन्तुलित विकास अन्तिम परिणाम था, जो नवीन क्रियाओं के नवीन उत्थान, पतन तथा परिवर्तनीय साधनो के सयोग द्वारा उत्पादित तथा घोषित हुआ। यह एक ऐसी घटना नही है जो परस्पर पोषक क्षेत्रों (Mutually Supporting Sectors) के एक साथ बहुमुखी विस्तार के फलस्वरूप उत्पन्न हुई हो।"

रोजेन्स्टीन रोडान की विचारधाराएँ
(Approach of Roseinstein Rodan)

रोजेन्स्टीन रोडान ने भी सन्तुलित विकास का समर्थन किया है, परन्तु वे चाहते हैं कि यह सन्तुलित विकास-पद्धति 'बड़े धक्के' (Big Push) के रूप में अपनाई जाए। 'बडे धक्के के सिद्धान्त' (Theory of Big Push) के अनुसार स्थिर अर्थ-व्यवस्था (Stagnant Economy) की प्रारम्भिक जड़ता को समाप्त करने के लिए और इसे उत्पादन तथा आय के उच्च स्तरों की ओर बढने के लिए न्यूनतम प्रयत्न या 'बडे धक्के' (Big Push) की आवश्यकता है। यह बड़ा धक्का तब होता है, जब एक साथ ही विभिन्न प्रकार की कोई पूरक परियोजनाओं को प्रारम्भ किया जाए।

रोडान के मतानुसार, "अर्द्ध-विकसित अथवा अल्प-विकसित देशो मे आर्थिक व सामाजिक ऊपरी सुविधाओं (Social and Economic overheads) की नितान्त कमी होती है जिनकी पूर्ति करने की न तो निजी साहसियो में क्षमता होती है और न ही इच्छा।" अतः राज्य को चाहिए कि वह इन ऊपरी सुविधाओ (Social and Economic overheads) अर्थात् यातायात, संचार, शक्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंक, ट्रेनिंग आदि मे अधिक मात्रा मे धन लगाए और इस प्रकार निजी विनियोजकों तथा औद्योगीकरण के इच्छुक लोगो को उद्योग खोलने की प्रेरणाएँ और सुविधाएँ प्रदान करे। प्रो रोडान के अनुसार, अर्द्ध-विकसित देशो मे धीरे-धीरे विकास करने की पद्धति अपनानी ठीक नही है। इन देशों में वास्तविक विकास तो केवल 'बडे धक्के' (Big Push) से ही सम्भव है क्योकि तभी हम 'उत्पादन की बाह्य मितव्ययता' अथवा उत्पत्ति वृद्धि के नियम के लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

"यदि विकास की किसी भी आयोजना में सफल होना है तो इसके लिए एक न्यूनतम मात्रा में विनियोजन आवश्यक होगा। किसी देश को स्वयं स्फूर्त विकास की स्थिति में पहुँचने के लिए प्रयत्न करना भूमि से हवाई जहाज के उठने के समान है। हवाई जहाज को नभ मे उडान के लिए एक निश्चित गति पकडना आवश्यक है। धीरे-धीरे बढने से काम नहीं चल सकता। इसी प्रकार विकास कार्यक्रम को

सफल बनाने और अर्थ-व्यवस्था को स्वय स्फूर्त दशा मे पहुँचने के लिए बडे धक्के के रूप से एक निश्चित मात्रा मे समस्त क्षेत्रो मे विनियोजन अनिवार्य है।"

"विकास की बाधाओ को लगने के लिए बडा धक्का ही आवश्यक है। एक निश्चित न्यूनतम मात्रा से कम मात्रा मे उत्साह और कार्य से काम नही चल सकता। छोटे-छोटे और यदा-कदा किए जाने वाले प्रयत्नो से विकास सम्भव नही हो सकता। विकास का वातावरण तभी उत्पन्न होता है जब एक न्यूनतम मात्रा का विनियोजन एक न्यूनतम गति से किया जाए।"

प्रो. रोडान के 'बडे धक्के के सिद्धान्त' के पक्ष मे प्रमुख तर्क अर्द्ध-विकसित देशो मे बाह्य मितव्ययताओ के अभाव पर आधारित है। बाह्य मितव्ययताओ का आशय उन लाभो से है जो समस्त अर्थ-व्यवस्था या कुछ क्रियाओ या उपक्रमो को मिलते हैं किन्तु जो विनियोक्ता इकाइयो को प्रत्यक्ष रूप मे कोई प्रत्याय (Returns) नही देते है। पूर्ति की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बाह्य मितव्ययताएँ यातायात, शक्ति आदि के रूप मे सामाजिक ऊपरी सुविधाएँ (Social overhead facilities) है, जो अन्य क्षेत्रो मे भी विनियोग के अवसर बढाते हैं। रोजेन्स्टीन रोडान ने निम्नलिखित तीन प्रकार से बाह्य मितव्ययताओ और अविभाज्यताओ (Indivisibilities) मे भेद किया है—

(i) उत्पादन-कार्य मे विशेष रूप से सामाजिक ऊपरी पूँजी की पूर्ति मे अविभाज्यता (Indivisibility of production function, specially in the supply of social overhead capital)

(ii) माँग की अविभाज्यता या माँग की पूरक प्रकृति (Indivisibility of demand or the complementary character of demand)

(iii) बचत की पूर्ति मे अविभाज्यता (Indivisibility in the supply of savings)

सामाजिक ऊपरी पूँजी की पूर्ति की अविभाज्यता स्वाभाविक है, क्योकि इसका न्यूनतम आकार आवश्यक रूप से ही बडा (necessarily large minimum size) होता है। उदाहरणार्थ, आधी रेल लाइन निर्माण से कोई लाभ नही होगा, अत पूरी रेल लाइन के निर्माण के लिए आवश्यक मात्रा मे विनियोग करना अनिवार्य है। साथ ही, इस प्रकार का विनियोग प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ के पूर्व होना चाहिए। निर्यात के लिए कृषि क्षेत्र के विकास के लिए विनियोग तब तक नही किया जाएगा जब तक कि खेतो से बन्दरगाहो पर कृषि-उपज को पहुँचाने के लिए सडक का निर्माण नही कर दिया जाता। रोजेन्स्टीन रोडान का माँग की अविभाज्यता का विचार इस तथ्य पर आधारित है कि एकाकी विनियोग परियोजना को बाजार की कमी की भारी जोखिम को उठाना पड सकता है। इसके विपरीत, यदि कोई पूरक परियोजनाओ को एक साथ प्रारम्भ किया जाता है तो वे एक दूसरे के लिए बाजार प्रस्तुत कर देते है और उनके असफल होने की सम्भावना नही रहती है। रोजेन्स्टीन रोडान इस बात को एक जूते के कारखाने के उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते

हैं। मानलो कि एक स्थैतिक और बन्द अर्थ-व्यवस्था मे एक जूतों का कारखाना *स्थापित किया जाता है जिसमे 100 श्रमिकों को जो पहले अर्द्ध-नियोजित थे,* काम पर लगाया जाता है। उनको दी जाने वाली मजदूरी उनकी आय होगी किन्तु इसका बहुत थोड़ा भाग ही जूतो को खरीदने मे व्यय किया जाएगा। ऐसी अर्थ-व्यवस्था मे क्योकि अतिरिक्त क्रय-शक्ति का कोई साधन नही है और निर्यात की भी कोई सम्भावना नही है, बाकी बचे हुए जूतो की बिक्री नहीं हो पाएगी और कारखाना असफल हो जाएगा। किन्तु स्थिति उस समय एकदम भिन्न और अधिक अच्छी होगी यदि एक नही अपितु 10,000 पहले के अर्द्ध-नियोजित श्रमिको को काम पर लगाने वाले 100 कृषि और औद्योगिक उपक्रम स्थापित किए जाएँ जिनमे अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्र की तुलना में उत्पादकता के उच्च स्तर पर विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ उत्पन्न की जाएँ। ऐसी स्थिति मे उत्पन्न की गई अतिरिक्त आय अतिरिक्त उत्पादन को खरीदने के काम म लाई जा सकेगी और कुल विनियोगो की सफलता सुनिश्चित हो जाएगी।

'बडे धक्के के सिद्धान्त' के सन्दर्भ मे तीसरी अर्थात् 'बचत की पूर्ति' की अविभाज्यता की धारणा का उदय इस बात से होता है कि विशाल न्यूनतम विनियोग कार्यक्रमो की वित्त-व्यवस्था के लिए ऊँची न्यूनतम बचत अनिवार्य है। रोजेन्स्टीन रोडान के मतानुसार "आय के नीचे स्तर वाली अर्द्ध-विकसित अवस्थाओ मे बचत की ऊँची दरो को प्राप्त करने का एक मात्र तरीका विनियोगो मे वृद्धि ही है जिसे इन देशो मे यहाँ के अविकसित और अप्रयुक्त जन-शक्ति तथा अन्य साधनो को गतिशील बना कर ही प्राप्त किया जा सकता है।"

इस प्रकार उपरोक्त अविभाज्यताओ का पूरा लाभ उठाने और बाह्य-मितव्ययताओ से लाभान्वित होने के लिए विशाल मात्रा मे विभिन्न क्षेत्रो मे पूँजी विनियोग करना चाहिए, अर्थात् अर्थ-व्यवस्था को 'बड़ा धक्का' विकास की ओर लगाना चाहिए। प्रो नर्कसे ने भी रोजेन्स्टीन रोडान को उपरोक्त अविभाज्यताओ के आधार पर ही सतुलित विकास की पद्धति का समर्थन किया है। बड़े धक्के के सिद्धान्त मे सस्थागत परिवर्तन पर भी जोर दिया गया है। किन्तु इस सिद्धान्त को भी पूर्ण नही माना गया है। अर्द्ध-विकसित देशो के औद्योगीकरण और आर्थिक विकास के कार्यक्रम मे 'बड़ा धक्का' (Big push) लगना बडा कठिन है क्योंकि, इन देशो के साधन अत्यल्प होते हैं। इसके अतिरिक्त सतुलित विकास के सिद्धान्त के विरुद्ध जो आलोचनाएँ की जाती हैं वे सामान्यतया इस सिद्धान्त पर भी लागू होती हैं।

हर्षमैन की विचारधारा (Approach of Hirschman)

असतुलित विकास की शैली—नर्कसे की संतुलित विकास की शैली के विपरीत, ए. ओ. हर्षमैन (A. O. Hirschman) ने आर्थिक विकास के लिए *असंतुलित विकास की शैली को अपनाने का सुझाव दिया है।* हर्षमैन के 'असंतुलित विकास के सिद्धान्त' के अनुसार "अर्थ-व्यवस्था के सभी क्षेत्रो में विनियोजन नही

करके कुछ ऐसे चुने हुए क्षेत्रो मे सीमित साधनो का उपयोग किया जाता है जिससे उसका प्रभाव अन्य क्षेत्रो पर भी पड़ता है और धीरे-धीरे सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था मे क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा शृङ्खलाबद्ध विधि द्वारा आर्थिक विकास होता है अर्द्ध-विकसित देशो मे साधनो का अभाव रहता है और यह सम्भव नही होता कि बहुमुखी विकास के लिए सभी क्षेत्रो मे विशाल मात्रा मे इन साधनो का विनियोजन कर सकें। इसके अतिरिक्त, इन सीमित साधनो को सभी क्षेत्रो मे फैला दिया जाए तो उनका उतना प्रभाव भी नही पड़ेगा। अत हर्षमैन ने यह मत व्यक्त किया है कि अर्थ-व्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रो या उद्योगो मे विनियोजन करने से, विनियोग के नए अवसर उत्पन्न होंगे और इससे आगे आर्थिक विकास का पथ प्रशस्त होगा। उन्होने लिखा है कि "विकास इसी प्रकार आगे बढा है जिसके अनुसार आर्थिक वृद्धि अर्थ-व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो से दूसरे क्षेत्रो मे, एक उद्योग से दूसरे उद्योग मे और एक फर्म से से दूसरी फर्म मे पहुँचाई गई है।" वह विकास को असन्तुलनो की एक शृङ्खला (Chain of dis-equilibrium) मानते है, जिन्हे समाप्त करने की अपेक्षा बनाए रखा जाना चाहिए। हर्षमैन के मतानुसार पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार अर्थ-व्यवस्था मे जानबूझ कर असतुलन उत्पन्न करना, अर्द्ध-विकसित देशो मे आर्थिक विकास को प्राप्त करने की सर्वोत्तम विधि है।

हर्षमैन के अनुसार विश्व के किसी भी देश मे असतुलित विकास नही हुआ है। आधुनिक विकसित देश भी विकास के वर्तमान स्तर पर सतुलित विकास शैली द्वारा नही पहुँचे है। सयुक्तराज्य अमेरिका की सन् 1950 की अर्थ-व्यवस्था की, सन् 1850 की अर्थ-व्यवस्था से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि उसके कई क्षेत्र विकसित हुए है, किन्तु पूरी शताब्दी मे सभी क्षेत्र एक ही दर से विकसित नही हुए हैं। अत. अर्द्ध-विकसित देशो के विकास के लिए भी असतुलित विकास की पद्धति उपयोगी है। हर्षमैन की यह भी मान्यता है कि "यदि अर्थ-व्यवस्था को आगे बढते रहना है तो विकास की नीति का उद्देश्य तनाव (Tension), व्यनुपात (Disproportions) और असाम्य बनाए रखें। आदर्श स्थिति वह है, जबकि एक असाम्य विकास के प्रयत्नो के लिए प्रेरित करे जिससे पुन इसी प्रकार का असाम्य उत्पन्न हो और इसी प्रकार चलता रहे।"

उनके अनुसार नई परियोजनाएँ पूर्व-निर्धारित परियोजनाओ द्वारा सृजित बाह्य मितव्ययताओ को हस्तगत (Appropriate) कर लेती है और बाद वाली परियोजनाओ के उपयोग के लिए कुछ बाह्य मितव्ययताओ का स्वय भी सृजन करती है। किन्तु कुछ परियोजनाएँ ऐसी होती हैं, जो स्वय सृजित मितव्ययताओ से अधिक शोषण करती हैं। इस प्रकार की परियोजनाओ मे लगाई गई पूँजी को 'प्रेरित विनियोग' (Induced investment) कहा जाता है, क्योकि उनसे बाह्य मितव्ययताओ को कुल मिलाकर कोई लाभ नही होता है। इसके विपरीत कुछ परियोजनाएँ ऐसी होती है जो उपयोग मे लाई गई बाह्य मितव्ययताओ से अधिक मितव्ययताओ का सृजन करती है। अर्थ-व्यवस्था के दृष्टिकोण से दूसरे प्रकार की

परियोजनाओं में निजी लाभदायकता (Private profi-ab:lity) की अपेक्षा अधिक सामाजिक वांछनीय (Social desırability) होनी है। अतः विकास-नीति का उद्देश्य प्रथम प्रकार के विनियोगों को रोकना और दूसरे प्रकार के विनियोगो को प्रोत्साहन देना है। इस प्रकार, विकास की आदर्श संरचना एक ऐसा अनुक्रम (Sequence) है, जो साम्य से दूर ले जाता है और इस अनुक्रम में प्रत्येक प्रयत्न पूर्व असाम्य से प्रेरित होता है और जो अपने बारे में नया असतुलन उत्पन्न करता है। इसके लिए पुन प्रयत्नों की आवश्यकता होती है। पाल एलपर्ट (Paul Alpert) के अनुसार 'अ' उद्योग का विस्तार ऐसी मितव्ययताओं को जन्म देता है, जो 'अ' के लिए बाह्य होती है लेकिन जो 'ब' उद्योग को लाभ पहुँचाती है। अत 'ब' उद्योग अधिक लाभ मे रहता है और इसका विस्तार होता है। 'ब' उद्योग का विस्तार भी अपने साथ मितव्ययताएँ लाता है जिसमे उद्योग 'अ' 'स' और 'द' लाभान्वित होते है। इस प्रकार प्रत्येक कदम पर एक उद्योग, दूसरे उद्योगो के पूर्वविस्तार द्वारा सृजित बाह्य मितव्ययताओ का लाभ उठाता है और साथ ही दूसरे उद्योगो के लाभ के लिए बाह्य मितव्ययताओ का सृजन करता है। ऐसा बहुधा हुआ है कि रेलवे निर्माण ने विदेशी बाजारो तक पहुँच (Access bılity) उत्पादन करके निर्यात के लिए कपास के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया है। सस्ते घरेलू कपास की उपलब्धि ने सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना में योग दिया है। रेले, वस्त्र उद्योग, निर्यात के लिए कृषि के विकास ने मरम्मत करने वालों और अन्त मे, मशीनी यन्त्रों के निर्माण के लिए माँग तैयार की है। इसके विस्तार से धीरे-धीरे स्वदेश मे इस्पात उद्योगो को जन्म मिला है और यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। एक उद्योग द्वारा प्रस्तुत बाह्य मितव्ययताओ के द्वारा दूसरे उद्योगो की स्थापना का क्रम कई अर्द्ध-विकसित देशो मे चला है। भारत और ब्राजील का नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

असन्तुलन की विधि—हर्षमैन के विचारानुसार अर्द्ध-विकसित देशो मे बुनियादी कमी ससाधनो की होती है। पूंजी का भी उतना अभाव नही होता, जितना कि उन उद्यमियो का, जो जोखिम सम्बन्धी निर्णय लेकर इन ससाधनो का उपयोग करते हैं। इस समस्या के समाधान हेतु अधिकाधिक उद्यमियो को विनियोग के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। कुछ सीमा तक पूर्व विकास के द्वारा ऐसी परिस्थितियो का सृजन किया जाना चाहिए जिससे नवीन विनियोग लाभदायक और उचित प्रतीत होता हो और वे उसके लिए विवश हो जाएँ। हर्षमैन ने विनियोग के लिए अर्थ-व्यवस्था को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया है और उनमे से किसी एक के भी द्वारा असन्तुलन उत्पन्न किया जा सकता है। ये दो क्षेत्र सामाजिक ऊपरी पूंजी (Social Overhead Capital : S. O C.) और प्रत्यक्ष उत्पादन क्रियाएँ (Dırectly Productıve Activities) हैं।

सामाजिक ऊपरी पूंजी द्वारा असंतुलन (Unbalancing with S. O. C.)—सामाजिक ऊपरी पूँजी के अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, संचार, पानी, विद्युत,

प्रकाश तथा सिंचाई आदि जनोपयोगी सेवाएँ आती हैं। इनमे विनियोग करने से इनका विकास होगा जिससे प्रत्यक्ष उत्पादन क्रियाओ मे भी निजी विनियोग को प्रोत्साहन मिलेगा। उदाहरणार्थ, सस्ती बिजली से लघु और कुटीर उद्योगो का विकास होगा। सिंचाई की सुविधाओं से कृषि उद्योग का उचित विकास होगा। सामाजिक ऊपरी पूंजी मे किए गए विनियोग कृषि, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य आदि के आदानो (Inputs) को सस्ता करके इसकी प्रत्यक्ष सहायता करेंगे। जब तक पर्याप्त विनियोगो द्वारा सामाजिक पूँजी सम्बन्धी सस्ती और श्रेष्ठ सेवाओ की उपलब्धि नही होगी, प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ मे निजी विनियोग को प्रोत्साहन नही मिलेगा। सस्ते यातायात के साधनो और सस्ती विद्युत शक्ति की पर्याप्त उपलब्धि से ही विभिन्न प्रकार के उद्योग स्थापित हो सकेंगे। अत सामाजिक ऊपरी पूंजी मे विनियोग द्वारा एक बार अर्थ-व्यवस्था को असन्तुलित किया जाए ताकि, उसके सद्भावो के कारण बाद मे प्रत्यक्ष उत्पादक-क्रियाओ मे भी विनियोग अधिकाधिक हो और *अर्थ-व्यवस्था का विकास हो। जैसा कि प्रो हर्षमैन ने लिखा है—"सामाजिक* ऊपरी पूंजी मे विनियोगो का समर्थन अन्तिम उत्पादन पर इसके प्रत्यक्ष लाभो के कारण नही किया जाता, अपितु, इसलिए किया जाता है क्योकि यह प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ को आने की इजाज़त देते हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ (DAP) मे विनियोग की पूर्व आवश्यकता है।"

प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ द्वारा असतुलन (Unbalancing with DPA)—अर्थ-व्यवस्था मे प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ (DPA) के द्वारा भी असतुलन उत्पन्न *किया जा सकता है और उसके द्वारा अर्थ-व्यवस्था के विकास का भी प्रयत्न किया* जा सकता है। यदि प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ मे प्रारम्भिक विनियोग बढाया जाएगा तो सामाजिक ऊपरी पूँजी (S O C) पर दबाव पडेगा तथा उसकी कमी अनुभव की जाने लगेगी। पर्याप्त सामाजिक ऊपरी पूँजी-निर्माण के अभाव मे यदि प्रत्यक्ष-उत्पादक-क्रियाएँ आरम्भ की गई तो उत्पादन लागत बढ जाएगी। इन सब कारणो से स्वाभाविक रूप से सामाजिक ऊपरी पूँजी (S O C) का भी विस्तार होगा। इसी प्रकार प्रत्यक्ष *उत्पादक-क्रियाओ के प्रारम्भ से होने वाली आय मे वृद्धि और* राजनीतिक दबाव से भी सामाजिक ऊपरी पूँजी पर विनियोग को प्रोत्साहन मिलेगा।

विकास का पथ (Path to Development)—सामाजिक ऊपरी पूँजी (S O C.) से प्रत्यक्ष उत्पादन-क्रिया (SOC to DPA) के प्रथम अनुक्रम (Sequence) को हर्षमैन ने सा ऊ पू की अतिरिक्त क्षमता द्वारा विकास (Development via excess capacity of S O C) और प्र उ क्रि मे सा. ऊ पू (From DPA to SOC) के द्वितीय अनुक्रम को सा ऊ पू की स्वल्पता द्वारा विकास (Development via shortage of SOC) कहा है। प्रथम प्रकार के विकास पथ मे विनियोग अनुक्रम लाभ की आशाओ से और द्वितीय प्रकार के राजनीतिक दबावो से होता है, क्योकि सा ऊ पू. और प्र उ क्रि दोनों का ही एक साथ विस्तार नही किया जा सकता। अतः विकास के लिए किसी एक पथ को चुनना पडता है। दोनो

मार्गों में से किस मार्ग का अनुसरण किया जाए ? इस सम्बन्ध में हर्षमैन सा. ऊ. पू. की स्वल्पता (Development via shortage of SOC) को पसन्द करते है ।[1]

अगली और पिछली श्रृंखलाएँ (Forward and Backward Linkage)—आर्थिक विकास के लिए असतुलन का महत्त्व समझ लेने के पश्चात् अगली समस्या इस बात को ज्ञात करने की है कि किस प्रकार का असतुलन विकास के लिए अधिक प्रभावशाली है। अर्थ-व्यवस्था के कुछ क्षेत्र इतने महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली होते हैं कि उनके विकसित होने पर अन्य क्षेत्र स्वयमेव प्रगति करने लग जाते है। उदाहरणार्थ, इस्पात कारखानो की स्थापना से पिछली श्रृ खला के प्रभावों (Backward linkage effects) के कारण, कच्चा लोहा, कोयला, अन्य धातु-निर्माण-उद्योग, सीमेन्ट आदि की माँग बढने के कारण इन उद्योगो का विकास होता है। इसी प्रकार आगे की श्रृ खलाओं के प्रभाव *(Forward linkage effects)* *के कारण मशीन निर्माण* उद्योग, इंजीनियरिंग उद्योग, यन्त्र-उद्योग तथा सेवाओ को प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार इस्पात उद्योग की स्थापना से अर्थ-व्यवस्था को एक गति मिलती है। उत्पादन की पूर्व और बाद वाली अवस्थाओ मे विनियोग बढने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। अत: विकास-प्रक्रिया का उद्देश्य ऐसी परियोजनाओ को ज्ञात करना है जिनका अधिकाधिक श्रृ खला-सम्बन्ध प्रभाव हो। पिछली और अगली श्रृंखलाओ का प्रभाव आदान-प्रदान (Input-output) सारणियो द्वारा मापा जा सकता है यद्यपि इनके बारे मे अर्द्ध-विकसित देशो मे विश्वसनीय जानकारी नही होती है। ऐसी परियोजनाएँ जिनका श्रृंखला प्रभाव अधिक हो, विभिन्न देशो और विभिन्न समयो मे भिन्न-भिन्न होती हैं। लोहा और इस्पात उद्योग इसी प्रकार की एक परियोजना है। हर्षमैन के अनुसार "सर्वोच्च श्रृ खला प्रभाव वाला लोहा उद्योग तथा इस्पात है (The industry with the highest combined linkage score is iron and steel)" किन्तु अधिकतम श्रृ खला प्रभाव वाले लोहे और इस्पात उद्योग से ही औद्योगिक विकास का प्रारम्भ नही हो सकता है क्योकि, अर्द्ध विकसित देशो मे अन्तर्निर्भरता और श्रृंखला प्रभावो की कमी होती है। इन देशो मे कृषि आदि प्राथमिक उत्पादन उद्योग होते है जिनके दोनो प्रकार के प्रभाव निर्बल होते है परिणामस्वरूप, रोजगार या कुल राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि के रूप मे अर्थ-व्यवस्था पर इनके विकास के प्रभाव बहुत कम होने हैं।

इसीलिए हर्षमैन 'अन्तिम उद्योग पहले' (Last industries first) की बात *का समर्थन करते हैं। इन उद्योगो को 'Import Inclave Industries' भी कहते है,* जो पिछली श्रृंखला के व्यापक और गम्भीर प्रभाव उत्पन्न करते है। वस्तुत: पिछली श्रृंखलाओं के प्रभाव जो कई अन्तिम अवस्था वाले उद्योगो (Last stage Industries) के संयुक्त परिणाम होने हैं, *अधिक महत्त्व वाले होते है। पिछली श्रृंखलाएँ माँग मे* वृद्धि के कारण उत्पन्न होती हैं। प्रारम्भ मे 'Import Inclave Industries' मे

1. *Paul Alpert* : Economic Development--Objectives and Methods, p. 179.

विदेशों से किसी वस्तु के हिस्से मंगाकर देश मे उनको सम्मिलित (Assemble) करने के रूप मे अन्तिम उद्योग स्थापित किए जाने चाहिए। पिछली शृंखलाओं के द्वारा बाद मे इनकी माँग मे वृद्धि होने पर इन हिस्सों के उद्योग भी स्वदेश मे ही स्थापित किए जाने चाहिए और इन आयात प्रतिस्थापन करने वाले उद्योगों को संरक्षण या अनुदान (Subs dy) आदि के रूप मे सहायता दी जानी चाहिए।

संक्षेप मे, प्रो हर्षमैन की 'आर्थिक विकास की असंतुलित शैली' को उन्ही के शब्दो मे निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—"आर्थिक विकास असमान वृद्धि के मार्ग का अनुसरण करता है कि दबावों, प्रेरणाओं और अनिवार्यताओं के परिणामस्वरूप संतुलन की स्थापना की जाती है कि आर्थिक विकास का कुशलतापूर्ण मार्ग अव्यवस्थित होता है और कठिनाइयों और कुशलताओं, सुविधाओं, सेवाओं और उत्पादों की कमियों तथा कठिनाइयों से युक्त होता है, कि औद्योगिक विकास अधिकांश मे पिछली शृंखलाओं के द्वारा आगे बढ़ेगा अर्थात् यह अपना मार्ग अन्तिम स्पर्श (Last touches) से मध्यवर्ती और आधारभूत उद्योगों की ओर लेगा।"

हर्षमैन के दृष्टिकोण का मूल्यांकन (Critical Appraisal of Hirschman's Approach)—हर्षमैन द्वारा प्रतिपादित 'असंतुलित विकास का सिद्धान्त' अर्द्ध-विकसित देशो मे आर्थिक विकास की गति मे तीव्रता लाने का एक उपयोगी उपाय है। विकास के लिए प्रेरणाओं और उसके मार्ग मे आने वाली बाधाओं आदि का इस सिद्धान्त मे उचित रूप से विवेचन किया गया है। पिछली और अगली शृंखलाओं के प्रभावों और अन्तिम अवस्था उद्योग (Import Inclave Industr es) का विवेचन भी उपादेय है। अर्द्ध-विकसित देशो के लिए अत्यधिक वांछनीय निर्यात संवर्द्धन और आयात प्रतिस्थापन तथा प्रारम्भिक अवस्थाओं मे उद्योगों को संरक्षण और सहायता पर भी इस सिद्धान्त मे उचित बल दिया गया है। हर्षमैन के इस सिद्धान्त मे न तो रूस जैसी पूर्ण केन्द्रीकृत-नियोजन-पद्धति का समर्थन किया गया है न ही पूर्णरूप से निजी उपक्रम द्वारा विकास की समर्थता को असंदिग्ध माना गया है। सामाजिक ऊपरी पूँजी के विकास मे वह सार्वजनिक उत्तरदायित्व पर बल देता है क्योंकि, निजी-उपक्रम द्वारा इनका वांछित विकास असम्भव है और इसके अभाव मे प्रत्यक्ष उत्पादन क्रियाएं प्रोत्साहित नही हो सकती। इस प्रकार, हर्षमैन मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के पक्ष मे प्रतीत होते हैं। जो अर्द्ध विकसित देशो के सन्दर्भ मे पूर्ण उपयुक्त विचार है।

आलोचना—हर्षमैन के सिद्धान्त की निम्नलिखित आलोचनाए की गई है—

1 पाल स्ट्रीटन (Paul Streeten) ने हर्षमैन के उक्त सिद्धान्त की आलोचना करते हुए लिखा है कि "महत्त्वपूर्ण प्रश्न असंतुलन उत्पन्न करने का नही है बल्कि विकास को गति देने के लिए असंतुलन का अनुकूलतम अंश क्या हो, कितना और कहाँ असंतुलन पैदा किया जाए, महत्त्वपूर्ण बिन्दु (Growing Points) क्या है?" इस प्रकार इस सिद्धान्त मे असंतुलन की संरचना, दिशा और समय पर पर्याप्त ध्यान केन्द्रित नही हुआ है।

2 पॉल स्ट्रीटन के अनुसार इस सिद्धान्त मे विस्तार की प्रेरणाओ पर ही ध्यान दिया गया है तथा असतुलन द्वारा उत्पन्न अवरोधो की अवहेलना की गई है।

3 *असतुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार अर्थ-व्यवस्था के कुछ* क्षेत्रों मे ही विनियोग किया जाता है। इससे प्रारम्भिक अवस्था मे जब तक परिपूरक उद्योगों का विकास नही हो, साधन अप्रयुक्त और निष्क्रिय रहते हैं। इस प्रकार आधिक्य क्षमता (Excess Capacity) के कारण एक ओर काफी अपव्यय होता है जबकि दूसरी ओर साधनो के अभाव मे उद्योग स्थापित नही होते।

4 इस सिद्धान्त के अनुसार, एक क्षेत्र मे विनियोगो को केन्द्रित किया जाता है, *जिससे अर्थ-व्यवस्था मे असतुलन दबाव और तनाव उत्पन्न हो जाते है।* इन्हे दूर करने के लिए दूसरे क्षेत्रो मे विनियोग किया जाता है और इस प्रकार आर्थिक विकास होता है। किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो मे ये दबाव और तनाव आर्थिक विकास को *अवरुद्ध करने की सीमा तक गम्भीर हो सकते है।*

5 कुछ आलोचको के अनुसार तकनीकी अविभाज्यताओ, गणना और *अनुमान की त्रुटियो एव माँग तथा पूर्ति की सारणियो के* बेलोच स्वभाव के कारण, *अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ मे स्वाभाविक रूप से ही असतुलन उत्पन्न* होते रहते है। अत अर्थशास्त्रियो द्वारा नीति के रूप मे यह बताया जाना आवश्यक नही है।

6 इस सिद्धान्त का समाजवादी अर्थ-व्यवस्थाओ के लिए सीमित महत्त्व है क्योकि वहाँ विनियोग सम्बन्धी निश्चय, बाजार-तन्त्र और प्रेरणाओ द्वारा नही अपितु राज्य द्वारा किए जाते है।

7 असतुलित विकास के लिए आवश्यक प्रेरणा तान्त्रिकता (Inducement mechanism) का उपयोग वही व्यावहारिक हो सकता है, जहाँ साधनो मे आन्तरिक लोच और गतिशीलता हो, किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो में साधनो का एक क्षेत्र से *दूसरे क्षेत्र मे स्थानान्तरण कठिन होता है।*

8 असतुलित विकास के सिद्धान्त के विरुद्ध सबसे बडा तर्क यह प्रस्तुत किया जाता है कि इससे अर्थ-व्यवस्था मे मुद्रा प्रसारक प्रवृत्तियो को जन्म मिलता है। इस *सिद्धान्त के अनुसार, अर्थ-व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो मे बडी मात्रा मे विनियोग* किया जाता है जिससे आय मे वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप, उपभोक्ता वस्तुओं की माँग और मूल्य अपेक्षाकृत बढ जाते है। अर्द्ध-विकसित देशो मे इन्हे रोकने के लिए मौद्रिक और राजकोषीय उपाय भी प्रभावपूर्ण नही हो पाते। इस प्रकार, मुद्रा प्रसारक प्रवृत्तियाँ विकसित होने लगती है।

9. हर्षमैन द्वारा उल्लिखित 'श्रृंखला प्रभाव' (Linkage effects) भी अर्द्ध-विकसित देशों मे इतने सक्रिय और प्रभावपूर्ण नही सिद्ध होते।

उपरोक्त सीमाओ के होते हुए भी असन्तुलित विकास की तकनीक अर्द्ध-विकसित देशो के द्रुत विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी है और कई अर्द्ध-विकसित देशो ने विकास के लिए इस युक्ति को अपनाया है। सोवियत रूस ने इस पद्धति को अपना कर अपना द्रुत विकास किया है। भारतीय योजनाओ मे भी विशेष रूप से

दूसरी योजना मे इस शैली को अपनाया गया है। योजना मे विशेष रूप से भारी और आधारभूत उद्योगो के विकास को पर्याप्त महत्व दिया गया है। सार्वजनिक विनियोगो मे उद्योगो का भाग प्रथम योजना मे केवल 5% से भी कम था। किन्तु द्वितीय योजना मे यह अनुपात बढ कर 19% और तृतीय योजना मे 24 2% हो गया था।

प्रो. मिन्ट की विचारधारा
(Approach of Prof. Myint)

प्रो मिन्ट (Myint) के अनुसार विदेशी उद्यमियो द्वारा उपनिवेशो मे अपनाई गई दुर्भाग्यपूर्ण नीतियो ने इन देशो मे विकास की प्रक्रिया के प्रारम्भ को रोका है। इन देशो मे सचालित खनन् और बागान (Mining and Plantation ventures) व्यवसायो मे इनके प्रबन्धको का यह दृष्टिकोण था कि स्थानीय श्रमिको म विकास क्षमता नही है। अत न्यून आय वाले देशो के श्रमिको मे प्रचलित आय के स्तर के लगभग बराबर ही मजदूरी दी गई। मजदूरी की यह न्यून दरें जहाँ पर्याप्त मात्रा मे श्रमिको को आकर्षित नही कर सकी, वहाँ पर श्रमिको का भारत, चीन आदि कम आय वाले देशो से आयात किया। इस सन्दर्भ मे प्रो मिन्ट ने एल सी नोब्लस (L C Knowles) के इस कथन का उद्धरण दिया है कि ब्रिटिश उपनिवेश की तीन मातृभूमियाँ थी—ब्रिटेन भारत और चीन। इस प्रकार इन उपनिवेशो मे मजदूरी बहुत कम दी गई। प्रो मिन्ट ने सुझाव दिया है कि यदि नियोजको ने इन्हे ऊँची मजदूरी दी होती और स्थानीय श्रमिको की उत्पादकता मे उस स्तर तक वृद्धि के लिए प्रयत्न किए होते जिस स्तर मे इस मजदूरी नीति को लाभदायक बनाया होता, तो सम्भवत उन्होने विकास की गतिविधियो को प्रेरणा दी होती।

प्रो मिन्ट के विचारानुसार यदि गाँवो मे नई और आकर्षक प्रकार की उपभोक्ता वस्तुएँ बिक्री के लिए पहुँचाई जाती है और अर्थ-व्यवस्था म मुद्रा का प्रचलन किया जाता है तो निर्वाह अर्थ व्यवस्था (Subsistence Economy) को भी विकास की उत्तेजना मिलती है। नई उपभोक्ता वस्तुओ के परिचय द्वारा विकास की उत्तेजना का विचार मिन्ट के पूर्व भी बतलाया गया था। ये विचार नई आवश्यकताओ के मानव व्यवहार पर प्रभाव के साधारण मनोविज्ञान पर आधारित है।

लेबेन्स्टीन की विचारधारा
(Leibenstein's Approach)

प्रो हार्वे लेबेन्स्टीन न अपनी पुस्तक Critical Minimum Effort Thesis' मे आर्थिक विकास से सम्बन्धित बहुत महत्वपूर्ण विचार प्रकट किए हैं। अपने इस ग्रन्थ म लेबेन्स्टीन ने भारत, चीन इन्डोनेशिया आदि उन अर्द्ध-विकसित या अल्प-विकसित देशो की समस्याओ का अध्ययन किया है, जिनम जनसख्या का घनत्व अधिक है। यद्यपि उनका लक्ष्य इन देशो की समस्याओ को समझाना है, उनका समाधान प्रस्तुत करना नही तथापि उन्होने समस्याओ के समाधानार्थ कुछ महत्त्वपूर्ण उपाय अवश्य सुझाए हैं। लेबेन्स्टीन ने अपनी पुस्तक मे यह अध्ययन किया है कि

अर्द्ध-विकसित देशो के पिछड़ेपन से किस प्रकार मुक्ति पायी जा सकती है। उन्होंने अपने ग्रन्थ मे विकास के समस्त घटको और नीतियो को अपनी अध्ययन सामग्री नही बनाया है वरन् उनका मुख्य लक्ष्य उनके 'न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न' (Critical Minimum Effort) के वाद या मत (Thesis) को समझना रहा है।

लेबेन्स्टेन के मतानुसार दीर्घकालीन स्थायी और स्वय स्फूर्त विकास के लिए यह आवश्यक है कि अर्थ-व्यवस्था मे जो विनियोजन किया जाए वह इतनी मात्रा मे हो, जिससे पर्याप्त स्फूर्ति मिल सके। लेबेन्स्टीन के अनुसार मात्र इसी उपाय से अर्द्ध-विकसित देश अपने आर्थिक दुष्चक्र से मुक्ति पा सकते है।

लेबेन्स्टीन के कथनानुसार अर्द्ध-विकसित या अल्प-विकसित देशो मे पाए जाने वाले दुष्चक्र उन्हे प्रति व्यक्ति आय के निम्न साम्य की स्थिति मे रखते हैं। यद्यपि ऐसे देशो मे श्रम और पूँजी की मात्रा मे परिवर्तन होते हैं, किन्तु उनके प्रभाव के कारण प्रति व्यक्ति आय के स्तर में नगण्य परिवर्तन होते है। इस स्थिति से निकलने के लिए कुछ 'न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न' (Critical Minimum Efforts) की आवश्यकता है, जो प्रति व्यक्ति आय को ऐसे स्तर तक बढा दे जहाँ से सतत् विकास-प्रक्रिया जारी रह सके। उन्होने बताया है कि पिछड़ेपन से हम निरन्तर दीर्घकालीन विकास की आशा कर सके, यह आवश्यक (यद्यपि सदा पर्याप्त नही) शर्त है कि किसी बिन्दु पर या कुछ अवधि मे अर्थ-व्यवस्था को विकास के लिए ऐसी उत्तेजना (Stimulus) मिले जो निश्चित न्यूनतम आवश्यक प्रयत्नो से अधिक हो। लेबेन्स्टीन के मतानुसार प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था मे दो प्रकार की शक्तियाँ क्रियाशील रहती हैं। एक ओर कुछ 'उत्तेजक' (Stimulants) तत्त्व होते है जिनका प्रभाव प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि करने वाला होता है। दूसरी ओर कुछ पीछे धकेलने वाले (Shocks) तत्त्व होते है, जो प्रति व्यक्ति आय को घटाने का प्रभाव रखते है। अर्द्ध-विकसित देशो मे प्रथम प्रकार के तत्त्व कम और द्वितीय प्रकार के तत्त्व अधिक प्रभावशील होते है। अत. आय घटाने वाले तत्त्वो से कही अधिक आय मे वृद्धि करने वाले तत्त्वों को उत्तेजित करने पर ही अर्थ-व्यवस्था विकास के पथ पर अग्रसर हो पाएगी और ऐसा तभी सम्भव होगा, जबकि न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न (Critical Minimum Efforts) किए जाएँगे।

प्रति व्यक्ति आय और जनसख्या-वृद्धि का सम्बन्ध—लेबेन्स्टीन का सिद्धान्त इस अनुभव पर आधारित है कि जनसख्या वृद्धि की दर प्रति व्यक्ति आय के स्तर का फलन (Function) है और यह विकास की विभिन्न अवस्थाओं से सम्बन्धित है। आय के जीवन निर्वाह साम्य स्तर (Subsistence level of income level) पर जन्म और मृत्यु दरें अधिकतम होती हैं। आय के इस स्तर से प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होने पर मृत्यु-दरें गिरना प्रारम्भ होती है, यद्यपि प्रारम्भ मे जन्म दरे कम नही होती हैं परिणामस्वरूप, जनसंख्या वृद्धि की दर बढ जाती है। इस प्रकार, प्रारम्भ मे प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि, जनसख्या-वृद्धि की दर को बढ़ाती है किन्तु ऐसा एक सीमा तक ही होता है और उसके पश्चात् प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होने से

जन्म-दर गिरने लगती है, क्योंकि ड्यूमोण्ट (Dumont) की 'Social Capillarity' की धारणा के अनुसार, प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि के साथ-साथ बच्चो की सख्या मे वृद्धि द्वारा माता-पिताओ की आय मे वृद्धि करने की इच्छा कम होती जाती है। इसके अतिरिक्त विशिष्टीकरण सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता तथा नौकरी व्यवस्था आदि मे प्रतिस्पर्द्धा मे वृद्धि आदि कारणो से बड़े परिवार का पालन-पोषण कठिन और व्ययसाध्य हो जाता है। अत आय की वृद्धि के साथ पहले जन्म-दरे स्थिर होती है तत्पश्चात् गिरना प्रारम्भ कर देती है। इस प्रकार ज्यो-ज्यो अर्थ-व्यवस्था विकास की ओर बढती जाती है जनसख्या वृद्धि की दर त्यो-त्यो कम होती जाती है। जापान और कई पश्चिमी यूरोपीय देशो में इस प्रकार के उदाहरण देखे जा सकते हैं। लेबेन्स्टीन के मतानुसार, जीव विज्ञान की दृष्टि से जनसख्या की अधिकतम वृद्धि की दर 3% से 4% के बीच मे होती है। जनसख्या की इस ऊँची वृद्धि की दर पर काबू पाने और प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि करके जनसख्या वृद्धि की दर को घटाने के लिए न्यूनतम आवश्यक प्रयत्नो की आवश्यकता है। इसे निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है—

चित्र- 6
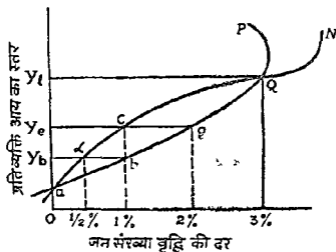
उपरोक्त चित्र मे N और P वक्र आय मे वृद्धि-दर और जनसख्या मे वृद्धि-दर को निर्माण करने वाली प्रति व्यक्ति आय के स्तर को प्रदर्शित करते है। a बिन्दु पर जो कि निर्वाह साम्य का बिन्दु है आय-वृद्धि और जनसख्या-वृद्धि की दर समान है। यदि प्रति व्यक्ति आय मे थोड़ी वृद्धि होती है, मानलो यह OY_b हो जाती है, तो जनसख्या-वृद्धि की दर और आय-वृद्धि की दर दोनो बढती है, किन्तु आय-वृद्धि की अपेक्षा जनसख्या वृद्धि तेजी स होती है। प्रति व्यक्ति आय के इससे भी उच्च स्तर OY_e पर जनसख्या वृद्धि की दर 2% है जबकि आय-वृद्धि की दर केवल 1% है। चित्र मे $Y_e g$ जनसख्या वृद्धि की दर $Y_e c$ आय वृद्धि की दर से अधिक है। इस

समस्या के समाधान के लिए प्रति व्यक्ति आय की दर इतनी बढानी चाहिए, जिससे राष्ट्रीय आय मे वृद्धि की दर जनसख्या वृद्धि की दर को पीछे छोड़ दे। ऐसा प्रति व्यक्ति आय के स्तर के Y_e से अधिक होने पर ही हो सकता है। यहाँ से जनसंख्या-वृद्धि की दर गिरना शुरू हो जाती है अतः निरन्तर आर्थिक विकास की स्थिति को लाने के लिए Y_e न्यूनतम आवश्यक प्रति व्यक्ति आय का स्तर है और इसे प्राप्त करने के लिए न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न किए जाने चाहिए।

प्रति व्यक्ति आय का स्तर आय मे वृद्धि करने वाला तत्त्व है और इसके द्वारा प्रेरित जनसख्या मे वृद्धि, आय घटाने वाला तत्त्व है। अत. निरन्तर आर्थिक विकास की स्थिति मे अर्थव्यवस्था को पहुँचाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रारम्भिक पूँजी-निवेश ही निश्चित न्यूनतम स्तर से अधिक हो जो स्वय उद्भूत *या प्रेरित आय* घटाने वाली शक्तियो पर काबू पाने योग्य प्रति व्यक्ति आय का उच्च-स्तर प्रदान करे।

अर्द्ध-विकसित देशो मे जनसख्या-वृद्धि के अतिरिक्त भी उत्पादन साधनो की अविभाज्यता के कारण होने वाली आन्तरिक अमितव्ययताएँ, वाह्य-परस्पर निर्भरता के कारण होने वाली वाह्य अमितव्ययताएँ, साँस्कृतिक, सामाजिक और सस्थागत बाधाओ की उपस्थिति तथा उन्हे दूर करने की आवश्यकता भी इन देशो मे बडी मात्रा मे आवश्यक न्यूनतम प्रयत्नो की अनिवार्यता सिद्ध करती है। किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो मे आय केवल जीवन-निर्वाह स्तर योग्य होती है और इसका समस्त व्यय प्रचलित उपभोग के लिए ही होता है। बहुत थोडी राशि ही मानव और भौतिक पूँजी-निर्माण के लिए व्यय की जा सकती है। अत सतत् आर्थिक विकास का पथ प्रशस्त करने के लिए न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न (Critical Minimum Efforts) आय के जीवन-निर्वाह से अधिक ऊँचे स्तर पर होने चाहिएँ।

विकास-अभिकर्त्ता (Growth Agents)—लेबेन्स्टीन ने अपने सिद्धान्त को इस तर्क पर आधारित किया है कि अर्थव्यवस्था मे विकास के लिए उपयुक्त कुछ आर्थिक दशाएँ उपस्थित रहती हैं जो आय-वृद्धि की शक्तियो को आय मे कमी करने वाली शक्तियो की अपेक्षा अधिक तेजी से बढाती है। 'विकास अभिकर्त्ता (Growth Agents) इन दशाओ को जन्म देते हैं। 'विकास-अभिकर्त्ता' वे होते है, जो विकास मे योग देने वाली क्रियाओ (Growth Contributing Activities) को सचालित करते है। उद्यमी (Entrepreneur), विनियोजक (Investor), बचत करने वाले (Saver) एव नव-प्रवर्तक (Innovator) आदि उल्लेखनीय 'विकास अभिकर्त्ता' हैं। विकास साधको का इस विकास मे योगदान देने वाली क्रियाओं के कारण पूँजी और बचत की दर, श्रम-शक्ति की कुशलता, ज्ञान और जोखिम की मात्रा मे वृद्धि होती है। लेबेन्स्टीन के अनुसार 'विकास साधनो का विस्तार होगा या नहीं' यह इन क्रियाओ के सम्भावित और वास्तविक परिणाम तथा सम्भावनाओं, क्रियाओ और परिणामों की अन्त क्रिया द्वारा उत्पन्न आगे विस्तार (Expansion) और संकुचन (Contraction) के लिए प्रेरणाओ पर निर्भर करते है। ये प्रेरणाएँ दो प्रकार की होती हैं—

(i) शून्य-राशि प्रेरणाएँ (Zero-sum Incentives)—इनसे राष्ट्रीय आय मे वृद्धि नही होती है, इनका केवल वितरणात्मक प्रभाव होता है।

(ii) धनात्मक राशि-प्रेरणाएँ (Positive-sum Incentives)—जो राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करती हैं केवल दूसरे प्रकार की प्रेरणाओ द्वारा ही आर्थिक विकास हो सकता है। किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो मे प्रथम प्रकार की क्रियाओ मे ही व्यक्ति सलग्न रहते हैं और दूसरे प्रकार की क्रियाएँ अत्यल्प मात्रा मे सचालित की जाती है। जो कुछ इस प्रकार की क्रियाएँ की जाती है वे अर्थव्यवस्था मे विशुद्ध विकास की अनुपस्थिति के कारण प्रभावहीन ही रहती हैं। इसके अतिरिक्त प्रति व्यक्ति आय पर विपरीत प्रभाव डालने वाली निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ भी क्रियाशील रहती है—

(i) सम्भावित वृद्धिमान आर्थिक अवसरो मे कटौती और रोक द्वारा वर्तमान आर्थिक रियायतो (Privileges) को बनाए रखने वाली (Zero sum Activities) शून्य राशि प्रेरणाएँ।

(ii) परिवर्तन के प्रतिरोध मे की गई सगठित और असगठित श्रम द्वारा की जाने वाली अनुदार कार्यवाहियाँ।

(iii) नवीन ज्ञान और विचारो का अवरोध।

(iv) निजी और सार्वजनिक सस्थाओ द्वारा अनुत्पादक प्रकृति के व्यय मे वृद्धि।

(v) जनसख्या-वृद्धि के परिणामस्वरूप होने वाली श्रम शक्ति म वृद्धि जिसके कारण प्रति व्यक्ति उपलब्ध पूँजी की मात्रा कम हो जाती है।

आर्थिक प्रगति पर विपरीत प्रभाव डालने वाले उपरोक्त तत्त्वो को प्रभावहीन करने के लिए पर्याप्त मात्रा मे न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न (Sufficiently large critical minimum efforts) किए जाने चाहिए, जो धनात्मक-राशि क्रियाओ को उत्तेजित करे। ऐसा होने से प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होगी जिसके कारण बचत और विनियोग की मात्रा बढेगी। परिणामस्वरूप, विकास-प्रभिकर्त्ताओ (Growth Agents) का विस्तार होगा, विकास मे उनका योगदान बढेगा, विकास मे बाधक तत्त्वो की प्रभावहीनता बढेगी, सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता को बढाने वाले सामाजिक वातावरण का निर्माण होगा, विशिष्टीकरण बढेगा और द्वितीयात्मक और तृतीयात्मक उद्योगो का विस्तार होगा। इन सबके कारण सामाजिक वातावरण मे ऐसे परिवर्तनो का मार्ग साफ होगा जिससे जन्म-दर और जनसख्या वृद्धि की दरें गिर जाएँगी। प्रो लेबेन्स्टीन ने अर्द्ध-विकसित देशो के लिए इस न्यूनतम आवश्यक प्रयत्नो की मात्रा का भी अनुमान लगाया है।

समीक्षा—प्रो लेबन्स्टीन ने अपनी पुस्तक के प्राक्कथन मे लिखा है कि उनका उद्देश्य स्पष्टीकरण और व्याख्या करना है, न कि कोई नुस्खा बताना है। किन्तु उनके इस सिद्धान्त ने कई अर्थशास्त्रियो और नियोजको को प्रभावित किया है और यह अर्द्ध-विकसित देशो के आर्थिक पिछडेपन को दूर करने का एक उपाय माना जाने लगा है। इसका एक कारण तो यह है कि उसका यह विचार अधिकाँश अर्द्ध-विकसित देशो द्वारा अपनाई गई जनतान्त्रिक नियोजन (Democratic Planning)

पद्धति से मेल खाता है। इसके साथ ही यह रोजेन्स्टीन रोडान (Rosenstein Rodan) के 'बड़े धक्के' (Big Push) के सिद्धान्त की अपेक्षा वास्तविकता के अधिक निकट है, क्योकि, अर्द्ध-विकसित देशो के औद्योगीकरण के लिए एक बार ही 'बड़ा धक्का' देना कठिन होता है, जबकि लेबेन्स्टीन के 'न्यूनतम आवश्यक प्रयत्नो' को छोटे प्रयत्नो के रूप मे टुकड़ों-टुकडो मे विभाजित करके प्रयोग मे लाया जा सकता है।

किन्तु यह सिद्धान्त भी आलोचना मुक्त नही कहा जा सकता। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होने पर एक बिन्दु तक जनसख्या-वृद्धि की दर बढती जाती है और उसके पश्चात् उसमे गिरावट आने लगती है। किन्तु वस्तुत. यह प्रथम प्रक्रिया, अर्थात्, जनसख्या-वृद्धि की दर बढाने का कारण प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि नही, अपितु चिकित्सा तथा जन-स्वास्थ्य सुविधाओ मे वृद्धि के कारण घटने वाली मृत्यु-दर है। उदाहरणार्थ, भारत मे 1911-21 मे मृत्यु-दर 48·6 प्रति हजार से घट कर 1959-61 मे 22 8 प्रति हजार रह जाने के कारण प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि नही, अपितु रोगो पर नियन्त्रण और चिकित्सा व जन-स्वास्थ्य का अधिक ज्ञान और इन सुविधाओ मे वृद्धि हुई है। इसी प्रकार इस बिन्दु के पश्चात जन्म-दर मे कमी का श्रेय न्यूनतम आवश्यक स्तर पर प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि को नही है। अर्द्ध-विकसित देशो मे प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि की जन्म-दर को नही घटा सकती है। जापान एव अन्य प्रगतिशील देशो मे जिनके आधार पर लेबेन्स्टीन ने अपना विश्लेषण प्रस्तुत किया है, यह सत्य हो सकता है। किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो मे जन्म-दर को घटाने के लिए लोगो के दृष्टिकोण, समझ, सामाजिक सस्थाओ आदि मे परिवर्तन और शिक्षा प्रचार की आवश्यकता है। वस्तुत जन्म-दर मे कमी करने के लिए प्रति व्यक्ति आय मे न्यूनतम आवश्यक स्तर से अधिक वृद्धि होने तक कोई भी अर्द्ध-विकसित देश प्रतीक्षा नही कर सकता है। ऐसी स्थिति मे जनसख्या की स्थिति विस्फोटक दशा ग्रहण कर सकती है।

---

6 आर्थिक विकास के लिए नियोजन

(PLANNING FOR ECONOMIC GROWTH)

"आयोजन का अर्थ केवल कार्य-सूची बना लेने से नहीं होता और न ही यह एक राजनीतिक आदर्शवाद है। आयोजन एक बुद्धिमतापूर्ण, विवेकपूर्ण तथा वैज्ञानिक पद्धति है जिसके अनुसार हम अपने आर्थिक व सामाजिक उद्देश्यों को निर्धारित करते हैं व प्राप्त कर सकते हैं।" —जवाहरलाल नेहरू

नियोजित अर्थ-व्यवस्था आधुनिक काल की एक नवीन प्रवृत्ति है। 19वीं शताब्दी में पूँजीवाद, व्यक्तिवाद और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का बोलबाला रहा तथा अधिकांश देश स्वतन्त्र व्यापार-नीति और आर्थिक स्वतन्त्रता के समर्थक रहे। लेकिन पिछली अर्द्ध-शताब्दी में रूस की क्रान्ति, सन् 1929–32 की विश्वव्यापी आर्थिक-मन्दी, दो भीषण महायुद्धों व उपनिवेशवाद की समाप्ति, लोक-वित्त, तकनीकी प्रगति, एवं सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक प्रवृत्तियाँ आदि के कारण आर्थिक नियोजन का महत्त्व स्थापित हो चुका है और आज प्रत्येक देश में किसी न किसी अंश में नियोजन का मार्ग अपनाया जा रहा है। संसार के लगभग सभी देश अपने आर्थिक विकास और उन्नति के लिए आर्थिक नियोजन में जुटे हुए हैं।

आर्थिक नियोजन इतना महत्त्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध हुआ है कि अमेरिका, ब्रिटेन आदि स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था वाले देश भी व्यापक अर्थ में नियोजन का सहारा लेने लगे हैं। अर्द्ध-विकसित देशों में तो नियोजन अत्यधिक लाभदायक है ही क्योंकि इसके द्वारा शीघ्र पूँजी-निर्माण की प्रक्रिया को गति देकर द्रुत आर्थिक विकास किया जाना सम्भव है। अर्द्ध-विकसित देशों की मूल समस्या कीमत स्थायित्व के साथ आर्थिक वृद्धि करना है। आर्थिक वृद्धि की उच्च-दर, आर्थिक नियोजन पर निर्भर करती है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में ही एक अभीष्ट सीमा तक पूर्ण रोजगार, *समानता, स्थायित्व, आत्म-निर्भरता आदि आर्थिक लक्ष्यों* की प्राप्ति सम्भव है। अनियोजित अथवा निजी उद्यम वाली स्वचालित अर्थ व्यवस्था में सन्तुलन की स्थिति तो सम्भव है, किन्तु आर्थिक विकास की उच्च-दर के लिए स्वचालित अर्थ-व्यवस्था के

निम्न स्तरीय सन्तुलन को नष्ट करना आवश्यक है। कीन्स के अर्थशास्त्र में स्पष्ट संकेत मिलता है कि स्वत: प्राप्त पूर्ण रोजगार जैसी कोई स्थित नहीं होती है (There is no automatic full employment)। 'पेरेटो उत्तमावस्था' (Pareto-optimality) का सिद्धान्त भी यह स्पष्ट करता है कि सम्पत्ति व आय का वितरण इस सिद्धान्त की मुख्य शर्तों के अन्तर्गत नहीं आता अर्थात् विकास, समानता, स्थायित्व, आत्म-निर्भरता, पूर्ण रोजगार आदि आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आर्थिक नियोजन आवश्यक है। इसीलिए अर्द्ध-विकसित देशों में आर्थिक वृद्धि की उच्च-दर प्राप्त करने के लिए नियोजन का मार्ग अपनाया जाता है।

नियोजित और अनियोजित अर्थ-व्यवस्था की तुलना (Comparison of Planned and Un-planned Economies)

जो देश आर्थिक विकास तथा अन्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आर्थिक नियोजन की पद्धति को अपनाते हैं, उस देश की अर्थ-व्यवस्था को नियोजित अर्थ-व्यवस्था (Planned Economy) कहते हैं। 'नियोजित अर्थ-व्यवस्था' में केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा सचेत रूप से निर्धारित आर्थिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए आर्थिक क्रियाओं का संचालन किया जाता है जिन पर सरकार का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रण होता है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था के विपरीत अनियोजित अर्थ-व्यवस्था वह होती है जो आर्थिक नियोजन को नहीं अपनाती है। नियोजित और अनियोचित अर्थ-व्यवस्था में होने वाले निम्नलिखित प्रमुख अन्तर हैं—

नियोजित अर्थ-व्यवस्था (Planned Economy)	अनियोजित अर्थ-व्यवस्था (Un-planned Economy)
1. इसमें समस्त अर्थ-व्यवस्था को एक इकाई मान कर सम्पूर्ण आर्थिक क्षेत्र के लिए योजना बनाई जाती है।	1 इसमें व्यक्तिगत माँग के अनुसार व्यक्तिगत उत्पादक इकाई के लिए योजना बनाई जाती है।
2 आर्थिक क्रियाओं के निर्देशन के लिए केन्द्रीय नियोजन अधिकारी होता है।	2. इसमें ऐसा नहीं होता है।
3 सार्वजनिक हित सर्वोपरि होता है।	3. निजी लाभ अधिक महत्वपूर्ण होता है।
4. आर्थिक क्रियाओं पर राज्य-नियन्त्रण होता है।	4 आर्थिक क्रियाएँ राज्य-नियन्त्रण और हस्तक्षेप से मुक्त होती हैं।
5. उत्पादन राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता है।	5 उत्पादन माँग के अनुसार किया जाता है।
6. मूल्य-तान्त्रिकता महत्वहीन होती है।	6. मूल्य-तान्त्रिकता महत्वपूर्ण होती है।
7. यह नियमित अर्थ-व्यवस्था होती है।	7. यह स्वतन्त्र प्रतियोगिता पर आधारित होती है।

नियोजित अर्थ व्यवस्था (Planned Economy)	अनियोजित अर्थ व्यवस्था (Un planned Economy)
8 इसमे समस्त राष्ट्र के दृष्टिकोण से उद्देश्य निश्चित होते हैं।	8 बहुधा समस्त राष्ट्र के दृष्टिकोण से उद्देश्य निश्चित नही किए जाते।
9 उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए एक निश्चित अवधि होती है।	9 इसमे कोई निश्चित अवधि नहीं होती।
10 यह समाजवाद के अधिक निकट है।	10 यह पूंजीवाद से सम्बन्धित है।
11. यह एक विवेकपूर्ण अर्थ व्यवस्था है।	11 यह आकस्मिक अर्थ-व्यवस्था है।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था की श्रेष्ठता (Superiority of Planned Economy)

नियोजित अर्थ-व्यवस्था की उपयोगिता का आभास हमे पूर्वत्तर विवरण मे मिल चुका है। आज विश्व के लगभग सभी देश किसी न किसी रूप मे आर्थिक नियोजन को अपनाए हुए हैं और इसका कारण नियोजन से होने वाले अतिशय लाभ ही हैं। ये लाभ इतने महत्वपूर्ण हैं कि कोई भी आधुनिक राष्ट्र इनकी उपेक्षा नही कर सकता। अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशो ने द्रुत आर्थिक विकास के लिए आर्थिक नियोजन की तकनीक अपनाकर अपने यहाँ नियोजित अर्थ व्यवस्था स्थापित करके उसके सुन्दर फलो को चखा है और हम भी आर्थिक विकास की ओर तेजी से बढने लगे हैं। कई देशो मे पूर्ण रूप से नियोजित अर्थ-व्यवस्था (Planned Econom es) है। आर्थिक नियोजन के सहारे ही सोवियत रूस ने इतनी आश्चर्यजनक प्रगति की है कि प्रो एस ई हेरिस के इस मत से कोई मतभेद नही हो सकता कि "विश्व के अन्य किसी भी देश ने इतनी द्रुतगति से एक पिछड़े हुए कृषि-प्रधान देश से अत्यधिक औद्योगिक, शक्ति-सम्पन्न देश मे परिवर्तित होने का अनुभव नही किया है।" लेकिन अनेक व्यक्ति आर्थिक नियोजन के मार्ग के कटु आलोचक हैं। प्रो हेयक (Prof Hayek) नियोजन को दासता का मार्ग मानते है। हमारे लिए इन विरोधी विचारो का मूल्यांकन करने के लिए यह उपयुक्त होगा कि हम आर्थिक नियोजन के पक्ष और विपक्ष, दोनो पहलुओ को देख लें।

नियोजन के पक्ष मे तर्क (Arguments for Planning)

आर्थिक नियोजन की श्रेष्ठता के पक्ष मे निम्नलिखित प्रमुख तर्क दिए जाते हैं—

1. तीव्र आर्थिक विकास सम्भव—आर्थिक नियोजन की पद्धति को अपना कर ही तीव्र आर्थिक विकास किया जा सकता है। वैसे तो अमेरिका, इंगलैण्ड, फ्रांस आदि पश्चिमी देश आर्थिक नियोजन के बिना ही आर्थिक प्रगति के उच्च-स्तर पर पहुँच गए हैं। किन्तु इनमे इन्हे पर्याप्त समय लगा है और इनकी प्रगति अपेक्षाकृत कम भी रही है, जबकि, रूस, चीन आदि देशो ने नियोजन का सहारा लेकर अत्यल्प

समय में ही द्रुत आर्थिक विकास किया है। आधुनिक अर्द्ध-विकसित देशों के लिए भी तेजी से आर्थिक विकास उनके जीवन-मरण का प्रश्न बन गया है। अतः उनके लिए नियोजन-पद्धति अपनाना अधिक वांछनीय है। आर्थिक नियोजन से इन देशों का द्रुत आर्थिक विकास तो होगा ही, साथ ही, ऐसा इन देशों की अर्थ-व्यवस्था के समस्त क्षेत्रों में होगा। आर्थिक नियोजन में कृषि, उद्योग, शक्ति, सिंचाई, यातायात, संचार, सेवाओं आदि सभी क्षेत्रों में विवेकपूर्ण और संतुलित कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं। अतः नियोजन पद्धति अपनाने पर इन देशों में उत्पादन, राष्ट्रीय-आय आदि में वृद्धि होगी जिससे देशवासियों का जीवन-स्तर उच्च होगा और जनता को सुखी एवं परिपूर्ण जीवन बिता पाने की आकांक्षाएँ मूर्त रूप ग्रहण कर पाएँगी।

2. निर्णयों एवं कार्यों में समन्वय—अनियोजित अर्थ-व्यवस्था की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें असंख्य उद्योगपति, व्यापारी, उत्पादक आदि अलग-अलग आर्थिक और उत्पादक क्रियाओं में संलग्न रहते हैं और उनके निर्णयों एवं कार्यों में समन्वय करने की कोई व्यवस्था नहीं होती। वे अपनी इच्छानुसार मनमाने निर्णयों के अनुसार उत्पादन करते हैं और उनमें कोई ताल-मेल नहीं होता। प्रो. लर्नर (Prof Lerner) के अनुसार, ऐसी अर्थ-व्यवस्था उस मोटर के समान है जो चालक-रहित है किन्तु जिसके सब यात्री इसके स्टियरिंग व्हील के पास इसे अपनी इच्छानुसार घुमाने के लिए पहुँचने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसके विपरीत नियोजित अर्थ-व्यवस्था में एक केन्द्रीय नियोजन अधिकारी की देख-रेख में देश की आवश्यकताओं और साधनों के अनुसार उत्पादन सम्बन्धी निर्णय किए जाते हैं जिन्हें पूर्ण करने के लिए एक समन्वित कार्यक्रम बनाया जाता है। इसमें अर्थ-व्यवस्था में गड़बड़ी नहीं होती।

3. दूरदर्शितापूर्ण अर्थ-व्यवस्था—एक नियोजित अर्थ-व्यवस्था, अनियोजित अर्थ-व्यवस्था की अपेक्षा अधिक दूरदर्शितापूर्ण होती है। इसीलिए, इसे 'खुले हुए नेत्र वाली अर्थ-व्यवस्था' (An economy with open eyes) कहते हैं। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में नियोजन-सत्ता अर्थ-व्यवस्था में बहुत ही धीरे-धीरे होने वाले और सूक्ष्म परिवर्तनों पर भी विचार कर लेती है, जिनके बारे में अनियोजित अर्थ-व्यवस्था के व्यक्तिगत उत्पादक को बिल्कुल जानकारी भी नहीं हो पाती। एक केन्द्रीय अधिकारी इस बात का पता लगा सकता है कि कच्चे माल का तेजी से शोषण तो नहीं हो रहा है, साधनों का अपव्यय तो नहीं हो रहा है मानवीय शक्ति का दुरुपयोग तो नहीं हो रहा है या जनसंख्या तेजी से तो नहीं बढ़ रही है। यदि ऐसा हो तो इनकी रोकथाम के लिए तुरन्त कदम उठाए जा सकते हैं। इस प्रकार, नियोजित अर्थ-व्यवस्था में साधनों का भी दूरदर्शितापूर्ण उपयोग होता है।

4. व्यापार-चक्रों से मुक्ति—व्यापार-चक्र अनियोजित अर्थ-व्यवस्थाओं की सबसे बड़ी दुर्बलता है। इन अर्थ-व्यवस्थाओं में आर्थिक तेजी और मंदी के चक्र नियमित रूप से आते रहते हैं, जिनके लिए पूँजीवाद की कुछ विशेषताएँ जैसे स्वतन्त्र प्रतिस्पर्द्धा, लाभ-उद्देश्य (Profit Motive) एवं अनियन्त्रित निजी-उपक्रम आदि उत्तरदायी हैं। व्यापार-चक्र अर्थ-व्यवस्था में अस्थिरता और अनिश्चितता पैदा करके

भारी आर्थिक बुराइयों को जन्म देते है। नियोजन रहित अर्थ व्यवस्था मे व्यक्तिगत उत्पादक, अपनी इच्छानुसार उत्पादन करते हैं और इससे उत्पादन कभी माँग से कम और अधिक होने की सब सम्भावनाएँ रहती है। यही कारण है कि अनियोजित अर्थ-व्यवस्था मे समय-समय पर आर्थिक उतार-चढाव आते रहते है, जबकि नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे प्राय ऐसा नहीं होता। सन् 1930 की विश्वव्यापी मदी से अमेरिका, इग्लैण्ड आदि बहुत बुरी तरह ग्रस्त थे।

5. उत्पत्ति के साधनो का विवेकपूर्ण उपयोग—अर्द्ध विकसित देशो मे उत्पत्ति के साधनो की बडी कमी होती है इसलिए देश के अधिकतम लाभ और सामाजिक *कल्याण की दृष्टि से इन सीमित साधनो का विवेकपूर्ण उपयोग आवश्यक है।* किन्तु अनियोजित अर्थ-व्यवस्था मे आवश्यक और अनावश्यक पदार्थो के उत्पादन के बीच साधनो का विवेकपूर्ण उपयोग नही हो पाता, क्योकि व्यक्तिगत उत्पादक उन्ही वस्तुओ का उत्पादन करता है जो उसे अधिकाधिक लाभ दे, न कि उन वस्तुओ का, जो सामाजिक दृष्टि से आवश्यक हो। यदि अनाज के उत्पादन की अपेक्षा मादक पदार्थों के उत्पादन मे विनियोगो से उसे अधिक लाभ होगा तो वह अनाज के स्थान पर इन मादक पदार्थों का ही उत्पादन करेगा। इस प्रकार, अनियोजित अर्थ-व्यवस्था मे साधन *अनावश्यक कार्यो म भी लगा दिए जाते है* जबकि, *आवश्यक परियोजनाएँ साधनो के अभाव मे शुरू नही हो पाती।* किन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे सामाजिक आवश्यकताओ को दृष्टि मे रखते हुए साधनो का विवेकपूर्ण आवटन होता है।

6. प्रतिस्पर्द्धाजनित दोषो से मुक्ति—प्रतिस्पर्द्धा के कारण, जो अनियोजित पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था की एक प्रमुख सस्था है बहुमूल्य साधनो का अपव्यय होता है। सम्भावित ग्राहको का आकर्षित करने और अपनी बिक्री बढा कर लाभ कमाने के लिए विभिन्न प्रतिस्पर्द्धी फर्में विज्ञापन, विक्रय-कला आदि पर विपुल धन-राशि व्यय करती हैं। कभी कभी गलाघोट प्रतियोगिता (Cut-throat Competition) के कारण कई फर्में बरबाद हो जाती है। प्रतिस्पर्द्धा के कारण प्रतिस्पर्द्धी फर्मो मे कर्मचारियो और औद्योगिक उपस्करो का दुहराव भी होता है। प्रो डर्बिन (Durbin) के अनुसार 'प्रतिस्पर्द्धा की सस्था आर्थिक जीवन को बुद्धिमत्तापूर्ण दशा मे नही ले जाती है।' नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे प्रतिस्पर्द्धा को अत्यन्त सीमित कर दिया जाता है। अत यहाँ इन दोषो से मुक्ति मिल जाती है।

7. आर्थिक समानता की स्थापना—अनियोजित अर्थ-व्यवस्था की कुछ सस्थाओ जैसे निजी-सम्पत्ति, उत्तराधिकार और मूल्य-प्रक्रिया आदि के कारण इसमे भारी आर्थिक विषमता पायी जाती है जिसे किसी भी प्रकार उचित नही कहा जा सकता है। इन सस्थाओ के कारण आय की विषमता, धन की विषमता और अवसरो की विषमता उत्पन्न होती है, जिससे एक ओर समाज के कतिपय व्यक्तियों के पास समाज का धन केन्द्रित हो जाता है तो दूसरी ओर अधिकांश जनता की बुनियादी आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो पाती है। प्रो डर्बिन के अनुसार, "अनियोजित अर्थ-व्यवस्था मे सामाजिक समानता नहीं हो सकती है।" ऐसी स्थिति मे सामाजिक

कटुता उत्पन्न होती है और वर्ग-संघर्ष बढ़ता है। यही नहीं, ऐसी स्थिति में, समाज कुछ योग्य व्यक्तियों की सेवा से भी वंचित हो जाता है। किन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्थाओं में, अनियोजित अर्थ-व्यवस्थाओं की अपेक्षा बहुत कम आर्थिक असमानता की ओर बढ़ना है इसलिए इन देशों के लिए नियोजित अर्थ-व्यवस्था उपयुक्त है।

8. शोषण की समाप्ति—अनियोजित पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्थाओं में एक अन्य बुराई सामाजिक परोपजीविका (Social Parasitism) की पायी जाती है। अनेक व्यक्ति बिना श्रम किए ही अनार्जित आय (Unearned Income) के द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। कई व्यक्तियों को उत्तराधिकार में भारी सम्पत्ति मिल जाती है। कई व्यक्ति लगान, ब्याज-लाभ के रूप में भारी मात्रा में आय प्राप्त करते हैं। इस प्रकार वे बिना श्रम किए ही इस प्रकार की आय प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में इस प्रकार के शोषण और परोपजीविका को समाप्त किया जाता है। अनियोजित अर्थ-व्यवस्था विशाल जनसमुदाय को आय और रोजगार की सुरक्षा प्रदान करने में भी असफल रहती है। किन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था में कार्य और आवश्यकता के अनुसार पारिश्रमिक दिए जाने की व्यवस्था की जाती है और जनता की अधिक सामाजिक सुरक्षा (Social Security) का प्रबन्ध किया जाता है।

9. कृत्रिम अभावों के सृजन का भय नहीं—अनियोजित अर्थ-व्यवस्थाओं में वस्तुओं के कृत्रिम अभावों का सृजन किया जाता है ताकि उपभोक्ताओं से ऊँचे मूल्य लेकर अधिकाधिक लाभ कमाया जा सके। इसके साथ ही एकाधिकार और आर्थिक संघबन्दी के द्वारा भी मूल्य-वृद्धि करके उपभोक्ताओं का शोषण किया जाता है। किन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्थाओं में उत्पादन के साधनों, व्यवसाय आदि पर बहुधा सरकारी स्वामित्व रहता है या उद्योगपतियों, व्यापारियों आदि पर कड़ी निगरानी रखी जाती है। अतः इस प्रकार शोषण सम्भव नहीं है।

10. अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में सामाजिक लागतों की बचत—संचालन के परिणामस्वरूप उद्योगों के निजी-उपक्रम द्वारा समाज को कुछ हानिकारक परिणाम भुगतने पड़ते हैं जिन्हें सामाजिक लागतें (Social Costs or Un-compensated Disservices) कहा जाता है। ये लागतें औद्योगिक बीमारियों, चक्रीय बेकारी, औद्योगिक बेकारी, गन्दी बस्तियों का निर्माण, धुआँपूर्ण वातावरण आदि के रूप में होती हैं। इनका भार निजी उद्योगपतियों को नहीं अपितु समाज को उठाना पड़ता है। निजी-उपक्रमियों द्वारा लागू की गई तकनीकी प्रगति से भी कुछ स्थितियों में मशीनों और श्रमिकों की अप्रयुक्तता बढ़ती है किन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था में इस प्रकार की समस्याओं से बचना सम्भव है क्योंकि इन समस्याओं के समाधानों की पूर्व व्यवस्था कर ली जाती है।

11. जन-कल्याण के ध्येय की प्रमुखता—अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में आर्थिक क्रियाएँ और उत्पादन-कार्य निजी-उद्योगपतियों द्वारा निजी लाभ के लिए किया जाता है। वहाँ सामाजिक-कल्याण पर ध्यान नहीं दिया जाता। यही कारण है कि अनियोजित पूँजीवादी व्यवस्था में वस्तुओं के गुणों में गिरावट, खराब वस्तुओं की

मिलावट और मूल्य-वृद्धि द्वारा उपभोक्ताओं का शोषण किया जाता है। कम मजदूरी देकर या अधिक समय काम करा करके श्रमिकों का भी शोषण किया जाता है। इस प्रकार अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में निजी लाभ को प्रमुखता दी जाती है। इसके विपरीत, नियोजित अर्थ व्यवस्था में एक व्यक्ति के लाभ के लिए नहीं अपितु अधिकाधिक जनता के अधिकतम कल्याण के लिए आर्थिक क्रियाएँ सचालित की जाती है।

12. जनता का विशेष रूप से श्रमिक वर्ग को सहयोग मिलना— नियोजित अर्थ-व्यवस्था में सरकार को जनता का अधिकाधिक सहयोग उपलब्ध होता है क्योंकि उनको विश्वास होता है कि नियोजन के लाभ एक व्यक्ति या एक वर्ग को नही अपितु समस्त जनता को मिलने वाले हैं। ऐसी व्यवस्था में श्रमिकों का भी अधिकाधिक सहयोग मिलता है क्योंकि उनके हितो की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। इसके विपरीत, अनियोजित अर्थ व्यवस्था में निजी उत्पादकों को श्रमिक का पूर्ण सहयोग नही मिल पाता है और उनके सहयोग के अभाव में उत्पादन में अधिक प्रगति नहीं की जा सकती है। श्रम-सघो द्वारा अपनाई जाने वाली 'धीरे चलो' (Go slow) नीति का उत्पादन और आर्थिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

13. पूंजी-निर्माण की ऊँची दर—नियोजित अर्थ-व्यवस्था में एक विवेकपूर्ण योजना के अनुसार कार्य किया जाता है। साथ ही इसमे वर्तमान के साथ भावी प्रगति का भी ध्यान दिया जाता है। इसलिए उपभोग को कम करके बचत विनियोग और पूंजी-निर्माण की दर तेजी से बढ़ाई जा सकती है। सार्वजनिक उपक्रमो का विस्तार होता है और उसके लाभो का भी पुनर्विनियोग किया जाता है। उदाहरणार्थ, सोवियत रूस में विगत कुछ वर्षों में पूंजी सचय की दर सब पूंजीवादी अनियोजित अर्थ व्यवस्था वाले देशो से अधिक रही है। अर्द्ध-विकसित देशो की एक बड़ी समस्या पूंजी का अभाव है, जिसका आर्थिक विकास में बहुत महत्त्व है। अत ये देश नियोजित पद्धति द्वारा पूंजी निर्माण दर में तेजी से वृद्धि करके ही तेजी से आर्थिक विकास कर सकते हैं।

14 अधिकतम तकनीकी कुशलता (Maximum Technical Efficiency)— अधिकतम तकनीकी कुशलता के सिद्धान्त के अनुसार एक नियोजित अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन साधनों को सगठित करके कई प्रकार की मितव्ययताएँ प्राप्त की जा सकती है। एफ ज्विग (F Zweig) के अनुसार नियोजित अर्थ व्यवस्था में उत्पादक साधनो के सगठन के पैमाने में विस्तार, निजी-स्वत्वों और इच्छाओ पर ध्यान दिए बिना उनके पुनर्प्रबन्ध की सम्भावनाएं, एक ओर यन्त्र और श्रम के विशिष्टीकरण के नए अवसर प्रदान करेगी वही दूसरी ओर ससाधन का केन्द्रीकरण करेगी। परिणामस्वरूप उद्योगो का अधिक लाभदायक स्थानों में हस्तान्तरण, उत्पादन की अच्छे सगठित कारखानो का आवटन और औद्योगिक इकाइयों का विलीनीकरण या परस्पर अधिक सहयोग सम्भव होगा। इसके अतिरिक्त अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में ससाधनो का पूर्ण उपयोग सम्भव नही होता। ऐसी स्थिति में विशाल

मात्रा मे प्राकृतिक और मानवीय साधन अप्रयुक्त रहते है। अर्द्ध-विकसित देशों में पूँजी की अपेक्षा प्राकृतिक और मानवीय साधन ही अधिक रहते हैं और ये देश एक निश्चित योजनानुसार इनका दुरुपयोग करके तेजी से आर्थिक विकास कर सकते हैं।

15. राष्ट्रीय सकट के समय सर्वाधिक उपयुक्त व्यवस्था—अनियोजित अर्थ-व्यवस्था युद्ध या सकटकालीन स्थिति मे सर्वथा अयोग्य होती है। ऐसे संकटों से मुक्ति के लिए अर्थ-व्यवस्था पर विभिन्न प्रकार के नियन्त्रण लगाए जाते हैं। यहाँ तक कि पूँजीवाद का गढ़ कहलाने वाले सयुक्तराज्य अमेरिका ने भी द्वितीय महायुद्ध में विजय पाने के लिए बड़ी सीमा तक आर्थिक नियोजन को अपनाया था। इस प्रकार ऐसे समय अनियोजित अर्थ-व्यवस्था भी नियोजित अर्थ-व्यवस्थाओ मे परिवर्तित हो जाती है।

नियोजित व्यवस्था के विपक्ष में तर्क (Arguments against Planned Economy)

नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे कमियाँ भी है जिनके कारण कुछ लोगो ने इसके विपक्ष मे अपने तर्क प्रस्तुत किए है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था के विरुद्ध निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए जाते है—

1. अस्त-व्यस्त (Muddled) अर्थ-व्यवस्था—नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे बाजार और मूल्य तान्त्रिकता (Market and Price Mechanism) पर आधारित स्वय सचालकता (Automaticity) समाप्त हो जाती है। अत आर्थिक क्रियाओ में विवेकशीलता नही रहती, क्योकि योजना अधिकारी द्वारा किए गए मनमाने निर्णयों के आधार पर उत्पादन का कार्यक्रम बनाया जाता है। इसीलिए नियोजित अर्थ-व्यवस्था को अंधेरे मे छलाँग (Leap in the dark) कहा जाता है। किन्तु इसका आशय यह नही है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था से मूल्य प्रक्रिया बिल्कुल समाप्त हो जाती है। उदाहरणार्थ, सोवियत रूस मे नियोजन सत्ता द्वारा निर्धारित कीमतों (Assigned Prices) की नीति को अपनाया जाता है। वहाँ न केवल पदार्थों के मूल्य अपितु, उत्पदान के साधनो की कीमतें भी नियोजन सत्ता द्वारा निर्धारित की जाती है।[1]

2. अकुशलता में वृद्धि—पूर्णरूप से नियोजित अर्थ-व्यवस्था में समस्त उत्पादन कार्य सरकार द्वारा किया जाता है और उत्पादन मे सलग्न अधिकाँश कर्मचारी सरकारी कर्मचारी हो जाते हैं। सरकारी कर्मचारी स्वाभाविक रूप से ही निजी-कर्मचारियों की अपेक्षा कम रुचि लेते है। उनकी कार्य दशाएँ (Service Conditions) वेतन, ग्रेड, उन्नति के अवसर आदि पूर्व-निर्धारित होते हैं, अत उनमे अधिक कुशलता से कार्य करने की प्रेरणा तथा पहल की भावना समाप्त हो जाती है। पूर्ण नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो जाती है तथा सतर्कता, कुशलता मितव्ययता, नव-प्रवर्तन आदि प्रतिस्पर्द्धाजनित लाभों से समाज वंचित रह जाता है।

1. *M. L. Seth* : Theory and Practice of Economic Planning p. 39.

3. तानाशाही और लाल फीताशाही का भय—आलोचकों का यह कथन है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था में तानाशाही और लाल फीताशाही का पोषण होता है। समस्त देशवासी केवल मजदूर बन जाते हैं तथा प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा ही सब निर्णय लिए जाते हैं। ऐसी परिस्थितियों में व्यक्ति को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता और सरकार ही सर्वशक्तिमान बन जाती है। बहुधा यह कहा जाता है कि तानाशाही के बिना नियोजन असम्भव है किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। विगत कुछ वर्षों में सोवियत रूस में भी तत्कालीन प्रधानमन्त्री ख्रुश्चेव ने सरकारी मशीनरी के विकेन्द्रीकरण की योजना बनाई थी। इसके अतिरिक्त जनतान्त्रिक नियोजन (Democratic Planning) में तो यह समस्या उदय ही नहीं होती। प्रो. लास्की और श्रीमती बारबरा ऊटन के अनुसार नियोजन से मानवीय स्वतन्त्रता बढ़ती है।

4. भ्रष्टाचार और अनियमितताएँ—आलोचकों का मत है कि नियोजित व्यवस्था में राज्य कर्मचारियों में भ्रष्टाचार बढ़ता है। सरकारी कर्मचारियों के पास व्यापक अधिकार होते हैं और वे इसका उपयोग अपने हित के लिए कर सकते हैं। इस प्रकार की शंका निराधार नहीं है, पर साथ ही यह भी है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था में निजी सम्पत्ति और उत्तराधिकार जैसी संस्थाओं की समाप्ति पर सरकारी कर्मचारियों में भ्रष्टाचार स्वयमेव समाप्त हो जाने की प्रबल सम्भावना रहती है।

5. विशाल मानव-शक्ति की आवश्यकता—प्रायः यह भी कहा जाता है कि योजनाओं के निर्माण और क्रियान्वयन के लिए बड़ी मात्रा में जनशक्ति की आवश्यकता पड़ती है। प्रो. लेविस (A. W. Lewis) ने इस सन्दर्भ में कहा है कि नियोजन की सफलता के लिए पर्याप्त मात्रा में कुशल, योग्य और अनुभव प्राप्त अधिकारियों की आवश्यकता होती है और अर्द्ध-विकसित देशों में इतनी बड़ी मात्रा में कुशल व्यक्तियों का मिलना असम्भव होता है।[1] किन्तु क्या स्वतन्त्र और अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में विशाल जनशक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती। वहाँ भी मध्यस्थ, विज्ञापक, वितरक, सेल्समैन आदि के रूप में काफी व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।

6. उपभोक्ता की सार्वभौमिकता का अन्त—आलोचकों के अनुसार नियोजित अर्थ-व्यवस्था में उपभोक्ता अपनी प्रभुसत्ता को खो देता है। अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में उपभोक्ता को सम्राट् समझा जाता है क्योंकि, उसकी इच्छाओं और माँगों के अनुसार ही उत्पादन किया जाता है, किन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था में उपभोक्ता को उसी वस्तु का उपभोग करना पड़ता है, जो राज्य उसे देता है। इसके उत्तर में नियोजन के समर्थकों का कहना है कि क्या अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में उपभोक्ता वस्तुतः सम्राट् होता है ? क्या मुद्राविहीन उपभोक्ता को जो कुछ भी खरीदने योग्य न हो, सम्राट् बताना हास्यास्पद नहीं है? उपभोक्ता की पसन्द की नियोजित अर्थ-व्यवस्था में अवहेलना नहीं की जा सकती। सोवियत-संघ में भी राज्य उपक्रमों द्वारा उत्पादन योजनाओं को बनाते समय उपभोक्ताओं की पसन्दगियों पर ध्यान दिया जाता

1. *W. A. Lewis* Principles of Economic Planning, p. 19

है। मौरिस डॉब के अनुसार वहाँ उपभोक्ताओ के अधिमानों को जानने के लिए प्रदर्शनियो आदि मे जनता के चयन (Choice) को अंकित किया जाता है।

7. श्रमिकों के व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता की समाप्ति—नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे श्रमिको को स्वेच्छा से व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता नही रहती और उन्हे विभिन्न कार्यो मे आवश्यकता और परिस्थितियो के अनुसार लगाया जाता है। नियोजको के मतानुसार अनियोजित अर्थ-व्यवस्था मे भी श्रमिकों को इच्छानुसार व्यवसाय चुनने की सुविधा और सामर्थ्य कहाँ होती है। वहाँ भी जनता द्वारा अपनाए जाने वाले व्यवसाय, अभिभावकों की सम्पत्ति, हैसियत, सामाजिक प्रभाव और सिफारिश पर निर्भर करते हैं। इसके अतिरिक्त नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे भी श्रमिकों को उनकी योग्यता, इच्छा, झुकाव के अनुसार ही कार्य देने का अधिकाधिक प्रयत्न किया जाता है। श्रीमती बारबरा उटन के अनुसार, नियोजन के बिना रोजगार का स्वतन्त्रतापूर्वक चयन नही हो सकता, जबकि नियोजन मे ऐसा सम्भव है।

8. सक्रमणकाल में अव्यवस्था की सभावना—प्राय. यह भी कहा जाता है कि अनियोजित से नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे सक्रमणकाल मे पर्याप्त मात्रा मे अव्यवस्था और गडबडी हो जाती है जिससे उत्पादन और राष्ट्रीय आय पर विपरीत प्रभाव पडता है; किन्तु ऐसा किसी आधारभूत परिवर्तन के समय होता है। अत देश के दीर्घकालीन और द्रुत आर्थिक विकास के लिए इस प्रकार की अस्थाई गड़बड़ी वहन करनी ही पडती है।

9. अत्यधिक गोपनीयता—नियोजन के विरुद्ध एक तर्क यह प्रस्तुत किया जाता है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्थाएँ गुप्त रूप से सचालित की जाती है और इनमें गोपनीयता को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता है जिससे जनता का अपेक्षित सहयोग नही मिल पाता है। किन्तु यह तर्क भी निराधार है। साम्यवादी रूस मे भी नियोजन नीचे से प्रारम्भ किया जाता है जिसके निर्माण मे कारखानो के श्रमिको और सामूहिक कृषकों का हाथ होता है। इसके अतिरिक्त योजनाएँ सदा ही विचार-विमर्श, वाद-विवाद आदि के लिए जनता के समक्ष रखी जाती हैं और उन पर सुझाव आमन्त्रित किए जाते हैं। जनतान्त्रिक नियोजन मे तो नियोजन के सभी स्तरो पर जनता को सम्बन्धित किया जाता है और उसे अधिकाधिक जानकारी दी जाती है।

10. राजनीतिक कारणों से अस्थिरता का भय—नियोजित अर्थ-व्यवस्था राजनीतिक कारणो से भी अस्थिर होती है। जो राजनीतिक दल इसे चाहता है, इसके सत्ता से अलग होते ही *नियोजन का त्याग किए जाने की सम्भावना* हो सकती है, क्योकि नई सरकार नियोजन के पक्ष मे न हो। इस परिवर्तन के कारण अर्थ-व्यवस्था को हानि उठानी पडती है। प्रो. जेक्स (Jewkes) के अनुसार राजनीतिक अस्थिरता के ऐसे वातावरण मे दीर्घकालीन औद्योगिक परियोजनाएँ नही पनप सकती है। किन्तु आर्थिक नियोजन एक अच्छी चीज है और कोई भी अच्छी चीज को हर राजनीतिक दल मानता है। हाँ, नियोजन को लागू किए जाने के तरीके मे अन्तर हो सकता है।

11. सदैव किसी न किसी प्रकार के आर्थिक संकट की उपस्थिति—आलोचकों के अनुसार नियोजित अर्थ-व्यवस्था में सदैव किसी न किसी प्रकार का संकट विद्यमान रहता है, किन्तु अनियोजित अर्थ-व्यवस्था कौनसी आर्थिक प्रकृति के संकटों से मुक्त रहती है। इसमें सदैव मुद्रा-स्फीति, मुद्रा-संकुचन, बेकारी, व्यापार-चक्र, पदार्थों का अभाव, वर्ग-संघर्ष आदि संकट बने ही रहते हैं। क्या यह एक तथ्य नहीं है कि अमेरिका की अर्थ व्यवस्था में युद्धोत्तर-काल में अनेक व्यापारिक उतार-चढ़ाव आए। यह भी एक तथ्य है कि यहाँ इस प्रकार के संकटों से अर्थ-व्यवस्था को बचाने के लिए अत्यधिक व्ययसाध्य संगठन का निर्माण किया गया है। वस्तुतः नियोजित की अपेक्षा अनियोजित अर्थ व्यवस्था अधिक संकट-ग्रस्त रहती है।

12. बहुवर्षीय नियोजन अनुचित है—इस परिवर्तनशील संसार में परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। साथ ही, भविष्य भी अनिश्चित होता है। किन्तु योजना बहुधा बहुवर्षीय उदाहरणार्थ पाँच या सात, इसी प्रकार कई वर्षों के लिए बनाई जाती है। इस बीच परिस्थितियाँ और आवश्यकताएँ बदल जाती हैं। परिणामस्वरूप, नियोजन न केवल निरर्थक अपितु, हानिप्रद भी हो सकता है, किन्तु इस आलोचना में कोई सार नहीं है, क्योंकि बहुधा योजनाएँ लचीली होती हैं और उनमें परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन कर लिया जाता है।

13. अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष की सम्भावना—व्यक्तिगत राष्ट्रों द्वारा अपनाए गए राष्ट्रीय नियोजन से अन्तर्राष्ट्रीय वैमनस्य और संघर्ष उत्पन्न हो सकता है। प्रो रॉबिन्स (Prof Robins) के अनुसार राष्ट्रीय नियोजन का विश्व अर्थ व्यवस्था पर बहुत गम्भीर अस्तव्यस्त प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः अधिकांश देशों द्वारा राष्ट्रीय नियोजन अपनाने से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संकुचन, श्रमिकों की अन्तर्राष्ट्रीय गतिशीलता में बाधाएँ, पूँजी के विमुक्त प्रवाह पर अवरोध बढ़ते हैं जिससे अन्त में, राष्ट्रों में पारस्परिक तनाव और वैमनस्य का वातावरण पनपता है, किन्तु वस्तुतः यह आलोचना निराधार है। अन्तर्राष्ट्रीय-संघर्ष राष्ट्रीय नियोजन से नहीं, उग्र राष्ट्रवाद से उत्पन्न होता है जो अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में भी हो सकता है। वास्तव में नियोजन के परिणामस्वरूप पारस्परिक सहयोग बढ़ता है। अच्छी योजनाएँ प्रस्तुत करने और नियोजन पद्धति को अपनाने के कारण ही भारत को विकसित देशों, विश्व बैंक तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय-संस्थाओं से सहायता प्राप्त हुई है।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था के पक्ष और विपक्ष में उक्त तर्कों पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि नियोजन का पक्ष प्रबल है और जो कुछ तर्क इसके विरुद्ध प्रस्तुत किए गए हैं, वे अधिक सशक्त नहीं हैं। अनियोजित अर्थ-व्यवस्था के पक्ष में प्रस्तुत किए जाने वाले तर्क जैसे अर्थ-व्यवस्था की स्वयं सचालकता, उपभोक्ता की सार्वभौमिकता और बाजार-यान्त्रिकता का मुक्त कार्यवाहन आदि बातें भी सीमित मात्रा में ही सही है। अनियोजित अर्थ व्यवस्था में असमानता, अस्थिरता, असुरक्षा और एकाधिकार आदि कई बुराइयाँ होती हैं जिन्हें केवल उपचार से ही दूर नहीं किया जा सकता है। अतः इन बुराइयों की जड़ अनियोजित अर्थ-व्यवस्था को ही समाप्त कर नियोजित अर्थ-व्यवस्था की स्थापना ही श्रेयस्कर है।

नियोजन के लिए निर्धारित की जाने वाली बातें (Tasks of Planning)

अब प्रश्न उठता है कि किस प्रकार के नियोजन मे अधिकतम आर्थिक वृद्धि सम्भव है—केन्द्रित नियोजन मे अथवा विकेन्द्रित नियोजन मे ? यह एक विवादास्पद प्रश्न है। केन्द्रित नियोजन (Centralised Planning) मे, समस्त आर्थिक निर्णय केन्द्रीय सरकार द्वारा लिए जाते हैं, जबकि विकेन्द्रित नियोजन मे, निर्णय लेने की सत्ता व्यक्तिगत इकाइयो मे निहित होती है। पूर्ण केन्द्रित नियोजन अथवा पूर्ण विकेन्द्रित नियोजन असामान्य स्थितियाँ है। वास्तव मे, आर्थिक नियोजन राज्य व निजी उद्यम दोनो का सयुक्त फलन है। किसी देश से सम्बन्धित आर्थिक निर्णयो मे सरकार व निजी उद्यम का पृथक्-पृथक् तथा दोनो का सयुक्त अनुपात कितना रहता है ? यह राजनीति का प्रश्न है तथा प्रत्येक देश मे इस सम्बन्ध मे भिन्नता पायी जाती है। इसी प्रकार उत्पादन के कुछ साधनो का स्वामित्व सरकार तथा कुछ का निजी उद्यम के हाथो मे पाया जाता है। आर्थिक नियोजन किसी भी प्रकार का हो, सभी मे निम्नलिखित पाँच बाते निर्धारित की जाती हैं—

(1) वृद्धि के लक्ष्यो का निर्धारण (Fixing of the Growth Targets)
(2) अन्तिम माँग व अन्त -उद्योग माँग का निर्धारण (Determination of Final and Inter-industry Demand)
(3) विनियोग लक्ष्यो का निर्धारण (Determination of Investment Targets)
(4) योजना के लिए साधनो का सग्रह (Mobilisation of Resources for the Plan)
(5) परियोजनाओ का चुनाव (Project Selection)

1. वृद्धि के लक्ष्यों का निर्धारण (Fixing of the Growth Targets) – आय-वृद्धि, रोजगार-वृद्धि, उत्पादन-वृद्धि आदि लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु आर्थिक आयोजन किया जाता है। किसी देश की आर्थिक योजना के आय, रोजगार, उत्पादन आदि से सम्बन्धित उद्देश्यो को एक सुनिश्चित व अर्थ-युक्त दिशा प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि इन उद्देश्यो को सख्यात्मक लक्ष्यो (Quantified Targets) मे परिवर्तित किया जाए। योजना के उद्देश्य जब सख्यात्मक रूप मे परिवर्तित कर दिए जाते हैं, तब वे योजना के लक्ष्य कहे जाते हैं (Targets are quantified objectives)।

एक योजना के अन्तर्गत लक्ष्यो का निर्धारण, उत्पादन, विनियोग, रोजगार, निर्यात, आयात आदि से सम्बन्धित हो सकता है। योजना के लक्ष्य पूरे देश के स्तर ~~ क्षेत्रानुसार या विशेष औद्योगिक इकाइयों अथवा परियोजनाओं के लिए निर्धारित ~~ जा सकते हैं। लक्ष्यो का निर्धारण, उत्पादन अथवा उत्पादन कारको की भौतिक काइयो के या मूल्य-इकाइयो के रूप मे किया जाता है। लक्ष्यों का निर्धारण कच्चे ~ की मात्रा, श्रम-शक्ति, प्रशिक्षण सुविधाएँ, घरेलू तथा विदेशी मुद्रा मे उपलब्ध

वित्तीय कोष व अन्य साधनों की मात्रा को निश्चित करने में सहायक होते हैं। निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार ही इन साधनों का अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में आवटन किया जाता है।

कुछ योजनाएँ कतिपय सामूहिक लक्ष्यों (Aggregative Targets) तक सीमित होती हैं, जबकि कुछ अन्य योजनाओं के अन्तर्गत लक्ष्यों की एक लम्बी सूची तैयार की जाती है। उदाहरणार्थ, यूगोस्लाविया की पचवर्षीय योजनाओं में लगभग 600 वस्तु-समूहों से सम्बन्धित लक्ष्यों को असामान्य रूप से विस्तृत विवरण के साथ निर्धारित किया गया है। किन्तु लक्ष्यों की सख्या अधिक बडी नहीं होनी चाहिए, क्योंकि बडी सख्या में निर्धारित विस्तृत ब्यौरे वाले लक्ष्यों को प्राप्त करना अनेक कठिनाइयों से पूर्ण होता है। लेविस के मतानुसार "लक्ष्यों की एक लम्बी सूची बनाना और इसे प्रकाशित करना अधिक से अधिक अच्छे रूप में मात्र एक अनुमान या भावी परिकल्पना (Forecast or a Projection) हो सकता है तथा अपने निकृष्टतम रूप में केवल एक गणितीय परम्परा-मात्र रह जाता है जिसका कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं होता है।"[1]

2. अन्तिम माँग व अन्तःउद्योग माँग का निर्धारण (Determination of Final and Inter-industry Demand)—वृद्धि के लक्ष्यों को निर्धारित करने के बाद विकास दर निश्चित की जाती है। विकास-दर के निर्धारण के पश्चात् सेवाओं की माँग में वृद्धि व वस्तुओं की माँग में वृद्धि को पृथक् रूप से ज्ञात किया जाता है तथा राष्ट्रीय विकास-दर को क्षेत्रीय विकास-दरों में विभक्त किया जाता है। इस कार्य में दो तकनीकी प्रक्रियाएँ की जाती हैं—

(1) अन्तिम उत्पादन का निर्धारण
(2) अन्त क्षेत्रीय माँग का निर्धारण

उपभोक्ताओं द्वारा अन्तिम माँग व अन्त क्षेत्रीय माँग का योग वस्तु की कुल माँग को प्रकट करता है। अत कुल माँग के भावी अनुमानों के लिए उपभोक्ता की माँग तथा अन्त क्षेत्रीय माँग के अनुमान लगाना आवश्यक है। कुल माँग के अनुमान माँग की आय-लोच की सहायता से लगाए जा सकते हैं। मान लीजिए भोजन व वस्त्र की आय लोच—क्रमश 6 व 1 5 दी हुई है। इस स्थिति में प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय 10% होती है तो भोजन की माँग में वृद्धि $6 \times 10 = 6\%$ तथा इसी प्रकार वस्त्र की माँग में $1\ 5 \times 10 = 15\%$ वृद्धि होगी। जब इस तरह प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि तथा आय की लोचें दी हुई हों तो प्रत्येक व्यक्ति की माँग को ज्ञात किया जा सकता है। सब वस्तुओं की माँग का योगफल कुल माँग होती है। कुल माँग को ज्ञात करने की इस विधि में दो बडे दोष हैं—(1) यह कीमत के परिवर्तनों पर विचार नहीं करती है। (2) इसमें आय की लोच को योजनावधि के लिए स्थिर माना जाता है।

1 W Arther Lewis Principles of Economic Planning, pp 180-190

अन्तःउद्योग माँग के अनुमानों के लिए आदा-प्रदा प्रणाली (Input-output System) अपनाई जाती है। इस प्रणाली में आदा-प्रदा के अनुपात स्थिर माने जाते हैं। आदा-प्रदा के इन अनुपातों को तकनीकी-गुणांक (Techn cal Coeffic'ents) कहा जाता है। मैट्रिक्स की भाषा में इन गुणांकों को aij में प्रकट किया जाता है। इन तकनीकी-गुणांकों के आधार पर अन्तःउद्योग माँग की गणना की जाती है। तकनीकी गुणांकों के प्रयोग का एक बड़ा दोष यह है कि इन गुणांकों को स्थिर माना जाता है। यह एक दोषपूर्ण मान्यता है क्योंकि साधन बदलते हैं, तकनीकी बदलती है अतः गुणांकों का परिवर्तित होना स्वाभाविक है।

3. विनियोग लक्ष्यों का निर्धारण (Determination of Invesment Targets)—माँग-निर्धारण के पश्चात् दूसरा प्रश्न भौतिक लक्ष्यों को विनियोग लक्ष्यों में परिवर्तित करने का है। इस कार्य के लिए पूंजी-गुणांक अथवा पूंजी-उत्पादन अनुपातों की आवश्यकता होती है। इन अनुपातों के योग द्वारा हम कुल विनियोग-राशि का अनुमान लगा सकते हैं। पूंजी उत्पादन अनुपात, पूंजी की वह इकाई है जिसकी उत्पादन की एक इकाई उत्पन्न करने के लिए आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ, यदि 8 लाख रुपये की पूंजी-विनियोग से 2 लाख रु. का माल तैयार होता है या 2 लाख रु का माल तैयार करने के लिए 8 लाख रु की पूंजी विनियोजित करनी पड़ती है तो पूंजी-उत्पादन अनुपात इस स्थिति में 4·1 होगा।

जब कृषि, उद्योग, सेवा आदि क्षेत्रों के भौतिक लक्ष्य निर्धारित कर लिए जाते हैं तथा इन क्षेत्रों के लिए पूंजी-उत्पादन अनुपात निश्चित हो जाते हैं तब सरलता से प्रत्येक क्षेत्र के लिए आवश्यक विनियोग की मात्रा निकाली जा सकती है। प्रो. महालनोबिस ने अपने चार क्षेत्रीय विकास मॉडलों में इसी प्रकार वित्तीय आवंटन करने का प्रयास किया है। प्रो महालनोबिस मॉडल के आधार पर ही भारत की द्वितीय पंचवर्षीय योजना में अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के लिए विनियोग की राशि निर्धारित की गई थी।

4. योजना के लिए साधनों का संग्रह (Mobilisation of Resources for the Plan)—कुल विनियोग राशि का अनुमान लगाने के पश्चात् यह देखा जाता है कि विनियोगों की वित्तीय व्यवस्था किस प्रकार सम्भव हो सकेगी। यह योजना का भाग कहलाता है। आर्थिक नियोजन द्वारा विकास करने के लिए विभिन्न कार्यक्रम और बड़ी मात्रा में परियोजनाएँ प्रारम्भ की जाती हैं। इन कार्यक्रमों को सचालित करने और परियोजनाओं को पूर्ण करने के लिए बड़ी मात्रा में साधनों की आवश्यकता होती है। विकास की इन विभिन्न योजनाओं और परियोजनाओं के सचालन के लिए आवश्यक साधनों की व्यवस्था एवं उनकी गतिशीलता आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण समस्या है। डॉ. राज के अनुसार, "एक योजना नहीं के बराबर है यदि इसमें निर्धारित विकास का कार्यक्रम साधनों के एकत्रित करने के कार्यक्रम पर आधारित और समन्वित नहीं किया हो।"

आर्थिक विकास के लिए राजकीय, मानवीय और वित्तीय साधनों की आवश्यकता होती है। इन साधनों का अनुमान और उनको गतिशील बनाना मुख्यत निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है—(i) राजवित्त की मशीनरी, (ii) उद्देश्यों की प्रकृति, (iii) योजनावधि, (iv) श्रम और पूंजी की स्थिति, (v) शिक्षा एव राष्ट्रीय चेतना, (vi) अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति, (vii) मूल्यस्तर और जनता की आर्थिक दशा, (viii) विदेशी विनिमय कोष, (ix) सरकार की आर्थिक स्थिति, एव (x) आर्थिक विषमता की मात्रा।

5. परियोजनाओं का चुनाव (Project Selection)—वित्तीय व्यवस्था के पश्चात् विनियोग-परियोजनाओं (Investment Projects) का चुनाव किया जाता है। विनियोग परियोजनाएँ विनियोगों के उत्पादन से जोडने वाली शृंखला का कार्य करती हैं। किन्तु परियोजना-चुनाव एक तकनीकी कार्य है जिसमे परियोजना के लिए स्थान का चुनाव, तकनीकी का चुनाव, बाजारों का चुनाव आदि तकनीकी निर्णय सम्मिलित हैं। परियोजनाओं का चुनाव योजना-निर्माण का पाँचवाँ बडा कार्य है।

प्राय किसी योजना की मूलभूत कमजोरी परियोजनाओं के चयन को लेकर होती है। ठोस व लाभदायक परियोजनाओं के अभाव मे योजना असफल रहती है। पाकिस्तान योजना आयोग के अधिकारी डॉ महबूब-उल-हक के अनुसार "पहली और दूसरी योजनाओं की कमजोरी यह रहती है कि आयोजन का निर्माण गहराइयों मे नहीं है। एक ओर जहाँ विभिन्न क्षेत्रों मे ताल-मेल रखते हुए एक समष्टि योजना (Aggregative Plan) का प्रारूप निर्मित करने मे पूरे प्रयत्न किए गए किन्तु दूसरी ओर योजना के विभिन्न क्षेत्रो के प्रारूपों को सुविचारित व सुनियोजित परियोजनाओं से परिपूरित करने के प्रयत्न नहीं हुए।"

ग्वाटेमाला ने सन् 1960 मे एक सार्वजनिक विनियोग कार्यक्रम का उद्घाटन किया, किन्तु एक वर्ष बाद ही अमेरिकी राज्यों के सगठन ने यह प्रतिवेदित किया कि "विभिन्न मत्रालयों के लिए पूर्ण विकसित परियोजनाओं को पर्याप्त सख्या मे ज्ञात करना कठिन हो रहा है।"

परियोजनाओं का चयन करने की अनेक विधियाँ हैं। सामान्यत परियोजनाओं का चयन वर्तमान मूल्य-विधि अथवा लागत-लाभ विश्लेषण विधि द्वारा किया जाता है।

6 योजना की क्रियान्विति— योजना के क्रियान्वयन का यह कार्य सरकारी विभागों, सरकारी और गैर-सरकारी एजेन्सियों द्वारा किया जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यक्रमों का सचालन सरकार या उसकी एजेन्सियों द्वारा तथा निजी क्षेत्र के कार्यक्रम निजी उपक्रमियों द्वारा पूर्ण किए जाते हैं। सरकार भी इन्हे निर्धारित नियमानुसार सहायता देती है। इस प्रकार योजना की सफलता बहुत कुछ इसी अवस्था पर निर्भर होती है। अनेक देशों मे योजना-निर्माण पर अधिक एव क्रियान्वयन पर कम ध्यान दिया जाता है। अत योजना की सफलता के लिए इस स्तर पर कोई निष्क्रियता एव शिथिलता नहीं बरती जानी चाहिए।

योजना की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि समय-समय पर उसके संचालन और उसकी प्रगति का मूल्यांकन किया जाता रहे। अतः समय-समय पर इस बात का लेखा-जोखा लिया जाता है कि योजना में लक्ष्यों के अनुपात मे कितनी प्रगति हुई और उसमे कमियां कहां और क्यो हैं? इसके लिए उत्पादन की प्रत्येक शाखा की तांत्रिक और आर्थिक दोनो दृष्टियो से समालोचना की जानी चाहिए। भारत मे योजना के मूल्यांकन का कार्यक्रम 'मूल्यांकन संगठन' (Programme Evaluation Organisation) द्वारा किया जाता है।

नियोजन की सफलता की शर्तें (Conditions for Success of Planning)

आर्थिक विकास के लिए आधुनिक युग मे नियोजन कई अर्द्ध-विकसित देशों मे अपनाया जा रहा है। किन्तु नियोजन कोई ऐसी प्रणाली नही है जिसके द्वारा स्वयमेव ही आर्थिक विकास हो जाए। योजनाओ की सफलताओं के लिए कुछ शर्तों का होना आवश्यक है। सफलता की ये शर्तें विभिन्न देशों और परिस्थितियो के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। किन्तु सामान्य रूप से ये शर्तें सर्वत्र आवश्यक हैं—

1. पर्याप्त एवं सही आंकड़े और सूचनाएँ—नियोजको को योजना-निर्माण और क्रियान्वयन के लिए सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं का, वर्तमान परिस्थितियों का तथा राष्ट्रीय आवश्यकताओं का ज्ञान होना चाहिए। वर्तमान स्थिति क्या है और इसमे कितना सुधार किया जाना चाहिए? यह सुधार किस प्रकार किया जा सकता है और इसके लिए कौन-से साधनों की कितनी मात्रा में आवश्यकता है। इन सब बातो का निर्णय विश्वसनीय और पर्याप्त आँकड़ों के आधार पर ही किया जा सकता है अत· नियोजन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन, उपभोग, आय, व्यय, बचत, विनियोग, उपलब्ध कच्चे माल, शक्ति के साधनो की मात्रा, बाजार की माँग, आयात-निर्यात, मूल्य-स्तर, जनसख्या आदि के बारे मे विश्वसनीय और पर्याप्त आँकड़ो का संकलन किया जाए। असत्य तथ्यों और सूचनाओ के आधार पर बनाई गई योजनाएँ असफल हो सकती हैं। अत. साँख्यिकीय स्थिति ऐसी होनी चाहिए जो नियमित रूप से निरन्तर सूचना प्रदान करती रहे ताकि परिस्थितियों मे परिवर्तन आने पर योजनाओं मे भी यथासमय समायोजन किया जा सके।

2. सुनिश्चित और स्पष्ट उद्देश्यों का होना—नियोजन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसके सुनिश्चित और सुस्पष्ट उद्देश्य निश्चित किए जाएँ जो देश की आवश्यकताओं के अनुरूप हो। परिस्थितियो के अनुरूप उद्देश्यो और लक्ष्यों का निर्धारण नही करने से पूर्ण रूप से वे परिपूर्ण नही हो पाते। इसी प्रकार, यदि लक्ष्य सुनिश्चित और स्पष्ट नही हुए तो वाँछनीय दिशा में तत्परता के साथ प्रयत्न नही किए जाएँगे। परिणामस्वरूप लक्ष्यों की पूर्ति अधूरी होगी तथा नियोजन असफल हो जाएगा। अतः परिस्थितियो के उपयुक्त तथा सुनिश्चित उद्देश्य होने चाहिए। साथ ही परिस्थितियों में परिवर्तन की गुंजाइश होनी चाहिए।

3. नियोजन माँग विश्लेषण पर आधारित होना चाहिए— आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे विभिन्न उत्पादक इकाइयो का विस्तार होता है और उत्पादन मे वृद्धि होती है। अत विकास उत्पादन की विभिन्न शाखाओ मे विनियोग, कच्चे माल का उपयोग और रोजगार की मात्रा मे वृद्धि होती है जिससे उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ मौद्रिक आय बढती है। किन्तु ऐसी स्थिति मे आय उपार्जित करने वाले विभिन्न वर्गों के आय-वितरण की प्रकृति मे भी परिवर्तन होता है, क्योकि इस प्रक्रिया के विभिन्न क्षेत्र या उत्पादक इकाइयो का विकास विभिन्न मात्रा मे हो सकता है। यहाँ तक कि कुछ के सकुचन की सम्भावना से भी इन्कार नही किया जा सकता। अत इस विकास प्रक्रिया की उत्तरोत्तर प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार की उत्पादित की गई इन वस्तुओ और सेवाओ की माँग और पूर्ति के मध्य सन्तुलन रखा जाए।

4. प्राथमिकताओं का निर्धारण (Fixing of Priorities)—आर्थिक नियोजन को अपनाने वाले कार्यक्रम और आवश्यकताएँ अनन्त होते है किन्तु भौतिक और वित्तीय साधन अपेक्षाकृत सीमित होते है अत वैज्ञानिक नियोजन की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता यह है कि इन विभिन्न कार्यक्रमो मे देश की आवश्यकताओ और परिस्थितियो के अनुसार प्राथमिकताएँ निर्धारित कर ली जाएँ। नियोजन का मुख्य उद्देश्य उत्पादन मे अधिकतम वृद्धि करना है, इस हेतु देश की ससाधन स्थिति, आवश्यकताएँ और विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उद्योगो के विकास को प्राथमिकता और महत्त्व दिया जाना चाहिए। योजना मे ऐसी परियोजनाओ को ही सम्मिलित किया जाना चाहिए जिनसे राष्ट्रीय-कल्याण मे अधिकतम योग प्राप्त हो सके। योजना मे यह निश्चय कर लिया जाना चाहिए कि विभिन्न क्षेत्रो मे से किस क्षेत्र को प्राथमिकता दी जाए जैसे उद्योगो के विकास को प्राथमिकता दी जाए अथवा कृषि को। इन विभिन्न क्षेत्रो (Sectors) मे से भी यह निर्णय किया जाना चाहिए कि इनके किस पहलू पर अधिक बल दिया जाए और किन परियोजनाओ पर पहले ध्यान दिया जाए। इस प्रकार साधनो, विदेशी विनिमय की उपलब्धि, राष्ट्रीय महत्त्व के सन्दर्भ मे विवेकपूर्ण निर्णय के आधार पर प्राथमिकताएँ निर्धारित की जानी चाहिए और साधनो का आवटन भी इसी के अनुसार किया जाना चाहिए। प्राथमिकताओ का निर्धारण जितना उपयुक्त होगा, योजना की सफलता उतनी ही अधिक होगी।

5. साधनो की उपलब्धि (Availability of Resources)—योजना मे अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे विभिन्न कार्यक्रम निर्धारित किए जाते हैं। इनकी सफलता पर ही योजना की सफलता निर्भर होती है। योजना के इन कार्यक्रमो और विभिन्न परियोजनाओ को पूर्ण करने के लिए पर्याप्त मात्रा मे भौतिक (Phys cal) और वित्तीय (Financial) साधनो की आवश्यकता होती है। योजना की सफलता के लिए बडी मात्रा मे भौतिक साधन जैसे कच्चा माल, मशीनें, यन्त्र, औजार, रसायन, इस्पात, सीमेंट, तकनीकी जानकारी आदि की आवश्यकता होती है जिसे

देश और विदेश से उपलब्ध किया जाना चाहिए। इसी प्रकार वित्तीय साधनों की आवश्यकतानुसार उपलब्धि भी बहुत महत्वपूर्ण है जो आन्तरिक या बाह्य स्रोतों से प्राप्त की जानी चाहिए। वित्तीय साधनों की व्यवस्था बड़ा दुष्कर कार्य होता है क्योंकि इसमें सफलता कई बातों पर निर्भर करती है जैसे राष्ट्रीय आय की मात्रा, पूँजी-उत्पादन का अनुपात (*Capital-output ratio*), आन्तरिक बचत और विनियोग-दर, भुगतान-सन्तुलन की मात्रा, जनता की कर-देय क्षमता, सरकार की कर एकत्रीकरण की क्षमता, योजनाओं में जनता का विश्वास, सरकार की आर्थिक स्थिति, घाटे की वित्त-व्यवस्था की सीमा, विदेशी सहायता आदि। अतः योजनाओं की सफलता इन भौतिक और वित्तीय साधनों की उपलब्धि पर अधिक निर्भर करती है। कई बार साधनों के अभाव में योजना के कार्यक्रमों में कटौती करनी पड़ती है।

6. विभिन्न क्षेत्रों में सन्तुलन बनाए रखना (Maintaining Balance Between Different Sectors)—योजना की सफलता के लिए आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों और उद्योगों का सन्तुलित विकास किया जाएगा। अर्थ-व्यवस्था में एक उद्योग और यहाँ तक कि उत्पादक की एक इकाई भी माँग और पूर्ति के द्वारा अन्य से परस्पर सम्बन्धित होती है। अतः उद्योग का विकास तब तक असम्भव है जब तक कि अन्य के उत्पादन में भी वृद्धि न हो। एक उद्योग का द्रुतगति से विकास करने और अन्य उद्योगों की अवहेलना करने से अर्थव्यवस्था में कई प्रकार की जटिलताएँ और अवरोध उत्पन्न हो जाते हैं। अतः नियोजन की सफलता के लिए अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों जैसे कृषि, उद्योग, यातायात, विद्युत्, सामाजिक सेवाओं आदि का सन्तुलित विकास किया जाना चाहिए। इसी प्रकार देश के समस्त प्रदेशों या भागों का भी सन्तुलित विकास किया जाना चाहिए। वास्तव में नियोजन की सफलता इसी बात में निहित है।

7. उचित आर्थिक संगठन (Suitable Economic Organisation)—उचित आर्थिक संगठन की उपस्थिति में ही नियोजन सफल हो सकता है। अतः नियोजन की सफलता के लिए उचित आर्थिक ही नहीं, अपितु सामाजिक संगठन का भी निर्माण किया जाना चाहिए। अर्द्ध-विकसित देशों में इस दृष्टि से वर्तमान सामाजिक आर्थिक संगठन और संरचना के पुनर्गठन की आवश्यकता है। उपयुक्त वातावरण के अभाव में आर्थिक प्रगति असम्भव है। इसलिए, विकासार्थ नियोजन की सफलता के लिए वर्तमान आर्थिक संगठन में इस प्रकार परिवर्तन करना चाहिए और नवीन आर्थिक संस्थाओं का सृजन करना चाहिए जिससे योजनाएँ सफल और आर्थिक विकास की तीव्रता से हो सके। इस सम्बन्ध में अर्थ-व्यवस्था पर सरकारी नियन्त्रण में वृद्धि, सहकारिता का विकास, भूमि-सुधार कार्यक्रमों की क्रियान्विति, सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार, विदेशी व्यापार का पुनर्गठन आदि कदम अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशों के लिए आवश्यक हैं।

8. योजना के क्रियान्वयन की उचित व्यवस्था (Proper Machinery for Plan Implementation)—योजना निर्माण से भी अधिक महत्वपूर्ण क्रियान्वयन

की अवस्था है। अतः इसको क्रियान्वित करने और निर्धारित कार्यक्रमों पर पूर्णरूप से अमल कराने के लिए सरकारी और निजी दोनों क्षेत्रों में कुशल संगठनों का निर्माण अत्यन्त आवश्यक है। योजना की सफलता उन व्यक्तियों पर निर्भर करती है जो इसे कार्यरूप में परिणत करने में संलग्न होते हैं। अतः यह कार्य ऐसे व्यक्तियों को सुपुर्द किया जाना चाहिए जो योजना के उद्देश्यों को समझते हों, उनमें आस्था रखते हों और जिनमें योजना के कार्यक्रमों को सम्पन्न करने के लिए आवश्यक कुशलता, अनुभव, ईमानदारी और कर्त्तव्यपरायणता हो। योजना के संचालन का मुख्य कार्य सरकार का होता है और इसके लिए 'दृढ़, सशक्त और भ्रष्टाचार रहित प्रशासन' की आवश्यकता है। अर्द्ध-विकसित देशों में बहुधा निर्बल सरकार होती है, आन्तरिक अशान्ति होती है और कभी-कभी विदेशी सरकार उनकी योजनाओं में हस्तक्षेप करती है और उनमें अपनी इच्छानुसार परिवर्तन पर बल देती है। नियोजन की सफलता के लिए इन परिस्थितियों की समाप्ति आवश्यक है। नियोजन की सफलता के लिए यह भी वांछनीय है कि वहाँ की केन्द्रीय सरकार राज्य-सरकारों की अपेक्षा शक्तिशाली हो और उसे विशेष अधिकार मिले हों जिनसे वह अपनी राजनीतिक इकाइयों में भी योजनाओं को लागू करने में सफल हो सके।

9. जनता का सहयोग (Public Co-operation Forthcoming)—योजनाओं की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसे पूरा जन-समर्थन और जन-सहयोग मिले। प्रजातान्त्रिक नियोजन में तो इसका विशेष महत्त्व है, क्योंकि वहाँ सरकार को भी शक्ति जनता द्वारा प्राप्त होती है। प्रो आर्थर लेविस के अनुसार, "जन-उत्साह आर्थिक विकास के लिए स्निग्धता प्रदान करने वाला तेल और पैट्रोल दोनों ही है। यह एक ऐसी गतिमान शक्ति है जो लगभग समस्त बातों को सम्भव बनाती है।" योजनाओं में जनता द्वारा अधिकाधिक सहयोग तब प्राप्त होता है जब वह योजनाओं में अपने आपको भागीदार (Participant) समझे। वह यह समझे कि "यह योजना हमारी है, हमारे लिए है, हमारे द्वारा है तथा इनसे जनता को ही समान रूप से लाभ मिलने वाला है।" साथ ही, उन्हें यह भी विश्वास होना चाहिए कि योजनाएँ उपयुक्त हैं और योजनाओं में धन का दुरुपयोग नहीं किया जा रहा है। ऐसा तभी हो सकता है, जबकि योजना-निर्माण और क्रियान्वयन में जनता का सहयोग हो। भारतीय योजनाओं में जन-प्रतिनिधि संस्थाओं के रूप में विभिन्न स्तरों पर ग्राम पंचायतों, पंचायत-समितियों, जिला-परिषदों तथा राज्य और केन्द्रीय विधान मण्डलों को सम्बन्धित किया जाता है। जनता का समर्थन और लोक सहयोग प्राप्त करने का एक तरीका यह भी है कि योजनाओं का अधिकाधिक प्रचार किया जाए, जिससे जनता 'योजनाओं की सिद्धि में अपनी समृद्धि' समझे।

10. उच्च राष्ट्रीय चरित्र (High National Character)—राष्ट्रीय चरित्र की उच्चता लगभग सभी बातों को सम्भव बनाती है। योजना की सफलता के लिए भी यह तत्त्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि देश में परिश्रमशील, कर्त्तव्य-परायण, ईमानदार और राष्ट्रीयता की भावना से युक्त उच्च चरित्र वाले व्यक्ति होंगे तो

योजनाओं की सफलता की अधिक सम्भावनाएँ होगी किन्तु, अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशों में उच्च राष्ट्रीय चरित्र का अभाव होता है। वहाँ स्वदेश से अधिक स्व-उदर को समझा जाता है। ऐसी स्थिति में योजनाओं में अपेक्षित सफलता नहीं मिलती है। वस्तुतः निर्धनता के दयनीय निम्न-स्तर पर उच्च-नैतिकता की बात करना व्यावहारिकता की उपेक्षा करना है, किन्तु इस मध्यावधि में भी शिक्षा, प्रचार आदि के द्वारा बहुत कुछ किया जा सकता है।

11. राजनीतिक एवं प्राकृतिक अनुकूलता (Favourable Political and Natural Conditions)—आर्थिक विकास के लिए अपनाए गए नियोजन के लिए राजनीतिक परिस्थितियों का अनुकूल होना आवश्यक है। विदेशों से विशेष रूप से विकसित देशों से अच्छे सम्बन्ध होने पर अधिक विदेशी सहायता और सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। अर्द्ध-विकसित देशों के लिए इसका बहुत महत्त्व है। किन्तु यदि किसी देश को अन्य देशों के आक्रमण का मुकाबला करना पड रहा हो या इस प्रकार की आशंका हो तो उसके साधन आर्थिक विकास की अपेक्षा सुरक्षा प्रयत्नों पर व्यय किए जाते है। परिणामस्वरूप, आर्थिक नियोजन की सफलता संदिग्ध हो जाती है। तृतीय योजना की सफलता पर भारत पर चीनी और पाकिस्तानी आक्रमणों का विपरीत प्रभाव पडा। इसी प्रकार बाढ, भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि प्राकृतिक प्रकोप भी अच्छी से अच्छी योजनाओं को असफल बना देते हैं। अर्द्ध-विकसित देशों मे तो इन प्राकृतिक प्रकोपों का विशेष कुपरिणाम होता है, क्योंकि ऐसी अधिकांश अर्थ-व्यवस्थाओं मे प्रकृति का प्रभाव अधिक होता है। भारत की तृतीय पंचवर्षीय योजना की कम सफलता का एक प्रमुख कारण सूखा, बाढ और मौसम की खराबी रही है। गत वर्षों मे अर्थ-व्यवस्था मे सुधार के जो लक्षण प्रकट हुए है, उसका बडा श्रेय भी प्रकृति की अनुकम्पा को ही हैं।

अन्य शर्तें—नियोजन की सफलता के लिए अपर्याप्त शर्तों के अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य शर्तों का होना भी आवश्यक है—

1. योजना के प्रभावशाली क्रियान्वयन की व्यवस्था और इसके लिए सरकारी व निजी दोनों ही क्षेत्रों मे कुशल संगठन का निर्माण।

2. योजना-पूर्ति के समस्त साधनों का उचित मूल्यांकन किया जाए और उत्पादन के लक्ष्यों का निर्धारण उचित व सन्तुलित ढंग से हो।

3. दीर्घकालीन और अल्पकालीन नियम यथासम्भव साथ-साथ चलें, अर्थात्, दीर्घकालीन योजना के साथ-साथ वार्षिक योजना भी बनाई जाए, ताकि योजना के विभिन्न वर्षों मे साधनों का समान उपयोग हो और समान रूप से प्रगति की जा सके।

4. योजना की उपलब्धियों का मध्यावधि मूल्यांकन किया जाए, ताकि कमियों का पता लगाकर उन्हें दूर किया जा सके।

5. विकेन्द्रित नियोजन किया जाए अर्थात् योजनाएँ स्थानीय स्तर पर बनाई जाएँ और राज्य-स्तर व केन्द्रीय-स्तर पर उनका समन्वय किया जाए।

6 योजना के उद्देश्यो, लक्ष्यो, प्राथमिकताओ, साधनो आदि का जनता मे पर्याप्त प्रचार और विज्ञापन किया जाए तथा लोगो मे योजना के प्रति चेतना, जागृति व रुचि उत्पन्न की जाए।

7 नियोजन राष्ट्र के लिए हो, न कि किसी वर्ग विशेष या दल विशेष के लिए।

उपरोक्त आवश्यकताओ (अपेक्षाओ) के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि जनसख्या-वृद्धि पर उचित नियन्त्रण रखा जाए। जनसख्या का विस्फोट अच्छे से अच्छे नियोजन को असफल बना सकता है। पुनश्च यह भी जरूरी है कि नियोजन को एक निरतर होने वाली प्रक्रिया के रूप मे ग्रहण किया जाए। एक योजना की सफलता दूसरी एव दूसरी योजना की सफलता तीसरी योजना की सफलता के लिए सीढ़ी तैयार करती है और इस प्रकार उन सीढियो का सिलसिला निरन्तर चलता रहता है क्योकि आर्थिक विकास की कोई सीमा नही होती।

योजनाओं की सफलता की अधिक सम्भावनाएँ होंगी किन्तु, अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशो मे उच्च राष्ट्रीय चरित्र का अभाव होता है। वहाँ स्वदेश से अधिक स्व-उदर को समझा जाता है। ऐसी स्थिति मे योजनाओ मे अपेक्षित सफलता नही मिलती है। वस्तुतः निर्धनता के दयनीय निम्न-स्तर पर उच्च-नैतिकता की बात करना व्यावहारिकता की उपेक्षा करना है, किन्तु इस मध्यावधि मे भी शिक्षा, प्रचार आदि के द्वारा बहुत कुछ किया जा सकता है।

11. राजनीतिक एवं प्राकृतिक अनुकूलता (Favourable Political and Natural Conditions)—आर्थिक विकास के लिए अपनाए गए नियोजन के लिए राजनीतिक परिस्थितियों का अनुकूल होना आवश्यक है। विदेशो से विशेष रूप से विकसित देशों से अच्छे सम्बन्ध होने पर अधिक विदेशी सहायता और सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। अर्द्ध-विकसित देशो के लिए इसका बहुत महत्त्व है। किन्तु यदि किसी देश को अन्य देशो के आक्रमण का मुकाबला करना पड रहा हो या इस प्रकार की आशंका हो तो उसके साधन आर्थिक विकास की अपेक्षा सुरक्षा प्रयत्नों पर व्यय किए जाते है। परिणामस्वरूप, आर्थिक नियोजन की सफलता सदिग्ध हो जाती है। तृतीय योजना की सफलता पर भारत पर चीनी और पाकिस्तानी आक्रमणो का विपरीत प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार बाढ, भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि प्राकृतिक प्रकोप भी अच्छी से अच्छी योजनाओ को असफल बना देते हैं। अर्द्ध-विकसित देशो मे तो इन प्राकृतिक प्रकोपो का विशेष कुपरिणाम होता है, क्योकि ऐसी अधिकांश अर्थ-व्यवस्थाओ मे प्रकृति का प्रभाव अधिक होता है। भारत की तृतीय पचवर्षीय योजना की कम सफलता का एक प्रमुख कारण सूखा, बाढ और मौसम की खराबी रही हैं। गत वर्षों मे अर्थ-व्यवस्था मे सुधार के जो लक्षण प्रकट हुए हैं, उसका बड़ा श्रेय भी प्रकृति की अनुकम्पा को ही है।

अन्य शर्तें—नियोजन की सफलता के लिए अपर्याप्त शर्तों के अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य शर्तों का होना भी आवश्यक है—

1. योजना के प्रभावशाली क्रियान्वयन की व्यवस्था और इसके लिए सरकारी व निजी दोनों ही क्षेत्रों मे कुशल सगठन का निर्माण।

2. योजना-पूर्ति के समस्त साधनों का उचित मूल्यांकन किया जाए और उत्पादन के लक्ष्यों का निर्धारण उचित व सन्तुलित ढग से हो।

3. दीर्घकालीन और अल्पकालीन नियम यथासम्भव साथ-साथ चलें, अर्थात्, दीर्घकालीन योजना के साथ-साथ वार्षिक योजना भी बनाई जाए, ताकि योजना के विभिन्न वर्षों मे साधनों का समान उपयोग हो और समान रूप से प्रगति की जा सके।

4. योजना की उपलब्धियों का मध्यावधि मूल्यांकन किया जाए, ताकि कमियों का पता लगाकर उन्हें दूर किया जा सके।

5. विकेन्द्रित नियोजन किया जाए अर्थात् योजनाएँ स्थानीय स्तर पर बनाई जाएँ और राज्य-स्तर व केन्द्रीय-स्तर पर उनका समन्वय किया जाए।

6 योजना के उद्देश्यो, लक्ष्यो, प्राथमिकताग्रो, साधनो ग्रादि का जनता मे पर्याप्त प्रचार ग्रौर विज्ञापन किया जाए तथा लोगो मे योजना के प्रति चेतना, जागृति व रुचि उत्पन्न की जाए ।

7 नियोजन राष्ट्र के लिए हो, न कि किसी वर्ग विशेष या दल विशेष के लिए ।

उपरोक्त ग्रावश्यकताग्रो (ग्रपेक्षाग्रो) के ग्रतिरिक्त यह भी ग्रावश्यक है कि जनसख्या-वृद्धि पर उचित नियन्त्रण रखा जाए। जनसख्या का विस्फोट ग्रच्छे से ग्रच्छे नियोजन को ग्रसफल बना सकता है । पुनश्च यह भी जरूरी है कि नियोजन को एक निरन्तर होने वाली प्रक्रिया के रूप मे ग्रहण किया जाए । एक योजना की सफलता दूसरी एव दूसरी योजना की सफलता तीसरी योजना की सफलता के लिए सीढी तैयार करती है ग्रौर इस प्रकार उन सीढियो का सिलसिला निरन्तर चलता रहता है क्योकि ग्रार्थिक विकास की कोई सीमा नही होती ।

7 बचत-दर एवं विकास-दर को प्रभावित करने वाले तत्त्व

(FACTORS AFFECTING THE SAVING RATE AND THE OVERALL GROWTH RATE)

आर्थिक विकास पूंजी-निर्माण-दर पर निर्भर करता है। पूंजी-निर्माण-दर विनियोग-दर द्वारा निर्धारित होती है तथा विनियोग-दर घरेलू बचत और विदेशी सहायता पर निर्भर करती है। विदेशी ऋण देश की अर्थ-व्यवस्था मे ब्याज व मूलधन के भुगतान के रूप मे भार स्वरूप समझे जाते हैं। अत. घरेलू बचत ही पूंजी-निर्माण का मुख्य स्रोत होती है। बचत मे वृद्धि आन्तरिक व बाह्य स्रोतो द्वारा की जा सकती है। आन्तरिक स्रोतो के अन्तर्गत बचत मे वृद्धि ऐच्छिक रूप से उपभोग मे कटौती द्वारा की जा सकती है तथा अनिवार्य रूप से बचत मे वृद्धि अतिरिक्त करो तथा सरकार के लिए ऋण देकर की जाती है। अर्द्ध-बेरोजगार श्रम को उत्पादन मे लगाकर तथा मुद्रा-स्फीति के माध्यम द्वारा भी बचत मे वृद्धि सम्भव है। बाह्य स्रोतो के अन्तर्गत, आर्थिक विकास की वित्तीय व्यवस्था विदेशी पूंजी के विनियोग, उपभोग वस्तुओं के आयातो मे कटौती तथा देश की व्यापार-शर्तों मे सुधार द्वारा की जा सकती है।

बचत-दर को प्रभावित करने वाले तत्त्व

1. घरेलू बचत (Domestic Savings)—घरेलू बचत, उत्पादन मे वृद्धि अथवा उपभोग मे कटौती या दोनों प्रकार से, बढाई जा सकती है। अर्द्ध-विकसित देश मे, देश की जनसख्या का अधिकांश भाग, निर्वाह-स्तर पर जीवनयापन करता है। इसलिए ऐच्छिक बचत की मात्रा बहुत कम होती है। किन्तु इन देशो मे उच्च आय वाले भूस्वामियो, व्यापारियों तथा व्यवसायियो का एक छोटा वर्ग भी होता है, जो प्रदर्शनकारी उपभोग (Conspicuous Consumption) पर एक बडी राशि व्यय करता है। इस प्रकार के उपभोग को प्रतिबन्धित करके बचत म वृद्धि की जा सकती है।

इन देशो मे मजदूरी व वेतनभोगी वर्ग के व्यक्तियो की प्रवृत्ति बचत करने की अपेक्षा व्यय करने की अधिक होती है। यह वर्ग भी प्रदर्शन प्रभाव (Demonstration Effect) से प्रभावित होता है, फलस्वरूप इस वर्ग की बचत और भी कम हो जाती है।

भूस्वामियो की लगान-आय इन देशो मे उत्तरोत्तर वृद्धि द्वारा हो सकती है किन्तु समाज का यह वर्ग अपनी बचत को उत्पादक-विनियोगो के रूप मे प्रयुक्त नहीं करता है। विकसित देशो मे लगान भी उत्पादक-विनियोगो के लिए बचत का एक स्रोत है।

इस अर्थव्यवस्था मे वितरित व अवितरित दोनो प्रकार के लाभ, बचत के महत्त्वपूर्ण माध्यम होते हैं। "यदि लाभो को बचतो का मुख्य स्रोत माना जाता है तो एक ऐसी अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय मे, जिसमे बचत-दर 5 प्रतिशत से बढ़कर 12 प्रतिशत हो जाती है, लाभो के अनुपात मे अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि परिलक्षित होनी चाहिए।"[1]

बचत आय-स्तर पर निर्भर करती है। आय के निम्न स्तरो पर बचतें प्राय नगण्य होती हैं। जैसे-जैसे आय बढती है, बचत-दर मे भी वृद्धि होती है। किन्तु प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि से बचत मे वृद्धि आवश्यक नहीं है। बचत आय के वितरण पर निर्भर करती है। लाभ-अर्जित करने वाले साहसियो के वर्ग के उदय के कारण बचत-दर मे वृद्धि होती है। यह वर्ग अपने लाभो का पुन विनियोजन करता है। लेविस के अनुसार, "राष्ट्रीय आय मे बचत का अनुपात केवल आय की असमानता का ही फलन नहीं है, बल्कि अधिक सूक्ष्म रूप मे यह राष्ट्रीय आय मे लाभो के अनुपात का फलन है।"[2]

2. करारोपण (Taxation)—अर्थव्यवस्था मे अनिवार्य बचत की उत्पत्ति के लिए करो का प्रयोग किया जा सकता है। यदि कर लाभो पर लगाए जाते हैं तो बचत-दर कम होती है तथा विनियोगो पर इनका विपरीत प्रभाव होता है। यद्यपि लोगो की बचत को कर कम करते हैं, किन्तु सरकार के विनियोग व्यय मे वृद्धि करते हैं, तो ऐसे करो से पूँजी-निर्माण दर कम नहीं होती हैं। "जब सरकार लाभो पर भारी दर से कर लगाती है, परिणामस्वरूप, निजी बचत-दर कम होती है, तब कुल बचत-दर को गिरने से रोकने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि सरकारी बचत मे वृद्धि की जाए।"[3]

3. सरकार को अनिवार्य ऋण देना (Compulsory Lending to Government)—करो का एक विकल्प सरकार की अनिवार्य ऋण देने की योजना है। एक निश्चित राशि से अधिक उपार्जित करने वाले व्यक्तियो से सरकार उनकी आय का एक भाग, अनिवार्य रूप से ऋण के रूप मे ले सकती है। बचत-दर मे

1 *W A Lewis* Theory of Economic Growth, p 233
2 *W A Lewis*. Ibid, p 227.
3 *W A Lewis* Ibid, p 242.

वृद्धि का एक साधन यह भी है, किन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि सरकारी प्रतिभूतियाँ इस प्रकार की हो जो सम्भावित बचत-कर्त्ताओ (Potential Savers) को आकर्षित कर सके।

4. उपभोग आयातों पर प्रतिबन्ध (Restriction of Consumption Imports)—आयातित-वस्तुओ के उपभोग मे कटौती द्वारा भी बचत-दर को बढ़ाया जा सकता है। उपभोग-वस्तुओ के आयातो मे कटौती द्वारा विदेशी विनिमय की बचत होगी, पूँजीगत-वस्तुओ के आयात पर व्यय किया जा सकता है। उपभोग-वस्तुओं के स्थान पर, पूँजीगत-वस्तुओ के आयातो से आर्थिक विकास-दर बढती है। एक ओर जहाँ आयातित उपभोग-वस्तुओ मे कटौती की जाती है, वहाँ दूसरी ओर उपभोग वस्तुओ का घरेलू उत्पादन नही बढने दिया जाना चाहिए, अन्यथा बचत-दर में इस तत्त्व से वृद्धि नही हो पाएगी।

5. मुद्रा-स्फीति (Inflation)—मुद्रा-स्फीति भी एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। जब मूल्यो मे वृद्धि होती है, तब लोग उपभोग मे कटौती करते है। परिणामस्वरूप, उपभोग-वस्तुओ का उत्पादन कम होता है। अत. उपभोग-वस्तुओ के क्षेत्र से साधन-मुक्त होकर पूँजीगत-वस्तुओ के उत्पादन के लिए उपलब्ध होते है। इस प्रकार की बचत अनैच्छिक बचते (Forced Savings) कहलाती हैं।

6. गुप्त-बेरोजगारी को समाप्ति करना (To Remove Disguised Unemployment)—अतिरिक्त-श्रम को निर्वाह-क्षेत्र से पूँजीवादी-क्षेत्र मे स्थानान्तरित करके पूँजी-निर्माण किया जा सकता है। जिन श्रमिको की सीमान्त-उत्पादकता कृषि मे शून्य है, उनको कृषि से हटाकर पूंजी-परियोजनाओ पर लगाया जा सकता है। इस प्रकार सम्पूर्ण निर्वाह-कोष (Subsistence Fund) को पूँजीगत परियोजनाओ मे प्रयुक्त किया जा सकता है। परन्तु इस प्रक्रिया मे कुछ बाधाएँ आती है। प्रथम, गैर-कृषि-क्षेत्र मे स्थानान्तरित श्रमिक पूर्वापेक्षा भोजन की अधिक मात्रा की माँग करते हैं। द्वितीय, कृषि-क्षेत्र मे बचे हुए श्रमिक भी भोजन के उपभोग मे वृद्धि करना चाहते है। तृतीय, कृषि-क्षेत्र से पूँजीगत परियोजनाओ तक भोजन सामग्री ले जाने की यातायात लागत भी निर्वाह कोष को कम करती है। यदि निर्वाह कोष के इन छिद्रो (Leakages) की पूर्ति गैर-कृषि-क्षेत्र से साधनो के संग्रह द्वारा की जा सकती है तो यह व्यवस्था पूँजी-निर्माण का एक श्रेष्ठ स्रोत हो सकती है।

7. विदेशी ऋण (Foreign Borrowing)—विदेशी ऋण दो विधियाँ द्वारा पूँजी-निर्माण करते है—(1) विदेशी ऋणों का प्रयोग पूँजीगत सामग्री के आयात के लिए किया जा सकता है, (2) जिस सीमा तक विदेशी ऋणों की सहायता से एक देश अपने आयातो की वृद्धि करता है, उस सीमा तक आयात स्थानापन्नों का उत्पादन तथा देश के निर्यात घटाए जा सकते हैं। इन उद्योगों के उत्पादन मे गिरावट के कारण जो साधन-मुक्त होते हैं, उनको पूँजीगत-वस्तुओ के क्षेत्र में लगाया जा सकता है। इस प्रकार विदेशी ऋण प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से पूँजी-निर्माण की दर को बढ़ाने मे सहायक होते हैं।

8. विदेशी व्यापार (Foreign Trade)—विदेशी व्यापार भी पूँजी-निर्माण की दर को बढाने मे सहायक होता है। यदि निर्यातो के मूल्यो मे वृद्धि होती है तो देश की आयात-क्षमता मे भी वृद्धि होती है। यदि आयात-क्षमता में वृद्धि को पूँजीगत-वस्तुओ के आयात हेतु प्रयुक्त किया जाता है, तो इससे पूँजी-निर्माण की दर मे वृद्धि होती है।

अत पूँजी-निर्माण को तथा फलत बचत-दर को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्व निम्नलिखित हो सकते है—

(1) उत्पादन मे वृद्धि अथवा उपयोग मे कटौती, (2) प्रदर्शन प्रभाव, (3) लगान-आय मे वृद्धि, (4) लाभो मे वृद्धि, (5) करारोपण, (6) सरकार को दिया जाने वाला अनिवार्य ऋण, (7) उपभोग आयातो पर प्रतिबन्ध, (8) मुद्रा-स्फीति, (9) गुप्त बेरोजगारी की समाप्ति, (10) विदेशी ऋण तथा (11) विदेशी व्यापार।

विकास-दर और उसे प्रभावित करने वाले तत्त्व

देश की विकास-दर के निर्धारक-तत्त्वो मे बचत भी महत्त्वपूर्ण है। विकास-दर के अन्य निर्धारक-तत्त्वों की विवेचना से पूर्व विकास-दर का सामान्य अर्थ समझना आवश्यक है। सामान्यत विकास-दर को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया जाता है—

$$\text{विकास-दर} = \frac{\text{बचत}}{\text{पूँजी गुणांक}}$$

पूँजी-गुणांक अथवा पूँजी-प्रदा अनुपात का आशय पूँजी का उस मात्रा से है, जो उत्पादन की एक इकाई के लिए आवश्यक होती है। पूँजी-उत्पादन अनुपात दो प्रकार के होते हैं—(क) औसत पूंजी प्रदा अनुपात, और (ख) सीमान्त पूँजी-प्रदा अनुपात। औसत पूंजी प्रदा अनुपात का अर्थ देश के कुल पूँजी-सचय तथा वार्षिक उत्पादन के अनुपात से लगाया जाता है। सीमान्त पूँजी-प्रदा अनुपात से आशय पूँजी-सचय मे वृद्धि तथा उत्पादन मे वार्षिक वृद्धि के अनुपात से है।

(क) **औसत पूँजी-प्रदा अनुपात के निर्धारक तत्त्व (Factors Determining the Average Capital Output Ratio)**—किसी अर्थव्यवस्था मे औसत पूँजी-प्रदा अनुपात विभिन्न तत्त्वो पर निर्भर करता है, जो उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। ये मुख्य तत्त्व निम्नलिखित है—

1. तकनीकी सुधार (Technological Improvements)—तकनीकी सुधारो द्वारा पूँजी की उत्पादकता मे वृद्धि होती है। इससे पूँजी-प्रदा अनुपात घटता है।

2 श्रम-उत्पादकता (Labour Productivity)—यदि श्रम-उत्पादकता मे वृद्धि होती है, तो पूँजी की पूर्व-मात्रा से अधिक उत्पादन किया जा सकता है। इस स्थिति मे पूँजी-प्रदा अनुपात घटता ह।

3. विभिन्न क्षेत्रों के सापेक्ष महत्त्व में परिवर्तन (Shift in the Relative Importance of Different Sectors)—औसत पूंजी-प्रदा अनुपात, अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के पूंजी-प्रदा अनुपातों पर निर्भर करता है। यदि किसी देश में औद्योगिक विकास पर अधिक बल दिया जाता है तो औद्योगिक क्षेत्र के सापेक्ष महत्त्व में वृद्धि होगी, परिणामस्वरूप पूंजी-प्रदा अनुपात बढ़ जाएगा।

4. विनियोग का ढंग (Pattern of Investment)—यदि विनियोग-योजना में सार्वजनिक-उपयोग तथा पूंजीगत-वस्तुओं के औद्योगिक विकास पर बल है तो औसत पूंजी-प्रदा अनुपात अधिक होगा। इसके विपरीत, यदि घरेलू उद्योगों तथा कृषि विकास को अधिक महत्त्व दिया जाता है तो पूंजी-प्रदा अनुपात घटेगा।

5. तकनीकी का चुनाव (Choice of Technique)—श्रम-गहन तकनीकी मे पूंजी-प्रदा अनुपात कम तथा पूंजी-गहन तकनीकी में यह अनुपात अधिक होता है।

(ख) सीमान्त पूंजी-प्रदा अनुपात (Marginal Capital Output Ratio)–कुछ अर्थशास्त्रियों के मतानुसार अर्द्ध-विकसित देशों मे यह अनुपात अपेक्षाकृत अधिक होता है। अर्थ-शास्त्री विपरीत मत रखते हैं। इस अनुपात के अधिक होने के कारण निम्नलिखित कारण हैं—

1. पूंजी का दुरुपयोग (Waste of Capital)—अर्द्ध-विकसित देशों मे श्रम अकुशल होता है, इसलिए मशीनों का उपयोग कुशलता से नहीं होता है। परिणामस्वरूप उत्पादन कम होता है। इस कारण विकसित अर्थव्यवस्थाओं की अपेक्षा अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओं में यह अनुपात अधिक पाया जाता है।

2. तकनीकी (Technology)—अर्द्ध-विकसित देशों मे पूंजी उत्पादकता कम होती है। इसका कारण निम्नस्तरीय तकनीकी है। इस कारण उत्पादन की एक इकाई के लिए अधिक पूंजी आवश्यक होती है। इस स्थिति मे यह अनुपात बढ जाता है।

3. सामाजिक ऊपरी पूंजी (Social Overhead Capital)–अर्द्ध-विकसित देशों में सामाजिक ऊपरी पूंजी के लिए बड़े विनियोग किए जाते है। ये विनियोग पूंजी-गहन होते हैं, परिणामस्वरूप पूंजी-प्रदा अनुपात अधिक रहता है। विकसित देशों मे भी निर्माण-उद्योगों की अपेक्षा सार्वजनिक उपयोग के उद्योगों मे यह अनुपात अधिक होता है। अर्द्ध-विकसित देशों मे यह अनुपात और भी अधिक ऊँचा रहता है।

यदि भारी उद्योगों मे विनियोग किया जाता है तो पूंजी-प्रदा अनुपात अधिक होगा।

निम्नलिखित अवस्थाओं मे पूंजी-प्रदा अनुपात अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओं मे नीचा रहता है—

(1) यदि देश की विकास नीति ऐसी है कि कृषि व लघु उद्योगों पर अधिक बल दिया जाता है तो ऐसी स्थिति मे सीमान्त पूंजी-प्रदा अनुपात कम रहेगा।

(ii) आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे पूँजी की अल्प राशि के विनियोजन से भी अप्रयुक्त उत्पादन-क्षमता का पूरा उपयोग किया जा सकता है। परिणामस्वरूप उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि होती है। उत्पादन मे इस प्रकार की वृद्धि से पूंजी-प्रदा अनुपात कम रहेगा।

(iii) निम्नस्तरीय तकनीकी के कारण अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओ मे प्राय पूँजी-प्रदा अनुपात अधिक रहता है। किन्तु कभी-कभी जब नई तकनीकी प्रयोग मे आती है तो आश्चर्यजनक लाभ परिलक्षित होते हैं। इसीलिए अधिक पिछडे हुए देशो मे पूँजीविनियोजित की जाती है। साथ ही, शिक्षा व प्रशिक्षण पर आवश्यक व्यय किया जाता है, ताकि विकसित देशो की अपेक्षा अर्द्ध-विकसित देशो मे अधिक ऊँची विकास दरे प्राप्त की जा सकें। इस मत की पुष्टि मे अर्थशास्त्रियो द्वारा सोवियत रूस व जापान के उदाहरण दिए जाते है।[1]

(iv) जब पूंजी का प्रयोग नए प्राकृतिक साधनो के विदोहन (Exploitation) हेतु किया जाता है तो उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप, पूँजी-प्रदा अनुपात कम रहता है।

अत स्पष्ट है कि विकास-दर के दो मूल घटक होते हैं—(1) बचत तथा (2) पूँजी-गुणांक। इन घटको को जो तत्त्व प्रभावित करते हैं, उनसे विकास-दर प्रभावित होती है। बचत व पूँजी गुणांक को प्रभावित करने वाले तत्त्वो को ही विकास-दर के निर्धारक तत्त्व कहा जाता है।

---

1 *W A. Lewis* ; Ibid, p. 204.

वित्तीय-साधनों की गतिशीलता

(MOBILISATION OF FINANCIAL-RESOURCES)

आर्थिक-नियोजन द्वारा विकास करने के लिए विभिन्न कार्यक्रम और विशाल मात्रा में परियोजनाएँ प्रारम्भ की जाती हैं। इन कार्यक्रमो को संचालित करने एवं परियोजनाओ को पूर्ण करने के लिए बडी मात्रा मे साधनो की आवश्यकता होती है। विकास की इन विभिन्न योजनाओ और परियोजनाओं के सचालन के लिए आवश्यक साधनो की व्यवस्था एव उनकी गतिमयता आर्थिक-नियोजन की प्रक्रिया मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या है। इन साधनो के विकास के लिए विकास-पर गतिमयता पर ही निर्भर करती हैं। यदि ते साधन आवश्यकतानुसार पर्याप्त मात्रा मे होंगे तो विकास की अधिक सम्भावना होगी। इसी प्रकार, इन्हे जितना अधिक योजनाओ के लिए गतिशील बनाया जा सकेगा, विकास की गति उतनी ही तीव्र होगी। साधनो की उपलब्धि और उनको गतिशील बनाने की क्षमता की तुलना मे यदि विकास के कार्यक्रम और गति अधिक रखी गई, तो ऐसी योजना की सफलता सदिग्ध रहेगी। डॉ. राज के अनुसार "एक योजना नही के बराबर है, यदि इसमे निर्धारित विकास का कार्यक्रम साधनो के एकत्रित करने के कार्यक्रम पर आधारित और समन्वित नही किया गया हो।"

साधनों के प्रकार
(Types of Resources)

आर्थिक-विकास के लिए मुख्य रूप से भौतिक साधन, मानवीय साधन और वित्तीय साधनो की आवश्यकता होती है। 'भौतिक साधन' देश मे स्थित प्राकृतिक साधनों पर निर्भर करते हैं। एक देश प्राकृतिक साधनो मे जितना सम्पन्न होगा, भौतिक साधनो की उतनी ही प्रचुरता होगी। यद्यपि अधिकाँश अर्द्ध-विकसित देश प्राकृतिक साधनो मे सम्पन्न हैं, तथापि उनका उचित विदोहन नही किया गया है और उनके विकास की व्यापक सम्भावनाएँ हैं।

इसी प्रकार, अधिकाँश अर्द्ध-विकसित देशों मे मानवीय साधन भी पर्याप्त मात्रा में होते हैं। अतः योजनाओं का विस्तार, उनकी सफलता और विकास का

गति उनके लिए उपलब्ध वित्तीय साधनो, उनकी गतिमयता, उनके उचित आवटन तथा उपयोग पर निर्भर करती है ।

'वित्तीय साधनो' का महत्त्व देश के आर्थिक विकास मे बहुत है । आर्थिक योजना के लिए वित्तीय साधन और उनको एकत्रित करने का तरीका योजना सिद्धि हेतु प्रमुख स्थान रखता है । वित्त एक देश के ससाधनो को गतिशील बनाता है, चाहे वे भौतिक साधन हो या वित्तीय अथवा आन्तरिक साधन हो या बाह्य ।

गतिशीलता को निर्धारित करने वाले कारक
(Factors Determining Mobilisation)

साधनो का अनुमान और उनको गतिशील बनाना मुख्यत निम्नलिखित बातो पर निर्भर करता है[1] ।

(i) राज-वित्त की यन्त्र-प्रणाली (Machinery of Public Finance)—यदि देश की अर्थ-व्यवस्था सुसगठित हो, जिसमे विकास हेतु उपयुक्त और कुशल राजकोषीय नीति को अपनाया गया हो, तो आन्तरिक साधनो को अधिक सफलतापूर्वक गतिशील बनाया जा सकता है । इसके विपरीत यदि सार्वजनिक वित्त की यन्त्र-प्रणाली अकुशल होगी तो अपेक्षाकृत कम साधन जुटाए जा सकेंगे ।

(ii) उद्देश्यो की प्रकृति (Nature of Objectives)—उद्देश्य की प्रकृति पर भी साधनो की गतिशीलता निर्भर करती है । यदि योजना का उद्देश्य युद्ध लडना है, तो बाह्य साधन कम प्राप्त हो सकेंगे । किन्तु यदि इसका उद्देश्य द्रुत गति से आर्थिक विकास करना हो तो विदेशी साधन भी अधिक गतिशील हो सकेंगे । यदि योजना के लक्ष्य बहुत महत्त्वाकांक्षी होगे, तो कुल एकत्रित साधन अधिक होगे और जनता पर भार भी अधिक होगा ।

(iii) योजना की अवधि (Period of Plan)—यदि योजना एक वर्षीय है तो कम मात्रा मे कोषो की आवश्यकता होगी और इससे देश के आन्तरिक साधनो पर अधिक दबाव नही पडेगा । किन्तु यदि योजनाओ की अवधि लम्बी होगी तो बडी मात्रा मे साधनो को गतिशील बनाने की आवश्यकता होगी ।

(iv) श्रम और पूँजी की स्थिति (Situation with regard to Labour and Capital)—यदि देश मे श्रम-शक्ति की बहुलता है तो साधनो को गतिशील बनाने मे श्रम-प्रधान तरीके (Labour intensive) उपयुक्त होंगे । इसके विपरीत यदि देश मे पूँजी की विपुलता है और अतिरिक्त श्रम-शक्ति नही है तो साधनो को गतिशील बनाने मे अधिक पूँजी-गहन (Capital intensive) तकनीकी अपनाई जाएगी ।

(v) शिक्षा एव राष्ट्रीय चेतना (Education and National Consciousness)—वित्तीय साधनो को योजना की वित्त-व्यवस्था के लिए गतिशील बनाने मे देशवासियो की शिक्षा और राष्ट्रीय भावना का भी बडा प्रभाव पडता है । यदि

1 *B C Tandon* : Economic Planning pp 274-276

देशवासी शिक्षित हैं, उनमे राष्ट्रीय भावना है और वे अपने उत्तरदायित्व को समझने वाले हैं तो योजना के लिए अधिक वित्त जुटाया जा सकेगा। अल्प-बचत, बाजार ऋण यहाँ तक कि करो से भी अधिक साधन एकत्रित किए जा सकेंगे।

(vi) अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति (International Situation)—यदि अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण शान्ति और सहयोगपूर्ण है और विश्व मे तनाव कम हैं, तो बाह्य साधनों से अधिक वित्त उपलब्ध हो सकेगा। इसके अतिरिक्त, यदि योजना को अपनाने वाले देश के अन्य धनी देशो से अच्छे सम्बन्ध हैं या वह युद्ध, सुरक्षा अथवा आक्रमण के लिए नही, अपितु आर्थिक विकास के लिए नियोजन को अपना रहा है तो इन विकसित देशो से तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ मे अधिक मात्रा मे योजनाओ के सचालन के लिए वित्त उपलब्ध हो सकेगा। ऐसी स्थिति मे, योजनाओ की वित्त-व्यवस्था मे बाह्य साधनो का महत्त्व बढ जाएगा।

(vii) मूल्य-स्तर और जनता की आर्थिक स्थिति (Price level and Economic condition of the people)—यदि मूल्य बढ रहे होंगे और इसके कारण जीवन स्तर-व्यय बढ रहा होगा तो लोगो के पास बचत कम होगी। साथ ही, जनता भी सरकार के इस साधन को गतिशील बनाने के कार्यक्रम मे अधिक सहयोग नही करेगी। परिणामस्वरूप आन्तरिक साधन कम जुटाए जा सकेंगे।

(viii) विदेशी विनिमय कोष (Foreign Exchange Reserves)—यदि एक देश के पास पर्याप्त विदेशी विनिमय कोष है तो साधनो को गतिमय बनाना सुगम होगा। ऐसी स्थिति मे, 'हीनार्थ प्रबन्धन' भी वित्त का एक स्रोत बन सकता है और उसमे अन्य स्रोतो पर कम भार होगा। राजस्व, बाजार, बचत आदि वित्त के कम महत्त्वपूर्ण साधन हो जाएँगे। इसके विपरीत, यदि विदेशी विनिमय कोष छोटा है तो 'हीनार्थ प्रबन्धन' (Deficit Financing) भी कम होगा और वित्त के अन्य स्रोतो पर कर भार बढ जाएगा।

(ix) सरकार की आर्थिक नीति (Economic policy of the Government)—यदि देश की अर्थ-व्यवस्था सोवियत रूस की तरह पूर्णत केन्द्रित हो तो साधनो को अधिक मात्रा मे सरलतापूर्वक गतिशील बनाया जा सकेगा। किन्तु यदि देश मे जनतान्त्रिक शासन प्रणाली और निर्हस्तक्षेपपूर्ण अर्थ-व्यवस्था हो तो अपेक्षाकृत कम मात्रा मे साधन गतिशील बनाए जा सकेंगे।

(x) आर्थिक विषमता की मात्रा (Degree of Economic Inequality)—यदि देश मे आर्थिक विषमता तथा आय की असमानता कम होगी और उत्पादन के साधनो पर सामाजिक स्वामित्व का विस्तार हो रहा होगा ऐसी स्थिति मे सार्वजनिक उपक्रमो की आय के रूप मे साधनो की अधिक वृद्धि होगी। वितरण की न्यायोचित प्रणाली और उत्पादन के सामूहिक स्वामित्व से राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होगी और विकास को गतिशील बनाने के लिए साधन अधिक उपलब्ध हो सकेंगे। किन्तु यदि समाज मे आर्थिक विषमता है और उत्पादन निजी-क्षेत्र मे ही संचालित किया जाता है तो योजनाओं की वित्त-व्यवस्था के मुख्य साधन कर, ऋण, बचत आदि होंगे।

(iii) विकास के कारण बढने वाली आय का भी अधिकांश भाग बढती हुई दर से विनियोजित किया जाना चाहिए।

(iv) आय और बचत का विनियोगो मे हस्तान्तरण ऐच्छिक होना चाहिए।

(v) विनियोग वृद्धि की इस प्रक्रिया का परिणाम उपभोग स्तर मे कमी नही होना चाहिए।

आन्तरिक वित्त के साधन—आन्तरिक वित्त के निम्नलिखित प्रमुख साधन हैं—

(i) चालू राजस्व से बचत (Surplus from Current Revenues)
(ii) सार्वजनिक उपक्रमो मे लाभ(Profit from Public Enterprises)
(iii) जनता से ऋण (Public Borrowing)
(iv) हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit Financing)
(v) प्राविधिक जमा-निधि (Provident Fund etc)

(i) चालू राजस्व से बचत (Surplus from Current Revenues)—योजनाओ की वित्त-व्यवस्था का चालू राजस्व से बचत सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन है। चालू राजस्व से अधिक बचत हो इस हेतु करो का लगाना और पुराने करो की दर म वृद्धि करना होता है। करारोपण, आन्तरिक साधनो मे एक प्रमुख है, क्योकि इससे कुछ बचत मे वृद्धि होती है। यह एक प्रकार की विवशतापूर्ण बचत है। कर व्यवस्था इस प्रकार से सगठित की जानी चाहिए जिससे न्यूनतम सामाजिक त्याग से अधिकतम कर राशि एकत्रित की जा सके। इसके लिए अधिकाधिक जनसख्या को कर परिधि मे लाया जाए। करो की चोरी रोकी जाए और प्रगतिशील करारोपण लागू किया जाए जिससे प्राप्त कर-राशि का अधिकांश भार उन व्यक्तियो पर पडे जो इस बोझ को वहन करने मे सक्षम हो, साथ ही इससे आर्थिक विषमता कम हो। किन्तु साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि करो के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव नही पडे तथा बचत, विनियोग और कार्य करने की इच्छा हतोत्साहित न हो। विकासार्थ, अपनाए गए नियोजन के प्रारम्भिक काल मे मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, क्योकि इस समय भारी मात्रा मे पूँजी विनियोग होता है। ऐसा उस समय अधिक होता है जबकि लम्बे समय मे फल देने वाली योजनाएँ होती हैं। करो द्वारा जनता से अतिरिक्त क्रय शक्ति लेकर मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियो का दमन करने मे भी सहायता मिलती है और इन प्रवृत्तियो का दमन योजनाओ की सफलता के लिए अतिआवश्यक है। अत कर-नीति इस प्रकार की होनी चाहिए कि जिससे कम से कम कुपरिणाम हो और अधिक से अधिक वित्तीय-साधन गतिशील बनाए जा सकें।

अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशो मे जनता की आय अति न्यून होने के कारण वित्त-व्यवस्था के साधन के रूप मे करारोपण का महत्त्व विकसित देशो की अपेक्षा कम होता है। वहाँ जीवन-स्तर उच्च बनाने की आवश्यकता होती है और इसलिए किसी भी सीमा तक कर बढाते जाना वांछनीय नही होता है। अर्द्ध-विकसित देशो

मे करदान क्षमता (Taxable Capacity) कम होती है और राष्ट्रीय आय का अल्प भाग ही कर-संग्रह मे प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, गत वर्ष पूर्व भारत मे कुल करो से प्राप्त आय, कुल राष्ट्रीय-आय की केवल 9% ही थी जबकि यह इगलैण्ड, सयुक्तराज्य अमेरिका, जापान, न्यूजीलैण्ड, कनाडा और लका मे क्रमशः 35%, 23%, 23%, 27%, 19% और 20% थी।

भारतीय विकास योजनाओ मे विकास के हेतु विशाल कार्यक्रम सम्मिलित किए गए और समस्त स्रोतो से वित्तीय साधनो को गतिशील बनाने का प्रयत्न किया गया। कर-साधनो का पूर्ण उपयोग किया गया। करो की दर मे वृद्धि की गई और नवीन कर लगाए गए। प्रथम पचवर्षीय योजना मे देश के अपने साधनो (Mainly through own resources) से 740 करोड रु. की वित्त-व्यवस्था का अनुमान लगाया गया जबकि वास्तविक प्राप्ति 725 करोड रु (कुल वित्त-व्यवस्था का 38·4 प्रतिशत) हुई। इसमे कराधान की योजना पूर्व-दरो पर चालू राजस्व से बचत 382 करोड रु थी। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे देश के अपने साधनो से वास्तविक प्राप्ति 1,230 करोड रु (कुल वित्त-व्यवस्था का 26 3 प्रतिशत) हुई जिसमे कराधान की योजना पूर्व-दरो पर चालू-राजस्व से बचत 11 करोड रु थी। तृतीय योजना मे देश के अपने साधनो से 2,908 करोड रु (कुल वित्त-व्यवस्था का 33 9 प्रतिशत) प्राप्त हुए जिसमे कराधान की योजना पूर्व-दरो पर चालू राजस्व से बचत (—) 419 करोड रु की थी। चतुर्थ योजना मे अन्तिम उपलब्धि अनुमानो के अनुसार देश के अपने साधनो से 5,475 करोड़ रु (कुल वित्त-व्यवस्था का 33 9 प्रतिशत) प्राप्त हुए जिसमे कराधान की योजना-पूर्व दरो पर चालू राजस्व से बचत (—) 236 करोड रु. थी।[1] पाँचवी योजना के प्रारूप मे सरकारी क्षेत्र मे देशीय बचत 15,075 करोड रु. और गैर-सरकारी क्षेत्र मे देशीय बचत 30,055 करोड रु अनुमानित की गई[2] जो बाद मे सशोधित पाँचवी योजना (सितम्बर, 1976) मे क्रमशः 15,028 और 42,029 करोड रु अनुमानित की गई।[3]

(ii) सार्वजनिक उपक्रमों से लाभ (Profit from Public Enterprises)– पूर्ण नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे उत्पादन का लगभग समस्त कार्य सार्वजनिक क्षेत्र के अधीन रहता है। किन्तु अन्य प्रकार की नियोजित अर्थ-व्यवस्थाओ मे भी सार्वजनिक क्षेत्र के अधीन उत्पादक इकाइयो की सख्या मे वृद्धि होती रहती है और सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार होता है। इस कारण, वित्तीय साधनो मे राजस्व का भाग घटकर, सार्वजनिक उपक्रमो के लाभो का भाग बढता जाता है। उदाहरणार्थ, सोवियत रूस मे जनता आय का केवल लगभग 13% भाग ही कर के रूप मे देती है। सरकारी आय का प्रमुख साधन सार्वजनिक उद्योगो का आधिक्य ही होता है।

1. इण्डिया 1976, पृष्ठ 173.
2. योजना, 22 दिसम्बर, 1973, पृष्ठ 7.
3. पाँचवीं पचवर्षीय योजना 1974–79, पृष्ठ 40.

सार्वजनिक उपक्रम केवल अपने लाभ-आधिक्य के द्वारा ही योजनाओं की वित्त-व्यवस्था के लिए धन उपलब्ध नहीं कराते, अपितु इन उपक्रमो में कई प्रकार के कोष होते हैं जिनसे सरकारें समय-समय पर अपने वित्तीय उत्तरदायित्वों का निर्वाह करती हैं।

सार्वजनिक उपक्रमों का लाभ मुख्यत उन देशों में एक बड़ा वित्तीय साधन के रूप में प्रकट होता है जहाँ पूर्णरूप से नियोजित अर्थ-व्यवस्था हो और समस्त उत्पादन-कार्य सरकार द्वारा ही किया जाता हो, किन्तु अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशो मे इस प्रकार की पूर्ण नियोजित अर्थ-व्यवस्था और सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार नहीं होता है, वहाँ उत्पादन-क्षेत्र मे निजी-उद्यम भी क्रियाशील रहता है। इसलिए, वहाँ सार्वजनिक उपक्रमों की संख्या और स्वाभावत उनके लाभ की मात्रा भी न्यून होती है। इन देशों मे जो कुछ सार्वजनिक उपक्रम हैं वे हाल ही स्थापित किए गए हैं और उन्होंने अभी पर्याप्त मात्रा में लाभ कमाना आरम्भ नहीं किया है। अनुभव अभाव के कारण इनकी सफलता का स्तर बहुत नीचा है। इन सब कारणों से इन देशों में नियोजन हेतु, वित्तीय साधनों को गतिशील बनाने मे स्रोत से अधिक अपेक्षा नहीं की जा सकती। साथ ही, यह प्रश्न भी विवादास्पद हुआ है कि इन सार्वजनिक उपक्रमो को लाभ के उद्देश्य (Profit Motive) पर सचालित किया जाए या इन्हे लाभ का साधन नहीं बनाया जाए। यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि निजी-उपक्रम मे मूल्य इस प्रकार निर्धारित किए जाने चाहिए जिससे कर सहित उत्पादन लागत निकलने के पश्चात् इतना लाभ प्राप्त हो जिससे पूंजी और उपक्रम इस ओर आकर्षित हो सके। किन्तु सरकारी उपक्रमों के समक्ष व्यावसायिक और आर्थिक दृष्टिकोण की अपेक्षा जन कल्याण का ध्येय प्रमुख होता है। इसी कारण बहुधा सार्वजनिक उपक्रमो की स्थिति एकाधिकारिक होते हुए भी इनके मूल्य कम हो सकते हैं। किन्तु अब यह माना जाने लगा है कि सार्वजनिक उपक्रम लाभ नीति के आधार पर सचालित किए जाने चाहिए जिससे सरकार को आत्म निर्भर बनने मे मदद मिलेगी। उसके पास योजनाओं की वित्त व्यवस्था के लिए सुगमतापूर्वक साधन उपलब्ध हो सकेंगे और साथ ही मुद्रा-प्रसारित प्रवृत्तियों को रोकने में भी सहायता मिलेगी।

भारत में योजनाबद्ध आर्थिक विकास का मार्ग अपनाने के बाद सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार निरन्तर होता गया। गत 25 वर्षों मे औद्योगिक और वाणिज्यिक उपक्रमो का केन्द्रीय सरकार का निवेश 29 करोड रुपये से बढ़कर अब 6,000 करोड रुपये से भी अधिक हो गया है। जहाँ 25 वर्ष पहले अर्थात् प्रथम पचवर्षीय योजना शुरू होते समय केवल पाँच उपक्रम थे, वहाँ आज देश के चारों कोनों मे ऐसे लगभग 200 उपक्रम चल रहे हैं। देश की योजनाओं से सार्वजनिक क्षेत्र से निरन्तर बढ़ती हुई मात्रा में वित्त उपलब्ध होने की आशा की गई है। पर रेलो के योगदान के अतिरिक्त अन्य उद्योगों से वित्त की उपलब्धि का चित्र अधिकांशत निराशाजनक ही रहा है। प्रथम पचवर्षीय योजना में रेलों से 115 करोड रुपये और द्वितीय योजना मे 167 करोड रुपये, तृतीय योजना में केवल 62 करोड रुपये रहा। चौथी योजना

मे स्थिति तेजी से बिगडी, जहाँ प्रारम्भिक अनुमान 265 करोड रुपये की प्राप्ति का था, वहाँ अन्तिम उपलब्ध अनुमान (—) 165 करोड रुपये का रहा। संशोधित पाँचवी योजना (सितम्बर, 1976) मे योजना के प्रथम तीन वर्षों में विकास कार्यक्रम मे रेलवे का अशदान (—) 1005 करोड रुपये अनुमानित किया गया। अन्य सार्वजनिक प्रतिष्ठानो से प्रथम और द्वितीय योजना मे उपलब्धि नगण्य रही जबकि, तृतीय योजना मे वास्तविक प्राप्ति 373 करोड रुपये की रही। चौथी योजना मे अन्तिम उपलब्ध अनुमानो के अनुसार यह प्राप्ति 1,300 करोड रुपये की रही। प्रारम्भिक अनुमान 1,764 करोड रुपये था। सशोधित पाँचवी योजना मे प्रथम तीन वर्षों मे केन्द्रीय सरकार के गैर-विभागीय उद्यमो + डाक व तार + राज्य सरकार व उद्यमो का अशदान क्रमश. 1615, + 181 तथा (—) 167 करोड रुपये अनुमानित किया गया। भारत मे सार्वजनिक उपक्रम अपेक्षित पूर्ति-स्तर से अभी बहुत दूर हैं और इस स्थिति के लिए इन उद्योगो की निम्न कार्यकुशलता, इन उद्योगो मे श्रमिक अशान्ति, अमितव्ययितापूर्ण योजनाओ का निर्माण आदि तत्त्व उत्तरदायी हैं। भारतीय योजनाओ के लिए इस स्रोत से अधिक वित्तीय साधन अधिक गतिशील बनाए जाएँ, इसके लिए आवश्यक है कि इनकी कुशलता का स्तर ऊँचा हो, ये अपने पैरो पर खडे हो और योजनाओ के लिए दुर्बल साधन जुटाने की दृष्टि से इन्हे उचित लाभ प्राप्त हो। यह उत्साहवर्द्धक बात है कि पिछले कुछ समय से सरकार सार्वजनिक उपक्रमो के प्रति विशेष रूप से जागरूक हो गई है। केन्द्रीय सरकार के वाणिज्यिक उपक्रमो द्वारा अधिक लाभ कमाया जाने लगा है। आर्थिक समीक्षा 1975–76 के अनुसार, 1974–75 मे कुल 121 चालू उपक्रमो के प्रवर्तन सम्बन्धी परिणामों से कुल मिलाकर 312 करोड रुपये के कर की अदायगी से पूर्व निवल लाभ हुआ है। यह लाभ 1973–74 मे 114 चालू उपक्रमो द्वारा प्राप्त 149 करोड रुपये के लाभ की रकम से दुगुनी रकम से भी अधिक था। लाभ कमाने वाले उपक्रमो की सख्या 82 थी। उन्होने कुल मिलाकर 451 करोड रुपये का वास्तविक लाभ कमाया, घाटे मे चलने वाले उपक्रमो की सख्या 39 थी और उनको हुए कुल घाटे की रकम 139 करोड रुपये थी। आर्थिक समीक्षा 1976–77 के अनुसार, "1975–76 के उपलब्ध अन्तिम आँकड़ो के अनुसार इस वर्ष (1975–76) केन्द्रीय वाणिज्यिक उपक्रमो को 305 करोड़ रुपये का लाभ हुआ जो पिछले वर्ष के स्तर से 2 प्रतिशत कम था।"

(iii) जनता से ऋण (Public Borrowings)—करो से प्राप्त आय और सार्वजनिक उपक्रमो के आधिक्य से आर्थिक विकास के लिए बनाई गई योजनाओ के संचालन के लिए आवश्यक राशि प्राप्त नहीं होने पर जनता से ऋण प्राप्त किए जाते हैं। इस प्रकार, योजनाओ की वित्त-व्यवस्था मे जनता से प्राप्त ऋणो की भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, किन्तु योजनाओं की वित्त-व्यवस्था हेतु ऋणो का उपयोग अत्यन्त सोच-विचार करके करना चाहिए, क्योंकि इनकी प्राप्ति के साथ ही इनकी ब्याज सहित अदायगी का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। इसके साथ ही अर्द्ध-विकसित देशों में आय और जीवन-स्तर की निम्नता के कारण इस साधन द्वारा योजनाओं के लिए

साधनों का निर्धारण
(Determination of Resources)

एक देश के द्वारा बनाई जाने वाली योजना के कार्यक्रमो के निर्धारण हेतु साधनो का अनुमान लगाना पडता है। अनुमानित साधनों पर ही योजना का आकार और कार्यक्रम निर्धारित किया जाता है। इसलिए उपलब्ध या गतिशील बनाए जा सकने वाले साधनो की मात्रा का अनुमान लगाना आवश्यक होता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि देश और उसके बाहर ऐसे क्रियाशील घटको पर विचार किया जाए जो योजनाओ की वित्त-व्यवस्था को प्रभावित करने वाले हो। सर्वप्रथम विदेशी सहायता और वाह्य साधनो का अनुमान लगाया जा सकता है। यद्यपि सोवियत रूस ने अपनी योजना को आन्तरिक साधनो से ही सचालित किया था, किन्तु ऐसी स्थिति मे देशवासियो को भारी त्याग करना पडता है और कष्ट उठाना पड़ता है। आधुनिक अर्द्ध-विकसित देशो के लिए अपने देशवासियो से इस मात्रा मे भारी त्याग और कष्टो का वहन कराना वाँछनीय नही है साथ ही इतना आसान भी नही है। अत इन देशो की योजनाओ की वित्त-व्यवस्था मे बाह्य साधनो का पर्याप्त महत्व है। इन्हे यथासम्भव आन्तरिक साधनो को अधिकतम मात्रा मे गतिशील बनाना चाहिए। किन्तु ऐसा जनता पर बिना विशेष कष्ट दिए हुए होना चाहिए और इन आन्तरिक साधनो की कमी की पूर्ति बाह्य साधनो द्वारा की जानी चाहिए। यद्यपि किसी देश को विकास के लिए वाह्य साधनो पर ही पूर्णरूप से निर्भर नही होना चाहिए किन्तु अर्द्ध-विकसित देश बिना वाह्य साधनो के वाँछित दर से प्रगति भी नही कर सकते। अत दोनो स्रोतो का ही उचित उपयोग किया जाना चाहिए। कोलम्बो योजना मे भी इस विचार को स्वीकार किया गया है कि इन देशो को विशाल मात्रा मे विदेशी विनियोगो के रूप मे प्रारम्भिक उत्तेजक (Initial Stimulus) की आवश्यकता है। कई देशो की योजनाओ मे लगभग 50% तक वित्तीय साधनो के लिए बाह्य स्रोतो पर निर्भरता रखी गई है।

योजना के लिए वित्तीय साधनों की गतिशीलता
(Mobilisation of Financial Resources)

वित्तीय साधनों की गतिशीलता का तात्पर्य, योजना की वित्तव्यवस्था के लिए इनके एकत्रीकरण से है। योजनाओ की वित्त-व्यवस्था करने के प्रमुख रूप से निम्नलिखित दो स्रोत हैं—

(अ) वाह्य साधन (External Resources) तथा
(ब) आन्तरिक साधन (Internal Resources)

वाह्य साधन (External Resources)

अर्द्ध-विकसित देशो मे न केवल पूंजी की उपलब्ध मात्रा ही कम होती है अपितु चालू बचत दर भी निम्न स्तर पर होती है। एक अनुमान के अनुसार लेटिन अमेरिका, मध्य-पूर्व अफ्रीका, दक्षिण-मध्य एशिया और सुदूर-पूर्व के निर्धन देशो की

घरेलू बचत दर 5% से भी कम रही है। ऐसी स्थिति में ये देश स्वयं स्फूर्त अर्थ-व्यवस्था में पहुँचने और द्रुत आर्थिक विकास हेतु आवश्यक बड़ी मात्रा में विनियोग नहीं कर सकते हैं। वांछनीय विनियोग और उपलब्ध बचत के मध्य के इस अन्तर को पूरा करने के लिए विदेशी सहायता अपेक्षित है। बाह्य साधनों का योजना की वित्त व्यवस्था में इसलिए भी महत्त्व है क्योंकि इन देशों की जनता निर्धन होती है और अधिक करारोपण द्वारा अधिक धन-संग्रह भी नहीं किया जा सकता है। निर्धनता और कम आय के कारण ऋणों द्वारा भी अधिक अर्थ-संग्रह नहीं किया जा सकता। हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit financing) का भी असीमित मात्रा में आश्रय नहीं लिया जा सकता है क्योंकि इससे मुद्रा प्रसारित प्रवृत्तियों को जन्म मिलता है। इसीलिए योजनाओं की आवश्यकताओं और आन्तरिक साधनों में जो अन्तर रह जाता है उसकी पूर्ति हेतु बाह्य साधनों का सहारा लेना पड़ता है। पहले यह धारणा थी कि केवल परियोजनाओं की विदेशी विनिमय की आवश्यकताओं तक ही बाह्य सहायता सीमित रहनी चाहिए किन्तु अब यह माना जाने लगा है कि न केवल विदेशी-विनिमय की आवश्यकता के समान अपितु, घरेलू आवश्यकताओं के लिए भी विदेशी सहायता आवश्यक है।

इस प्रकार योजनाओं की वित्तीय आवश्यकताएँ और आन्तरिक साधनों का अन्तर विदेशी सहायता की मात्रा का निर्धारण करता है। जितनी विदेशी सहायता इस अन्तर के बराबर होगी उतना ही देश का द्रुत आर्थिक विकास होगा। किन्तु अथक् प्रयत्नों के बावजूद भी बाह्य साधनों से इतना वित्त उपलब्ध हो जाए यह आवश्यक नहीं है क्योंकि बाह्य सहायता की उपलब्धता कई आर्थिक और सामाजिक बातों पर निर्भर करती है जिनमें से कुछ निम्नलिखित है—

(i) विदेशी व्यापार की स्थिति, (ii) विदेशी विनिमय का अर्जन, (iii) घरेलू और विदेशी वस्तुओं के मूल्य में होने वाले परिवर्तन, (iv) बाह्य विश्व में स्थायित्व की मात्रा, (v) स्वदेश और विदेशों में मुद्रा-प्रसार या मुद्रा-सकुचन की मात्रा, (vi) विनियोगों के अनुत्पादक रहने की अवधि, (vii) विनियोगों की उत्पादकता अर्थात् पूंजी-उत्पाद अनुपात, (viii) आन्तरिक स्थायित्व, (ix) अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण, (x) विकसित देशों द्वारा सहायता की इच्छा, (xi) उचित योजना निर्माण। विशुद्ध आर्थिक दृष्टिकोण से विदेशी सहायता का मापदण्ड सहायता प्राप्त करने वाले देश के चलने की साख, का उद्देश्य और चुकाने की सामर्थ्य भी होनी चाहिए किन्तु आधुनिक विश्व में विदेशी सहायता में राजनीतिक दृष्टिकोण को ही प्रमुखता दी जाती है। इस सम्बन्ध श्री यूजीन आर ब्लेक (Eugene R Black) (भूतपूर्व अध्यक्ष विश्व-बैंक) ने लिखा है कि "विदेशी सहायता कभी-कभी केवल कूटनीतिक सैनिक मित्रों को क्रय के लिए ही दी जाती है।" ऐसी स्थिति में तटस्थता की नीति में विश्वास करने वाले और गुटबन्दी से दूर रहने वाले अर्द्ध-विकसित देश, विदेशी सहायता प्राप्त करने में कठिनाई अनुभव करते हैं, किन्तु इसके बावजूद भी इन अर्द्ध-विकसित देशों को अपनी योजनाओं की वित्त-व्यवस्था हेतु बाह्य साधनों से पर्याप्त सहायता मिलती रही है।

बाह्य साधनों के रूप (Forms of External Resources)—बाह्य साधन प्रमुख रूप से निम्नलिखित दो प्रकार के होते है—

(i) निजी पूँजी (Private Capital)—बाह्य साधन विदेशों मे स्थित निजी व्यक्तियों और गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा उपलब्ध होते हैं। निजी पूँजी को मुख्यत प्रत्यक्ष विनियोग द्वारा ही गतिशील बनाया जा सकता है, किन्तु आजकल नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे इसके लिए सीमित क्षेत्र होता जा रहा है क्योंकि नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे निजी उपक्रम के लिए सीमित क्षेत्र होता है। साथ ही विदेशी विनियोगकर्त्ता को सरकार अधिक लाभ नहीं लेने देती। बहुधा इन देशों की सरकारों द्वारा विदेशी पूँजी पर अनेक नियन्त्रण और ऐसी शर्तें लगाई जाती है, जिन्हे विदेशी विनियोगकर्त्ता स्वीकार नही करते। इसके अतिरिक्त इन अर्द्ध विकसित देशो मे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थायित्व का अभाव रहता है। अनेक बार सरकारें बदलती रहती है, जिनकी इन विदेशी विनियोगो के बारे में विरोधी नीति हो सकती है। राष्ट्रीयकरण तथा विनिमय नियन्त्रण द्वारा भविष्य मे इस विदेशी पूँजी और इस पर लाभ के स्वदेश मे हस्तान्तरण पर प्रतिबन्ध का भय भी विकसित देशों से, अर्द्ध-विकसित देशो म निजी-पूँजी-प्रवाह मे कमी लाता है।

भारत मे निजी-पूँजी विदेशी निजी अभिकरणो (Private Agencies) द्वारा विनियोगो और भारतीय कम्पनियो द्वारा विश्व बैंक से लिए गए ऋणों के रूप मे पर्याप्त मात्रा मे विदेशी निजी पूँजी का आर्थिक विकास मे योगदान रहा है किन्तु गत वर्षों मे विश्व बैंक के ऋणो का महत्त्व बढ गया है। भारत की कुल निजी पूँजी मे से विदेशियो द्वारा नियन्त्रित उपक्रमो या प्रत्यक्ष विदेशी विनियोगो का भाग अधिक है। सन् 1957 मे यह भाग 90% था जिसमे विगत वर्षों मे निरन्तर कमी होती रही है।

(ii) सार्वजनिक विदेशी विनियोग (Public Foreign Investment)—अर्द्ध-विकसित देशों की योजना विनियोगो का बहुत महत्त्व है। विदेशी सरकारो द्वारा दिए गए ऋण, अनुदान या प्रत्यक्ष विनियोगो द्वारा इन पिछड़े हुए देशो मे अनेक महत्त्वपूर्ण परियोजनाएँ प्रारम्भ और पूर्ण की गई हैं। विकसित देशों की सरकारें, अर्द्ध-विकसित देशो के आर्थिक विकास म उनके उत्तरदायित्व को पूर्वापेक्षा अधिक समझने लगी हैं, इसीलिए ये इन विकासशील देशो को अधिक सहायता देने लगी हैं। किन्तु सार्वजनिक विदेशी विनियोगो द्वारा सहायक देश की सरकारें सहायता के इच्छुक देश को राजनीतिक रूप से प्रभावित करना चाहती हैं और अपनी शर्तें सहायता के साथ लगा देती है। भारत मे सरकारी क्षेत्र क बोकारो मे स्थापित होने वाले चौथे इस्पात कारखाने मे अमेरिका ने सहायता देना इसलिए स्वीकार नहीं किया था क्योंकि यह सार्वजनिक क्षेत्र मे स्थापित किया जा रहा था। इसी प्रकार अन्य शर्तें भी जोड दी जाती हैं और स्वतन्त्र तथा तटस्थ नीति को अपनाने वाले या स्वाभिमानी राष्ट्र इस प्रकार की विदेशी वित्तीय सहायता आवश्यकतानुसार प्राप्त करने मे समर्थ नही होते हैं। फिर भी विकसित देशों की सरकारो से कई

अर्द्ध-विकसित देशों की योजनाओं के लिए वहाँ की सरकारें पर्याप्त राशि प्राप्त करने में सफल रही हैं।

भारत ने द्रुत औद्योगीकरण और योजना संचालन के लिए विदेशी सरकारों द्वारा ऋण, अनुदान और प्रत्यक्ष विनियोग के रूप में पर्याप्त धनराशि प्राप्त की है। भारत अपनी विशेष स्थिति और असलग्नतावादी नीति के फलस्वरूप विश्व के पूँजीवादी और साम्यवादी दोनों ही खेमों द्वारा प्रभूत सहायता प्राप्त करने में सफल रहा है, यद्यपि पिछले कुछ वर्षों से पूँजीवादी देशों से—विशेषकर अमेरिका से भारत को वित्तीय सहायता बहुत कम अथवा प्रतिबन्धित है। भारत सरकार के प्रकाशन के अनुसार, भारत पर कुल बकाया विदेशी ऋण 1974-75 (सशोधित) के अन्त में 6419 26 करोड़ रु और 1975-76 (बजट) में 7031·95 करोड़ रु. था।[1] भारतीय योजनाओं की वित्त-व्यवस्था के लिए बाह्य साधनों को कितना गतिशील बनाया गया है इसका अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना में विदेशी ऋण की राशि 189 करोड़ रु (कुल वित्त व्यवस्था का 9 6%), द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 1049 करोड़ रु (कुल वित्त व्यवस्था का 22·5%) और तृतीय पंचवर्षीय योजना में 2423 करोड़ रु (कुल वित्त व्यवस्था का 28·2%) थी। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में विदेशी सहायता की राशि अन्तिम अनुमानों के अनुसार 2087 करोड़ रु (कुल वित्त व्यवस्था का 12 9 प्रतिशत) थी।[2] पाँचवीं योजना के प्रारम्भ में कुल विदेशी सहायता की धनराशि 2443 करोड़ रु (निवल) अनुमानित की गई जो सितम्बर, 1976 में राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा संशोधित पाँचवीं योजना में बढ़कर 5834 करोड़ रु. (निवल) अनुमानित की गई।[3] यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि मार्च, 1977 में ऐतिहासिक सत्ता-परिवर्तन के बाद जनता पार्टी की सरकार ने पहली अप्रैल, 1978 से नई राष्ट्रीय योजना चालू की है और पाँचवीं आयोजना समय से एक वर्ष पूर्व 31 मार्च, 1978 को ही समाप्त कर दी गई है।

आन्तरिक साधन (Internal Resources)

कई कारणों से विदेशी सहायता की प्राप्ति अनिश्चित रहती है। अत विकासार्थ नियोजन को अपनाने वाले प्रत्येक देश को उसके आन्तरिक साधनों को अधिकतम सीमा तक गतिशील बनाना चाहिए। वस्तुत योजनाओं की वित्त व्यवस्था का यही प्रमुख साधन है। देश के आन्तरिक साधनों को गतिशील बनाते समय निम्नलिखित नीति अपनानी चाहिए—

(i) देश में बचत मात्रा में वृद्धि के पूरे प्रयत्न किए जाने चाहिए।

(ii) चालू आय में से सारी बचत का विकास कार्यक्रमों की वित्त-व्यवस्था के लिए उपयोग करना चाहिए।

1. इण्डिया 1976, पृष्ठ 155.
2. वही, पृष्ठ 173.
3. पाँचवीं पंचवर्षीय योजना, 1974-79, पृष्ठ 32.

मिलता रहा है।

पूंजी-संचय की बहुत अधिक सम्भावना नही होती, क्योकि निर्धनता के कारण बचत का अवसर कम होता है और बढी हुई आय मे भी उपभोग की प्रवृत्ति अधिक होने के कारण बचत कम होती है। धनिक वर्ग भी प्रतिष्ठा सम्बन्धी उपभोग पर काफी व्यय करता है। साथ ही, आय तथा अवसर की समानता मे वृद्धि करने के लिए प्रयत्न किए जाते हैं। इससे विकासार्थ पर्याप्त बचत उपलब्ध नही होती है। प्रो लेविस के अनुसार, "विकास सम्बन्धी विनियोजन के लिए उन्ही अर्थ-व्यवस्थाओ मे ऐच्छिक बचत उपलब्ध होती है जहाँ उद्यमियो का राष्ट्रीय आय मे अधिक भाग होता है और धन तथा आय की समानता के प्रयत्नो से यह भाग घटता जाता है। इन सभी कारणो से पिछडे हुए देशो मे जनता से प्राप्त ऋण या ऐच्छिक बचत आर्थिक नियोजन हेतु वित्त प्रदान करने मे अधिक सहायक नही होती है।" किन्तु जनता को अधिकाधिक मात्रा मे बचत करने को प्रोत्साहित करके इस साधन को, विशेष रूप से, अल्प बचतो को गतिशील बनाया जाना चाहिए। मुद्रा-प्रसारिक मूल्यो मे वृद्धि को रोकने की दृष्टि से यह उपभोग को प्रतिबन्धित करने का भी अच्छा उपाय है। इसीलिए, बैंक, जीवन-बीमा विभाग, डाक-विभाग, सहकारी संस्थाओ का विस्तार करके ग्रामीण और शहरी क्षेत्रो मे बचत की आदत को बढाना चाहिए और इस बचत को ऋणो के रूप मे प्राप्त कर लेना चाहिए। ये सार्वजनिक ऋण दो प्रकार के होते है प्रथम, अल्प-बचत (Small Savings) और द्वितीय, बाजार-ऋण (Market Loans)। विकासार्थ नियोजन की वित्त-व्यवस्था हेतु इन दोनो ही साधनो को गतिशील बनाया जाना चाहिए।

भारत मे योजनाओ के साधनो को गतिशील बनाने मे सार्वजनिक ऋण के साधन का भी उपयोग किया गया है। देश के भीतर और विदेशो से लिए गए सार्वजनिक ऋण की राशियां इस प्रकार है—

भारत सरकार का सार्वजनिक ऋण[1]

(करोड रु मे)

विवरण	1950-51	1960-61	1965-66	1974-75 (सशोधित)	1975 76 (बजट)
1. देश के भीतर ऋण					
(क) *स्थाई ऋण*					
(1) चालू ऋण	1,438 46	2,555 72	3,417 28	6,434 96	6,759 81
(2) प्रतिभूति बाण्ड	—	—	—	83 80	83·80
(3) इनामी बाण्ड	—	+15 63	11·35	1 04	0 94
(4) 15 वर्षीय बचत-पत्र	—	3 45	3·78	1·40	1 00
(5) अदायगी के दौरान के ऋण	6 49	22 73	33 72	54 19	54 19
योग—स्थानीय ऋण	1,444 95	2,597 53	3,466 13	6 575 39	6,899·74

1. India 1976, p 155.

विवरण	1950-51	1960-61	1965-66	1974-75 (संशोधित)	1975-76 (बजट)
(ख) चल ऋण					
(1) सरकारी हुण्डियाँ	358 02	1,106 29	1,611 82	4,709 43	5,165·51
(2) विशेष चल ऋण	212 60	274·18	340 70	733 36	732·36
(3) कोष जमा प्राप्तियाँ एवं अन्य चल ऋण	6·73	—	—	—	—
योग-चल-ऋण	577 35	1,380 47	1,952 52	5 442 79	5,897 87
योग—देश के भीतर ऋण	2,022 30	3,978 00	5,418 65	1,2018 18	1 2797 61
2. विदेशी ऋण	32· 0	760·96	2,590·62	6 419 26	7,031·95
योग-सार्वजनिक ऋण	2 054 33	4,738 96	8,009 27	1,8437 44	1,9829 56

(iv) हीनार्थ-प्रबन्धन (**Deficit Financing**)—योजना की वित्त-व्यवस्था के लिए जब उपरोक्त स्रोतों से पर्याप्त साधन गतिशील नहीं बनाए जा सकें तो सरकारें 'हीनार्थ-प्रबन्धन' का सहारा लेती हैं। सरकार के बजट मे जब व्यय की जाने वाली राशि, आन्तरिक ऋण तथा विदेशी सहायता से प्राप्त राशि से कम हो जाती है, तो इस अन्तर की पूर्ति मुद्रा विस्तार करके अर्थात् नोट छाप कर की जाती है। इसे 'हीनार्थ-प्रबन्धन' या 'घाटे की अर्थ-व्यवस्था' कहते हैं। जब सरकार के बजट में घाटा होने पर वह केन्द्रीय बैंक के अधिकारियों से ऋण ले जो इसकी पूर्ति चलन में वृद्धि अर्थात् पत्र-मुद्रा छाप करके करे तो यह 'हीनार्थ-प्रबन्धन' कहलाता है। डॉ वी. के. आर. वी राव के अनुसार, "जब सरकार जान-बूझ कर किसी उद्देश्य से अपनी आय से अधिक व्यय करे जिससे देश में मुद्रा की मात्रा मे वृद्धि हो जाए, तो उसे 'घाटे की अर्थ-व्यवस्था' कहना चाहिए।" भूतकाल में 'हीनार्थ-प्रबन्धन' का उपयोग युद्ध-काल मे वित्तीय साधन जुटाने या मन्दी-काल में इसके उपचार-स्वरूप किया जाता था किन्तु आधुनिक युग में विकासार्थ नियोजन की वित्त-व्यवस्था हेतु इस प्रकार की निर्मित मुद्राओं का उपयोग किया जाता है। विकास के लिए प्रयत्नशील राष्ट्रों की वित्तीय आवश्यकताएँ अधिक होती हैं। इन देशों में आन्तरिक बचत, कर, आय और विदेशी सहायता से प्राप्त साधन बहुधा एक ओर कम पड़ जाते हैं और घाटे की पूर्ति हीनार्थ-प्रबन्धन द्वारा की जाती है। इससे जहाँ मुद्रा की मात्रा मे वृद्धि होती है वहाँ दूसरी ओर साधनों को पूँजीगत वस्तुओं मे लगाया जाता है जिससे सामान्यत मूल्य-वृद्धि होती है और जनता अनुपात से कम उपभोग कर पाती है। घाटे की अर्थ-व्यवस्था बहुधा अल्पकाल में मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियों को जन्म देती है। अत साधन का सहारा एक निश्चित सीमा तक ही लिया जाना चाहिए; अन्यथा इससे मूल्य-वृद्धि होगी, जिससे योजनाओं की वित्त-व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पडता है। परिणामस्वरूप, मुद्रा स्फीति तब होती है, जबकि हीनार्थ-प्रबन्धन द्वारा उत्पादन और बचतों में तीव्र वृद्धि हो। साथ ही, इसके लिए विभिन्न प्रकार के नियन्त्रण लगाए जाएँ। इसीलिए

भारतीय योजना-आयोग ने यह मत व्यक्त किया है कि "नियन्त्रणों के बारे में दृढ और स्पष्ट नीति के अभाव मे, और साथ ही, समय की एक निश्चित अवधि मे उस नीति के जारी रहने के आश्वासन बिना न केवल हीनार्थ-प्रबन्धन का क्षेत्र ही सीमित हो जाता है, अपितु सापेक्षिक रूप से बजट के अल्प घाटे से भी मुद्रा-प्रसारित दबावो के उत्पन्न होने का निरन्तर खतरा बना रहता है।"

कुछ अर्थ-शास्त्रियो के अनुसार हीनार्थ-प्रबन्धन या उसमे निहित साख विस्तार नीति तथा नियोजन परस्पर सम्बन्धित हैं। जब कभी मुद्रा या साख का विस्तार होता है तो इसके लिए न केवल मुद्रा-चलन, मूल्य-मजदूरी आदि पर ही केन्द्रीय नियन्त्रण होता है, बल्कि अन्य कई पहलुओ जैसे—उपभोग-उत्पादन, प्रतिभूति-बाजार, बैंक-बैलेंस आदि पर भी नियन्त्रण रखा जाता है। इसकी सफलता के लिए नियोजित पद्धतियाँ अपनाई जाती है। इसी प्रकार नियोजन मे कुछ सीमा तक मुद्रा और साख विस्तार का अवलम्बन अनिवार्य-सा है क्योकि विकास की विभिन्न परियोजनाओ की वित्त-व्यवस्था अकेले अन्य साधनो से नही हो पाती, इसके लिए कुशल प्रशासनिक यन्त्र प्रणाली, विशेषज्ञो और ईमानदार व्यक्तियो द्वारा नियोजन तथा उचित नियोजन और नियन्त्रण आवश्यक हैं। यदि चलन यन्त्र की विस्तारवादी युक्ति को बुद्धिमता, कुशलता तथा सीमाओ मे और आर्थिक पगुपन को दूर करने या सर्वागीण विस्तारवादी अर्थव्यवस्था की आन्तरिक आवश्यकताओ की पूर्ति करने के लिए सचालित किया जाए, न कि अनुत्पादक सैनिक या सामाजिक व्यय पर नष्ट किया जाए तो परिणाम लाभदायक होगे अन्यथा इसके हानिकारक परिणाम हो सकते है।

भारतीय विकास योजनाओ मे वित्त-व्यवस्था के लिए हीनार्थ-प्रबन्धन के साधनो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय पचवर्षीय योजनाओ मे हीनार्थ प्रबन्धन से प्राप्त वास्तविक वित्त व्यवस्था क्रमश 333 करोड रुपये, 954 करोड रुपये, और 1,133 करोड रुपये की रही। चतुर्थ योजना मे हीनार्थ-प्रबन्धन की वित्त राशि अन्तिम उपलब्ध अनुमानो के अनुसार, 2,060 करोड रुपये रही। चतुर्थ योजना मे प्रारम्भ मे 850 करोड रुपये की हीनार्थ-प्रबन्धन-राशि अनुमानित की गई थी, लेकिन यह 2,060 करोड रुपये तक इसलिए बढी, क्योकि बगलादेश के स्वतन्त्रता-सग्राम मे भारत को सक्रिय योगदान देना पडा। सन् 1971 मे भारत-पाक युद्ध हुआ, 1971-72 और 1972-73 मे कृषि-उत्पादन निराशाजनक रहा, तेल के अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यो मे भारी वृद्धि हो गई। पाँचवी पचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष म बजट घाटा 295 करोड रुपये का रहा, 1975-76 का सशोधित अनुमान 490 करोड रुपये रहा, जबकि बजट अनुमान 247 करोड रुपये का ही था, और 1976-77 के बजट मे कुल घाटा 425 करोड रुपया (सशोधित अनुमान) का रहा। मार्च, 1977 के ऐतिहासिक सत्ता-परिवर्तन के बाद जनता पार्टी की सरकार के नए वित्तमन्त्री श्री एच० एम० पटेल ने जो बजट प्रस्तुत किया उसमे 84 करोड रुपये के घाटे का अनुमान लगाया गया। यह अनुमान वित्तमन्त्री ने भारतीय रिजर्व बैंक से लिए जाने वाले 800 करोड रुपये के उधार को हिसाब मे शामिल करते हुए यह मानकर

लगाया था कि वर्ष के दौरान विदेशी मुद्रा आरक्षित निधि मे धनराशियाँ निकाली जाएँगी। लेकिन आरक्षित निधि मे धनराशि निकाल देने की देश की क्षमता के बारे मे वित्तमन्त्री का अनुमान सच नही निकला। चूँकि वित्त मन्त्री ने राष्ट्र से यह वायदा किया था कि भारतीय रिजर्व बैंक से उसी हालत मे इस ऋण का इस्तेमाल किया जाएगा जबकि आरक्षित निधि से धनराशियाँ निकाल ली जाएँगी, अतः 1978-79 का बजट पेश करते समय उन्होने अपने भाषण मे बताया कि वे अब उधार नही लेना चाहते और पिछले वर्ष अर्थात् 1977-78 मे कुल घाटा 975 करोड रुपये का रहेगा। वित्तमन्त्री महोदय ने अपने भाषण मे कहा कि यह एक बडी रकम दिखाई पड़ेगी लेकिन सत्र से पहले मैं इस बात को स्पष्ट कर दूं कि इस राशि मे से 414 करोड रुपये की रकम प्रत्यक्ष रूप से उस अतिरिक्त सहायता की द्योतक है जो मुझे विवश होकर राज्यों को उनका घाटा पूरा करने के लिए देनी पडी थी। दूसरे, 190 करोड रुपये की एक बड़ी रकम उर्वरको का आयात करने के लिए खर्च की गयी है। वित्तमन्त्री ने आगे कहा—"हालाकि यह घाटा देखने मे बड़ा मालूम होता है परन्तु सरकार की पूर्ति-व्यवस्था तथा ऋण-नियन्त्रण की दूरदर्शितापूर्वक नीतियों के कारण इसके सभी प्रकार के प्रतिकूल प्रभावो को काबू मे रखा जा सका है और हमने इस वर्ष (1977-78) को बिना किसी मुद्रा-स्फीति के पूरा कर दिया है।"[1] साराश रूप मे, 1977-78 के बजट (सशोधित) मे कुल घाटा 975 करोड रुपये का दिखाया गया है। वित्त मन्त्री श्री पटेल ने 28 फरवरी, 1978 को ससद मे 1978-79 का बजट पेश किया जिसमे कुल घाटा 1050 करोड़ रुपये का अनुमानित किया गया।[2]

एक विकासोन्मुख अर्थ-व्यवस्था मे हीनार्थ-प्रबन्धन के साधन का सयमपूर्वक आश्रय लिया जाना चाहिए। मुद्रा-पूर्ति उत्पादन-वृद्धि के अनुसार समायोजित होनी चाहिए। दुर्भाग्यवश भारत मे ऐसा सम्भव नही हो सका है और हीनार्थ-प्रबन्धन के फलस्वरूप मूल्यो मे भारी वृद्धि हुई। विकासोन्मुख अर्थ-व्यवस्था मे हीनार्थ-प्रबन्धन का अपना महत्त्व है किन्तु इसका आश्रय सीमित मात्रा मे उचित नियन्त्रणों के साथ लिया जाना चाहिए। देश मे व्याप्त मुद्रा-प्रसारित-प्रवृत्तियो को दबाने के लिए हीनार्थ-प्रबन्धन को न्यूनतम रखने के प्रयास अभी तक अधिकांशतः असफल ही रहे हैं। भारत मे, गत वर्षों के हीनार्थ-प्रबन्धन के दुष्परिणामो को देखते हुए अब इस व्यवस्था का आगामी वर्षों मे कोई क्षेत्र नही है, लेकिन यह भी स्वीकार करना होगा कि हमारी विकासशील अर्थव्यवस्था मे योजना के लिए साधनों की प्राप्ति की दृष्टि से और अर्थव्यवस्था को सक्रिय बनाने के लिए अभी हीनार्थ-प्रबन्धन के साधन से तुरन्त बच निकलना सम्भव नही है। यदि घाटे के वित्त-प्रबन्धन में अचानक ही भारी कटौती कर दी गई तो आशंका है कि अर्थव्यवस्था मे कुल माँग के घट जाने से निष्क्रियता की स्थिति (Recessionary Situation) पैदा हो जाएगी।

1. वित्त मन्त्री का बजट (1978-79) भाषण, भाग 'क', पृष्ठ 9-10.
2. वही, भाग 'ख', पृष्ठ 30.

यदि सरकार बहुत सावधानी और सयम के साथ उपयुक्त समय पर, उपयुक्त मात्रा मे हीनार्थ-प्रबन्धन का आश्रय कुछ समय तक लेती रहे तो साधनो को गतिशील बनाने की दृष्टि से यह उपाय कारगर सिद्ध हो सकता है। वाँछित उद्देश्यो को आघात न लगे और जनता मूल्य-वृद्धि से परेशान न हो, इसीलिए ऐसे समुचित प्रशासनिक और आर्थिक कदम उठाने होगे जिससे कृत्रिम मूल्य-वृद्धि न हो सके और स्फीतिजनक दबाव कम हो जाए। निष्कर्षत "जितना शीघ्र घाटे की अर्थ-व्यवस्था और मूल्य वृद्धि चक्र रोका जाएगा, उतना ही हमारे स्वस्थ-आर्थिक-विकास के लिए कल्याणकारी होगा।"

बचत और विकास भारत मे राष्ट्रीय बचत आन्दोलन

बचत से व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का कल्याण होता है। बचत पूंजी निर्माण का सर्वोत्तम साधन है, जिससे देश प्रगति के पथ पर तीव्रता से बढता है और जन-साधारण का जीवन-स्तर ऊँचा उठता है। बचत द्वारा हम विकासशील अर्थ व्यवस्था से उत्पन्न महँगाई पर अकुश लगा सकते हैं। बचत भी एक खर्च है, जिसे सरकार व्यापारी तथा अन्य कोई व्यक्ति करता है। बचत की धनराशि किसी कार्य विशेष के लिए व्यय की जाती है। व्यक्ति और व्यापारी समुदाय जो बचाते हैं, वही सरकार की बचत है। सरकार के बचत विभागो द्वारा बचाई गई रकम भी इसी श्रेणी मे आती है। भारत मे सरकार ने बचत प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने के प्रचुर प्रयास किए हैं, इसी कारण देश मे राष्ट्रीय बचत आन्दोलन सफलता के साथ आगे बढा है।

एक अध्ययन के अनुसार भारत मे प्रथम पचवर्षीय योजना मे बचत दर 8 6% थी, जो द्वितीय योजना मे बढकर 9 9% हो गई। किन्तु तृतीय योजना मे यह घटकर 8% रह गई और चतुर्थ योजना मे बढकर फिर 10% हो गई। इस समय बचत दर 11% है। गत 20 वर्षो मे औसत व्यक्तिगत और सरकारी बचत 13 6% थी।[1] वस्तुत चतुर्थ योजना मे राष्ट्रीय बचत जुटाने के कार्य को उल्लेखनीय सफलता मिली। चतुर्थ योजना के दौरान राष्ट्रीय बचत मे 1,385 करोड रुपये जुटाए गए जबकि लक्ष्य केवल 1,000 करोड रुपये के एकत्रित करने का था। राष्ट्रीय बचत की दिशा मे यह बात अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है कि कुल बचत मे व्यक्तिगत बचत का योग, जो 1972-73 मे 49% था, 1973-74 मे 56% और 1974-75 मे 62% हो गया।[2]

अल्प बचत करने वालो के लिए योजनाएँ

भारत सरकार ने अल्प बचत योजनाएँ प्रमुख रूप से अल्प बचत करने वाले लोगो—जैसे छोटे किसानो, कारखाना मजदूरो, सामान्य परिवारो की गृहणियो और ऐसे ही अन्य लोगो के लिए बनाई है। राष्ट्रीय बचत सगठन, जो विभिन्न बचत योजनाओ का सचालन करता है, आम आदमी की बचत का सचय करता है और

1 योजना 7 व 22 दिसम्बर, 1975, पृष्ठ 26
2 भारत सरकार राष्ट्रीय बचत, नवम्बर 1975

उन्हें 1,16,800 डाकघरो के माध्यम से, जिनमे 90% देहाती क्षेत्रों मे है, इकट्ठा करता है।

ये बचत योजनाएँ समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगो की आवश्यकताएँ पूरी करती हैं। इनमे प्रथम डाकघर बचत योजना है, जो सन् 1834 मे सरकारी बचत बैंक के रूप मे शुरू हुई थी। इन वर्षों के दौरान बचत बैंक की जमा मे निरन्तर वृद्धि होती है और इस समय बचत बैंक मे जमा-राशि 1,274 करोड़ रु. है तथापि वास्तव मे वह जनता का बैंक है, क्योंकि यहाँ 5 रु तक की अल्प-राशि से बैंक खाता खोला जा सकता है और बाद मे 1 रु. तक की राशि नकद जमा कराई जा सकती है।

परम्परा से ही डाकघर-बचत बैंक का ब्याज, आयकर से मुक्त है। कर-दाताओं को अल्प बचत मे धन लगाने के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन देने के लिए अधिक ब्याज देने वाली (10 25% प्रति वर्ष) कर-योग्य सिक्युरिटियाँ है। इन सभी बचत योजनाओ पर वाणिज्य बैंको द्वारा दी जाने वाली दरो पर ब्याज दिया जाता है। लेकिन इन पर कुछ अतिरिक्त रियायतें दी जाती है। जैसे—कर मुक्त ब्याज, आर्थिक कर से मुक्ति, आय-कर से मुक्ति और सामाजिक सुरक्षा।

इस समय डाकघर बचत बैंक के अतिरिक्त अल्प बचत करने वालो के लिए दस और योजनाएँ हैं। इनमे से उन लोगो के लिए है जो एक साथ राशि जमा करना चाहते हैं, और 1,2,3,4,5 और 7 वर्ष बाद उसकी वापसी चाहते हैं। दो योजनाएँ मासिक बचत करने वालों के लिए हैं, जो प्रत्येक महीने नियत राशि जमा कराते हैं और निश्चित अवधि के पश्चात् आकर्षक ब्याज राशि वापस पाते हैं। इसके अतिरिक्त एक लोक-भविष्य निधि-योजना भी है। यह योजना स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया के माध्यम से चलाई जाती है। यह योजना अपना स्वतन्त्र कारोबार करने वाले लोगो, जैसे—डाक्टरो, वकीलो और छोटे व्यापारियो के लिए है सन् 1975 के अन्त से वार्षिकी बचत पत्रो की एक अन्य योजना शुरू की गई है। यह योजना उन लोगो के लिए है, जो इस समय एक मुश्त राशि जमा कराना चाहते हैं और कुछ वर्षों के पश्चात् मासिक भुगतान चाहते हैं।

बचत-वृद्धि

योजना आयोग ने यह अनुभव करके कि अल्प बचत द्वारा काफी साधन जुटाए जा सकते हैं, प्रथम योजना मे अल्प बचत के लिए 255 करोड रु. का लक्ष्य निर्धारित किया गया। अल्प बचत संचित करने के लिए अनेक कदम उठाए गए—जैसे नए बचत-पत्रों की बिक्री, राज्यवार लक्ष्य निर्धारित करना, एजेन्सी सिस्टम की पुनः शुरूआत आदि। प्रथम योजनावधि मे कुल मिलाकर 242 करोड़ रु. अल्प बचत मे एकत्र किए गए, जबकि लक्ष्य 225 करोड़ रु. का था। यह राशि अल्प बचत मे प्रथम योजनावधि मे जमा कुल राशि में से इसी अवधि मे निकाली गई राशि घटाकर निकलती है। द्वितीय योजना मे अल्प बचत मे 400 करोड़ रु., तृतीय योजना मे 575 करोड़ रु. और चतुर्थ योजना में 1,385 करोड़ रु. एकत्र किए गए जबकि

द्वितीय योजना मे 500 करोड रु, तृतीय मे 600 करोड रु और चतुर्थ योजना मे 1,000 करोड रु एकत्र करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था।

अल्प बचत मे 31 मार्च, 1975 को कुल मिलाकर लगभग 3,600 करोड रु जमा थे। यह राशि वर्तमान सरकारी (भारत सरकार के) बाजार ऋण मे, 6435 करोड रु के आधे से अधिक है और भारत सरकार के भविष्य निधि खाते मे जमा 1,291 करोड रु की लगभग तीन गुनी है।

कुछ नई योजनाएँ

अल्प बचत आन्दोलन एक सामाजिक-आर्थिक विचारधारा है। इस आन्दोलन ने सर्वथा जनता का समर्थन पाने पर जोर दिया गया है और इसके लिए जनता को हमेशा यह समझाने का प्रयत्न किया गया है कि निजी और राष्ट्रीय दोनो दृष्टिकोण से बचत से क्या लाभ हैं, इस बात को ध्यान मे रखते हुए राष्ट्रीय बचत सगठन से अनेक नई योजनाएँ आरम्भ की हैं और अल्प बचत मे पूंजी लगाने वालो को अतिरिक्त प्रोत्साहन दिया है। प्रमुख योजनाओ के नाम निम्नलिखित हैं—वेतन द्वारा बचत योजना, महिला प्रधान बचत योजना, सचयिका, ग्रामीण डाकघरा के ब्राँच पोस्टमास्टर एव यूनिट ट्रस्ट। राष्ट्रीय बचत योजनाओ को अधिक आकर्षक बनाने और सामाजिक सुरक्षा के साथ सम्बद्ध करने हेतु दो नई योजनाएँ शुरू की गई हैं। प्रथम सरक्षित बचत योजना इसके अधीन पाँचवर्षीय आवर्ती जमा खाते मे जमा की गई 20 रुपय प्रति महीने तक की राशि सरक्षित है। यदि इस खाते मे पैसा जमा कराने वाला व्यक्ति दो वर्ष तक बिना पैसा निकाले अपनी जमा देता रहता है और उसकी मृत्यु हो जाती है तो उसके परिवार को तुरन्त ही खाते का कुल परिपक्व मूल्य दे दिया जाएगा। दूसरी योजना उन खातेदारो के लिए है, जो अपने बचत-बैंक खाते म कम से कम छ महीने तक 200 रुपय लगातार जमा रखते हैं। यह डा योजना है।

राज्य सरकारो के सहयोग से किसानो से सम्पर्क स्थापित करने हेतु विशेष अभियान चलाए गए है। किसानो के पास फसल के दौरान अतिरिक्त पैसा होता है और अभियान द्वारा उन्हे अपना यह पैसा आकर्षक अल्प बचत योजनाओ मे लगाने के लिए तैयार करने का प्रयत्न किया जाता है। गना कपास आदि का विक्रय करने वाली सरकारी समितियो के साथ यह व्यवस्था की गई है कि वे किसानो को दी जाने वाली राशि म से अल्प बचत के लिए उनके हिस्से की राशि काट लें। राष्ट्रीय बचत सगठन इस बात का भी प्रयत्न करता है कि कारखाना मजदूर अपन बोनस की राशि अथवा बकाया वेतन की राशि का कुछ हिस्सा अल्प बचत मे लगाएँ।

अल्प बचत योजनाओ के अधीन जमा की गई राशि का अधिकांश हिस्सा राज्य सरकारो की विकास योजनाओ को लागू करन के लिए दीर्घावधि ऋण के रूप मे दिया जाता है। राज्यो को अल्प बचत मे अधिक धन जुटाने के लिए अतिरिक्त प्रोत्साहन भी दिये जाते हैं।

राष्ट्रीय उत्पाद, बचत और पूंजी निर्माण[1] (1975-76 के अनुमान)

केन्द्रीय सांख्यिकीय सगठन ने "1960-61 से लेकर 1974-75 तक राष्ट्रीय लेखा आँकड़े" पर विस्तृत वार्षिक श्वेत पत्र के साथ सन् 1975-76 की राष्ट्रीय ग्राय के मोटे अनुमान प्रकाशित किए हैं।

इन अनुमानो के अनुसार पिछले वर्ष की तुलना मे 1975-76 के दौरान राष्ट्रीय ग्राय मे 8·8% की वृद्धि हुई। प्रति व्यक्ति ग्राय मे 6 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। सन् 1974-75 के दौरान राष्ट्रीय ग्राय मे 0·2 प्रतिशत की वृद्धि और प्रति व्यक्ति ग्राय में 1·7 प्रतिशत की कमी हुई थी।

सन् 1960-61 के मूल्यो के अनुसार 1975-76 मे शुद्ध राष्ट्रीय ग्राय 21,952 करोड़ रुपये और प्रति व्यक्ति ग्राय 366 रुपये ग्रांकी गई है। 1974-75 मे ये आकडे क्रमश. 20,183 करोड रुपये और 343 रुपये के थे।

सन् 1975-76 के दौरान राष्ट्रीय ग्राय मे हुई इस आकर्षक वृद्धि का मुख्य कारण खाद्य वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि होना है जो 1974-75 के 998·3 लाख टन के उत्पादन से बढकर 1975-76 मे 1208 3 लाख टन हो गया। इससे कृषि क्षेत्र के उत्पादन मे 13 2 प्रतिशत की शुद्ध वृद्धि हुई। इस वर्ष ग्रन्य कई क्षेत्रों के उत्पादन मे वृद्धि हुई है जिनमे बैंकिग और बीमा (13 2 प्रतिशत), विद्युत गैस और जल वितरण (13 1 प्रतिशत), रेलें (11 9 प्रतिशत), खनन और खदान (10 2 प्रतिशत) उल्लेखनीय हैं।

चालू मूल्यो के अनुसार 1975-76 की राष्ट्रीय ग्राय 60,293 करोड रुपये और प्रति व्यक्ति ग्राय 1,005 रुपये होती है। सन् 1974-75 मे ये आंकड़े क्रमश: 58,137 करोड रुपये और 989 रुपये के थे।

सन् 1975-76 के लिए उपयोग व्यय, घरेलू बचत और पूंजी निर्माण के मोटे अनुमान भी तैयार किए गए है। इनकी प्रमुख बातें इस प्रकार है :—

उपयोग व्यय

चालू मूल्यो पर सन् 1975-76 मे 56,580 करोड रुपये के निजी उपभोग व्यय का अनुमान लगाया गया है जो सकल राष्ट्रीय उत्पादन के 78·9% के बराबर है। सन् 1974-75 मे उपभोग व्यय 53,777 करोड़ रुपये रहा। उपभोग व्यय का ढाँचा पिछले तीन वर्षों से लगभग एक-सा ही रहा है। खाद्य वस्तुओ पर कुल व्यय का दो तिहाई खर्च किया गया।

बचत व पूँजी निर्माण

1975-76 के दौरान 10,013 करोड़ रुपये की घरेलू बचत और 11,058 करोड़ रुपये की घरेलू पूंजी का निर्माण हुआ। पिछले वर्ष की तुलना में 1975-76 में इसका स्तर काफी ऊँचा रहा। सन् 1974-75 में ये आंकड़े क्रमश: 8,500 और

1. भारत सरकार की विज्ञप्ति, दिनांक 14 फरवरी 1977.

8,576 करोड रुपये के थे। राष्ट्रीय ग्राय के ग्रनुपात से सन् 1975-76 मे बचत 14 7 प्रतिशत ग्रौर पूंजी निर्माण 16 2 प्रतिशत रहा जो सन् 1974-75 मे क्रमश 13 1 प्रतिशत ग्रौर 14 7 प्रतिशत रहा था।

सन् 1974-75 ग्रौर 1975-76 मे घरेलू बचत की वृद्धि मुख्यत वित्तीय व भौतिक परिसम्पत्तियो की बचत के कारण हुई। दूसरी तरफ निजी नियमित क्षेत्र की बचत मे बहुत तेजी से कमी ग्राई है। यह 1974-75 मे 843 करोड रुपये की जो 1975-76 मे घटकर 520 करोड रुपय रह गयी। इस बचत मे रुई, पटसन, चीनी ग्रौर जहाजरानी उद्योग का प्रमुख योगदान रहा। सार्वजनिक क्षेत्र ने पिछले वर्षों मे बचत मे लगभग समान योगदान दिया है।

निजी नियमित क्षेत्र के पूंजी निर्माण मे भी काफी कमी ग्राई है। यह 1974-75 मे 2,065 करोड रुपये थी जो 1975-76 मे घटकर 1,194 करोड रुपये रह गई। सन् 1975-76 मे पूंजी निर्माण की ऊँची दर का मुख्य कारण सार्वजनिक क्षेत्र मे ग्रनाज का विशाल भडार होना था।

राष्ट्रीय लेखा ग्राँकडे (सन् 1974-75)

सन् "1960-61 से लेकर 1974-75 तक राष्ट्रीय लेखा ग्राँकडे" के श्वेत-पत्र द्वारा सदा की तरह राष्ट्रीय ग्राय, उपयोग व्यय, बचत ग्रौर पूंजी निर्माण, उद्योगो द्वारा ग्राय मे योगदान, सार्वजनिक क्षेत्र का लेखा ग्रौर राष्ट्र का सामूहिक लेखा प्रकाशित किया गया है। श्वेत पत्र मे पहली बार ग्रब तक की सारी तालिकाऐं प्रकाशित की गयी जिससे एक वर्ष पीछे के ग्राँकडे भी एक ही स्थान पर उपलब्ध हो सके।

9 उपभोग-वस्तुओं और मध्यवर्ती-वस्तुओं के लिए माँग के अनुमान, आदा-प्रदा गुणांकों का उपयोग

(DEMAND PROJECTIONS FOR CONSUMPTION GOODS AND INTERMEDIATE GOODS, THE USE OF INPUT-OUTPUT CO-EFFICIENTS)

किसी भी देश की आर्थिक विकास योजना के लिए उस देश के साधनों तथा उपभोक्ता-वस्तुओं की वर्तमान तथा भावी स्थिति की जानकारी आवश्यक है। इसीलिए योजना-निर्माण से पूर्व साधनों तथा उपभोक्ता-वस्तुओं की माँग की संगणना की जाती है। उपभोक्ता-वस्तुओं की माँग को 'अन्तिम माँग' (Final Demand) तथा साधनों की माँग को 'व्युत्पन्न-माँग' (Derived Demand) कहा जाता है। जो वस्तुएँ अन्य वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त होती हैं उनको मध्यवर्ती वस्तुएँ (Intermediate Goods) तथा जिनका अन्तिम प्रयोग (Final use) उत्पादन के लिए न होकर उपभोग के रूप में होता है, उनको उपभोक्ता वस्तुएँ (Consumer Goods) कहा जाता है।

मध्यवर्ती वस्तुओं से सम्बन्धित मध्यवर्ती माँग को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—(1) प्रारम्भिक आदान (Primary input) अथवा श्रम की माँग, तथा (2) अन्तिम उत्पादन में प्रयुक्त वस्तुओं की माँग। उपभोक्ता वस्तुओं की माँग का अनुमान आय-लोच के आधार पर लगाया जाता है तथा श्रम की माँग व मध्यवर्ती वस्तुओं की माँग संगणना आदा-प्रदा तकनीकी (Input-Output Technique) द्वारा की जाती है।

आय-लोच द्वारा उपभोक्ता वस्तुओं की माँग के अनुमान (Demand Projections of Consumer Goods)

आय-लोच की सहायता से कुल माँग के अनुमान अग्रांकित प्रकार से लगाए जाते हैं—

मान लीजिए भोजन और वस्त्र की आय-लोच क्रमश. ·6 व 1·5 दी हुई है। यदि प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि-दर 10% हो तो, आय-लोच के आधार पर भोजन की मांग मे 6 × 10=6% तथा वस्त्र की मांग मे, 1·5 × 10=15% वृद्धि होगी। इस प्रकार, प्रति व्यक्ति आय-वृद्धि तथा आय-लोच दी हुई हो तो, प्रत्येक वस्तु की माँग को आंका जा सकता है तथा सब वस्तुओ के माँग के योग द्वारा कुल माँग की सगणना की जा सकती है।

आर्थर लेविस ने एक दस वर्षीय कल्पित आर्थिक योजना का उदाहरण लेते हुए माँग के अनुमानो की समष्टि सगणना (Macro Exercise) प्रस्तुत की है—इन्होंने माँग के अनुमानो के लिए मुख्यत तीन तत्त्वो का उल्लेख किया है—(1) जनसख्या, (2) उपभोग व्यय मे प्रति व्यक्ति वृद्धि का तत्त्व, तथा (3) उपभोक्ता की रुचि मे परिवर्तन का तत्त्व। उनके अनुसार सर्वप्रथम माँग के अनुमानो के लिए प्रारम्भिक वर्ष (Year 0) के उपभोग को जनसख्या वाले वृद्धि तत्त्व से गुणा करना चाहिए और इसके पश्चात् गुणनफल को प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि वाले तत्त्व से और अन्त मे उपभोक्ता की रुचि मे होने वाले परिवर्तन सम्बन्धी तत्त्व से गुणा करना चाहिए। इसे निम्नलिखित सारणी द्वारा स्पष्ट किया गया है[1]—

मद	Year 0	आय-लोच	Year 10
खाद्य वस्तुएँ	200	5	266
पशुओं से प्राप्त वस्तुएँ	100	1 2	144
स्थानीय निमित वस्तुएं	30	1 1	43
निर्माण प्रक्रिया के अन्तर्गत वस्तुएँ	70	1 2	101
अन्य निर्मित वस्तुएँ	48	1·5	71

(a) जनसख्या वृद्धि-दर 2 3% प्रति वर्ष है। इसीलिए पूरे 10 वर्ष के लिए जनसख्या तत्त्व 1 256 है।

इसे निम्न सूत्र द्वारा निकाला गया है—

$P_{10}=P_0\ (1+r)^{10}$ अथवा $P_{10}=P_0\ (1+023)^{10}$

$$P_{10}=P_0 \times 1\ 256$$

(b) उपभोग-व्यय मे प्रति व्यक्ति वृद्धि 11 9% होती है। उस तत्त्व मे प्रत्येक वस्तु की आय-लोच का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(c) रुचि मे परिवर्तन तीसरा गुणक तत्त्व है जो जनसख्या वृद्धि अथवा माँग प्रवृत्ति से प्रभावित नही होता। केवल रुचि मे परिवर्तन के कारण नई वस्तुएँ, पुरानी वस्तुओ का स्थान लेने लगती हैं।

उक्त तीनो गुणक तत्त्वो का प्रयोग करते हुए 10वें वर्ष मे खाद्य-सामग्री की माँग होगी, जबकि प्रारम्भिक माँग 200 है—

$$(200)\ (1{\cdot}256)\ (1\ 0+{\cdot}119\times 5)=266$$

1 *W. Arther Lewis :* Development Planning, p 180

इसी प्रकार उक्त सारणी मे प्रदर्शित अन्य वस्तुओ की माँग को निम्न प्रकार ज्ञात किया जा सकता है—

पशुओं द्वारा प्राप्त वस्तुओ की माँग—

(100) (1·256) (1·0+·119×1 2)=144

स्थानीय निर्मित वस्तुओं की माँग—

(30) (1·256) (1·0+·119×1·1)=43

निर्माण प्रक्रिया के अन्तर्गत वस्तुओं की माँग—

(70) (1·256) (1·0+·119×1·2)=101

अन्य निर्मित वस्तुओ की माँग—

(48) (1·256) (1 0+·119×1·5)=71

मध्यवर्ती वस्तुओ (Intermediate Goods) तथा श्रम की माँग व कुल उत्पादन की संगणना व आदा-प्रदा तकनीकी के आधार पर की जाती है।

आदा–प्रदा तकनीकी
(Input-Output Technique)

आदा-प्रदा तकनीकी उत्पादन का एक रेखीय स्थायी गुणांक मॉडल (A Linear Fixed Coefficient Model) है। इस मॉडल के प्रवर्तक प्रो. लियनटिफ थे।

इस्पात उद्योग का उत्पादन अनेक उद्योगों मे आदा (Input) के रूप मे प्रयुक्त होता है। इसलिए उत्पादन का सही स्तर तभी मालूम हो सकेगा, जबकि सभी *n* उद्योगो के लिए आवश्यक आदा (Inputs) की आवश्यक मात्राएँ ज्ञात हो। अनेक अन्य औद्योगिक उत्पादन भी स्वयं इस्पात उद्योग के लिए आदा के रूप में प्रयुक्त होगा। परिणामत अन्य वस्तु के उत्पादन के उचित स्तर आँशिक रूप से इस्पात उद्योग की आदा सम्बन्धी आवश्यकताओ पर निर्भर करेगा। अन्तः उद्योग निर्भरता की दृष्टि से *n* उद्योगो के उत्पादन का उचित स्तर वह होता है जो अर्थ-व्यवस्था की समस्त आदा आवश्यकताओ (Input Requirements) के अनुकूल (Consistent) हो।

अत: स्पष्ट है कि उत्पादन-नियोजन मे आदा-प्रदा विश्लेषण का प्रमुख स्थान है। किसी भी देश के आर्थिक विकास की योजना अथवा राष्ट्रीय सुरक्षा के कार्य-क्रमों मे इस विधि का प्रयोग किया जाता है।

यदि विशिष्ट रूप से देखा जाए तो इस पद्धति को सामान्य सन्तुलन विश्लेषण का प्रकार नहीं कहा जा सकता। यद्यपि इस मॉडल मे विभिन्न उद्योगों की पारस्परिक अन्तःनिर्भरता पर बल दिया जाता है तथापि तकनीकी भाषा में उत्पादन के सही स्तर वे होते हैं जो बाजार-सन्तुलन की शर्तों को पूरा करने की अपेक्षा तकनीकी आदा-प्रदा सम्बन्धों को सन्तुष्ट करते हैं।

आदा-प्रदा मॉडल का ढाँचा[1]

इस प्रणाली मे सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था मे n उद्योगो की कल्पना की जाती है। प्रत्येक उत्पादक इकाई एक ही वस्तु का उत्पादन करती है। उस वस्तु के उत्पादक की j^{th} इकाई के लिए आदा की एक निश्चित मात्रा प्रयोग मे आती है, जिसे 'a_{ij}' द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। चूँकि मॉडल एक रेखीय है इसलिए j^{th} उत्पादन की x_j मात्रा के लिए i^{th} आदा की $a_{ij}\, x_j$ मात्रा आवश्यक होगी।

इस मॉडल मे उत्पादन के स्थिर गुणांक होते है इसलिए आदाओ के मध्य कोई प्रतिस्थापन नही होता अत x_j उत्पादन के लिए सदैव $a_{ij}\, x_j$ मात्रा i^{th} आदा की मात्रा आवश्यक होगी तथा k^{th} आदा की $a_{kj}\, x_j$ मात्रा आवश्यक होगी। इस प्रकार के मॉडल को ही आदा-प्रदा मॉडल कहते हैं। a_{ij}' को आदा-गुणांक (Input Coefficient) कहते है तथा $[a_{ij}]$ मैट्रिक्स (Matrix) को आदा-मैट्रिक्स कहते हैं। आदा-प्रदा के निम्नलिखित दो मॉडल होते हैं—

(1) बन्द मॉडल (Closed Model)

(2) खुला मॉडल (Open Model)

यदि आदा-प्रदा के मॉडल मे आदा वस्तुओं का समूह पूर्ण प्रणाली मे केवल एक बार ही प्रकट होता है तथा जिसे अन्य ऐसी वस्तुओ के समूह से जाना जाता है, जो अन्तिम उत्पादन के रूप मे भी एक ही बार प्रकट होते है और वर्तमान उत्पादन के अतिरिक्त आदाओ का कोई अन्य स्रोत नही होता और अन्तिम उत्पादन का भी आदाओ के अतिरिक्त कोई अन्य उपयोग नही होता, तो इन विशेषताओ वाले मॉडल को बन्द मॉडल (Closed Model) कहते है।

खुला मॉडल (Open Model) सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था का मॉडल होता है जिसमे निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

(i) n वस्तुओ का उत्पादन-क्षेत्र जहाँ एक ओर अन्तिम वस्तुओ के उत्पादन को प्रकट करता है, साथ ही उत्पादन क्षेत्र के लिए आवश्यक आदाओ का भी प्रतीक होता है (Production Sector of n output which are also inputs within the Sector)।

(ii) एक ऐसा अतिरिक्त आदा जो किसी भी उत्पादन-क्रिया जिसका उत्पादन-क्षेत्र से सम्बन्ध होता है, प्रयोग मे नही लिया जाता।

(iii) अन्तिम वस्तुओ की माँग आदाओ की आवश्यकताओ की पूर्ति के पश्चात् भी बनी रहती है।

उत्पादन-क्षेत्र $n \times n$ आदा-मैट्रिक्स का होता है। मैट्रिक्स की यह प्रणाली अर्द्ध-धनात्मक (Semi-positive) होती है तथा जिसका विघटन (Decomposition) सम्भव नही माना जाता है। ऐसी मैट्रिक्स के लिए A का प्रयोग किया जाएगा। X को भौतिक उत्पादन का वैक्टर (Vector) मानने पर AX आदा की

1 A C Chiang Fundamental Methods of Mathematical Economics, p 120.

आवश्यकताओं का वैक्टर (Vector) होगा तथा $X—AX=(I—A)X$ शुद्ध उत्पादन का वैक्टर कहलाएगा अर्थात् यह वैक्टर वस्तुओं की उन मात्राओं को प्रकट करेगा जो उत्पादन-क्षेत्र के बाहर विक्रय हेतु उपलब्ध होती हैं। यह वैक्टर Value added की मात्रा को प्रकट करता है।

मान्यताएँ (Assumptions)

इस मॉडल की निम्नलिखित प्रमुख मान्यताएँ हैं—

(1) प्रत्येक उद्योग एक समरूप (Homogeneous) वस्तु का उत्पादन करता है।

(2) आदा अनुपात (Input Ratio) स्थिर रहता है।

(3) पैमाने के स्थिर प्रतिफल क्रियाशील रहते हैं।

(4) यह उत्पादन-फलन एकरेखीय (Linear) है।

(5) उत्पादित वस्तुओं का संयोग स्थिर (Fixed Product Mix) रहता है।

तथ्य की आदा (Inputs) एक निश्चित अनुपात मे प्रयुक्त होते हैं, यह निम्नलिखित समीकरण द्वारा स्पष्ट होता है—

$$\frac{a_{ij}}{a_{kj}}=\frac{X_{ij}}{X_{kj}}$$

उक्त समीकरण मे आदा-प्रदा अनुपातों को रखने से निम्नलिखित परिणाम प्राप्त होता है—

$$X_i = \sum_{j=1}^{n} a_{ij}X_j+F_i \; (i=1, 2, \ldots n)$$

जो एकरेखीय समीकरणों के मॉडल को प्रकट करता है जिसमे स्थिर गुणांक होते हैं तथा जो n उत्पादन प्रभावो के साथ एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं एवं अन्तिम माँग से भी सम्बन्धित होते हैं ($F_1 \ldots \ldots F_n$)।

एक n उद्योग वाली अर्थ-व्यवस्था के लिए आदा गुणाँको को A मैट्रिक्स के रूप मे $A=[a_{ij}]$ निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है—

Output (अन्तिम उत्पादन)

आदा (input)	I	II	III	....	N
I	a_{11}	a_{12}	a_{13}	....	a_{1n}
II	a_{21}	a_{22}	a_{23}	....	a_{2n}
III	a_{31}	a_{32}	a_{33}	....	a_{3n}
⋮	⋮				
N	a_{n1}	a_{n2}	a_{n3}	....	a_{nn}

यदि कोई उद्योग अपने द्वारा उत्पादित वस्तु को आदा के रूप में प्रयुक्त नही करता है, तो मैट्रिक्स के मुख्य कारण (Diagonal) पर आने वाले सभी तत्त्व (Elements) शून्य होते हैं।

आदा प्रदा गुणाँको के उपयोग
(Uses of Input-Output Coefficient)

इन गुणाँको की सहायता से, यदि अन्तिम माँग का वैक्टर (Vector) दिया हुआ हो तो प्रत्येक क्षेत्र का कुल उत्पादन और कुल मूल्य-वृद्धि ज्ञात की जा सकती है।

कुल उत्पादन की सगणना
(Calculation of Gross Output)

आदा-प्रदा तकनीकी के आधार पर कुल उत्पादन की सगणना को निम्न प्रकार उदाहरण द्वारा समझाया गया है—दो उत्पादन क्षेत्र दिए हुए हैं—

$$A=\begin{bmatrix} 2 & 4 \\ 1 & 5 \end{bmatrix}$$

दिया हुआ माँग वैक्टर $D=\begin{bmatrix} 60 \\ 40 \end{bmatrix}$ है। उक्त सूचनाओ से कुल उत्पादन निम्न प्रकार मैट्रिक्स इनवर्स (Inverse) करके ज्ञात किया गया है—

$$I=\begin{bmatrix} 1 & 0 \\ 0 & 1 \end{bmatrix} \quad (I-A)=\begin{bmatrix} 8 & -4 \\ -1 & 5 \end{bmatrix}$$

Co-factor Matrix

$$8\ (5)-(-4)\ (-1)$$
$$-(-1)\ (-4)+5\ (8)$$

$$\begin{bmatrix} 5 & 1 \\ 4 & 8 \end{bmatrix}$$

Adj A=Transpose of Co-Factor Matrix—

$$Adj\ A\begin{bmatrix} 5 & 4 \\ 1 & 8 \end{bmatrix}$$

Inverse of Matrix

$$\frac{Adj}{D}=\frac{1}{36}\begin{bmatrix} 5 & 4 \\ 1 & 8 \end{bmatrix}$$

$$\text{अथवा} \begin{bmatrix} \frac{50}{36} & \frac{40}{36} \\ \frac{10}{36} & \frac{80}{36} \end{bmatrix}$$

$$\therefore \begin{bmatrix} X_1 \\ X_2 \end{bmatrix}=\begin{bmatrix} \frac{50}{36} & \frac{40}{36} \\ \frac{10}{36} & \frac{80}{36} \end{bmatrix}\begin{bmatrix} 60 \\ 40 \end{bmatrix}$$

$$\begin{Bmatrix} X_1 \\ \\ X_2 \end{Bmatrix}=\begin{Bmatrix} \frac{50\times 6}{36} & \frac{40\times 41}{36} \\ \frac{10\times 60}{36} & \frac{80\times 40}{36} \end{Bmatrix}=\begin{matrix} \frac{250}{3}+\frac{400}{9}=\frac{1150}{9} \\ \frac{50}{3}+\frac{800}{9}=\frac{950}{9} \end{matrix}$$

इस प्रकार, X_1 का कुल उत्पादन $=\frac{1150}{9}$ तथा X_2 का कुल उत्पादन $\frac{950}{9}$ होगा, X_1 कृषि-क्षेत्र का उत्पादन प्रकट करता है तथा X_2 गैर-कृषि-क्षेत्र का उत्पादन प्रकट करता है।

मध्यवर्ती वस्तुओं की संगणना
(Calculation of Intermediate Goods)

मध्यवर्ती वस्तुओं की संगणना निम्न प्रकार की जाती है—

$$\begin{bmatrix} a_{11}.X_1 \\ a_{21}\,X_1 \end{bmatrix} = \text{क्षेत्र I की मध्यवर्ती वस्तुएँ।}$$

$$\begin{bmatrix} a_{12}\,X_2 \\ a_{22}\,X_2 \end{bmatrix} = \text{क्षेत्र II की मध्यवर्ती वस्तुएँ।}$$

$$\text{अथवा } 2 \times \frac{1150}{9} = \frac{230\ 0}{9}$$

$$1 \times \frac{1150}{9} = \frac{115\ 0}{9}$$

$$\frac{230{\cdot}0}{9} + \frac{115{\cdot}0}{9} = \frac{345}{9}$$

= क्षेत्र I की मध्यवर्ती वस्तुओं का कुल मूल्य

$$\cdot 4 \times \frac{950}{9} = \frac{380\ 0}{9}$$

$$5 \times \frac{950}{9} = \frac{475{\cdot}0}{9}$$

$$\frac{380\ 0}{9} + \frac{475}{9} = \frac{855}{9}$$

= क्षेत्र II की मध्यवर्ती वस्तुओं का कुल मूल्य।

मध्यवर्ती वस्तुओं की संगणना करने के पश्चात् अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र की शुद्ध मूल्य-वृद्धि (Value added) ज्ञात की जा सकती है। इस वृद्धि को ज्ञात करने के लिए कृषि-क्षेत्र कुल उत्पादन मे से मध्यवर्ती वस्तुओं का मूल्य घटा दिया जाता है। उपरोक्त उदाहरण के क्षेत्र I व II की मूल्य-वृद्धि निम्नलिखित प्रकार निकाली जा सकती है—

$$\because \text{ क्षेत्र I का कुल उत्पादन } = \frac{1150}{9}$$

∵ I को मध्यवर्ती वस्तुओं का मूल्य $=\frac{345}{9}$

∴ क्षेत्र I की शुद्ध मूल्य-वृद्धि $=\frac{1150}{9}-\frac{345}{9}=\frac{805}{9}$

इसी प्रकार, क्षेत्र II की शुद्ध मूल्य-वृद्धि $=\frac{950}{9}-\frac{855}{9}=\frac{95}{9}$

ज्ञात की जा सकती है।

प्राथमिक आदा (Primary Input) या श्रम की मात्रा ज्ञात करना खुले मॉडल वाले क्षेत्र में आदा-गुणाँको के प्रत्येक खाने में तत्त्वों (Elements) का योग एक से लागत (Partial Input Cost) प्रदर्शित करता है, जिसमें प्राथमिक आदा (Primary Input) का मूल्य शामिल नहीं होता। अत यदि योग एक से अधिक या एक के बराबर होता है, तो आर्थिक दृष्टि से उत्पादन लाभदायक नहीं माना जाता है। इस तथ्य को निम्न प्रकार प्रकट किया जा सकता है—

$$\sum_{i=1}^{n} a_{ij} < 1 \qquad (j=1, 2 \ldots\ldots\ldots n)$$

चूँकि आदा की एक रुपये लागत उत्पादन के समस्त साधनों के भुगतान करने में समाप्त हो जानी चाहिए, इसलिए कालम का योग एक रुपये से जितना कम होता है, वह प्राथमिक आदा के मूल्य को प्रकट करता है। j^{th} वस्तु की एक इकाई के उत्पादन में लगने वाला प्राथमिक आदा का मूल्य निम्न प्रकार प्रकट किया जा सकता है—

$$1-\sum_{i=1}^{n} a_{ij}$$

निम्नलिखित उदाहरण द्वारा इसे ज्ञात किया जा सकता है—

$$A=\begin{bmatrix} 2 & 3 & 2 \\ 4 & 1 & 2 \\ 1 & 3 & 2 \end{bmatrix}^{4}$$

इस मैट्रिक्स से उक्त विधि के द्वारा प्रत्येक क्षेत्र का कुल उत्पादन ज्ञात किया जा सकता है, जो निम्नलिखित है, X_1 अथवा क्षेत्र I का कुल उत्पादन=24 84, X_2 अथवा क्षेत्र II का कुल उत्पादन=20 68 तथा क्षेत्र III का कुल उत्पादन=18 36 होगा। इसके पश्चात मैट्रिक्स के कॉलमों का योग किया जाता है तथा योग को एक में से घटाकर प्राथमिक आदा का गुणांक ज्ञात कर लिया जाता है। इस गुणांक से क्षेत्रीय उत्पादन को जब गुणा किया जाता है तो प्राथमिक आदा का मूल्य ज्ञात हो जाता है। उक्त मैट्रिक्स के अनुसार प्राथमिक आदा के गुणांक होंगे—

$$1-\sum_{i=1}^{n} a_{ij}=\cdot 3 \cdot 3 \cdot 4$$

[प्रथम कॉलम का योग ·2 + ·4 + ·1 = ·7 जिसे एक मे से घटाने पर ·3 शेष रहता है। इसी प्रकार, कॉलम दो व कॉलम तीन के अंक ·3 व ·4 निकाले गए है।]

क्षेत्र I = ·3 × 24 84 = 7 452 का प्राथमिक आदा-मूल्य,

क्षेत्र II = ·3 × 20 68 = 6 204 का प्राथमिक आदा-मूल्य,

क्षेत्र III = ·4 × 18 36 = 7 344 का प्राथमिक आदा-मूल्य,

कुल प्राथमिक आदा-मूल्य = 7 452 + 6 204 + 7 344 = 21 000 होगा।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उत्पादन-योजना मे इस मॉडल का बहुत महत्त्व है। इसकी सहायता से अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक उत्पादन-क्षेत्र का कुल उत्पादन, कुल मूल्य-वृद्धि व प्राथमिक आदा का मूल्य ज्ञात किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मध्यवर्ती-वस्तुओ के मूल्य भी ज्ञात किए जा सकते है।

10 उत्पादन-लक्ष्यों का निर्धारण

(DETERMINATION OF OUTPUT TARGETS)

अर्द्ध-विकसित देशो मे विकासार्थ नियोजन की सफलता के लिए कुछ पूर्व आवश्यकताओ की पूर्ति आवश्यक है। इसमे एक महत्त्वपूर्ण शर्त विश्वसनीय और पर्याप्त आंकडो के आधार पर उचित उत्पादन-लक्ष्यो का निर्धारण है। लक्ष्य निर्धारित करने का कार्य बहुत कुछ देश की आधारभूत नीतियो पर आधारित होता है। सर्वप्रथम, नियोजन-सम्बन्धी व्यापक नीतियाँ निर्धारित कर ली जाती है। इन व्यापक नीतियो के अनुरूप नियोजन के उद्देश्य निर्धारित किए जाते है। ये उद्देश्य, देश विशेष की परिस्थितियो, आवश्यकताओ विचारधाराओ, साधनो आदि को दृष्टि मे रखते हुए सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सरचना के सन्दर्भ मे निश्चित किए जाते है। विकास योजना के लिए निर्धारित इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्राथमिकताओ का निर्धारण किया जाता है और विभिन्न क्षेत्रो के लिए उत्पादन-लक्ष्य निर्धारित किए जाते है।

लक्ष्य-निर्धारण का महत्त्व—आर्थिक नियोजन का लक्ष्य दी हुई अवधि म देश के साधनो का अनुकूलतम उपयोग करके अधिकाधिक उत्पादन वृद्धि करना और देशवासियो के जीवन-स्तर को उच्च बनाना है। इसके लिए विभिन्न क्षेत्रो मे सर्वतोमुखी विकास की आवश्यकता होती है, किन्तु किसी भी देश के साधन विशेष रूप से अर्द्ध-विकसित देशो के, सीमित होते है। अत इन साधनो का विवेकपूर्ण उपयोग आवश्यक है। इनके अभाव मे अधिकतम उत्पादन और अधिकतम सामाजिक लाभ सम्भव न होगा। वस्तुत, साधनो के विवेकपूर्ण उपयोग को ही आर्थिक नियोजन कहते है। अत यह आवश्यक है कि उन कार्यक्रमो को पहले पूरा किया जाए जो देश की सुरक्षा के लिए जरूरी है या जो अन्य प्रकार से आवश्यक है या जिनमे आगे द्रुत आर्थिक विकास करने मे बहुत योगदान मिल सकता है। इसीलिए आर्थिक नियोजन मे पहले प्राथमिकताओ (Priorities) का निर्धारण कर लिया जाता है तत्पश्चात् इन प्राथमिकताओ के अनुसार, विभिन्न क्षेत्रों म उत्पादन लक्ष्य (Targets of Output) निर्धारित किए जाते है। लक्ष्य निर्धारित करने पर ही

उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किए जाते हैं। यही कारण है कि योजनाओं में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन-लक्ष्य निर्धारित कर लिए जाते हैं। इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए ही, नियोजन में प्रयत्न किए जाते हैं और नियोजन की सफलता भी इन लक्ष्यों की पूर्ति से ही आँकी जाती है। नियोजन के लक्ष्य व्यापक और विषयगत होते हैं। इन लक्ष्यों की पूर्ति के आधार पर नियोजन की सफलता का मूल्यांकन भी पूर्ण नहीं हो सकता। किन्तु नियोजन के लक्ष्य भौतिक रूप में निर्धारित किए जाते हैं जिसके पूर्ण होने या न होने का अपेक्षाकृत सही मूल्यांकन किया जा सकता है।

लक्ष्य-निर्धारण की विधि—अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के लिए लक्ष्य-निर्धारण का कार्य विभिन्न मन्त्रालयों और सगठनों से लिए गए विशेषज्ञों के कार्यशील समूहों (Work ng Groups) द्वारा किया जाता है। लक्ष्य-निर्धारण, समग्र नियोजन के व्यापक उद्देश्यों और प्राथमिकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है। इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक साधनों की उपलब्धि को भी ध्यान में रखा जाता है। लक्ष्यों के निर्धारण में इन कार्यशील दलों को योजना आयोग के द्वारा समय-समय पर पथ-प्रदर्शन और निर्देशन भी मिलता रहता है। लक्ष्य-निर्धारण में सगठित जनमत (Organised Public Opinion) पर भी ध्यान दिया जाता है और उसे भी इसमें भागीदार और उत्तरदायी बनाया जाता है। निर्धारित लक्ष्यों पर आधारित योजना को, असंगति (Inconsistency) से बचाने के लिए योजना आयोग, विभिन्न प्रकार से जाँच करता है। इसके पश्चात् ही योजना को अपनाया जाता है। असगति होने पर अर्थ-व्यवस्थाओं में अन्त क्षेत्रीय असन्तुलन (Inter-Sectoral Embalances) उत्पन्न हो सकते हैं। उत्पादन के ये लक्ष्य सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र, प्रत्येक उद्योग, प्रत्येक परियोजना एव उत्पादन इकाई के लिए निश्चित किए जा सकते हैं।

विभिन्न विश्लेषणों पर आधारित—लक्ष्य-निर्धारण में मात्रात्मक दृष्टिकोण से विभिन्न लक्ष्य सम्मिलित होते हैं, उदाहरणार्थ, इतने अधिक मिलियन टन खाद्यान्न इस्पात, उर्वरक, ईंधन, सीमेन्ट आदि का उत्पादन अमुक मात्रा में किलोवाट विजली की नवीन क्षमता का सृजन, इतनी अधिक मील लम्बी रेलवे लाइनों और सड़कों का निर्माण, इतनी अधिक प्रशिक्षण और शिक्षण संस्थाओं की स्थापना, राष्ट्रीय आय में अमुक मात्रा में वृद्धि आदि। घो के घोष के अनुसार—"इस प्रकार के लक्ष्य न केवल सरकारी उपक्रमों के लिए ही निर्धारित किए जाने की आवश्यकता है, बल्कि कम से कम बड़ी निजी फर्मों के लिए भी निर्धारित किए जाने चाहिए, ताकि का पति वाले पदार्थ वाँछित उद्देश्यों के लिए ही उपयोग में लाए जा सकें।"[1]

डब्ल्यू ए लेविस के अनुसार, निजी-क्षेत्र के लिए लक्ष्य-निर्धारण में "बाजा और मूल्यों का उन्हीं हिसाब और सांख्यिकीय तकनीकों से विश्लेषण किया जान चाहिए, जिनको इस उद्देश्य से निजी फर्में अपनाती हैं। इसके अतिरिक्त जह

1 *Ghosh* : Problems of Economic Planning in India, p. 61.

कहीं अर्थ-व्यवस्था को समग्र रूप से लाभ या हानि, निजी फर्मों की अपेक्षा अधिक या कम होने की सम्भावना हो, वहाँ आवश्यक समायोजन किया जाना चाहिए।" प्रत्येक उद्योग के सम्बन्ध में अलग-अलग ऐसा किया जाना चाहिए और जाँच की जानी चाहिए कि प्रत्येक उद्योग के लिए लगाए गए अनुमान परस्पर और समग्र अर्थ-व्यवस्था के लिए लगाए अनुमान से संगत तो हैं। प्रत्येक उद्योग अन्य घरेलू उद्योगों से कुछ क्रय करता है। वह कुछ आयातित वस्तुएँ भी क्रय करता है। यह अन्य उद्योगों को अपनी वस्तुएँ बेचता भी है। इसके उत्पादन (Products) उपभोक्ताओं को बेचे भी जाते है और कुछ का निर्यात भी किया जा सकता है। यह उद्योग बचत भी करता है, कर भी चुकाता है और विनियोग भी करता है। प्रत्येक उद्योग के लिए निर्धारित उत्पत्ति का योग कुल निर्धारित उत्पत्ति के बराबर होना चाहिए। इसी प्रकार की स्थिति प्रत्येक उद्योग के विनियोग, इसके उत्पादन का उपभोग, निर्यात और इसी प्रकार कई बातों के लिए होना चाहिए। आर्थर लेविस के अनुसार, "लक्ष्यों की संगति की जाँच का एकमात्र तरीका प्रत्येक उद्योग के लिए और सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के लिए 'Set of Inter-locking tables' का निर्माण करना है। इसके लिए राष्ट्रीय आय और आदा-प्रदा (Input-Output) विधियों को काम मे लाया जाता है।"

लक्ष्य-निर्धारण मे ध्यान देने योग्य बातें– योजना के विभिन्न लक्ष्य इस प्रकार से निर्धारित किए जाने चाहिए ताकि राष्ट्र के लिए उपलब्ध सभी साधनों का सर्वोत्तम उपयोग सम्भव हो सके। योजना के लिए ये लक्ष्य निश्चित व्यापक उद्देश्यों और प्राथमिकताओं के अनुसार निर्धारित किए जाने चाहिए। वे परस्पर सम्बन्धित और सन्तुलित होने चाहिए। विभिन्न अनुपातों की गणना की जानी चाहिए एवं इन अनुपातों को राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की विभिन्न शाखाओं मे बनाए रहना चाहिए। इन्हे 'समष्टि आर्थिक' (Macro-Economic) अनुपात कहते हैं। अर्थ-व्यवस्था की इन विभिन्न शाखाओं मे भी प्रत्येक पहलू के अधिक विस्तृत अनुपातों को बनाए रखना चाहिए। इन्हे व्यष्टि-आर्थिक (Micro-Economic) अनुपात कहते है। योजना के लक्ष्य समस्त अर्थ-व्यवस्था को एक इकाई मान कर निर्धारित किए जाने चाहिए। उत्पादन-लक्ष्य, न केवल वर्तमान आवश्यकताओं को, अपितु भावी और सम्भावित आवश्यकताओं को ध्यान मे रखकर किए जाने चाहिए।

अर्थ-व्यवस्था मे सन्तुलन बनाए रखने के लिए आड़ी सन्तुलन-प्रणाली (Cross-wise balances) द्वारा कुल उत्पादन-लक्ष्यों तथा कुल उपलब्ध साधनों जैसे जनशक्ति, खनिज पदार्थ, यातायात, शक्ति आदि के बीच सन्तुलन स्थापित किया जाना चाहिए। एक सन्तुलन उत्पादन-लक्ष्यों तथा उपलब्ध जनशक्ति के मध्य होना चाहिए। उपलब्ध श्रम-शक्ति को नियोजित करने से जितना उत्पादन किया जा सकता है, यदि उत्पादन-लक्ष्य इससे कम निर्धारित किए जाएँगे, तो जनशक्ति का पूर्ण उपयोग नही किया जा सकेगा और बेरोजगारी फैलेगी। इसी प्रकार, यदि किसी वस्तु के उत्पादन-लक्ष्य बहुत कम या अधिक निर्धारित किए गए, तो उस वस्तु के

उत्पादन मे प्रयुक्त कच्चे माल आदि का या तो पूरा उपयोग नही हो पाएगा या उनकी कमी पड जाएगी। उत्पादन-लक्ष्यों के निर्धारण मे स्थानीयकरण सन्तुलन (Location Balance) और वित्तीय सन्तुलन (Financial Balance) भी स्थापित किए जाने चाहिए। वित्तीय साधनो की अपेक्षा भौतिक लक्ष्य अधिक ऊँचे निर्धारित किए गए तो वित्तीय साधनों के अभाव मे अप्रयुक्त भौतिक साधन एकत्रित हो जाएँगे और अर्थ-व्यवस्था मे बाधाएँ उपस्थित हो जाएँगी। इसके विपरीत, यदि उत्पादन-लक्ष्यो की अपेक्षाकृत वित्तीय साधनो को अधिक गतिशील बनाया गया तो मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियो को जन्म मिलेगा। इसके अतिरिक्त, अधोगामी-सन्तुलन (Backward Balances) भी स्थापित किया जाना चाहिए। इस प्रकार का सन्तुलन अन्तिम उत्पादनो (Finished Products) तथा इस वस्तु के उत्पादन के लिए आवश्यक विभिन्न वस्तुओ (Components) के मध्य सम्बन्धो को प्रकट करता है। यदि नियोजन की अवधि मे कुछ प्रतिशत से ट्रैक्टरो का उत्पादन बढाने का लक्ष्य निश्चित करते है, तो ट्रैक्टरो के निर्माण के लिए आवश्यक आदा (Input) जैसे, लोहा एव इस्पात, ईंधन, शक्ति एव अन्य पदार्थों का उत्पादन भी बढाना होगा।

साथ ही, योजना के लक्ष्य यथार्थवादी होने चाहिए। वे इतने कम भी नही होने चाहिए जिनकी प्राप्ति बहुत आसानी से हो जाए और जिनके लिए कोई विशेष प्रयत्न नही करना पड़े। यदि ऐसा होगा तो राष्ट्रीय शक्तियाँ विकासोन्मुख नहीं हो पाएँगी। इसके अतिरिक्त लक्ष्य नीचे रखने से देश का आर्थिक-विकास तीव्रता से नही हो पाएगा और जनता का जीवन-स्तर ऊँचा नही हो पाएगा। इसलिए आर्थिक नियोजन के लक्ष्य बहुत अधिक नीचे नही रखने चाहिए, अपितु, ये कम महत्त्वाकाँक्षी होने चाहिए। ऐसा होने पर ही देश के साधन और शक्तियाँ विकास के लिए प्रेरित होंगी तथा द्रुत आर्थिक विकास होगा। देश को स्वय-स्फूर्त अर्थ-व्यवस्था मे पहुँचने के लिए न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न (Critical Minimum Efforts) करने होंगे। इसीलिए, उत्पादन लक्ष्य ऊँचे रखे जाने चाहिए किन्तु वे इतने ऊँचे भी नही होने चाहिए, जो प्राप्त होने मे कठिन हो या जिन्हे प्राप्त करने मे जनता को बहुत त्याग करना पडे अथवा कठिनाइयाँ उठानी पडे। ये लक्ष्य न बहुत नीचे और न बहुत ऊँचे होने चाहिए। इनके निर्धारण मे व्यावहारिक पहलू पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। निर्धारित किए गए लक्ष्य बेलोच नही होने चाहिए और इनमे परिवर्तित परिस्थितियो के अनुसार, परिवर्तन किए जाने की गुजाइश होनी चाहिए।

भारतीय नियोजन में लक्ष्य-निर्धारण

भारत मे अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों मे लक्ष्य-निर्धारण का कार्य विभिन्न कार्यशील समूहो द्वारा किया जाता है। इन कार्यशील समूहो (Working Groups) के सदस्य विभिन्न मंत्रालयो और विशिष्ट सगठनो से लिए गए विशेषज्ञ होते है। ये दल योजना आयोग द्वारा भेजे गए सुझावो, निर्देशो आदि के अनुसार लक्ष्य-निर्धारित करते हैं। इस कार्य मे संगठित जनमत पर भी ध्यान दिया जाता है। लक्ष्यों को

अन्तिम रूप से स्वीकार करने के पूर्व इनकी सगति (Consistency) की विभिन्न प्रकार से जाँच की जाती है ।

कृषि-क्षेत्र मे लक्ष्य-निर्धारण—कृषि-क्षेत्र के लिए उत्पादन वृद्धि के लक्ष्य निर्धारित करते समय मुख्यत दो बातो का ध्यान रखा जाता है—

(i) योजनावधि मे भोजन, औद्योगिक कच्चे माल और निर्यातो के लिए अनुमानित आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके ।

(ii) जिन्हे प्राप्त करना व्यावहारिक रूप से सम्भव हो ।

कृषि क्षेत्र मे लक्ष्य-निर्धारण के कुछ प्रमुख तत्त्व हैं, जैसे—प्रशासनिक, तकनीकी तथा समुदाय स्तर पर सगठन, साख, विशेष रूप से मध्यम और दीर्घकालीन तथा उर्वरक, कीटनाशक, कृषि यन्त्र आदि के लिए विदेशी विनिमय आदि पर विचार किया जाता है । इन तत्त्वो की उपलब्धि के अनुसार ही कृषि-क्षेत्र मे लक्ष्य-निर्धारित किए जाते है और इन तत्त्वो की कमी ही लक्ष्यो की सीमाएँ निर्धारित करती है । कृषि-क्षेत्र के ये लक्ष्य कृषि सम्बन्धी विभिन्न कार्यों जैसे सिंचित क्षेत्रफल, भूमि को कृषि योग्य बनाना, भूमि मे भू-सरक्षण कार्यक्रमो का सचालन करना, सुधरे हुए बीजो का उपयोग, खाद और उर्वरको का उत्पादन एव उपयोग, सुधरे हुए यन्त्रो और उपकरणो का उपयोग आदि के बारे मे निर्धारित किए जाते है । कृषि के इन आदानो के अतिरिक्त कृषि-क्षेत्र के उत्पादन सम्बन्धी लक्ष्य भी निर्धारित किए जाते हैं । उदाहरणार्थ, अमुक मात्रा मे गेहूँ, चावल, गन्ना, कपास, जूट, तिलहन, खाद्यान्न, दालें आदि का उत्पादन किया जावेगा । समस्त देश के बारे मे इन लक्ष्यो को स्थानीय, प्रादेशिक और राज्य योजनाओ के लक्ष्यो के आधार पर निश्चित किया जाता है ।

औद्योगिक-क्षेत्र मे लक्ष्य-निर्धारण—उद्योगो से सम्बन्धित लक्ष्य-निर्धारण मे सर्वप्रथम अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रो से उद्योगो के अनुपात पर विचार किया जाता है । साथ ही, आधारभूत वस्तुओ, जैसे इस्पात सीमेन्ट, कोयला, रसायन आदि की माँग का अनुमान लगाया जाता है । प्रत्येक स्थिति मे वर्तमान स्थिति पर विचार किया जाता है । इसमे देश मे उत्पादन, आयात, पूँजीगत लागते, कच्चे माल की उपलब्धि, विदेशी-विनिमय की आवश्यकता आदि पर विचार किया जाता है । आधारभूत उद्योगो के बारे मे ही नहीं अपितु, अन्य उद्योगो के बारे मे भी इसी प्रकार की बातो को ध्यान मे रख कर लक्ष्य निर्धारित किए जाते है । निजी-क्षेत्र मे सचालित उद्योगो के लिए योजना आयोग मुख्य उत्पादक इकाइयो, उद्योग के प्रतिनिधियो या प्रतिनिधि सस्थाओ से विचार-विमर्श करता है । इस प्रकार, व्यक्तिगत उद्योग और अन्य सभी उद्योगो के अस्थायी लक्ष्य निर्धारित कर लिए जाते है । तत्पश्चात् इनमे पारस्परिक सम्बन्ध (Mutual Inter-relationship) और मुख्य उद्योगों के आदा-प्रदा (Input-output) के आधार पर समायोजन कर लिया जाता है । कई छोटे उपभोक्ता उद्योगो के लिए इस प्रकार के विशिष्ट लक्ष्य निर्धारित नही किए जाते,

अपितु अधिकाँश उद्योगों के बारे मे उत्पादन या स्थापित क्षमता के स्तर के बारे में योजना मे जानकारी दे दी जाती है।

शक्ति एवं यातायात—शक्ति एवं यातायात के लक्ष्यो को कृषि और उद्योगों के विकास तथा उत्पादन के अनुमानो के आधार पर निश्चित किया जाता है। यह अनुमान लगाया जाता है कि कृषि और उद्योगों का कितना विकास होगा और इनके लिए तथा उपभोग आदि के लिए कितनी शक्ति की आवश्यकता होगी। साथ ही, कृषि-उपज मण्डियो, उपभोक्ताओ तथा बन्दरगाहो तक पहुँचने के लिए कृषि आदानों (Agricultural inputs) को कृषको तक पहुँचाने के लिए तथा उद्योगो के लिए कच्चे माल को कारखानो मे पहुँचाने, कारखानो से निर्मित माल बाजारो, उपभोक्ताओं तथा बन्दरगाहो तक पहुँचाने के लिए किस मात्रा मे यातायात के साधनों की आवश्यकता होगी। इन अनुमानो के अनुसार योजना मे यातायात के साधनो के विकास के लक्ष्य-निर्धारित किए जाते हैं। शक्ति और यातायात के साधन सम्बन्धी लक्ष्यो को निर्धारित करने मे एक कठिनाई यह होती है कि इन सुविधाओं की व्यवस्था इनकी आवश्यकता के पूर्व ही की जानी चाहिए, क्योंकि इनको भी पूरे होने मे समय लगता है। किन्तु कृषि और उद्योगो के लक्ष्य योजना प्रक्रिया मे बहुत बाद मे अन्तिम रूप ग्रहण करते है। अत कृषि और उद्योगो के विकास की दीर्घकालीन योजना पूर्व ही तैयार होनी चाहिए जिसके आधार पर शक्ति और यातायात के लक्ष्य समय पर निर्धारित किए जा सके। भारत मे इस प्रकार के दीर्घकालीन नियोजन के कारण ही भूतकाल मे शक्ति और यातायात के लक्ष्य उनकी माँग से पिछड़ गए हैं। इस कमी की पूर्ति के लिए भारतीय नियोजन मे प्रयास किए गए है।

शिक्षा-क्षेत्र मे लक्ष्य-निर्धारण—तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के प्रशिक्षण मे अधिक समय लगता है। किसी अभियन्ता या चिकित्सक या कृषि विशेषज्ञ आदि को तैयार करने मे कई वर्ष लग जाते है। अत आगे आने वाली योजना के लिए वर्तमान योजना के प्रारम्भ मे ही लक्ष्यो को निश्चित कर लिया जाता है। आगामी योजना मे कितने कुशल श्रमिको या तकनीकी कर्मचारियों अथवा विशेषज्ञो की आवश्यकता पडेगी। इन अनुमानो के अनुसार व्यक्तियो को तैयार करने के लिए वर्तमान योजना मे लक्ष्य निर्धारित कर लिए जाते है। इसलिए भारत मे योजना-आयोग कई वर्षों से जन-शक्ति के दीर्घकालीन प्रशिक्षण के कार्यक्रम बनाता रहा है। मानव-शक्ति पर अध्ययन अनुसधान के लिए व्यावहारिक जन-शक्ति अनुसधान सस्थान की दिल्ली मे स्थापना की गई है। विभिन्न प्रकार की जन-शक्ति की आवश्यकताओ के अनुमान लगाए जाते हैं और तदनुसार प्रशिक्षण, शिक्षा आदि के कार्यक्रम निर्धारित किए जाते है।

सामान्य शिक्षा-सम्बन्धी लक्ष्य-निर्धारण मे भारतीय संविधान और उसमे वर्णित नीति-निर्देशक तत्त्वों (Directives of State Policy) तथा उसमे समय-समय पर हुए संशोधनो को ध्यान मे रखा जाता रहा है। इस सम्बन्ध में योजनाओं मे लक्ष्यो का निर्धारण 6 से 11 वर्ष की आयु के समस्त बालकों को नि.शुल्क और

अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था तृतीय योजना के अन्त तक और 14 वर्ष तक की आयु के समस्त बालको को अनिवार्य और नि शुल्क शिक्षा की व्यवस्था चौथी या पाँचवी योजना के अन्त तक करने के ध्येय और व्यापक निर्देशो के आधार पर किया जाता रहा है। इस व्यापक लक्ष्य के अनुरूप प्रत्येक योजना मे प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक विद्यालय, महाविद्यालय खोलने का अध्यापको को नियुक्त करने और शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर छात्रो को प्रविष्ट कराने के लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं।

स्वास्थ्य, आवास, सामाजिक कल्याण के लक्ष्य निर्धारण, इन सुविधाओ के लक्ष्य दीर्घकालीन दृष्टिकोण से विकसित की जाने वाली सुविधाओ पर विचार-विनिमय के पश्चात् निर्धारित किए जाते है। भारत इन क्षेत्रो मे बहुत पिछडा है और इन सुविधाओ मे तेजी से वृद्धि की आवश्यकता है। किन्तु इन कार्यक्रमो को उनकी आवश्यकताओ की अपेक्षा बहुत कम राशि आवटित की जाती है। परिणाम-स्वरूप इनके लक्ष्य कम ही निर्धारित होते रहे है।

अन्तिम लक्ष्य-निर्धारण—इस प्रकार, अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो के अलग-अलग उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं जिन्हे मिलाकर समग्र योजना का निर्माण किया जाता है। इन लक्ष्यो के आधार पर सम्पूर्ण योजना के लिए स्थिर और स्थिर पूंजी तथा विदेशी विनिमय आवश्यकताओ का अनुमान लगाया जाता है। तत्पश्चात् इस बात पर विचार किया जाता है कि आन्तरिक और बाह्य स्रोतो से ये किस मात्रा मे साधनो को गतिशील बनाना सम्भव है और कितने पूंजीगत साधन और विदेशी विनिमय योजना के लिए उपलब्ध हो सकेंगे। इनकी उपलब्धि के सन्दर्भ मे समस्त योजना या किसी विशेष क्षेत्र के लक्ष्यो के कम करने या बढाने की गुंजाइश पर विचार किया जाता है। लक्ष्यो को अन्तिम रूप देने मे रोजगार-वृद्धि के अवसरो और आधारभूत कच्चे माल की उपलब्धि पर भी विचार किया जाता है। इन सब बातो पर पर विचार करने के पश्चात् योजना के लक्ष्य-निर्धारण को अन्तिम रूप दिया जाता है।

लक्ष्य-निर्धारण-प्रक्रिया की कमियाँ—भारतीय योजनाओ के लिए लक्ष्य-निर्धारण-प्रक्रिया मे कई कमियाँ हैं। कई अर्थ-शास्त्रियो ने लक्ष्य-निर्धारण मे और विभिन्न वित्तीय-गणनाओं की दूसरी योजनाओ की तकनीक और आधारो की आलोचना की है। योजना आयोग ने बडे-बडे लक्ष्यो के बारे मे तो विचार किया किन्तु विनियोग व्यय के प्राकृतिक विश्लेषण पर तनिक भी ध्यान नही दिया। इन लक्ष्यो का निर्धारण कई गलत और अपूर्ण मान्यताओ के आधार पर किया गया। लक्ष्य-निर्धारण मे यथार्थ पूंजी-उत्पादन अनुपात का उपयोग नही किया गया। एम एल सेठ (M L Seth) ने भारत मे लक्ष्य-निर्धारण प्रक्रिया मे निम्नलिखित कमियाँ बतलाई हैं -

(1) योजना के अन्तिम वर्ष के लिए लक्ष्य निर्धारित करने मे बहुत ध्यान दिया जाता है किन्तु इन लक्ष्यो को योजनावधि के सभी वर्षों के लिए विभाजित नही किया जाता।

(ii) अर्थ-व्यवस्था के कुछ क्षेत्रो जैसे-उद्योग, शक्ति, सिंचाई, यातायात आदि की परियोजनाओं में जहाँ भारी मात्रा में विनियोग हो और जिनके पूर्ण होने की अवधि अधिक लम्बी हो।

इन परियोजनाओ के आर्थिक, तकनीकी, वित्तीय और अन्य परिणामों पर पूरा विचार नही किया जाता। इसी कारण, परियोजना की प्रारम्भिक अवस्थाओं मे पर्याप्त प्रशिक्षित व्यक्ति और आवश्यक सगठन उपलब्ध नही हो पाते।

(iii) किसी परियोजना के निर्माण की स्थिति मे बाद मे जाकर अप्रत्याशित तत्त्वो के कारण विभिन्न परिवर्तन और समायोजन करना आवश्यक हो जाता है। इसलिए योजना उससे प्राप्त होने वाले लाभो, लागत अनुमानो और वित्तीय-साधनो के दृष्टिकोण से लचीली होनी चाहिए। भारतीय नियोजन के लक्ष्य-निर्धारण मे इस ओर अधिक प्रयत्नो की आवश्यकता है।

मार्च, 1977 के ऐतिहासिक सत्ता-परिवर्तन के बाद जनता पार्टी की सरकार सम्पूर्ण नियोजन को नई दिशा देने को प्रयत्नशील है। पाँचवी योजना जो 31 मार्च, 1979 को समाप्त होनी थी, अवधि से एक वर्ष पूर्व ही 31 मार्च, 1978 को समाप्त कर दी गई है और 1 अप्रेल, 1978 से नई राष्ट्रीय योजना चालू कर दी गई है। योजना आयोग, वित्त मन्त्री के फरवरी, 1978 के बजट भाषण के अनुसार, "परिवर्तित प्राथमिकताओ के अनुसार विकास की नई नीति तैयार कर रहा है।" भारतीय नियोजन पर पुस्तक के द्वितीय भाग मे विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

11 उत्पादन-क्षेत्रों में विनियोगों का आवंटन

(ALLOCATION OF INVESTMENT BETWEEN PRODUCTION SECTORS)

आर्थिक विकास और योजना-कार्यक्रमो की सफलता के लिए भारी मात्रा मे पूंजी का विनियोग आवश्यक होता है। अधिक बचत का सृजन करके इन्हे बाजार तान्त्रिकता तथा वित्तीय-संस्थाओ द्वारा गतिशील बना कर, उत्पादक आदेयो मे रूपान्तरित करके विनियोगो की मात्रा मे वृद्धि की जा सकती है। अर्थ-व्यवस्था मे विनियोगो की यह मात्रा उपलब्ध बचत की मात्रा और अर्थ-व्यवस्था की पूंजी-शोषण-क्षमता (Absorptive Capacity) पर निर्भर करती है। पूंजी-शोषण-क्षमता का आशय समाज और व्यक्तियो मे उपलब्ध पूंजीगत आदेयो के उपभोग करने की योग्यता से है।

आर्थिक विकास के लिए विशाल मात्रा मे पूंजी का विनियोजन ही पर्याप्त नही है अपितु पूंजी का विनियोग सुविचारित और युक्ति युक्त होना चाहिए। अर्द्ध-विकसित देशो मे विनियोजित किए जाने वाले साधनो की अत्यन्त स्वल्पता होती है। साथ ही उनकी मांग और उपयोगो मे वृद्धि भी होती रहती है। अत इन विनियोजित किए जाने वाले साधनो के विभिन्न वैकल्पिक उपयोगो मे से चयन करना पडता है। अत यह समस्या पैदा होती है कि विभिन्न क्षेत्रो मे अर्थात् कृषि उद्योग या सेवाओ मे, निजी या सार्वजनिक उद्योगो मे, पूंजीगत या उपभोग वस्तुओ के उत्पादन मे और देश के विभिन्न क्षेत्रो मे से किस मे अधिक मात्रा मे विनियोग किया जाए और इन सभी क्षेत्रो के सभी भागो मे किस प्रकार विनियोगो का आवंटन किया जाए। सामान्यत इन विभिन्न क्षेत्रो और उनके भागो मे विनियोग के लिए वास्तविक साधनों का प्रवाह आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक तत्वो से प्रभावित होता है। किन्तु यह आर्थिक विकास मे तीव्रता लाने के लिए केवल विनियोगो की अधिकता के साथ-साथ उनका विवेकपूर्ण आवंटन भी आवश्यक है।

विनियोग विकल्प की आवश्यकता
(Need for Investment Choice)

सैद्धान्तिक रूप से आदर्श अवस्था मे पूर्ण और स्वतन्त्र प्रतियोगिता होती है और उत्पादन के साधनो एवं विनियोगो के विभिन्न उपयोगों में अनुकूलतम वितरण की आशा की जाती है। यहाँ मजदूरी और ब्याज दरें माँग और पूर्ति की शक्तियों के द्वारा निर्धारित होती हैं और प्रत्येक साधन का उपयोग सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के अनुसार उस बिन्दु तक किया जाता है, जिस पर इसकी सीमान्त उत्पत्ति उसके लिए चुकाई जाने वाली कीमत के बराबर होती है। श्रम, पूंजी आदि किसी साधन की पूर्ति में वृद्धि होने पर इसका मूल्य घटने लगेगा और इससे इस साधन के अधिक प्रयुक्त किए जाने को प्रोत्साहन मिलेगा। इसके विपरीत किसी साधन की पूर्ति में कमी आने पर उसके मूल्य मे वृद्धि होती है और उसका उपयोग हतोत्साहित होता है। इस प्रकार स्वतन्त्र उपक्रम अर्थ-व्यवस्था मे मूल्य-प्रक्रिया और बाजार-तान्त्रिकता के द्वारा न केवल साधनो का पूर्ण नियोजन हो जाता है, अपितु उनका सर्वाधिक प्रभावपूर्ण और अनुकूलतम उपयोग भी होता है।

किन्तु व्यवहार मे ऐसा नही हो पाता है। एक तो स्वय पूर्ण प्रतियोगिता का होना असम्भव है और दूसरे उत्पादन मे बाह्य मितव्ययताओ का प्रादुर्भाव और उत्पादन के पैमाने मे परिवर्तन के साथ लागतो का बढना या घटना साधनो के आदर्श वितरण मे बाधाएँ उपस्थित कर देते हैं। इस प्रकार स्वतन्त्र उपक्रम मे साधनो और विनियोगो का अनुकूलतम आवटन संदिग्ध होता है। इसके अतिरिक्त, उत्पादन की आधुनिक तकनीकी दशाएँ किसी भी दीर्घकालीन उत्पादन-प्रक्रिया मे सीमान्त उत्पादन और लागत के समायोजन को कठिन बना देती है, क्योकि जब एक बार उत्पादन की किसी तकनीक को ग्रहण कर लिया जाता है, तो तदनुरूप साधनो के अनुपात को भी स्वीकार करना पड़ता है। निजी उद्यमियो का विनियोग सम्बन्धी निर्णय तकनीकी ज्ञान का स्तर, श्रम पूर्ति, मजदूरी, ब्याज और मूल्य-स्तर, उपयोग के लिए उपलब्ध कोषों की मात्रा और पूंजी और श्रम के तकनीकी सम्बन्ध आदि के ज्ञात या अज्ञात सूचनाओ के अनुसार निर्णय लेने पडते है।

अनियन्त्रित मुक्त उपक्रम प्रणाली मे विनियोग के आवटन मे अन्य कमियाँ भी होती हैं। निजी उद्यमियों का उद्देश्य निजी-लाभ को अधिकतम करना होता है। इसके आगे वे सामाजिक-कल्याण की उपेक्षा कर जाते हैं। साथ ही उनकी दूरदर्शिता की शक्ति भी सीमित होती है। विनियोग की किसी विशेष परियोजना की अर्थ-व्यवस्था पर और किसी विशेष नए उद्योगो की स्थापना या पुराने उद्योगो के विस्तार का, अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों या आय के वितरण और उसकी संरचना, उत्पादन के साधनो की पूर्ति और लागत पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस बात को विचारने की चिन्ता निजी उद्यमकर्त्ता नही करते और न ही वे इस कार्य के लिए सक्षम होते हैं। परिणामस्वरूप अर्थ-व्यवस्था मे होने वाले समग्र प्रभावों का ज्ञान एक ऐसे अभिकरण द्वारा ही हो सकता है जिसे अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के व्यवहार और प्रतिक्रिया

का विस्तृत और पर्याप्त ज्ञान हो। निजी-उद्यमियो द्वारा लिए गए विनियोजन सम्बन्धी उपरोक्त कमियो के कारण ही सरकार द्वारा विनियोग कार्यक्रमो मे भागीदार बनने की आवश्यकता उत्पन्न होती है। निजी-उपक्रम-व्यवस्था मे साधनो का अनुकूलतम आवटन नही हो पाता है। आवश्यक कार्यों के लिए पूँजी उपलब्ध नही हो पाती, जबकि सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टि से अनावश्यक परियोजनाओ पर बहुत अधिक साधन विनियोजित किए जाते हैं। अत सरकार को प्रत्यक्ष विनियोग द्वारा या निजी उद्यमियो द्वारा किए जा रहे विनियोगो को नियन्त्रित करके विभिन्न क्षेत्रो, उद्योगो और प्रदेशो मे विनियोगो का अनुकूलतम आवटन करना चाहिए। वस्तुत सरकार विनियोगो के आवटन और तकनीक सम्बन्धी समस्याओ के बारे मे दीर्घकालीन और अच्छी जानकारी रखने और उन्हे हल करने की स्थिति मे होती है। उसके साधन भी अपरिमित होते है। वह देश के उपलब्ध और सम्भावित साधनो और विभिन्न क्षेत्रो की आवश्यकताओ सम्बन्धी सूचनाओ से भी सम्पन्न होते हैं। सरकार निजी उपक्रमियो की अपेक्षा विनियोगो की मात्रा मे होने वाले परिवर्तनो के परिणाम-स्वरूप, विभिन्न क्षेत्रो और समूची अर्थ व्यवस्था पर पडने वाले प्रभावो का अधिक अच्छा अनुमान लगा सकती है। अत राज्य आर्थिक क्रियाओ मे भाग लेकर और विनियोग नीति द्वारा वित्तीय साधनो का उपयुक्त वितरण करने मे समर्थ हो सकती है। विशेषत वह यातायात के साधनो, सिंचाई और विद्युत योजनाओ द्वारा बडी मात्रा मे बाह्य मितव्ययताओ का सृजन करके आर्थिक विकास को तीव्रगति प्रदान कर सकती है। वह निजी उद्यमियो द्वारा उपेक्षित क्षेत्रो मे स्वय पूँजी विनियोजन कर सकती है। इस प्रकार एक उद्योग या क्षेत्र का विस्तार दूसरे उद्योग या क्षेत्र मे होता है।

अर्द्ध-विकसित देशो की विनियोजन सम्बन्धी विशिष्ट समस्याएँ (Special Investment Problems in Underdeveloped Countries)

अर्द्ध-विकसित देशो की विशिष्ट सामाजिक और आर्थिक विशेषताओ के कारण इन देशो मे विनियोगो के आवटन की समस्या, विकसित देशो की अपेक्षा अधिक जटिल होती है। साधनो की अपर्याप्त उपलब्धि और साधनो के तकनीकी प्रतिस्थापन के सीमित अवसर उचित विनियोग नीति अपनाने मे बाधाएँ उपस्थित करते हैं। प्रो किंडलबर्जर (Prof Kindleberger) के अनुसार, अर्द्ध-विकसित देशो मे साधन स्तर पर सरचनात्मक असाम्य' (Structural disequilibrium at the factor level) होता है। यहाँ पूँजी स्वल्पता और श्रम-शक्ति की बहुलता होती है। परिणामस्वरूप ये देश पर्याप्त मात्रा मे बेरोजगारी और अर्द्ध-बेरोजगारी से ग्रस्त रहते हैं। श्रम की सीमान्त-उत्पादकता शून्य या शून्य के लगभग होती है, किन्तु मजदूरी की वास्तविक दर उससे भिन्न होती है जो श्रम की माँग और पूर्ति की शक्तियो के निर्धारण द्वारा होती है। इसका प्रमुख कारण इन देशो की अर्थ-व्यवस्था मे सगठित और असगठित दो भिन्न-भिन्न क्षेत्रो की उपस्थिति है। सगठित क्षेत्र मे

श्रम-संगठनो, सामाजिक सुरक्षा-सन्नियमो और सरकार की श्रम-कल्याणवादी नीति के कारण मजदूरी की दरे असगठित क्षेत्रो को अपेक्षा अधिक होती हैं। अतः उत्पादन की तकनीक अधिक पूंजी गहन होती है और ऐसी परियोजनाओ मे पूंजी विनियोजित की जाती है, किन्तु दूसरी ओर पूंजी का अभाव अपनी स्वय की कठिनाइयाँ उपस्थित करती है। पूंजी के अभाव के अतिरिक्त सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियाँ भी उत्पादन की आधुनिक और कुशल प्रणालियो के ग्रहण करने में बाधाएँ उपस्थित करता है। उदाहरणार्थ, छोटे खेतो को बडी कृषि सम्पत्तियो मे परिवर्तित करने के कृषि विनियोग कार्यक्रम (Agricultural Investment Programme) का ऐसे देश मे विरोध किया जाना है, जहाँ अधिक भूमि का स्वामित्व सामाजिक सम्मान का होता है। डी. ब्राइटसिंह (D. Bright Singh) के अनुसार, "आवश्यक पूंजी उपलब्ध होने पर भी भारी उद्योगों मे पूंजी विनियोग दृढ औद्योगिक आधार का निर्माण करने और आर्थिक विकास को गति देने में तभी सफल हो सकता है जबकि समाज आर्थिक-विस्तार के उपयुक्त सामाजिक मूल्यो को ग्रहण करे।" अत. इन अर्द्ध-विकसित देशो मे विनियोग कार्यक्रम का निर्धारण करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि जो विकास कार्यक्रम और परियोजनाएँ अपनाई जाएँ, वे यथासम्भव वर्तमान सामाजिक और आर्थिक सस्थाओ और मूल्यों मे कम से कम हस्तक्षेप करे। साथ ही इन सस्थाओ और मूल्यो मे भी शनै:-शनै परिवर्तन किया जाना चाहिए। अर्द्ध-विकसित देशो द्वारा इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि वे विकसित देशों का अन्धानुकरण करके ही विनियोग के लिए परियोजनाओ का चयन नही करें अपितु देश की साधन-पूर्ति (Factor supply) की स्थिति के अनुसार उन्हे समायोजित भी करे।

अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशो मे कृषि की प्रधानता होती है। कृषि यहाँ के अधिकांश व्यक्तियो को रोजगार प्रदान करती है, राष्ट्रीय आय का बड़ा भाग उत्पन्न करती है और विदेशी विनिमय के अर्जन मे भी कृषि का महत्त्व होना है। किन्तु कृषि व्यवसाय अत्यन्त पिछडी अवस्था मे होना है। अत यहाँ कृषि विकास कार्यक्रमों पर विशाल पूंजी विनियोजन की आवश्यकता होती है, किन्तु इन देशों मे औद्योगिक विकास की उपेक्षा भी नही की जा सकती क्योकि कृषि के विकास के लिए औद्योगिक विकास आवश्यक है। अत. औद्योगिक परियोजनाओ पर भी भारी मात्रा मे पूंजी-विनियोग आवश्यक होता है। अत अर्द्ध-विकसित देशो मे उद्योग, कृषि सेवाओ आदि में उचित विनियोग नीति अपनाने की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार अर्द्ध-विकसित देशो मे सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार को बहुत समर्थन मिलता है।

विनियोग मानदण्ड
(Investment Criteria)

आर्थिक विकास के लिए नियोजन हेतु वित्तीय साधनों को गतिशील बनाना जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही विनियोग की प्रकृति का निर्धारण करना है। इन देशो को न केवल विनियोग-दर के बारे में ही निर्णय करना पड़ता है, अपितु विनियोग

सरचना के बारे मे भी उचित निर्णय करना पडता है। सरकार का यह कर्त्तव्य होता है कि इस प्रकार के विनियोग कार्यक्रम अपनाए, जो समाज और राष्ट्र के लिए सर्वाधिक लाभप्रद हो। अत विभिन्न क्षेत्रो, परियोजनाओ, उद्योगो और प्रदेशो मे विनियोग-कार्यक्रम को निर्धारित करते समय अत्यधिक सोच-विचार की आवश्यकता है। गत वर्षो मे, अर्थशास्त्रियो द्वारा द्रुत आर्थिक विकास के उद्देश्य से विनियोगो पर विचार करने के लिए कई मानदण्ड प्रस्तुत किए गए है जो निम्नलिखित है—

1 समान सीमान्त-उत्पादकता का मानदण्ड (Criteria of Equal Marginal Productivity)

इस सिद्धान्त के अनुसार विनियोग और उत्पादन के साधनो का सर्वोत्तम आवटन तब होता है कि जब विभिन्न उपयोगो मे इसके परिणामस्वरूप सीमान्त विनियोग सर्वाधिक लाभप्रद नही होगे, क्योकि उनको एक क्षेत्र मे स्थानातरित करके कुल लाभ मे वृद्धि करने की गु जायश रहेगी। अत विभिन्न क्षेत्रो, उद्योगो और प्रदेशो मे विनियोगो का इस प्रकार वितरण किया जाना चाहिए जिससे उनकी सीमान्त-उत्पादकता समान हो। अर्द्ध-विकसित देशो मे काम की बहुलता और पूंजी की सीमितता होती है। अत विनियोग नीति इस प्रकार की होनी चाहिए जिसमे, कम मात्रा मे पूंजी से ही अधिक मात्रा मे श्रम को नियोजित किया जा सके। अन्य शब्दो मे विनियोग नीति देश मे उपलब्ध श्रम और पूंजीगत साधनो का पूर्ण उपयोग करने मे समर्थ होनी चाहिए। यदि देश मे पूंजी का अभाव और श्रम की बहुलता है, जैसाकि अर्द्ध-विकसित देशो के बारे मे सत्य है, तो यह देश निम्न पूंजी श्रम अनुपात वाली परियोजनाओ को अपनाकर अधिक तुलनात्मक लाभ प्राप्त कर सकते है। इस प्रकार, विनियोग कार्यक्रमो को निर्धारित करते समय हेक्सर-ओहलिन (Hekscner Ohlin) के 'तुलनात्मक लागत के सिद्धान्त' (Doctrine of Comparative Cost) पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। यद्यपि पूंजी की सीमित उपलब्धता की स्थिति मे श्रम-शक्ति के पूर्ण उपयोग से श्रम की प्रत्येक इकाई की सीमान्त उत्पादकता मे कमी आनी है तथापि अधिक श्रमिको के नियोजित हो जाने के कारण कुल उत्पत्ति मे वृद्धि हो जाती है और इस प्रकार विनियोग अधिकतम लाभप्रद हो जाते है। यह सिद्धान्त साधन उपलब्धता (Factor Endowment) पर आधारित है, जिसमे श्रम और पूंजी आदि उपलब्ध साधनो के पूर्ण उपयोग पर बल दिया गया है। अत *अर्द्ध-विकसित देशो मे जहाँ पूंजी का अभाव और श्रम की बहुलता है*, श्रम-प्रधान और पूंजी-विरल-विनियोगो को अपनाना चाहिए। सीमान्त-उत्पादकता को समान करने का सिद्धान्त केवल स्थैतिक दशाओ के अन्तर्गत अल्पकाल मे ही विनियोगो का कुशल आवटन करने मे सक्षम होता है। मारिस डॉब (Maurice Dobb) के अनुसार ससाधन स्थिति के अनुसार, पूंजी-विरल परियोजनाओ को अपनाना एक प्रकार से प्रगति या परिवर्तन की आकांक्षा के बिना वर्तमान निम्न दशा को ही स्वीकार करना है। जबकि द्रुत आर्थिक विकास के लिए उत्पादन के सगठन, सरचना और तकनीको मे परिवर्तन आवश्यक है। इसी प्रकार

इन देशों में पूंजी-गहन परियोजनाओं से सर्वथा बचा नही जा सकता । यहाँ पर्याप्त मात्रा में जल, खनिज आदि प्राकृतिक साधन अशोषित है जिसको विकसित करने के लिए प्रारम्भ में भारी विनियोगों की आवश्यकता होती है । इस्पात कारखाने, तेल-शोधक शालाएँ, यातायात, सचार, बन्दरगाह आदि आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक होते हैं और इन सभी मे बड़ी मात्रा मे पूंजी-विनियोग की आवश्यकता होती है।

2. सामाजिक सीमान्त उत्पादकता का मानदण्ड (Criteria of Social Marginal Productivity)

विनियोगों का एक महत्त्वपूर्ण मापदण्ड सामाजिक 'सीमान्त उत्पादकता' है जो एक प्रकार से, 'समान सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त' का सशोधित रूप है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सन् 1951 मे ए ई. काहन (A E Kahn) ने किया जिसे बाद मे हालिस बी. चेनेरी (Hollis B Chanery) ने विकसित किया । इस सिद्धान्त के अनुसार, यदि विनियोगों द्वारा आर्थिक विकास को गति देना है, तो पूंजी ऐसे कार्यक्रमों मे विनियोजित की जानी चाहिए, जो सर्वाधिक उत्पादक हों अर्थात् जिनकी सीमान्त सामाजिक उत्पादकता सर्वाधिक हो । सीमान्त सामाजिक उत्पादकता सिद्धान्त के अनुसार, विनियोग की अतिरिक्त इकाई के लाभ का अनुमान इस आधार पर नही लगाया जाता है कि इससे निजी-उत्पादक को क्या मिलता है किन्तु इस बात से लगाया जाता है कि इस सीमान्त इकाई का राष्ट्रीय उत्पादन मे कितना योगदान रहा है । इसके लिए न केवल आर्थिक, अपितु सामाजिक लागतों और सामाजिक लाभो पर भी ध्यान दिया जाता है । ए. ई. काहन (A E Kahn) के अनुसार, "सीमित साधनो से अधिकतम आय प्राप्त करने का उपयुक्त मापदण्ड 'सीमान्त सामाजिक उत्पादकता' है जिसमे सीमान्त इकाई के राष्ट्रीय उत्पत्ति के कुल योगदान पर ध्यान दिया जाना चाहिए, न कि केवल इस योगदान (या इसकी लागतों) के उस भाग पर ही ध्यान दिया जाना चाहिए जो निजी विनियोगकर्त्ता को प्राप्त हो ।" इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न क्षेत्रो मे विनियोगों की सीमान्त सामाजिक उत्पादकता समान होनी चाहिए । भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देशों के सन्दर्भ मे विकासार्थ योजना में किए जाने वाली सीमान्त सामाजिक उत्पादकता की उच्चता वाले विनियोग निम्नलिखित है—

(i) जो सर्वाधिक उत्पादकता वाले उपयोगों में लगाए जाए, ताकि विनियोगों से प्रचलित उत्पादन का अनुपात अधिकतम हो या पूंजी-उत्पादन अनुपात न्यूनतम हो । अन्य शब्दो में पूंजी उन क्षेत्रो, उद्योगो, परियोजनाओं और प्रदशों में विनियोजित की जानी चाहिए, जिनमे लगी हुई पूंजी से अपेक्षाकृत अधिक उत्पत्ति हो ।

(ii) जिनमें श्रम-विनियोग अनुपात (Labour-Investment Ratio) अधिकतम हो अर्थात् जो पूंजी से श्रम के अनुपात में वृद्धि करे । अन्य शब्दों मे, पूंजी ऐसे क्षेत्रों, उद्योगों, परियोजनाओं और भौगोलिक क्षेत्रों मे विनियोजित

की जानी चाहिए, जिनमे लगी हुई पूंजी से अधिक श्रमिको को नियोजित किया जा सके।

(iii) जो ऐसी परियोजनाओं मे लगाए जाएँ, जो व्यक्तियो की बुनियादी आवश्यकताओं की वस्तुओं का उत्पादन करें और बाह्य मितव्ययताओं मे वृद्धि करे।

(iv) जो पूँजी के अनुपात मे निर्यात पदार्थो मे वृद्धि करे, अर्थात् जो निर्यात सवर्द्धन या आयात प्रतिस्थापन मे योगदान दे।

(v) जो अधिकतर घरेलू कच्चा-माल तथा अन्य साधनो का अधिकाधिक उपयोग करें।

(vi) जो शीघ्र फलदायी हो, ताकि मुद्रा-प्रसार, विरोधी शक्ति के रूप मे कार्य कर सके।

सीमान्त सामाजिक उत्पादकता के मानदण्ड की श्रेष्ठता इस बात मे निहित है कि इसमे किसी विनियोग कार्यक्रम की राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था पर पडने वाले समग्र प्रभावो पर ध्यान दिया जाता है। अत यह सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की अपेक्षा अधिक अच्छा है कि इसकी अपनी भी सीमाएँ है। आर्थिक विकास के दौरान न केवल सामाजिक आर्थिक तत्त्वो, अपितु जनसख्या की मात्रा, गुरा, स्वभाव और उत्पादन तकनीक आदि मे भी परिवर्तन आता है। अत इस मानदण्ड का उपयोग एक अर्थ व्यवस्था की सम्पूर्ण गत्यात्मक परिस्थितियो के सन्दर्भ मे करना चाहिए। कुछ सामाजिक उद्देश्य परस्पर विरोधी हो सकते हैं। अत विभिन्न उद्देश्यो मे से कुछ का चयन करना एक कठिन कार्य होता है। इसमे नैतिक निर्णयो की भी आवश्यकता होती है। इसी प्रकार विनियोगो की दिशा और उनके अन्तिम परिणामों के बारे मे भी विचारो मे अन्तर हो सकता है। उदाहरणार्थ, किसी विशिष्ट परियोजना मे पूंजी का विनियोग करने से राष्ट्रीय आय मे तो वृद्धि हो, किन्तु उससे आय वितरण असमान हो। इसी प्रकार, कुछ परियोजनाओं मे विनियोग से राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति उपभोग निकट भविष्य मे ही बढ सकता है, जबकि किन्ही अन्य परियोजनाओं से ऐसा दीर्घकालीन मे हो सकता है। अत सामाजिक उद्देश्यो के निर्धारित किए बिना विनियोगो की दिशा, संरचना और प्रगति के बारे मे निर्णय लेना बहुत कठिन है।

इसके अतिरिक्त, सीमान्त सामाजिक उत्पादकता की यह धारणा अवास्तविक है। यह निजी लाभ के मानदण्ड की अपेक्षा कम निश्चित है। बाजार मूल्य, सामाजिक मूल्यो (Social Values) को ठीक प्रकार से प्रकट नही करते। अत विनियोगो मे निहित सामाजिक लाभो और सामाजिक लागतो का सख्यात्मक माप असम्भव है। मानदण्ड की सबसे बडी कमी यह है कि, इसमे विनियोगो के एक बार के प्रभावो पर ही ध्यान दिया जाता है। वस्तुत हमे किसी विनियोग से प्राप्त तत्काल लाभो पर ही ध्यान नही देना चाहिए, अपितु भावी लाभो एव पूंजी सचय पर भी विचार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त विनियोग के अप्रत्यक्ष प्रभाव जैसी भावी बचत, उपभोग सरचना, जनसख्या वृद्धि आदि पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

3. तीव्र विकास विनियोग मानदण्ड
(Criteria of Investment to Accelerate Growth)

गेलेन्सन और लीबेन्स्टीन (Galenson and Liebenstein) ने अर्द्ध-विकसित देशों मे विनियोग के मापदण्ड के लिए सीमान्त प्रति व्यक्ति पुनर्विनियोग लब्धि (Marginal per Capital Investment Quotient) की धारणा का समर्थन किया है। किसी अर्थ-व्यवस्था के उत्पादन की पुनर्विनियोग क्षमता एक ओर प्रति श्रमिक उपलब्ध पूँजी से प्रति श्रमिक उत्पादन की मात्रा और दूसरी ओर जनसंख्या का उपयोग और पूँजीगत साधनों के प्रतिस्थापन आदि का अन्तर है। प्रति श्रमिक पूंजी से इस आधिक्य का अनुपात पुनर्विनियोग लब्धि (Re-investment Quotient) कहलाता है। उचित विनियोग नीति वह होती है, जिसके द्वारा साधन उपभोगो की अपेक्षा अधिक अनुपात मे पूँजी कार्यों की ओर बढें। देश की पूंजी मे इस दृष्टि से मानव-पूँजी को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। लीवेन्स्टीन के अनुसार, पूंजीगत-पदार्थों और मानव-पूंजी के रूप मे कुल पूंजी-निर्माण प्रतिवर्ष सामान्य पुनर्विनियोग और जनसख्या के आकार मे वृद्धि पर निर्भर करता है। यदि पुनर्विनियोग वर्ष प्रति वर्ष बढता है तो राष्ट्रीय आय मे लाभो का भाग बढाना पड़ेगा। पुनर्विनियोग लब्धि मानदण्ड के अनुसार, दीर्घकालीन पूंजीगत वस्तुओं (Long-lived Capital Goods) मे पूँजी विनियोजित की जानी चाहिए। अर्द्ध-विकसित देशो को यदि सफलतापूर्वक तेजी से विकास करना है तो उत्पादन मे वृद्धि के लिए विकास-प्रक्रिया के प्रारम्भ मे ही बड़े पैमाने पर प्रयत्नो की आवश्यकता है, जिसे लीवेन्स्टीन ने न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न कहा है। अन्य शब्दो मे विनियोग आवटन (Investment Allocation) इस प्रकार का होना चाहिए जिससे विकास-प्रक्रिया की प्रारम्भिक अवस्था मे ही तेजी से पूंजी निर्माण हो।

पुनर्विनियोग लब्धि मे उक्त मानदण्ड की भी आलोचनाएँ की गई हैं। इस सिद्धान्त की यह मान्यता कि लाभो की अधिकता के कारण पुनर्विनियोग भी अधिक होंगे, उचित नही मानी गई है। ए के सेन (A. K Sen) के मतानुसार पूंजी की प्रति इकाई पर ऊँची दर से पुनर्विनियोग योग्य आधिक्य देने वाले विनियोगो से ही विकास दर मे तेजी नही लाई जा सकती। यह आधिक्य अधिक हो सकता है किन्तु इस उत्पादन-कार्य मे लगे व्यक्तियो की उपभोग की प्रवृत्ति मे वृद्धि हो जाए तो पुनर्विनियोग योग्य आधिक्य पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। इसके अतिरिक्त, इस मानदण्ड मे सामाजिक कल्याण के आदर्शों की उपेक्षा की गई है। पूँजी-गहन विनियोगो और तकनीको के अपनाने में श्रमिको का विस्थापन (Displacement) होगा। साथ ही इस मानदण्ड मे वर्तमान की अपेक्षा भविष्य पर अधिक ध्यान दिया गया है।

4. विशिष्ट समस्याओं को नियन्त्रित करने का मानदण्ड
(Investment criteria which aim at controlling specific problems)

इस मानदण्ड का उद्देश्य विकास-प्रक्रिया में उत्पन्न विशिष्ट समस्याओ को नियन्त्रित करके स्थायित्व के साथ आर्थिक विकास करना है। विकास की प्रारम्भिक

अवस्थाओ मे भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता और मुद्रा प्रसारिक दबावो के कारण विकास मे अस्थायित्व आ सकता है। अर्द्ध-विकसित देशो को बडी मात्रा मे पूँजीगत सामग्री और कच्चा माल आदि मँगाना पडता है। औद्योगीकरण और विनियोगो के कारण मौद्रिक आय बढती है जिससे उपभोग वस्तुओ का आयात भी बढ जाता है। इससे विदेशी मुद्रा की कमी एक बडी कठिनाई बन जाती है। इस प्रकार लोगो की मौद्रिक आय बढने के कारण वस्तुओ की माँग बढ जाती है और मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियाँ जन्म लेने लगती हैं। अत ऐसे क्षेत्रो मे विनियोग किया जाना चाहिए जिससे निर्यात वृद्धि और आयात-प्रतिस्थापन द्वारा देश की विदेशी विनिमय सम्बन्धी स्थिति सुदृढ हो और मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियो का भी प्रादुर्भाव नही हो सके। जे जे पोलक (J J Polak) के भुगतान सन्तुलन पर पडने वाले प्रभावो क दृष्टिकोण से विनियोगो को निम्नलिखित तीन प्रकार से विभाजित किया है—

(i) ऐसे विनियोग, जो निर्यात वृद्धि करने या आयात-प्रतिस्थापन करने वाली वस्तुएँ उत्पन्न करें। परिणामस्वरूप निर्यात आधिक्य उत्पन्न होगा।

(ii) ऐसे विनियोग, जो ऐसी वस्तुओ का उत्पादन करे जो पहले देश मे ही बेचने वाली वस्तुओ या निर्यात की जाने वाली वस्तुओ का प्रतिस्थापन करें। इस स्थिति मे भुगतान सन्तुलन की स्थिति मे विनियोगो का प्रभाव तटस्थ होगा।

(iii) ऐसे विनियोग जिनके कारण जो स्वदेश मे ही बेची जाने वाली वस्तुओ की मात्रा मे माँग से भी अधिक वृद्धि हो। वहाँ भुगतान सन्तुलन पर विपरीत प्रभाव होगा।

अत विनियोगो के परिणामस्वरूप किसी भुगतान सन्तुलन की स्थिति पर पडने वाले बुरे प्रभावो को न्यूनतम करने के लिए उपरोक्त वर्णित प्रथम श्रेणी के उत्पादक कार्यों पर विनियोगो को केन्द्रित करना चाहिए और तृतीय श्रेणी को बिल्कुल छोड देना चाहिए। द्वितीय श्रेणी के विनियोगो को बडी सावधानी के पश्चात् भुगतान सन्तुलन की स्थिति पर उनके विपरीत प्रभावो और अर्थ-व्यवस्था पर उनके लाभो की पारस्परिक तुलना के पश्चात् चुनना चाहिए।

किन्तु पोलक (Polak) के उपरोक्त मत की भी सीमाएँ है। ए. ई. काहन (A E Kahn) के अनुसार कुछ विनियोगो से मौद्रिक आय मे वृद्धि हुए बिना ही वास्तविक आय मे वृद्धि हो और जिसे आयातो पर व्यय किया जाए। यहाँ तक कि विनियोगो के परिणामस्वरूप वास्तविक आय मे वृद्धि के साथ-साथ जब मौद्रिक आय मे वृद्धि हो तो ऐसी स्थिति मे आयातो का बढना अनिवार्य नही है। वस्तुत अर्द्ध-विकसित देशो म बडी मात्रा मे आयातो के लिए इन देशो के उत्पादन की अल्पमुखी प्रवृत्ति ही बहुत सीमा तक उत्तरदायी है और ज्यो-ज्यो अर्थ-व्यवस्था का विकास होता रहता है तथा विभिन्न उद्योगो की स्थापना होती है। त्यो-त्यो देश के घरेलू उपभोग के लिए वस्तुओ की पूर्ति बढ जाती है और आयात की प्रवृत्ति (Propensity to

Import) कम होने लग जाती है। साथ ही निर्यातोन्मुख उद्योगों में विनियोगों को केन्द्रित करना ही आर्थिक विकास की गारण्टी नही है। उदाहरणार्थ, भारत एवं अन्य उपनिवेशो में प्रथम युद्ध के पूर्व बागानो और निस्सारक (Extractive) उद्योगों मे बडी मात्रा में पूँजी विनियोजित की गई थी, जिनसे निर्यात-पदार्थो का उत्पादन होता था, किन्तु फिर भी इन विनियोगों का देश में आय और रोजगार बढ़ाने तथा आर्थिक विकास को गति देने में योगदान अत्यल्प था। वास्तव में किसी भी विनियोग कार्यक्रम के भुगतान सन्तुलन पर पड़ने वाले प्रभावों का बिना समस्त विकास कार्यक्रम पर विचार किए हुए बिल्कुल अलग से कोई अनुमान लगाया जाना सम्भव नही है।

जिस प्रकार आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे भुगतान सन्तुलन की विपक्षता की समस्या उत्पन्न होती है उसी प्रकार मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियो की समस्या भी बहुधा सामने आ खडी होती है जो आन्तरिक असाम्य का सकेत है। आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे बडी-बडी परियोजनाओ पर विशाल राशि व्यय की जाती है। बहुधा ये परियोजनाएँ दीर्घकाल मे ही फल देने लगती हैं, अर्थात् इनका 'Gestation Period' अधिक होता है। इन कारणो से मौद्रिक आय बहुत बढ़ जाती है, किन्तु उस अनुपात मे उपभोक्ता वस्तुओ का उत्पादन नही बढ पाता। परिणामस्वरूप मूल्य बढने लग जाते हैं। कुछ देश बडी मात्रा मे प्राथमिक वस्तुओं का निर्यात करते है और इन देशो मे कभी-कभी आर्थिक स्थिरता आयातक देश में आने वाली तेजी और मन्दी के कारण इन पदार्थो के उतार-चढाव के कारण उत्पन्न हो जाती है। अत: विभिन्न क्षेत्रो मे विनियोगो का आवटन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे उपरोक्त दोनो प्रकार की आर्थिक स्थिरता या तो उत्पन्न ही नही हो या शीघ्र ही समाप्त हो जाए। यदि मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियो का जन्म सामाजिक ऊपरी लागतो (Social Overheads Costs–SOC) मे अत्यधिक विनियोग के कारण हुआ है तो कृषि उद्योग आदि प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ (Direct Productive Activities–DPA) मे अधिक विनियोग किया जाना चाहिए। यदि यह विशाल पूँजी-गहन-परियोजनाओ मे भारी पूँजी-विनियोग के कारण हुआ है तो ऐसे उपभोक्ता उद्योगों और कम पूँजी-गहन-परियोजनाओ मे विनियोगों का आवटन किया जाना चाहिए, जो शीघ्र फलदायी हो। इसी प्रकार विदेशी व्यापार के कारण उत्पन्न होने वाली आन्तरिक स्थिरता को दूर करने के लिए उत्पादन का विविधीकरण करना चाहिए, अर्थात् विनियोगों को थोड़े से निर्यात के लिए उत्पादन करने वाले क्षेत्रो मे ही केन्द्रित नही करना चाहिए, अपितु कई विभिन्न क्षेत्रो और उद्योगो मे लगाकर अर्थ-व्यवस्था को लोचपूर्ण बनाना चाहिए। कृषि-व्यवस्था मे अस्थिरता निवारण हेतु सिंचाई की व्यवस्था और मिश्रित खेती की जानी चाहिए।

5. काल-श्रेणी का मानदण्ड

(The Time Factor Criteria)

किसी विनियोग कार्यक्रम पर विचार करते समय न केवल विनियोग की कुल राशि पर ही विचार करना चाहिए अपितु इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि

उक्त परियोजना से कितने समय पश्चात् प्रतिफल मिलने लगेगा। इस विषय पर विचार करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि अर्द्ध-विकसित देश सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक कारणो से विनियोगो के फलो से लाभान्वित होने के लिए दीर्घकाल तक प्रतीक्षा नही कर सकते। अत विनियोग निर्धारण मे काल श्रेणी का भी बहुत महत्व है। इसलिए ए के सेन ने काल श्रेणी का मानदण्ड प्रस्तुत किया है। इस दण्ड मे एक निश्चित अवधि मे उत्पादन अधिक प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। यदि पूंजी और उत्पादन के अनुपात और बचत दर समान बनी रहे, तो पूँजी-प्रधान और श्रम-प्रधान तकनीको के मार्ग की रेखा खीची जा सकती है और यह ज्ञात किया जा सकता है कि दोनो मे से किससे अधिक प्रतिफल प्राप्त होगा।

6 अन्य विचारणीय बाते

(i) अन्य वितरण —विभिन्न विकास कार्यक्रमो का आय के वितरण पर भी भिन्न-भिन्न प्रभाव पडता है। अत नवीन विनियोग इस प्रकार के होने चाहिए जो आय और धन की असमानता को बढाने की अपेक्षा कम करे। आर्थिक समानता और उत्पादकता के उद्देश्यो मे लाभदायक समन्वय की आवश्यकता है।[1]

(ii) मात्रा के साथ मूल्य और माँग पर भी ध्यान—विनियोग कार्यक्रम *निर्धारित करते समय इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि उत्पादित* वस्तु का मूल्य क्या है? केवल भौतिक मात्रा मे अधिक उत्पत्ति करने वाला विनियोग अच्छा नही कहलाया जा सकता, यदि उसके द्वारा उत्पादित वस्तुओ का न कोई मूल्य हो और न माँग ही हो। उदाहरणार्थ, अपेक्षाकृत कम पूँजी से जूतो की अधिक मात्रा उत्पादित की जा सकती है, किन्तु यदि इन जूतो की माँग और इनके लिए बाजार नही है, तो ऐसे विनियोग और उत्पादन से अर्थ-व्यवस्था लाभान्वित नही होगी।

(iii) विदेशी-विनिमय—भारत जैसे विकासशील देशो के लिए विदेशी विनिमय की भारी समस्या है। विभिन्न प्रकार की परियोजनाओ और क्षेत्रो मे पूँजी विनियोग विदेशी-विनिमय की स्थिति को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभावित करता है। एक कारखाना दूसरे की अपेक्षा अधिक निर्यात की वस्तुएँ तैयार करने वाला हो सकता है। इसी प्रकार एक उद्योग दूसरे उद्योग की अपेक्षा आयातित वस्तुओ का अधिक उपयोग करने वाला हो सकता है। अत ऐसे कार्यक्रमो, क्षेत्रो, उद्योगो और परियोजनाओ मे पूँजी विनियोजित की जानी चाहिए, जो निर्यात की क्षमता मे वृद्धि करें और आयात की आवश्यकता को कम करें।

(vi) सन्तुलित विकास—इसके अतिरिक्त विनियोगो द्वारा अर्थ-व्यवस्था के सन्तुलित विकास पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। पूँजी-विनियोग के परिणाम-स्वरूप कृषि, उद्योग, यातायात तथा सन्देश-वाहन, सिचाई, विद्युत और सामाजिक सेवाओ का समानान्तर विकास किया जाना आवश्यक है। ये सब एक दूसरे के पूरक हैं।

1. जी एल गुप्ता अर्थिक समीक्षा, दिसम्बर, 1968 पृष्ठ 27

विनियोग के आवंटन मे न केवल अर्थ-व्यवस्था के कृषि, उद्योग आदि विभिन्न क्षेत्रों के सन्तुलित विकास को ध्यान मे रखा जाना चाहिए, अपितु देश के भौगोलिक क्षेत्रों के सन्तुलित विकास पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। पिछड़े हुए प्रदेशों में अपेक्षाकृत अधिक विनियोग किए जाने चाहिए।

अर्थ-व्यवस्था के क्षेत्र
(Sectors of Economy)

अर्थ-व्यवस्था को निम्नलिखित तीन क्षेत्रो मे विभाजित किया जा सकता है—

(क) कृषि-क्षेत्र (Agricultural Sector)—अर्थ व्यवस्था के इस क्षेत्र के अन्तर्गत कृषि और तत्सम्बन्धी कार्यक्रम, जैसे सिंचाई, पशुपालन, मत्स्य-पालन, बागान, सामुदायिक विकास, वनारोपण, सहकारिता, भू-सरक्षण आदि कार्यक्रम सम्मिलित हैं। कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत, उन्नत और अच्छे खाद, बीज, यन्त्र और औजारो की व्यवस्था, कीट और रोगनाशक औषधियो की उपलब्धता, उचित-दर पर पर्याप्त मात्रा में साख सुविधाओ की उपलब्धि आदि कार्यक्रम सम्मिलित किए जाते है। मुख्यत. अर्द्ध-विकसित देश कृषि प्रधान होते है अत उनकी अर्थ-व्यवस्था मे कृषि-क्षेत्र का बहुत महत्त्व है।

(ख) उद्योग-क्षेत्र (Industrial Sector)—इस क्षेत्र के अन्तर्गत निर्माण-उद्योग (Manufacturing Industries) तथा खनिज-व्यवसाय आते हैं। अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशो मे, उद्योग-धन्धे कम विकसित होते हैं तथा वहाँ आर्थिक विकास को तीव्रगति देने और अर्थ-व्यवस्था का विविधीकरण करने के लिए तेजी से औद्योगीकरण की आवश्यकता होती है। अत. नियोजन मे इस क्षेत्र को भी पर्याप्त मात्रा मे विनियोग का आवटन किए जाने की आवश्यकता है।

(ग) सेवा-क्षेत्र (Service Sector)—सेवा-क्षेत्र के अन्तर्गत व्यवसाय प्रमुख रूप से, यातायात एव सन्देश वहन के साधन आते हैं, इसके अतिरिक्त, वित्तीय संस्थाएँ, प्रशासनिक सेवाएँ, शिक्षा, चिकित्सा, श्रमिक और पिछड़े वर्गों का कल्याण आदि कार्यक्रम भी इसी क्षेत्र मे सम्मिलित किए जा सकते है। विकासार्थ नियोजन के परिणामस्वरूप, कृषि और उद्योगो की प्रगति के लिए यातायात और अन्य सामाजिक ऊपरी पूंजी तथा जन-शक्ति के विकास के लिए सेवा-क्षेत्र पर ध्यान दिया जाना भी अत्यावश्यक है।

किस क्षेत्र को प्राथमिकता दी जाए?
(Problem of Priority)

इस सम्बन्ध मे विभिन्न विचार प्रस्तुत किए गए हैं। विवाद का मुख्य विषय यह है कि विनियोग कार्यक्रमो में कृषि को प्राथमिकता दी जाए या उद्योगों को। नियोजित आर्थिक विकास विनियोग कार्यक्रमो मे कुछ लोग कृषि को महत्त्व अधिक देने का आग्रह करते है तो कुछ विचारक औद्योगीकरण के लिए अधिक मात्रा म विनियोगो को आवटित किए जाने पर बल देते हैं। कृषि-क्षेत्र में विशाल मात्रा मे विनियोजन का समर्थन करने वाले इग्लैण्ड आदि विकसित देशो का उदाहरण देते

हुए कहते हैं कि औद्योगीकरण के लिए कृषि का विकास एक आवश्यक शर्त है। यहाँ तक कि ब्रिटेन मे भी 18वी शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश मे हुई कृषि की उल्लेखनीय प्रगति ने ही वहाँ होने वाली औद्योगिक क्रान्ति के लिए आधार तैयार किया। फिर अर्द्ध-विकसित देशो मे तो, जिनकी अर्थ-व्यवस्था प्रमुख रूप से कृषि-प्रधान है, जब तक इनके कृषि आदि प्राथमिक क्षेत्रो को विकसित नही किया जाता, तब तक इनकी आर्थिक प्रगति नही हो सकती। प्रोफेसर थियोडोर शुल्ज (Prof Theodore Schultz) के अनुसार "उच्च खाद्य बहाव वाली अर्थ-व्यवस्था मे जहाँ समाज की अधिकांश आय का खाद्य पदार्थ प्रतिनिधित्व करते है, कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो मे नई और अधिक अच्छी उत्पादन सम्भावनाओ की बहुत थोडी गुंजाइश होती है, क्योकि खाद्यानो के उत्पादन के लिए आवश्यक उत्पादक प्रयत्न ही कुल का बहुत बडा भाग होते हैं।"

इसके विपरीत दूसरे समुदाय के विचारको का दृढ मत है कि अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ मे कृषि उत्पादकता बहुत कम होती है। साथ ही, जनसख्या का भारी दबाव होता है। अत इन देशो की मुख्य समस्या आय मे तेजी से वृद्धि करने और बढती हुई जनसख्या को गैर-कृषि-क्षेत्रो मे स्थानान्तरित करने की है। अत इन देशो मे कृषि पर ही विनियोगो को केन्द्रित करने से कार्य नही चलेगा। यह बुद्धिमत्तापूर्ण भी नही होगा। अत इन परिस्थितियो मे कृषि की अपेक्षा उद्योगो मे विनियोगो को अधिक केन्द्रित करने की आवश्यकता है। अप्रैल 1957 मे टोकियो मे हुई आर्थिक विकास की अन्तर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेंस (International Conference on Economic Growth) मे प्रो कुरिहारा (Prof Kurihara) ने अर्द्ध-विकसित देशो के विकास के लिए कृषि आधारित विकास की नीति को निम्नलिखित कारणो से अनुपयुक्त बतलाया—

(i) उद्योगो की अपेक्षा कृषि की सीमान्त-उत्पादकता कम होती है। अत इन देशो के सीमित साधनो को कृषि पर विनियोजित करना अमितव्ययितापूर्ण होगा।

(ii) कृषि-क्षेत्र मे उद्योगो की अपेक्षा बचत की प्रवृत्ति (Propensity to Save) कम होती है क्योकि धनिक कृषको मे प्रदर्शन उपभोग (Conspicuous Consumption) की प्रवृत्ति होती है।

(iii) बहुधा व्यापार की शर्तें कृषि पदार्थो के प्रतिकूल ही रहती है, अत, कृषि के विकास का महत्त्व देने और औद्योगिक विकास की अपेक्षा करने से इन देशो की भुगतान सन्तुलन की स्थिति पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

अत प्रो कुरिहारा के मतानुसार कृषि और औद्योगिक उत्पादन मे सतुलित वृद्धि एक विलासिता है जिसे केवल पर्याप्त वास्तविक पूंजी वाली उन्नत अर्थ-व्यवस्था ही सुगमतापूर्वक अपना सकती है किन्तु जिसे पूंजी वाले देश कठिनाई से ही सह सकते है। एक अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था के लिए जहाँ सीमित बचत होती है और पूंजी को प्रयुक्त करने वाली विभिन्न परियोजनाएँ जिन्हे प्राप्त करने के लिए परस्पर

प्रतिस्पर्द्धा करती हैं, यह उपयुक्त होगा कि वे अपने प्रयत्नों को औद्योगिक क्षेत्र के द्रुत विकास के लिए ही केन्द्रित करें और कृषि-क्षेत्र को प्रतिक्रिया एवं प्रभावों द्वारा ही विकसित होने दे ।[1]

इसी प्रकार, कुछ विचारक सामाजिक ऊपरी पूंजी (SOC) के रूप में यातायात एवं संचार, विद्युत, शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी आदि जनोपयोगी सेवाओं को महत्त्व देते हैं। उनका विश्वास है कि इन कार्यक्रमो मे पूंजी का विनियोग किया जाए जिससे कृषि और उद्योग आदि प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ के लिए आधार का निर्माण हो और ये तेजी से विकसित हो सकें।

कृषि में विनियोग क्यो ?
(Why Investment in Agriculture ?)

अधिकांश अर्द्ध-विकसित देश कृषि-प्रधान हैं और उनकी अर्थ-व्यवस्था मे कृषि का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन देशो मे कृषि, देशवासियों के रोजगार, राष्ट्रीय आय के उत्पादन, जनता की खाद्य सामग्री की आवश्यकताओं की पूर्ति, उद्योगो के लिए कच्चा माल, निर्यातो द्वारा विदेशी-विनिमय के अर्जन आदि का एक मुख्य साधन है। अत देश के आर्थिक विकास के किसी भी कार्यक्रम मे इस क्षेत्र के विकास की तनिक भी उपेक्षा नही की जा सकती। वास्तव मे इन देशो मे योजनाओ की सिद्धि बहुत बड़ी मात्रा मे कृषि-क्षेत्र मे विनियोगो के केन्द्रित करने पर ही निर्भर है। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. कृषि विकास से औद्योगिक विकास के लिए साधन उपलब्ध होना—कृषि विकास न केवल स्वय अपने लिए, अपितु औद्योगिक विकास के लिए भी आवश्यक होता है। आज के प्रमुख उद्योग, विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे समृद्ध और विकासमान कृषि ने ही निर्माणी उद्योगो के विकास के लिए आधारशिला प्रस्तुत की थी। कृषि-विकास से इसकी उत्पादकता और कुल उत्पादन मे वृद्धि होती है; जिससे कृषि क्षेत्र में आय मे वृद्धि होती है। इससे इस क्षेत्र मे बचत की सम्भावनाएँ बढ़ती हैं, जिसको ऐच्छिक या बाधित रूप से कर या कृषि पदार्थो के अनिवार्य भुगतान आदि के द्वारा एकत्रित करके गैर-कृषि-क्षेत्रो मे विकास के साधन जुटाए जा सकते हैं। जापान ने अपने आर्थिक विकास मे इस पद्धति का बड़ा उपयोग किया। सन् 1885 से 1915 तक की द्रुत आर्थिक विकास की अवधि मे कृषकों की उत्पादकता अच्छी कृषि पद्धतियो के कारण दुगुनी से भी अधिक हो गई। कृषक जनसंख्या की इस बढ़ी हुई आय का अधिकांश भाग भूमि पर भारी कर लगाकर ले लिया गया और इसका उपयोग गैर-कृषि-क्षेत्रो मे प्रमुख रूप से उद्योगो के विकास मे विनियोजित किया गया। वहाँ कृषि-क्षेत्र से इतनी अधिक आय प्राप्त की गई कि उस समय वहाँ की केन्द्रीय सरकार की कुल कर आय का 93·3% भाग भूमि पर करारोपण द्वारा प्राप्त किया जाता था। सोवियत रूस ने कृषि की उत्पादकता को

1. *K. K. Kurihara* : Indian Journal of Economics, Oct. 1950.

तेजी से बढाया और कृषि क्षेत्र के आधिक्य को द्रुत औद्योगीकरण की वित्त व्यवस्था करने के उपयोग मे लिया। इसी प्रकार चीन मे, 1953 और 1957 के बीच कृषि से प्राप्त कर आय का 40% से भी अधिक भाग गैर-कृषि-क्षेत्रो मे विकास के लिए प्रयुक्त किया गया। गोल्डकोस्ट, बर्मा, युगाडा आदि भी कृषि आय के बहुत बडे भाग को अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रो मे विकास कार्यक्रमो की वित्त-व्यवस्था के लिए उपयोग कर रहे हैं। इस प्रकार, स्पष्ट है कि कृषि क्षेत्र का विकास बचत मे वृद्धि करके विनियोजित किए जाने वाले कोषो मे वृद्धि करता है, जिनका उद्योग आदि अन्य क्षेत्रो मे उपयोग करके समग्र आर्थिक विकास की गति को तीव्र किया जा सकता है।

2. वृद्धिमान जनसख्या को भोजन की उपलब्धि—अर्द्ध-विकसित देशो मे वृद्धिमान जनसख्या को खाद्यान्न उपलब्ध कराने और उनके भोजन तथा उपभोग स्तर को ऊँचा उठाने के लिए भी कृषि-कार्यक्रमो को बडे पैमाने पर सचालित किया जाना आवश्यक है। कई अर्द्ध-विकसित देशो मे जनसख्या अधिक है और इसमे तेजी से वृद्धि हो रही है। इसके अतिरिक्त भारत जैसे देश मे बढती हुई जनसख्या की तो बात ही क्या, वर्तमान जनसख्या के लिए भी खाद्यान्न उत्पादन नही कर पा रहे है? एक अनुमान के अनुसार एशिया और अफ्रीका के निर्धन देशो की बढती हुई जनसख्या के लिए ही इन देशो मे खाद्यान्न उत्पादन को 1 5% प्रतिवर्ष की दर से बढाने की आवश्यकता है। भारत जैसे देश मे तो यह जनसख्या वृद्धि-दर 2 5% वार्षिक है, अत इस दृष्टि से ही खाद्यान्नो के उत्पादन मे वृद्धि होनी चाहिए। साथ ही इन देशो मे गुण और मात्रा दोनो ही दृष्टिकोणो से भोजन का स्तर निम्न है, जिसका इनकी कार्यक्षमता पर भी विपरीत प्रभाव पडता है। श्रीलका, भारत और फिलीपीन्स मे भोजन का वास्तविक उपभोग न्यूनतम आवश्यकता से भी 12 से 18% कम है। आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप ज्यो-ज्यो इन देशो की राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होगी, त्यो-त्यो प्रति व्यक्ति भोजन पर व्यय मे वृद्धि होगी। इसके अतिरिक्त औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप, शहरी जनसख्या मे वृद्धि होगी तथा गैर-कृषि-व्यवसायो मे नियोजित व्यक्तियो के अनुपात मे वृद्धि होगी। उद्योग-धन्धो और अन्य व्यवसायो मे लगे इन व्यक्तियो के खिलाने के लिए भी खाद्यान्नो की आवश्यकता होगी। इन सब कारणो से देश मे खाद्यान्नो के उत्पादन मे वृद्धि की आवश्यकता है जिसे कृषि के विकास द्वारा ही पूरा किया जा सकता है, अन्यथा भारत की तरह करोडो रुपयो का अन्न विदेशो से आयात करना पडेगा और दुर्लभ विदेशी-मुद्रा को व्यय करना होगा।

3. औद्योगीकरण के लिए कच्चे माल की उपलब्धि—किसी भी देश के औद्योगिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि औद्योगिक कच्चे माल के उत्पादन मे भी वृद्धि हो। बहुत से उद्योगो मे कृषि-जन्य कच्चे माल का ही उपयोग किया जाता है। कई अन्य उपभोक्ता उद्योगो के लिए वन्य उपज की आवश्यकता होती है। अत. जब तक पर्याप्त मात्रा मे अच्छे किस्म के सस्ते कच्चे माल की उपलब्धि नही

हो सकती, तब तक औद्योगिक विकास नही हो सकता और न इन उद्योगों की प्रतिस्पर्द्धा शक्ति बढ सकती है। अत: उद्योगो के लिए औद्योगिक कच्चे माल के उत्पादन मे वृद्धि के लिए भी कृषि का विकास आवश्यक है।

4. विदेशी विनिमय की समस्या के समाधान में सहायक—यदि आर्थिक विकास कार्यक्रमो मे कृषि विकास को महत्व नही दिया गया, तो देश मे खाद्यान्नों और औद्योगिक कच्चे माल की कमी पड सकती है, और इन्हे विदेशो से आयात करने के लिए बडी मात्रा मे विदेशी मुद्रा व्यय करनी पडेगी। वैसे भी किसी विकासमान अर्थ-व्यवस्था की विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे विदेशो से बडी मात्रा मे मशीनें और अन्य पूंजीगत सामग्री का आयात करना पडता है। इसका भुगतान कृषि-जन्य और अन्य कच्चे माल के निर्यात द्वारा ही किया जा सकता है। अतः कृषि में प्रतिस्पर्द्धा लागत पर उत्पादन-वृद्धि आवश्यक है। नियोजन मे विशाल परियोजनाओं पर बड़ी मात्रा मे धनराशि व्यय की जाती है। इससे लोगो की मौद्रिक आय बढ जाती है। साथ ही वस्तु और सेवा उत्पादन मे शीघ्र वृद्धि नही होती। अतः अर्थ-व्यवस्था मे मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियाँ बढने लगती हैं, जिनका दमन वस्तुओ और सेवाओं की पूर्ति मे वृद्धि से ही किया जा सकता है। इसके लिए भी या तो बहुत सीमा तक कृषि-उत्पादन मे वृद्धि करनी पडेगी या विदेशो से आयात करना पडेगा जिनके लिए पुनः विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होगी। अत इस समस्या के समाधान की विधि निर्यात योग्य पदार्थों की उत्पादन वृद्धि है जो अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशो मे प्राथमिक पदार्थ हैं। यद्यपि आर्थिक विकास के साथ-साथ देश मे अन्य निर्यात-योग्य पदार्थों का उत्पादन भी बढ जाता है किन्तु जब तक अर्थ-व्यवस्था इस स्थिति मे नहीं पहुँचती, तब तक ऐसे देशो की विदेशी-विनिमय स्थिति बहुत अधिक सीमा तक कृषि-पदार्थों के उत्पादन और निर्यात पर ही निर्भर करेगी। अत इन देशो मे निर्यातो द्वारा अधिक विदेशी-मुद्रा का अर्जन करने या अपने कृषि-जन्य पदार्थों के आयात में कमी करने के लिए भी कृषि विकास को महत्त्व दिया जाना चाहिए।

5. औद्योगिक-क्षेत्र के लिए बाजार प्रस्तुत करना—विकासार्थ नियोजन मे कृषि विकास, औद्योगिक-क्षेत्र मे उत्पादित-वस्तुओ के लिए बाजार प्रस्तुत करता है। ऐसे औद्योगिक विकास से, जिसमे उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओ की माँग नही हो, कोई लाभ नही हो सकता। यदि केवल औद्योगिक विकास की ओर ही ध्यान दिया गया, तो अन्य क्षेत्रो की आय मे वृद्धि नही होगी जिससे औद्योगिक वस्तुओं की माँग नही बढ पाएगी। किन्तु, यदि पूंजी विनियोजन के परिणामस्वरूप कृषि-उत्पादन मे वृद्धि होती है, तो कृषि मे सलग्न व्यक्तियो की आय मे वृद्धि होगी, जिसको औद्योगिक-वस्तुओं के क्रय पर व्यय किया जाएगा। ऐसा भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देश के लिए तो और भी आवश्यक है, जहाँ की अधिकांश जनता कृषि व्यवसाय में सलग्न है।

6. उद्योगों के लिए श्रमिकों की पूर्ति—कृषि-विकास, औद्योगिक-क्षेत्र के लिए आवश्यक श्रम की पूर्ति सम्भव बनाता है। कृषि विकास के कार्यक्रमो से कृषि उत्पादन और कृषक की उत्पादकता में वृद्धि होती है और देश की जनसंख्या के लिए आवश्यक

कृषि उत्पादन हेतु कृषि-व्यवसाय के सचालन के लिए कम व्यक्तियों की ही आवश्यकता रह जाती है, शेष व्यक्तियों में से औद्योगिक क्षेत्र अपने विकास के लिए श्रमिको को प्राप्त कर सकता है।

7. कम पूँजी से बेरोजगारी की समस्या के समाधान मे सहायता—अर्द्ध-विकसित देश व्यापक बेरोजगारी, अर्द्ध-बेरोजगारी और छिपी हुई बेरोजगारी की समस्या से ग्रस्त हैं, वहाँ जन-शक्ति के एक बहुत बड़े भाग को रोजगार के साधन उपलब्ध नही हो पाते हैं। इन देशो की विकास-योजनाओं का उद्देश्य, समस्त देशवासियो के लिए रोजगार के अवसर प्रदान करना भी है। दूसरी ओर इन देशो मे पूँजी की अत्यन्त कमी है। उद्योगो की स्थापना हेतु अपेक्षाकृत अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है, किन्तु कृषि-व्यवसाय मे कम पूँजी से अधिक व्यक्तियों को रोजगार दिया जा सकता है।

उद्योगो मे विनियोग
(Investment in Industries)

योजना विनियोग मे कृषि क्षेत्र को उच्च प्राथमिकता देने का आशय यह नही है कि उद्योग एव सेवाओं को कम महत्व दिया जाए। इनका विकास भी कृषि विकास के लिए आवश्यक है। आर्थिक-विकास के किसी भी कार्यक्रम मे इनकी प्रगति के लिए पर्याप्त प्रयत्न किए जाने चाहिए। कुछ व्यक्ति आर्थिक विकास का अर्थ औद्योगीकरण से लगाते हैं। आर्थिक विकास प्रक्रिया मे औद्योगीकरण का महत्त्व निम्नलिखित कारणो से है—

1. औद्योगिक-विकास से कृषि-पदार्थों की माँग मे वृद्धि—औद्योगिक-विकास द्वारा कृषि जन्य एव अन्य प्राथमिक पदार्थों की मांग बढती है। औद्योगिक-विकास के कारण, अधिक मात्रा मे कृषि-जन्य कच्चे माल की आवश्यकता होती है। औद्योगीकरण के कारण औद्योगिक क्षेत्र मे श्रमिको की आय बढती है, जिसका एक भाग भोजन पर व्यय किए जाने से भी कृषि-पदार्थों की माँग बढती है। इस प्रकार, औद्योगिक विकास, कृषि विकास को प्रभावित करता है। जिस प्रकार से कृषि क्षेत्र की बढ़ी हुई आय गैर-कृषि-क्षेत्र के निर्मित माल की खपत बढाने मे सहायक होती है उसी प्रकार औद्योगिक क्षेत्र मे होने वाली आय मे वृद्धि कृषि पदार्थों की माँग मे वृद्धि करके उसके विकास के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं।

2. अप्रयुक्त जन शक्ति को रोजगार देने हेतु आवश्यक—निर्धन देशो मे जनसख्या की अधिकता और बढती हुई जनसख्या के कारण कृषि पर जनसख्या का भार अधिक है। वैकल्पिक उद्योगो के अभाव के कारण अधिकांश जनता जीविका-निर्वाह हेतु कृषि का अवलम्बन लेती है। किन्तु परम्परागत उत्पादन विधियो और कृषि व्यवसाय के अत्यन्त पिछडे होने के कारण श्रमिको की एक बहुत बडी सख्या या तो बेरोजगार रहती है या अर्द्ध-बेरोजगारी की शिकार रहती है। कृषि-व्यवसाय मे यह अदृश्य बेरोजगारी अधिक व्याप्त रहती है। अनेक अनुमानो के अनुसार, कृषि-क्षेत्र की ¼ से ⅓ जनसख्या कृषि-व्यवसाय की आवश्यकताओं से अधिक होती है।

औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप, देश की इस अप्रयुक्त जन-शक्ति को रोजगार के अवसर प्रदान किए जा सकेंगे। इससे कृषि पर जनसंख्या का भार भी कम होगा और कृषि-क्षेत्र मे प्रति व्यक्ति उत्पादकता मे वृद्धि होगी।

3. अर्थ-व्यवस्था को बहुमुखी बनाने के लिए आवश्यक केवल कृषि या प्राथमिक व्यवसायो पर ही विनियोगों को केन्द्रित करने से अर्थ-व्यवस्था एकाकी हो जाती है। निर्धन देशो मे जनसंख्या का एक बडा भाग कृषि-व्यवसाय मे लगा रहता है। निर्धन देशो की कृषि-क्षेत्र पर अत्यधिक निर्भरता एकांगी तथा असन्तुलित अर्थ-व्यवस्था की स्थिति उत्पन्न करती है। अर्थ-व्यवस्था को बहुमुखी बनाने के लिए इन देशों मे द्रुत औद्योगीकरण आवश्यक है। वैसे भी कृषि आदि व्यवसाय प्रकृति पर निर्भर होते हैं, जिनमे इन व्यवसाय मे स्थिरता और निश्चितता नही आ पाती। अतः अर्थ-व्यवस्था का विविधीकरण आवश्यक है और इसके लिए द्रुत औद्योगीकरण किया जाना चाहिए।

4. कृषि के लिए आवश्यक आदानों (Inputs) की उपलब्धि—कृषि-विकास की योजनाओ मे रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक औषधियाँ, ट्रेक्टर एव अन्य कृषि यन्त्र तथा औजार, सिंचाई के लिए पम्प, रहट आदि की आवश्यकता होती है। अत इन वस्तुओ का उत्पादन और इनसे सम्बन्धित औद्योगिक विकास आवश्यक है। औद्योगीकरण मुख्यत कृषि-उन्मुख उद्योगो (Agro-industries) से कृषि विकास को प्रत्यक्ष सहायता मिलती है और कृषि-विकास के किसी भी कार्यक्रम मे उक्त उद्योगो की कभी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

5 गैर कृषि पदार्थों की माँग पूर्ति—आर्थिक विकास के कारण जनता की आय मे वृद्धि होती है और कृषि पदार्थों के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के गैर-कृषि पदार्थों की माँग मे भी वृद्धि होती है। ऐसा नागरिक जनसंख्या के अनुपात मे वृद्धि के कारण भी होता है जो सुख-सुविधा की नई-नई चीजो का उपयोग करना चाहती है। गैर-कृषि पदार्थों की बढती हुई इस माँग की पूर्ति हेतु उद्योगो मे भी पूंजी विनियोग की आवश्यकता होती है।

6. उद्योगों में श्रमिकों की सीमान्त-उत्पादकता की अधिकता—कृषि मे, उद्योगो की अपेक्षा, श्रम का सीमान्त उत्पादन-मूल्य कम होता है। औद्योगिक विकास से श्रमिको का कृषि से उद्योगों मे हस्तान्तरण होता है, जिसका आशय गैर-कृषि क्षेत्र को अपेक्षा-कृत कम मूल्य पर श्रम-पूर्ति से होता है। इसमे अर्थ-व्यवस्था मे श्रम ससाधनों के वितरण मे कुशलता बढती है और श्रम एव पूंजी विकास में अच्छा सन्तुलन स्थापित होने की अधिक सम्भावना रहती है।

7. सामाजिक एवं अन्य लाभ—ग्रामीण-समाज बहुधा आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े हुए होते है। औद्योगीकरण से मानवीय कुशलताओं मे वृद्धि होती है, जोखिम उठाने की प्रवृत्ति जाग्रत होती है तथा इससे सामाजिक सरचना अधिक प्रगतिशील और गतिशील (Dynamic) होती है। औद्योगीकरण द्वारा नागरिक जनसंख्या का अनुपात बढता है, जो अधिक विवेकपूर्ण व तर्कशील

होती है। इससे व्यक्तिवादी और भौतिकवादी दृष्टिकोण का भी विकास होता है जो आर्थिक विकास के लिए अधिक उपयुक्त है। औद्योगिक विकास मे शहरी बाजारो का विस्तार होता है, जिससे यातायात और सचार-साधनो का विकास होता है। साथ ही, इससे कृषि व्यापारीकरण भी होता है और कृषि-क्षेत्र मे नवीन प्रवृत्तियो को जन्म मिलता है।

सेवा-क्षेत्र में विनियोग
(Investment in Serviccs)

कृषि और उद्योग आदि की प्रत्यक्ष उत्पादक-क्रियाओ के अतिरिक्त, आर्थिक विकास के लिए सामाजिक ऊपरी पूंजी (SOC) का निर्माण आवश्यक है। इसके अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, सचार तथा पानी, विद्युत प्रकाश आदि जनोपयोगी सेवाओ को सम्मिलित किया जाता है। अर्थ-व्यवस्था के इस सेवा-क्षेत्र मे पूँजी-विनियोग करने से इनका विकास होगा, जिससे प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ मे भी निजी-विनियोग को प्रोत्साहन मिलेगा। साथ ही, ये सेवाएँ, प्रत्यक्ष रूप से कृषि और औद्योगिक-क्षेत्र के विस्तार के लिए भी अनिवार्य है। कृषि उत्पादन को खेतो से मण्डियो, नगरो, बन्दरगाहो और विदेशो तक पहुँचाने के लिए सडको, रेलो, बन्दरगाहो, और जहाजरानी का विकास अनिवार्य है। इसी प्रकार, कारखानो और नगरो से कृषि के लिए आवश्यक आदानो जैसे—खाद बीज, कृषि-औजार, कीट-नाशक, तकनीकी ज्ञान आदि खेतो तक पहुँचाने के लिए भी यातायात और सचार के साधन आवश्यक है। विभिन्न स्थानो से कारखानो तक कच्चे माल, ईंधन आदि को पहुँचाने और उद्योगो के निर्मित माल को बाजारो तक पहुँचा कर, औद्योगिक विकास मे सहायता देने के लिए भी यातायात एव सचार-साधनो का महत्त्व कम नही है। *वास्तव मे यातायात और सन्देशवाहन किसी भी अर्थ-व्यवस्था के स्नायु तन्तु है* और अर्थ-व्यवस्था रूपी शरीर के सुचारु सचालन के लिए यातायात और सन्देशवाहन के साधनो का विकसित होना अत्यन्त आवश्यक है। इनकी उपेक्षा करने पर कृषि और औद्योगिक विकास मे भी निश्चित रूप से अवरोध (Bottle Necks) उपस्थित हो सकते है।

इसी प्रकार, सस्ती और पर्याप्त मात्रा मे विद्युत उपलब्धि भी आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है। सस्ती बिजली द्वारा लघु और कुटीर उद्योगो के विकास मे बडी सहायता मिल सकती है। सिंचाई के लिए लघु और मध्यम सिंचाई योजनाओ के क्रियान्वयन मे भी बिजली द्वारा बहुत सहायता मिलती है। बिजली द्वारा छोटे-छोटे पम्पिंग सेट और ट्यूब-वेल चलाकर खेतो को सिंचित किया जा सकता है। बडे उद्योगो के लिए सस्ती और पर्याप्त मात्रा मे विद्युत उपलब्धि बहुत सहायक है। इस प्रकार विद्युत विकास द्वारा कृषि और औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है। शिक्षा प्रशिक्षण तथा चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवाओ का विकास देश की जन-शक्ति के विकास मे सहायक होता है। श्रम, कल्याण और पिछडी जाति के कल्याण-कार्यक्रम इन वर्गों के विकास के लिए आवश्यक है। इन समस्त सेवाओ द्वारा देश की

जन-शक्ति की कार्य-कुशलता बढ़ती है और मानव-पूँजी का निर्माण होता है। देश के आर्थिक विकास के लिए मानवीय-पूँजी निर्माण में साधनों को विनियोजित करना भी आवश्यक है।

इस प्रकार, सामाजिक ऊपरी पूँजी (SOC) और सेवा-क्षेत्र में किए गए विनियोग कृषि, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य आदि के आदानों को सस्ता करके इनको प्रत्यक्ष सहायता करते हैं। जब तक पर्याप्त विनियोगों द्वारा सस्ती और श्रेष्ठ सेवाओं की उपलब्धि नहीं होगी, तब तक प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में विनियोगों को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा और न ही ये लाभप्रद होंगे। अतः अर्थ-व्यवस्था के इस क्षेत्र में भी पर्याप्त मात्रा में विनियोगों को आवंटित किया जाना चाहिए, जिससे सद्प्रभावों के कारण, बाद में, प्रत्यक्ष-उत्पादक-क्रियाओं में विनियोग अधिकाधिक किए जाएँगे और अर्थ-व्यवस्था विकास पथ पर अग्रसर होगी। प्रो हर्षमैन (Prof Hirschmann) के मतानुसार सामाजिक ऊपरी पूँजी (SOC) का निर्माण प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं को आने का आमन्त्रण देता है।

तीनों क्षेत्रों में समानान्तर व सन्तुलित विकास की आवश्यकता (Need of Balanced Growth in all the Three Sectors)

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि नियोजन प्रक्रिया में अर्थ-व्यवस्था के इन तीनों क्षेत्रों का अपना-अपना महत्त्व है और इन तीनों के समानान्तर और सन्तुलित विकास की आवश्यकता है। इसके अभाव में एक क्षेत्र का कम विकास, दूसरे क्षेत्र के विस्तार के लिए बाधा बन सकता है। उदाहरणार्थ यदि औद्योगिक उत्पादन का विस्तार होता है, किन्तु कृषि-क्षेत्र में कोई प्रगति नहीं होती, तो औद्योगिक-क्षेत्र की अतिरिक्त आय प्राथमिक क्षेत्र की सीमित पूर्ति पर दबाव डालेगी और मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियों का उदय होगा या बाह्य साधनों पर कुप्रभाव पड़ेगा। इसी प्रकार यदि गैर-कृषि-क्षेत्रों में वृद्धि हुए बिना कृषि-उत्पादन में वृद्धि होती है तो कृषि,पदार्थों की माँग पूर्ति की अपेक्षा कम हो जाएगी। परिणामस्वरूप, मूल्य कम होंगे, आय भी कम होगी और विकास में बाधाएँ पहुँचेंगी। अतः सभी क्षेत्रों का समानान्तर और सन्तुलित विकास किया जाना चाहिए।

किन्तु सन्तुलित-विकास का आशय सभी क्षेत्रों में समान-दर से आर्थिक विकास नहीं है। बहुधा आय-वृद्धि के साथ-साथ आय का भाग अधिक अनुपात में, निर्मित-वस्तुओं पर व्यय किया जाता है। साथ ही, औद्योगिक विकास की गति बहुधा धीमी रही है, उसे तीव्र करने की आवश्यकता है। इसलिए विनियोग कार्यक्रमों में औद्योगिक क्षेत्र का अपेक्षाकृत तीव्रता से विस्तार होना चाहिए, किन्तु, एक क्षेत्र या क्षेत्रों की उपेक्षा करके अन्य क्षेत्र या क्षेत्रों में विनियोगों को केन्द्रित करना बुद्धिमत्तापूर्ण-नीति नहीं है। रोम में हुई विश्व जन-संख्या कान्फ्रेंस (World Population Conference, 1954) के प्रतिवेदन के अनुसार विगत वर्षों में ओशनिया और लेटिन अमेरिका के कम आबादी वाले देशों ने पूँजी और साधनों को कृषि-क्षेत्र से उद्योगों की ओर प्रवृत्त करने से, न केवल कृषि विकास को ही प्रभावित किया, अपितु सामान्य अर्थ-व्यवस्था

मे भी वांछनीय दबाव उत्पन्न कर दिए। वस्तुत अर्द्ध विकसित देशो मे कृषि-क्षेत्र को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए और विनियोग कार्यक्रमो का निर्धारण करते समय अधिकांश राशि कृषि-विकास-कार्यक्रमो हेतु आवटित की जानी चाहिए। आर्थिक इतिहास के अनुसार औद्योगीकरण और पूंजी-निर्माण के किसी भी कार्यक्रम की सफलता इस बात मे निहित है कि उसके साथ शीघ्र फलदायक कृषि-विकास परियोजनाएँ भी साथ-साथ प्रारम्भ की जाएँ। डी एस नाग के मतानुसार "कृषि-क्षेत्र मे विनियोग कृषि उत्पादकता और कृषि पर अत्यन्त उल्लेखनीय प्रभाव पैदा कर सकते हैं। इसे अन्त क्षेत्रो के लिए माँग का सृजन करने और विशाल मात्रा मे पूंजी निर्माण मे योगदान देने हेतु पहलकर्त्ता के रूप मे परिवर्तित किया जा सकता है।"[1] जहाँ कही भी कृषि की उपेक्षा की गई है वहाँ या तो अर्थ व्यवस्थाएँ स्थिर हो गई है या उनकी विकास-दरें गिर गई हैं। इगलेण्ड और चीन की अपेक्षा फ्रास की अर्थ-व्यवस्था की सापेक्षिक स्थिरता का कारण, वहाँ कृषि-क्षेत्र की धीमा प्रगति है।

अत विनियोग कार्यक्रमो मे कृषि, उद्योग सेवाओ को यथोचित महत्त्व दिया जाना चाहिए। इन तीनो क्षेत्रो को प्रतिस्पर्द्धी नही वरन् पूरक समझना चाहिए। ये तीनो क्षेत्र एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और परस्पर निर्भर हैं। साथ ही, एक क्षेत्र का विकास दूसरे क्षेत्र को विकास की प्रेरणा देता है।

विनियोग आवटन सम्बन्धी कुछ नीतियाँ (Some Policies of Allocation of Investment)—समस्त देशो मे एक सी परिस्थितियाँ विद्यमान नही रहती। अत इस सम्बन्ध म कोई सामान्य सिद्धान्त नही बनाया जा सकता। अर्द्ध-विकसित देशो का आज के विकसित देशो मे अपनाई गई प्राथमिकताओ को भी उसी रूप मे नही ग्रहण कर लेना चाहिए क्योकि उनकी परिस्थितियाँ भिन्न थी। अत प्रत्येक देश को अपनी परिस्थिति अनुसार विभिन्न क्षेत्रो मे विनियोगो का आवटन करना चाहिए। इस सम्बन्ध म निम्नांकित कुछ नीतियाँ सकेत दिए हुए है जिन्हे स्थानीय परिस्थितियो के अनुसार सशोधित करके अर्द्ध-विकसित देश अपना सकते हैं—

(i) किसी एक क्षेत्र के उद्योग अथवा आर्थिक क्रिया को दूसरी से अधिक महत्त्वपूर्ण नही माना जाना चाहिए। इस प्रकार, एक क्षेत्र की उपेक्षा करके अन्य क्षेत्र म विनियोगो को केन्द्रित नही करना चाहिए। प्राथमिकताओ के निर्धारण मे सीमान्त सामाजिक उत्पादकता के सिद्धान्त' का अनुसरण किया जाना चाहिए।

(ii) विनियोग-आवटन पर विचार करते समय, स्थानीय परिस्थिति जैसे—साधनो की स्थिति, आर्थिक विकास का स्तर, तकनीकी स्तर, सस्थागत घटको एव इसी प्रकार के अन्य तत्त्वो पर भी विचार किया जाना चाहिए।

(iii) अन्य विकसित और अर्द्ध विकसित देशो के अनुभव द्वारा भी लाभ उठाना चाहिए।

1 D S Nag Problems of Under-developed Economy, p 273-274

(iv) ऐसे देशो मे जहाँ अतिरिक्त श्रम-शक्ति और सीमित-पूंजी हो, विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं मे कृषि, सिचाई, यातायात एवं अन्य जनोपयोगी सेवाओं पर पूंजी विनियोजन अधिक लाभप्रद रहता है। इन क्षेत्रों मे अल्प पूंजी से ही अधिक व्यक्तियों को रोजगार दिया जा सकता है, साथ ही, निर्माण-उद्योगों को भी विकसित किया जाना चाहिए ।

(v) विकासमान अर्थ-व्यवस्था मे यह सम्भव नही होता कि अर्थ-व्यवस्था के सभी क्षेत्र पूर्ण-संतुलित रूप से समान-दर से प्रगति करें। आर्थिक विकास की अवधि मे कही आधिक्य और कही कमी का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। किन्तु इस सम्बन्ध मे अधिकाधिक सूचनाएँ तथा आँकड़े एकत्रित करके सीमित साधनो को उन क्षेत्रो मे प्रयुक्त करना चाहिए, जहाँ उनका सर्वोत्तम उपयोग हो ।

12 विभिन्न क्षेत्रों में विनियोगों का आवंटन

(ALLOCATION OF INVESTMENT BETWEEN DIFFERENT REGIONS)

आर्थिक विकास की दृष्टि से नियोजन को अपनाने वाले, अर्द्ध-विकसित देशों के पास मुख्यत साधनों तथा पूंजी का अभाव होता है। इसके विपरीत, पूंजी विनियोग के लिए क्षेत्रो, परियोजनाओ और उद्योगो की बहुलता होती हैं। इनमे से प्रत्येक मे पूंजी का समुचित विनियोग करने पर ही आर्थिक विकास का गति दी जा सकती है। अत इन देशो की प्रमुख समस्या यह होती है कि इन विनियोगो का उचित और विवेकपूर्ण आवटन किस प्रकार हो, पिछले अध्यायो मे हम विभिन्न उत्पादन क्षेत्रो मे विनियोगो के आवटन पर विचार कर चुके है। इस अध्याय मे हम विशेषत भौगोलिक क्षेत्रो या प्रदेशो मे विनियोगो के आवटन पर विचार करेंगे।

विभिन्न क्षेत्रो मे विनियोगो का आवटन
(Allocation of Investment Between Different Regions)

विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रो मे विनियोगो के आवटन के सम्बन्ध मे कई विकल्प हो सकते है। एक विकल्प यह है कि देश के आर्थिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रो मे अधिक विनियोग किया जाए। अन्य विकल्प यह हो सकता है कि विकास की अधिक सभावना वाले क्षेत्रो मे, अधिक राशि विनियोजित की जाए। एक और विकल्प यह हो सकता है कि सब क्षेत्रो मे समान रूप से विनियोगो का आवटन किया जाए।

1. पिछड़े क्षेत्रो मे अधिक आवटन—किसी देश के स्थायित्व और समृद्धि के लिए न केवल द्रुत गति से आर्थिक विकास आवश्यक है अपितु यह भी आवश्यक है कि उस देश के सभी क्षेत्रो का तीव्रता से और सतुलित आर्थिक विकास हो। सभी क्षेत्र और सारी जनता उस विकास और समृद्धि मे भागीदार बनें। यह तभी सम्भव है, जबकि देश के आर्थिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रो मे अधिक पूंजी का विनियोजन किया जाए। अधिकांश विकासशील देश न केवल अर्द्ध-विकसित ही हैं अपितु इनके विभिन्न क्षेत्रो की आर्थिक प्रगति और समृद्धि मे भी भारी अन्तर है। विभिन्न क्षेत्रो की प्रति

व्यक्ति आय में बड़ी विषमता है। उदाहरणार्थ, भारत मे तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्त मे, अर्थात् 1965-66 मे, बिहार राज्य की प्रति-व्यक्ति आय केवल 212·91 रु. थी। इसके विपरीत, पश्चिमी बंगाल की प्रति व्यक्ति आय उक्त वर्ष मे 433·43 रु. थी, जो बिहार राज्य की प्रति व्यक्ति आय की दुगुनी से भी अधिक थी। असन्तुलित विकास के कारण ही देश के कुछ राज्य अन्य राज्यों से बहुत पिछड़े हुए है। विभिन्न क्षेत्रवासियो के जीवन-स्तर मे भारी अन्तर है। यह बात कदापि उचित नही है। किसी एक क्षेत्र की निर्धनता से अन्य समृद्ध क्षेत्र के लिए भी कभी-कभी खतरा पैदा हो सकता है। फिर आर्थिक-नियोजन का उद्देश्य देश की राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि तब तक सम्भव नही है जब तक इन क्षेत्रो की आय मे वृद्धि नही हो और यह तभी सम्भव है जबकि इन पिछड़े हुए क्षेत्रो मे पर्याप्त पूँजी विनियोजन किया जाए। देश के सभी क्षेत्रो मे प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि करने के लिए भी इन प्रदेशो मे अधिक पूँजी विनियोग और उद्योग-धन्धो की स्थापना आवश्यक है, क्योकि यहाँ विकास हेतु आवश्यक सामाजिक और आर्थिक ऊपरी सुविधाओ, रेलो, सडको, विद्युत, सिंचाई की सुविधाओ, शिक्षा तथा चिकित्सा आदि की सुविधाओ का अभाव होता है। इन क्षेत्रो मे आर्थिक विकास को गति देने के लिए तथा कृषि और उद्योगो के विकास हेतु इन आधारभूत सुविधाओ के निर्माण की अत्यन्त आवश्यकता होती है और इनमे भारी पूँजी-विनियोग की आवश्यकता होती है। इस प्रकार यदि देश के समस्त भागो मे प्रति व्यक्ति आय मे समान दर से वृद्धि करना चाहें तब भी पिछड़े क्षेत्रो मे अधिक विकास कार्यक्रम आरम्भ किए जाने चाहिए। किन्तु आर्थिक, सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टि से केवल यही आवश्यक नही है कि देश के सभी क्षेत्र समान-दर से विकसित हो अपितु यह भी अनिवार्य है कि पिछडे क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक गति से विकास करे। इसके लिए यह आवश्यक है कि देश के इन पिछडे और निर्धन क्षेत्रो मे विनियोगो का अधिकाधिक भाग आवटित किया जाए। सार्वजनिक-क्षेत्र के उद्योगो की स्थापना के समय इस सन्तुलित क्षेत्रीय-विकास की विचारधारा को अधिक ध्यान मे रखा जाए। सन्तुलित-क्षेत्रीय-विकास के उद्देश्य की प्राप्ति अल्पकाल मे नही हो सकती। यह एक दीर्घकालीन उद्देश्य है जिसकी पूर्ति करने के लिए पिछडे हुए क्षेत्रो मे सामाजिक और आर्थिक ऊपरी लागतो पर बडे पैमाने पर पूँजी-विनियोग की आवश्यकता है।

2. विकास की सम्भावना वाले क्षेत्रो मे विनियोग—वस्तुत पिछड़े क्षेत्रो मे अधिक विनियोग किए जाने का तर्क आर्थिक की अपेक्षा सामाजिक कारणो पर अधिक आधारित है। अत. विकास कार्य अथवा कार्यक्रम वहाँ सचालित किए जाने चाहिए, जहाँ उनकी सफलता की अधिक सम्भावना हो। इन अर्द्ध-विकसित देशो मे विनियोग योग्य साधनों का अत्यन्त अभाव होता है। अत इनका उपयोग उन स्थानो एव परियोजनाओ मे किया जाना उपयुक्त है, जहाँ इनकी उत्पादकता अधिक हो और देश को अधिकतम लाभ हो। प्रत्येक देश मे सब क्षेत्र द्रुत विकास के लिए

विशेष रूप से समग्र अर्थ-व्यवस्था के दृष्टिकोण से, समान रूप से उपयुक्त नही होते, क्योकि सब स्थानो और क्षेत्रो की भौगोलिक स्थितियाँ समान नही होती। कुछ क्षेत्रो मे भौगोलिक परिस्थितियाँ विकास के अधिक अनुकूल होती हैं तो कुछ क्षेत्रो मे विकास मे बाधक तत्त्व अधिक प्रबल होते हैं। इसलिए सब क्षेत्रो मे सतुलित विकास और विनियोगो के समान आवटन की नीति वाँछनीय नही हो सकती। अत्यधिक रेगिस्तानी क्षेत्रो या पर्वतीय क्षेत्रो मे अधिक पूँजी विनियोग करना उत्पादन-वृद्धि की दृष्टि से अधिक लाभप्रद नही होगा। इसके विपरीत यदि यही विनियोग विशाल कृषि-क्षेत्रो मे कृषि-विकास के व्यापक कार्यक्रमो और गहन-कृषि के लिए किए गए, खनिज सपदा मे समृद्ध क्षेत्रो मे किए गए, किसी विशाल नदी घाटी परियोजना के सचालन के लिए किए गए, तो ऐसा न केवल उस क्षेत्र के लिए अपितु समग्र अर्थ-व्यवस्था के लिए हितकर होगा। प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था मे कुछ वृद्धिमान बिन्दु (Growing points) होते हैं। उसी प्रकार कुछ क्षेत्रो मे विकास की सम्भावनाएँ अधिक होती है और विनियोगो द्वारा इन्ही सम्भावनाओ का विदोहन करना चाहिए। स्वाभाविक रूप से प्राकृतिक साधनो मे धनी क्षेत्रो मे विनियोग आवटन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

3 **सभी क्षेत्रो मे समान-रूप से विनियोग आवटन**—विनियोग आवटन के लिए देश के सभी क्षेत्रो मे समान रूप से विनियोगो का आवटन किया जाना चाहिए, यह सिद्धान्त न्यायपूर्ण है और समानता के सिद्धान्त पर आधारित है किन्तु अधिक व्यावहारिक नही है। सब क्षेत्रो की भौगोलिक परिस्थितियाँ और प्राकृतिक साधन भिन्न-भिन्न होते है। इन विभिन्न क्षेत्रो की विकास क्षमताएँ भी भिन्न-भिन्न होती है। जनसख्या और क्षेत्रफल मे अन्तर होता है। साथ ही विभिन्न क्षेत्रो की आवश्यकताएँ भी भिन्न-भिन्न होती है अत सब क्षेत्रो के लिए समान विनियोगो की नीति अव्यावहारिक है।

उचित विनियोग-नीति—उचित विनियोग-नीति मे उपरोक्त तीनो सिद्धान्तो, मुख्य रूप से प्रथम दो दृष्टिकोणो पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। वस्तुत किसी दीर्घकालीन नियोजन मे न केवल समस्त देश के विकास के प्रयत्न किए जाने चाहिएँ, अपितु पिछड़े हुए क्षेत्रो को भी अन्य क्षेत्रो के समान-स्तर पर लाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से विनियोग-आवटन मे पिछड़े हुए क्षेत्रो को कुछ रियायत दी जानी चाहिए। किन्तु फिर उन प्रदेशो और क्षेत्रो को अधिक राशि आवटित की जानी चाहिए, जिनम विकास की सम्भावनाएँ (Growth potential) अधिक हो। विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ म इस प्रकार की नीति और भी आवश्यक है, क्योकि सीमित साधन होने के कारण आर्थिक विकास के कार्यक्रमो को ऐसे केन्द्रो पर स्थापित किया जाना चाहिए, जहाँ विनियोजन के अनुकूल फल प्राप्त होते है। बाद की अवस्थाओ मे सन्तुलित प्रादेशिक विकास की दृष्टि से विनियोगो का आवटन किए जाने पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

भारतीय-नियोजन और संतुलित प्रादेशिक-विकास

भारत के विभिन्न क्षेत्रों के आर्थिक विकास के स्तर में पर्याप्त भिन्नता है। देश के विभिन्न राज्यों में नही, अपितु एक राज्यों के अन्दर भी विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक प्रगति के स्तर मे पर्याप्त अन्तर है। भारतीय नियोजन में देश के सन्तुलित विकास के प्रयत्न किए गए हैं। पिछड़े हुए क्षेत्रों को उन्नत करने के लिए विशेष कार्यक्रम अपनाए गए हैं, किन्तु विकास की दृष्टि से अधिक सूक्ष्म क्षेत्रों में विनियोगों की ओर ध्यान दिया गया है। इस प्रकार, विनियोग-नीति का आधार जहाँ समस्त अर्थ-व्यवस्था और देश की दृष्टि से आर्थिक विकास को गति देने वाले क्षेत्रो में अधिक विनियोग करना रहा है, वहाँ सन्तुलित प्रादेशिक विकास की दृष्टि से भी विनियोग कार्यक्रम सचालित किए गए हैं। देश की प्रति व्यक्ति आय और आर्थिक प्रगति की दृष्टि से क्षेत्रीय-विषमताओं को कम करने और क्षेत्रीय-सतुलन स्थापित करने की ओर भी, योजना-निर्माताओं का ध्यान गया है। यद्यपि, प्रथम पंचवर्षीय योजना में इस दिशा मे विशेष उपाय प्रयोग मे नही लाए जा सके, किन्तु द्वितीय एवं तृतीय विकास योजनाओं मे क्षेत्रीय-विषमताओं को दूर करने की आवश्यकता पर विशेष बल दिया गया और इस उद्देश्य से कुछ कार्यक्रम आरम्भ किए गए हैं।

सरकार ने अपनी लाइसेंस आदि नीतियो द्वारा सतुलित-विनियोगों को प्रभावित किया है। मोटरगाडियाँ, रसायन-उद्योग, कागज-उद्योग आदि के लिए दिए गए लाइसेंसो से पता चलता है कि इनमे पिछड़े क्षेत्रो का अनुपात बढ़ गया है। सरकारी क्षेत्र की औद्योगिक-परियोजनाओं के बारे मे जो निश्चय किए गए, उनसे स्पष्ट होता है कि वे दूर-दूर हैं एव उनसे विभिन्न प्रदेशो मे औद्योगिक विकास होगा। उड़ीसा मे रूरकेला इस्पात कारखाना और उर्वरक कारखाने का विस्तार, असम में नूनमाटी तेलशोधन कारखाना व उर्वरक कारखाना और प्राकृतिक गैस का उपयोग एवं वितरण, केरल मे फाइटो रासायनिक कारखाना, उर्वरक कारखाने की क्षमता का विस्तार तथा एक जहाजी यॉर्ड का निर्माण, आन्ध्र प्रदेश मे रासायनिक औषध कारखाना, विशाखापट्टनम् की सूखी गोदी, हिन्दुस्तान शिपयॉर्ड का विस्तार, प्राग टूल्स और आन्ध्र पेपर मिल्स का विस्तार, मध्य प्रदेश मे नोटो के कागज का कारखाना, बुनियादी ऊष्म सह-कारखाना परियोजना, नेपा पेपर मिल्स का विस्तार, भिलाई इस्पात कारखाना और बिजली के भारी सामान की परियोजना, उत्तर-प्रदेश में कीटाणुनाशक औषधियो का उत्पादन, उर्वरक कारखाना, ऊष्म-सह-कारखाना तथा यन्त्रों के कारखाने का विस्तार, राजस्थान मे ताँबे तथा जस्ते की खानो का विस्तार एवं परिद्रावकों की स्थापना, सूक्ष्म-यन्त्र-कारखाना, पजाब में मशीनी औजारों का कारखाना, मद्रास में शल्य उपकरणो, निवेली लिग्नाइट उच्च-ताप कार्बनीकरण कारखाना, टेलीप्रिन्टर कारखाना और इस्पात ढलाई कारखाना, गुजरात में तेल-शोधक कारखाना और जम्मू कश्मीर में सीमेन्ट के कारखानों आदि की स्थापना से पिछड़े क्षेत्रों को विकसित होने का अवसर मिलेगा। विकास योजना मे निजी-क्षेत्र में कारखानों की स्थापना पर किया गया पूंजी-विनियोग भी सन्तुलित औद्योगिक विकास

मे सहायक होगा। जैसे उत्तर-प्रदेश मे एल्यूमीनियम कारखाना, राजस्थान मे उर्वरक, नाइलोन, कास्टिक सोडा, पी वी सी आदि के कारखाने, असम मे नकली रबड, पोलिथिलीन तथा कार्बन ब्लेक की परियोजनाएँ और कागज की लुगदी तैयार करने का कारखाना तथा केरल मे मोटरो के रबड-टायर तैयार करने के कारखान देश मे सन्तुलित औद्योगिक विकास मे सहायक होंगे।

इसी प्रकार ग्रामीण कार्यक्रम (Rural Works Programme) के लिए क्षेत्रो का चुनाव करते समय उन क्षेत्रो को प्राथमिकता दी गई है, जहाँ जनसख्या का दबाव अधिक हो और प्राकृतिक साधन कम विकसित हो। *तृतीय योजना मे तो पिछडे* क्षेत्र में 'औद्योगिक क्षेत्र' (Industrial Development Areas) की स्थापना का भी कार्यक्रम था। चतुर्थ योजना मे भी विनियोग आवटन मे पिछडे क्षेत्रों पर विशेष ध्यान दिया गया।

किन्तु इतना सब होते हुए भी भारतीय नियोजन मे 'विकासमान बिन्दुओ' (Growing Points) की उपेक्षा नही की गई है। ऐसी परियोजनाओ को, चाहे वे पिछडे क्षेत्रो मे हो या समृद्ध क्षेत्रो मे, विनियोगो के आवटन मे प्राथमिकता दी गई है। *उल्लेखनीय है कि जनता पार्टी की सरकार सम्पूर्ण नियोजन को एक नई दिशा* दे रही है जिसमे ग्रामीण विकास पर अन्य किसी भी समय की अपेक्षा अधिक बल दिया जा रहा है और ऐसे उपाय किए जा रहे हैं कि भारत का सन्तुलित प्रादेशिक विकास अधिक यथार्थवादी रूप मे हो सके। इसी दिशा मे कदम उठाते हुए पाँचवी पचवर्षीय योजना को एक वर्ष पूर्व ही 31 मार्च, 1978 को समाप्त करके 1 अप्रेल, 1978 से नई राष्ट्रीय योजना चालू की गई है। इस पर पुस्तक के द्वितीय भाग मे यथास्थान प्रकाश डाला गया है।

निजी और सार्वजनिक-क्षेत्रों में विनियोगों का आवंटन

(ALLOCATION OF INVESTMENT BETWEEN PRIVATE AND PUBLIC SECTORS)

प्राचीन काल में यह मत व्याप्त था कि राज्य को देश की आर्थिक क्रियाओं मे हस्तक्षेप नही करना चाहिए तथा व्यक्तियों और संस्थाओं को आर्थिक क्रियाओं मे पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। सत्रहवी और अठारहवी शताब्दी मे आर्थिक जगत् में परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के निर्हस्तक्षेप के सिद्धान्त को मान्यता मिली हुई थी। न केवल आर्थिक क्षेत्र मे किन्तु अन्य क्षेत्रो मे भी सरकारी कार्यो को सीमित रखने पर ही बल दिया गया था। लोगों का विश्वास था कि वह सरकार सबसे अच्छी है जो न्यूनतम शासन करे (The Government is best which governs the least)। इसके साथ ही लोगों का यह भी विचार था कि राज्य आर्थिक क्रियाओं का संचालन सुचारु रूप से मितव्ययितापूर्वक नही कर सकता है। अर्थशास्त्र के एडम स्मिथ (Adam Smith) का विश्वास था कि "सम्राट् और व्यापारी से अधिक दो अन्य विरोधी चरित्र नही होते" (Not two characters are more inconsistant than those of a sovereign and the trader) किन्तु 19वी शताब्दी मे सरकारी-नियन्त्रण तथा नियमन का मार्ग प्रशस्त होने लगा। 20वी शताब्दी के आरम्भ मे स्वतन्त्र उपक्रम वाली अर्थ-व्यवस्था के दोष स्पष्ट रूप से प्रकट होने लगे। राज्य हस्तक्षेप-मुक्त-उपक्रम के कारण गलाघोंटू प्रतियोगिता (Cut-throat Competition), आर्थिक शोषण, व्यापार-चक्र, आर्थिक-संकट एवं अन्य सामाजिक कुरीतियों आदि का प्रादुर्भाव हुआ। स्वतन्त्र उपक्रम पर आधारित अर्थ-व्यवस्था के इन दोषों ने इसकी उपयुक्तता पर से विश्वास उठा दिया। अब यह स्वीकार किया जाने लगा कि आर्थिक क्रियाओं पर सरकारी नियमन एवं नियन्त्रण-मात्र ही पर्याप्त नही है, अपितु अब सरकार को आर्थिक क्रियाओं मे प्रत्यक्ष रूप से भी भाग लेना चाहिए। इस प्रकार अब सरकारें भी, आर्थिक क्रियाओं को संचालित करने लगी और सार्वजनिक-क्षेत्र का प्रादुर्भाव हुआ। आज लगभग सभी देशो मे किसी न किसी रूप मे सार्वजनिक-क्षेत्र पाया जाता है। इस प्रकार, कई देशो मे मिश्रित अर्थ-व्यवस्था (Mixed Economy) का जन्म हुआ है।

सार्वजनिक और निजी-क्षेत्र का अर्थ
(Meaning of Public and Private Sector)

निजी-क्षेत्र और निजी-उद्यम पर्यायवाची शब्द हैं। निजी-क्षेत्र का आशय उन समस्त उत्पादन इकाइयों से होता है जो किसी देश में निजी-व्यक्तियों के स्वामित्व, नियन्त्रण और प्रबन्ध में सरकार के सामान्य नियमों के अनुसार सचालित की जाती है। इस क्षेत्र में सभी प्रकार के निजी-उद्यम जैसे-घरेलू और विदेशी निजी-उद्योग तथा कम्पनी-क्षेत्र सम्मिलित होते है। निजी क्षेत्र में वे सभी व्यापारिक, औद्योगिक और व्यावसायिक कारोबार शामिल होते हैं, जो व्यक्तिगत पहल के परिणाम है। इसके विपरीत सार्वजनिक क्षेत्र का आशय समस्त राजकीय उपक्रमो से है। राजकीय उपक्रम का अर्थ ऐसी व्यावसायिक सस्था से होता है जिस पर राज्य का स्वामित्व हो अथवा जिसकी प्रबन्ध व्यवस्था राजकीय यन्त्र द्वारा की जाती हो या स्वामित्व और नियन्त्रण दोनों ही राज्य के अधीन हो। सार्वजनिक क्षेत्र मे मुख्यत सरकारी कम्पनियाँ, राजकीय विभागों द्वारा सचालित उद्योग और सार्वजनिक निगम आते है। निजी क्षेत्र का अधिकांश भाग छोटे-छोटे असख्य उत्पादको एव कतिपय बडे उद्योगपतियों से मिलकर बनता है, जो देश मे सर्वत्र फैले हुए होते है। निजी-क्षेत्र मे मुख्यत एकाकी व्यापारी, साझेदारी सगठन प्राइवेट और पब्लिक लिमिटेड कम्पनियाँ आदि के रूप मे उत्पादक इकाइयाँ आती है।

भारत सरकार ने निजी और सार्वजनिक-क्षेत्र को निम्न प्रकार परिभाषित किया है—

सार्वजनिक-क्षेत्र—समस्त विभागीय-उपक्रम कम्पनियाँ और परियोजनाएँ, जो पूर्ण रूप से सरकार (केन्द्रीय या राज्य) के स्वामित्व और सचालन में हो, समस्त विभागीय उपक्रम, कम्पनियाँ या परियोजनाएँ जिनमे सरकारी पूँजी का विनियोग 51 प्रतिशत या इससे अधिक हो, समस्त विधान द्वारा स्थापित सस्थाएँ और निगम सार्वजनिक क्षेत्र में माने जा सकते है।

निजी-क्षेत्र—सस्थापित व्यापार और उद्योग म सलग्न प्राइवेट पार्टियां और वे कम्पनियाँ एव उपक्रम जिसमे सरकारी (केन्द्र अथवा राज्य) विनियोग 51 प्रतिशत से कम है निजी क्षेत्र म मानी जा सकती है।

आर्थिक विकास में निजी-क्षेत्र का महत्व
(Importance of Private Sector in Economic Development)

1 आर्थिक विकास का आदि स्रोत—विश्व के आर्थिक इतिहास को देखने स ज्ञात होता है कि उसकी इतनी अधिक आर्थिक प्रगति का श्रेय निजी क्षेत्र को है। अमरिका, फ्रांस, नार्वे स्वीडन जर्मनी आदि देशो ने निजी क्षेत्र द्वारा ही इतनी अधिक प्रगति की है। अमेरिका को तो निजी-उद्यम-पद्धति पर गर्व है। अमेरिका अपनी अर्थ-व्यवस्था मे निजी उद्यम को प्रधानता देने के लिए वचनबद्ध है। वहाँ, राष्ट्रीय सकट के समय भी सार्वजनिक पहल को दूसरा स्थान दिया जाता है। वस्तुत वह इतनी तीव्र गति से आर्थिक उन्नति करने मे निजी-उद्यम के द्वारा ही सफल हुआ है।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् जर्मनी में भी अर्थ-व्यवस्था के प्रबन्ध में राजसत्ता का प्रयोग कम से कम करने की नीति अपनाई गई है। डॉ. इराहर्ड ने, जिनका दावा है कि युद्धोत्तरकाल मे जर्मनी प्रतियोगिता द्वारा समृद्ध होने में सफल हुआ है, सरकारी हस्तक्षेप के विरुद्ध आवाज उठाई है। जापान की आर्थिक उन्नति में निजी-क्षेत्र का विशेष योगदान रहा है। फ्रांस, नीदरलैण्ड, नार्वे, स्वीडन और ब्रिटेन मे भी निजी-क्षेत्र का योग कुल राष्ट्रीय आय मे 75 प्रतिशत से 80 प्रतिशत के लगभग है। आधुनिक विश्व मे भी सोवियत संघ, पूर्वी-यूरोप के देश, चीन, उत्तरी-कोरिया और वियतनाम आदि साम्यवादी देशो को छोड़कर अन्य देशों मे निजी-उपक्रम की प्रधानता है। यहाँ तक कि पूर्वी-यूरोपीय देशों मे भी, कृषि कुछ सीमा तक निजी-क्षेत्र के व्यक्तियो के हाथ मे ही है।

आधुनिक अर्द्ध-विकसित देशों मे भी निजी-उपक्रम का बहुत महत्त्व है। इससे आर्थिक विकास मे सहायता मिलती है। लेबनान और उरुग्वे मे स्वतन्त्र बाजार पद्धति के आधार पर अर्थ-व्यवस्था कार्य कर रही है। पाकिस्तान, थाइलैंण्ड, फॉरमोसा दक्षिणी-कोरिया, मलेशिया, नाइजीरिया, अर्जेन्टाइना, ब्राजील, चिली, कोलम्बिया, वेनेजुएला इत्यादि देशों में सामान्यतः मिश्रित अर्थ-व्यवस्था है, जिसमे निजी-क्षेत्र की ओर अधिक झुकाव है। इन देशो की *अर्थ-व्यवस्था मे राज्य नियन्त्रण* बहुधा केवल उन क्षेत्रो पर है, जिनमे निजी उद्यम कार्य करने के लिए या तो तैयार नहीं हैं अथवा उसमे इनकी सामर्थ्य नहीं है, किन्तु मैक्सिको और भारत मे सरकारी-क्षेत्र एक विशाल निजी-क्षेत्र के साथ कार्य कर रहा है।

2. जनतान्त्रिक विचारधारा—विश्व के जनतान्त्रिक देश *राजनीतिक स्वतन्त्रता* के समान आर्थिक स्वतन्त्रता के भी दृढ़ समर्थक है। प्रजातान्त्रिक शासन मे नागरिको को कुछ सीमाओं के साथ आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है। उन्हें निजी-सम्पत्ति का अधिकार होता है और उत्पादन साधनो को क्रय करने, अपनी सम्पत्ति का इच्छानुसार उपयोग करने, विक्रय आदि की स्वतन्त्रता होती है। ऐसी स्थिति मे, निजी-उपक्रम का होना स्वाभाविक ही है। निजी-उपक्रम की पूर्ण समाप्ति केवल साम्यवादी देशो में ही हो सकती है। अतः विश्व का जो भी देश जनतान्त्रिक मूल्यों में विश्वास करता है, वहाँ निजी-उपक्रम का आर्थिक विकास मे योगदान महत्त्वपूर्ण होता है।

3. सरकार के पास उत्पादन साधनों की सीमितता—यदि ऐसे देश नियोजित अर्थ-व्यवस्था के संचालन हेतु समस्त उत्पत्ति के साधनो को सार्वजनिक-क्षेत्र मे लेना चाहे, तो सरकार को उसके उपलब्ध साधनो का बहुत बडा भाग दीर्घकाल तक मुआवजे के रूप मे देना पड़ेगा। इससे अन्य क्षेत्रो के लिए सरकार के पास साधनो की कमी पड़ेगी और आर्थिक प्रगति अवरुद्ध हो जाएगी। इसके अतिरिक्त, जब निजी-उपक्रमियों को राष्ट्रीयकरण करके क्षतिपूर्ति दी जाती है तो उनके पास अन्य उत्पादन के साधनों को क्रय करने और अन्य उपक्रमो को प्रारम्भ करने के लिए धन पहुँच जाता है, इस प्रकार निजी-क्षेत्र का अस्तित्व बना रहता है। अर्द्ध-विकसित देशो में वस्तुतः उद्योग, उत्पादन तथा उपक्रम के इतने अधिक क्षेत्र होते हैं कि सरकार अपने

समस्त साधनो से भी इन्हे स्थापित नही कर सकती । ऐसी स्थिति मे, उचित नीति यही है कि निजी-क्षेत्र के व्यवसायों को कार्य करने दिया जाए और राज्य ऐसे नवीन व्यवसायो को प्रारम्भ एव विकसित करे, जिनकी देश को अधिक आवश्यकता हो।

4. निजी-उपक्रम की क्षमता का लाभ—निजी उपक्रम प्रणाली मे निजी सम्पत्ति (Private Property) और निजी-लाभ की छूट होती है। पूंजीपतियो को लाभ कमाने और उसका उपयोग करने की स्वतन्त्रता होती है, अत वे अधिक से अधिक लाभ कमाने का प्रयत्न करते हैं। इसलिए वे उत्पादन कार्यों को अपेक्षाकृत अधिक मितव्ययिता और कुशलतापूर्वक सचालन करते हैं। इसके विपरीत, सार्वजनिक क्षेत्रो की कार्यक्षमता इतनी अधिक नही होती, क्योकि उनका प्रबन्ध आदि ऐसे व्यक्तियो द्वारा किया जाता है, जिनका हित उनसे बहुत अधिक नही बँधा होता। भारत के कई सार्वजनिक उपक्रम भारतीय अर्थ व्यवस्था पर भार बने हुए हैं। वास्तव मे सार्वजनिक क्षेत्र की अपेक्षा निजी क्षेत्र की कार्यक्षमता अधिक श्रेष्ठ होती है। लाभ कमाने की छूट के कारण पूंजीपतियो मे उत्पादन प्रेरणा उत्पन्न होती है और वे अधिक बचत और विनियोग करने को तत्पर होते हैं। निजी-क्षेत्र का अस्तित्व सामान्य जनता मे सरकार के प्रति विश्वास जाग्रत करता है और व्यक्तिगत अर्थ-साधन राष्ट्रीय विकास कार्यक्रमो के लिए उपलब्ध होते रहते हैं।

5 विदेशी पूंजी और वित्तीय साधनो की प्राप्ति—योजनाओं के लिए निर्धारित विशाल कार्यक्रमो की वित्त-व्यवस्था, केवल आन्तरिक साधनो से ही सम्भव नहीं हो सकती। कुछ अपवादो को छोडकर प्रत्येक देश के आर्थिक विकास मे विदेशी पूंजी और वित्तीय साधनो से पर्याप्त सहायता मिली है। अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो को योजनाओ को पूर्ण करने के लिए विदेशी पूंजी की आवश्यकता है, किन्तु विदेशी पूंजीपति और उद्योगपति उन देशो मे ही पूंजी विनियोजित करने को प्रस्तुत होते हैं जहाँ राष्ट्रीयकरण का भय न हो, जहाँ निजी उपक्रम विद्यमान हो और उसको उचित सुविधाएँ तथा प्रेरणाएँ प्राप्त हो तथा जहाँ सार्वजनिक-क्षेत्र, निजी क्षेत्र के साथ बडी प्रतियोगिता न करता हो। अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाएँ भी वित्तीय सहायता देते समय इस बात पर विचार करती हैं कि उनकी सहायता द्वारा स्थापित व्यवसायो से न केवल उस देश के निवासी ही लाभान्वित हो, अपितु अन्य देशो को भी उनसे लाभ मिल सके। इस उद्देश्य पूर्ति हेतु उपक्रमो का स्वतन्त्र सचालन आवश्यक है।

6 कुछ व्यवसायो की प्रकृति निजी-उपक्रम के अनुकूल होना—कुछ व्यवसायो की प्रकृति निजी उपक्रम के अधिक अनुकूल होती है और उनके कुशल सचालन के लिए व्यक्तिगत पहल की आवश्यकता होती है। इस वर्ग मे वे व्यवसाय सम्मिलित किए जा सकते हैं, जिनमे उपभोक्ताओ की व्यक्तिगत रुचि की ओर ध्यान दिया जाना आवश्यक होता है। ललितकलाएँ इसके उदाहरण हैं। कृषि भी एक ऐसा ही व्यवसाय है, जिसे निजी उपक्रम के लिए पूर्णतया छोडा जा सकता है।

7 निजी-क्षेत्र की बुराइयों को दूर किया जाना सम्भव—सार्वजनिक-क्षेत्र के समर्थकों के अनुसार, निजी-क्षेत्र मे शोषण तत्त्व की प्रधानता होती है। इनसे श्रमिकों

तथा उपभोक्ताओं के शोषण के साथ-साथ धन और आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण होता है और सामाजिक तथा आर्थिक विषमता उत्पन्न होती है; किन्तु यह तभी सम्भव है, जब इसे निरंकुश रूप से कार्य करने का अवसर दिया जाए। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में राज्य निजी-क्षेत्र को उचित नियन्त्रण और नियमन द्वारा कल्याणकारी राष्ट्रीय नीतियों के अनुकूल चलने के लिए बाध्य कर सकता है। इस प्रकार, निजी-क्षेत्र का उपयोग आर्थिक विकास के लिए किया जा सकता है।

आर्थिक विकास में सार्वजनिक-क्षेत्र का महत्त्व
(Importance of Public Sector in Economic Development)

वस्तुतः आधुनिक विश्व में कोई भी ऐसा देश नहीं है, जहाँ पूर्णरूप में निजी-उद्यम का अस्तित्व हो या जहाँ सार्वजनिक उपक्रम का किसी न किसी रूप में अस्तित्व न हो। निजी-उपक्रम के प्रबल समर्थक संयुक्तराज्य अमेरिका में भी अणु-उत्पादन, रॉकेट-रिसर्च, सुरक्षा-उत्पादन आदि सार्वजनिक-क्षेत्र के अन्तर्गत हैं। पश्चिमी यूरोप के कई देशों में भी वायुयान-निर्माण-उद्योग और सार्वजनिक उपयोगिताएँ सरकारों के हाथों में ही हैं। आधुनिक अर्द्ध-विकसित देशों में, जिन्होंने आर्थिक नियोजन को प्रारम्भ करके नियोजित आर्थिक विकास की पद्धति को अपनाया है, स्वयं सरकार वृहत् पैमाने पर पूँजी लगाकर आर्थिक विकास प्रक्रिया को बल पहुँचाने की आवश्यकता है। इन अर्थ-व्यवस्थाओं में सार्वजनिक-क्षेत्र का विस्तार मुख्यतः निम्नलिखित कारणों से आवश्यक है—

1. नियोजित अर्थ-व्यवस्था की देन—नियोजित अर्थ-व्यवस्था का प्रारम्भ, सर्वप्रथम, सोवियत रूस में हुआ था और वहाँ धीरे-धीरे समस्त अर्थ-व्यवस्था को सार्वजनिक-क्षेत्र के अन्तर्गत ले लिया गया। अतः अनेक व्यक्तियों का विचार है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था और उत्पादन साधनों का पूर्णरूप में सरकारी स्वामित्व और सचालन समानार्थक है, अर्थात्, नियोजित अर्थ-व्यवस्था में एकमात्र सार्वजनिक-क्षेत्र ही होता है। नियोजन सम्बन्धी यह मत उचित प्रतीत नहीं होता और प्रजातन्त्रवादी नियोजन में निजी-क्षेत्र का अस्तित्व भी होता है, किन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था में, सार्वजनिक-क्षेत्र का महत्त्व बढ़ जाता है। नियोजन का अर्थ, देश के साधनों का सामाजिक हित में अधिकाधिक विवेकपूर्ण उपयोग में है और ऐसा निजी-क्षेत्र द्वारा बिलकुल सम्भव नहीं है। अतः नियोजन के इस उद्देश्य पूर्ति हेतु सार्वजनिक-क्षेत्र का विस्तार नितान्त आवश्यक है। वस्तुतः सार्वजनिक-क्षेत्रविहीन नियोजन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

2. योजना के कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए—आर्थिक नियोजन में विभिन्न क्षेत्रों के विकास हेतु विशाल कार्यक्रम निर्धारित किए जाते हैं। इन कार्यक्रमों को सम्पन्न करने और परियोजनाओं को पूर्ण करने के लिए विशाल मात्रा में पूँजी-विनियोग की आवश्यकता है। इस समस्त पूँजी का प्रबन्ध केवल निजी-क्षेत्र द्वारा नहीं हो सकता। अतः विशाल योजनाओं के विशाल कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए सरकार को आगे आना ही पड़ता है।

3. बडी मात्रा मे पूँजी वाले उद्योगों की स्थापना –आधुनिक युग मे कई उद्योग बहुत बडे पैमाने पर सचालित किए जाते है और इनमे करोडो रुपयो की पूँजी की आवश्यकता होती है। लोहा एव इस्पात, खनिज-तेल और तेल-शोधन, हवाई-जहाज, रेलें, मोटरे, विद्युत-सामग्री, मशीनें आदि के उद्योग इसी प्रकार के होते है और नियोजन की सफलता के लिए इनमे से अधिकाँश की स्थापना और विकास आवश्यक है। इसी प्रकार, योजनाओ मे विशाल नदी-घाटी परियोजनाएँ प्रारम्भ की जाती है, जिनमे करोडो रुपयो की पूँजी लगाने की आवश्यकता होती है। निजी व्यक्तियो के लिए इतने बडे उद्योगो और परियोजनाओ को हाथ मे लेना असम्भव सा है—विशेष रूप से, भारत जैसे अर्द्ध विकसित देश के लिए जहाँ आर्थिक और वित्तीय सस्थाएँ बहुत अल्प विकसित ह, इसी कारण, भारत मे लोहा और इस्पात उद्योग आदि की स्थापना के लिए सरकार को आगे आना पडा और सभी बहुद्देशीय नदी-घाटी योजनाएँ केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा प्रारम्भ की गई। बोकारो जैसी विपुल व्यय साध्य योजना के लिए निजी-क्षेत्र सक्षम नही होता। ऐसी परियोजनाओ मे सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा विनियोग अनिवार्य सा है।

4. अधिक जोखिम वाली परियोजनाओ का प्रारम्भ—कुछ व्यवसायो मे, न केवल अधिक मात्रा मे पूँजी की आवश्यकता होती है, अपितु जोखिम भी अधिक होती है। आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे तो यह बात विशेष रूप से लागू होती है। ऐसी स्थिति मे, निजी उद्यमी ऐसे क्षेत्रो और उद्योगो मे पूँजी नही लगाते क्योकि, देश मे पूँजी सीमित होती है और पूँजी विनियोजन के अन्य कई लाभदायक क्षेत्र होते है। अत सरकार के लिए ऐसी परियोजनाओ मे पूँजी विनियोजन करना अनिवार्य हो जाता है जिनमे जोखिम अधिक होती है। सडकें, विशाल नदी-घाटी योजनाएँ, भू-सरक्षण तथा वनारोपण आदि इस प्रकार की योजनाएँ है।

5. लोकोपयोगी सेवाओ का सचालन—यातायात एव सदेशवाहन के साधन, डाक-तार, विद्युत तथा गैस आदि का उत्पादन तथा वितरण, पेयजल की पूर्ति आदि कई व्यवसाय एव सेवाएँ अत्यन्त आवश्यक और एकाधिकाधिक प्रवृत्ति की होती हैं और उनको निजी क्षेत्र मे देने से उपभोक्ताओ का शोषण और निजी लाभ की दृष्टि से इनका सचालन होता है। वस्तुत ये आवश्यक सेवाएँ है और इनका सचालन व्यापक सामाजिक लाभ की दृष्टि से किया जाना चाहिए। वैसे भी निजी-एकाधिकार सरकारी एकाधिकार की अपेक्षा अच्छा नही समझा जाता। इन सेवाओ का योजना के लक्ष्यो को पूरा करने की दृष्टि से भी सरकार के नियन्त्रण मे होना आवश्यक है। इसीलिए इन व्यवसायो को सरकारी क्षेत्र मे चलाना चाहिए और इनके लिए विनियोगो की पर्याप्त राशि आवटित की जानी चाहिए।

6. राजनीतिक तथा राष्ट्रीयकरण—कुछ उद्योग ऐसे होते हैं जिन्हे राजनीतिक और राष्ट्रीयकरण से, निजी-क्षेत्र के हाथ मे नही छोडा जा सकता। सुरक्षा और सैनिक महत्त्व के उद्योग, सार्वजनिक-क्षेत्र के लिए ही सुरक्षित रखे जाने चाहिए, अन्यथा इनकी गोपनीयता को सुरक्षित रखना कठिन। होगा साथ ही अपेक्षित

कुशलता नही आ पाएगी। इसी प्रकार कुछ ऐसे उद्योग होते हैं जिनका अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण रखने की दृष्टि से सार्वजनिक-क्षेत्र में संचालन करना आवश्यक होता है।

7. तकनीकी दृष्टिकोण—अर्द्ध-विकसित देशों मे तकनीकी ज्ञान का स्तर नीचा होता है। यह ज्ञान उन्हे विदेशो से प्राप्त करना है। कभी-कभी यह तकनीकी ज्ञान विदेशियो द्वारा उनकी साझेदारी मे उद्योग स्थापित करने पर ही प्राप्त होता है किन्तु इन विदेशियों की कार्यवाही पर उचित नियन्त्रण आवश्यक है, जो निजी-क्षेत्रों की अपेक्षा उद्योगों के सार्वजनिक-क्षेत्र मे होने पर अधिक प्रभावशाली होता है। इसके अतिरिक्त, रूस आदि समाजवादी देशो मे उत्थान और औद्योगिक अनुसंधान सरकारी-क्षेत्र मे होता है। ऐसे देश बहुधा, तभी अन्य देशो को तकनीकी ज्ञान तथा सहयोग देते है, जबकि ये परियोजनाएँ सम्बन्धित देश की सरकार द्वारा चलाई जाएँ। भारतीय योजनाओं में इस्पात, विद्युत-उपकरण, खनिज तेल की खोज और तेल-शोधन सूक्ष्म एवं जटिल उपकरण, भारी मशीन निर्माण, मिग वायुयान निर्माण योजनाओं के सरकारी-क्षेत्र मे स्थापित किए जाने के कारण ही रूस, रूमानिया, चैकोस्लोवाकिया आदि देशो से तकनीकी ज्ञान और सहयोग मिल सका।

8. योजना के समाजवादी लक्ष्यों की प्राप्ति—कई आधुनिक अर्द्ध-विकसित देशों की योजनाओं का एक प्रमुख उद्देश्य समाजवाद या समाजवादी पद्धति का समाज स्थापित करना है। वे देश मे धन और उत्पादन के साधनो के केन्द्रीयकरण को कम करने और आर्थिक विषमता को कम करने को कृत-सकल्प हैं। इन उद्देश्यों की पूर्ति मे सार्वजनिक-क्षेत्र का विस्तार अत्यन्त सहायक होता है। उपक्रमों पर किसी विशेष व्यक्ति का अधिकार नही होने से उस उपक्रम का लाभ किसी एक व्यक्ति की जेब मे नही जाकर, सार्वजनिक-हित मे प्रयुक्त किया जाता है। इससे व्यक्तिगत एकाधिकार, सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण कम होता है और आर्थिक समानता की स्थापना होती है।

9. योजना के लिए आर्थिक साधनों की प्राप्ति—सार्वजनिक-क्षेत्र मे संचालित उपक्रमों का लाभ सरकार को प्राप्त होता है, जिससे सरकार की आर्थिक स्थिति सुधरती है और वह देश के आर्थिक विकास के लिए अधिक धन व्यय कर सकती है। अतः योजना के संचालन के लिए, वित्तीय-साधनों की प्राप्ति की आशा से भी, कई सरकारी उपक्रम स्थापित किए जाते हैं, सार्वजनिक उपक्रमों मे श्रमिकों को अधिक वेतन, कार्य की अच्छी दशाएँ, शिक्षा, आवास, चिकित्सा आदि की अधिक सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। इस प्रकार इनका उपयोग समाज कल्याण के लिए किया जा सकता है।

10. द्रुत आर्थिक विकास के लिए—नियोजन मे द्रुत आर्थिक विकास के लिए भी सार्वजनिक-क्षेत्र का विस्तार आवश्यक है। उदाहरणार्थ सोवियत रूस ने पूर्णरूप से सार्वजनिक-क्षेत्र द्वारा ही गत अर्द्ध-शताब्दि मे अभूतपूर्व तथा आश्चर्यजनक आर्थिक प्रगति की है। इसका यह आशय नही है कि निजी-क्षेत्र आर्थिक विकास के अनुपयुक्त है। इंगलैण्ड, अमेरिका, जापान आदि मे निजी-क्षेत्र के अन्तर्गत ही आर्थिक विकास की

उच्च दरें प्राप्त की है, किन्तु सार्वजनिक-क्षेत्र द्वारा आर्थिक विकास कम समय लेता है।

11. अच्छे प्रशासन के लिए—नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे अच्छे प्रशासन के लिए साधनो का अच्छा वितरण और उपयोग होना चाहिए। इसके लिए व्यवसायों के अच्छे प्रशासन की भी आवश्यकता है। सरकारी-क्षेत्र के व्यवसाय इस दृष्टि से अच्छे होते हैं। इनसे कर-वसूली, मूल्य-नियम, पूंजीगत और उपभोक्ता-वस्तुओं के वितरण आदि मे सुविधा होती है। सरकारी उत्पादन तथा वितरण सम्बन्धी नीतियो को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए भी सार्वजनिक-क्षेत्र का विस्तार आवश्यक है।

विनियोगो का आवंटन
(Allocation of Investment)

अत स्पष्ट है कि निजी और सार्वजनिक दोनो क्षेत्रो की अपनी अपनी उपयोगिताएँ और लाभ हैं। अत आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत दोनो की ही अच्छाइयों का लाभ उठाने के लिए दोनो ही क्षेत्रो से युक्त मिश्रित अर्थ-व्यवस्था (Mixed Economy) को अपनाना चाहिए। इससे पूर्णरूप से निजी उपक्रम वाली अर्थ-व्यवस्था और पूर्णरूप से सार्वजनिक उपक्रम वाली अर्थ व्यवस्था दोनो ही अतियो से बचा जाए। जनतान्त्रिक मूल्यो मे विश्वास रखने वाले, अर्द्ध-विकसित देशो के लिए तो यही एकमात्र उपयुक्त मार्ग है। अत इन देशो के नियोजन मे निजी और सार्वजनिक-क्षेत्रो मे आर्थिक क्रियाओ का सचालन किया जाना चाहिए और दोनो क्षेत्रों के लिए ही विनियोगो का आवटन किया जाना चाहिए। किस अनुपात मे इन दोनो क्षेत्रो को स्थान दिया जाए या पूंजी विनियोगो का उत्तरदायित्व सौंपा जाए, इसके बारे मे कोई एक सर्वमान्य सिद्धान्त नही बनाया जा सकता। विभिन्न देशो की परिस्थितियां भिन्न-भिन्न होती हैं। अत प्रत्येक देश को अपनी परिस्थितियो के अनुसार विनियोगो का निजी और सार्वजनिक क्षेत्र मे वितरण करना चाहिए, किन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे सार्वजनिक-क्षेत्र का विस्तार अपेक्षाकृत अधिक गति से होना है। इस सम्बन्ध मे भारत की द्वितीय पचवर्षीय योजना मे कहा गया है कि "सरकारी-क्षेत्र का विस्तार तीव्रता से होना है। जिन क्षेत्रो मे निजी-क्षेत्र प्रवेश करने को तत्पर न हो, राज्य को केवल ऐसे क्षेत्र मे विकास कार्य ही शुरू नही करना है बल्कि अर्थ-व्यवस्था मे पूंजी विनियोग के पैटर्न को रूप देने मे, प्रधान भूमिका अदा करनी है। विकासशील अर्थ व्यवस्था मे, जिसमे विविधता उत्तरोत्तर उत्पन्न होने की गुंजाइश है, लेकिन यह आवश्यक है कि यदि विकास-कार्य अपेक्षित गति से किया जाना है और वृहद् सामाजिक लक्ष्यो की प्राप्ति की दिशा मे प्रभावशाली ढग से योग देना है, तो सरकारी क्षेत्र मे वृद्धि समग्र रूप मे ही नही, अपितु निजी-क्षेत्र की अपेक्षा अधिक होनी चाहिए।"

तृतीय और चतुर्थ योजना मे यह तर्क और भी अधिक बल के साथ स्पष्ट रूप मे रखा गया और योजना मे कहा गया कि "समाजवादी समाज का उद्देश्य रखने वाले देश की अर्थ-व्यवस्था मे सरकारी क्षेत्र को उत्तरोत्तर प्रमुख स्थान ग्रहण

करना है।" मनुभाई शाह का भारत के सम्बन्ध में यह कथन समस्त अर्द्ध-विकसित देशों के लिए उपयुक्त है कि "हमारे गरीब देश मे पूंजीवाद निरर्थक, निष्फल तथा उपयोगिताहीन है। ऐसे देश मे जहाँ पिछड़ापन गहरा पहुँच चुका है, जहाँ गरीबी भरी पडी हो, जहाँ करोडों बच्चो को शिक्षा उपलब्ध नही हो, वहाँ समाज का सचालन अधिक हिस्से मे शासन के पास ही रहना चाहिए।" भारत में सार्वजनिक-क्षेत्र का महत्त्व निजी-क्षेत्र की अपेक्षा अधिक बतलाते हुए एक बार भूतपूर्व राष्ट्रपति जाकिर हुसैन ने लिखा था कि "यदि सार्वजनिक-क्षेत्र की अपेक्षा निजी-क्षेत्र को प्रधानता दी जाती है, तो वह हमारे समाजवादी समाज के विकास के लिए घातक होगा।"[1]

अतः नियोजित अर्थ-व्यवस्था म सार्वजनिक-क्षेत्र का निरन्तर विस्तार होना चाहिए। किसी सीमा तक सार्वजनिक-क्षेत्र को विनियोगो का उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है, यह सम्बन्धित देश की आर्थिक परिस्थितियो, आर्थिक औद्योगिक नीति, राजनीतिक विचारधारा (Political Ideology), निजी और सार्वजनिक-क्षेत्र की अब तक की कुशलता और भविष्य के लिए क्षमता आदि बातो पर निर्भर करता है, किन्तु इस सम्बन्ध मे सिद्धान्तों की अपेक्षा व्यावहारिकता पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। कृषि, लघु एव ग्रामीण उद्योग, उपभोक्ता उद्योग, आन्तरिक व्यापार आदि मे पूंजी निजी-क्षेत्र द्वारा विनियोग की स्वतन्त्रता होनी चाहिए, किन्तु जनोपयोगी सेवाएँ, नदी-घाटी योजनाएँ, वित्तीय संस्थाएँ, भारी और आधारभूत उद्योग तथा अन्य देश और अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उद्योगो मे सार्वजनिक-क्षेत्र को ही पूंजी-विनियोग करना चाहिए।

भारत में निजी और सार्वजनिक-क्षेत्रों में विनियोग
(Investment in Private & Public Sector in India)

नियोजित विकास के पूर्व

स्वतन्त्रता के पूर्व भारत के आर्थिक एव औद्योगिक विकास का इतिहास देश मे निजी-क्षेत्र के विकास का इतिहास है। उस समय भारत मे सार्वजनिक-क्षेत्र नाम-मात्र को ही था। उस समय सरकारी क्षेत्र मे, रेलें, डाक-तार, आकाशवाणी, पोर्ट-ट्रस्ट, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, ऑर्डिनेन्स फैक्ट्रीज और कतिपय ऐयर-क्राफ्ट, नमक और कुनेन आदि के कारखाने ही थे। इनके अतिरिक्त, सारा व्यवसाय निजी उद्योगपतियो द्वारा संचालित किया जाता था। स्वतन्त्रता के पश्चात्, राष्ट्रीय सरकार ने देश के औद्योगिक आर्थिक विकास की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया और इस संदर्भ मे, सार्वजनिक उपक्रमो के महत्त्व को समझा। सन् 1947 से प्रथम योजना के प्रारम्भ होने तक सिन्दरी मे रासायनिक उर्वरक कारखाना, चितरंजन मे रेल के इन्जिन बनाने का कारखाना, बंगलौर मे यन्त्रोपकरण बनाने का कारखाना एवं दामोदर घाटी विकास निगम आदि सरकारी उपक्रम प्रारम्भ किए गए।

1. *Dr. Jakir Husain* : Yojna, 18 May, 1969, p. 3.

परिणामस्वरूप, सन् 1952 में प्रकाशित प्रथम पंचवर्षीय योजना के समय केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारों का कार्यशील पूंजी सहित कुल स्थिर आदेयों का पुस्तक मूल्य (Book Value of Gross Fixed Assets) सन् 1947-48 के 875 करोड़ रु से बढ़कर 1,272 करोड़ रु. हो गया। इसके अतिरिक्त पोर्ट-ट्रस्ट नगरपालिका में एवं अन्य अर्द्ध-सार्वजनिक अभिकरणों की उत्पादक आदेय राशि 1,000 करोड़ रु थी। इसके विपरीत, निजी-क्षेत्र की कुल उत्पादक आदेय राशि कृषि, लघु-स्तरीय उद्योग, यातायात एवं आवास भवनों के अतिरिक्त, सन् 1950 में 1,474 करोड़ रु. अनुमानित की गई थी।[1]

नियोजित अर्थ-व्यवस्था में

प्रथम पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक क्रियाओं के निजी और सार्वजनिक-क्षेत्र विभाजन के मार्ग-प्रदर्शक के रूप में, सन् 1948 की औद्योगिक नीति ने कार्य किया, जिसके अनुसार, कुछ उत्पादन-क्षेत्र तो पूर्णरूप से सार्वजनिक-क्षेत्र के लिए ही निर्धारित कर दिए गए थे और कई अन्य क्षेत्रों में भी सरकारी-क्षेत्र का विस्तार की चर्चा की गई थी। अत उद्योगों में कई परियोजनाएँ सरकारी-क्षेत्र में स्थापित की गईं। साथ ही, अन्य क्षेत्रों में भी जैसे नदी-घाटी-योजनाएँ, कृषि-विकास-कार्यक्रम, यातायात एवं संचार आदि में भी सरकारी-क्षेत्र ने कार्यक्रम शुरू किए। परिणामस्वरूप योजनावधि में, जहाँ निजी-क्षेत्र ने पर्याप्त प्रगति की, वहाँ सार्वजनिक-क्षेत्र का भी पर्याप्त विस्तार हुआ। इस योजना में अर्थ-व्यवस्था में कुल पूँजी-विनियोग 3,360 करोड़ रु हुआ, जिसमें से 1,560 करोड़ रु अर्थात् 46.4% विनियोग सरकारी-क्षेत्र में हुआ और शेष 1,800 करोड़ रु अर्थात् कुल का 53.6% निजी-क्षेत्र में हुआ। योजना के पूर्व अर्थ-व्यवस्था में सार्वजनिक-क्षेत्र के भाग को देखते हुए पूँजी-विनियोग वस्तुतः महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार, इस योजना में सार्वजनिक-क्षेत्र में पूंजी-निर्माण प्रति वर्ष बढ़ता रहा। सार्वजनिक क्षेत्र में पूंजी-निर्माण सन् 1950-51 में 267 करोड़ रु से बढ़कर सन् 1955-56 में 537 करोड़ रु हो गया। इसी अवधि में निजी क्षेत्र में पूंजी-निर्माण 1,067 करोड़ रु से बढ़कर 1,367 करोड़ रु. हुआ।

प्रथम पंचवर्षीय योजना इस योजना में 792 करोड़ रु औद्योगिक विकास हेतु निर्धारित किए गए थे, जिसमें से 179 करोड़ रु सार्वजनिक-क्षेत्र में, उद्योग और खनिज विकास पर व्यय किए जाने थे। इसमें से 94 करोड़ रु का उद्योगों में विनियोग के लिए प्रावधान था। किन्तु वास्तविक विनियोग 55 करोड़ रु ही हुआ। इस अवधि में सार्वजनिक क्षेत्र में, अनेक बड़े कारखानों का निर्माण या विस्तार हुआ, जैसे—हिन्दुस्तान शिपयार्ड हिन्दुस्तान मशीन टूल्स फैक्ट्री, बंगलौर, जलयान एवं वायुयान कारखाने, हिन्दुस्तान एन्टीबायोटिक्स चितरंजन का रेल इंजिन कारखाना, बंगलौर की टेलीफोन फैक्ट्री, कलकत्ता की केबिल फैक्ट्री आदि। राज्य सरकारों द्वारा

1 *Rabha Gopal Das* : The Public Sector in India.

भी सार्वजनिक-क्षेत्र के लिए प्रयत्न किया गया, जिसमें प्रमुख हैं—मैसूर के भद्रावती वर्क्स में इस्पात का निर्माण एवं मध्य-प्रदेश में नेपा नगर मे अखबारी कागज का उत्पादन, उत्तर-प्रदेश का सूक्ष्म यंत्र कारखाना। इसके अतिरिक्त, बहुद्देशीय नदी-घाटी योजनाओं में भी पर्याप्त पूँजी-विनियोग सरकारी-क्षेत्र में किया गया।

इस योजना के पाँच वर्षों में निजी-क्षेत्र का विनियोग 1,800 करोड़ रु. हुआ, जबकि सार्वजनिक-क्षेत्र मे यह 1,560 करोड़ रु. ही था। इस प्रकार इस योजना में निजी-क्षेत्र में विनियोग कुल मिलाकर सार्वजनिक-क्षेत्र की अपेक्षा अधिक हुआ किन्तु सापेक्ष रूप से कम हुआ। इस योजना में उद्योगों के सम्बन्ध में निजी-क्षेत्र द्वारा 707 करोड़ रु. के कार्यक्रम बनाए गए थे जिनमे से 463 करोड़ रु. उद्योगों के विस्तार, आधुनिकीकरण, प्रतिस्थापन एवं चालू ह्रास पर और 150 करोड़ रु. कार्यशील पूँजी पर विनियोग किए जाने थे। योजनाकाल में निजी-क्षेत्र मे इन 463 करोड़ रु. के विरुद्ध 340 करोड़ ही व्यय हुए। इस प्रकार, निजी-क्षेत्र में भी विनियोग पिछड़ गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना—द्वितीय योजनाकाल मे दोनों क्षेत्रों का कुल विनियोग 6,800 करोड़ रु. हुआ। सार्वजनिक-क्षेत्र का विनियोजन 3,700 करोड़ रु और शेष 3,100 करोड़ रु. निजी-क्षेत्र का विनियोजन रहा। अतः स्पष्ट है कि इस योजना मे सार्वजनिक-क्षेत्र का विनियोजन, निजी-क्षेत्र के विनियोजन की अपेक्षा अधिक है, जबकि प्रथम योजना मे स्थिति ठीक इसके विपरीत थी। इसी प्रकार, इस योजना मे सार्वजनिक-क्षेत्र मे पूँजी-निर्माण भी निरन्तर बढ़ता ही गया। इस अवधि में सार्वजनिक-क्षेत्र मे पूँजी-निर्माण 537 करोड़ रु से बढ़कर 912 करोड़ रु हो गया। इसी अवधि मे निजी-क्षेत्र मे पूँजी-निर्माण 1,367 करोड़ रु. से बढ़कर 1,789 करोड़ रु. हो गया। द्वितीय योजना मे सार्वजनिक-क्षेत्र के विस्तार का एक मुख्य कारण सार्वजनिक-क्षेत्र मे कई विशाल कारखानों की स्थापना किया जाना था। सार्वजनिक-क्षेत्र मे औद्योगिक विकास के लिए, इस योजना मे 770 करोड़ रु व्यय किए गए थे, जबकि मूल अनुमान 560 करोड़ रु. का था। इस अवधि मे दुर्गापुर, रुरकेला एवं भिलाई मे विशाल इस्पात कारखानों का निर्माण हुआ, इसके अतिरिक्त खनिज-तेल की खोज के लिए इण्डिया आइल लिमिटेड तेल-शोधन के लिए इण्डियन रिफाइनरीज लिमिटेड और विशुद्ध तेल वितरण के लिए इण्डियन आयल लिमिटेड की स्थापना की गई। अन्य कई कारखाने, जैसे—भोपाल का भारी बिजली का कारखाना, हिन्दुस्तान एंटीबायोटिक्स, राष्ट्रीय कोयला विकास निगम, हैवी इन्जीनियरिंग कॉर्पोरेशन, रांची फर्टीलाइजर कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया, नेशनल इन्स्ट्रूमेन्ट्स लिमिटेड आदि की स्थापना की गई, जिनके अधीन कई औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित की गईं। उद्योगों से सम्बन्धित इन इकाइयों के अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र में कई अन्य व्यावसायिक संस्थाओं का भी निर्माण किया गया, जैसे—सन् 1958 में सेन्ट्रल वेयर हाउसिंग कॉरपोरेशन, सन् 1959 मे एक्सपोर्ट क्रेडिट एवं गारंटी कॉरपोरेशन, सन् 1956 में भारतीय जीवन बीमा निगम, सन् 1957 मे नेशनल प्रोजेक्ट्स कन्स्ट्रक्शन कॉरपोरेशन, सन् 1958 मे उद्योग पुनर्वित्त निगम एवं

सन् 1956 मे राज्य व्यापार निगम आदि । इन सब सस्थाओ मे करोडो रुपयो की पूँजी विनियोजित की गई । इसके अतिरिक्त, रेलो एव अन्य यातायात साधनो तथा नदी घाटी योजनाओ के विकास के लिए सार्वजनिक-क्षेत्र मे आयोजन किया गया । परिणामस्वरूप, द्वितीय योजना मे सार्वजनिक-क्षेत्र का पर्याप्त विकास हुआ ।

इस योजना मे कार्यक्रम, औद्योगिक नीति प्रस्ताव सन् 1956 के अनुसार, बनाए गए थे, जिसमे सार्वजनिक-क्षेत्र की पर्याप्त वृद्धि के लिए व्यवस्था की गई थी, किन्तु फिर भी इस योजना मे निजी-क्षेत्र का काफी विस्तार हुआ । इस योजना मे निजी-क्षेत्र मे कुल पूँजी विनियोग 3,100 करोड रु, सार्वजनिक क्षेत्र मे होने वाले विनियोग की राशि से 700 करोड रु कम है । निजी क्षेत्र द्वारा अर्थ-व्यवस्था मे पूँजी निर्माण भी रहा । इस योजना मे औद्योगिक विकास के लिए निजी-क्षेत्र को केवल 620 करोड रु विनियोजित करना था, किन्तु वास्तविक विनियोजन 850 करोड रु का हुआ । इस योजना मे निजी-क्षेत्र मे इस्पात, सीमेंट, बडे और मध्यम इन्जीनियरिंग उद्योगो का पर्याप्त विकास हुआ । इसके अतिरिक्त, निजी क्षेत्र मे औद्योगिक मशीनें, जैसे – सूती वस्त्र उद्योग, शक्कर उद्योग, कागज एव सीमेंट-उद्योग की मशीनें तैयार करने वाले उद्योग और उपभोक्ता उद्योगो मे पूँजी विनियोजित की गई ।

अत स्पष्ट है कि इस योजना मे सरकारी क्षेत्र और निजी क्षेत्र दोनो का विकास हुआ, किन्तु सार्वजनिक-क्षेत्र का अपेक्षाकृत अधिक विकास हुआ । योजनावधि मे इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया और जीवन-बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण तथा राजकीय व्यापार निगम आदि सस्थाओ की स्थापना को मूर्त-रूप देने का प्रयत्न किया गया । द्वितीय योजना मे सार्वजनिक विनियोगो मे वृद्धि का कारण सन् 1956 म सरकार द्वारा औद्योगिक नीति का नवीनीकरण करना और उसमे अर्थ-व्यवस्था एव उद्योगो के महत्वपूर्ण क्षेत्रो की सरकारी-क्षेत्र से सचालित किए जाने की व्यवस्था है । साथ ही, देश के तीव्र औद्योगीकरण की आकांक्षा तथा आर्थिक समानता और धन के विकेन्द्रीकरण पर आधारित समाजवादी समाज की स्थापना की राष्ट्रीय उत्कठा के कारण भी इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला ।

तृतीय पचवर्षीय योजना—इस योजना मे आर्थिक क्रियाओ के, सरकार तथा व्यक्तियो मे, विभाजन का आधार सन् 1956 की औद्योगिक नीति को ही माना गया । यद्यपि बाद मे उत्पादन वृद्धि के दृष्टिकोण से इसमे निजी-क्षेत्र के पक्ष मे थोडा समर्थन किया गया । परिणामस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र की राष्ट्रीय सरकारी नीति के कारण इस योजना मे भी सार्वजनिक-क्षेत्र के लिए विनियोग राशि अधिक आवटित की गई । निजी-क्षेत्र मे भी विनियोगो की मात्रा मे वृद्धि हुई, क्योकि, उसे भी निर्धारित क्षेत्रो मे विकसित होते रहने के लिए सरकार द्वारा प्रोत्साहन दिए जाने की नीति को जारी रखा गया । इस योजना मे कुल विनियोग 12,767 करोड रु हुआ जिसमे से 7,129 करोड रु (1,448 करोड रु चालू व्यय सहित) सार्वजनिक-क्षेत्र मे और 4,100 करोड रु निजी-क्षेत्र मे व्यय हुआ । द्वितीय योजना मे यह राशि क्रमश 3,700 और

3,100 करोड रु थी अत. स्पष्ट है कि सार्वजनिक-क्षेत्र का कुल विनियोग मे भाग 60 6% तक पहुँच गया था ।

इन योजना में, द्वितीय योजनाओं मे प्रारम्भ किए गए उद्योगों को पूरा किया जाने एवं भिलाई, दुर्गापुर, रूरकेला आदि कारखानों की स्थापित क्षमता मे वृद्धि करने के अतिरिक्त अनेक नए कारखने स्थापित किए गए जिनमे प्रमुख है—निवेली, ट्राम्बे, गोरखपुर में उर्वरक कारखाने, होशंगाबाद (मध्य-प्रदेश) में सेक्यूरिटी पेपर मिल, बंगलौर मे घडी बनाने का कारखाना, दुर्गापुर मे खनिज मशीनो का कारखाना, कोयली (गुजरात) मे तेल-शोधक कारखाना, ऋषिकेश मे औषधियाँ निर्माण करने वाला कारखाना, रानीपुर तथा रामचन्द्रपुर में भारी बिजली के सामान बनाने का कारखाना, पिंजोर (पजाब) मे मशीनी औजार बनाने का कारखाना आदि । तृतीय योजना मे ही भारत पर चीनी आक्रमण हुआ और सरकारी क्षेत्र मे प्रतिरक्षा उद्योगो पर विशाल मात्रा मे पूँजी लगाई गई । राज्य सरकारों द्वारा भी मैसूर आइरन एण्ड स्टील वर्क्स, आन्ध्र पेपर मिल्स आदि मे पूँजी विनियोग किया गया ।

सार्वजनिक-क्षेत्र मे स्थापित उपरोक्त औद्योगिक परियोजनाओ के अतिरिक्त आर्थिक क्रियाओ के संचालन हेतु अनेक अन्य सस्थाओं का निर्माण किया गया, जैसे—सन् 1962 मे शिपिंग कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया, सन् 1963 मे भारतीय खनिज एव धातु व्यापार निगम और राष्ट्रीय बीज निगम, सन् 1964 में भारतीय औद्योगिक विकास निगम आदि । परिणामस्वरूप, अर्थ-व्यवस्था मे सार्वजनिक विनियोगो मे वृद्धि हुई ।

इस योजना मे निजी क्षेत्र मे 4,190 करोड रु. का विनियोग किया गया । किन्तु समस्त विनियोजित राशि मे निजी-क्षेत्र का भाग निरंतर घटता हुआ था, क्योंकि इस बीच सार्वजनिक क्षेत्र के विनियोगो मे वृद्धि होती रही । योजनावधि मे सरकार ने औद्योगिक नीति को निजी-क्षेत्र के पक्ष मे थोड़ा सशोधित किया और उर्वरक उत्पादन मे निजी-क्षेत्र का सहयोग लिया गया ।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना—आरम्भ मे चतुर्थ योजना के लिए 24,882 करोड रु का प्रावधान रखा गया जिसमे सार्वजनिक-क्षेत्र के लिए 15,902 करोड रु और निजी-क्षेत्र के लिए 8,980 करोड रु की व्यवस्था थी । सन् 1971 मे योजना का मध्यावधि मूल्यांकन किया गया और सार्वजनिक-क्षेत्र के व्यय को बढाकर 16,201 करोड रु कर दिया गया । योजना का पुन मूल्यांकन किया गया और अब अंतिम उपलब्ध अनुमानो के अनुसार, चतुर्थ योजना मे सार्वजनिक-क्षेत्र में कुल व्यय 15,724 करोड़ रु आँका गया है ।[1] यदि सार्वजनिक उपक्रमो को ले, तो 31 मार्च, 1974 को केन्द्र सरकार के 122 उपक्रमो में कुल 6,237 करोड रु की पूँजी लगी हुई थी । पंचवर्षीय योजनाओं मे सरकारी उपक्रमो मे पूँजी-निवेश का विस्तार अग्रलिखित सारणी द्वारा स्पष्ट है[2]—

1. India 1976, p. 172,
2. Ibid. p. 262.

पचवर्षीय योजनाओं मे सरकारी उपक्रमो मे पूंजी निवेश

अवधि	उपक्रमों की सख्या	कुल पूंजी निवेश (करोड रु.)	औसत वार्षिक विकास दर (प्रतिशत मे)
प्रथम पचवर्षीय योजना के आरम्भ में	5	29	—
द्वितीय पचवर्षीय योजना के आरम्भ मे	21	81	36
तृतीय पचवर्षीय योजना के आरम्भ मे	48	953	133
तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्त मे (31 मार्च, 1966)	74	2,415	31
31 मार्च, 1970	91	4,301	10
31 मार्च, 1972	101	5,052	8
31 मार्च 1973	113	5,571	10
1974 (चतुर्थ योजना के अन्त मे)	122	6 237	12

पाँचवी पचवर्षीय योजना मे बचत और विनियोजन[1]

पाँचवी पचवर्षीय योजना के सशोधित अनुमानो (सितम्बर 1976) मे कुल 63,751 करोड रुपये के विनियोजन की व्यवस्था की गई । योजना परिव्यय और ससाधनो के अनुसार ही वर्ष 1974-75 के अनुमान उस वर्ष के मूल्यो पर आधारित है, जबकि उसके बाद के वर्षो के अनुमान 1975-76 के मूल्यो पर आधारित हैं। इस विनियोजन के लिए आन्तरिक बचत से 58,320 करोड रुपये उपलब्ध होने का अनुमान लगाया गया और 5431 करोड रुपये विदेशी सहायता से प्राप्त होना अनुमानित किया गया। इस प्रकार 91 प्रतिशत विनियोजन आन्तरिक बचत से उपलब्ध होने का अनुमान लगाया गया जबकि चौथी योजना मे इसका अनुमान 84 प्रतिशत लगाया गया था। सरकारी और निजी क्षेत्रो मे इस विनियोजन का वितरण इस प्रकार रखा गया—

सरकारी क्षेत्र	36,703 करोड रुपये (इन्वेंटरियाँ सम्मिलित हैं)
निजी क्षेत्र	27,048 करोड रुपये
जोड	63,751 करोड रुपये

सरकारी क्षेत्र मे कुल 39,303 करोड रुपये का योजना प्रावधान किया गया। इसमे 5700 करोड रुपये वर्तमान विकास व्यय को दर्शाते थे और 33,603 करोड रुपये विनियोजन के थे। यदि इस राशि मे इन्वेंटरियो मे विनियोजित की जाने वाली अनुमानित 3,000 करोड रुपये की राशि और सरकारी वित्तीय सस्थाओ द्वारा अपनी निजी स्थायी परिसम्पत्तियो मे विनियोजित की जाने वाली 100 करोड रुपये की राशि भी जोड दी जाए तो सरकारी विनियोजन की कुल राशि 36,703 करोड रुपये होती है। इस प्रकार पाँचवी योजना के कुल विनियोजन का लगभग 58 प्रतिशत सरकारी क्षेत्र मे होगा और बाकी 42 प्रतिशत निजी क्षेत्र मे होना अनुमानित किया गया।

1. योजना आयोग : पाँचवीं पचवर्षीय योजना 1974-75 (अक्तूबर 1976), पृष्ठ 39-44.

आन्तरिक बचत

उत्पादन क्षेत्रों द्वारा आन्तरिक बचत के अनुमानों का सारांश इस प्रकार है—

उत्पादन क्षेत्रों के अनुसार आन्तरिक बचत

(करोड़ रुपये)

क्षेत्र (0)	बचत (1)
1. सरकारी क्षेत्र	15,028
(क) केन्द्रीय और राज्य बचत	8,536
(ख) केन्द्रीय और राज्य गैर-विभागीय उद्यम	6,492
2. वित्तीय संस्थान	1,263
(क) भारतीय रिजर्व बैंक	841
(ख) अन्य	422
3. निजी क्षेत्र	42 029
(क) निजी निगम वित्तेतर क्षेत्र	5,373
(ख) सहकारी ऋणेत्तर संस्थान	175
(ग) आन्तरिक क्षेत्र	36,481
4 कुल आन्तरिक बचत	58,320

कुल 58,320 करोड़ रुपये की आन्तरिक बचत में से लगभग 27 प्रतिशत राशि का जो 15,994 करोड़ रुपये होती है, योगदान सरकारी क्षेत्र को करना निश्चित किया गया। सरकारी क्षेत्र में सरकारी प्रशासन, विभागीय और अविभागीय प्रतिष्ठान और सरकारी वित्तीय संस्थान आते हैं। बाकी लगभग 73 प्रतिशत निजी क्षेत्र को करना था जिसमें निगमित उद्यम, सरकारी उद्योग और घरेलू उद्योग आते हैं। आन्तरिक बचत की औसत दर 1973-74 के मूल्यों के अनुसार 1973-74 के कुल राष्ट्रीय उत्पादन के 14 4 प्रतिशत से और 1978-79 में 1975-76 के मूल्यों के अनुसार 15·9 प्रतिशत बढ़ जाने का अनुमान लगाया गया। कुल राष्ट्रीय उत्पादन के आधार पर सीमान्त बचत की दर 1973-74 की आन्तरिक बचत के अनुमान 1975-76 के मूल्यों के अनुसार परिवर्तित कर 26 प्रतिशत होने का अनुमान लगाया गया।

पाँचवीं योजना की आधारभूत कार्यनीति सरकारी क्षेत्र में उच्च दर पर बचत करने की रखी गई। तदनुसार, सरकारी क्षेत्र में जो बचत 1973-74 में कुल राष्ट्रीय उत्पादन के 2 5 प्रतिशत थी, उसके 1978-79 में बढ़कर कुल राष्ट्रीय उत्पादन के 4·6 प्रतिशत होने की सम्भावना व्यक्त की गई। तदनुसार जो अकन की दृष्टि से काफी ज्यादा लगभग 40 प्रतिशत अधिक है वह कुल राष्ट्रीय उत्पादन के अनुपात से 1973-74 के 11·9 प्रतिशत से 1978-79 में मामूली घटकर 11·3 प्रतिशत रह जाने की सम्भावना व्यक्त की गई है। क्षेत्रवार बचत के अनुमान इस प्रकार रखे गए हैं :—

मूल क्षेत्र के अनुसार आन्तरिक बचत (1973-74 और 1978-79 में)

क्षेत्र	बचत (करोड़ रुपये)		कु रा उ का प्रतिशत	
	1973-74 के मूल्यो के अनुसार (1973-74 मे)	1975-76 के मूल्यो के अनुसार (1978-79 मे)	1973-74	1978-79
(0)	(1)	(2)	(3)	(4)
1. सरकारी क्षेत्र	1,473	4,045	2·5	4 6
(1) सरकारी	722	2,704	1·4	3 1
(2) स्वशासी सरकारी उद्यम	651	1,341	1 1	1 5
2 निजी क्षेत्र	6,824	9,868	11·9	11 3
(1) निगमित	821	1,268	1·4	1·4
(2) सहकारी	65	95	0·1	0 1
(3) घरेलू	5,938	8,505	10·4	9 8
3. जोड़	8,247	13,913	14·4	15·9

सरकारी बचते

विभागीय उद्यमो सहित सरकारी प्रशासन क्षेत्र की कुल बचत पाँचवी योजना अवधि मे कुल राष्ट्रीय उत्पादन के 1 4 प्रतिशत से बढकर 3 1 प्रतिशत होने का अनुमान लगाया गया। स्पष्ट रूप से जो सरकारी प्रयोज्य आय 1973-74 मे 6241 करोड रुपये थी, उसके 1978-79 मे बढकर 13,297 करोड रुपये होने का अनुमान लगाया गया जबकि योजना अवधि मे सरकारी बचते 772 करोड रुपये से 2704 करोड रुपये होने की सम्भावना व्यक्त की गई।

स्वशासी सरकारी उद्यम

स्वशासी सरकारी उद्यमो की बचतो मे सुरक्षित लाभ और उद्यमो का सुरक्षित लाभ शामिल है। दूसरी पचवर्षीय योजना के बाद इस प्रकार के प्रतिष्ठानो मे सरकारी क्षेत्र मे विनियोजन का काफी विस्तार हुआ है। इन उद्यमो से प्राप्त होने वाला लाभ शनै-शनै बढ रहा है। परन्तु यह आवश्यक है कि ये उद्यम विनियोजन के अनुरूप आन्तरिक बचत मे योगदान करें। सभी सम्बद्ध तथ्यो पर विचार करने के बाद यह आशा व्यक्त की गई है कि इन उद्यमो की बचत जो 1973-74 मे 651 करोड रुपये अर्थात् कुल राष्ट्रीय उत्पादन का 1 1 प्रतिशत था 1978-79 मे 1,341 करोड रुपये अर्थात् कुल राष्ट्रीय उत्पादन का 1 5 प्रतिशत हो जाएगा।

निजी क्षेत्र मे विनियोजन और बचत

इस क्षेत्र की बचत से निजी क्षेत्र मे विनियोजन को 27,048 करोड रुपये के ससाधन उपलब्ध होने की सभावना व्यक्त की गई। अनुमानो का ब्यौरा इस प्रकार दिया गया —

निजी क्षेत्र में विनियोजन और बचत अनुमान

(0)	राशि (करोड़ रुपये) (1)
1—निजी बचत	42,326
(1) निगमित	5,373
(2) सहकारी (ऋणोत्तर)	175
(3) घरेलू	36,481
(4) वित्तीय संस्थान	297
2—अन्य क्षेत्रों को सकल हस्तान्तरण	15,278
(1) घरेलू क्षेत्र	15,086
(2) विदेशों से	192
3—कुल संसाधन उपलब्ध (1-2)	27,048

सरकारी क्षेत्र से निजी क्षेत्र मे विनियोजन के लिए धन हस्तान्तरित करने से इन संसाधनो मे वृद्धि की सम्भावना व्यक्त की गई। इस प्रकार के हस्तान्तरणों के लिए सरकारी क्षेत्र के योजना परिव्यय मे व्यवस्था की गई।

निजी निगमित बचतें

निजी निगमित बचतें जो सन् 1973–74 मे 821 करोड़ रुपये थी उसका सन् 1978–79 मे बढकर 1,268 करोड़ रुपये हो जाने की सम्भावना व्यक्त की गई अर्थात् 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष चक्रवृद्धि ब्याज की दर से वृद्धि। सुरक्षित लाभो और ह्रास का अनुमान इस क्षेत्र मे कुल मूल्य के जोड और कुल निर्धारित विनियोजन मे वृद्धि के आधार पर तैयार किया गया।

सुरक्षित लाभो से कुल निजी निगमित बचतो का लगभग 37 प्रतिशत प्राप्त होने की सम्भावना व्यक्त की गई और बाकी 53 प्रतिशत की पूर्ति ह्रास प्रावधान से की जाना तय किया गया। निम्नलिखित सारणी मे सन् 1973–74 से 1978–79 तक निजी निगमित बचतो की वृद्धि बताई गई —

	बचत (करोड़ रुपये)		कुल राष्ट्रीय उत्पादन का प्रतिशत	
	1973-74	1978-79	1973–74	1978–79
(0)	(1)	(2)	(3)	(4)
सुरक्षित लाभ	337	467	0 6	0 5
ह्रास	484	801	0 8	0 9
जोड	821	1268	1 4	1·4

घरेलू बचत

घरेलू क्षेत्र की बचतो मे, वित्तीय परिसम्पत्तियो की सकल वृद्धि और वास्तविक परिसम्पत्तियों के निर्माण मे लगाया गया प्रत्यक्ष विनियोजन आता है। पाँचवीं योजना अवधि मे वित्तीय परिसम्पत्तियों के रूप मे घरेलू क्षेत्र की सकल बचत 18,835 करोड़ रुपये होने का अनुमान लगाया गया, जैसा कि आगे बताया गया है :—

पाँचवीं योजना अवधि मे परिवारो की सकल वित्तीय परिसम्पत्तियो मे वृद्धि

(0)	राशि (करोड रुपये) (1)
1 जमा	12,213
(1) वाणिज्यिक बैंक	10,438
(2) सहकारी समितियाँ	1,045
(3) बैंक स्तर कम्पनियाँ	680
(4) आवाधिक वित्तीय सस्थान	30
(5) निजी निगमित वित्तीय कम्पनियाँ	20
2 मुद्रा	1,216
3 जीवन बीमा निगम—जीवन निधि	2,186
4 भविष्य निधि	5,062
(1) कर्मचारी भविष्य निधि	2,522
(2) राज्य भविष्य निधि	1,987
(3) अन्य	553
5 निजी निगमित और सहकारी अश पूँजियाँ और यूनिटो सहित ऋणपत्र	657
6 सरकारी दायित्व—छोटी बचत, ऋण जमा और विविध मदे	3,746
7 कुल वित्तीय परिसम्पत्तियो मे कुल वृद्धि	25,080
8 वित्तीय दायित्वो की बढोत्तरी मे कमी (–)	6,245
9 वित्तीय परिसम्पत्तियो मे सकल वृद्धि	18,835

कुल वित्तीय परिसम्पत्तियो और दायित्वो के विभिन्न क्षेत्रो मे दर्शायी गई अनुमानित वृद्धि अद्यतन रिपोर्टों अन्य उपलब्ध आँकडो और पूर्वकाल मे कूँती गई प्रवृत्तियो पर आधारित है।

घरेलू क्षेत्र की वास्तविक परिसम्पत्तियो मे प्रत्यक्ष रूप से कितना विनियोजन हुआ है इसके अनुमान निर्माण मशीनरी और उपस्कर तथा भण्डारो मे परिवर्तन के अन्तर्गत कुल पूँजी निर्माण का पता लगाने के लिए केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन ने जो कार्य-पद्धति तैयार की है उसके आधार पर लगाया जाता है और उसमे से विभिन्न क्षेत्रो सरकारी निगमित सहकारी, विदेशो और घरेलू वित्त-व्यवस्था से होने वाली बचतो को घटा दिया गया है। निर्माण मे विनियोजन के अनुसन्धान के क्षेत्र मे सामग्री के रूप मे निवेश और बटे हुए मूल्य और विनियोजन के मध्य सम्बन्धो को देखकर लगाए गए हैं। आँकडो की कमी और सकल्पनाओ की कमी के कारण, केवल श्रमिकों के निवेश से किया जाने वाला कच्चा निर्माण कार्य इस हिसाब मे नही लिया गया है। मशीनरी और उपस्कर मे अनुमानित विनियोजन का सम्भावित स्तर तक

भरपूर उपयोग पर आधारित है। भण्डारों के परिवर्तनों के अनुमान स्थायी विनियोजन इन्वेंटरी आवश्यकताओं के मध्य सम्बन्ध को देखकर तैयार किए गए हैं और अन्य उपलब्ध सूचकों से उनकी प्रति जाँच की गई है। पाँचवी योजना अवधि मे वास्तविक परिसम्पत्तियो मे घरेलू बचतो का अनुमान 17,646 करोड़ रुपये लगाया गया है।

विदेशों से प्राप्ति

भुगतान सन्तुलन के चालू लेखा घाटे की पूर्ति के लिए विदेशों से 5,431 करोड़ रुपये प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया, जिसका विवरण इस प्रकार है—

	राशि (करोड़ रुपये)
(0)	(1)
प्राप्तियाँ	
1. कुल विदेशी सहायता 2. वाणिज्यिक ऋण	9052
देनदारियाँ	
1. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (सकल)	(+) 115
2. ऋण सेवाओ के बारे में अदायगियाँ	(—) 2,465
3. दूसरे देशो को सहायता	(—) 494
4. अन्य	(—) 473
5. संचित धन में परिवर्तन-वृद्धि (—)	(—) 304
सकल देनदारी	5,431

उपरोक्त विवरण के सन्दर्भ में पुनः दोहराना अनुपयुक्त नही होगा कि पाँचवी पंचवर्षीय योजना निर्धारित अवधि से एक वर्ष पूर्व ही 31 मार्च, 1978 को समाप्त की जाकर 1 अप्रैल, 1978 से नई राष्ट्रीय योजना लागू कर दी गई है।

14 विदेशी-विनिमय का आवंटन

(ALLOCATION OF FOREIGN-EXCHANGE)

विदेशी विनिमय का महत्त्व और आवश्यकता
(Importance and Necessity of Foreign Exchange)

आर्थिक नियोजन के लिए विशाल साधनो की आवश्यकता होती है । अर्द्ध-विकसित देश पूंजी, यन्त्रोपकरण, तकनीकी ज्ञान आदि म अभावग्रस्त होते हैं । इसलिए एक निर्धन देश केवल अपने साधनो द्वारा ही आधुनिक रूप मे विकसित नही हो सकता । अत उन्हे नियोजन कार्यक्रमो की सफलता के लिए विभिन्न प्रकार की सामग्री विदेशो से आयात करनी पडती है । नियोजन की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे अत्यधिक मात्रा मे पूंजीगत पदार्थों, मशीनो, कलपुर्जों, उद्योग और कृषि के लिए आवश्यक उपस्कर, औद्योगिक कच्चा माल, रासायनिक सामग्री और तकनीकी विशेषज्ञो का आयात करना पडता है । विद्युत् और सिचाई की विशाल नदी घाटी योजनाओ के लिए विभिन्न प्रकार के यन्त्र, इस्पात तथा सीमेन्ट आदि का विदेशो से आयात करना पडता है । कृषि विकास के लिए उर्वरक, कीटनाशक औषधियाँ और उन्नत यन्त्र आदि का भी विदेशो से आयात करना पडता है, क्योंकि अर्द्ध-विकसित देशो मे इनका उत्पादन भी कम होता है और कृषि-व्यवसाय पिछड़ा हुआ भी होता है । ये विकासोन्मुख देश जब योजनाएँ अपनाते हैं, तो विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ म यातायात और सन्देशवाहन के साधनो का भी द्रुत विकास करना चाहते हैं, क्योंकि विकास के लिए यह प्रथम आवश्यकता होती है । इनसे सम्बन्धित सामग्री का भी विदेशो से आयात करना पडता है । विभिन्न विकास योजनाओ मे औद्योगिक विकास को भी महत्त्व दिया जाता है और इस्पात, भारी रसायन, इजीनियरिंग, मशीन निर्माण खनिज-तेल, विद्युत उपकरण आदि उद्योगो के विकास के लिए भारी मात्रा मे मशीनरी, कच्चा माल, मध्यवर्ती पदार्थ, ईंधन, रसायन और कलपुर्जों का आयात करना पडता है । इन सब परियोजनाओ के निर्माण और कुछ समय तक सचालन के लिए विदेशी तकनीकी विशेषज्ञो का भी आयात आवश्यक है । परिणामस्वरूप, देश की आय मे वृद्धि होती है । इस बढी हुई आय का बहुत बडा भाग आधुनिक जीवन

की नवीन वस्तुओं के उपभोग पर व्यय किया जाता है, जिनकी पूर्ति भी विदेशों से मँगाकर की जाती हैं। अनेक अर्द्ध-विकसित देश कृषि-प्रधान होते हुए भी कृषि व्यवसाय और उत्पादन-पद्धतियों के अवनत होने के कारण देश की आवश्यकतानुसार खाद्यान्न और उद्योगों के लिए कृषि-जनित कच्चा माल भी उत्पन्न नहीं करते। अतः उन्हें खाद्यान्नों और ऐसे कच्चे माल का भी आयात करना पड़ता है। भारतीय योजनाओं में ऐसा ही हुआ। अधिकांश अर्द्ध-विकसित देश अधिक जनसख्या से ग्रसित होते हैं और इनकी जनसख्या-वृद्धि की दर भी अधिक होती है। इस बढ़ती हुई जनसख्या के लिए अधिक मात्रा में उपभोग सामग्री और उत्पादक वस्तुओं की आवश्यकता होती है, जिसकी पूर्ति के लिए आयातों का आश्रय लेना पड़ता है। कई अर्द्ध-विकसित देशों में आयातों के बढ़ने का यह भी एक कारण है। इस प्रकार, विकासार्थ नियोजन के प्रारम्भिक वर्षों में आयातों के बढ़ने की प्रवृत्ति होती है। इन देशों को परिपोषक आयात (Maintenance Imports), विकासात्मक आयात (Developmental Imports) और अस्फीतिकारी आयात (Anti-inflationary Imports) करने पड़ते हैं। इन सब आयातों के भुगतान हेतु विदेशी-विनिमय की आवश्यकता होती है।

निर्यात और विदेशी-विनिमय का अर्जन—स्पष्ट है कि विकासोन्मुख अर्थ-व्यवस्था में वृद्धिमान दर से आयात करने पड़ते हैं। विदेशों से इन पदार्थों का आयात करने के लिए इनका भुगतान विदेशी मुद्रा में करना पड़ता है, जिसे ये देश अपनी वस्तुओं का निर्यात करके प्राप्त कर सकते हैं। अधिक मात्रा में वस्तुएँ आयात की जा सकें, इसके लिए यह आवश्यक है कि ये देश अधिकाधिक मात्रा में अपने देश से पदार्थों का निर्यात करके अधिकाधिक विदेशी मुद्रा या विदेशी विनिमय अर्जित करें। इन निर्यातों में दृश्यगत और अदृश्य (Visible and Invisible Exports) दोनों निर्यात सम्मिलित हैं। इस प्रकार, विकासोन्मुख देशों के लिए निर्यातों में वृद्धि करना आवश्यक होता है। किन्तु दुर्भाग्यवश, इन देशों में नियोजन की प्रारम्भिक अवस्थाओं में निर्यात-क्षमता बहुत अधिक नहीं होती है। एक तो स्वयं देश के विकास कार्यक्रमों के लिए वस्तुओं की आवश्यकता होती है। दूसरे, आर्थिक विकास के कारण बढ़ी हुई आय को भी जनता, उपभोग पर ही व्यय करना चाहती है, क्योंकि इन देशों में उपभोग की प्रवृत्ति अधिक होती है। अतः निर्यात-योग्य आधिक्य (Exportable Surplus) कम बच पाता है। योजनाबद्ध आर्थिक विकास में जो कुछ उत्पादन किया जाता है, वह उपभोग की बढ़ती हुई आवश्यकता में प्रयुक्त कर लिया जाता है। परिणामस्वरूप, इतनी अतिरिक्त निम्न-स्तरीय उत्पादकता और मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियों के कारण उत्पादन लागत अधिक होती है और विश्व के बाजारों में वे प्रतिस्पर्द्धा में प्रारम्भिक वर्षों में नहीं टिक पाते; फलस्वरूप, व्यापार प्रतिकूल हो जाता है क्योंकि, एक ओर आयातों में वृद्धि होती है तथा दूसरी ओर उनके भुगतान के लिए निर्यात अधिक नहीं बढ़ पाते। इस प्रकार विदेशी-विनिमय का संकट पैदा हो जाता है। किन्तु एक पूर्णतः केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था में विशेष रूप से सोवियत रूस जैसी

अर्थ व्यवस्था मे, विदेशी व्यापार के क्षेत्र मे ऐसी कठिनाइयां कम पैदा होती हैं, परन्तु भारत जैसी आंशिक रूप से नियोजित या मिश्रित अर्थ-व्यवस्था (Mixed Economy) मे विदेशी व्यापार मे इस प्रकार का भुगतान-असतुलन उत्पन्न होना सामान्य बात है।

विदेशी-विनिमय के आवटन की आवश्यकता—स्पष्ट है कि विकासाय नियोजन मे विशाल मात्रा मे विविध प्रकार की सामग्री का आयात करना पडता है किन्तु उसका भुगतान करने के लिए निर्यातो से पर्याप्त मात्रा मे आवश्यकतानुसार विदेशी विनिमय उपलब्ध नही हो पाता। यद्यपि स्वदेश मे ही उत्पादन मे वृद्धि करके आयात प्रतिस्थापन के पर्याप्त प्रयत्न किए जाते हैं और निर्यातो मे वृद्धि के लिए भी अथक् प्रयास किए जाते है, किन्तु विदेशी विनिमय की स्वल्पता ही रहती है इसीलिए, उपलब्ध विदेशी विनिमय के समुचित उपयोग की समस्या उदय होती है। यदि देश के लिए वांछनीय सभी पदार्थो के आयात के लिए पर्याप्त मात्रा म विदेशी विनिमय उपलब्ध हो जाए तो फिर इस प्रकार की समस्या ही उत्पन्न न हो, किन्तु जिस प्रकार से अन्य आर्थिक क्षेत्रो मे वैकल्पिक उपयोग वाले सीमित साधनों से अनन्त उद्देश्यो की पूर्ति हेतु चयन (Choice) की समस्या उदय होती है, उसी प्रकार, विभिन्न उद्योगो म इन विदेशी मुद्रा कोषो के सीमित साधनो के उचित और विवेकपूर्ण आवटन की समस्या उदय होती है, जिसके समुचित समाधान से नियोजन की सफलता का अश बढ जाता है।

विदेशी-विनिमय का आवंटन
(Allocation of Foreign Exchange)

अत यह आवश्यक है कि योजनाओ म आयात-कार्यक्रम, एक सुविचारित योजना क आधार पर सचालित किया जाए जिससे दुर्लभ विदेशी मुद्रा का अधिकतम उपयोग हो सके।

इस सम्बन्ध मे तनिक सशोधन के साथ वही सिद्धान्त अपनाया जा सकता है जो देश म विनियोगो के आवटन (Allocation of Investment) के लिए अपनाया जाता है। इस सदर्भ म सीमान्त-सामाजिक लाभ का सिद्धान्त' (Principle of Marginal Social Benefit) बडा सहायक हो सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न उद्योगो म विदेशी मुद्रा का आवटन इस प्रकार किया जाना चाहिए ताकि इनसे प्राप्त सीमान्त लाभ समान हो। तभी इस विदेशी मुद्रा से देश को अधिकाधिक लाभ मिल सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि विदेशी मुद्रा के आवटन मे देश के लिए सर्वाधिक आवश्यक क्षेत्रो और परियोजनाओ को प्राथमिकता दी जाए। अर्द्ध-विकसित देशो के आयात को निम्नलिखित भागो मे विभाजित किया जा सकता है—

(अ) सुरक्षा सामग्री का आयात (Import of Defence Equipment)
(ब) निर्वाह सम्बन्धी आयात (Maintenance Imports)
(स) विकासात्मक आयात (Developmental Imports)
(द) अदृश्य आयात (Invisible Imports)

(अ) सुरक्षा सम्बन्धी आयात (Imports of Defence Equipment)—सुरक्षा, किसी भी देश की सर्वोपरि आवश्यकता होती है। कोई भी देश इस कार्य में उदासीनता नही बरत सकता। अत. नियोजन मे सुरक्षा सामग्री के आयातों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। कई देशों के नियोजन का तो मुख्य उद्देश्य ही देश की रक्षा या आक्रमण (Defence or Offence) के लिए सुरक्षा को दृढ़ करना होना है। वैसे भी इनमे से अधिकाँश अर्द्ध-विकसित देश अभी गत कुछ वर्षों से ही स्वतन्त्र हुए हैं और सुरक्षा की दृष्टि से दुर्बल हैं। इन देशों के पड़ोसियो में सीमा सम्बन्धी झगड़े भी रहते हैं, जिनके कारण, ये देश युद्ध की आशंका से ग्रस्त रहते हैं और सुरक्षा के लिए आतुर रहते हैं। यहाँ तकनीकी ज्ञान का भी इतना अधिक विकास नही हुआ है, जिससे सारी सुरक्षात्मक सामग्री का उत्पादन वे स्वयं कर सके। अत. इन्हे विदेशो से भारी मात्रा मे अस्त्र-शस्त्र, गोला-बारूद तथा सुरक्षा उद्योगो के लिए आवश्यक सामग्री का आयात करना आवश्यक होता है जिनके अभाव मे इन देशो की सुरक्षा ही खतरे मे पड़ सकती है। अतः इस कार्य के लिए विदेशी-विनिमय के आवटन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। देश का अस्तित्व देश की सुरक्षा पर निर्भर करता है जो विकासवाद की एक वस्तु है। सुरक्षा की दृष्टि से आवश्यक सामग्री के आयात मे उपेक्षा करने के दुष्परिणाम हो सकते है। अतः सुरक्षा की दृष्टि से आयात की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए पूर्णरूप से विदेशी-विनिमय उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

(ब) निर्वाह-सम्बन्धी आयात (Maintenance Imports)—निर्वाह सम्बन्धी आयात या परिपोषक आयातो मे आयात की जाने वाली उन वस्तुओं को सम्मिलित करते हैं जो अर्थ-व्यवस्था के वर्तमान स्तर पर सुचारु रूप से सचालन के लिए आवश्यक है। भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देशो के सदर्भ मे इसमे निम्नलिखित वर्ग सम्मिलित किए जा सकते हैं—

(i) खाद्यान्न—अधिकाँश अर्द्ध-विकसित देश कृषि-प्रधान हैं, किन्तु कृषि की पिछडी हुई दशा और जनसख्या की अधिकता होने के कारण, वहाँ खाद्यान्नो का अभाव होता है और इसकी पूर्ति विदेशो से खाद्यान्नो का आयात करके की जाती है। खाद्यान्न किसी भी देश की बुनियादी आवश्यकता है और इसकी पूर्ति चाहे किसी भी स्रोत से हो, आवश्यक रूप से की जानी चाहिए। इन देशो का जीवन-स्तर पहले से ही अत्यन्त न्यूनतम स्तर पर है और उसमे कटौती किसी भी प्रकार नही की जा सकती। अतः यद्यपि इन देशो मे खाद्यान्नो के उत्पादन मे तुरन्त वृद्धि के प्रयत्न किए जा सकते है, जिसकी यहाँ बहुत बड़ी गुंजायश है, किन्तु यदि इसमे तुरन्त इतनी वृद्धि नही हो पाए, जिससे देश की खाद्यान्नो की आवश्यकताएँ पूरी नही हो, तो निश्चित रूप से खाद्यान्नो का भी आवश्यक मात्रा मे आयात किया जाना चाहिए और उसके लिए पर्याप्त मात्रा मे विदेशी-विनिमय आवंटित किया जाना चाहिए। भारत का उदाहरण इस सम्बन्ध मे स्पष्ट है।

(ii) औद्योगिक कच्चा माल—इस वर्ग मे कच्चा माल, मुख्यतः कृषि-जन्य

कच्चा माल, सम्मिलित किया जा सकता है। अनेक अर्द्ध विकसित देशो मे, स्वय के उद्योगो के लिए, कच्चा माल उत्पन्न नही होता है अथवा कम मात्रा मे होता है, जिसकी पूर्ति विदेशो से इन पदार्थों का आयात करके की जाती है। उदाहरणार्थ, भारत कृषि-सम्बन्धी कच्चे माल मे खालें, खोपरा, कच्ची रबड, कच्ची कपास, कच्चा जूट, अनिर्मित तम्बाकू आदि का आयात करता है। इन सभी वस्तुओ के आयात को देश मे ही उत्पादन मे वृद्धि करके कम किया जाना चाहिए। साथ ही, इस बात के भी प्रयास किए जाने चाहिए कि इन आयातित वस्तुओ के स्थान पर उपयुक्त देशी वस्तुओ का उत्पादन हो। अत इन वस्तुओ के लिए विदेशी विनिमय कम उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इस वर्ग की अधिकांश मे उन्ही वस्तुओ के लिए विदेशी मुद्रा आवटित की जानी चाहिए, जो निर्यातित वस्तुओ के निर्माण मे सहायता दे तथा जिनके स्थान पर देश मे उत्पादित वस्तुओ का उपयोग नही हो सकता हो।

(iii) खनिज तेल—अधिकांश अर्द्ध विकसित देशो मे खनिज तेल का अभाव है। उदाहरणार्थ, भारत म खनिज तेल की आवश्यकता का कुछ भाग ही उत्पन्न होता है। शेष तेल विदेशो से आयात करना पडता है। वैसे भी खनिज तेल की आवश्यकता उद्योग धन्धो और यातायात आदि की वृद्धि के साथ बढती जाती है। सुरक्षा के लिए भी इसका महत्त्व होता है। अत इस मद के आयात मे कटौती करना तब तक सभव नही है, जब तक देश मे नए खनिज भण्डारो का पता लगाकर उनसे अधिक तेल निकाला जाए या वर्तमान तेल भण्डारो से ही अधिक तेल निकाला जाए और उसके शोधन की उचित व्यवस्था की जा सके, किन्तु तेल की खोज करने और तेल-शोधन सस्थाएँ स्थापित करने के लिए भी विदेशो से मशीनें, अन्य सामग्री एव तकनीशियन आयात करने पडते हैं, जिनके लिए विदेशी मुद्रा चाहिए।

(iv) रासायनिक पदार्थ—प्रत्येक देश को रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता होती है, किन्तु अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशो मे रासायनिक उद्योग अत्यन्त अविकसित होते हैं। कृषि-उद्योग आदि की प्रगति हेतु रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता होती है। सुरक्षा उद्योगो के लिए भी रासायनिक उद्योग आवश्यक हैं। इसलिए इस मद मे कटौती करना अनुचित है। अत इस मद के लिए भी आवश्यक विदेशी-विनिमय आवटित किया जाना चाहिए।

(v) निर्मित वस्तुएँ—अर्थ-व्यवस्था म चालू उत्पादन को बनाए रखने के लिए भी कुछ निर्मित पदार्थ विदेशो से आयात करने पडते हैं उदाहरणार्थ, भारत मे इस वर्ग के प्रतिस्थापन और मरम्मत के लिए मशीनें, कागज, अखबारी कागज, लोहा एव इस्पात, अलौह धातु आदि आते हैं। इन वस्तुओ का उत्पादन देश मे नही होता है तथा ये वस्तुएँ देश के वर्तमान उत्पादन के लिए आवश्यक हैं। अत इनके लिए भी पर्याप्त विदेशी विनिमय का आवटन किया जाना चाहिए।

(स) विकास-सम्बन्धी आयात (Developmental Imports)—आर्थिक नियोजन और विकास की दृष्टि से इस प्रकार के आयात सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। योजनाओ मे कई प्रकार की परियोजनाएँ और विशाल कार्यक्रम प्रारम्भ किए जाने

है। प्रत्येक देश की योजनाओं मे विशाल नदी घाटी योजनाएँ, इस्पात कारखाने, भारी विद्युत उपकरण, मशीन निर्माण, इन्जीनियरिंग, रासायनिक-उर्वरक, कृषि-उपकरण तथा विविध प्रकार के कच्चे, मध्यवर्ती और निर्मित माल की आवश्यकता होती है। विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं मे उक्त पदार्थों का भारी मात्रा मे आयात करना पड़ता है। इस स्थिति मे इन परियोजनाओं के प्रारम्भ और क्रियान्वयन के लिए विदेशो से विशेषज्ञो का भी आयात करना पड़ता है। अत. इसके लिए पर्याप्त विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होती है। अन्य बातें समान रहने पर विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं मे जितने अधिक इन पदार्थों का आयात सम्भव होगा और परियोजनाएँ पूरी की जाएँगी, उतना ही अधिक तीव्र गति से आर्थिक विकास सम्भव होगा। अनेक बार इन पदार्थों का आयात सम्भव नही हो पाने के कारण विकास मे बाधाएँ उपस्थित होती है। भारत की द्वितीय पचवर्षीय योजना, विदेशो से सामग्री आयात करने के लिए विदेशी-विनिमय की कठिनाई के कारण ही भवर मे पड़ गई थी। अत. विकास सम्बन्धी आयात भी आवश्यक है और इसके लिए पर्याप्त मात्रा मे विदेशी मुद्रा आवटित की जानी चाहिए।

(द) अन्य कार्य या अदृश्य आयात (Other Works or Invisible Imports)—प्रत्यक्ष रूप से पदार्थों के आयात के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिए भी विदेशी-विनिमय की आवश्यकता होती है। विदेशो से लिए हुए ऋण और उसकी अदायगी के लिए भी विदेशी मुद्रा चाहिए। इस प्रकार का भुगतान प्रत्येक राष्ट्र का नैतिक कर्त्तव्य है। साथ ही, इन अर्द्ध-विकसित देशो को भविष्य मे भी विदेशो से ऋण लेना आवश्यक होता है। इसके लिए, इनकी साख और प्रतिष्ठा तभी बनी रह सकती है, जबकि ये पूर्व ऋणो का भुगतान कर दे। अत अर्द्ध-विकसित देशो को विदेशो से लिए हुए ऋण और ऋण सेवाओं (Debt and Debt Services) के लिए भी विदेशी मुद्रा का प्रावधान रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त, अर्द्ध-विकसित देशो के अनेक व्यक्ति विकसित देशो मे शिक्षा, प्रशिक्षण और अनुभव द्वारा विशेषज्ञता प्राप्त करने जाते है, जो वहाँ से लौटकर देश के आर्थिक विकास मे योगदान देते है। चूंकि देश मे विविध क्षेत्रो मे तकनीशियनों और विशेषज्ञो की अत्यन्त दुर्लभता होती है अतः इन व्यक्तियो की, विदेशो मे शिक्षा-दीक्षा के लिए भी पर्याप्त विदेशी मुद्रा का आवटन किया जाना चाहिए, किन्तु इस बात की सावधानी बरती जानी चाहिए कि ये व्यक्ति उन विकसित देशो से विशेषज्ञ बनकर स्वदेश आएँ और देश हित मे ही कार्य करें। कई बार यह होता है कि इनका स्वदेश के प्रति आकर्षण समाप्त हो जाता है और ये वही बस जाते हैं। इससे देश की दुर्लभ मुद्रा द्वारा विकसित बुद्धि का बहाव (Intellectual drain) होता है, इसे रोका जाना चाहिए। विभिन्न देशों मे आर्थिक सहयोग की सम्भावनाओं मे वृद्धि तथा उद्योग, व्यापार, व्यवसाय आदि के लिए कई प्रतिनिधि-मण्डल और अध्ययन दल विदेशो को भेजे जाते हैं। उदाहरणार्थ व्यापार प्रतिनिधि-मण्डल, उद्योग-प्रतिनिधि-मण्डल, निर्यात-सम्भावना अध्ययन-दल आदि। इनके लिए भी विदेशी मुद्रा आवटित की जानी चाहिए। किन्तु इसके गठन और इनकी

संख्या सावधानीपूर्वक निर्धारित की जानी चाहिए। इन दलों में न्यूनतम आवश्यक व्यक्तियों को ही सम्मिलित किया जाना चाहिए। साथ ही, संख्या भी कम होनी चाहिए तथा निश्चित लाभ होने की स्थितियों में ही ऐसा किया जाना चाहिए। इसी प्रकार, कई सांस्कृतिक-प्रतिनिधि-मण्डल, सद्भावना-मण्डल, खेलकूद-प्रतिनिधि-मण्डल आदि विदेशों में भेजे जाते हैं। यद्यपि, पारस्परिक सद्भावना और सूझ-बूझ पैदा करने के लिए इनका भी अपना महत्त्व है, किन्तु इन कार्यों के लिए विदेशी-विनिमय अत्यन्त सीमित मात्रा में ही उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

आवंटन में प्राथमिकता—अतः स्पष्ट है कि दुर्लभ विदेशी-विनिमय आवंटन में सर्वोच्च प्राथमिकता सुरक्षा और खाद्यान्नों को दी जानी चाहिए क्योंकि इनके साथ देश की जनता के जीवन मरण का प्रश्न सम्बन्धित होता है। निर्वाह और विकास-सम्बन्धी कार्यों हेतु विदेशी मुद्रा, आवश्यक अपरिहार्य आयातों के लिए शक्ति योजनाएँ, उर्वरक, मशीनें आदि को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। ऐसी परियोजनाओं, जिनके कार्य में काफी प्रगति हो चुकी हो या पूर्णता के नजदीक हों, सर्वप्रथम, विदेशी मुद्रा उपलब्ध कराई जानी चाहिए। विदेशी विनिमय के इस आवंटन में आवश्यकतानुसार केन्द्रित कार्यक्रमों (Core Projects) को सर्वोच्च महत्त्व दिया जाना चाहिए। विशेषतः उन वस्तुओं के आयात के लिए विदेशी-विनिमय प्रदान किया जाना चाहिए जो ऐसी वस्तुओं के उत्पादन में सहायक हों, जिनका या तो निर्यात किया जाए या जो आयातित वस्तुओं के स्थान पर काम आकर आयातों में कमी करें। इस विदेशी विनिमय के आवंटन और आयातों की स्वीकृति का केन्द्रित उद्देश्य निर्यातों में वृद्धि तथा आयात-प्रतिस्थापन होना चाहिए। विदेशी मुद्रा का उपयोग अधिकतर उपभोक्ता-उद्योगों के लिए नहीं अपितु पूँजीगत-पदार्थों के आयात हेतु किया जाना चाहिए। नियोजन में वैसी ही परियोजनाएँ सम्मिलित की जानी चाहिए जो आवश्यक हों जिनमें विदेशी विनिमय की न्यूनतम आवश्यकता हो और विदेशी-विनिमय उत्पादन अनुपात कम हो। ऐसी परियोजनाओं के लिए ही विदेशी-विनिमय का आवंटन किया जाना चाहिए, जो झूँठी प्रतिष्ठा वाली नहीं, अपितु देश के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक हों।

भारतीय नियोजन में विदेशी-विनिमय का आवंटन
(Allocation of Foreign Exchange in Indian Planning)

मलक घोष के अनुसार, प्रथम पंचवर्षीय योजना में भारत की विदेशी व्यापार नीति के प्रमुख तत्त्व, निर्यातों को उच्च-स्तर पर बनाए रखना और उन्हीं वस्तुओं का आयात करना था जो राष्ट्र हित में आवश्यक हों या जो विकास और नियोजन की आवश्यकताओं को पूरी करें तथा देश के पास उपलब्ध विदेशी विनिमय साधनों तक ही भुगतान के असन्तुलन को रखा जाए। अतः इस योजना के प्रारम्भिक वर्ष में आयात से सम्बन्धित प्रारम्भ में नियन्त्रण नीति अपनाई गई, किन्तु बाद में मशीनें एवं अन्य आवश्यक उपभोग-सामग्री के आयात में फिर उदारता बरती गई। वर्ष 1953-54 में खाद्यान्नों के आयात में कमी हुई, कच्चे माल की आवश्यकताओं की

पूर्ति भी स्वदेशी साधनों से करने की चेष्टा की गई। अतः कपास और कच्चे जूट का आयात भी कम किया गया। किन्तु योजना के लिए आवश्यक मशीनों के लिए विदेशी-विनिमय की स्वीकृति देने मे अनुदारता नही दिखाई गई। वर्ष 1954-55 मे औद्योगिक विकास मे सहायता करने हेतु अधिक उदार-आयात-नीति अपनाई गई। कच्चे माल, मशीनें तथा उपभोक्ता वस्तुओ के आयात के लिए भी विदेशी मुद्रा उपलब्ध कराई गई, किन्तु ऐसी वस्तुएँ, जो देश मे उत्पादित की जाती थीं, उनके आयात मे कटौती की गई। 1955-56 में योजनाओं के लिए आवश्यक मशीनों और लोहे एवं इस्पात के लिए विदेशी-विनिमय अधिक आवंटित किया गया। प्रथम योजनावधि मे वार्षिक औसत आयात 724 करोड रु० रहा, जिसमे से उपभोग की औसत 235 करोड रु० तथा कच्चे माल एवं अर्द्ध-निर्मित वस्तुओ का औसत 364 करोड़ रु० था।[1] पूंजीगत वस्तुओ का औसत 125 करोड रु० प्रति वर्ष रहा।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे भारी एव आधारभूत औद्योगिक विकास पर काफी बल दिया गया। अतः पूंजीगत-वस्तुओ के आयात मे वृद्धि हुई। प्रथम योजना के औसत वार्षिक आयात से द्वितीय योजना मे वार्षिक आयात 50% अधिक हो गया। इस योजना मे पूंजीगत वस्तुओ, कच्चे माल, मध्यवर्ती वस्तुओ एव कल-पुर्जों के आयात के लिए बहुत अधिक विदेशी मुद्रा व्यय की गई। इस योजना मे पूंजी वस्तुओ के आयात के लिए प्रतिवर्ष 323 करोड़ रु की विदेशी मुद्रा व्यय की गई। प्रथम योजनावधि मे आयातो के लिए व्यय किए गए कुल विदेशी-विनिमय में पूंजीगत-वस्तुओ पर व्यय का भाग 17% था, जो दूसरी योजनावधि मे बढकर 30 0% हो गया। प्रथम एव द्वितीय योजना मे व्यापारिक क्षेत्रो मे विभिन्न प्रकार के पदार्थों पर निम्न प्रकार विदेशी-विनिमय व्यय हुआ—

आयातित वस्तुओ की श्रेणी	प्रथम पंचवर्षीय योजना वार्षिक औसत	द्वितीय पंचवर्षीय योजना वार्षिक औसत
1. उपभोग वस्तुएँ	235 करोड़ रु	247 करोड रु.
2. कच्चा एव अर्द्ध-निर्मित माल	364 करोड़ रु.	502 करोड रु
3. पूंजीगत-वस्तुएँ	125 करोड़ रु.	323 करोड़ रु.
योग	724 करोड़ रु.	1,072 करोड रु

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि द्वितीय योजना मे विदेशी-विनिमय की अधिक राशि, पूंजीगत-वस्तुओ को आवंटित की गई। द्वितीय योजना मे प्रथम योजना की अपेक्षा उपभोग वस्तुओ के आयात मे केवल 12 करोड रु. की वृद्धि हुई जबकि पूंजीगत-वस्तुओ के आयात मे 198 करोड़ रु. की वृद्धि हुई। द्वितीय योजना के दौरान विदेशी-विनिमय की बडी कठिनाइयाँ महसूस हुईं, अतः जुलाई, 1957 से आयात मे कटौती की बड़ी कठोर नीति को अपनाया गया, जिसके अनुसार

1. Third Five Year Plan, p. 133.

विदेशी-विनिमय अत्यन्त आवश्यक कार्यों के लिए ही उपलब्ध कराया गया। साथ ही, अर्थ व्यवस्था मे उत्पादन और रोजगार के स्तर को बनाए रखने के लिए आवश्यक आयातो के लिए भी स्वीकृति दी गई।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे भी विशाल विनियोजन कार्यक्रम जारी रहे एव भारी और पूंजीगत उद्योगो को प्राथमिकता दी गई। इस योजना मे आयातो हेतु कुल 5,750 करोड रु अनुमान लगाया गया। इसमे से 1,900 करोड रु तृतीय योजना की परियोजनाओ के लिए आवश्यक मशीने एव साज सज्जा के लिए आवटित किए गए। शेष 3,650 करोड रु आयात प्रतिस्थापन की सम्भावनाओ को ध्यान मे रखने के पश्चात् भी आवश्यक कच्चे माल, मध्यवर्ती उत्पादन, प्रतिस्थापन के लिए पूंजीगत वस्तुएँ एव आवश्यक उपभोग वस्तुओ के आयात के लिए आवटित किए गए। इस प्रकार इस योजना मे 1,900 करोड रु की विदेशी मुद्रा, विकासात्मक आयातो के लिए और 3,650 करोड रु परिपोषक आयातो के लिए आवटित की गई। विदेशी विनिमय के आवटन मे निर्यात उद्योगो के लिए आवश्यक आयातो को प्राथमिकता दी गई, किन्तु आयातो की वृद्धि के परिणामस्वरूप होने वाले विदेशी सकट से मुक्ति के लिए आयातो के लिए सीमित मात्रा मे विदेशी विनिमय उपलब्ध कराने की नीति जारी रही। आयात-निर्यात नीति समिति के अनुसार आयात नियन्त्रण की कार्यवाही औद्योगिक विकास, विदेशी-विनिमय के सरक्षण और निर्यात सवर्द्धन के साधन स्वरूप अपनाई गई।

चतुर्थ योजना इस प्रकार निर्मित की गई, ताकि द्रुत आर्थिक विकास हो। इसलिए, यह योजना गत योजनाओं से भी विशाल बनाई गई। परिणामस्वरूप, अर्थव्यवस्था के वर्तमान स्तर को बनाए रखने और इस योजना मे सम्मिलित की गई नई परियोजनाओ के क्रियान्वयन के लिए मशीने और उपकरणो की भारी मात्रा मे आयात की आवश्यकता अनुभव की गई। विदेशी ऋण सेवाओ के भुगतान के लिए भी इस योजना मे अधिक व्यवस्था की गई।

मूल्य-नीति और वस्तु-नियन्त्रण

(PRICE-POLICY AND COMMODITY-CONTROL)

नियोजित अर्थ-व्यवस्था के विपक्ष मे एक प्रमुख तर्क यह है कि इसमे स्वतन्त्र और प्रतिस्पर्द्धापूर्ण मूल्य-प्रक्रिया के अभाव मे साधनो का विवेकपूर्ण आवटन नही होता । वस्तुत पूर्णरूप से नियोजित समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के समान मूल्य-प्रक्रिया नही होती । वहाँ मूल्य स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था मे मूल्यों के प्रमुख कार्य-साधनो के आवंटन तथा माँग और पूर्ति के सन्तुलन का कार्य नहीं करते । स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था मे मूल्य-पदार्थो और सेवाओ की माँग और पूर्ति मे साम्य स्थापित करने का प्रमुख कार्य करते है । इस प्रकार, सन्तुलन न केवल पदार्थो और सेवाओ मे, बल्कि उत्पादन के साधनो के बारे मे भी स्थापित किया जाता है । उदाहरणार्थ, यदि किसी मूल्य पर किसी वस्तु की माँग, उसकी पूर्ति से बढ जाती है, तो मूल्यो मे वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप एक ओर तो मांग कम होने की ओर उन्मुख होती है और दूसरी ओर उस वस्तु के उत्पादन की अधिक प्रेरणा मिलने से उसकी पूर्ति बढती है । इस प्रकार, मांग और पूर्ति मे साम्य स्थापित हो जाता है । यह साम्य उस मूल्य पर हो सकता है, जो मूल्य, मूल्य-स्तर से कुछ ऊँचा हो, किन्तु यह निश्चित रूप से उस स्तर से नीचा होता है, जो नए सन्तुलन के पूर्व था । इस प्रकार, एक बार की मूल्य-वृद्धि आगे मूल्य-वृद्धि को रोकती है और ऐसा करने पर ही मूल्य अपने आर्थिक कार्य को सम्पन्न करते हैं । इस प्रकार स्वतन्त्र उपक्रम वाली अर्थ-व्यवस्था मे मूल्य एक महत्वपूर्ण कार्य करते है । नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे इस प्रकार की मूल्य-तांत्रिकता नहीं होती, न ही वहाँ मूल्य साधनों के आवटन और माँग तथा पूर्ति मे सन्तुलन का कार्य करते हैं । वहाँ भी मूल्य-तांत्रिकता का अस्तित्व तो हो सकता है, किन्तु वह पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के समान 'स्वतन्त्र' और 'प्रतिस्पर्द्धापूर्ण' नही होती । वहाँ मूल्य-निर्धारण, बाजार की शक्तियो के द्वारा नही होता, क्योकि समाजवादी नियोजित व्यवस्था मे स्वतन्त्र बाजार भी नही होते । अत वहाँ 'प्रदत्त मूल्य' (Assigned Prices) होते हैं जिनका निर्धारण केन्द्रीय नियोजन अधिकारी द्वारा किया जाता है । पदार्थों के मूल्य ही नही, अपितु उत्पादन साधनों के मूल्य भी केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा निर्धारित किए जाते है, क्योंकि सरकार ही वहाँ एकमात्र

एकाधिकारी होती है और उत्पादन साधनो का स्वामित्व और नियन्त्रण उसी मे ही निहित रहता है। इस प्रकार पूर्ण नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे अधिक से अधिक जानबूझकर बनाई हुई मूल्य प्रणाली होती है।

मूल्य-नीति का महत्त्व
(Importance of Price-Policy)

विकासोन्मुख राष्ट्रो को नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे उचित मूल्य-नीति अत्यन्त आवश्यक होती है। मिश्रित अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत तो इसका और भी अधिक महत्त्व होता है। इस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था मे सार्वजनिक क्षेत्र के साथ-साथ स्वतन्त्र बाजार सहित विशाल निजी क्षेत्र भी क्रियाशील रहता है। व्यवस्थाओ मे सरकारी नीति पूँजी-विनियोगकर्त्ताओ और उपभोक्ताओ के व्यवहार पर मूल्यो की घटा-बढी निर्भर करती है। निजी उद्यमियो या पूँजी-विनियोजको का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ कमाना होता है। उनकी रूचि सदैव मूल्यों में वृद्धि करने मे रहती है। ये वस्तुओ के कृत्रिम अभावों का सृजन करके भी ऐसा करते है। दूसरी ओर उपभोक्ताओ का प्रयत्न अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करने का रहता है। उक्त दोनो वर्ग इस समस्या से सम्बन्धित आर्थिक विकास के विभिन्न पहलुओ पर पर्याप्त ध्यान नही देते। ऐसी स्थिति मे योजना अधिकारी का बडी तत्परता से मूल्यो पर नियन्त्रण करके और तत्सम्बन्धी उचित नीति को अपनाना आवश्यक होता है। मूल्यो की अधिक वृद्धि से न केवल सामान्य जनता को ही कठिनाई का सामना करना पडता है अपितु योजना-लक्ष्य, आय-व्यय सम्बन्धी अनुमान भी गलत सिद्ध हो जाते है और योजना को उसी रूप मे क्रियान्वित करना असम्भव हो जाता है। इसके विपरीत मूल्यो मे अधिक गिरावट भी उचित नही कही जा सकती, क्योकि इससे उत्पादको की उत्पादन प्रेरणा समाप्त हो जाती है। उत्पादन-वृद्धि के लिए प्रेरणाप्रद मूल्य होना भी आवश्यक है। अत मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे उचित मूल्य-नीति को अपनाया जाना आवश्यक होता है। यही नही पूर्ण नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे भी नियोजन सत्ता द्वारा विभिन्न वर्गों की वस्तुओ के मूल्य, सावधानी और विचारपूर्वक निर्धारित किए जाते हैं।

मूल्य-नीति का उपयोग सरकार द्वारा एक महत्वपूर्ण अस्त्र के रूप मे किया जाता है। राज्य की मूल्य-नीति द्वारा अर्थ-व्यवस्था के किसी भी क्षेत्र, उद्योग, फर्म या व्यक्तिगत उत्पादक का हित या अहित हो सकता है। यदि देश की मूल्य-नीति मे कुछ त्रुटि हो, तो समग्र देश को इसका भारी मूल्य चुकाना पड सकता है। मूल्य-स्तर को घटा-बढा कर आय-वितरण को भी प्रभावित किया जा सकता है, क्योकि मूल्य-वृद्धि की अवधि मे समस्त पदार्थों के मूल्य एक ही अनुपात मे नहीं बढते। व्यक्तिगत पदार्थों के मूल्यों मे परिवर्तन को प्रभावित करके इन पदार्थों के उत्पादन और उपभोग की मात्रा को भी घटाया-बढाया जा सकता है। सार्वजनिक-क्षेत्र के व्यवसायो द्वारा उत्पादित वस्तुओ और सेवाओ के मूल्यो को थोडा ऊँचा रख कर आर्थिक विकास हेतु पर्याप्त साधन जुटाए जा सकते हैं। इस प्रकार नियोजित

अर्थ-व्यवस्था में मूल्य-नीति बहुत महत्त्वपूर्ण है। डॉ. वी. के. आर. वी. राव[1] के अनुसार 'साम्यवादी देशों में भी आधुनिक चिन्तनधारा से माँग और पूर्ति में *वांछनीय परिवर्तन लाने के लिए विशेषत सरकार की शक्ति और प्रशासन पर निर्भर रहने की अपेक्षा कम से कम कुछ सीमा तक मूल्य-प्रक्रिया के उपयोग के* महत्त्व का प्रमाण मिलता है। इस प्रकार नियोजित अर्थ-व्यवस्था में भी मूल्यों का धनात्मक योगदान होता है और एक बुद्धिमत्तापूर्ण नीति मे व्यक्ति पदार्थों की माँग और पूर्ति मे इन परिवर्तनों को लाने के लिए, जो अर्द्ध-विकास से विकास मे हस्तान्तरण के लिए इतने आवश्यक है, मूल्य-प्रक्रिया का उपयोग करना होता है। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के भूतपूर्व गवर्नर एच वी आयंगर के अनुसार 17 वर्ष पूर्व आयोजित आर्थिक विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ करने मे भारत का मुख्य उद्देश्य था—अधिकांश लोगो के जीवन-स्तर मे उल्लेखनीय वृद्धि करना और उनके लिए *जीवनयापन के विविध और अधिक समृद्ध नए मार्ग खोलना। यदि आयोजित वृद्धि का फल जन-साधारण तक पहुँचाना है, तो हमे एक मूल्य-नीति निर्धारित करनी होगी* और एक सुनियोजित मूल्य ढाँचा तैयार करना होगा। मूल्य-नीति का सम्बन्ध केवल किसी एक वस्तु ही नही, अपितु वस्तुओ और सेवाओ के सामान्य और सापेक्षिक मूल्यो से भी है।

मूल्य-नीति का उद्देश्य
(Aims or Objectives of Price Policy)

विकासशील नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे, मूल्य-नीति निम्नलिखित उद्देश्यो पर केन्द्रित होनी चाहिए—

(1) योजना की प्राथमिकताओ एवं लक्ष्यो के अनुसार मूल्यो मे परिवर्तन होने देना।

(2) न्यून आय वाले उपभोक्ताओ द्वारा उपभोग वस्तुओ के मूल्यो मे अधिक वृद्धि को रोकना।

(3) मूल्य-स्तर मे स्थिरता बनाए रखना।

(4) मुद्रा-स्फीति की प्रवृत्तियो पर रोक लगाना और मुद्रा-स्फीति के दोषो को बढने से रोकना।

(5) उत्पादको हेतु प्रेरणाप्रद मूल्यो को बनाए रखना।

(6) मुद्रा-प्रसार और उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन मे उचित सम्बन्ध बनाए रखना।

मूल्य-नीति और आर्थिक विकास
(Price Policy and Economic Development)

मूल्य-वृद्धि आवश्यक—सामान्यत यह माना जाता है कि आर्थिक विकास की अवधि मे मूल्य-वृद्धि न केवल अपरिहार्य है, अपितु अनिवार्य भी है। विकास के

1. *Dr. V. K R. V. Rao* Essays in Economic Development, p. 145

मूल्यों मे ऊपर की ओर दबाव तो निहित ही है क्योंकि नियोजन हेतु भारी मात्रा मे पूँजी निवेश किया जाता है। इससे तुरन्त मौद्रिक आय बढ जाती है, किन्तु उसके अनुरूप वस्तु उत्पादन नही बढता, क्योंकि किसी परियोजना के प्रारम्भ करने के एक अवधि पश्चात् ही उससे उत्पादन आरम्भ होता है। अत मौद्रिक आय की अपेक्षा वस्तुओ एव सेवाओ का उत्पादन पिछड जाता है और मूल्य बढ जाते है। यह मूल्य-वृद्धि विनियोग मात्रा और परियोजनाओ के उत्पादन आरम्भ करने मे लगने वाले समय पर निर्भर करती है। अधिक मूल्यों से उत्पादको को भी प्रेरणा मिलती है। आर्थिक नियोजन का उद्देश्य जन-साधारण का जीवन-स्तर उच्च बनाना है। अत श्रमिको के जीवन-स्तर को उच्च बनाने के लिए उनकी मजदूरी और अन्य सुविधाओ मे वृद्धि की जाती है। अर्द्ध-विकसित देशो मे श्रम-प्रधान तकनीके अपनाए जाने के कारण लागत मे मजदूरी का भाग अधिक होता है। अत मजदूरी बढ जाने से लागतो और मूल्यो का बढ जाना स्वाभाविक होता है। इस प्रकार यह माना जाता है कि आर्थिक विकास की दृष्टि से मूल्यों मे थोडी वृद्धि हितकर ही नही, अनिवार्य भी है, क्योंकि अर्द्ध-विकसित देशो के आर्थिक विकास मे एक बडी बाधा, बचत के अभाव के कारण उपस्थित होती है। विदेशो से पर्याप्त मात्रा मे बचत की प्राप्ति नही होने पर देश मे ही 'विवशतापूर्वक बचत' (Forced Saving) के द्वारा साधन प्राप्त किए जाते है। ऐच्छिक बचत मात्रा, न्यूनतम उपभोग-स्तर और आय मे नकारात्मक अन्तर या स्वल्प अन्तर के कारण बहुत थोडी होती है। मूल्य-वृद्धि आय वितरण को उच्च आय वाले वर्ग के पक्ष मे पुर्नवितरण करके बचत वृद्धि करने मे सहायता करती है, क्योंकि इस वर्ग की बचत करने की सीमान्त-प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Consume) अधिक होती है। परिणामस्वरूप साधनो को विकास हेतु अधिक गतिशील बनाया जा सकता है।

मूल्य-वृद्धि के पक्ष मे यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि यह विनियोग के लिए उचित वातावरण का निर्माण करती है, किन्तु इस सम्बन्ध मे यह सब मुख्यत. इस बात पर निर्भर करता है कि मूल्य-वृद्धि की गति क्या है ? यदि मूल्य तीव्रता से बढ रहे हो और अति मुद्रा-प्रसार का भय हो, तो विनियोक्ता हतोत्साहित होंगे। कम से कम सामाजिक दृष्टि से वाँछनीय परियोजनाएँ तो नही अपनाई जाएँगी; हाँ बहुत कम मूल्य-वृद्धि की आशा इस दृष्टि से विकास के लिए हितकर होगी।

मूल्य-वृद्धि के पक्ष मे एक तर्क यह भी है कि मुद्रा-प्रसार उस मौद्रिक आय का सृजन करता है, जो पहले नही थी। इससे देश के सुषुप्त ससाधनो, विशेषत जन-शक्ति को गतिशील बनाने और इन्हे उत्पादक कार्यों मे नियोजित करने मे सहायता मिलती है। इससे आर्थिक विकास म तीव्रता आती है।

मूल्य-वृद्धि आवश्यक नहीं—किन्तु अनेक विचारक, विकासशील अर्थ-व्यवस्था मे विकास हेतु मूल्य-वृद्धि आवश्यक नही मानते। इस मत के समर्थन मे अग्रलिखित तर्क दिए जा सकते है—

(i) बचत पर विपरीत प्रभाव—मूल्य-वृद्धि से बचत पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। निरन्तर मूल्य-वृद्धि अधिकांश व्यक्तियों की बचत की इच्छा और योग्यता पर विपरीत प्रभाव डालती है। मूल्य-वृद्धि देश की मुद्रा और चलन में जनता के विश्वास को डगमगा देते हैं। देश की अधिकांश बचत करने वाले अपनी बचत को बैंक-जमा, बीमा-पॉलिसियों या सरकारी-प्रतिभूतियों (Government Securities) के रूप में रखते हैं। मूल्य-वृद्धि अथवा मुद्रा-प्रसार के कारण, जब इन लोगों के इस रूप में रखी हुई मुद्रा मूल्य घटता जाता है, तो व्यक्तियों में बचत के स्थान पर व्यय करने की इच्छा बलवती हो उठती है, या फिर वे अपनी बचत को सोना, जमीन-जायदाद या विदेशी-विनिमय क्रय करने में उपयोग में लाते हैं। इन दोनों ही स्थितियों में पूंजी-निर्माण को धक्का लगता है। अधिकांश अपनी बचत को विदेशों में लगाते हैं।

मूल्य-वृद्धि से जिस प्रकार बचाने की इच्छा पर बुरा प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार बचाने की क्षमता भी कुप्रभावित होती है। मुद्रा-प्रसार से कृषकों, औद्योगिक श्रमिकों, छोटे व्यापारियों और मध्यवर्ग की वास्तविक आय में भारी कमी होती है और उनका व्यय आय से अधिक बढ़ जाता है। इसके विपरीत मूल्य-स्थायित्व से बचत माना बढ़ती है। कम से कम वे ऋणात्मक बचत को समाप्त करने या उन्हें कम करने में तो अवश्य सहायक होती है। यह एक तथ्य है कि मूल्य-वृद्धि के समय में राष्ट्रीय आय में पारिवारिक क्षेत्र की बचत का भाग घट जाता है किन्तु मूल्य-स्थायित्व की स्थितियों में इस अनुपात में तीव्र वृद्धि होती है।

(ii) विकास की दृष्टि से लाभदायक विनियोग नहीं—मुद्रा-प्रसार से सदैव ही लाभ और लाभदायक विनियोगों में वृद्धि हो, ऐसा आवश्यक नहीं है। चिली के अनुसार वहाँ सन् 1950 और 1957 की अवधि में 10 गुनी मूल्य-वृद्धि हुई, किन्तु स्थिर-पूंजी में विनियोगों की मात्रा गिर गई। बहुधा, मूल्य-वृद्धि विनियोगों को प्रोत्साहित करती है, किन्तु इस समय इस बात की बहुधा सम्भावना होती है कि विनियोक्ता विवेकपूर्ण एवं दीर्घकालीन दृष्टिकोण से विनियोग सम्बन्धी निर्णय नहीं ले पाते; तुरन्त फलदायक और अधिकाधिक लाभदायक परियोजनाएँ ही बहुधा हाथ में ली जाती हैं, जो दीर्घकालीन आर्थिक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं होतीं। इस प्रकार ये विनियोग आर्थिक विकास की दृष्टि से अधिक लाभप्रद नहीं हो पाते।

(iii) विदेशी-विनिमय पर विपरीत प्रभाव—आर्थिक विकास की गति प्रारम्भ में बहुत कुछ विदेशी-विनिमय-साधनों पर निर्भर करती है। यह विदेशी-विनिमय या तो आयातों की अपेक्षा अधिक निर्यात करके अथवा विदेशी-पूंजी के आयात द्वारा उपलब्ध होता है। मूल्य-वृद्धि से विदेशी-विनिमय के इन दोनों ही स्रोतों पर कुप्रभाव होता है। मूल्य-वृद्धि से देश में वस्तुओं की उत्पादन-लागत बढ़ जाती है और इससे निर्यात हतोत्साहित होते हैं। इसमें विदेशी-विनिमय का अभाव है और ऐसी स्थिति में विनिमय नियन्त्रण, विदेशी-विनिमय में सट्टे की प्रवृत्ति और विदेशी-विनिमय-दर में गिरावट आती है; परिणामस्वरूप, निजी विदेश-पूंजी भी हतोत्साहित होती है।

(iv) आर्थिक विषमता मे वृद्धि—निरन्तर मूल्य-वृद्धि से आर्थिक विषमता मे वृद्धि होती है क्योंकि इस समय लाभो मे अधिक वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति मे, मूल्य-वृद्धि कतिपय व्यक्तियो को ही धनवान बनाती है और अधिकाँश को निर्धनता की ओर ले जाती है। अत आर्थिक विकास की वित्त-व्यवस्था करने का मुद्रा प्रसारिक पद्धति से सामाजिक तनाव और सघर्ष बढता है। यदि आर्थिक विकास का आशय आय के न्यूनतम स्तर पर रहने वाले लोगो की सख्या मे कमी करना है तो तीव्र मूल्य-वृद्धि ऐसे आर्थिक विकास के कदापि अनुकूल नही है।

(v) अनेक देशो के उदाहरण—यदि आर्थिक विकास का आशय राष्ट्रीय आय मे वृद्धि से लें तो भी मूल्य-वृद्धि आर्थिक विकास मे अनिवार्य रूप से सहायक नही है। मूल्य-वृद्धि के बिना भी राष्ट्रीय आय मे वृद्धि हो सकती है और अधिक वृद्धि होने पर भी राष्ट्रीय आय मे बहुत कम वृद्धि हो सकती है। उदाहरणार्थ भारत की प्रथम योजना मे उपभोक्ता वस्तुओ के मूल्यो मे 5% की कमी हुई, किन्तु राष्ट्रीय आय 18 4% बढी। इसके विपरीत, द्वितीय योजना मे उपभोक्ता वस्तुओ के मूल्यो मे 29 3% की वृद्धि हुई, जबकि राष्ट्रीय आय मे 21 5% की ही वृद्धि हुई। तृतीय योजना मे तो मूल्य 36% बढे, किन्तु राष्ट्रीय आय मे केवल 14% की ही वृद्धि हुई। अत मूल्य-वृद्धि आर्थिक विकास की कोई आवश्यक शर्त नही हो सकती। पश्चिमी जर्मनी, जापान, कनाडा इटली आदि के अनुभवो से भी यही बात सिद्ध होती है। सन् 1953–59 की अवधि मे पश्चिमी जर्मनी की राष्ट्रीय आय में 12% वार्षिक-दर से वृद्धि हुई, किन्तु इसी अवधि मे मूल्यो में केवल 1% वार्षिक की दर से वृद्धि हुई। जापान में सन् 1950 और 1959 की उक्त अवधि मे राष्ट्रीय आय 12 3% वार्षिक की दर से बढी, किन्तु इस समस्त अवधि मे मूल्य केवल 2% ही बढ पाए। इटली मे तो इस अवधि मे मूल्य स्तर में 1% की कमी आई, किन्तु फिर भी राष्ट्रीय आय 4% बढ गई। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष की प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार, "युद्धोत्तर वर्षो मे अल्प विकसित देशो में औसत रूप से प्रति व्यक्ति उत्पादन मे 4% की वृद्धि उस अवधि में हुई। जब उन्होंने अपने यहाँ मौद्रिक-स्थायित्व बनाए रखा। इन देशो मे मुद्रा-प्रसार के समय उत्पादन मे केवल प्रथम अवधि की अपेक्षा आधी ही वृद्धि हुई। तीव्र मुद्रा-प्रसार के समय तो उत्पादन वृद्धि की प्रवृत्ति उससे भी कम रही।"[1]

निष्कर्ष

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि मूल्य-वृद्धि आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य नही है। किन्तु फिर भी अधिकाँश लोगो का मत है कि आर्थिक विकास को तीव्र गति देने के लिए मूल्यो मे अत्यल्प वृद्धि (Gently or Moderately Increasing Prices) लाभदायक है। मूल्यो मे 1 या 2% वृद्धि या 'रेंगता हुआ मुद्रा-प्रसार' (Creeping Inflation) अपरिहार्य है। किन्तु, इस बात की सावधानी बरतना

1. Yojna, November 10, 1968, p 12

आवश्यक है कि यह 'रेंगता हुआ मुद्रा-प्रसार' (Creeping Inflation) कूदते हुए और लुढ़कते हुए (Galloping Inflation) मुद्रा-प्रसार मे परिवर्तित नही हो जाए। इस प्रकार की स्थिति होने पर सब आर्थिक प्रगति अवरुद्ध हो जाती है। भारत जैसे विकासोन्मुख देशो मे इस प्रकार का भय अवश्यम्भावी है, जहाँ उद्योग और मुख्य रूप से भारी तथा आधारभूत उद्योग कृषि की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से विकसित हो रहे है। ऐसी स्थिति मे, खाद्यान्नो, उपभोक्ता-वस्तुओ और औद्योगिक कच्चे माल की कमी उत्पन्न होकर, इनके मूल्य तेजी से बढ सकते हैं। अन्य कई वस्तुओ और अन्य सेवाओ के मूल्य भी इन वस्तुओ के मूल्यो पर निर्भर करते हैं, अतः मजदूरी और अन्य पदार्थो के मूल्य बढ़ेंगे। इस प्रकार, मजदूरी-मूल्य वृद्धि (Wage-Price Spiral) चक्र चलता रहेगा, योजनाओ के अनुमान गलत हो जाएँगे और विकास की आशाएँ धूमिल हो जाएँगी।

इस प्रकार एक ओर यह मत व्यक्त किया जाता है कि मूल्य-प्रक्रिया को उत्पादन-वृद्धि करने और उत्पादन-सरचना को वाँछित दिशा निर्देशन के उपयोग किए जाने के लिए मूल्य-नीति मे कुछ लोच होनी चाहिए। दूसरी ओर, आर्थिक विकास मे निहित भारी पूँजी-विनियोग के कारण उत्पन्न मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियाँ, मुख्य रूप से, आवश्यक उपभोग वस्तुओ के मूल्यो को बढ़ने से रोकने के लिए मूल्य स्थायित्व वाँछनीय है। किन्तु, दोनो ही स्थितियो मे आधारभूत वाँछनीय बात यह होनी चाहिए कि बुनियादी उपभोक्ता वस्तुओ और पूँजीगत-वस्तुओ के उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि वाँछनीय है। जो मूल्य-नीति, इस उद्देश्य की पूर्ति करे वही आर्थिक विकास के लिए उचित नीति है। डॉ बी के आर वी राव के मतानुसार "जिस सीमा तक मूल्य-वृद्धि उत्पादन-वृद्धि नही करे, उस सीमा तक मूल्य-वृद्धि अनुचित है और इसे रोकने के लिए यथासम्भव प्रयत्न किए जाने चाहिए। किन्तु जिस सीमा तक मूल्य-वृद्धि उपभोग या अनावश्यक दिशाओ मे साधनो के उपयोग मे कमी लाती है, यह वाँछनीय है और इसे प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। मूल्य-वृद्धि, उत्पादन-वृद्धि नही करने पर भी उस समय स्वीकार्य है, जबकि यह वाँछनीय क्रियाओ मे माँग का पुनः निर्देशन, उत्पादक-शक्तियो का पुनर्वितरण और उत्पादन का नवीनीकरण करे।"

मूल्य-नीति के दो पहलू
(Two Aspects of Price Policy)

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे आर्थिक विकास के लिए सहायक उचित मूल्य-नीति अपनाए जाने की आवश्यकता है। डॉ. वी. के आर. वी. राव के अनुसार इस नीति के वृहत् और सूक्ष्म (Macro and Micro) दोनो पहलू होने चाहिए।

वृहत् पहलू (Macro Aspects)—वृहत् पहलू में, मूल्य-नीति, मौद्रिक नीति और राजकोषीय नीति का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। आर्थिक विकास में भारी विनियोगो के कारण एक ओर तो समाज के सीमित साधनों की माँग बढ़ने से मूल्य-वृद्धि होती

है, दूसरी ओर रोजगार-वृद्धि के परिणामस्वरूप, व्यक्तियों की मौद्रिक आय में वृद्धि होती है जिसका परिणाम अन्त में वृद्धि के कारण मूल्य वृद्धि होता है। मूल्य-वृद्धि से रोजगार-आय और मांग पुनः बढ़ती है जिसके कारण पुनः मूल्य बढ़ते हैं। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए बुनियादी उपभोक्ता वस्तुओं और आधारभूत विनियोग वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाया जाना आवश्यक है। विनियोग वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि, दीर्घकाल में, अधिक प्रभावशाली होती है, जबकि उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि मूल्य-वृद्धि को रोकने का तात्कालिक उपाय सिद्ध होती है। इसके विपरीत अनावश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि या साधनों के अनावश्यक उपभोक्ता और पंजीगत वस्तुओं के निर्माण हेतु उपयोग मुद्रा-प्रसारिक-प्रवृत्तियों को बल देता है, क्योंकि साधन सीमित होते हैं। इस प्रकार, उनका मूल्य-वृद्धि को रोकने के लिए समुचित उपयोग नहीं हो पाता, किन्तु विकासमान अर्थ-व्यवस्था से ऐसा होना स्वाभाविक ही है। अतः कुछ मौद्रिक और राजकोषीय उपायों की आवश्यकता होती है, जो आय तथा आय के उपयोग को सुप्रभावित करके वांछित दिशा प्रदान कर सकें।

भारत की तृतीय पंचवर्षीय योजना की रिपोर्ट के अनुसार मूल्य-नीति के प्रमुख अंग मौद्रिक और राजकोषीय-अनुशासन है। "मौद्रिक नीति द्वारा व्यय और तत्जनित आय को गलत व्यक्तियों के हाथों में जाने से रोकना चाहिए।" इसके द्वारा वस्तुओं के सट्टे के लिए संग्रह और उन्हें छिपाकर रखने की प्रवृत्ति पर काबू पाना चाहिए। इस सम्बन्ध में उचित 'ब्याज दर की नीति' और 'चयनात्मक साख नियन्त्रण' (Selective Credit Control) के द्वारा सहायता ली जानी चाहिए। मौद्रिक-नीति के साथ ही राजकोषीय-नीति का उपयोग भी किया जाना चाहिए। मौद्रिक नीति बैंकों आदि के द्वारा अतिरिक्त क्रय-शक्ति के सृजन को नियमित और नियन्त्रित करती है, तो राजकोषीय नीति में करारोपण (Taxation) इस प्रकार किया जाना चाहिए, जिससे व्यय किए जाने के लिए जन-साधारण के पास, विशेष रूप से ऐसे लोगों के पास जो अपव्यय करें, आय कम हो जाए। इस उपभोग को संयमित और सीमित करने तथा बचत को अधिक प्रभावकारी ढंग से गतिशील बनाने में समर्थ होना चाहिए। इस प्रकार मौद्रिक और राजकोषीय दोनों नीतियों का *उद्देश्य जनता के हाथ में कम आय और क्रय-शक्ति पहुँचाना तथा इस आय में से भी* अधिकाधिक बचत की प्रेरणा देना होना चाहिए। प्रो वी के आर वी राव ने वृहत्-नीति (*Macro Policy*) के कार्य वहन को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "मूल्यों के सम्बन्ध में वृहत् नीति व्यक्तिगत मूल्यों पर प्रत्यक्ष प्रभाव के रूप में ही नहीं, अपितु अप्रत्यक्ष रूप से आय सृजन और आय के उपयोग इन दो चल तत्त्वों पर अपने प्रभाव द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से संचालित होती है, जो मूल्यों में समस्त परिवर्तनों के लिए मौद्रिक संरचना को निर्धारित करते हैं।"[1] इस नीति का सार

1 *Dr V K R V Rao* Essays in Economic Development, p 151.

अतिरिक्त आय के सृजन और उसके व्यय को प्रतिबन्धित करना है, जिससे माँग कम हो और मूल्य-वृद्धि न हो पाए।

सूक्ष्म पहलू (Micro Aspects)—मूल्य-नीति के इस पहलू के अन्तर्गत अर्थ-व्यवस्था मे आधारभूत विनियोग-वस्तुओं और आवश्यक उपभोक्ता-वस्तुओ के उत्पादन मे अधिकाधिक वृद्धि की जाए, ताकि वह अतिरिक्त विनियोजन के परिणामस्वरूप बढी हुई आय एव उपभोग व्यय के अनुरूप हो जाए। इस उद्देश्य से नियोजन अधिकारी को इस प्रकार की नीति अपनानी पडेगी, ताकि एक ओर साधनो का उपयोग आर्थिक विकास के लिए आधारभूत विनियोजन वस्तुओं और बुनियादी उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन मे लगे तथा दूसरी ओर इन वस्तुओ के अतिरिक्त अन्य वस्तुओ के उत्पादन मे साधनो का उपयोग हतोत्साहित हो अर्थात् प्रथम स्थिति मे मूल्य-तान्त्रिकता का उपयोग 'उत्तेजक' (Stimulant) के रूप मे और द्वितीय स्थिति मे 'अवरोधक' (Deterrent) के रूप मे किया जाए। परन्तु इस बात की सावधानी बरती जानी चाहिए कि ऊँचे मूल्यो के रूप मे मूल्य-तान्त्रिकता का अनावश्यक वस्तुओ के उपभोग को हतोत्साहित करने के रूप मे उपयोग से साधन इन आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन की ओर आकर्षित नही होने लगें। इसी प्रकार, ऊँचे मूल्यों के रूप मे मूल्य-तान्त्रिकता का आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन मे 'उत्तेजक' के रूप मे उपयोग का परिणाम यह नही होना चाहिए कि इससे वाँछित विनियोग वस्तुओं की माँग मे कमी की प्रवृत्ति और बुनियादी उपभोक्ता वस्तुओ मे मुद्रा-प्रसारिक लागत-प्रतिक्रिया उत्पन्न हो जाए। ऐसा होने पर मूल्य-वृद्धि द्वारा प्रोत्साहन तथा हतोत्साहन के परिणामस्वरूप वांछनीय उद्देश्यों की पूर्ति नही हो सकेगी। अत. सूक्ष्म पहलू का इस प्रकार से उपयोग किया जाना चाहिए ताकि कम से कम अवांछनीय बातों के साथ अधिकतम वांछनीय परिणाम प्राप्त किए जा सके।

इसके लिए अनावश्यक वस्तुओ के मूल्यो मे वृद्धि की जानी चाहिए, किन्तु साथ ही, इस क्षेत्र मे ऊँचे कर लगाए जाने चाहिए और साधनो का नियन्त्रित आवंटन किया जाना चाहिए। आवश्यक वस्तुओं और सेवाओ के उत्पादन मे वृद्धि के लिए मूल्य-वृद्धि द्वारा प्रोत्साहन देने की अपेक्षा इनका उत्पादन सार्वजनिक-क्षेत्र मे किया जाना चाहिए। जहाँ यह सम्भव नही हो वहाँ भी उत्पादन-वृद्धि के लिए ऊँचे मूल्यों की प्रेरणा की अपेक्षा करो मे रियायत देना अधिक श्रेयस्कर है। जहां कर सम्बन्धी रियायतों से भी आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन को प्रोत्साहित नही किया जा सकता हो वहाँ विक्रय-अनुदान (Sales Subsidies) दिए जाने चाहिए। आधारभूत उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए इनकी मूल्य-वृद्धि से बचना चाहिए और इसके स्थान पर इनकी उत्पादन-लागत को कम करने के लिए उत्पादन में प्रयुक्त आदानों (Inputs) के मूल्य कम किए जाने चाहिए, किन्तु यदि मूल्यों मे वृद्धि से किसी प्रकार बचना सम्भव नही हो तो मूल्य नियन्त्रण और वितरण राज्य को अपने हाथो मे लेना चाहिए और जनता को इन आधारभूत उपभोक्ता वस्तुओं की एक न्यूनतम आवश्यक मात्रा स्थिर मूल्यों पर उपलब्ध कराई जानी चाहिए और

इस हानि की पूर्ति, न्यूनतम आवश्यक मात्रा से अतिरिक्त पूर्ति के मूल्यो मे वृद्धि द्वारा की जानी चाहिए।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे मूल्य-नीति के सिद्धान्त (Principles of Price-Policy in Mixed Economy)

आर्थिक विकास और नियोजन के सन्दर्भ मे मूल्य-नीति से सम्बन्धित उपरोक्त सैद्धान्तिक विवेचन के आधार पर डॉ वी के आर वी राव ने मूल्य-नीति सम्बन्धी निम्नलिखित सिद्धान्तो का निरूपण किया है—

1 विकासार्थ नियोजन मे भारी पूँजी विनियोग के कारण जनता की आय मे वृद्धि होती है। आय की इस वृद्धि के अनुरूप ही उत्पादन-वृद्धि होनी चाहिए अन्यथा मूल्य-वृद्धि होगी। इस उत्पादन मे वृद्धि का जितना भाग अर्द्ध-निर्मित अवस्था मे हो या विक्रय के लिए उपलब्ध नही हो, आय के उसी भाग के अनुरूप नकद सग्रह (Cash holdings) म वृद्धि होनी चाहिए। सक्षेप मे, किसी ऐसे व्यय की स्वीकृति नही दी जानी चाहिए जिससे या तो उत्पादन मे अथवा नकद सग्रह मे वृद्धि न हो।

2 अर्थ-व्यवस्था के किसी भी क्षेत्र या समूह की आय मे वृद्धि के अनुरूप उस क्षेत्र या समूह के उत्पादन मे वृद्धि अथवा अन्य क्षेत्रो या समूह से हस्तान्तरण होना चाहिए अन्यथा मूल्य वृद्धि की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो जाएगी।

3 विनियोगो मे वृद्धि के अनुरूप ही बचत मे वृद्धि करने के प्रयत्न किए जाने चाहिए। यदि यह सम्भव नही हो तो विनियोगो मे भावी वृद्धि को बचत मे सम्भावित वृद्धि तक सीमित कर देना चाहिए।

4 बुनियादी उपभोक्ता-वस्तुओ के मूल्यो को बढने से रोकने का प्रयत्न करना चाहिए भले ही सामान्य मूल्य स्तर को रोकने का प्रयत्न आवश्यक नही है, क्योकि मूल्य-स्तर मे प्रत्येक वृद्धि मुद्रा प्रसारिक नही होती। केवल आधारभूत उपभोक्ता-वस्तुओ की मूल्य-वृद्धि ही लागत-मुद्रा प्रसार (Cost-inflation) के द्वारा तीव्र मूल्य वृद्धि को जन्म देती है।

5 आर्थिक विकास की अवधि मे बुनियादी उपभोक्ता वस्तुओ की माँग की पूर्ण सम्भावना होती है। अत इन वस्तुओ के मूल्यो को बढने से रोकने के प्रयत्न तभी सफल हो सकते हैं, जबकि इन वस्तुओ के उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हो। यदि इन वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि हेतु मूल्य वृद्धि को प्रोत्साहन देना आवश्यक हो तो अल्पकालीन नीति के रूप मे इसका अवलम्बन किया जा सकता है। किन्तु इस बीच मूल्य स्थिर रखने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'मूल्य नियन्त्रण' और 'नियन्त्रित-वितरण' आदि उपायो को भी अपनाया जाना चाहिए।

6 जब तक अर्थ व्यवस्था स्वय-स्फूर्त अवस्था मे नही पहुँच जाए, तब तक विकासशील अर्थ व्यवस्था मे मूल्य वृद्धि की प्रवृत्ति जारी रहती है। किन्तु कभी-कभी प्राकृतिक आपदाओ या कमी वाले क्षेत्रो पर कम ध्यान दिए जाने के कारण अन्य कारणो से यह प्रवृत्ति बहुत दृढ हो जाती है और मूल्यो मे विभिन्न मौसमो,

क्षेत्रों या प्रदेशो में भारी तेजी आ जाती है । इस प्रकार की समस्याओ के निराकरण हेतु 'बफर स्टॉक' (Buffer Stock) का निर्माण किया जाना चाहिए । 'बफर स्टॉक' द्वारा सरकार अल्पकाल मे पूर्ति को मांग के अनुरूप समायोजित करने में सफल होती है । इस प्रकार, इनके द्वारा अल्पकालीन और अस्थायी वृद्धियो को रोका जा सकता ह ।

विभिन्न प्रकार के पदार्थों से सम्बन्धित मूल्य-नीति

कृषि पदार्थ—अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ मे आर्थिक विकास के लिए उचित कृषि पदार्थ सम्बन्धी नीति का बडा महत्त्व होता है । इन पदार्थों के मूल्य माँग और पूर्ति की स्थितियो के प्रति अधिक सवेदनशील होते है । अधिकाँश अर्द्ध-विकसित देशो मे राष्ट्रीय उत्पादन मे कृषि-जन्य उत्पादन का भाग लगभग 50% होता है । अत: देश मे सामान्य मूल्य-स्तर पर कृषि पदार्थो के मूल्य परिवर्तनों का बडा प्रभाव पडता है । साथ ही, भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देशो मे उपभोक्तागण अपनी आय का अधिकाँश भाग खाद्य-पदार्थों पर व्यय करते हैं जो मुख्यत कृषि-जन्य होते हैं । जब इन पदार्थों के मूल्यो मे अधिक वृद्धि होती है, तो व्यक्तियो में असन्तोष बढता है । मजदूर अपनी मजदूरी बढाने के लिए सगठित होते है । मँहगाई-भत्ते मे वृद्धि के लिए दवाव बढ़ जाता है । कई उद्योगो के लिए कच्चा माल भी कृषि द्वारा प्राप्त होता है । इनके मूल्य बढने से इन उद्योगो की लागत बढ जाती है और देश-विदेश मे इनकी प्रतिस्पर्द्धा-शक्ति कम हो जाती है । अत: इन विकासशील देशों की योजनाओ की सफलता के साथ कृषि-पदार्थों के मूल्यो मे स्थायित्व और तीव्र वृद्धि को रोकना आवश्यक है । साथ ही, मूल्य इतने कम भी नहीं होने चाहिए जिससे उत्पादकों का प्रोत्साहन समाप्त हो जाए । इस दृष्टि से बहुधा कृषि-पदार्थों के अधिकतम और न्यूनतम मूल्य निर्धारित कर देने चाहिए । कृषको को प्रोत्साहन देने के लिए आवश्यकतानुसार 'Price Support' की नीति को अपनाना चाहिए ।

इस सम्बन्ध मे इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि इन पदार्थों के मूल्यो मे अधिक उतार-चढाव नही हो । इन सब दृष्टिकोणो से कृषि पदार्थ सम्बन्धी मूल्य-नीति बहुत व्यापक होनी चाहिए जिसमे उत्पादन से लेकर वितरण तक की उचित व्यवस्था सन्निहित हो । उत्पादन–वृद्धि के प्रयत्न किए जाने चाहिए और इस हेतु भूमि सुधार, प्रकृति पर कृषि की निर्भरता मे कमी तथा उर्वरक, यन्त्र, साख आदि आवश्यक आदानो की व्यवस्था की जानी चाहिए । मुख्य कृषि पदार्थो, विशेष रूप से खाद्यान्नो के न्यूनतम और अधिकतम मूल्य निर्धारित कर देने चाहिए । न्यूनतम मूल्य इस प्रकार के होने चाहिए ताकि कृषकों में अधिक उत्पादन की प्रेरणा बनी रहे और अधिकतम मूल्य इस प्रकार निर्धारित किए जाने चाहिए जिससे उपभोक्ताओं पर अधिक भार नहीं पड़े । कृषि सम्बन्धी मूल्य-नीति का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व सरकार द्वारा 'बफर स्टॉक' का विस्तृत पैमाने पर निर्माण है । यदि स्वदेश मे उत्पादन कम हो, तो उचित मूल्य पर इन पदार्थों को विदेशों से आयात की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। कृषि पदार्थों के उचित वितरण हेतु थोक स्तर पर राज्य व्यापार का विस्तार, खुदरा

बिक्री के लिए स्थान-स्थान पर सहकारी और सरकारी वितरण एजेन्सियों की स्थापना की जानी चाहिए। संक्षेप में कृषि पदार्थों की मूल्य नीति से सम्बन्धित निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए —

(1) मूल्य-नीति ऐसी होनी चाहिए जिससे उत्पादक और उपभोक्ता दोनों पक्षों को लाभ हो।

(2) मूल्यों में भारी उतार-चढ़ाव को रोकने का प्रयास किया जाना चाहिए।

(3) विभिन्न कृषि पदार्थों के मूल्यों में सापेक्ष समानता रहनी चाहिए।

(4) कृषि पदार्थों और औद्योगिक पदार्थों के मूल्यों में भी समानता रहनी चाहिए।

(5) कृषि पदार्थों के उत्पादन-वृद्धि के सब सम्भव उपाय किए जाने चाहिए।

(6) कृषि पदार्थों के वितरण की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। इसमें राज्य-व्यापार, सहकारी तथा सरकारी एजेन्सियों का विस्तार किया जाना चाहिए।

औद्योगिक वस्तुओं का मूल्य—अनावश्यक उपभोक्ता पदार्थ, जो विलासिता और आरामदायक वस्तुओं की श्रेणियों में आते हैं, का मूल्य-निर्धारण बाजार तान्त्रिकता पर छोड़ दिया जाना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो इनमें भी मूल्य वृद्धि की स्वीकृति दी जानी चाहिए, किन्तु साथ ही, ऊँचे कर और साधनों का नियन्त्रित वितरण किया जाना चाहिए। किन्तु औद्योगिक कच्चे माल जैसे सीमेन्ट, लोहा एवं इस्पात, कोयला, रासायनिक पदार्थ आदि के मूल्यों को नियन्त्रित किया जाना चाहिए। औद्योगिक निर्मित वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि को रोकने के लिए मूल्य-नियमन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सम्बन्धित मूल्य नीति इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्ति उत्पन्न नहीं हो। साथ ही, इनका उचित उपयोग और वितरण हो। घरेलू उपयोग को कम करने, निर्यात में वृद्धि करने, उत्पादन और विनियोगों के प्रोत्साहन के लिए औद्योगिक पदार्थों के मूल्यों में तनिक वृद्धि की नीति को स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु साथ ही, मूल्य ऐसे होने चाहिए जिनसे उत्पादकों को अत्यधिक लाभ (Excessive Profit) नहीं हो। वस्तुतः औद्योगिक पदार्थों के क्षेत्र में भी उत्पादक और उपभोक्ता दोनों वर्गों के हितों की रक्षा होनी चाहिए। कृषि क्षेत्र में न्यूनतम मूल्य अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि कृषकों की मोल भाव करने की शक्ति कम होती है। इसके विपरीत औद्योगिक क्षेत्र में अधिकतम मूल्य अधिक महत्त्वपूर्ण है। फिर भी, न्यूनतम मूल्यों को भी निश्चित करना होगा। निर्यात योग्य पदार्थों के मूल्य, घरेलू उपभोक्ताओं के लिए अधिक रखे जा सकते हैं, जिससे उनका आन्तरिक उपभोग कम हो। बिना हानि उठाए उसे विदेशियों को सस्ते मूल्यों पर बेचा जा सके। भारत में चीनी के मूल्य-निर्धारण की नीति इसी प्रकार की रही है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का मूल्य[1]—निजी व्यक्तियों द्वारा उत्पादित

1 वी ए। गुप्ता आर्थिक समीक्षा, सार्वजनिक क्षेत्र विशेषांक, 15 अगस्त, 1969, पृष्ठ 25.

वस्तुओं और सार्वजनिक उपक्रमो द्वारा उत्पादित वस्तुओ के मूल्य-निर्धारण के लिए अपनाई गई नीतियाँ भिन्न हो सकती हैं। निजी-उपक्रमो मे मूल्य-निर्धारण इस प्रकार होना चाहिए जिससे कर सहित उत्पादन लागत निकालने के पश्चात् इतना लाभ प्राप्त हो ताकि पूंजी तथा उपक्रम आकर्षित हो सकें। किन्तु सरकारी उपक्रमो के समक्ष मूल्य-निर्धारित करते समय व्यावसायिक दृष्टिकोण की अपेक्षा जन-कल्याण का ध्येय प्रमुख होता है। इसीलिए, सार्वजनिक उपक्रमो की स्थिति बहुधा एकाधिकारिक होते हुए भी इनके मूल्य कम हो सकते है क्योकि सरकार का विचार इस रूप में उपभोक्ता को रियायत देना हो सकता है। किन्तु विभिन्न विचारको मे इस बात पर मतैक्य नही है कि सार्वजनिक उपक्रमो की मूल्य-नीति लाभ के आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए अथवा नही।

मूल्य-नीति से उपक्रम को लाभ—कुछ विचारकों के मतानुसार सार्वजनिक उपक्रमो द्वारा उत्पादित वस्तुओ और सेवाओ के मूल्य इस प्रकार निर्धारित किए जाने चाहिए जिससे उन पर विनियोजित पूंजी पर पर्याप्त लाभ हो सके। इससे जहाँ सरकार को विकास के लिए पर्याप्त धनराशि प्राप्त हो सकेगी, वहाँ मुद्रा प्रसारित प्रवृत्तियो के दमन मे भी सहायता मिलेगी। इन उपक्रमों को हानि पर चलाने से मुद्रा प्रसारित प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती है, क्योंकि इस प्रकार कम मूल्य वसूल करने से जनता के पास व्यय करने के लिए अधिक राशि रह जाती है। साथ ही, राजकोष मे कम राशि पहुँचती है, जिनकी पूर्ति जनता से अधिक कर वसूल कर की जाती है। इन उपक्रमो द्वारा उत्पादित वस्तुएँ और सेवाएँ कम मूल्य पर बेचने से इसका बोझ सामान्य जनता पर पडता है, जबकि उसका लाभ उस वस्तु का उपभोग करने वाले कुछ व्यक्तियो को ही मिलता है। उपभोक्ताओ को एक वर्ग के रूप मे इस प्रकार रियायत देना उपयुक्त नही है। अत इन उपक्रमो द्वारा उत्पादित पदार्थों और सेवाओं मे मूल्य इतने होने चाहिए जिससे उन्हे सन्तोषप्रद लाभ मिल सके। इससे देश की विकास योजनाओं के लिए सहज ही साधन उपलब्ध किए जा सकते हैं, यदि किन्ही कारणों से किसी उद्योग को आर्थिक सहायता देना भी हो तो भी लाभ-हानि का लेखा-जोखा स्पष्ट रूप से दिखाया जाना चाहिए और उपक्रम को दी गई सहायता को अलग दिखाया जाना चाहिए।

लाभ-रहित स्थिति में भी संचालन—उक्त विवरण से स्पष्ट है कि इन उपक्रमों की कुशलता का मापदण्ड इनके द्वारा प्राप्त लाभ है, किन्तु ऐसा अनिवार्य नही है। नाभा गोपालदास के मतानुसार "एक सार्वजनिक व्यवसाय हानि पर चलाया जा रहा है, किन्तु वह सस्ती गैस, विद्युत, यातायात या डाक व्यय के रूप मे हानि से भी अधिक सामाजिक कल्याण मे वृद्धि कर रहा हो।" सार्वजनिक व्यवसायो के लिए यह वांछनीय है कि वे स्वावलम्बी हो किन्तु व्यापक सामाजिक हितों की दृष्टि से कम मूल्य की नीति अपनाकर उन्हे 'नियोजित हानि' पर भी संचालित किया जाना अनुचित नही है। वस्तुत. सरकार का उद्देश्य लाभ कमाना नहीं अपितु अधिकाधिक सामाजिक कल्याण होता है। अतः सरकार द्वारा उत्पादित ऐसी वस्तुओ और सेवाओ

के मूल्य कम लिए जाने चाहिए जिनका उपयोग मुख्यतः समाज के निर्धन, शोषित और पीडित व्यक्ति करें।

किन्तु इसका यह आशय कदापि नही है कि सरकारी उपक्रम कुशलतापूर्वक नही सचालित किए जाने चाहिए। उपक्रम की कुशलता एक अन्य वस्तु है जिसका मूल्य-निर्धारण से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है। उत्पादन लागत से कम मूल्य पर इनकी वस्तुएँ विक्रय किए जाने पर भी उपक्रम को निजी-क्षेत्र की ऐसी ही इकाई की कुशलता के स्तर पर सचालित करने मे कोई कठिनाई नही होनी चाहिए। लाभ-रहित स्थिति मे सचालन के समर्थक इस तर्क को भी सन्तोषप्रद नही मानते कि लाभ-मूल्य-नीति (Profit-Price-Policy) अपनाने से उपभोक्ताओ के पास व्यय के लिए कम राशि बचेगी जिससे व्यय कम होगा और मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियो का दमन होगा। ऐसा तभी सम्भव है, जबकि वह उद्योग एकाधिकारिक हो और उसकी माँग बेलोच हो।

अतः कभी-कभी यह विचार प्रस्तुत किया जाता है कि सार्वजनिक उपक्रमो की मूल्य-नीति का आधार *'न लाभ, न हानि'* (No Profit, No Loss) होना चाहिए। किन्तु नियोजन द्वारा विकासशील निर्धन देशो के लिए यह नीति अनुचित है। अर्द्ध-विकसित देशों मे वित्तीय साधनो को जुटाने की समस्या होती है और अधिक मूल्य की नीति अपनाकर सार्वजनिक उपक्रमो के लाभ योजनाओ की वित्त-व्यवस्था का एक बडा स्रोत बन सकते हैं। यही कारण है कि नियोजन पर अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी के ऊटी मे हुए सेमिनार मे डॉ वी के आर. वी राव ने 'न लाभ, न हानि' की नीति को अस्वीकार करते हुए लाभ-मूल्य नीति का समर्थन किया। आजकल भारत मे योजना-आयोग भी इसी नीति पर चल रहा है और उसकी प्रत्येक योजना मे सार्वजनिक उपक्रमो से प्राप्त लाभो पर उत्तरोत्तर अधिक निर्भरता प्रदर्शित की गई है। अन्य अर्द्ध-विकसित देशो के लिए भी यही मूल्य-नीति उचित है।

वस्तु नियन्त्रण
(Commodity Control)

नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे नियन्त्रण निहित है। कई बार नियोजित अर्थ-व्यवस्थाओ मे भेद, उनमे व्याप्त नियन्त्रण की प्रकृति और लक्षणो के आधार पर किया जाता है। नियन्त्रण जितने अधिक और कठोर होते है वहाँ नियोजन भी उतना ही कठोर होता है। इसके विपरीत जहाँ नियन्त्रण कम और सरल होते हैं, वहाँ नियोजन अधिक जनतान्त्रिक और कम कठोर होता है। इस प्रकार 'नियन्त्रण' नियोजन की एक प्रमुख विशेषता है। थॉमस विल्सन के अनुसार, "नियोजन और भौतिक नियन्त्रण इतने अधिक सम्बन्धित है कि इन्हे लगभग अभिन्न माना जा सकता है।"[1] इस प्रकार, नियोजन मे कई प्रकार के नियन्त्रण होते है। वस्तुतः नियोजित अर्थ-व्यवस्था का आशय ही नियोजन अधिकारी द्वारा निश्चित सामाजिक उद्देश्यो के

1. *Thomas Wilson* : Planning and Growth, p. 14.

लिए नियन्त्रित अर्थ-व्यवस्था है। पूर्ण नियोजित अर्थ-व्यवस्था अधिक नियन्त्रित रहती है, किन्तु मिश्रित जनतान्त्रिक-नियोजन मे नियन्त्रण अधिक व्यापक नही होते। किन्तु फिर भी नियोजित अर्थ-व्यवस्थाओ मे वस्तु-नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है। इन अर्द्ध-विकसित देशो में नियोजन अवधि मे उपभोक्ता और पूँजीगत दोनो प्रकार की वस्तुओ की माँग बढती है। विकास कार्यक्रमो के लिए कई परियोजनाएँ संचालित की जाती हैं, जिनके लिए विशाल मात्रा मे पूँजीगत वस्तुएँ चाहिए। ये वस्तुएँ स्वदेशी तथा आयातित दोनो प्रकार की हो सकती हैं। जिस प्रकार विकास के लिए यह आवश्यक है कि ये वस्तुएँ उचित मूल्यों पर प्राप्त हो, उसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि अच्छी किस्म की, पर्याप्त मात्रा में और समय पर निरन्तर ये वस्तुएँ उपलब्ध हो। आवश्यकतानुसार विभिन्न क्षेत्रों, उद्योगो, व्यक्तियों आदि मे इनका उचित आवटन हो और अनुकूलतम उपयोग हो, इसके लिए इन वस्तुओ का नियन्त्रण आवश्यक है। इसमे इनके निश्चित मूल्यो पर बिक्री के साथ साथ विभिन्न फर्मों तथा उद्योगों का कोटा (Quota) भी निर्धारित किया जा सकता है।

नियोजन के अन्तर्गत बहुधा उपभोक्ता वस्तुओ का भी अभाव रहता है। उत्पादन के अधिकांश साधनो का अधिकाधिक भाग विनियोग कार्यक्रमो मे लगाया जाता है। अधिकांश उपलब्ध, वित्तीय और भौतिक साधनो का उपयोग पूँजीगत वस्तुओ के उत्पादन मे लगाया जाता है। सिंचाई, विद्युत, सीमेन्ट, इस्पात, मशीन और मशीनी औजार भारी विद्युत सामग्री, भारी रसायन आदि परियोजनाएँ प्रारम्भ की जाती हैं। इस प्रकार, नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे साधन पूँजीगत परियोजनाओ में लग जाते हैं और उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन की ओर कम ध्यान दिया जाता है। देश के आर्थिक विकास को गति देने और उसे स्वयं-स्फूर्त-अवस्था मे पहुँचाने के लिए यह आवश्यक भी है, किन्तु इससे उपभोक्ता वस्तुओ की कमी पड जाती है। साथ ही, नियोजन के परिणामस्वरूप व्यक्तियो की आय भी बढती है, जिसे उपभोग पर व्यय किया जाता है। इससे उपभोग वस्तुओ की माँग बढ जाती है। इन देशो की तीव्रता से बढती हुई जनसख्या भी इनकी माँग मे वृद्धि कर देती है। ऐसी स्थिति मे इनमें मूल्य-वृद्धि की प्रवृत्ति होती है। बहुधा उद्योगपति वर्ग वस्तु की स्वल्पता के कारण परिस्थितियो का नाजायज लाभ उठाकर अधिकाधिक मूल्य लेने का प्रयास करते हैं। इसके लिए कृत्रिम अभावो का सृजन भी किया जाता है। काला बाजार और मुनाफाखोरी को प्रोत्साहन मिलता है, जिससे निर्धन वर्ग को कठिनाइयो का सामना करना पडता है। उन्हे इन पदार्थों की आवश्यक न्यूनतम मात्रा भी प्राप्त नही हो पाती। ऐसी स्थिति मे इन उपभोक्ता वस्तुओ, विशेष रूप से आवश्यक पदार्थो जैसे, खाद्यान्न, चीनी, खाद्य-तेल, मिट्टी का तेल, साबुन, वस्त्र आदि का नियन्त्रण तो आवश्यक सा हो जाता है। केवल मूल्य-नियन्त्रण या मूल्य-निर्धारण ही पर्याप्त नही है, क्योंकि यदि कम मूल्य निश्चित कर दिए गए तो वस्तुएँ छिपा ली जाएँगी और काला बाजार (Black Market) मे बेची जाएँगी या वे अच्छी किस्म की नहीं होगी या फिर उनके उत्पादकों को पर्याप्त प्रेरणा नही मिलने के कारण उत्पादन

कम होगा। अत उचित मूल्य-नीति अपनाई जाने के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि इन वस्तुओं के उत्पादन, उपभोग-विनिमय और वितरण पर पूर्ण नियन्त्रण रखा जाए। उत्पादन-स्तर पर इनके उत्पादन मे कोई शिथिलता नही बरती जाए और क्षमता का पूरा उपयोग करके अधिकाधिक उत्पादन किया जाए। साथ ही, उसे बाजार मे बिक्री हेतु उपलब्ध कराया जाए। इन वस्तुओं की बिक्री भी नियन्त्रित रूप से स्वय सरकार द्वारा या सहकारी समितियो द्वारा या नियन्त्रित एजेन्सियो द्वारा की जाए। जो कुछ उपलब्ध हो उसके उचित वितरण की व्यवस्था की जाए। यदि उचित वितरण व्यवस्था न हो, जैसे कुछ लोगो को कम और कुछ लोगो को अधिक वस्तुएँ मिल सके तो यह बात अधिक सहन नही की जा सकती। इन वस्तुओं के वितरण मे राशनिंग (Rationing) की नीति भी अपनाई जा सकती है।

भारतीय नियोजन मे मूल्य और मूल्य-नीति
(Prices and Price-Policy during Planning in India)

प्रथम पचवर्षीय योजना—भारतीय नियोजन मे प्रारम्भ से ही मूल्य नियमन की ओर ध्यान दिया गया है। प्रथम योजना, द्वितीय विश्वयुद्ध और विभाजन जनित वस्तुओं की कमी को दूर करने और मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियो को रोकने के उद्देश्य से प्रारम्भ की गई थी तथा अपने इस उद्देश्य को प्राप्त करने मे यह सफल भी हुई। इस योजनावधि मे मुद्रा-पूर्ति मे भी 13% की वृद्धि हुई और 330 करोड रुपये की घाटे की अर्थ-व्यवस्था की गई किन्तु मानसून की अनुकूलता के परिणामस्वरूप उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हुई। खाद्यान्नो का उत्पादन 20% कपास का उत्पादन 45% और तिलहन का उत्पादन 8% बढ गया। योजनावधि मे कृषि उत्पादन निर्देशांक 1949–50 वर्ष का आधार मानते हुए 96% से बढकर 117% हो गया। औद्योगिक उत्पादन मे 18 4 पाइन्ट की वृद्धि हुई। उत्पादन मे इस वृद्धि के साथ-साथ सरकार द्वारा किए गए प्रयत्नो कोरिया-युद्ध की समाप्ति के कारण मूल्यो मे गिरावट आई। सन् 1952 मे थोक मूल्य निर्देशांक मे कमी आई और कुछ समय तक मूल्यो मे लगभग स्थिरता रही। सन् 1953–54 मे बहुत अच्छी फसल हुई जिसके कारण मूल्यो म बहुत गिरावट आई। कुल मिलाकर योजना काल मे थोक मूल्यो के निर्देशांक मे 20%, खाद्य-पदार्थों के मूल्य निर्देशांक मे 26%, निर्मित-पदार्थों के मूल्य निर्देशांक मे 3 6% और औद्योगिक कच्चे माल के मूल्य निर्देशांक म 32% की कमी आई। योजनावधि मे मूल्यो की इस गिरावट के वातावरण मे राज्य ने यथोचित मूल्य निर्धारित करने और अनेक कार्यवाहियो द्वारा मूल्यो को इस स्तर से नीचे नही गिरने देने के लिए प्रयास आरम्भ किए ताकि उत्पादको को मूल्यो के गिरने से हानि न हो।

द्वितीय पचवर्षीय योजना—यह योजना प्रथम योजना की अपेक्षा बहुत बडी थी। सार्वजनिक क्षेत्र मे 4,600 करोड रुपये व्यय किए गए। निजी क्षेत्र मे 3,100 करोड रुपये का विनियोग हुआ। योजनावधि मे 948 करोड रुपये की घाटे की अर्थ-व्यवस्था की गई जो समस्त योजना व्यय का 20% था। साथ ही इस

अवधि में मुद्रा-पूर्ति 2,216 करोड़ रुपये से बढ़कर 2,868 करोड़ रुपये हो गई। इस प्रकार मुद्रा-पूर्ति में 29% की वृद्धि हो गई। दुर्भाग्यवश, कृषि-उत्पादन में वृद्धि नहीं हो सकी अपितु कई वर्षों में तो विगत वर्षों की अपेक्षा उत्पादन में कमी आई। उदाहरणार्थ, सन् 1957–58 में खाद्यान्नों का उत्पादन गत वर्ष की अपेक्षा 60 लाख टन कम हुआ। सन् 1959–60 में भी खाद्यान्नों के उत्पादन में इसके पिछले वर्ष की अपेक्षा 40 लाख टन की गिरावट आई। इसी वर्ष जूट, कपास और तिलहन के उत्पादन में क्रमशः 12%, 18% और 12% की गिरावट आई। इस प्रकार योजना अपने उत्पादन लक्ष्यों में काफी पिछड़ गई। परिणामस्वरूप, द्वितीय योजना में मूल्य-वृद्धि होना स्वाभाविक था। जनसंख्या वृद्धि ने भी इसे सहारा दिया। इस योजना में मूल्यों में निरन्तर वृद्धि होती रही। योजनावधि में थोक मूल्यों का सामान्य निर्देशांक (General Index of Wholesale Prices) 33% बढ़ गया। इसी प्रकार, खाद्यान्नों, औद्योगिक कच्चे माल, निर्मित वस्तुओं के मूल्य निर्देशांकों में क्रमशः 48%, 45% तथा 25% की वृद्धि हुई।

योजनावधि में मूल्य-नीति के अन्तर्गत खाद्य तथा अन्य सामग्री में उचित सन्तुलन बनाए रखने पर बल दिया गया। खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए प्रेरणाप्रद मूल्य-स्तर आवश्यक था और सरकार इस नीति को अपनाती रही। इस योजना में मूल्यों के अत्यधिक उतार-चढ़ाव को रोकने के लिए खाद्यान्नों के बफर-स्टॉक के निर्माण का आयोजन किया गया। साथ ही, आयात निर्यात कोटे की मात्रा की समय से पूर्व-घोषणा, अग्रिम सौदों पर नियन्त्रण, साख का नियन्त्रण एवं अन्य वित्तीय कार्यवाहियों को अपनाया गया। इसके बावजूद भी मूल्य वृद्धि को नहीं रोका जा सका। वस्तुतः योजना के अन्तर्गत उद्योग, खनिज, यातायात, विद्युत आदि पर अधिक विनियोजन के साथ-साथ मूल्य-वृद्धि रोकने के लिए कृषि-उत्पादन में वृद्धि आवश्यक है। किन्तु भारत में कृषि-उत्पादन की मात्रा मौसम और मानसून की अनुकूलता पर निर्भर करती है, जो अनिश्चित है। अतः मूल्य नीति का आधार कृषिगत पदार्थों के भंडार पर्याप्त मात्रा में बनाए रखना है, ताकि कमी के समय मूल्यों को नियन्त्रित रखा जा सके। द्वितीय योजना में मूल्य नीति की निम्नलिखित कमियाँ थीं—

(i) मूल्य नीति को प्रभावशाली ढंग से लागू नहीं किया गया और उसके क्रियान्वयन पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया।

(ii) मूल्य नीति से सम्बन्धित कार्यवाहियों में पारस्परिक समन्वय का अभाव था।

(iii) मूल्य नीति को दीर्घकालीन दृष्टिकोण और आवश्यकताओं के अनुसार निर्धारित नहीं किया गया।

तृतीय पंचवर्षीय योजना—द्वितीय योजना के प्रारम्भ और तृतीय योजना के प्रारम्भ के वातावरण में पर्याप्त अन्तर था। जहाँ प्रथम योजना में मूल्यों में गिरावट आई थी वहाँ अन्य योजनाओं में मूल्य 35% बढ़ गए थे। इसलिए तृतीय योजना में

मूल्य-नियमन-नीति की ओर विशेष ध्यान दिया गया था। द्वितीय योजना मे मूल्य-नियमन के लिए सुदृढ नीति को कोई विशेष महत्त्व नही दिया गया, किन्तु इस बात का अवश्य अनुमान लगा लिया गया था कि विकास कार्यक्रमो के लिए विनियोजन की नई मांगो की तुलना मे पूर्ति कम ही होगी और इसलिए मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियो की सम्भावना और उनके नियन्त्रण की समस्याएँ उत्पन्न होगी। इसके बावजूद भी योजना-आयोग ने इन कठिनाइयो के भय से विकास कार्यक्रमो को कम करना उचित नही समझा। इस प्रकार द्वितीय योजना-निर्माण मे विकास को अधिक महत्त्व दिया गया और मूल्यो की स्थिरता को आधारभूत आवश्यकता नही माना गया।

किन्तु तृतीय योजना के समय परिस्थितियाँ भिन्न थी। देश का विदेशी मुद्रा-कोष भी बहुत कम हो गया था और इसलिए विदेशो से अधिक मात्रा मे पदार्थो का आयात करके वस्तुओ की पूर्ति बढाना भी कठिन था। विदेशी विनिमय की स्थिति मे सुधार हेतु निर्यात मे वृद्धि और आयात मे कमी करना आवश्यक था। मूल्य-वृद्धि से योजना के कार्यक्रमो पर भी अत्यन्त दुष्प्रभाव पडता है। योजना की सफलता संदिग्ध हो जाती है। फिर तृतीय योजना मे तो विकास कार्यक्रमो और विनियोजन की राशि द्वितीय योजना की अपेक्षा बहुत अधिक थी। तृतीय योजना मे 10,400 करोड रुपये के विनियोजन का लक्ष्य था। ऐसी स्थिति मे मूल्य-वृद्धि की सभी सम्भावनाएँ थी। अत तृतीय योजना मे एक सुदृढ मूल्य-नीति की आवश्यकता को स्वीकार किया गया था और मूल्य-नियमन की आवश्यकता अनुभव की गई थी। किन्तु मूल्य नियमन का आशय मूल्यो मे कोई परिवर्तन नही होने देने से नही है। भारी पूंजी-विनियोजन के कार्यक्रम वाली विकासोन्मुख अर्थ व्यवस्था मे थोडी-बहुत मूल्य-वृद्धि अप्रत्याशित और हानिकारक नही है, किन्तु मूल्यो मे अधिक वृद्धि को तथा उसमे आने वाले उच्चावचनो को रोकने हेतु उचित मूल्य-नीति आवश्यक थी।

तृतीय योजना मे इसी आधार पर मूल्य-नीति बनाई गई थी, जिसमे कर-नीति, मौद्रिक नीति, व्यापारिक-नीति, पदार्थ-वितरण-नीति आदि को समन्वित रूप से अपनाने का आयोजन था। कर-व्यवस्था इस प्रकार की करनी थी जिससे उपभोग को योजना के अनुकूल प्रतिबन्धित और सीमित किया जा सके तथा विनियोजन हेतु पर्याप्त साधन जुटाए जा सकें। मौद्रिक-नीति द्वारा साख का नियमन तथा नियन्त्रण, सट्टे की सौदेबाजी तथा इस उद्देश्य से पदार्थों का संग्रह हतोत्साहित हो। व्यापारिक नीति द्वारा विदेशो से आवश्यक वस्तुओं का आयात करके बुनियादी वस्तुओ की कमी को दूर करना था। किन्तु इसके लिए दीर्घकालीन आयात को कम करने की आवश्यकता पर बल दिया गया था। कुछ अत्यन्त आवश्यक वस्तुओ का मूल्य-नियन्त्रण अपनाया जाना था और इनके मूल्यो को एक सीमा से अधिक नहीं बढने देना था। साथ ही इनके समुचित वितरण के लिए राशनिंग पद्धति को भी अपनाया जा सकता था। इस योजना मे मध्यस्थों और उनके लाभो को सीमित करने या समाप्त करने के लिए सरकारी या सहकारी संस्थाओ द्वारा इनके वितरण को प्रोत्साहित किए जाने पर अधिक बल दिया गया था। अर्द्ध-विकसित देशो मे खाद्य-पदार्थों के मूल्यो मे स्थिरता

लाना बहुत आवश्यक होता है। अत. इस योजना में भी खाद्यान्नों के मूल्यों में यथोचित स्थिरता लाना आवश्यक था। इसके लिए सरकार द्वारा खाद्यान्नों के सग्रह को पर्याप्त मात्रा मे बढाना था। साथ ही, मूल्य वृद्धि को रोकने के लिए कृषि और औद्योगिक उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि का आग्रह था।

इनके बावजूद भी इस योजना मे निरन्तर तेजी से मूल्य-वृद्धि हुई। मुख्यत: कृषि-पदार्थों के मूल्य काफी बढ गए। योजना के प्रथम दो वर्षों मे तो मूल्य-वृद्धि नगण्य थी। सन् 1961–62 मे समस्त पदार्थों के मूल्य निर्देशाँक मे 4 6 पाइट की गिरावट आई। किन्तु सन् 1962–63 से मूल्य-वृद्धि शुरू हुई और यह वृद्धि योजना के अन्त तक जारी रही। तृतीय योजना के इन पांच वर्षों मे खाद्य पदार्थों से सम्बन्धित थोक मूल्य निर्देशाँक 48.4% बढ गया। औद्योगिक कच्चे माल, निर्मित माल और समस्त पदार्थों के थोक मूल्य निर्देशाँको मे क्रमश· 32·6%, 22·1% और 36 4% की वृद्धि हो गई। परिणामस्वरूप, अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य निर्देशाँक (All India Consumer Price-Index) (आधार वर्ष 1949 = 100) योजना के प्रारम्भ मे 125 से सन् 1965–66 मे 174 हो गया। इसी प्रकार तृतीय योजना मे भी मूल्यो मे बहुत वृद्धि हुई। इस मूल्य-वृद्धि के लिए पदार्थों की माँग और पूर्ति दोनों से सम्बन्धित घटक उत्तरदायी थे। इस योजनावधि मे चीनी और पाकिस्तानी आक्रमण के कारण सुरक्षा-व्यय मे भारी वृद्धि हुई। सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों मे वैसे भी पर्याप्त पूँजी विनियोजित की गई। जनसख्या मे निरन्तर वृद्धि होती रही, किन्तु कृषि-उत्पादन मे वृद्धि नही हो सकी। साथ ही 1,150 करोड रुपये के हीनार्थ-प्रबन्धन का सहारा लिया गया। मुद्रा-पूर्ति मे भी 51 8% की वृद्धि हुई। योजनावधि मे करो द्वारा भी पर्याप्त राशि एकत्रित की गई। विशेषत· अप्रत्यक्ष करो का अधिक आश्रय लिया गया। इसी कारण मूल्यो मे तेजी से वृद्धि हुई।

योजनावधि मे इस वृद्धि को रोकने के लिए प्रयत्न किए गए। खाद्यान्नो के मूल्यों को नियन्त्रित करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया। उचित मूल्य की दूकानो (Fair Price Shops) की सख्या बढाई गई। सरकार ने अनुदान देकर खाद्यान्नो को कम मूल्य पर जनता को उपलब्ध कराने के प्रयास किए। इन उचित मूल्य वाली दूकानों से जनता को वितरित अनाज की मात्रा निरन्तर बढती गई। यह सन् 1962 मे 43 लाख से बढ कर सन् 1965 मे दुगुने से अधिक हो गई। खाद्यान्नो के सग्रहण के अधिक और अच्छे प्रयत्न किए गए। विदेशो से पर्याप्त मात्रा मे अन्न का आयात किया गया। बडे-बडे नगरों मे उचित वितरण के लिए खाद्यान्नो के राशनिंग का सहारा लिया गया। खाद्यान्नों और आवश्यक पदार्थों के मूल्यो को निर्धारित किया गया और उन्हे वसूल किए जाने का आग्रह किया गया। आवश्यक उपभोग वस्तुओं के अधिक मूल्य लेने और उनके अनावश्यक संग्रह को रोकने के प्रयत्न किए गए। रिजर्व बैंक द्वारा समय-समय पर साख नीति मे इस प्रकार के परिवर्तन किए गए जिनसे बुनियादी उपभोग-वस्तुओ के अनावश्यक सग्रह को रोका जा सके। इसके लिए भारत सुरक्षा नियमों (Defence of India Rules) का सहारा लिया गया और

अनधिकृत संग्रहकर्त्ताओं को दण्डित करने का आयोजन किया गया। किन्तु इसके बावजूद भी तृतीय योजना में मूल्य-वृद्धि को रोका नहीं जा सका। निम्नलिखित सारणी में विभिन्न पदार्थों की वार्षिक वृद्धि दरें दी गई हैं—

मूल्य-निर्देशांकों में वार्षिक वृद्धि दरें (प्रतिशत में)[1]

पदार्थ	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	1966–67
1 सम्पूर्ण वस्तुएँ	7 0	6 4	15 0
2 खाद्यान्न	7 7	8 1	18 4
3 औद्योगिक कच्चा माल	9 4	6 6	20 8
4 निर्मित वस्तुएँ	4 9	4 1	9 2

एकवर्षीय योजनाओं में मूल्य—उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि द्वितीय योजना में शुरू हुआ मूल्य-वृद्धि का क्रम तृतीय योजना में भी जारी रहा और प्रथम एकवर्षीय योजना सन् 1966–67 में तो मूल्यों में वृद्धि-दरें सर्वोपरि रहीं। केवल इसी वर्ष में समस्त वस्तुओं के मूल्यों में 15% और खाद्यान्नों के मूल्यों में 18 4 प्रतिशत की वृद्धि हुई। औद्योगिक कच्चे माल के मूल्यों में भी तेजी से वृद्धि हुई। इसका मुख्य कारण सूखा था। सन् 1967–68 में थोक मूल्यों में 11प्रतिशत और खाद्य पदार्थों के मूल्यों में 21% की वृद्धि हुई। परन्तु सन् 1968–69 की अवधि में मूल्यों में अपेक्षाकृत स्थिरता आई। कुछ पदार्थों के मूल्यों में गिरावट आई। इसका एक प्रमुख कारण मानसून और मौसम की अनुकूलता के कारण कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि होना है।

चौथी और पाँचवीं योजनाएँ—चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में स्थायित्व के साथ आर्थिक विकास (Growth with Stability) करने का उद्देश्य रखा गया। योजना से सम्बन्धित Approach Paper' में स्थायित्व को निम्नलिखित दो उद्देश्यों से सम्बन्धित किया गया—

(i) कृषि पदार्थों की भौतिक उपलब्धि में आने वाले अधिक उच्चावचनों को रोकना।

(ii) मूल्यों में निरन्तर मुद्रा प्रसारित वृद्धि को रोकना।

प्रथम उद्देश्य से सम्बन्धित मुख्य कार्यक्रम कृषि पदार्थों के बफर स्टॉक' का निर्माण करना था। अतः चतुर्थ योजना में पर्याप्त बफर स्टॉक का निर्माण करने का निश्चय किया गया। मुख्य रूप से अनाजों के बफर स्टॉक बनाने पर अधिक ध्यान दिए जाने की बात कही गई। यह आशा व्यक्त की गई कि सरकार मुख्य कृषि पदार्थों की सापेक्षिक मूल्य-संरचना को स्थिर बनाने और इन्हें इस प्रकार नियमित करने की स्थिति में होगी ताकि योजना के कई उद्देश्यों को पूरा करने में योग मिले।[2]

1. रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया बुलेटिन, जून 1967, पृष्ठ 742.
2. Notes on Approach to the Fourth Plan, Growth with Stability

दूसरे उद्देश्य के बारे में यह मत व्यक्त किया गया कि मूल्यों में निरन्तर-मुद्रा प्रसारित वृद्धि को रोकना मुख्य रूप से हीनार्थ प्रबन्धन में संयम पर निर्भर करता है। साथ ही, मूल्यो मे सम्भावित वृद्धि को रोकने हेतु अन्य उपाय और नीतियाँ भी अपनाई जाएँगी। 'उचित मूल्य की दूकानें' और 'उपभोक्ता सहकारी भण्डारो' का पर्याप्त मात्रा मे विस्तार किया जाएगा और उनकी परिधि मे अनेक नई वस्तुएँ भी लाई जाएँगी। इससे आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओ के मूल्यो मे स्थायित्व लाया जा सकेगा। इस प्रकार की व्यवस्था, विशेष रूप से मोसमी उतार-चढावों को रोकने और आकस्मिक दवावो (Sudden pressures) का सामना करने के लिए अधिक सहायक होगी। इस ओर किए गए पूर्व-प्रयत्नो का एकीकरण और विस्तार किए जाने का निश्चय किया गया ताकि पर्याप्त व्यापक और कुशल सार्वजनिक वितरण-प्रणाली (Public system of distribution) को जन्म दिया जा सके। विदेशो से वस्तुओं का आयात और अर्थ-व्यवस्था के सुचालन हेतु आवश्यक विदेशी पदार्थों की प्राप्ति सार्वजनिक अभिकरणो द्वारा किए जाने पर भी बल दिया गया।

उक्त योजना मे यह माना गया कि मूल्य-स्तर को स्थिर बनाए रखने मे कृषि-उत्पादन का महत्त्वपूर्ण भाग होना है। यह कहा गया कि हाल ही के अनुभवो से ज्ञात होता है कि जीवन-स्तर की लागत मे निर्देशांक (Cost of Living Index Number) मे खाद्यान्नो के मूल्य निर्णायक महत्त्व रखते है। अत. रहन-सहन के व्यय को स्थिर बनाए रखने हेतु खाद्यान्नो के मूल्यो को स्थिर रखना आवश्यक है। अतः योजना मे खाद्यान्नो के उत्पादन और मुख्य रूप से कृषि-उत्पादन मे वृद्धि की अनिवार्यता स्वीकार की गई। चतुर्थ योजना मे कृषि-उत्पादन मे 5% वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया। साथ ही, औद्योगिक उत्पादन मे 9% प्रतिवर्ष की वृद्धि तथा अन्य क्षेत्रो मे पर्याप्त वृद्धि का लक्ष्य रखा गया।

पाँचवी योजना मे इस बात पर विशेष ध्यान दिया गया कि आर्थिक विकास इस ढंग से हो ताकि मुद्रा-स्फीति न होने पाए, मूल्यो के बढे हुए स्तर मे गिरावट आए, निर्धन व्यक्तियो के लिए उचित मूल्यो पर उपभोग वस्तुएँ प्राप्त हो सकें— इसके लिए पर्याप्त वसूली और उचित वितरण प्रणाली स्थापित की जाए।

सरकारी प्रयत्न

सम्पूर्ण नियोजन की अवधि में मुद्रा-प्रसारित प्रवृत्तियो के दमन हेतु सरकारी प्रयत्न दोनो दिशाओ से किए गए हैं। इसमे आवश्यक वस्तुओ की पूर्ति बढाने और अत्यधिक माँग को संयमित करने के प्रयत्न किए हैं। आवश्यक वस्तुओं की उत्पादन-वृद्धि के लिए सभी उपाय किए गए हैं। कृषकों को उत्पादन हेतु आवश्यक प्रेरणा प्रदान करने हेतु वस्तुओ के न्यूनतम मूल्य निर्धारित किए गए हैं। खाद्यान्नो के बफर स्टॉक का निर्माण, उसका अधिक अच्छा संग्रहण (Procurement), इनका राजकीय व्यापार और भारी मात्रा मे विदेशो से आयात की व्यवस्था की गई है। आन्तरिक वितरण के लिए सम्पूर्ण देश को खाद्यान्न क्षेत्रों मे विभाजित किया गया और गेहूँ, चावल आदि आवश्यक वस्तुओं के स्वतन्त्र रूप से लाने ले जाने को

नियन्त्रित किया गया। उपभोग वस्तुओं की उचित वितरण व्यवस्था के लिए 'सहकारी उपभोक्ता भण्डार' 'सुपर बाजार' (Super Market) और पर्याप्त मात्रा में 'उचित मूल्य की दूकानें' स्थापित की गईं। सरकार को कृषि-पदार्थों के सम्बन्ध में सलाह देने के लिए सन् 1965 में 'कृषि मूल्य आयोग' (Agricultural Price Commission) नियुक्त किया गया। वस्त्र, साबुन, वनस्पति घी, मिट्टी का तेल, खाद्य तेल, ट्यूब, टायर आदि सामान्य उपयोग की वस्तुओं के मूल्यों को नियन्त्रित और नियमित किया गया। सीमेन्ट, इस्पात, कोयला, चीनी आदि के वितरण और मूल्यों के बारे में भी नियन्त्रण की नीति अपनाई गई। उपभोग को सीमित करने के हेतु मौद्रिक और राजकोषीय नीतियाँ अपनाई गईं। राजकोषीय नीति में कर-वृद्धि, गैर-विकास व्यय में कटौती, कर-चोरी को रोकना, काले धन का पता लगाना, ऐच्छिक बचत में वृद्धि करना आदि के उपाय अपनाए गए। मौद्रिक-नीति के अन्तर्गत साख नियन्त्रण हेतु खुले बाजार की नीति (Open Market Operations), बैंक-दर (Bank Rate) में वृद्धि, चयनात्मक साख नियन्त्रण (Selective Credit Control) और सुरक्षित कोष की आवश्यकताओं में परिवर्तन आदि के सब उपाय अपनाए गए। इसके बावजूद भी नियोजित विकास अवधि में भारत में मूल्यों में स्थायित्व नहीं लाया जा सका और मूल्यों में तेजी से वृद्धि हुई। सन् 1972-73 और 1973-74 में तो थोक और फुटकर मूल्यों में भारी वृद्धि हुई जिससे जन-साधारण के लिए जीवन निर्वाह भी कठिन हो गया।

सरकार ने मूल्य-वृद्धि को रोकने के लिए समुचित और तर्क-सगत मूल्य-नीति को कठोरतापूर्वक लागू करने का निश्चय किया। उत्पादन वृद्धि के लिए बचत-दर अधिक करने और मुद्रा-स्फीति को निष्प्रभावी बनाने के लिए 'हीनार्थ प्रबन्धन' की व्यवस्था पर अकुश लगाने का निश्चय किया गया। मूल्य-नियन्त्रण के लिए प्रशासकीय मशीनरी को अधिक प्रभावशाली बनाने पर ध्यान दिया गया। खाद्यान्नों के उत्पादन के सम्बन्ध में व्यावहारिक अनुमान लगाने और सूखा-ग्रस्त क्षेत्रों में समय-समय पर खाद्यान्नों को पहुँचाने की नीति पर अधिक प्रभावी रूप में अमल किया जाने लगा। सन् 1975-76 में मूल्य-नीति इस बात को ध्यान में रख कर बनाई गई कि कृषिगत वस्तुओं के मूल्यों में स्थिरता आ सके। इसी दृष्टि से सन् 1975-76 के बिक्री के मौसम (अप्रेल-मार्च) के लिए गेहूँ की वसूली का मूल्य गत वर्ष के स्तर पर अर्थात् 105 रुपये प्रति क्विन्टल रखा गया। 'कृषि-मूल्य-आयोग' ने भी महसूस किया था कि सरकार ने गत वर्ष जो वृद्धि स्वीकार की है, वह उस समय में कृषि उत्पादन लागत में हुई वृद्धि की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त है। अधिक वसूली के लिए बोनस स्कीम पर अधिक व्यवस्थित रूप में अमल किया गया। मूल्य स्तर को रोकने के उपायों को सुदृढ करने के लिए खरीफ के अनाज के मूल्यों के बारे में मूल्य-नीति निर्धारित की गई। 'कृषि मूल्य आयोग' की सिफारिशों के अनुरूप खरीफ के अनाज की वसूली का मूल्य सन् 1974 के स्तर पर ही रखा गया। आयोग के सुझाव पर विचार किया गया कि चावल की वसूली के सम्बन्ध में दो प्रकार की प्रोत्साहन

बोनस स्कीमों को जारी किया जाए और मिला दिया जाए ताकि लक्ष्य-पूर्ति को सुनिश्चित करने मे सहायता मिले। कृषि-मूल्य-आयोग ने अनाज की वसूली के मूल्यों मे तो कोई परिवर्तन करने की सिफारिश नही की थी, लेकिन अपनी रिपोर्ट मे गन्ना, जूट और कपास के न्यूनतम समर्थित मूल्यो मे वृद्धि करने का सुझाव दिया था। सरकार ने स्थिति पर पूर्णरूप से विचार करने के पश्चात् गन्ने का मूल्य ज्यों का त्यो रखने का फंसला किया क्योकि कृषको के हित को ध्यान मे रखते हुए कानूनी न्यूनतम मूल्य महत्त्वहीन था। निर्धारित न्यूनतम मूल्य में वृद्धि करने का सबसे बड़ा प्रभाव यह पड़ता, कि लेवी चीनी की लागत और मूल्य बढ़ाने पड़ते और उपभोक्ता के लिए चीनी का मूल्य बढाना पड़ता। सन् 1974-75 के मौसम मे भी लेवी चीनी का अनुपात 70 से घटा कर 65 करके लेवी चीनी की एक समान अखिल भारतीय कीमत बनाए रखी गई थी, जिससे चीनी मिल उद्योग को जो लाभ मिलता है, वह कम न हो। लेवी चीनी का अनुपात घटाने से सरकारी वितरण प्रणाली पर कोई कुप्रभाव नही पड़ा, क्योंकि सन् 1974-75 मे 48 लाख मैट्रिक टन चीनी का उत्पादन हुआ। कपास और जूट के समर्थित मूल्यो के बारे मे सरकार ने 'कृषि मूल्य आयोग' की सिफारिशें मान ली। कपास का उत्पादन अधिक होने पर इसके मूल्य तेजी से नही घटे और चालू वर्ष में भी कपास की अच्छी फसल होने पर मूल्यो मे गिरावट नही आई।

आर्थिक समीक्षा सन् 1976-77 के अनुसार
मूल्य-वृद्धि और सरकारी नीति

थोक कीमतो का सूचक अक, जो 28 सितम्बर, 1974 को समाप्त होने वाले सप्ताह मे 183 4 था, कम होकर 20 मार्च, 1976 को समाप्त होने वाले सप्ताह मे 162·2 रह गया। इसका रुख फिर बदल गया और यह 26 मार्च, 1977 को समाप्त होने वाले सप्ताह मे, फिर बढकर 181·5 हो गया। इस प्रकार पिछले 18 महीनो मे हुई कमी से 26 मार्च, 1977 को समाप्त हुए वर्ष मे 11·6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। किन्तु ज्यादातर वृद्धि मार्च, 1976 और सितम्बर, 1976 के बीच हुई और बाद के छ महीनो मे कीमतें बढी तो अवश्य, पर ज्यादा नही। कीमतो मे वृद्धि मुख्य रूप से कुछ वस्तुओ के उत्पादन मे कमी होने के कारण हुई। जैसा कि मुद्रा-उपलब्धि मे 17 प्रतिशत की वृद्धि से पता चलता है, कुल माँग और पूर्ति के बीच फिर से काफी असन्तुलन पैदा हो गया था, इससे भी कीमतें बढ़ी।

थोक कीमतो के सूचक अक मे वृद्धि होने के कारण उपभोक्ता कीमत सूचक अंक में भी वृद्धि हुई यद्यपि यह वृद्धि अपेक्षाकृत कम थी। मार्च, 1976 और मार्च, 1977 के बीच सूचक अक में 9·1 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

सन् 1976-77 में फिर कीमतो मे उतार-चढाव से होने वाले उस प्रभाव का पता चलता है जो कृषि उत्पादन मे होने वाली घटबढ से कीमतो के स्तर पर पड़ सकता है, खास कर उस स्थिति मे जबकि अर्थ-व्यवस्था के मौद्रिक साधनो मे तेजी से वृद्धि हुई हो। ऐसी परिस्थितियों में कीमतों में स्थिरता बनाए रखने के लिए

यह आवश्यक है कि कृषि उत्पादन को तेज से तेज रफ्तार से बढ़ाया जाए। किन्तु इस समस्या से केवल तत्काल निपटने के लिए तो विदेशों से अन्न का आयात करने और सरकार के सुरक्षित भण्डार में से अनाज सप्लाई करने के अलावा और कोई तात्कालिक उपाय नहीं हो सकता। अतः सरकार ने देश में अनाज की खरीद और विदेशों से आयात के द्वारा सन् 1976–77 के अन्त तक 1.8 करोड़ मैट्रिक टन अनाज का सुरक्षित भण्डार बना लिया था। इस विशाल अन्न भण्डार और पर्याप्त मात्रा में संचित विदेशी मुद्रा के कारण कीमतों को स्थिर रखने की क्षमता काफी हद तक प्राप्त हो गई थी। सन् 1976–77 में इस अनुकूल स्थिति का लाभ उठाकर घरेलू उत्पादन की कमी को पूरा करने के लिए बड़ी मात्रा में खाद्य तेलों और कच्ची रुई को विदेशों से मँगवाया गया। किन्तु कीमतों की स्थिति पर इस नीति का असर कुछ सीमित ही रहा क्योंकि विदेश में रुई की कीमत ऊँची थी और सन् 1977 के पहले भाग में खाद्य तेलों की कीमतों में भी तेजी से वृद्धि हुई। इसके अलावा, चीनी और खाद्यान्नों की कीमतों को बढ़ने से रोकने के लिए सुरक्षित भण्डार में से भी इनकी सप्लाई की गई।

आर्थिक समीक्षा सन् 1977–78 के अनुसार

मूल्य-वृद्धि और सरकारी नीति

थोक कीमतों का सूचक अंक, जो 20 मार्च, 1976 को समाप्त होने वाले सप्ताह में 162.2 तक गिर गया था, बढ़कर 26 मार्च, 1977 को समाप्त होने वाले सप्ताह में 182.1 हो गया। इस प्रकार पिछले वर्ष की तुलना में सूचक अंक 12% ऊँचा था। तथापि यह वृद्धि सापेक्षिक रूप में बहुत कम थी अर्थात् 21 जनवरी, 1978 तक 0.6% से अधिक नहीं उपभोक्ता कीमत सूचक अंक में थोक कीमत सूचक अंक से कुछ अधिक वृद्धि हुई। मार्च, 1977 और दिसम्बर, 1977 के बीच सूचक अंक में 5.8% की वृद्धि हुई जबकि इसी अवधि में थोक कीमतों के सूचक अंक में 1% से भी कम की वृद्धि हुई। सन् 1977–78 में जो मूल्य वृद्धि-व्यवहार रहा वह सरकारी नीति की सफलता का द्योतक है।

भारत सरकार के वित्त मन्त्री के बजट भाषण (28 फरवरी, 1978) के अनुसार स्थिति

भारत सरकार के वित्त मन्त्री श्री एच एम पटेल ने 28 फरवरी, 1978 को अपने बजट भाषण में कहा—

"कार्यभार सम्भालते समय हमें मुद्रा-स्फीति (इन्फ्लेशन) की अत्यन्त विस्फोटक स्थिति विरासत में मिली थी। सन् 1976–77 के दौरान कीमतों में 12% से भी ज्यादा बढ़ोतरी हुई थी। वह एक ऐसा वर्ष था जबकि सकल राष्ट्रीय उत्पाद (ग्रास नेशनल प्राडक्ट) में 2% से भी कम की वृद्धि हुई थी और मुद्रा उपलब्धि में 20% की बढ़ोतरी हुई थी। इस प्रकार सन् 1977–78 का प्रारम्भ उस समय हुआ था जबकि अर्थ-व्यवस्था में नकदी अत्यधिक मात्रा में मौजूद थी जिससे फिर एक बार मुद्रा-स्फीति का नया दौर शुरू होने का डर था। वर्ष के पहले भाग में,

हमारी सरकार ने जनता को दिए गए अपने वचनों को पूरा करने के लिए अनिवार्य जमा योजना (कम्पल्सरी डिपोजिट स्कीम) को वापस ले लिया और 8·33% के साविधिक (स्टेट्यूटरी) बोनस को भी बहाल कर दिया। इन कारणों से निस्सन्देह माँग का दबाव और भी ज्यादा बढ गया। इस पृष्ठभूमि मे, यह बडी खुशी की बात है कि चालू वर्ष के दौरान अर्थ-व्यवस्था का सचालन इस ढंग से किया गया कि जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि कीमतें न बढें। सम्मानित सदस्यों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आज थोक कीमतों का सूचक अंक (इन्डेक्स) उस स्तर से नीचा है जो हमे पिछली सरकार से विरासत में मिला था।

कीमतों में इस प्रकार सापेक्षिक स्थिरता (रिलेटिव स्टेबिलिटी) बनाए रखने में जो सफलता मिली है उसका कारण यह था कि पूर्ति प्रबन्ध और सार्वजनिक वितरण की सक्रिय नीति तथा मुद्रा और ऋण के सम्बन्ध मे प्रतिबन्धात्मक नीति का तत्परता के साथ पालन किया गया। सरकारी भण्डारो से अनाज और चीनी का वितरण उदारतापूर्वक किया गया। देश मे खाद्य तेल, कपास और कृत्रिम रेशो की कमी को पूरा करने के लिए बडी मात्रा में इनका आयात किया गया। अनेक आवश्यक वस्तुओं का निर्यात विनियमित किया गया और उनके शुल्को (एक्सपोर्ट ड्यूटी) में समुचित परिवर्तन किए गए ताकि देश में उनकी उपलब्धता बढाई जा सके। प्रशासनिक और मौद्रिक दोनो प्रकार के कदम उठाए गए ताकि सट्टेबाजी के लिए जमाखोरी न की जा सके और दबा हुआ भण्डार बाजार में आ जाए। इसके साथ ही पर्याप्त उत्पादन के लिए प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से अनाज भिन्न कई वस्तुओं के सम्बन्ध में एक सक्रिय समर्थन-कार्यक्रम (सपोर्ट प्रोग्राम) अपनाया गया। हम औचित्यपूर्वक यह दावा कर सकते हैं कि आवश्यक वस्तुओ के सम्बन्ध में एकीकृत मूल्य और वितरण नीति विकसित करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई है। मुझे इस बात से और भी सन्तोष मिलता है कि कीमतो में सापेक्षिक स्थिरता उस स्थिति में रखी जा सकी जबकि अर्थ-व्यवस्था का तेजी से विस्तार किया जा रहा था।"

16 परियोजना मूल्यांकन के मानदण्ड; विशुद्ध-वर्तमान मूल्य और प्रतिफल की आन्तरिक-दर, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लागत एवं लाभ

(CRITERIA FOR PROJECT EVALUATION, NET PRESENT VALUE AND INTERNAL RATE OF RETURN, DIRECT AND INDIRECT COST AND BENEFITS)

परियोजना मूल्यांकन के मानदण्ड
(Criteria for Project Evaluation)

विनियोजक के समक्ष अनेक विनियोग-विकल्प होते हैं। सर्वाधिक लाभदायक विनियोग सम्बन्धी निर्णय अत्यन्त कठिन होते हैं। विनियोजक के लिए यह निर्णय लेना कि किस परियोजना मे पूंजी विनियोग करे, अनेक मानदण्डो पर निर्भर करता है। विनियोग सम्बन्धी निर्णय लेने की अनेक विधियां हैं। इन विधियो के अन्तर्गत विनियोग परियोजना के 'लागत प्रवाह' (Cost flows) तथा 'आय प्रवाह' (Income flows) का विचार किया जाता है। इन प्रवाहो के विश्लेषण द्वारा विनियोग निर्णय लिए जाते हैं। प्रवाहो के विश्लेषण की तकनीकी को प्राय 'लाभ-लागत विश्लेषण विधि' (Cost Benefit Method) कहा जाता है। इस विधि का मुख्य आधार विनियोग के प्रतिफल की आन्तरिक दर को ज्ञात करना होता है। यह दर अनेक विधियो द्वारा ज्ञात की जा सकती है। इसे छः कल्पित विनियोग परियोजनाओ के एक उदाहरण द्वारा अग्रलिखित सारणी मे समझाया गया है।

सारणी 1

परियोजना लागत एवं प्रतिफल दर[1]
(Project Cost and Rate of Returns)

परियोजना (Project)	0	1	2	3	4	5	शुद्ध अवधि 1—5 (Net Periods)	शुद्ध आय 0—5 (Net returns Periods)
A	—100	100	10	—	—	—	110	10
B	—100	50	50	10	10	—	120	20
C	—100	40	30	30	20	—	130	30
D	—100	28	28	28	28	—	140	40
E	—100	10	20	30	40	—	150	50
F	—100	—	—	—	40	—	160	60

उक्त सारणी के माध्यम से परियोजना मूल्यांकन की निम्न तीन प्रकार की प्रतिफल-दरो की गणना की गई है—

(1) औसत प्रतिफल-दर (Average rate of return)

(2) मूल-राशि की प्राप्ति से सम्बन्धित अवधि वाली प्रतिफल-दर (Pay off period rate of return)

(3) आन्तरिक प्रतिफल-दर (Internal rate of return)।

(a) प्रत्येक योजना का मूल लागत व्यय 100 रुपये है। (b) प्रत्येक की परिपक्वता अवधि 5 वर्ष है। (c) प्राप्त लाभो के पुन विनियोग की सम्भावना पर विचार नही किया गया है।

1 से 5 तक के कॉलमो मे प्रतिवर्ष होने वाले आय-प्रवाहो को प्रदर्शित किया गया है। शून्य अवधि वाले कॉलम मे प्रत्येक परियोजना की लागत कम बताई गई है। अन्तिम कॉलम मे कुल लाभो में से मूल लागत व्यय को घटाकर विशुद्ध लाभ बताए गए हैं। अन्तिम से पूर्व वाले कॉलम मे परियोजना की पूरी 5 वर्ष की अवधि वाले कुल लाभ बताए गए हैं।

(A) औसत प्रतिफलदर विधि
(Average Rate of Return Method)

औसत प्रतिफल-दर निम्नलिखित दो प्रकार की होती है—(a) प्रारम्भिक विनियोग पर कुल औसत प्रतिफल-दर, (b) प्रारम्भिक विनियोग पर शुद्ध औसत प्रतिफल-दर। प्रारम्भिक विनियोग पर कुल औसत प्रतिफल-दर को प्रत्येक परियोजना के कुल लाभों को योजनावधि से विभाजित करके निकाला जाता है। इस प्रकार A, B, C, D, E, F परियोजनाओं के लिए यह दर क्रमश: 22, 24, 26, 28

1. *Henderson* ; Public Enterprise, ed. by R. Turvey p 158.

30, 32 होगी। प्रारम्भिक विनियोग पर शुद्ध औसत प्रतिफल दर अन्तिम कॉलम मे दिए गए शुद्ध लाभो को अवधि से विभाजित करके ज्ञात की जाती है। उक्त परियोजनाओ के लिए यह दर क्रमश 2, 4, 6, 8, 10 व 12 है।

(B) मूल लागत की प्राप्ति वाली प्रतिफल दर (Pay off Period Rate of Return)

मूल लागत की प्राप्ति जिस अवधि मे होती है उसकी गणना करते हुए प्रतिफल दर इस प्रकार ज्ञात की जाती है—उन लाभो को जोड लिया जाता है, जो मूल लागत के बराबर होते है। जिस अवधि तक लाभो का योग मूल लागत के बराबर होता है, उस अवधि के आधार पर प्रतिफल दर का प्रतिशत ज्ञात किया जाता है। उक्त उदाहरण मे परियोजना A के लिए केवल एक ही वर्ष म इसका लागत व्यय प्राप्त हो जाता है। अत इसे 100% के रूप में व्यय किया जाएगा। B परियोजना मे चूंकि मूल लागत दो वर्षों मे प्राप्त होती है, अत प्रतिवर्ष औसत प्राप्ति दर 50% होगी। C परियोजना में मूल लागत की प्राप्ति में 3 वर्ष लगते हैं। अत प्रतिवर्ष की औसत प्राप्ति दर $\frac{100}{3}$ या $33\frac{1}{3}\%$ होती है। इस प्रकार, सभी परियोजनाओ के प्रतिशत मे औसत दर ज्ञात की जा सकती है, वह क्रमश 28%, 25%, तथा $22\frac{2}{9}\%$ होगी।

उक्त विधियो मे एक गम्भीर दोष यह है कि इनमे शुद्ध लाभो की प्रत्येक अवधि का विचार नही किया जाता। केवल वार्षिक औसत निकाला जाता है। यद्यपि मूल्य राशि की प्राप्ति से सम्बन्धित अवधि वाली प्रतिफल दर (The Pay off Period Rate of Return) म समय का विचार किया जाता है, तथापि उस अवधि को छोड दिया जाता है, जिसम पूर लागत व्यय की वसूली होने के पश्चात् भी लाभो का मिलना जारी रहता है।

(C) आन्तरिक प्रतिफल दर (Internal Rate of Return)

आन्तरिक प्रतिफल दर वाली विधि इन सभी से श्रेष्ठ मानी जाती है, क्योंकि इसमें उन समस्त वर्षों की गणना म विचार किया जाती है, जिनम लागत और लाभ होते रहते हैं। आन्तरिक प्रतिफल दर की परिभाषा उस कटौती-दर के रूप म की जाती है, जो लाभ व लागत के प्रवाहो के वर्तमान कटौती मूल्य को शून्य के बराबर कर देती है। आन्तरिक प्रतिफल दर (IRR) विभिन्न परियोजनाओ के लिए निम्नलिखित सूत्र द्वारा ज्ञात की जा सकती है—

$$-Y_0+\frac{Y_1}{(1+r)}+\frac{Y_2}{(1+r)^2}=0$$

जिसमे $-Y_0$=मूल्य लागत तथा Y_1 व Y_2 प्रथम व द्वितीय वर्ष के लाभ प्रकट करते हैं। r=आन्तरिक प्रतिफल दर। $\frac{1}{(1+r)}=x$ रखने हुए उक्त समीकरण को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

$$-Y_0+Y_1x+Y_2x^2=0$$

इस समीकरण में परियोजना A के लाभ-लागत राशियों को रखकर इस योजना की आन्तरिक प्रतिफल दर निम्न प्रकार निकाली गई है—

$$-100+100x+10x^2=0$$

या $$10x^2+100x-100=0$$

या $$x^2+10x-10=0$$

$$\therefore x=\frac{-10+\sqrt{(10)^2-4x-10^*}}{2}$$

$x=\cdot916$ मान को, $r=\frac{1-x}{x}$ रखने पर आन्तरिक प्रतिफल दर 9·1% या ·09 आती है। इसी प्रकार अन्य परियोजनाओं की दर ज्ञात की जा सकती है, जो क्रमशः 10·7, 11·8, 12·4, 12·0 व 10·4 है।

उक्त परिणामों को निम्नलिखित सारणी में स्पष्ट किया गया है—

सारणी 2

परियोजना प्रतिफल दर
(प्रतिशत मे)

परियोजना	(A) औसत प्रतिफल दर (i) विनियोग पर कुल प्रतिफल	(ii) विनियोग पर शुद्ध प्रतिफल	(B) मूल राशि की प्राप्ति से सम्बन्धित अवधि वाली प्रतिफल दर (Pay off period rate of return)	(C) आन्तरिक प्रतिफल दर (IRR)
A	22	2	100	9·1
B	24	4	50	10·7
C	26	6	$33\frac{1}{3}$	11·8
D	28	8	28	12·4
E	30	10	25	12·0
F	32	12	$22\frac{2}{9}$	10·4

उक्त विधियों के अतिरिक्त, वर्तमान मूल्यों के आधार पर भी विभिन्न परियोजनाओं के तुलनात्मक लाभ देखे जा सकते हैं। परियोजना के वर्तमान मूल्य ज्ञात करने का सूत्र है—

$$\text{वर्तमान मूल्य}=\frac{R_1}{(1+r)}+\frac{R_2}{(1+r)^2}+\cdots\frac{R_n}{(1+r)^n}+\cdots$$

*Quadratic समीकरण के सूत्र—$b\pm\frac{\sqrt{b^2-4ac}}{a^2}$ के अनुसार x का मूल्य ज्ञात किया गया है।

इस समीकरण मे r का अर्थ ब्याज की बाजार-दर से है। R परियोजना से प्राप्त लाभो को प्रकट करते है। दी हुई परियोजनाओ के वर्तमान मूल्य 2½%, 8% तथा 15% के आधार पर निकाले गए हैं। इन परिणामो को सारणी 3 मे प्रदर्शित किया गया है।

सारणी 3

विभिन्न ब्याज दरों पर परियोजनाओं के वर्तमान मूल्य[1]
(Project Present Values at Different Interest Rates)

परियोजना	2½%	8%	15%
A	7 1	1 2	— 5 4
B	14 8	4 5	— 6 4
C	22 4	8 0	— 6 4
D	30 1	11 8	— 6 2
E	37 1	13 6	— 8 7
F	42 3	11·1	—17 4

सारणी के आधार पर विभिन्न परियोजनाओ को उनके प्रतिफल की अधिकता के क्रम मे विभिन्न श्रेणियो मे विभक्त कर, यह देखा जा सकता है कि कौनसा विनियोग विकल्प अन्य से कितना अधिक लाभदायक है।

सारणी 4 मे इन श्रेणियो को दर्शाया गया है।

सारणी 4

नियोजन की वैकल्पिक विधियो द्वारा परियोजनाओ को प्रदत्त-श्रेणी[2]

श्रेणी	औसत प्रतिफल-दर	अवधि (Pay off Period)	आन्तरिक ब्याज दरो पर प्रतिफल-दर	वर्तमान मूल्य 9½%	8%	15%
1	F	A	D	F	E	A
2	E	B	E	E	D	D
3	D	C	C	D	F	B
4	C	D	B	C	C	C
5	B	E	F	B	B	E
6	A	F	A	A	A	F

इन श्रेणियो को ध्यान मे रखकर विनियोजक विनियोग-विकल्प का चुनाव करता है। सर्वप्रथम वह प्रथम श्रेणी के विनियोग मे अपनी पूंजी लगाता है। उदाहरणार्थ वह औसत प्रतिफल-दर विधि का प्रयोग करता है तो सर्वप्रथम F परियोजना में विनियोग करेगा। Pay off अवधि विधि के अन्तर्गत A परियोजना

1. Ibid, p 161
2 Ibid, p 162

में तथा आन्तरिक प्रतिफल-दर विधि में D परियोजना को विनियोग के लिए चुनेगा। इसी प्रकार, वर्तमान मूल्य विधि में विभिन्न विनियोग विकल्पों के चुनाव किए जा सकते हैं।

परियोजना मूल्यांकन की वर्तमान कटौती-मूल्य-विधि
(The Present Discounted-Value Criteria of Evaluation)

लाभ-लागत विश्लेषण (Benefit-Cost Analysis), परियोजना मूल्यांकन की एक आधुनिक तकनीकी है। सर्वप्रथम इसका विकास व प्रयोग अमेरिका मे किया गया। इस विधि द्वारा अनेक विकास परियोजना प्रस्तावों का आर्थिक मूल्यांकन किया गया है। लाभ-लागत विश्लेषण की अनेक विधियाँ हैं, जिनमें मुख्य (1) विशुद्ध वर्तमान मूल्य विधि (Net Present Value Criteria), (2) आन्तरिक प्रतिफल-दर (Internal Rate of Return) आदि हैं।

विशुद्ध वर्तमान-मूल्य-विधि
(Net Present-Value-Criteria)

परियोजना मूल्यांकन की इस विधि मे परियोजना के आय प्रवाह (Income Flows), लागत-व्यय (Cost-outlay) तथा ब्याज अथवा कटौती-दर का विचार किया जाता है। इन तत्त्वों के आधार पर किसी भी परियोजना के वर्तमान कटौती मूल्य की गणना निम्नलिखित सूत्र के आधार पर की जा सकती है—

$$PV = -Y_0 + \frac{Y_1}{(1+r)} + \frac{Y_2}{(1+r)^2} + \frac{Y_3}{(1+r)^3} + ... + \frac{Y_n}{(1+r)^n} + ...$$

$$\text{अथवा } PV = -Y_0 + \sum_{t=1} \frac{Y}{(1+r)^t}$$

सूत्र मे :

PV = दी हुई परियोजना का वर्तमान कटौती-मूल्य,

$-Y_0$ = प्रारम्भिक लागत व्यय,

$Y_1, Y_2 .... Y_n$ क्रमशः प्रथम, द्वितीय तथा n वर्षों की आय को प्रकट करते हैं

r = ब्याज अथवा कटौती-दर।

मान लीजिए किसी परियोजना से सम्बन्धित निम्नलिखित सूचनाएँ दी हुई हैं—

आय-प्रवाह = —100, 50, 150

कटौती-दर 10% अथवा ·1 (मूलराशि के इकाई होने पर)

– 100 = प्रारम्भिक लागत व्यय तथा 50 व 150 क्रमशः प्रथम व द्वितीय वर्ष की आय प्रकट करते हैं, अर्थात् $Y_1 = 50$ व $Y_2 = 150$

इन सूचनाओं को उक्त सूत्र मे रखते हुए 2 वर्षों की अवधि पर्यन्त परियोजना का वर्तमान शुद्ध कटौती-मूल्य निम्न प्रकार ज्ञात किया जा सकता है—

$$-100 + \frac{50}{1+\cdot 1} + \frac{150}{(1+\cdot 1)^2} = 66{\cdot}5$$

वास्तव मे, परिसम्पत्ति का कुल वर्तमान-मूल्य (Gross Present Value) उक्त उदाहरण मे 166·5 होगा, किन्तु इसमे से लागत-व्यय 100 के घटाने पर शेष

मूल्य को 'विशुद्ध वर्तमान मूल्य' (Net Present Value) कहा जाता है। अत विशुद्ध वर्तमान मूल्य 166 5—100=66 5 है ।

यदि एक लाभ के स्रोत (Benefit Stream) को B_0, B_1, B_2,....B_n के रूप मे प्रकट किया जाता है तथा जिसमे सभी B धनात्मक अथवा शून्य या ऋणात्मक हो सकते हैं। निम्नलिखित सूत्र द्वारा वर्तमान कटौती–मूल्य प्रकट किया जा सकता है–

$$B_0+\frac{B_1}{(1+r)}+\frac{B_2}{(1+r)^2}+\cdots\cdots\frac{B_n}{(1+r)^n}$$

सक्षेप मे

$$\sum_{t=0}^{t=1}\frac{B^t}{(1+r)_{..}}$$

जिसमे r कटौती दर को प्रकट करता है।[1]

इस अवधि मे r का उपयुक्त चुनाव करना विशेष महत्त्व रखता है। सामान्यत यह माना जाता है कि ब्याज की सही दर वह है जो समाज के समय अधिमान की दर (Rate of Social Time Preference) को दर्शाती है। उदाहरणार्थ यदि कोई समाज वर्तमान वर्ष के 100 रु को दूसरे वर्ष के 106 रु के समान महत्त्व देता है तो उस समाज की समय अधिमान दर 6% प्रति वर्ष होगी।

उक्त विधि के सम्बन्ध मे निम्नलिखित तीन उल्लेखनीय प्रस्थापनाओं (Propositions) पर विचार करना आवश्यक है—

1 विशुद्ध वर्तमान-मूल्य अथवा लागत पर वर्तमान मूल्य का अतिरेक कटौती दर पर निर्भर करता है। यदि विशुद्ध लाभो का प्रवाह—100, 0, 150 है, तो इनका वर्तमान-मूल्य $r=1$ होने पर 48 से कुछ कम होगा तथा $r=5$ की स्थिति मे यह मूल्य—$\frac{100}{3}$ होगा

2 विनियोग का कौन-सा प्रवाह अधिकतम वर्तमान कटौती-मूल्य उत्पन्न करता है, इस प्रश्न का उत्तर सामान्यत कटौती दर पर निर्भर करता है। यदि प्रथम प्रवाह—50, 20 और 80 तथा दूसरा प्रवाह–60, 20 तथा 70 हो तो प्रथम प्रवाह के अधिशासी (Dominant) होने की स्थिति मे, किसी भी कटौती-दर के, इसका कटौती-मूल्य दूसरे प्रवाह के कटौती मूल्य की अपेक्षा अधिक होगा। यदि दो प्रवाह–100, 0, 180 और–100, 165 और 0 हो तो 1% की कटौती-दर की स्थिति मे प्रथम कटौती-मूल्य लगभग 76 तथा दूसरे का 63 होगा। अत प्रथम प्रवाह को प्रथम श्रेणी (Rank First) तथा दूसरे को द्वितीय श्रेणी (Rank Second) मिलेगी। $r=5$ की स्थिति मे प्रथम प्रवाह का कटौती-मूल्य –20 तथा इसकी श्रेणी द्वितीय होगी, जबकि दूसरा प्रवाह वर्तमान-मूल्य के 10 होने के कारण प्रथम श्रेणी प्राप्त करेगा।

1 *E J Mishan* Cost-Benefit Analysis p 190

उक्त उदाहरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि 1% व 5% के मध्य एक निश्चित सामाजिक कटौती-दर होती है, जिस पर दोनों प्रवाहों का *वर्तमान* कटौती-मूल्य एक दूसरे के बराबर होता है। इस दर को हम r^* से प्रकट कर सकते हैं। r^* को दोनों प्रवाहों के वर्तमान मूल्यों को एक दूसरे के समान समीकरण में रखते हुए सरलता से मालूम किया जा सकता है अर्थात् उक्त प्रवाहों को निम्न प्रकार रखने पर—

$$-100+\frac{180}{(1+r)^2}=-100+\frac{165}{(1+r)}$$

चित्र–7
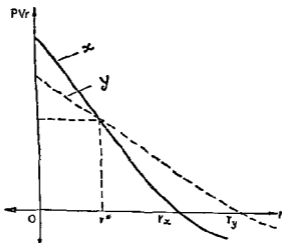
सामान्यत हम किसी एक विशेष विनियोग प्रवाह का कटौती-दर के अनुरूप वर्तमान-मूल्य निर्धारित करते है। उक्त चित्र मे X परियोजना का उदाहरण लिया जा सकता है। चित्र मे लम्ब अक्ष पर PV_r या विनियोग का वर्तमान मूल्य दर्शाया गया है तथा क्षितिजीय अक्ष पर सामाजिक कटौती-दर दिखाई गई है। X प्रवाह का वर्तमान-मूल्य r के आधार का विपरीत होगा अर्थात् जितना अधिक r होगा उतना ही विनियोग प्रवाह का वर्तमान मूल्य कम होगा। इसीलिए X चक्र ऋणात्मक ढाल वाला है। ऋणात्मक ढाल का क्षितिजीय अक्ष को काट कर नीचे की ओर बढना यह प्रकट करता है कि 50% कटौती-दर पर प्रवाह का वर्तमान-मूल्य ऋणात्मक हो जाता है (जैसे— 100, 0, 180 का 50% से कटौती-मूल्य =—20) इसी प्रकार का सम्बन्ध Y प्रवाह के लिए स्थापित किया जा सकता है।

यदि दोनों प्रवाहो में से किसी एक प्रवाह की स्थिति अधिशासी (Dominant) होती है, तो प्रत्येक कटौती-दर पर इस प्रवाह की स्थिति सभी अन्य प्रवाहों से ऊँची

* r के लिए समीकरण का हल, इसका मूल्य लगभग 9% प्रकट करेगा।

होगी । अधिशासन की अनुपस्थिति मे X और Y एक दूसरे को चित्र के या तो धनात्मक क्वाडरेंट (Quadrant) अथवा ऋणात्मक क्वाडरेंट (Quadrant) मे काटेंगे । केवल r^* की स्थिति के अतिरिक्त अन्य सभी स्थितियो मे दोनो प्रवाहो के वर्तमान मूल्य विभिन्न कटौती दरो के अनुसार भिन्न भिन्न होंगे । r^* पर दोनो के मूल्य समान होते हैं तथा r^* से कम पर X का मूल्य Y से अधिक होता है । अन्त मे चित्र r_x व r_y कटौती दरो को देखा जा सकता है, जिन पर दोनो प्रवाहो की कटौती दर शून्य है ।

पूर्व वर्णित निष्कर्षों के अतिरिक्त इस विधि से किसी परिसम्पत्ति के विकास-पथ के दिए हुए होने की स्थिति मे वह अवधि (Optimal gestation period) जिसमे सम्पत्ति का अधिकतम शुद्ध वर्तमान मूल्य प्राप्त किया जा सकना सम्भव है, ज्ञात की जा सकती है । यह पथ निम्न चित्र मे दर्शाया गया है

चित्र-8
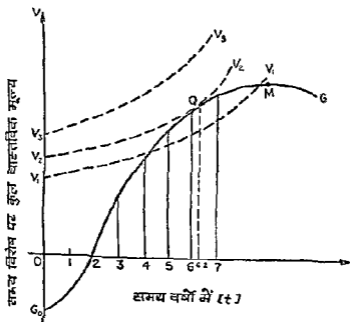
चित्र मे कटौती दर द्वारा किसी परिसम्पत्ति की उस अनुकूलतम या इष्टतम परिपक्वता अवधि (Optimal gestation period) का निर्धारण समझाया गया है, जिसमें सम्पत्ति का वर्तमान मूल्य अधिकतम होता है ।

तब उसका मूल्य पेड की वृद्धि के अनुपात में बढता जाता है । उदाहरणार्थ, जब टिम्बर का पौधा लगाया जाता है ।

G_0G द्वारा विकास पथ प्रकट किया गया है, OG_0 टिम्बर के प्रारम्भिक लागत को प्रकट करता है । इसलिए इसे एक ऋणात्मक माना के रूप में चित्र में

प्रदर्शित किया गया है। क्षितिजीय अक्ष से O_0G वक्र पर डाले गए लम्ब किसी समय विशेष पर टिम्बर के मूल्यों को दर्शाते हैं। दो वर्ष की अवधि वाले बिन्दु पर टिम्बर का शुद्ध-मूल्य होता है। विभिन्न लम्बों की ऊँचाइयां वैकल्पिक विनियोगों के प्रवाह (Alternative Investment Stream) को प्रकट करती है। यदि $OG_0=50$ मानी जाती है, तो 4 वर्ष की अवधि वाला लम्ब टिम्बर के मूल्य को 100 के बराबर प्रकट करेगा। इसी प्रकार चित्र की सहायता से विभिन्न विनियोग विकल्पों के आय–प्रवाहों को निम्न प्रकार प्रकट किया जा सकता है—

जब	आय-प्रवाह
$t=5$	50,0,0,0,0,112
$t=6$	50,0,0,0,0,0,120

इसी प्रकार $t=7,8,9$ आदि की स्थिति में विभिन्न विनियोग विकल्पों को प्रकट किया जा सकता है। किन्तु समझना यह है कि इन विनियोग विकल्पों में से कौनसा विकल्प सर्वाधिक लाभदायक होगा। इसे हम सामाजिक कटौती-दर के आधार पर विभिन्न कटौती-वक्रों की रचना करके ज्ञात कर सकते है। मान लीजिए $r=5\%$ दिया हुआ है। इससे V_1V_1 कटौती वक्र की रचना की गई है। इस वक्र में यदि हम OV_1 पर 80 का माप करते हैं तो $t=1$ के बिन्दु पर लम्ब की ऊँचाई 84, $t=2$ पर 88·2 और इसी प्रकार एक-एक वर्ष से बढती हुई अवधि में 5% की अधिकता से लम्बो की ऊँचाइयां अधिक होती चली आएंगी। इस उदासीन वक्र का प्रत्येक बिन्दु समाज के लिए समान महत्त्व रखेगा, क्योंकि r—5% होने पर वर्तमान वर्ष के 100 व आगामी वर्ष के 105 मे विनियोजक कोई अन्तर नही करेगा। समान सन्तोष की अनुभूति करते हुए इन बिन्दुओ के प्रति वह उदासीन रहेगा।

इसी प्रकार लम्ब अक्ष पर अन्य उदासीनता वक्रो की रचना की जा सकती है। चित्र मे V_2V_2 व V_3V_3 इसी प्रकार के दो अन्य उदासीन वक्र दिए हुए हैं। इन उदासीन वक्रो मे से हमको उच्चतम वक्र का चुनाव करना चाहिए जो विकास-पथ के वक्र को स्पर्श करता है। V_2V_2 चित्र में उच्चतम उदासीन वक्र है। Q स्पर्श बिन्दु है, जहाँ $t=6\ 2$ वर्ष है। निष्कर्षतः शुद्ध लाभो के प्रवाह का 5% की कटौती-दर पर अधिकतम वर्तमान-मूल्य OV_2 ऊँचाई द्वारा प्रकट होगा तथा परिपक्वता अवधि 6-2 वर्ष होगी। विशुद्ध वर्तमान मूल्य OV_2-OG_0 द्वारा प्रकट होगा।

आन्तरिक प्रतिफल-दर
(Internal Rate of Return or IRR)

आन्तरिक प्रतिफल दर (The Internal Rate of Return) विनियोग मूल्यांकन की एक श्रेष्ठ विधि है। विनियोजक के समक्ष अनेक विनियोग विकल्प होते हैं। अपनी पूंजी को किस विनियोग में लगाए, यह उसके सामने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न होता है। उदाहरणार्थ, दो विनियोग हैं—(1) एक ट्रक का (2) एक पनवाड़ी का।

सन्	1974	1975	1976	1977	1978	1979	1980
पनवाडी	500	500	500	500	500	500	500
ट्रक	5000	5000	6000	10,000	200	100	20

ट्रक से समान आय प्राप्त नही हो रही है, किन्तु पनवाडी से प्राप्त होने वाली आय की राशि सभी वर्षों मे समान है। अत समस्या यह है कि उक्त दोनो विनियोगो से प्राप्त आय की परस्पर तुलना किस प्रकार की जाए। इस प्रश्न का उत्तर आन्तरिक प्रतिफल दर द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। प्रतिफल की आन्तरिक दर की सहायता से आय-प्रवाह को वर्तमान-मूल्य मे परिवर्तित किया जा सकता है। तत्पश्चात् प्रत्येक परियोजना का वर्तमान मूल्य व उसकी लागत का अनुपात $= \frac{V-C}{C}$ के रूप मे निकाला जाता है। जिस परियोजना का उक्त अनुपात अधिक होगा, उसे श्रेष्ठतर समझा जाएगा।

अत आन्तरिक प्रतिफल दर वह दर होती है, जो विनियोग के आय-प्रवाह व वर्तमान मूल्य को विनियोग की लागतो के वर्तमान मूल्य के ठीक बराबर कर देती है, अथवा यदि लाभ-लागत प्रवाहो के वर्तमान-मूल्यो को जोडा जाता है, तो योगफल शून्य के बराबर होगा।[1]

इस दर को निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है—

$$-Y_0 - \frac{Y_1}{(1+r)} - \frac{Y_2}{(1+r)^2} + \frac{Y_3}{(1+r)^3} + \dots + \frac{Y_n}{(1-r)^n} + \dots\dots$$

सक्षेप मे

$$-Y_0 \sum_{t=1}^{n} \frac{Y_n}{(1+r)_n}$$

$\frac{1}{(1+\ )^t} = x$ रखते हुए पूरे प्रवाह मे r का मान ज्ञात किया जा सकता है। r का मान ही आन्तरिक प्रतिफल दर कहलाती है। इसे कुछ विनियोग परियोजनाओ के उदाहरण लेकर गणितीय रूप मे भी अग्रांकित प्रकार से समझाया जा सकता है—

परियोजना	लागत (रु मे) $(-Y_0)$	I वर्ष की आय (रु) (Y_1)	II वर्ष की आय (रु) (Y_2)
A	10,000	10,000	0
B	10,000	10,000	1100

1 "The internal rate of return is that rate of discount which makes the present value of the entire stream-benefits and costs-exactly equal to zero"
—E J Mishan : Cost-benefit Analysis, p 198

उक्त सूचनाओं को दिए हुए सूत्र में रखने पर

परियोजना A

$$-10,000+10,000\,x=0$$
$$x=0$$
$$x \text{ या } IRR=0$$

परियोजना B

$$-10000+10000x+1100x^2=0$$

अथवा $-100+100x+11x^2=0$

या $\dfrac{-100+\sqrt{(100)^2+11\cdot 1004}}{2\cdot 11}$

$\because x=\cdot 90$ $\quad\therefore r$ या $IRR=\cdot 10$

संक्षेप में r or $IRR=\dfrac{1-x}{x}$

इसी प्रकार अन्य परियोजनाओं की प्रतिफल दर ज्ञात की जा सकती है। *जिस क्रम में यह दर विभिन्न परियोजनाओं की स्थिति में अधिक होगी, उसी क्रम में* विनियोजक अपनी पूंजी का विनियोग करेगा। उक्त उदाहरण में परियोजना A की अपेक्षा परियोजना B श्रेष्ठ है। अतः पूंजी विनियोजन परियोजना B में ही होगा।

आन्तरिक प्रतिफल दर को चित्र द्वारा भी समझाया जा सकता है—

चित्र–9
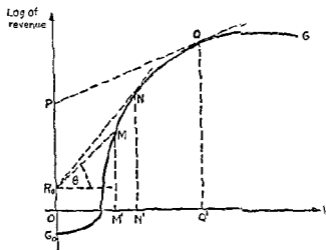
चित्र में G_0G विकास-पथ दिया हुआ है। इस पर R_0 से एक सीधी रेखा खींची गई है। इस रेखा का विकास वक्र के किसी भी बिन्दु पर जो ढाल (Slope) है वही आन्तरिक प्रतिफल दर (IRR) को प्रकट करती है। चूंकि ढाल निर्धारण स्पर्

बिन्दु से किया जाता है, जो NN' से प्रकट किया गया है। M बिन्दु पर R_0 से डाली गई सीधी रेखा $OR_0 = OG_0$ अर्थात् लाभ-लागत-प्रवाहो के वर्तमान-मूल्यो को परस्पर बराबर प्रकट करती है। OG_0 परियोजना की प्रारम्भिक लागत को प्रकट करता है तथा OR_0 परियोजना के लाभो के प्रवाह के वर्तमान-मूल्य को प्रकट करता है।

चित्र मे—

OX पर समय

OY पर आगम (लॉग स्केल)

OP = उच्चतम वर्तमान मूल्य 5% की सामयिक कटौती दर के अनुसार

OQ' = अधिकतम परिपक्वता अवधि (Optimum Gestation Period) वर्तमान मूल्य वाले मापदण्ड (Present Value Criterion) के अनुसार।

इसी परिणाम को आन्तरिक प्रतिफल दर वाले मापदण्ड द्वारा भी ज्ञात किया जा सकता है लेकिन इससे पूर्व हमे यह देखना है कि इस चित्र मे आन्तरिक प्रतिफल दर को किस प्रकार दर्शाया जा सकता है।

हम यह जानते हैं कि आन्तरिक प्रतिफल दर के अन्तर्गत लाभ-प्रवाह के वर्तमान-मूल्य मे लागत प्रवाह के वर्तमान-मूल्य को घटाने से शून्य शेष रहता है।

चित्र मे हम OG_0 व OR_0 के निरपेक्ष मूल्य समान मानते है, तो विकास-वक्र G_0G पर R_0 बिन्दु से खीची गई सीधी रेखा (M बिन्दु पर) का ढाल को आन्तरिक प्रतिफल दर का प्रतीक माना जा सकता है।

ढाल को ज्ञात करने के लिए हम $\tan \theta$ निकालते हैं।

$$\tan \theta = \frac{\text{लम्ब}}{\text{आधार}} = \frac{MK}{R_0K} = \frac{M'M - M'K}{OM'}$$

$$= \frac{\text{कुल आगम (Total Compounded Benefit)} - \text{लागत}}{OM' \text{ अवधि}}$$

$\tan \theta$ द्वारा व्यक्त कटौती-दर को हम इसलिए आन्तरिक प्रतिफल दर मानते हैं क्योकि यह दर $M'M$ भावी लाभो को OR_0 के बराबर वर्तमान-मूल्य मे बदल देती है, जो प्रारम्भिक लागत OG_0 के बराबर होता है। उच्चतम सम्भव आन्तरिक प्रतिफल दर (Highest Possible Internal Rate of Return) R_0 से N बिन्दु पर विकास-पथ G_0G पर डाली गई स्पर्श-रेखा (Tangent) से निर्धारित होती है, क्योकि R_0N की तुलना मे किसी भी अन्य विकास-पथ पर डाली गई सीधी रेखा का ढाल अधिक नही हो सकता है। यदि उच्चतम प्रतिफल दर वाली अवधि को 'अनुकूलतम विनियोग अवधि' (Optimum Investment Period) के रूप मे परिभाषित किया जाता है, तो यह चित्र मे ON' द्वारा प्रकट होता है, जो स्पष्टत OQ' से कम है। वह वर्तमान-मूल्य मापदण्ड वाली विधि की अनुकूलतम अवधि को दर्शाता है।

IRR व NPV मापदण्डों की तुलना

विनियोग विकल्पों के दोनों मापदण्ड—आन्तरिक प्रतिफल दर (*IRR*) तथा शुद्ध वर्तमान-मूल्य (*NPV*) वैज्ञानिक हैं। विनियोग निर्णय से दोनों का ही सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। दोनों विधियों की अपनी कुछ ऐसी निजी विशेषताएँ हैं कि स्पष्टतः यह कह देना कि दोनों में से कौन श्रेष्ठ है, अत्यधिक कठिन है। इन विधियों में दो मूल अन्तर हैं—

1. आन्तरिक प्रतिफल दर वाले मापदण्ड में प्रयुक्त कटौती-दर का पूर्व ज्ञान नहीं होता है। यह दर स्वयं-सम्पत्ति के कलेवर में अन्तर्निहित होती है (This rate is built in the body of the asset itself)। वर्तमान-मूल्य वाले मापदण्ड में कटौती-दर पहले से ज्ञात होती है। प्रायः ब्याज की बाजार-दर के अनुसार, इस मापदण्ड में सम्पत्ति का मूल्य ज्ञात किया जाता है।

2. आन्तरिक प्रतिफल-दर, एक ही विनियोग प्रवाह के लिए, एक से अधिक हो सकती है। उदाहरणार्थ,

विनियोग प्रवाह (Investment Stream) $= -100, 350, -400$

IRR की परिभाषा के अनुसार—

$$-100+\frac{350}{(1\times\lambda)}-\frac{400}{(1+\lambda)^2}=0$$

दो दर प्राप्त होंगी—

$\lambda_1=46\%$

$\lambda_2=456\%$

इस स्थिति को चित्र में निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है—

चित्र–10
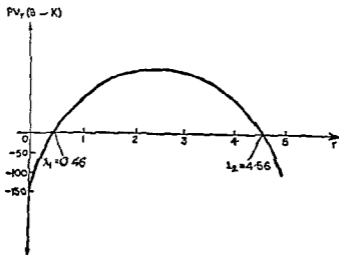
दो प्रान्तरिक प्रतिफल दरों का उक्त उदाहरण एक विशेष प्रकार का उदाहरण है। n^{th} मूल्य वाले (of n^{th} roots) विनियोग प्रवाह (Investment Stream) की n ही प्रान्तरिक प्रतिफल दरें सम्भव हैं। ऐसी स्थिति में कोई भी इस तथ्य को अस्वीकार नहीं कर सकता कि इस दृष्टि से वर्तमान मूल्य मापदण्ड का पक्ष प्रान्तरिक प्रतिफल दर वाले पक्ष से अपेक्षाकृत अधिक सशक्त प्रतीत होता है।

दोनों मापदण्डों में से किसका चुनाव किया जाए, इसमें कठिनाई यह आती है कि अनेक स्थितियों में दोनों मापदण्ड विनियोग प्रवाहों को समान श्रेणी (Same Ranks) प्रदान करते हैं। इस स्थिति में किस मापदण्ड को श्रेष्ठ समझा जाए, यह समस्या सामने आती है।

इस समस्या के समाधान हेतु अर्थशास्त्री Mc Kean ने यह सुझाव प्रस्तुत किया है कि एक निश्चित बजट सीमा में कुछ विनियोग परियोजनाओं का चुनाव इस प्रकार किया जाना चाहिए ताकि विनियोजित राशि का प्रत्येक परियोजना पर इस प्रकार वितरण हो कि उस विनियोग प्रवाह की आन्तरिक प्रतिफल दर (IRR) वर्तमान मूल्य की कटौती दर से अधिक हो। इस तथ्य को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी 5

परियोजनाएँ	समय t_0	t_1	t_2	आन्तरिक प्रतिफल दर (IRR)	$PV_r \frac{(B-K)}{K}$ $(r=0.03)$ 3% से वर्तमान मूल्य
A	—100	110	0	10%	$\frac{7}{100}$
B	—100	0	115	7%	$\frac{8}{100}$
C	—100	106	0	6%	$\frac{3}{100}$
D	— 50	52	0	4%	$\frac{1}{100}$
E	—200	2	208	2%	$\frac{-2}{200}$

A, B, C, D व E पाँच परियोजनाएँ दी हुई हैं। प्रत्येक की आन्तरिक प्रतिफल दर घटते हुए क्रम में दिखाई गई है। वर्तमान मूल्य के अनुसार शुद्ध लाभ का अनुपात 3% की कटौती दर के आधार पर दिया हुआ है।

यदि 1000 रुपये का बजट दिया हुआ है और उसमें से केवल 350 रुपये का विनियोजन करना है तो A, B, C व D परियोजनाओं का चुनाव किया जाना

चाहिए, क्योंकि E परियोजना की आन्तरिक प्रतिफल दर केवल 2% है, जो वर्तमान मूल्य की कटौती दर 3% से कम है। यद्यपि दोनों मापदण्डों के आधार पर चारों परियोजनाओं का श्रेणीक्रम (Ranking) समान नहीं रहेगा, तथापि दोनों ही मापदण्डों के अन्तर्गत प्रथम चार विनियोग विकल्प ही अपनाए जा सकते हैं।

यदि 200 रुपये का बजट हो तो *IRR* व *NPV* दोनों मापदण्डों के परिणाम A व B परियोजनाओं को समान श्रेणियाँ प्रदान करते हैं। किन्तु यदि बजट केवल 100 रुपये है, तो *IRR* के अनुसार A का तथा *NPV* के अनुसार परियोजना B का चुनाव किया जाना उपयुक्त समझा जाएगा।

परियोजना मूल्यांकन की लागत-लाभ विश्लेषण विधि की आलोचना (A Critique of Cost-benefit Analysis)

यद्यपि लागत-लाभ विश्लेषण विधि, परियोजना मूल्यांकन की एक श्रेष्ठ विधि है, तथापि अनेक अर्थशास्त्रियों ने इस विधि की निम्न आलोचनाएँ की हैं—

(1) परियोजनाओं को उचित प्रमाणित करने की दृष्टि से सरकार लाभों को बढ़ाकर दिखाती है तथा अनेक कथित लागतों की उपेक्षा करती है (Govt. inflates benefits and ignores costs)।

(2) वास्तव में सगणित शुद्ध लाभ (Calculated net benefits) परियोजना की लाभदायकता को प्रमाणित करते हैं। उनकी सगणना यह ध्यान में रखते हुए की जाती है कि परियोजना के सम्बन्ध में लिया गया निर्णय उचित है।

(3) लाभ-लागतों की सगणना से आर्थिक-तत्त्वों की उपेक्षा की जाती है तथा राजनीतिक लक्ष्यों को अधिक ध्यान में रखा जाता है।

(4) आर्थिक कुशलता की अपेक्षा सामाजिक मूल्यों पर अधिक बल दिया जाता है (The value of social goals is stressed more than economic efficiency)।

उक्त आलोचनाओं के बावजूद, परियोजना मूल्यांकन की यह उत्तम विधि है। विनियोग निर्णयों में कुछ अवरोधों का आना स्वाभाविक है। इस प्रकार के अवरोध (Constraints), कुछ भौतिक (Physical), कुछ प्रशासनिक (Administrative), कुछ राजनीतिक (Political), कुछ वैधानिक (Legal) तथा कुछ वित्तीय (Financial) होते हैं। भौतिक अवरोधों के कारण तकनीकी दृष्टि से उपयुक्त (Technically feasible) विनियोग विकल्पों का चुनाव भी सीमित हो जाता है; वैधानिक अवरोधों के कारण कानून में बिना संशोधन के उचित विनियोग निर्णय लेने में कठिनाइयाँ आती हैं, प्रशासनिक अवरोध-निर्णयों में विलम्ब के लिए उत्तरदायी होते हैं, राजनीतिक अवरोध, आर्थिक कुशलता की उपेक्षा करते हैं तथा वित्तीय अवरोध स्वयं राशि की एक निश्चित सीमा से बाहर निर्णय लेने के गतिरोध उपस्थित करते हैं।

प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष लागत व लाभ
(Direct and Indirect Cost and Benefits)

सिंचाई, यातायात, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि परियोजनाओं का मूल्यांकन इन से एक विशेष अवधि में प्राप्त लाभों तथा इन पर व्यय की गई लागतों के आधार पर किया जाता है। किन्तु परियोजना-मूल्यांकन में जो लाभ व लागतें ली जाती हैं, वे सामान्य बाजार मूल्यों के आधार पर नहीं आँकी जाती है, उनके अंकन का आधार सामान्य लेखा विधि नहीं होती, अपितु 'छाया-मूल्य' (Shadow Prices) की अवधारणा होती है। सामान्य लेखा-विधि द्वारा बाजार मूल्य के आधार पर सगणित लाभ व लागत प्रायः प्रत्यक्ष लाभ व लागतों की श्रेणी में लिए जाते हैं। किन्तु, इस प्रकार की सगणना से कोई आर्थिक निष्कर्ष निकालना सम्भव नहीं होता, क्योंकि लेखांकन लागतों के अतिरिक्त अनेक ऐसी लागतें भी होती हैं, जिनकी प्रविष्टि यद्यपि लेखा-पुस्तकों में नहीं होती, किन्तु उनको गणना में लाए बिना लागत प्रवाह का वर्तमान मूल्य निकालना आर्थिक दृष्टि से अनुपयुक्त समझा जाता है। ठीक इसी प्रकार, लाभों के अन्तर्गत भी परियोजनाओं से प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त लाभों के अतिरिक्त बाह्य बचतें आदि से सम्बन्धित लाभ होते हैं। लाभों के सम्पूर्ण प्रवाह की सगणना में अन्य लाभों की भूमिका अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। ऐसे लाभों को सामान्यतः 'अप्रत्यक्ष लाभों' की सज्ञा दी जाती है। इसकी सगणना 'छाया-मूल्यों' (Shadow Price) के आधार पर की जाती है।

प्रत्यक्ष लाभ (Direct Benefit)—प्रत्यक्ष अथवा प्राथमिक लाभ उन वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य को प्रकट करते है, *जिनका परियोजना द्वारा उत्पादन* होता है। जो लाभ परियोजना से शीघ्र व प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त होते हैं, 'प्रत्यक्ष लाभ' कहलाते हैं। उदाहरणार्थ सिंचाई परियोजना में बाढ-नियन्त्रण, सिंचाई, विद्युत्-उत्पादन, कृषि-उत्पादन में वृद्धि, पेयजल की सुविधा, इन लाभों का स्वरूप प्रायः भौतिक होता है तथा इनकी माप-मुद्रा में लेखा मूल्यों के आधार पर की जाती है। विशेष अवधि में होने वाले मूल्यों के परिवर्तनों का अवश्य ध्यान रखा जाता है। अतः मूल्य निर्देशांकों के आधार पर इन मूल्यों का सकुचित या प्रसारित (Deflated or Inflated) अवश्य किया जाता है। इसी प्रकार, किसी यातायात परियोजना से कई प्रत्यक्ष लाभ हो सकते हैं, जैसे—यात्रियों को आने जाने की सुविधा, माल ढोने की सुविधा, व्यापार में वृद्धि, कुछ मात्रा में रोजगार-वृद्धि आदि।

अप्रत्यक्ष लाभ (Indirect Benefit)—तकनीकी परिवर्तन के कारण उत्पन्न बाह्य-प्रभाव 'अप्रत्यक्ष लाभ' होते हैं। बाह्य-प्रभाव परियोजना के उत्पादन अथवा अन्य व्यक्तियों द्वारा इसके उपयोग के परिणाम होते हैं। जो लाभ परियोजना से सीधे प्राप्त नहीं होते, बल्कि जिनकी उत्पत्ति परियोजना के कारण होने वाले आर्थिक कारण विकास से प्राप्त होती है, उनको 'अप्रत्यक्ष लाभ' कहते हैं। उदाहरणार्थ, सिंचाई परियोजना के कारण सड़कों का निर्माण, नई रेल्वे लाइनों का बिछाया जाना, नए नगरों का विकास, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, नए उद्योगों की स्थापना,

आदि अप्रत्यक्ष लाभ के उदाहरण हैं। इनके अतिरिक्त विनियोग की दर, जनसंख्या वृद्धि दर, श्रम की कुशलता, लोगों के सामाजिक व सांस्कृतिक विकास आदि पर पड़ने वाले परियोजना-प्रभावों को भी अप्रत्यक्ष लाभों की श्रेणी में लिया जा सकता है।

अप्रत्यक्ष लाभ उत्पादन की अग्रिम कड़ियों (Forward Production Linkages) से भी उत्पन्न होते हैं, ये कड़ियाँ उन व्यक्तियों की आय में वृद्धि करती हैं, जो परियोजना के उत्पादन की मध्यवर्ती-प्रक्रियाओं में संलग्न होते हैं। उदाहरणार्थ, किसी सिंचाई परियोजना के अन्तर्गत उत्पादित कपास, बाजार में बिक्री हेतु प्रस्तुत होने से पूर्व अनेक मध्यवर्ती प्रक्रियाओं में से गुजरता है। प्रत्येक मध्यवर्ती प्रक्रिया-कर्त्ता बढ़ी हुई व्यावसायिक प्रक्रियाओं से लाभ उठाता है।

'अप्रत्यक्ष लाभ', उत्पादन की पीछे वाली कड़ियों (Backward Production Linkages) के कारण भी प्राप्त होते हैं। इन कड़ियों के कारण उन व्यक्तियों की आय में वृद्धि होती है, जो परियोजना-क्षेत्र में वस्तु और सेवाएँ प्रदान करते हैं। उदाहरणार्थ, परियोजना द्वारा उत्पादित कपास के लिए मशीनरी, खाद तथा अन्य सामग्रियों की आवश्यकता होगी। इस प्रकार, विभिन्न प्रकार के व्यवसायों की एक श्रृंखला उत्पन्न होती है। सभी व्यक्ति, जो इस श्रृंखला के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक कार्य करते हैं, परियोजना से अप्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित होते हैं।

लागत (Costs)—परियोजना पर होने वाले प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष व्यय, 'लागत' कहलाती है।

प्रत्यक्ष लागत (Direct Costs)—प्रत्यक्ष लागत वह लागत होती है, जो परियोजना के निर्माण व कार्यान्वित करने में उचित रूप से उठाई जाती है। मुख्यतः ये लागतें निम्नलिखित होती हैं—(i) निर्माण-लागतें, (ii) अभियान्त्रिक व प्रशासनिक लागतें, (iii) परियोजना के लिए काम में ली जाने वाली भूमि की अवसर लागत, (iv) परियोजना की क्रियान्विति के लिए सड़कें, रेलवे लाइनें, पाइप लाइनें, विद्युत् लाइनें, पुल निर्माण यदि आवश्यक हों, तो इन पर होने वाली लागतें, (v) परियोजना के संचालन, सुरक्षा एवं पुनर्स्थापन सम्बन्धी लागतें।

अप्रत्यक्ष लागत (Indirect Costs)—जो लागत अप्रत्यक्ष लाभों की प्राप्ति हेतु की जाती है, उसे 'अप्रत्यक्ष लागत' कहा जाता है। उदाहरणार्थ, परियोजना में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिए आवास-सुविधाएँ, अच्छी सड़कें, बच्चों की शिक्षा के लिए पाठशाला, अस्पताल इत्यादि।

भाग–2

भारत में आर्थिक नियोजन

(ECONOMIC PLANNING IN INDIA)

1 भारतीय नियोजन

(INDIAN PLANNING)

स्वतन्त्रता के बाद भारत मे तीव्र गति से आर्थिक विकास करने के लिए नियोजन का मार्ग अपनाया गया, किन्तु यह भारत के लिए नया नही था। स्वतन्त्रता से पूर्व भी भारत मे अनेक योजनाएँ प्रस्तुत की गई जिनमे 'विश्वेश्वरैया योजना', 'बम्बई योजना','जन योजना','गांधीवादी योजना', आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, तथापि ये योजनाएँ कोरी कागजी रही, वास्तविक नियोजन कार्य राष्ट्रीय सरकार द्वारा ही आरम्भ किया जा सका।

विश्वेश्वरैया योजना
(Visvesvaraya Plan)

सर एम विश्वेश्वरैया एक विख्यात इन्जीनियर थे। उन्होंने आर्थिक नियोजन पर सन् 1934 मे 'भारत मे नियोजित व्यवस्था' (Planned Economy for India) नामक पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक मे भारत के आर्थिक विकास के लिए एक दस-वर्षीय आर्थिक कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की गई जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय आय को दस वर्ष की अवधि मे दुगुना करना था। 'विश्वेश्वरैया योजना' मे उद्योगो को विशेष महत्त्व दिया गया और साथ ही व्यवसायो मे सन्तुलन स्थापित करके आर्थिक विकास का प्रोत्साहन देने का लक्ष्य रखा गया। सन् 1934–35 मे भारतीय आर्थिक सभा (*Indian Economic Conference*) की वार्षिक बैठक मे इन प्रस्तावो पर काफी विचार विमर्श किया गया किन्तु परिस्थितियाँ प्रतिकूल होने के कारण इस योजना के आर्थिक कार्यक्रमो की क्रियान्विति के प्रयत्न नही हो सके। परन्तु इस तथ्य को अस्वीकार नही किया जा सकता कि इस योजना ने भारत मे आर्थिक नियोजन की सैद्धान्तिक आधारशिला रखी तथा विचारको को नियोजन की दिशा मे चिन्तन के लिए प्रेरित किया।

आर्थिक नियोजन पर प्रारम्भिक साहित्य के रूप मे कुछ अन्य कृतियाँ भी प्रकाशित हुईं जिनमें पी एस लोकनाथन् की 'नियोजन के सिद्धान्त' (Principles of Planning), एन एस सुब्बाराव की 'नियोजन के कुछ पहलू' (Some Aspects

of Planning), और के. एन. सेन की 'आर्थिक पुनर्निर्माण' (Economic Reconstruction) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

राष्ट्रीय आयोजन समिति
(National Planning Committee)

भारत मे आर्थिक-नियोजन की दिशा मे दूसरा कदम राष्ट्रीय आयोजन समिति की स्थापना करना था। अक्तूबर, 1938 मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष श्री सुभाषचन्द्र बोस ने दिल्ली मे प्रान्तीय उद्योग मन्त्रियो का सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन मे देश की आर्थिक प्रगति के लिए सुझाव प्रस्तुत किए गए। इन सुझावो को क्रियान्वित करने के लिए श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता मे 'राष्ट्रीय योजना समिति' का गठन किया गया। प्रो के टी शाह इसके महासचिव मनोनीत किए गए। इस योजना समिति ने विभिन्न आर्थिक विषयो का अध्ययन करके विकास योजनाएँ प्रस्तुत करने के लिए कई उप-समितियाँ नियुक्त की। किन्तु द्वितीय विश्व-युद्ध तथा कांग्रेस मन्त्रिमण्डलो के त्याग-पत्रो के बाद की राजनीतिक हलचल के कारण समिति का कार्य रुक गया और सन् 1948 मे ही 'भारत मे नियोजन' पर समिति के कुछ प्रतिवेदन सामने आ सके। इन प्रतिवेदनो मे औद्योगीकरण, सार्वजनिक-क्षेत्र के विस्तार, श्रमिको के उचित प्रतिफल, निजी उद्योगो के राष्ट्रीयकरण, गृह-उद्योगो के विकास, सहकारिता को प्रोत्साहन, सिंचाई व विद्युत सुविधाओ के विस्तार, वनों की सुरक्षा और भू-संरक्षण आदि से सम्बन्धित आर्थिक सुझाव प्रस्तुत किए गए।

बम्बई योजना
(Bombay Plan)

स्वतन्त्रता से पूर्व भारत मे आर्थिक नियोजन के क्षेत्र मे 'बम्बई योजना' महत्त्वपूर्ण प्रयत्न थी। सन् 1944 मे भारत के आठ प्रमुख उद्योगपतियो—घनश्यामदास बिड़ला, जे. आर डी. टाटा, जॉन मथाई, ए डी श्रोफ, कस्तूरभाई लालभाई, सर आर्देशीर दलाल, सर पुरुषोत्तमदास, ठाकुरदास और सर श्रीराम ने भारत के आर्थिक विकास की एक योजना प्रस्तुत की। यही योजना 'बम्बई योजना' के नाम से प्रसिद्ध है। यह पन्द्रह-वर्षीय योजना थी। इस योजना का अनुमानित व्यय 10 हजार करोड़ रुपये था। इसका लक्ष्य योजनावधि मे प्रति व्यक्ति आय को दुगुना अर्थात् 65 रुपये से बढ़ाकर 130 रुपये करना और राष्ट्रीय आय को 2200 से बढाकर 6600 करोड़ रुपये करके तिगुना करना था। इस योजना के अन्तर्गत 1944 के अंकों पर कृषि-प्रदा (Agriculture Output) मे 130 प्रतिशत, औद्योगिक प्रदा (Industrial Output) मे 500% और सेवाओ के उत्पादन (Output of Services) में 200% वृद्धि के लक्ष्य निर्धारित किए गए थे।

बम्बई योजना एक प्रकार से उत्पादन योजना थी। योजना के सम्पूर्ण व्यय का 45% भाग उद्योगों के लिए निर्धारित किया गया था। उद्योग-प्रधान होते हुए भी इस योजना में कृषि के विकास पर समुचित ध्यान दिया गया था। कृषि के लिए

1240 करोड रुपये के व्यय का आवटन किया गया। कृषि-उत्पादन मे 130% के वृद्धि के लक्ष्य के साथ ही सिंचाई-सुविधाओ मे 200% वृद्धि का लक्ष्य भी रखा गया।

कृषि एव उद्योग के अतिरिक्त इस योजना मे यातायात के विकास पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया। इस योजना मे 453 करोड रुपये के व्यय से 4001 मील लम्बी रेल लाइनो को 6200 मील तक बढाने का लक्ष्य रखा गया तथा इसके अतिरिक्त 2,26,000 मील कच्ची सडको को पक्का बनाने, मुख्य गाँवो को महत्त्वपूर्ण व्यापारिक मार्गों से जोडने और बन्दरगाहो की सख्या मे पर्याप्त वृद्धि करने का प्रस्ताव भी था। यातायात की मद पर कुल व्यय 940 करोड रुपये निर्धारित किया गया।

योजना की समीक्षा

इस योजना मे निजी क्षेत्र को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया गया। योजना की वित्त व्यवस्था के अनुमान भी महत्त्वाकांक्षी थे। गृह-उद्योगो के विकास के लिए इस योजना म निश्चित कार्यक्रमो का आयोजन नही किया गया। व्यापार-सन्तुलन से छ सौ करोड रुपये, पौंड पावने से 1000 करोड रुपये और विदेशी सहायता से 700 करोड रुपये की राशि प्राप्त करने के अनुमान भी सदिग्ध थे। इन सब कमियो के बावजूद इस योजना ने राष्ट्रीय आर्थिक पुनर्निर्माण की दिशा मे एक समन्वित प्रयास और साहसिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

जन योजना
(People's Plan)

'बम्बई योजना' के तीन माह बाद ही इण्डियन फेडरेशन ऑफ लेबर की ओर से श्री एम एन राय द्वारा जन-योजना प्रकाशित की गई। यह दस-वर्षीय योजना थी जिसके लिए अनुमानित व्यय की राशि 15000 करोड रुपये निर्धारित की गई। जन-योजना का मूल उद्देश्य जनता की तत्कालीन मौलिक आवश्यकताओ की पूर्ति करना था। इस योजना के प्रथम पाँच वर्षों मे कृषि पर तथा अगले 5 वर्षों मे उद्योगो के विकास पर बल दिया गया था। इस योजना मे कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी। कृषि उत्पादन मे वृद्धि के लिए भूमि मे 10 करोड एकड की वृद्धि, सिंचाई के साधनो मे 400% की वृद्धि तथा अधिक मात्रा मे अच्छे खाद और बीज के उपयोग के लक्ष्य निर्धारित किए गए थे। राजकीय सामूहिक कृषि के विस्तार, भूमि के राष्ट्रीयकरण और राजकीय कृषि-फार्मों की स्थापना के सुझाव भी इस योजना मे रखे गए थे। इसके अतिरिक्त औद्योगिक उत्पादन मे 600% की वृद्धि का लक्ष्य इस योजना मे रखा गया था और निजी उद्योगो मे लाभ की दर को 3% तक सीमित करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया था।

यातायात के अन्तर्गत इस योजना मे सडको व रेलो की लम्बाई मे क्रमश 15% एव 50% की वृद्धि के लक्ष्य निर्धारित किए गए थे। सडको की लम्बाई मे 4,50,000 मील और रेलमार्गों मे 24,000 मील की वृद्धि करने का आयोजन था। जहाजी यातायात के विकास के लिए 155 करोड रु निर्धारित किए गए थे।

जन-योजना मे ग्रामीण-क्षेत्रों की आय मे 300% और औद्योगिक क्षेत्र की आय मे 200% वृद्धि का अनुमान किया गया था। सहकारी समितियों को प्रोत्साहन, वित्तीय संस्थाओं पर राज्य का नियन्त्रण, धन व व्यापार का समान वितरण, गृह-निर्माण योजना आदि कार्यक्रम भी इस योजना मे सम्मिलित थे ।

योजना की समीक्षा

इस योजना मे कृषि को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया था । कृषि की तुलना मे औद्योगिक विकास की उपेक्षा की गई थी । कुटीर-उद्योगों की ओर इस योजना मे यथोचित ध्यान नही दिया गया था, किन्तु इस योजना मे प्रस्तावित कृषक वर्ग की ऋण-ग्रस्तता तथा लाभ की भावना के निराकरण सम्बन्धी आर्थिक सुझाव स्वागत योग्य थे ।

गाँधीवादी योजना
(Gandhian Plan, 1944)

इस योजना के निर्माता वर्धा के गाँधीवादी नेता श्रीमन्नारायण अग्रवाल थे । यह योजना एक आदर्शवादी योजना थी, जिसका निर्माण गाँधीजी के सिद्धान्तों के आधार पर किया गया था । इस योजना का अनुमानित व्यय 3500 करोड रु. निर्धारित किया गया था । इस योजना का मुख्य लक्ष्य ऐसे विकेन्द्रित आत्म निर्भर कृषि-समाज की स्थापना करना था जिसमे गृह-उद्योगो के विकास पर बल दिया गया हो ।

यह योजना दस-वर्षीय थी । इस योजना के लिए निर्धारित 200 करोड रु की आवर्त्तक राशि (Recurring Amount) को सरकारी उपक्रमो तथा 3500 करोड रु की अनावर्त्तक राशि (Non-Recurring Amount) को आन्तरिक मुद्रा-प्रसार और करारोपण द्वारा प्राप्त किया जाना था ।

इस योजना मे 175 करोड रु के अनावर्त्तक और 5 करोड रु के आवर्त्तक व्यय से सिंचाई सुविधाओं को दुगुना करने का कार्यक्रम बनाया गया था । योजना का लक्ष्य दस वर्षों में कृषि की आय को दुगुना करना था । योजना मे गृह और ग्रामीण उद्योगो को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया था । साथ ही सुरक्षा, उद्योग, खानें, जल-विद्युत-शक्ति, मशीन और मशीनरी औजार, रसायन, इन्जीनियरिंग आदि बडे और आधारभूत उद्योगो के विकास के लिए भी कार्यक्रम निर्धारित किए गए थे । इसके अतिरिक्त रेल यातायात मे 25% की वृद्धि, ग्रामीण-क्षेत्रों मे 2,00,000 मील लम्बी अतिरिक्त सडकों का निर्माण तथा चिकित्सा व शिक्षा सुविधाओं मे पर्याप्त विकास कार्यक्रम निर्धारित किए गए थे ।

योजना की समीक्षा

इस योजना के दो पक्ष थे – एक ग्रामीण क्षेत्र का विकास ग्रामीण जीवन के अनुसार व दूसरा नगरीय क्षेत्र, जिसका विकास बडे उद्योगो द्वारा किया जाना था । परन्तु इस प्रकार का समन्वय असम्भव था । योजना मे हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit Financing) को भी आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया गया किन्तु एक विशेषता यह थी कि इसमे भारतीय आदर्शों को समाविष्ट करने का प्रयत्न किया गया ।

अन्य योजनाएँ
(Other Plans)

सन् 1944 मे भारत की तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने सर आर्देशीर दलाल की अध्यक्षता मे योजना विभाग स्थापित किया । इस विभाग ने अल्पकालीन व दीर्घकालीन कई योजनाएँ तैयार की जिनको युद्ध के पश्चात् क्रियान्वित किया जाना था । किन्तु युद्ध की समाप्ति के बाद परिस्थितियाँ बदल गई, अत किसी भी योजना पर कार्य नही किया जा सका ।

सन् 1946 मे भारत की अन्तरिम सरकार ने विभिन्न विभागो द्वारा तैयार की गई परियोजनाओ पर विचार करने तथा उनके सम्बन्ध मे रिपोर्ट देने के लिए एक Planning Advisory Board की स्थापना की जिसके अध्यक्ष श्री के. सी. नियोगी नियुक्त हुए । मण्डल के नियोजन के मुख्य उद्देश्यो के रूप मे जनता के जीवन-स्तर को उठाने और पूर्ण रोजगार देने पर बल देने का सुझाव रखा । मण्डल ने एक प्राथमिकता बोर्ड (Priorit es Board) तथा एक योजना कमीशन (Planning Commission) की स्थापना के सुझाव भी दिए ।

स्वतन्त्रता के बाद नियोजन
(Planning after Independence)

सन् 1947 मे राजनीतिक स्वतन्त्रता ने आर्थिक और सामाजिक न्याय के लिए मार्ग प्रशस्त किया । कृषि, सिचाई और खनिज सम्पदा के अनदोहित साधनो और उपलब्ध साधनो का आवटन करने की जरूरत थी । आयोजन के द्वारा सुनिश्चित राष्ट्रीय प्राथमिकताओ के ढाँचे के अन्तर्गत तेज और सन्तुलित विकास सम्भव हो सकता था । नवम्बर, 1947 मे अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने श्री नेहरू की अध्यक्षता मे Economic Programme Committee की स्थापना की जिसने 25 जनवरी, 1948 को अपने विस्तृत सुझाव प्रस्तुत किए और यह अनुशसा दी कि एक स्थायी योजना आयोग की स्थापना की जाए ।

भारत सरकार ने देश के साधनो और आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए विकास का ढाँचा तैयार करने के लिए मार्च, 1950 मे योजना आयोग की नियुक्ति की । आयोग ने मोटे तौर पर भारत मे नियोजन के दो उद्देश्य बतलाए—

1 उत्पादन मे वृद्धि करना और जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना ।

2 स्वतन्त्रता तथा लोकतान्त्रिक मूल्यो पर आधारित ऐसी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का विकास करना जिसमे राष्ट्रीय जीवन की सभी सस्थाओ के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक न्याय प्राप्त हो ।

आर्थिक नियोजन के लक्ष्य इस प्रकार रखे गए—

1. राष्ट्रीय आय मे अधिकतम वृद्धि करना ताकि प्रति व्यक्ति औसत आय बढ़ सके ।

2 तीव्र औद्योगीकरण एव आधारभूत उद्योगो का शीघ्र विकास ।

3 अधिकतम रोजगार ।

4. आय की असमानताओं में कमी एवं धन का अधिक समान वितरण।

5. देश में समाजवादी ढंग पर आधारित समाज (Socialistic Pattern of Society) का निर्माण।

इन सभी लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए देश में पंचवर्षीय योजनाओं का सूत्रपात हुआ। अभी तक तीन पंचवर्षीय योजनाएँ (1951–52 से 1965–66), तीन एकवर्षीय योजनाएँ (1966 से 1969) तथा चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (अप्रेल, 1969 से मार्च, 1974) समाप्त हो चुकी हैं और 1 अप्रेल, 1974 से चालू की गई पंचवर्षीय योजना चार वर्ष में ही 31 मार्च, 1978 को समाप्त की जाकर 1 अप्रेल 1978 से नई राष्ट्रीय योजना चालू की गई है जो आवर्ती योजना (Rolling Plan) है।

प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाएँ[1]
(First Three Five Year Plans)

उद्देश्य (Objectives)—प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–52 से 1955–56) के दो उद्देश्य थे। पहला उद्देश्य युद्ध और देश के विभाजन के कारण उत्पन्न आर्थिक असन्तुलन को ठीक करना था। दूसरा उद्देश्य था, साथ ही साथ सर्वांगीण, सन्तुलित विकास की प्रक्रिया शुरू करना जिससे निश्चित रूप से राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो और जीवन-स्तर में सुधार हो। सन् 1951 में देश को 47 लाख टन खाद्यान्न आयात करना पड़ा था और अर्थ-व्यवस्था पर मुद्रा-स्फीति का प्रभाव था। इसलिए योजना में सर्वोच्च प्राथमिकता सिंचाई और बिजली परियोजना सहित कृषि को दी गई और इनके विकास के लिए सरकारी क्षेत्र के 2,069 करोड़ रु. के कुल परिव्यय (जो बाद में बढ़ाकर 2,356 करोड़ रु कर दिया गया) का 44 6% रखा गया। इस योजना का उद्देश्य निवेश को राष्ट्रीय आय के 5% से बढ़ाकर लगभग 7% करना था।

दिसम्बर, 1954 में लोकसभा ने घोषित किया कि आर्थिक नीति का व्यापक उद्देश्य 'समाज के समाजवादी ढांचे' की प्राप्ति होना चाहिए। समाज के समाजवादी ढांचे के अन्तर्गत प्रगति की रूपरेखा निर्धारित करने की आधारभूत कसौटी निजी मुनाफा नहीं, बल्कि सामाजिक लाभ और आय तथा सम्पत्ति का समान वितरण होना चाहिए। इस बात पर बल दिया गया कि समाजवादी अर्थ-व्यवस्था, विज्ञान और टेक्नोलॉजी के प्रति कुशल तथा प्रगतिशील दृष्टि अपनाए और उस स्तर तक क्रमिक प्रगति के लिए सक्षम हो कि आम जनता खुशहाल हो सके।

द्वितीय योजना (1956–57 से 1960–61) में भारत में समाजवादी समाज की स्थापना की दिशा में विकास-ढांचे को प्रोत्साहित करने के प्रयत्न किए गए। इस योजना में विशेष बल इस बात पर दिया गया कि आर्थिक विकास के अधिकाधिक लाभ समाज के अपेक्षाकृत कम साधन-प्राप्त वर्गों को मिलें और आय,

1. India 1973.

सम्पत्ति और आर्थिक शक्ति के चन्द हाथों में सिमटने की प्रवृत्ति में लगातार कमी हो। इस योजना के उद्देश्य थे—(1) राष्ट्रीय आय में 25% वृद्धि, (2) आधारभूत और भारी उद्योगों के विकास पर विशेष बल देते हुए द्रुत औद्योगीकरण, (3) रोजगार के अवसरों में वृद्धि और (4) आय और सम्पत्ति की विषमताओं में कमी तथा आर्थिक शक्ति का और अधिक समान वितरण। इस योजना का उद्देश्य निवेश दर को राष्ट्रीय आय के लगभग 7% से बढ़ा कर सन् 1960–61 तक 11% करना था। योजना में औद्योगीकरण पर विशेष बल दिया गया। लोहे तथा इस्पात और नाइट्रोजन उर्वरकों सहित रसायनों के उत्पादन में वृद्धि और भारी इन्जीनियरी तथा मशीन निर्माण उद्योग के विकास पर जोर दिया गया। योजना में सरकारी क्षेत्र का कुल परिव्यय 4,800 करोड़ रु था। इसमें से 3,650 करोड़ रु निवेश के लिए था और निजी क्षेत्र का परिव्यय 3,100 करोड़ रु था।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961–62 से 1965–66) शुरू हुई जिसका मुख्य उद्देश्य स्वय-स्फूर्त विकास की दिशा में निश्चित रूप से बढ़ना था। इस तात्कालिक उद्देश्य ये थे—(1) राष्ट्रीय आय में 5% वार्षिक से अधिक की वृद्धि करना और साथ ही ऐसा निवेश ढाँचा तैयार करना कि यह वृद्धि-दर आगामी योजना अवधियों में बनी रहे, (2) खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना और कृषि-उत्पादन बढ़ाना जिससे उद्योग तथा निर्यात की जरूरतें पूरी हो सकें, (3) इस्पात, रसायनों, ईंधन और बिजली जैसे आधारभूत उद्योगों का विस्तार करना और मशीन निर्माण क्षमता स्थापित करना ताकि आगामी लगभग 12 वर्षों में औद्योगीकरण की भावी माँगों को मुख्यत देश के अपने साधनों से पूरा किया जा सके, (4) देश की जन-शक्ति के साधनों का अधिकतम उपयोग करना और रोजगार के अवसरों का पर्याप्त विस्तार करना, और (5) उत्तरोत्तर अवसरों की समानता में वृद्धि करना और आय तथा सम्पत्ति की विषमताओं को कम करना और आर्थिक शक्ति का और अधिक समान वितरण करना। राष्ट्रीय आय में लगभग 30% वृद्धि कर के सन् 1960–61 में 14,500 करोड़ रु से बढ़ाकर (1960–61 के मूल्यों पर) सन् 1965–66 में 19,000 करोड़ रु करना और प्रति व्यक्ति आय में लगभग 17% वृद्धि कर के 330 रु के बजाय इस अवधि के दौरान लगभग 385 रु करना।

परिव्यय और निवेश (Out-lay and Investment)—पहली योजना में, सरकारी क्षेत्र में 2,356 करोड़ रु के संशोधित परिव्यय के मुकाबले व्यय 1960 करोड़ रु हुआ। दूसरी योजना में, सरकारी क्षेत्र में 4,800 करोड़ रु की व्यवस्था के मुकाबले वास्तविक खर्च 4,672 करोड़ रु रहा जबकि निजी क्षेत्र में 3,100 करोड़ रु का विनियोग हुआ। तीसरी योजना में सरकारी क्षेत्र के लिए 7,500 करोड़ रु के परिव्यय का प्रावधान था। इसके मुकाबले सरकारी क्षेत्र में वास्तविक खर्च 8,577 करोड़ रु रहा। निजी क्षेत्र में 4,000 करोड़ रु से अधिक का विनियोजन हुआ।

तीन योजनाओं में उपलब्धियाँ (Achievements During the Three Plans)—पन्द्रह वर्षों के आयोजन से, समय-समय पर बाधाओं के बावजूद अर्थ-व्यवस्था में सर्वांगीण प्रगति हुई। आधारभूत सुविधाएँ जैसे सिंचाई, बिजली और परिवहन में काफी विस्तार हुआ और छोटे-बड़े उद्योगों के लिए बहुमूल्य खनिज भण्डार स्थापित किए गए।

पहली योजना मे मुख्यत कृषि उत्पादन मे बढोत्तरी से, राष्ट्रीय आय मे निर्धारित लक्ष्य 12% से अधिक यानी 18% वृद्धि हुई। दूसरी योजना मे राष्ट्रीय आय मे 25% के निर्धारित लक्ष्य के मुकाबले 20% वृद्धि हुई और तीसरी योजना मे राष्ट्रीय आय (संशोधित) सन् 1960–61 के मूल्यो पर पहले चार वर्षों में 20% बढ़ी और अन्तिम वर्ष मे इसमे 5 7 प्रतिशत की कमी आई। जनसख्या मे 2 5 प्रतिशत की वृद्धि के कारण सन् 1965–66 मे प्रति व्यक्ति वार्षिक आय वही रही जो सन् 1960–61 मे थी।

पहली दो योजनाओ मे कृषि-उत्पादन लगभग 41 प्रतिशत बढा। तीसरी योजना मे कृषि उत्पादन सन्तोषजनक नही था। सन् 1965–66 और सन् 1966–67 मे सूखा पड़ा और कृषि-उत्पादन तेजी से गिरा। इससे अर्थ-व्यवस्था की विकास-दर मे ही कमी नही आई, बल्कि खाद्यान्नो के आयात पर भी हमारी निर्भरता बढी। तीसरी योजना मे देश ने 250 लाख टन खाद्यान्नो का आयात किया। हमे कपास की 39 लाख और पटसन की 15 लाख गाँठें भी आयात करनी पड़ी।

पहली दो योजनाओ मे सगठित निर्माता उद्योगों मे शुद्ध उत्पादन लगभग दुगुना हुआ। इसमे सरकारी क्षेत्र के उद्योगों का योग, जो पहली योजना के शुरू मे 1 5 प्रतिशत था, दूसरी योजना के अन्त तक बढ़ कर 8 4 प्रतिशत हो गया। यह वृद्धि अधिकतर इस्पात, कोयला, खान, भारी रसायन जैसे आधारभूत उद्योगो मे हुई। तीसरी योजना के पहले चार वर्षों में सगठित उद्योग का उत्पादन 8 10 प्रतिशत वार्षिक बढा। लेकिन योजना के अन्तिम वर्ष मे भारत-पाकिस्तान युद्ध से हुई गड़बड़ी और विदेशी सहायता मे आई बाधाओ के कारण वृद्धि-दर घट कर 5 3 प्रतिशत रह गई। कुल मिलाकर तीसरी योजना मे सगठित उद्योगो की वृद्धि-दर 11 प्रतिशत के लक्ष्य के मुकाबले 8 2 प्रतिशत रही लेकिन इस काल मे एक उल्लेखनीय बात उत्पादन-क्षमता मे वृद्धि तथा विविधता रही। यह बात प्रमुख रूप से इस्पात और अल्यूमीनियम, मशीनी औजार, औद्योगिक मशीनें, बिजली और परिवहन उपकरण, उर्वरको, औषध, औषधियो और पैट्रोलियम के उत्पादन मे हुई। इन सब ने औद्योगिक ढाँचे को सुदृढ बनाने मे योग दिया।

आयोजन के इन वर्षों में स्वास्थ्य और शैक्षणिक सुविधाओं का उल्लेखनीय विस्तार हुआ। सन् 1950–51 मे जन्म पर अपेक्षित आयु 35 वर्ष थी जो सन् 1971 मे 50 वर्ष हो गई। स्कूलो मे प्रवेश की सख्या सन् 1950–51 मे 235 लाख थी जो सन् 1965–66 तक बढ़कर 663 लाख हो गई। अनुसूचित जातियो और

अनुसूचित जनजातियों की दशा सुधारने के लिए विशेष कार्यक्रम बनाए गए जिनसे उन्हें अनेक लाभ मिले और उनकी दशा बेहतर हुई।

तीन वार्षिक योजनाएँ (Three Annual Plans)

तीसरी योजना के बाद तीन एक वर्षीय योजनाएँ (1966–69) कार्यान्वित की गई। भारत पाकिस्तान युद्ध से उत्पन्न स्थिति, दो वर्षों के लगातार भीषण सूखे, मुद्रा अवमूल्यन मूल्यों में वृद्धि और योजना के लिए उपलब्ध साधनों में कमी के कारणों से चौथी योजना को अन्तिम रूप देने में बाधा पड़ी। इस दौरान चौथी योजना के मसविदे को ध्यान में रखते हुए तीन एकवर्षीय योजनाएँ बनाई गई। इनमें तत्कालीन परिस्थितियों का ध्यान रखा गया। इस अवधि में अर्थ व्यवस्था की स्थिति और योजना के लिए वित्तीय साधनों की कमी से विकास व्यय कम रहा।

वार्षिक योजनाओं में विकास की मुख्य मदों का व्यय इस प्रकार रहा (करोड़ रु में) कृषि और सम्बद्ध क्षेत्र 1,166 6 सिंचाई और बाढ़ नियन्त्रण 457 1, बिजली 1,182 2, ग्राम और लघु उद्योग 144 1, उद्योग और खनिज 157 0, परिवहन और सचार 1,239 1, शिक्षा 322 4, वैज्ञानिक अनुसन्धान 51 1, स्वास्थ्य 140 1, परिवार नियोजन 75 2, पानी की सप्लाई और सफाई 100 6, आवास, शहरी और क्षेत्रीय विकास 63 4, पिछड़ी जातियों का कल्याण 68 5, समाज कल्याण 12 1, श्रम-कल्याण और कारीगरों का प्रशिक्षण 32 5 और अन्य कार्यक्रम 123 5। तीन वार्षिक योजनाओं का कुल व्यय 6,756 5 करोड़ रुपये रहा।

चौथी पचवर्षीय योजना (Fourth Five Year Plan)

लक्ष्य—चौथी योजना (1969–74) का लक्ष्य स्थिरतापूर्वक विकास की गति को तेज करना, कृषि के उत्पादन में उतार-चढ़ाव को कम करना तथा विदेशी सहायता की अनिश्चितता के कारण उसके प्रभाव को घटाना था। इसका उद्देश्य ऐसे कार्यक्रमों द्वारा लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा करना था जिसे समानता और सामाजिक न्याय को प्रोत्साहन भी मिले। योजना में विशेषकर रोजगार और शिक्षा की व्यवस्था के जरिए कमजोर और कम सुविधा प्राप्त वर्गों की दशा को सुधारने पर विशेष बल दिया गया। इस योजना में सम्पत्ति, आय और आर्थिक शक्ति का अधिकाधिक लोगों में प्रसार करने और उन्हें चन्द हाथों में एकत्र होने से रोकने के प्रयत्न भी किए गए।

योजना का लक्ष्य शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन को जो सन् 1969-70 म 1968-69 के मूल्यों पर 29,071 करोड़ रु था बढ़ाकर सन् 1973–74 में 38,306 करोड़ रु करने का था। इसका अर्थ था कि सन् 1960–61 के मूल्यों पर सन् 1968–69 के 17,351 करोड़ रु के उत्पादन को सन् 1973–74 में 22,862 करोड़ रु कर दिया जाए। विकास की प्रस्तावित औसत वार्षिक चक्रवृद्धि दर 5 6% थी।

परिव्यय और निवेश—आरम्भ से चौथी योजना के लिए 24,882 करोड़ रु का प्रावधान रखा गया था। इसमें सरकारी क्षेत्र के लिए 15,902 करोड़ रु (इसमें

13,655 करोड़ रु. का निवेश शामिल है) और निजी क्षेत्र में लगाने के लिए 8,980 करोड़ रु. की राशि थी। सन् 1971 में इस योजना का मध्यावधि मूल्यांकन किया गया और सरकारी क्षेत्र के परिव्यय को बढ़ाकर 16,201 करोड़ रु. कर दिया गया। अब चौथी योजना में सरकारी क्षेत्र का अनुमानित परिव्यय कुल 15,724 करोड़ रु है।

उपलब्धियाँ—चौथी योजना के अन्तर्गत वृद्धि की दर का लक्ष्य 5·7 प्रतिशत वार्षिक था किन्तु वृद्धि की प्राप्त दर इस प्रकार रही—सन् 1969-70 में 5·7%, 1970–71 में 4 9 प्रतिशत, 1971–72 में 1 4 प्रतिशत, 1972–73 में (—) 0 9 प्रतिशत तथा 1973–74 में 3·1 प्रतिशत। कृषि तथा उद्योग जैसे अर्थ-व्यवस्था के मुख्य क्षेत्रों का कार्य योजना के प्रत्येक वर्ष में अलग-अलग रुख दिखाता रहा। चौथी योजना अवधि में खाद्यान्न के उत्पादन का लक्ष्य 12 करोड़ 90 लाख टन था। अन्तिम अनुमानों के अनुसार सन् 1973–74 में खाद्यान्न उत्पादन 10 करोड़ 40 लाख टन के लगभग हुआ। उत्पादन में कमी का मुख्य कारण मौसम था। इस योजना में अपनाई गई नई कृषि नीति के कारण गेहूँ उत्पादन में नई सफलताएँ मिलीं। किन्तु चावल उत्पादन में पारम्परिक चाँवल उगाने वाले क्षेत्रों में कोई विशेष तकनीकी सफलता नहीं मिली है। दालों तथा तिलहनों की उत्पादन दर भी योजना में अपेक्षित वृद्धि दर से कम ही रही। चौथी योजना उस समय बनाई गई थी जब अर्थ-व्यवस्था मन्दी से उभर रही थी तथा औद्योगिक क्षेत्र में काफी क्षमता का उपयोग नहीं हो रहा था। योजना का एक मुख्य उद्देश्य मौजूदा क्षमता का अधिक अच्छा उपयोग करना था। औद्योगिक क्षेत्र में योजना का लक्ष्य वार्षिक वृद्धि-दर को 8% से 10% बढ़ाना था किन्तु योजना के आगामी वर्षों में इस दर की प्राप्ति न हो सकी। इसके पहले चार सालों में उत्पादन दर क्रमशः 7 3%, 3 1%, 3 3% तथा 5·3% थी जबकि सन् 1973–74 में उत्पादन दर का 1% से कम रहा। संचालन की समस्याओं के कारण तथा मुख्य कच्चे माल की कमी, बिजली की कमी तथा माल ढोने में अड़चनों के कारण बहुत से उद्योगों में मौजूदा क्षमता का उपयोग नहीं किया जा सका।

पाँचवी पंचवर्षीय योजना (Fifth Five Year Plan)

पाँचवी पंचवर्षीय योजना की अवधि सन् 1974–79 थी जो अब सन् 1974–78 ही कर दी गई है और जनता पार्टी की सरकार ने 1 अप्रैल, 1978 से नई राष्ट्रीय योजना चालू की। पाँचवी पंचवर्षीय योजना के दो मुख्य उद्देश्य रखे गए, थे—गरीबी का उन्मूलन और आत्म-निर्भरता। योजना के प्रारूप में कहा गया कि जो 30% लोग इस समय 25 रु प्रतिमास के न्यूनतम उपभोक्ता स्तर पर हैं, उनका स्तर बढ़ाकर 40 6 प्रतिमास (1973–74 के मूल्यों पर) कर दिया जाए, क्योंकि यह न्यूनतम वांछनीय स्तर है। परिवर्तित परिस्थितियों के प्रकाश में पाँचवी पंचवर्षीय योजना पर पुनर्विचार का दौर चला और सितम्बर, 1976 में राष्ट्रीय विकास परिषद् ने इसके संशोधित रूप पर सर्वसम्मति से स्वीकृति प्रदान की।

सशोधित योजना को स्वीकार करते हुए राष्ट्रीय विकास परिषद् ने अपने प्रस्ताव म कहा कि यह परिषद् स्वावलम्बन और गरीबी का अन्त करने के लक्ष्यो की पुष्टि करती है। इसके अतिरिक्त परिषद् मे कृषि, सिंचाई, ऊर्जा और सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो पर दिए जाने वाले बल का भी समर्थन किया।

योजना के मूल प्रारूप के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र मे 37,463 करोड रुपये के परिव्यय का अनुमान लगाया गया था जबकि सशोधित परिव्यय 39,303 करोड रुपये होना अनुमानित किया गया। इसमे सामान सूची के लिए निर्धारित राशि सम्मिलित नही थी। जहाँ तक अलग अलग मदो की बात है, व्यय का आवटन इस प्रकार रखा गया'—

मद	व्यय राशि
कृषि तथा इससे सम्बन्धित विषय	4,643 50 करोड रु
सिचाई तथा बाढ नियन्त्रण	3,440 18 करोड रु
बिजली	7,293 90 करोड रु
उद्योग तथा खनन	10 200 60 करोड रु
परिवहन तथा सचार	6,881 43 करोड रु
शिक्षा	1,284 29 करोड रु
समाज तथा सामुदायिक सेवाओ पर	4,759 77 करोड रु
पहाडी तथा आदिवासी क्षेत्रो पर	450 00 करोड रु
अन्य विविध क्षेत्रो पर	333 73 करोड रु

पाँचवी पचवर्षीय योजना के प्रारूप मे जिन विषयो को प्राथमिकता मिली थी, उन्हें अपरिवर्तित रखा गया। योजना की 39,303 24 करोड रुपये की राशि मे केन्द्र का योगदान 19,954 10 करोड रुपया, राज्यो का 18,265 08 करोड रुपया, सघीय क्षेत्र का 634 06 करोड रुपया रखा गया।

केवल योजना परिव्यय मे ही वृद्धि नही हुई बल्कि आगामी दो वर्षों के लिए 19,902 करोड रुपये के परिव्यय का अनुमान लगाया गया जबकि योजना के प्रथम तीन वर्षों के लिए 19,401 करोड रुपये का अनुमानित परिव्यय रखा गया था। सिचाई, बाढ नियन्त्रण, बिजली व उद्योग और खनिजो के परिव्यय मे काफी वृद्धि की गई। कृषि, शिक्षा और समाज सेवाओ का परिव्यय योजना के अन्तिम दो वर्षों के लिए पहले तीन वर्षों की अपेक्षा कहीं अधिक रखा गया।

आर्थिक-समीक्षा[1] के उपरान्त पाँचवी पचवर्षीय योजना को जनता पार्टी की सरकार ने अवधि से एक वर्ष पूर्व ही 31 मार्च, 1978 को समाप्त कर दिया है।[2]

सभी पचवर्षीय योजनाओ—विशेषकर चौथी और पाँचवी के विभिन्न पहलुओ पर विस्तार से प्रकाश अगले कुछ अध्यायो म डाला गया है।

1 Economic Survey, 1977-78, p 58 (जनता पार्टी की सरकार ने समस्त राष्ट्रीय आँकडो का पुनर्मूल्यांकन किया है, अत पिछली सरकार द्वारा प्रकाशित आँकडो से न्यूनाधिक भिन्नता स्वाभाविक है।)

2 वित्तमन्त्री का बजट भाषण 28 फरवरी, 1978

आवर्ती या अनवरत योजना
(Rolling Plan)

भारत सरकार के वित्त मंत्री श्री एच. एम पटेल ने 28 फरवरी 1978 को ससद में अपने बजट भाषण मे कहा—"चालू वित्तीय वर्ष (1977–78) की समाप्ति के साथ पाँचवी आयोजना समाप्त हो रही है और पहली अप्रेल, 1978 से नई राष्ट्रीय योजना चालू हो जाएगी।" पाँचवी पचवर्षीय योजना 1 अप्रेल, 1974 से लागू की जाकर 31 मार्च, 1979 तक चलनी थी, किन्तु इसे नई सरकार (जनता पार्टी की सरकार) ने अवधि से एक वर्ष पूर्व ही समाप्त कर 1978–83 की अवधि के लिए 1 अप्रेल, 1978 से एक नई मध्यावधि योजना शुरू करने का फैसला किया है। यह नई राष्ट्रीय 'आवर्ती योजना' (Rolling Plan) है। इसे 'अनवरत योजना प्रणाली' भी कहा जाता है।

आयोजन एक सतत् प्रक्रिया है और किसी भी समय अनेकों ऐसी योजनाएँ और कार्यक्रम चालू रहते हैं जिन्हे छोडा नही जा सकता। आवर्ती अथवा अनवरत योजना प्रणाली के अन्तर्गत योजना का मतलब है—अधिक व्यापक और विस्तृत आयोजन। इस प्रणाली का सबसे बडा लाभ यह है कि हर वर्ष योजना पर तात्कालिक आर्थिक परिस्थितियो के सदर्भ मे नए सिरे से विचार कर उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकेगा। पाँचवी योजना की अवधि चार वर्ष मे ही खत्म कर योजना का पाँचवाँ वर्ष अब अनवरत या आवर्ती योजना प्रणाली का पहला वर्ष होगा। इस तरह अब छठी योजना लागू करने के बजाय पाँच वर्षों की ऐसी योजना चलेगी जिसकी अवधि का एक वर्ष पूरा होने पर उसके अन्तिम वर्ष में आगे का एक और वर्ष जुड जाएगा। परिणामस्वरूप वर्षानुवर्ष उसकी अवधि बढती चली जाएगी और हर वर्ष उसकी अवधि पाँच वर्षों की बनी रहेगी।

आवर्ती योजना की उपयोगिता पर अक्टूबर, 1977 की योजना मे अपने एक लेख में प्रकाश डालते हुए श्री एल पी श्रीवास्तव ने लिखा है कि—

"इस प्रणाली का सबसे बडा लाभ यह होगा कि हर वर्ष योजना पर तात्कालिक आर्थिक परिस्थितियो के सन्दर्भ मे नए सिरे से विचार कर उसमे आवश्यकतानुसार परिवर्तन तथा परिवर्द्धन किया जा सकेगा। पुरानी व्यवस्था के अधीन एक बार लक्ष्य तथा वित्तीय साधन पाँच वर्षों के लिए तय कर देने के बाद उनमें बहुत फेर बदल कठिन हो जाता था। कीमतों मे भारी वृद्धि हो और योजना के लक्ष्य अवास्तविक हो जाएँ तब भी लक्ष्यों को घटाकर उसे जारी रखा जाता था, हालांकि धन अधिक खर्च होता था। अब इन मामलों पर हर साल सविस्तार विचार और योजना में स्थिति के अनुरूप फेर-बदल दिया जा सकेगा। विकास की विभिन्न मदो में प्राथमिकताएँ बदली तथा साधनों के उपयोग मे लचीलापन तथा व्यवस्था कायम रखी जा सकेगी।

नई प्रणाली का उद्देश्य वार्षिक योजनाओं को व्यावहारिक रूप देना तथा पाँच वर्षों की पृष्ठभूमि मे विकास का भावी लक्ष्य निर्धारित कर उसे प्रभावी तौर पर लागू करना है। इसके लिए सबसे बड़ी जरूरत योजना के कार्यान्वयन में प्रगति

के बारे मे लगातार आंकडे एकत्र करने की होगी। इससे उसका हर वर्ष मूल्यांकन किया जा सकेगा। योजना आयोग इसकी व्यवस्था करने जा रहा है। राज्यो को भी सलाह दी जा रही है कि जानकारी एकत्र करने की मशीनरी को सबल बनाएँ तथा हर स्तर पर योजना के कार्यान्वियन पर नजर रखें। तभी योजना का वार्षिक मूल्यांकन और समीक्षा सम्भव होगी।

अब तक पचवर्षीय योजना का मध्यावधि मूल्यांकन किया जाता था, और उसके बाद चौथे वर्ष मे फिर उस पर विचार किया जाता था। अब वह क्रम हर वर्ष जारी रखा जाएगा तथा हर साल पच वर्षों की पृष्ठभूमि मे उसमे व्यवस्थापन किया जाएगा।

आवर्ती योजना (रोलिंग प्लान) की पद्धति नई नही है। सन् 1962 मे चीनी आक्रमण के बाद रक्षा की भी पाँच वर्षो की रोलिंग प्लान लागू की गई थी। इसके बाद केन्द्र ने इस्पात उद्योग के विकास के लिए भी पाँच वर्षों की रोलिंग प्लान पद्धति लागू करने की घोषणा की थी। विकास के कार्यक्रम को लागू करने तथा उसमे तारतम्य बनाए रखने की दृष्टि से यह पद्धति बहुत ही उपयोगी तथा विश्वसनीय है। रक्षा योजना के कार्यान्वयन मे इसकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है।

अगले वर्ष से ही इस पद्धति को लागू करने का उद्देश्य नई सरकार की नीतियो तथा प्राथमिकताओ को निर्धारित करना है, अन्यथा पाँचवी योजना की समाप्ति के लिए एक वर्ष और रुकना पडता। पाँचवी योजना की परिधि मे नई प्राथमिकताओ को लागू करना कठिन था। चूँकि अब नई प्राथमिकताओ के अनुसार वित्तीय साधनो का बँटवारा करना होगा, इसलिए पुरान कायक्रम मे भारी परिवर्तन करना अनिवार्य हो जाएगा।

योजना आयोग ने बताया कि योजना के नए दृष्टिकोण के अनुरूप पूंजी-निवेश की प्राथमिकताएँ बदली जाएँगी। रोजगार सवर्द्धन के लक्ष्यो तथा गरीबी-उन्मूलन की दृष्टि से वित्तीय साधन बडी मात्रा मे कृषि, सिंचाई तथा लघु उद्योगो पर खर्च किए जाएगे। इसके लिए अन्य मदो से धन निकाल कर इन पर खर्च करना होगा। साथ ही किन्ही आवश्यक वस्तुओ का स्टॉक तैयार करने के लिए भी धन उपलब्ध करना होगा। इससे कीमतो मे स्थिरता लाई जा सकेगी। इस तरह अगला वर्ष ग्राम-विकास, रोजगार मे वृद्धि तथा आवश्यक वस्तुओ की कमी दूर कर कीमतें नियन्त्रित करने की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण होगा। इस काम मे देर भी नही की जा सकती। आर्थिक विकास को गति देना इन उपायो के बिना सम्भव नही होगा।"

उल्लेखनीय है कि पिछली पचवर्षीय योजनाओ की विभिन्न कमियो और कठिनाइयो से परिचित जनता सरकार ने मार्च, 1977 मे सत्ता सम्भालने बाद शीघ्र ही योजना आयोग का पुनर्गठन किया और नवगठित आयोग मे 10 सितम्बर, 1977 को ही यह घोषणा कर दी कि वर्तमान पचवर्षीय योजना प्रणाली के स्थान पर सन् 1978–79 मे आवर्ती अथवा अनवरत योजना (Rolling Plan) प्रारम्भ की

जाएगी। 6 अक्तूबर, 1977 को योजना मन्त्रालय की संसदीय सलाहकार समिति की पहली बैठक मे आयोग के अध्यक्ष और प्रधान मन्त्री श्री मोरारजी देसाई ने कहा—

"यद्यपि पहले हमारी योजना ठीक नही थी, परन्तु यह नही कह सकते कि यह असफल रही। वास्तव मे भारत ने औद्योगीकरण के क्षेत्र मे काफी सफलता प्राप्त की है और बिजली, परिवहन और सचार क्षेत्रो मे पूँजीगत सामान बनाने, सीमेंट, कपडा, चीनी और अनेक अन्य महत्त्वपूर्ण सामान तैयार करने मे आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है। भारत इस समय सयन्त्र और मशीनो का निर्यात भी कर सकता है। बेरोजगारी और गरीबी को कम करने के लिए हमारी योजनाएँ असफल नही रही हैं। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि इन उद्देश्यो को ध्यान मे रखते हुए हम अपने विकास लक्ष्यो को स्पष्ट रूप से निर्धारित करें और निवेश प्राथमिकताओं को आवश्यकतानुसार तय करें। इसका मतलब यह नही है कि उद्योग मे और निवेश नही किया जाएगा। कृषि विकास, बिजली, परिवहन आदि की आवश्यकताओं को अधिक औद्योगिक निवेश द्वारा ही पूरा किया जाएगा।"

"आयोजन के उद्देश्य, राष्ट्रीय उद्देश्य हैं इसलिए राष्ट्र की योजनाबद्ध प्रगति के लिए सब दलों को,चाहे वे सत्ता मे हो या विपक्ष मे, मिलकर कार्य करना चाहिए।

"नई प्राथमिताओं को देखते हुए यह फैसला किया गया कि सन् 1978–83 की अवधि के लिए अप्रैल, 1978 से एक नई मध्यावधि योजना को शुरू किया जाए। इस योजना को एक बार मे एक वर्ष के लिए बढ़ाया जाएगा ताकि महत्त्वपूर्ण परियोजनाओं और कार्यक्रमो के लक्ष्यो को पूरा करने के लिए पाँच वर्ष के दौरान लगातार प्रयास किया जाता रहे। एक लम्बी अवधि, लगभग 15 वर्ष के लिए भी एक परिप्रेक्ष्य योजना बनाई जाएगी। अनवरत योजना लागू किए जाने से मध्यावधि योजनाएँ और अधिक वास्तविक, लचीली और सार्थक बनेगी। तीसरी, चौथी और पाँचवी पचवर्षीय योजनाओं को कागज पर निर्धारित लक्ष्यो और अर्थव्यवस्था के वास्तविक विकास मे बहुत अधिक अन्तर था और मुद्रा-स्फीति भी काफी बढ़ी थी।"

जनता सरकार ने भारतीय अर्थ-व्यवस्था के प्रति एक नया दृष्टिकोण अपनाया है जिसकी सफलता को कसौटी पर कसा जाना बाकी है। नई सरकार ने जो आवर्ती योजना प्रणाली आरम्भ की है उसका यहाँ प्रारम्भिक परिचय ही दिया गया है, सरकार की योजना पर आगे एक अध्याय मे विस्तार से विवेचन है। यहाँ प्रासंगिक रूप मे, हमें सन् 1978–79 की वार्षिक आयोजना की रूपरेखा भी देख लेनी चाहिए।

1978–79 की वार्षिक आयोजना

28 फरवरी, 1978 के अपने बजट भाषण मे केन्द्रीय वित्त मन्त्री श्री एच. एम. पटेल ने कहा कि—

"सन् 1978–79 की वार्षिक आयोजना, जिस रूप में यह तैयार हुई है, विकास की कृषि-प्रधान और रोजगार बहुत नई नीति को अपनाने के वर्तमान सरकार के वायदे को प्रतिबिम्बित करती है। वर्ष 1978–79 के लिए केन्द्र, राज्यों और संघ

राज्य क्षेत्रों की वार्षिक आयोजनाओं का कुल परिव्यय सन् 1977–78 के 9960 करोड़ रुपये के मुकाबले, 11649 करोड़ रुपये का होगा। यह 17 प्रतिशत वृद्धि का द्योतक है। इस परिव्यय में से कोई 10465 करोड़ रुपये पहले से चली आ रही योजनाओं पर खर्च होंगे। शेष में से 150 करोड़ रुपये नई विद्युत परियोजनाओं का श्रीगणेश करने के लिए रखे गए हैं और 1034 करोड़ रुपये अन्य क्षेत्रों की योजनाओं के लिए निर्धारित किए गए हैं। उपरोक्त राशि का 80% भाग, यानी 828 करोड़ रुपये कृषि सम्बन्धी और ऐसी अन्य योजनाओं के लिए है जो ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में सहायक होंगी।

सन् 1978–79 के केन्द्रीय बजट में 7281 करोड़ रुपये की राशि केन्द्रीय आयोजना के लिए और राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों की आयोजनाओं में सहायता देने के लिए रखी गई है। सन् 1977–78 के लिए यह राशि 5790 करोड़ रुपये की थी।

अनेक वर्षों में ऐसा पहली बार हुआ है जबकि राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों की आयोजनाएँ कुल मिलाकर केन्द्रीय आयोजना से बड़ी होंगी। कुल मिलाकर राज्यों की आयोजनाओं के परिव्यय में 19 प्रतिशत की वृद्धि की गई है जबकि संघ राज्य क्षेत्रों की आयोजनाओं में 27 प्रतिशत की वृद्धि होगी। दूसरी ओर, केन्द्रीय आयोजना में 15 प्रतिशत की वृद्धि होगी।"

भारत में 1951 से 1978 तक नियोजन : क्या हम समाजवादी समाज का स्वप्न पूरा कर सके ?
(Planning in India [1951-78] : Could We Realise the Dream of 'Socialistic Pattern of Society')

मार्च 1977 में कांग्रेस के लगभग 30 वर्षीय एक छत्र शासन का पराभव हुआ और जनता पार्टी की सरकार प्रतिष्ठित हुई। नई सरकार ने यह अनुभव किया कि जो पचवर्षीय योजनाएँ अब तक चली हैं वे आशानुरूप परिणाम नहीं दे सकी हैं अतः सम्पूर्ण आयोजन को नए परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए, पूँजी निवेश प्राथमिकताओं में परिवर्तन करने चाहिए और आर्थिक नीतियों को नई प्राथमिकताओं के साथ समन्वित करना चाहिए। जनता सरकार ने अपने नए आर्थिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए ही योजना आयोग का पुनर्गठन किया और 1 अप्रैल 1978 से आवर्ती योजना प्रणाली के समारम्भ की घोषणा की। हमें देखना चाहिए कि पिछली योजनाओं की उपलब्धियाँ किस रूप में इतनी निराशाजनक रहीं कि नई सरकार को लम्बे अर्से से चले आ रहे सम्पूर्ण नियोजन को एक नई दिशा देनी पड़ी। पिछली सरकार (कांग्रेस सरकार) ने भारत में नियोजन का मूल लक्ष्य समाजवादी समाज की स्थापना का रखा था और वर्तमान सरकार भी भारत में समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना के लिए ही प्रयत्नशील है, पर जहाँ नई सरकार के प्रयत्नों का मूल्यांकन अभी भविष्य के गर्भ में है वहाँ पिछली सरकार के नियोजन-प्रयासों का मूल्यांकन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की बात है।

काँग्रेसी शासन में समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य

नियोजना का अभिप्राय एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण है जिसमें व्यक्ति तथा समाज के लिए सुरक्षा, स्वतन्त्रता और अवकाश के लिए स्थान हो—जिसमे व्यक्ति को उत्पादक की दृष्टि से, नागरिक की दृष्टि से और उपभोक्ता की दृष्टि से समुचित सन्तोष मिले। स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार के लिए अनिवार्य हो गया कि एक निश्चित जीवन-स्तर, पूर्ण रोजगार, आय का समान वितरण आदि की व्यवस्था करके देशवासियो को सुरक्षा प्रदान की जाए। यह तभी सम्भव था जब उत्पादन के मुख्य साधनो पर समाज का अधिकार हो, उत्पादन की गति निरन्तर विकासमान हो और राष्ट्रीय आय का उचित वितरण हो। अत देश की भावी नीति को और देश के आर्थिक नियोजन को इन्ही लक्ष्यो की पूर्ति के हेतु आवश्यक मोड देने का निश्चय किया गया। ऐसे उपाय खोजे जाने लगे जिनसे अधिकतम लोगो का अधिकतम कल्याण हो सके। सन् 1947 मे दिल्ली कांग्रेस की बैठक मे पारित प्रस्ताव मे कहा गया था—"हमारा उद्देश्य एक ऐसे आर्थिक कलेवर का नव-निर्माण और विकास होना चाहिए जिसमे धन के एक ही दिशा मे एकत्र होने की प्रवृत्ति के बिना अधिकतम उत्पादन किया जा सके, जिसमे नागरिक एव ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे उचित सामञ्जस्य हो।" सन् 1954 के अजमेर अधिवेशन मे स्वर्गीय नेहरू ने कहा था कि वर्तमान भारत की समाजवादी व्यवस्था वस्तुत गाँधीवादी समाज और विकासात्मक व्यवस्था के समन्वय का नया रूप है और देश के आर्थिक पुनर्निर्माण तथा देश मे समाजवादी समाज की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि शीघ्रातिशीघ्र आय के असमान वितरण को दूर किया जाए, प्राप्त साधनो का विदोहन किया जाए, पूँजी को बाहर निकाला जाए, बेरोजगारी की समस्या को हल किया जाए तथा देश का तीव्र गति से आर्थिक विकास किया जाए। सन् 1954 मे ही लोक सभा मे पारित प्रस्ताव मे कहा गया कि जन-समुदाय के भौतिक कल्याण से ही देश की उन्नति सम्भव नही है, इसके लिए सामाजिक व्यवस्था मे संस्थागत (Institutional) परिवर्तन करने होंगे। तत्पश्चात् 22 जनवरी, 1955 को अवाड़ी अधिवेशन मे आर्थिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ जिसमे ऐसे समाज की स्थापना पर बल दिया गया जो समाजवादी समाज के निर्माण मे सहायक हो। उपर्युक्त प्रस्ताव मे समाजवादी समाज के इन मौलिक सिद्धान्तो को ध्यान मे रखा गया—

(1) पूर्ण रोजगार, (2) राष्ट्रीय धन का अधिकतम उत्पादन, (3) अधिकतम राष्ट्रीय आत्म-निर्भरता, (4) सामाजिक एव आर्थिक न्याय, (5) शान्तिपूर्ण अहिंसात्मक और लोकतान्त्रिक तरीको के प्रयोग, (6) ग्राम पचायतो तथा समितियों की स्थापना, एव (7) व्यक्ति की सर्वोच्चता एव उसकी आवश्यकताओं को अधिकतम प्राथमिकता।

समाजवादी समाज के इन सिद्धान्तों को ध्यान मे रखते हुए अवाड़ी अधिवेशन में समाज की स्थापना के लिए ये लक्ष्य रखे गए—(1) जन-साधारण के जीवन-स्तर में वृद्धि, (2) उत्पादन-स्तर मे वृद्धि, (3) दस वर्ष में पूर्ण रोजगार की व्यवस्था,

(4) राष्ट्रीय धन का समान वितरण, एव (5) व्यक्ति तथा समाज की भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति आदि । योजना आयोग द्वारा इन सिद्धान्तो का समर्थन किया गया और इस प्रकार की व्यवस्थाएँ की गईं जो समाजवादी समाज की आधारशिला बन सकें । द्वितीय पचवर्षीय योजना का मूल आधार समाजवादी समाज का निर्माण रखा गया और इस दिशा मे आगे बढने के लिए तृतीय पचवर्षीय योजना की रूपरेखा के मुख्य निर्माता महालनोबिस ने निम्नलिखित आठ उद्देश्यो पर विशेष बल दिया--

(1) सार्वजनिक क्षेत्र के महत्व और उनकी सीमा को विस्तृत करना ।
(2) आर्थिक सुदृढता के लिए आधारभूत उद्योगो का विकास ।
(3) गृह उद्योगो एव हस्तकला वस्तुओ का अधिकतम उत्पादन ।
(4) भूमि सुधारो की गति मे तेजी एव भूमि का समान वितरण ।
(5) छोटे उद्योगो का बडे उद्योगो से रक्षण करना और उन्हे पूरक बनाना ।
(6) जनता के लिए आवास, स्वास्थ्य सेवाओ और शिक्षा सेवाओ का विस्तार ।
(7) बेरोजगारी समस्या को दस वर्षों मे समाप्ति ।
(8) इस अवधि मे राष्ट्रीय आय मे 25% की वृद्धि तथा राष्ट्रीय आय का समान व उचित वितरण ।

1973-74 तक नियोजन और समाजवादी आदर्श को प्राप्ति का मूल्यांकन

स्पष्ट है कि भारत मे नियोजन का आधार समाजवादी समाज का निर्माण रहा और इस दिशा मे आगे बढने के लिए नियोजन मे विभिन्न कदम उठाए गए। प्रगति भी हुई और राष्ट्रीय आय भी बढी जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है—

आर्थिक प्रगति आंकडो मे[1]

	1960-61	1965-66	1973-74
राष्ट्रीय आय			
शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन			
वर्तमान मूल्यो पर	13,300 करोड रु	20,600 करोड रु.	49,300 करोड रु
स्थिर मूल्यो पर	13,300 करोड रु.	15,100 करोड रु.	19,700 करोड रु
प्रति व्यक्ति आय			
वर्तमान मूल्यो पर	306 रु.	426 रु.	850 रु.
स्थिर मूल्यो पर	306 रु	311 रु	340 रु.
औद्योगिक उत्पादन का सूचक (1960=1000)	100 रु	154 रु	201 रु
भुगतान सन्तुलन			
विदेशी मुद्रा कोष	304 करोड रु.	298 करोड रु.	947 करोडरु.
विदेश व्यापार			
निर्यात	660 करोड रु.	810 करोड रु.	2,483 करोड रु.
आयात	1,140 करोड रु	1,394 करोड रु.	2,921 करोड रु.

1. भारत सरकार : प्रगति के दस वर्ष (1966-1975), पृष्ठ 47-53.

लेकिन नियोजन की वास्तविक उपलब्धियो को समाजवादी समाज के दर्पण में देखने पर अधिकांशत निराशा ही हाथ लगी। इसमें सन्देह नहीं कि सरकार ने समाजवादी समाज की स्थापना के लिए प्रयत्न किए और योजनाओं को इस दिशा में मोडने तथा गति देने के लिए विभिन्न कदम उठाए, लेकिन विभिन्न कारणो से इसमें अपेक्षित सफलता न मिल सकी। व्यवहार में समाजवादी तत्त्वों को कोई प्रोत्साहन नहीं मिल पाया और न ही आय तथा सम्पत्ति का कोई उचित वितरण हो सका। चार पचवर्षीय योजनाओ, तीन एक वर्षीय योजनाओ और पाँचवी योजना के प्रारम्भिक डेढ वर्ष के सम्पन्न होने के बाद भी यह देखकर सभी क्षेत्रो मे निराशा छाई रही कि आय और धन की असमानताओ मे भारी वृद्धि हुई है तथा राष्ट्रीय आय का अधिकांश भाग उद्योगपतियों और पूँजीपतियों को मिला है। यद्यपि निम्न वर्गों के रहन-सहन के स्तर म कुछ सुधार अवश्य हुआ है, लेकिन तुलनात्मक रूप से यह निराशाजनक है और असमानताओ की खाई पहले मे बडी है। समाजवाद लाने की आशा जगाने वाले अनेक सरकारी सस्थानो मे भी पूँजीपतियो का प्रभुत्व छाया हुआ है। देश मे न तो समाजवादी मनोवृत्ति ही जाग्रत हुई है और न व्यक्ति को आर्थिक सुरक्षा ही प्राप्त हो सकी है। पूर्ण रोजगार की बात तो दूर रही, बेरोजगारो की फौज निरन्तर बढती जा रही है जिसका सम्पूर्ण राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड रहा है। देश की श्रम-शक्ति का सदुपयोग न हो पाने से और बडी मात्रा मे उसके व्यर्थ पडे रहने से राष्ट्र को कितनी आर्थिक, सामाजिक और नैतिक हानि होती है इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। सार्वजनिक-क्षेत्र के विकास द्वारा निजी-क्षेत्र पर कुछ रोक अवश्य लगी है, लेकिन आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण पर कोई प्रभाव नहीं पडा है। क्षेत्रीय असमानताएँ भी बहुत कुछ यथापूर्व बनी हुई हैं और एकाधिकारी शक्तियों मे वृद्धि हो रही है।

वस्तुत, समाजवाद की कल्पना कोरे कागजो पर ही हुई। देश मे जिस दर से महँगाई बढी, वस्तुओ के भाव आकाश छूने लगे और साधारण जनता जीवन-निर्वाह की आवश्यक वस्तुओ में भी जितने कष्ट का अनुभव करने लगी, उससे समाजवादी समाज का निर्माण कोसो दूर दिखाई देता था। मूल्य-वृद्धि का सामना करने के लिए सबसे सरल उपाय कर्मचारियो के वेतन मे वृद्धि और तदनुसार घाटे की अर्थव्यवस्था समझा जाता रहा है। लेकिन इससे स्वभावत मुद्रा-प्रसार होना है और मुद्रा-प्रसार से हमे पुन. मूल्य-वृद्धि के भवर मे फँसना पडता है। फलस्वरूप हमारे गरीबी के कष्ट और अधिक बढ जाते है। इमीलिए शहरो मे पाए जाने वाला गरीब-अमीर का अन्तर गाँवों में भी काफी गहरा होता गया। जैसा कि योगेशचन्द्र शर्मा ने 22 अप्रेल, 1973 के योजना-अंक मे प्रकाशित एक लेख मे लिखा—"गाँवो मे एक ओर तो बड़े-बड़े भू-पति हैं, जिनके पास स्वय अपने नाम पर या रिश्तेदारों के नाम पर दूर-दूर तक फैली हुई कृषि-भूमि है और दूसरी ओर ऐसे किसान है जिनके पास केवल एक या दो बीघा जमीन है। बडे भू-पतियों मे या तो शहर के पूँजीपतियों और पुराने जमीदार हैं अथवा ऐसे राजनीतिक नेता हैं जिन्होंने अपने प्रभाव से काफी जमीन

अपने पास बटोर ली है। ये भू-पति निश्चित रूप से मूल्य-वृद्धि से काफी लाभान्वित हुए हैं और बढ़ी हुई राष्ट्रीय आय को दोनों हाथों से बटोर रहे हैं। दूसरी ओर किसान हैं जो इस स्थिति में भी नहीं हैं कि पैदा हुई फसल को कुछ समय तक रोक कर अपने पास रख लें। उन्हें तो तत्काल अपनी फसल को बाजार में ले जाकर बेचना पड़ता है, ताकि अपने लिए आवश्यकता की वस्तुएँ जुटा सकें।"

योजनाओं के आँकड़ों से पता चलता है कि भूमि का वितरण भी उचित रूप से नहीं हुआ। उपर्युक्त लेख के अनुसार "देश भर में जुलाई, 1972 तक लगभग 24 लाख एकड़ भूमि पर सरकार ने कब्जा किया, जिसमें लगभग आधा भाग ही वितरित किया जा सका।" यथार्थ रूप में कृषि मजदूरों और पट्टेदारों की संख्या में भी सन्तोषप्रद कमी नहीं आई। ग्रामीण जीवन पर सहकारी सिद्धान्त का प्रभाव व्यवहार में निराशाजनक रहा। गाँवों में जो भूमिहीन व्यक्ति हैं, उन्हें रोजगार देने के लिए बहुत कम सोचा गया तथा उसके व्यावहारिक स्वरूप को और भी कम महत्त्व दिया गया। न्यूनतम जीवन-स्तर की कल्पना कागजी ही अधिक रही। डॉ. राव ने ठीक ही विचार व्यक्त किया कि "यदि समाजवाद के प्रश्न पर सरकारी दृष्टि से विचार किया जाए अथवा केवल आँकड़ों की दृष्टि से देखा जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस दिशा में काफी प्रगति हुई है। लेकिन वास्तविकता यह है कि जितनी उम्मीद थी उतनी भी आर्थिक उन्नति नहीं हुई है।""देश में समाजवादी मनोवृत्ति एवं प्रवृत्ति का स्पष्ट रूप कहीं देखने को नहीं मिलता और न इस प्रकार की प्रवृत्ति पैदा करने की दिशा में कोई कार्यवाही की जा रही है। इसके विपरीत पूँजीवादी मनोवृत्ति एवं प्रवृत्ति दिन पर दिन बढ़ती जा रही है और सरकारी नीति तथा कार्यक्रम भी इनका उत्साह भंग करने में सफल नहीं हो पाए हैं।" डॉ. राव का यह विचार निश्चय ही सारपूर्ण था कि "समाजवादी समाज के लिए आयोजन-व्यूह रचना और तकनीक में मूल तत्त्व का अभाव रहा है। मूल तत्त्व ये हैं कि हम जन-साधारण में आस्था पैदा करने और जन-सहयोग प्राप्त करने में सफल नहीं हो रहे हैं।"

भारत में समाजवादी समाज की दिशा में नियोजन की सफलता का मूल्यांकन देश में व्याप्त 'गरीबी' के आधार पर किया जाना चाहिए और इस कसौटी पर नियोजन एकदम फीका सिद्ध हुआ। एस. एच. पिटवे ने 7 मार्च, 1973 के योजना-ंक में प्रकाशित अपने एक लेख में ठीक ही लिखा कि "गरीबी के स्तर को आँकने का सरल निर्देशांक यही हो सकता है कि कुल उपभोक्ता व्ययों का बँटवारा प्रमुख मदों में किया जाए, जैसे अन्न, ईंधन, कपड़ा, स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन आदि। भारत में इनमें से भोजन पर सर्वाधिक व्यय होता है। अनुमान है कि भारत में उपभोक्ता के कुल व्यय का 70 से 80% तक मात्र भोजन पर व्यय होता है।' प्रो. दाण्डेकर ने भारत में गरीबी का जो विद्वतापूर्ण अध्ययन किया उससे भी यह स्पष्ट है कि पिछले दशक के आर्थिक विकास का अधिकतम लाभ ग्रामीण एवं शहरी दोनों ही क्षेत्रों में उच्च, मध्यम श्रेणी तथा अमीर वर्ग को ही हुआ और गरीब वर्ग इससे कुछ भी लाभान्वित नहीं हो सका, बल्कि उसके उपभोग में गिरावट हुई। इ

अध्ययन का स्पष्ट एवं तार्किक निष्कर्ष यह निकलता है कि सन् 1973–74 तक आय की असमानता मे और वृद्धि होकर अमीर तथा गरीब के बीच की खाई और भी विस्तीर्ण हो गई ।

सन् 1974 से मार्च, 1977 तक का मूल्यांकन

आर्थिक क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण प्रगति के बावजूद दुर्भाग्यवश हम समाजवादी समाज की स्थापना के उद्देश्य मे असफल रहे । सम्पन्नता और विपन्नता की खाई निरन्तर चौडी होती गई और 'गरीबी हटाओ' के नारे का कुल मिलाकर प्रभाव यह हुआ कि गरीबी तो नही हटी हाँ गरीब अधिकाधिक शोषण के कारण और अधिक 'मिटते गए' । आर्थिक अव्यवस्था लाने वाले तत्त्व अधिकाधिक प्रबल होते गए, क्योंकि राजनीतिक क्षेत्र मे नियन्त्रणहीनता से उन्हें प्रोत्साहन मिला । श्रीमती गाँधी के नेतृत्व मे कांग्रेस लोकसभा और अधिकांश राज्य-विधानसभाओ मे अपने प्रचण्ड बहुमत के कारण निरकुशता के मार्ग पर बढती गई, गरीब जनता के प्रति शासन की सहानुभूति ने 'प्रदर्शन' बढता गया और समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य पहले से भी अधिक दूर हो गया । सत्तारूढ कांग्रेस पार्टी ने विरोधियों और जन-आक्रोश को कुचल देने के तरीके अपनाए और श्रीमती गाँधी ने अपनी 'कुर्सी बचाने' के लिए 26 जून, 1975 को सारे देश पर राष्ट्रीय आपात् की स्थिति लागू कर दी।

आपात्काल मे सरकार ने विरोधी पक्ष को लगभग समाप्त कर देने की हर सम्भव कोशिश की । अर्थ-व्यवस्था को सुधारने के नाम पर अनेक ऐसे निरकुश कदम उठाए गए जिनकी प्रतिक्रिया देश की आम जनता पर बहुत ही प्रतिकूल थी । काग्रेस सरकार का दावा रहा कि आपात्काल मे देश का आर्थिक विकास हुआ, कारखानों में रिकार्ड तोड उत्पादन हुआ, मुद्रा-स्फीति पर काबू पा लिया गया, विदेशी मुद्रा का भण्डार भर गया, कीमतों मे काफी बुद्ध कमी हो गई, औद्योगिक शान्ति बनी रही और 'गरीबी हटाओ' के नारे को बडी सीमा तक सार्थक बनाया गया । कांग्रेस सरकार ने कहा कि समाजवादी समाज के घोषित लक्ष्य की पूर्ति की दिशा मे वह सन् 1974 के मध्य से ही विशेष रूप से सक्रिय हो गई थी, सन् 1974 के मध्य मुद्रा-स्फीति को रोकने के लिए कुछ कठोर कदम उठाए गए थे (अनिवार्य जमा योजना लागू करना, आदि), जुलाई, 1974 मे सभी बैंकों के सबसे बडे खानो पर रिजर्व बैंक के कठोर निगरानी सम्बन्धी आदेश लागू कर दिए गए थे, आदि । पाँचवी पचवर्षीय योजना को समाजवादी लक्ष्य की दिशा मे यथार्थवादी बनाने के लिए ही योजना के लक्ष्य इस प्रकार रखे गए थे—

1. एक ऐसा विकास कार्यक्रम, जिसके द्वारा पिछडे तथा शोषित समुदायों को अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूरा बढने का उपयुक्त अवसर मिले और वे भी सबके कल्याण के लिए किए जा रहे कार्यों में हाथ बँटा सके ।

2. एक इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना जिसमें प्रत्येक वयस्क नागरिक को उसके योग्यतानुसार पूरा रोजगार प्राप्त हो सके और वह राष्ट्र की प्रगति मे सहयोग दे सके ।

3 धन उपार्जित करने की एक ऐसी व्यवस्था तैयार करना जिसके द्वारा अमीर-गरीब की खाई को कुछ समाप्त किया जा सके।

4 एक ऐसी जीवन धारा का निर्माण जिससे राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक समानता अर्थपूर्ण और वास्तविक रूप मे रहे।

किन्तु पाँचवी योजना के लक्ष्य भी 'प्रदर्शनात्मक' ही अधिक सिद्ध हुए, क्योकि मार्च, 1977 में कांग्रेसी शासन के पतन के समय देश की जो आर्थिक स्थिति थी वह अग्रेजो के जाने के वक्त की आर्थिक स्थिति से भी बदतर थी। कुल मिलाकर, सक्षेप में, स्थिति यह थी कि हम निर्यात घाटे को राजकीय अनुदान से पूरा करते रहे थे, निजी क्षेत्र के कारखानो के उत्पादन मे कोई वृद्धि नही हुई थी अपितु बहुत से कारखानो का उत्पादन गिर गया था, फरवरी, 1977 मे मूल्य-सूचक अक सितम्बर, 1974 के 330 2 के सर्वोच्च बिन्दु से केवल 5 प्वाइट ही कम था और बेरोजगारो की सख्या अन्य किसी भी समय के मुकाबले अधिक थी। कठोर उपायो के कारण कीमतो की गिरावट केवल अल्पकालीन थी और मुद्रा-स्फीति पर भी यही बात लागू होती थी। समाजवादी समाज की स्थापना का एक 'दिलचस्प नमूना' यह था कि सरकारी या निजी क्षेत्र मे जितने भी कारखाने थे और उनमें जितनी भी पूँजी लगी हुई थी, उसका 95% हिस्सा विदेशी ऋण या सहायता से प्राप्त हुआ था और वित्त मन्त्री श्री सी सुब्रह्मण्यम ने 31–12–1976 को स्वय स्वीकार किया था कि रिजर्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार कुल उद्योगो के उत्पादन का लगभग 40% बीस-बाईस बडे घराने के कब्जे में है। 18 सितम्बर, 1977 के 'दि इलस्ट्रेटेड वीकली' में, बडे उद्योग-समूहो के आकार और विकास पर कुछ रोचक किन्तु अतिशय महत्त्वपूर्ण आँकडे प्रकाशित हुए थे जो हमें बताते है कि आर्थिक शक्ति का सकेन्द्रण किस प्रकार कुछ अमीर घरानो के हाथो मे होता गया और फलस्वरूप देश समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य से कोसो दूर हटता गया। ये आँकडे पृष्ठ 356-357 पर मुद्रित सारणी अनुसार हैं।

गरीबी हटने की एक 'बडी निशानी' यह रही कि जहाँ सन् 1966 के पर्व गरीबी से नीचे के स्तर पर जीने वाले मजदूरो की सख्या 40 प्रतिशत थी वहाँ सन् 1975 के आते आते यह 66 प्रतिशत हो गई। दूसरे शब्दो में, श्रीमती गाँधी के कार्यकाल में गरीबो में 26 प्रतिशत की वृद्धि हुई। भारत धनी कितना हुआ, इसका अनुमान हम इस बात से लगा सकते है कि जहाँ स्वाधीनता के बाद सन् 1947 में भारत पाँच अरब पौण्ड का धनी था (यह धनराशि ब्रिटिश सरकार के पास कर्ज के रूप में थी), वहाँ अब भारत अरबो रुपयो की देशी और विदेशी सहायता तथा ऋण का मोहताज है। एक विकासशील देश को विदेशी सहायता और विदेशी ऋणो का सहारा लेना ही पडता है, लेकिन जहाँ तक समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य का सवाल है, भारत की स्थिति कांग्रेसी शासनकाल में निरन्तर बदतर होती गई। इस सम्बन्ध में पुस्तक के भाग एक मे एक अध्याय में उत्तर प्रदेश के क्षेत्रीय विकास उपमन्त्री श्री बाबूलाल वर्मा का एक लेख उद्धृत किया गया है

बड़े उद्योग-समूहों का आकार और विकास
(Size and Growth of Big Business Groups)

(Total Assests Rs. Crores)

उद्योग समूह	1951 (हजारी रिपोर्ट)	1966 (ILPIC रिपोर्ट)	1971 (कम्पनी मामलों का विभाग)	1975-76 (इकॉनोमिक टाइम्स)	1963 और 1971 के बीच वृद्धि का %	1972 और 1976 के बीच वृद्धि का %
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
टाटा	116	505 (1)	818 (1)	975 (2)	96	42·5
बिरला	153	458 (2)	726 (2)	1,065 (1)	139	46·7
मफतलाल	13	93 (7)	235 (3)	284 (3)	411	22·9
मार्टिन बर्न	41	153 (3)	173 (4)	—	15	—
बांगड़	20	104 (4)	149 (5)	196 (7)	91	40·4
थापर	16	99 (5)	145 (6)	204 (6)	101	54·7
आई. सी. आई.	—	50 (20)	137 (7)	182 (10)	270	24·3
ए. सी. सी.	22	90 (8)	129 (8)	169 (12)	68	23·3
श्रीराम	12	74 (10)	128 (9)	187 (8)	133	35·6
जे. के. सिंघानियां	37	67 (12)	119 (10)	223 (4)	102	63·8

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
सूरजमल नागरमल	—	96 (6)	114 (11)	—	42	—
वालचन्द	13	81 (9)	103 (12)	135 (17)	87	35 6
साराभाई	—	57 (16)	97 (13)	183 (9)	126	40 9
किलक	—	51 (13)	—	139 (16)	—	48 8
मैकनेल बैरी/बिन्नी	—	57 (15)	97 (14)	—	94	—
किरलोस्कर	2	43 (23)	95 (15)	177 (11)	400	54 8
बजाज	—	35 (18)	उपलब्ध नहीं	143 (15)	—	51 1
साहू जैन	130	59 (14)	93 (16)	—	37	—
सिंधिया	25	56 (17)	90 (17)	217 (5)	92	70 9
बर्ड हेलगर्स	34	69 (11)	85 (18)	—	42	—
लारसेन एण्डटोबरो	—	—	—	114 (19)	—	109 0
गोयनका	—	65 (13)	79 (19)	—	68	—
कस्तूरभाई लालभाई	13	51 (18)	76 (20)	109 (20)	124	27 3
मोदी	—	19	—	116 (18)	—	86 4
टी वी. सुन्दरम् आयंगर	—	44 (22)	74 (21)	—	236	—
महिन्द्र	1	38 (26)	72 (22)	144 (14)	260	73 2
पैरी	—	42 (24)	70 (23)	148 (13)	483	33·2
Total of top 20 Groups	648	2,335	3,688	5,111	102·3	45 3
Total of top 10 Groups	594	1,753	2,759	3,717	102·8	43·3

ILPIC—Industrial Licencing Policy Inquiry Committee.

जो इस बात का अच्छा संकेत देता है कि हम समाजवादी समाज की स्थापना की दिशा में कहाँ तक आगे बढ़े है।

अप्रैल, 1977 से मार्च, 1978 तक का मूल्यांकन

मार्च, 1977 के अन्तिम सप्ताह मे स्वतन्त्र भारत के इतिहास में केन्द्र में पहली बार कांग्रेस सत्ताच्युत हुई और श्री मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार बनी। नई सरकार ने देश की समूची अर्थ-व्यवस्था और सम्पूर्ण नियोजन के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया। यद्यपि एक वर्ष की अवधि नई सरकार के कार्यकलाप के मूल्यांकन के लिए पर्याप्त नही कही जा सकती, तथापि इस बात से भी इंकार नही किया जा सकता कि नए नेतृत्व ने देश में आशा का एक नया वातावरण पैदा किया है। समाजवादी समाज की स्थापना की दिशा मे नई सरकार अधिक जागरूक सिद्ध हो रही है। स्वास्थ्य और परिवार कल्याण के क्षेत्र मे नई सरकार का छोटा-सा कार्यकाल भी प्रशसनीय रहा है। इस अवधि मे किए गए कार्यों मे ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा योजना का सूत्रपात सबसे प्रमुख कार्य है। भारत के इतिहास में यह पहला अवसर है जबकि गाँवो मे रहने वाले लोगों को उनके घरो पर ही स्वास्थ्य सुविधाएँ पहुँचायी जा रही हैं। 'ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा योजना' के अन्तर्गत लगभग सात करोड की आबादी के लाभ के लिए 80 हजार गाँवो मे 777 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रो के अधीन 2 अक्तूबर, 1977 से सक्रिय कदम उठाए जा चुके हैं। आशा है कि दो या तीन वर्षो के अन्दर भारत मे ऐसा कोई गाँव नही होगा जो इस योजना से अछूता रह जाएगा। पंचवर्षीय योजनाओ के स्थान पर आवर्ती अथवा अनवरत योजना प्रणाली 1 अप्रैल, 1978 से लागू कर दी गई है और प्राथमिकताओ का पुन निर्धारण इस प्रकार किया गया है जिससे देश मे आर्थिक विषमता की खाई तेजी से पाटी जा सके। नई औद्योगिक नीति की घोषणा की जा चुकी है और आशा की जाती है कि ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को नया बल प्राप्त होगा ताकि अमीर और गरीब के बीच की दूरी कम हो सके। वित्त मन्त्री श्री एच. एम. पटेल ने 28 फरवरी, 1978 को लोकसभा मे बजट पेश करते हुए कहा—"मेरा उद्देश्य एक ऐसी प्रक्रिया को चालू कर देना है जिससे खासतौर से ग्रामीण क्षेत्रो मे उत्पादन और रोजगार मे बराबर वृद्धि होती चली जाए। पूंजी निवेश मे सरकारी व्यय का कार्यक्रम वह प्रमुख साधन है जिसके द्वारा मैं यह उद्देश्य पूरा करना चाहता हूँ। आधारभूत सुविधाओ की निवेश-व्यय में बहुत ज्यादा बढ़ोतरी की जा रही है ताकि आगे विकास के मार्ग मे आने वाली रुकावटे दूर हो जाएँ और सामान्य आर्थिक वातावरण मे सुधार हो।" वित्त मन्त्री महोदय ने यह भी कहा—"मैंने जो राज्यकोषीय नीति अपनाई है उसका उद्देश्य हमारी अर्थ-व्यवस्था मे नई विस्तारकारी प्रेरक शक्तियों को पैदा करने के लिए खाद्य और विदेशी मुद्रा की अनुकूल परिस्थिति का लाभ उठाना है।"

जनता सरकार रूपी नई दुल्हन के कार्यकलापो का समुचित मूल्यांकन अभी भविष्य के गर्भ मे है। समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य की प्रगति के लिए

सरकार को अपनी शिथिलता का परित्याग करना होगा और अपनी नीतियो को कठोरतापूर्वक अमली जामा पहिनाना होगा। नीति निर्माण का उद्देश्य तब विफल हो जाता है जब उस नीति का समुचित ढग से क्रियान्वयन नही हो पाता। सरकार से अपेक्षित है कि—

1 विलासिताओ पर भारी कर लगाया जाए। जब हम आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने और एक न्यायोचित समाज का निर्माण करने के लिए प्रयत्नशील हैं तो यह अनुचित है कि समाज का एक विशेष वर्ग प्रदर्शन उपभोग मे व्यस्त रहे। न्याय-सिद्धान्त का तकाजा है कि समाज का जो व्यक्ति जितना अधिक कमाता है वह आनुपातिक रूप से सामाजिक जिम्मेदारियो का भी उतना ही अधिक भार वहन करे और अधिक कर देते समय कोई असन्तोष महसूस न करे।

2 सरकार कटिबद्ध होकर उत्पादन के सभी साधनो भूमि, श्रम, पूँजी, साहस और सगठन को एकजुट करके राष्ट्रीय आय मे तीव्र वृद्धि के लिए प्रयत्नशील हो और राष्ट्रीय आय का उचित वितरण कर आय की असमानता कम करने के लिए युद्ध-स्तरीय ठोस कदम उठाए।

3 खाद्यान्न-उत्पादन मे तेजी से अधिकाधिक वृद्धि के लिए ठोस और युद्ध-स्तरीय कदम उठाए जाएँ। सिंचाई, खाद, जोत आदि के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराए जाएँ। नहरो बाँधो, कुओ आदि का बडी सख्या मे निर्माण कर मौसम पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति को ठुकराया जाए।

4 औद्योगिक विकास तीव्र गति से हो तथा कुछ समय के लिए पूँजी का निर्यात बन्द करके उससे अपने ही देश मे औद्योगिक विकास किया जाए।

5 घाटे की अर्थ-व्यवस्था और मुद्रा-प्रसार की प्रवृत्ति पर अकुश लगाया जाए।

6 काले धन को बाहर निकालने के लिए कठोर वैधानिक कदम उठाए जाएँ।

7. सम्पन्न किसानो की आय पर ऊँची दर मे करारोपण किया जाए और प्राप्त आय से ग्रामीण क्षेत्रो म नए रोजगार पैदा किए जाएँ।

8 देश के बडे-बडे पूँजीपतियो और उद्योगपतियो पर बेरोजगारी टैक्स लगा कर उस धन से बेरोजगार व्यक्तियो को समुचित आर्थिक सहायता दी जाए।

9 हडतालो आदि पर कुछ वर्षों के लिए कठोरतापूर्वक रोक लगाकर देश के उत्पादन को बढाया जाए और श्रम-शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग किया जाए। यदि आवश्यक हो तो इसके लिए सविधान मे भी सशोधन किया जाए।

10 उद्योगो के राष्ट्रीयकरण से सरकार नए उत्तरदायित्वो से घिर गई है। सरकार इन उत्तरदायित्वों को कुशलतापूर्वक निभाए और सार्वजनिक क्षेत्र की कार्यक्षमता पर लोगो को सन्देह न होने दे। आधुनिक प्रबन्ध को प्रभावशाली बनाने के लिए सभी स्तरो पर सार्वजनिक अनुशासन का पूरा ध्यान रखा जाए। यह भली प्रकार समझ लिया जाए कि यदि जन-जीवन मे सामन्तशाही विशेषता घर करने लगेगी तो समाजवादी समाज की स्थापना के लिए आवश्यक सामाजिक परिवर्तन के अस्तित्व का आधार ही समाप्त हो जाएगा।

11. सरकार लघु योजनाओं और कार्यक्रमों का जाल बिछाए ताकि बेकार पड़ी श्रम-शक्ति का उपयोग किया जा सके। बेरोजगारी को दूर करने के प्रत्येक सम्भव उपाय किए जाएँ।

12. सामाजिक सेवाओं का तेजी से विस्तार किया जाए पर इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाए कि साधारण जनता और पिछड़े वर्गों को उनका समुचित लाभ मिल सके। वस्तुओं के उत्पादन और उचित वितरण, दोनों पर प्रभावशाली ढग से ध्यान दिया जाए।

13. बैंक राष्ट्रीयकरण के प्रसग में जो कमियाँ घर कर गई हैं उनका यथाशीघ्र निराकरण किया जाए। प्रशासनिक व्यय को घटाया जाए। जो 'नए जमींदार और जागीरदार' बने हैं, जो 'नए-नए राजा-महाराजा' पनप गए हैं—उनकी आकस्मिक समृद्धि का पूरा लेखा-जोखा लिया जाए और सामाजिक-आर्थिक विषमताओं की खाई कम करने की दिशा मे महत्त्वपूर्ण कदम उठाए जाएँ। उच्च पदाधिकारियो की वेतन-वृद्धि की प्रवृत्ति पर अकुश लगाया जाए और छोटे राज्य कर्मचारियो की वेतन-वृद्धि पर इस रूप मे ध्यान दिया जाए कि उससे मूल्य-वृद्धि को प्रोत्साहन न मिले। इस दिशा मे सक्रिय रूप से विचार किया जाए कि न्यूनतम वेतन लगभग 250 रुपये हो और अधिकतम वेतन लगभग 2000 रुपये से अधिक न हो। रेलो मे प्रथम एव द्वितीय श्रेणी समाप्त कर दी जाए।

यदि इन सभी और इसी प्रकार के अन्य उपायो पर प्रभावी रूप मे अमल किया जाए तो इसमे सन्देह नहीं है कि हम अनवरत नियोजन के माध्यम से समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य की ओर तेजी से बढ सकेंगे।

2 योजनाओं में विकास, बचत एवं विनियोग दरें-नियोजित तथा वास्तव में प्राप्त

(GROWTH-RATES SAVING [INVESTMENT] RATES—PLANNED AND ACHIEVED IN THE PLANS)

भारत मे चार पचवर्षीय योजनाएँ और तीन एक वर्षीय योजनाएँ पूर्ण करने के बाद 1 अप्रेल, 1974 से पाँचवी पचवर्षीय योजना लागू की गई जो अवधि से एक वर्ष पूर्व ही 31 मार्च, 1978 को समाप्त कर दी गई है और पहली अप्रेल, 1978 से जनता सरकार ने नई राष्ट्रीय योजना चालू की है। अब तक पूरी की गई योजनाओं मे विकास-दर, बचत तथा विनियोग दरो की क्या स्थिति रही है, इसका पर्यवेक्षण करने से पूर्व 'विकास-दर' का अर्थ समझ लेना आवश्यक है। प्राय. विकास-दर को निम्न प्रकार से फार्मूला द्वारा ज्ञात किया जाता है—

$$\text{विकास-दर} = \frac{\text{बचत}}{\text{पूँजी गुणांक या पूँजी प्रदा-अनुपात}}$$

उदाहरणार्थ, किसी अर्थ-व्यवस्था मे पूँजी-प्रदा-अनुपात 4 1 है तथा जनसख्या की वार्षिक वृद्धि-दर 2% है और बचत एव विनियोग दर 8% है। इस स्थिति मे उस राष्ट्र की राष्ट्रीय आय 8/4=2% वार्षिक दर से बढेगी। किन्तु जनसख्या की वृद्धि भी 2% होने के कारण प्रति व्यक्ति आय मे कोई वृद्धि नही होगी और इस प्रकार प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से देश की अर्थ-व्यवस्था स्थिर बनी रहेगी। चूँकि आर्थिक विकास का अर्थ प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि है, इसीलिए विकास मे वृद्धि के लिए बचत एव विनियोग की दर 8% से अधिक आवश्यक होगी। विकास-दर की उपरोक्त परिभाषाओ से स्पष्ट है कि भारत की योजनाओ ने नियोजित विकास-दर के अध्ययन के लिए सर्वप्रथम इस देश की बचत एव विनियोग की स्थिति जानना आवश्यक है। यह देखना जरूरी है कि भारत की योजना मे बचत एव विनियोग दरें किस प्रकार रही हैं। उल्लेखनीय है कि भारतीय नियोजन और अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध मे विविध स्रोतो के आँकडो मे प्राय न्यूनाधिक भिन्नता पायी जाती है। प्रस्तुत अध्याय देश की पचवर्षीय योजनाओ और विख्यात अर्थशास्त्री प्रो विल्फ्रेड मेलनबाम (Wilfred Malenbaum) के अध्ययन पर आधारित है। प्रो मेलनबाम का अध्ययन प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओ और चतुर्थ योजना प्रारूप (1966) के सन्दर्भ मे है। यद्यपि चतुर्थ पचवर्षीय योजना का प्रारूप बाद मे सशोधित किया गया तथापि अध्ययन के लिए कोई विशेष अन्तर नही पडता।

प्रथम चार पंचवर्षीय योजनाओं में भारत में नियोजित बचत एवं विनियोग की स्थिति

यदि घरेलू बचतों को राष्ट्रीय के भाग के रूप में देखें तो 1951–52 में घरेलू बचतें राष्ट्रीय आय का केवल 5·3% थी। यह दर 1955–56 में बढ़कर 7 5% हो गई तथा 1960–61 में इस दर की स्थिति 8·5% थी। 1965–66 में ये बचतें कुल राष्ट्रीय आय का 10·6% थी किन्तु 1968–69 मे यह घटकर 8·8% ही रह गई। चतुर्थ पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष 1973–74 मे इस दर की परिकल्पना 13 2% की गई।

जहाँ तक विनियोजन का प्रश्न है, 1950–51 मे विनियोजन राष्ट्रीय आय का 5 6% था जो बढ़कर 1955–56 में 7·3% हो गया, 1960–61 मे 11·7%, 1965–66 मे 13% तथा 1968–69 में कम होकर 11 2% हो गया। 1973–74 मे यह दर 13·8% अनुमानित की गई थी। बचत व विनियोजन की उपरोक्त दरों को नीचे दी गई तालिका मे प्रस्तुत किया गया है[1]—

वर्ष	बचत राष्ट्रीय आय का (प्रतिशत)	विनियोजन राष्ट्रीय आय का (प्रतिशत)
1950–51	—	5·6
1951–52	5·3	—
1955–56	7·5	7·3
1960-61	8·5	11·7
1965–66	10 6	13·0
1968–69		11·2
1973–74	13·2	13 8 (अनुमानित)

सितम्बर, 1972 की योजना के अंक में भी प्रचलित मूल्य-दर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन के प्रतिशत के रूप मे बचत और विनियोग की दरें प्रकाशित हुई थी, वे निम्न प्रकार हैं[2]—

बचत और विनियोग की दरें

प्रचलित मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन का प्रतिशत

वर्ष	विनियोग	देशी बचत	विदेशी बचत
1960–61	12 0	8 9	3·1
1965–66	13 4	11 1	2·3
1966–67	12 2	9 0	3 2
1967–68	10 6	7 9	2·7
1968–69	9 5	8·4	1·1
1969–70	9 2	8·4	0·8
1970–71	9·6	8·3	1·3

1. पचवर्षीय योजनाएं
2. योजना (सितम्बर, 1972)

तालिका से स्पष्ट है कि सन् 1960-61 अर्थात् द्वितीय योजना के अन्तिम वर्ष मे विनियोग दर 12·0% तक पहुँच चुकी थी, जो 1965-66 अर्थात् तृतीय योजना के अन्तिम वर्ष तक बढकर 13 4% हो गई। किन्तु इसके बाद विनियोग दर बजाय बढने के घटती ही चली गई और 1969-70 मे यह निम्न स्तर 9 2% तक गिर गई। विनियोग दर मे कमी का प्रमुख कारण बचत दर मे गिरावट है। सन् 1965-66 मे बचत दर अपने चरम स्तर 11 1% तक पहुँच गई। योजना आयोग का अनुमान था कि सन् 1968-69 मे विनियोग दर 10 0% तक बढेगी और 1973-74 तक 13 0% तक पहुँच जाएगी।

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने भी भारत मे बचत की स्थिति का अध्ययन किया है। इस अध्ययन के अनुसार बचत आय-अनुपात सन् 1951-52 मे 5 1% और 1955-56 मे 9 1% था। सन् 1951-52 से 1958-59 तक देश की औसत-बचत आय-अनुपात 7 2% रही है। प्रथम पचवर्षीय योजना मे यह अनुपात 6 6% और द्वितीय योजना के प्रथम तीन वर्षो मे 7 9% रहा है। इस प्रकार यदि इस दृष्टि से विचार करें तो बचत-अनुपात आशाप्रद है किन्तु सीमान्त बचत आय अनुपात की दृष्टि से विचार करें तो भिन्न स्थिति प्रकट होती है। उदाहरणार्थ सन् 1953-54 से 1955-56 की अवधि मे सीमान्त-बचत आय अनुपात (Marginal Saving-Income Ratio) 19 1 था जो सन् 1956-57 से 1958-59 तक की अवधि मे घट कर 14 2% रह गया। इस प्रकार कुल बचत मे वृद्धि हुई किन्तु बढी हुई आय के अनुपात मे बचतो मे वृद्धि नही हुई है।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे बचत अनुपात को सन् 1955-56 के 7 3% से बढाकर 11 0% करने का लक्ष्य रखा गया था। यह लक्ष्य कुछ महत्त्वाकाँक्षी था किन्तु जैसा कि प्रो शिनाय ने पहले ही कह दिया था कि इस योजनावधि मे घरेलू बचत के उक्त लक्ष्य की प्राप्ति नही की जा सकी। तृतीय योजना मे विनियोजन की राशि को राष्ट्रीय आय 11 0% से बढाकर 14% से 15% करने का लक्ष्य रखा गया था और उसके लिए घरेलू बचत को 8 5% से बढा कर 11 5% करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। इस योजना के अन्तिम वर्ष अर्थात् 1965-66 मे बचत की दर 10 4% रही जो अगले वर्ष अर्थात् 1967-68 में इसमें और कमी आई। योजना आयोग के अनुसार सन् 1967-68 में बचत की दर राष्ट्रीय आय का 8% थी। परन्तु इसमें फिर से वृद्धि होने लगी है। सन् 1968-69 में यह 9% थी।

विनियोग का क्षेत्रीय आवटन

अर्थ-व्यवस्था के कृषि, उद्योग, सचार आदि सेवा-क्षेत्रो में भारत की विभिन्न योजनाओ में परिकल्पित विनियोग किस प्रकार आवटित हुआ है, तथा सार्वजनिक क्षेत्र की इस दिशा में सापेक्ष भूमिकाएँ क्या रही हैं, इसका विश्लेषण विख्यात अर्थशास्त्री विल्फ्रेड मेलनबाम (Wilfred Malenbaum) द्वारा कुछ महत्त्वपूर्ण साँख्यिकी अको के आधार पर प्रस्तुत किया गया है—

महत्त्वपूर्ण अंक—भारत की विकास योजनाएँ[1]

(Important Number–India's Plans for Development, 1951–71)

मद	प्रथम योजना (1951-56)		द्वितीय योजना (1956-61)		तृतीय योजना (1961-66)		चतुर्थ योजना प्रारूप (1966-71)	
1·0 कुल शुद्ध विनियोग (करोड़ रु.)	3500	100%	6200	100%	10400	100%	21350	100%
1·1 कृषि (सिंचाई सहित)	875	25	1180	19	2110	20	3439	16
1·2 बड़े उद्योग (शक्ति व खनन सहित)	805	23	1810	29	3682	35	8366	39
1·3 अन्य छोटे उद्योग	175	5	270	4	425	4	550	3
1·4 यातायात संचार	775	22	1360	22	1726	17	3660	17
1·5 अन्य	870	25	1580	26	2497	24	5355	25
2·0 सार्वजनिक/कुल विनियोग अनुपात	53%		61%		61%		64%	
3·0 रोजगार								
3·1 अतिरिक्त (मिलियन व्यक्ति)	उपलब्ध नहीं		9·6		14		19	
3·2 श्रम-शक्ति	9		12		17		23	

1. *Wilfred Malenbaum* : Modern India's Economy, p. 59.

मद	प्रथम योजना (1951-56)	द्वितीय याजना (19 6-61)	तृतीय योजना (1961-66)	चतुर्थ याजना प्रारूप (1966-71)
4 0 राष्ट्रीय आय शुद्ध (करोड़ रु०)				
4 1 नियोजन से पूर्व का वर्ष	8870	10800	14140	15930
4 2 गत योजना वर्ष	10000	13480	18460	23900
4 3 वृद्धि (%)	11 2%	25 0%	34 0%	50 0%
5 0 औसत शुद्ध विनियोग (राष्ट्रीय आय का अनुपात)	7 4%	10 2%	12 8%	21 4%
6 0 औसत घरेलू बचतें (राष्ट्रीय आय का अनुपात)	5 7%	8 1%	9 8%	15 0%
7 0 शुद्ध आयात/शुद्ध विनियोग	21 0%	18 0%	25 0%	32 0%
8 0 सीमान्त पूंजी/प्रदा अनुपात	3 1	2 3	2 4	2 7
9 0 थोक मूल्य स्तर (1952-53=100)				
9 1 वास्तविक औसत	103 4	108 1	142 8	205 2 (1966-69)
9 2 योजनाओ मे प्रयुक्त औसत	104 0 (1948-49)	100 1 (1952-53)	127 5 (1960-61)	186 1 (जून, 1966)

दी गई सारणी से स्पष्ट है कि योजनाओं में आवश्यक विनियोग की वृद्धि वास्तविक अंकों में (In real terms) सारणी की पंक्ति 10 में प्रदर्शित कुल विनियोग दर से बहुत कम रही है। तृतीय योजना में द्वितीय योजना की अपेक्षा 70% अधिक विनियोग की आवश्यकता परिकल्पित की गई है, और ड्राफ्ट चतुर्थ योजना (1966) में तृतीय योजना से दुगुनी मात्रा में विनियोग के अनुमान लगाए गए हैं। मूल्य-स्तर में विस्तार के समायोजनों के पश्चात् भी इन योजनाओं के लिए निर्धारित विनियोग में 30 से 40% तक की वृद्धि अनुमानित की गई है। महत्त्वपूर्ण तथ्य वास्तविक तथा नियोजित कुल विनियोग राशि के अन्तर (Gap) पर कीमतों का प्रभाव है। सारणी की 9·1 व 9·2 पंक्तियों में दिए गए कीमत-अनुपातों पर आधारित अंकों को एक उदाहरण के रूप में देखने पर तृतीय योजना में नियोजित 10,400 करोड़ रु. की विनियोग दर की पूर्ति लगभग 11,500 करोड़ रु के विनियोगों द्वारा ही की जा सकती है।

जहाँ तक विनियोग के क्षेत्रीय आवंटन का प्रश्न है, सारणी की पंक्तियाँ 1 1 से 1 5 विनियोग के क्षेत्रीय आवंटन में एकरूपीय प्रवृत्ति (Consistency) प्रदर्शित करती है। कृषि में कुल विनियोग का अनुपात उत्तरोत्तर कम होता गया है जबकि उद्योग में यह अनुपात बढ़ता गया है। तृतीय योजना में अर्थ-व्यवस्था के इन दोनों मूल क्षेत्रों के लिए कुल विनियोग का 55% निर्धारित किया गया। इसमें से उद्योग का अनुपात कृषि की अपेक्षा 75% अधिक रहा। यातायात और संचार के विनियोग में अनुपात द्वितीय योजना की तुलना में तृतीय योजना में 22% से घट कर केवल 17% रह गया। सेवा-क्षेत्र का विनियोग 47% के स्थान पर 41% रह गया किन्तु सरकारी सेवा व वस्तु-वितरण सम्बन्धी सेवाओं के लिए विनियोग के अनुपात में निरन्तर वृद्धि होती गई।

सारणी पंक्ति 1·0-1 5 में दिए गए विनियोग के आँकड़ों में सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र सम्मिलित हैं, दोनों क्षेत्रों का अन्तर भारत की विकास नीतियों पर प्रकाश डालता है। पंक्ति 2 0 में सार्वजनिक क्षेत्र के बढ़ते हुए सापेक्ष महत्त्व को देखा जा सकता है। सन् 1951–56 में सार्वजनिक क्षेत्र का जो प्रतिशत 53 था वह घट कर 1966–71 में 64 प्रतिशत हो गया। अग्रांकित सारणी में कृषि, उद्योग, सेवा आदि क्षेत्रों में सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों की सापेक्ष स्थिति को प्रदर्शित किया गया है।

नियोजित विनियोग का विवरण[1]

(Planned Investment Allocations)

मद	प्रथम (1951–56)			द्वितीय (1956–61)			तृतीय (1961–66)			चतुर्थ (1966–71)		
	सार्वजनिक	निजी	योग	सार्वजनिक	निजी	योग	सार्वजनिक	निजी	योग	सार्वजनिक	निजी	योग
1 0 शुद्ध विनियोग (करोड़ रु)	1850	1650	3500	3800	2400	6200	6300	4100	10400	13600	7750	21350
1 1 कृषि (सिंचाई सहित)	525	350	875	780	400	1180	1310	800	2110	2539	900	3439
1 2 बड़े उद्योग (शक्ति व खनन सहित)	380	425	805	1190	620	1810	2532	1100	3632	5966	2400	8366
1 3 अन्य छोटे उद्योग	25	150	175	120	150	270	150	275	425	230	230	550
1 4 यातायात व संचार	650	125	775	1235	125	1360	1486	250	1736	3010	630	3640
1 5 अन्य	270	600	870	475	1105	1580	822	1675	2497	1865	3509	5505

1 *Wilfred Malenbaum* : Modern India s Economy, p 62

प्रथम चार पंचवर्षीय योजनाओं में विकास-दर (Growth Rate)

यद्यपि विकास-दर का निर्धारण आर्थिक दृष्टि से सांख्यिकी अंकों पर निर्भर करता है तथापि व्यावहारिक रूप मे इस दर का निर्धारण मूलतः एक राजनीतिक निर्णय है, अथवा यह निर्णय देश की जन-धारणा के अनुसार लिया जाता है। किस गति के साथ एक देश के निवासी अपनी प्रति व्यक्ति आय को दुगुना करना चाहते है अथवा गरीबी-उन्मूलन की आकाँक्षा रखते है, इस प्रश्न का उत्तर उस देश की जन-धारणा अथवा राजनेताओ से सम्बन्धित है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, इसकी प्रत्येक योजना के साथ प्रति व्यक्ति आय को दुगुना करने का प्रश्न जुड़ा रहा है। भारत की प्रत्येक योजना के मूल मे यह प्रश्न अन्तर्निहित है कि कितने वर्षों मे इस देश को अपनी प्रति व्यक्ति आय का दुगुना करना आवश्यक है। यह प्रश्न आज भी निरन्तर है। भारत की प्रति व्यक्ति आय 600 रु. से कुछ अधिक है, जबकि ...रिका की प्रति व्यक्ति 4000 डॉलर पर विचार किया जा सकता है, अर्थात् ...रे यहाँ प्रति व्यक्ति आय अमेरिका की तुलना मे लगभग 1/50वाँ भाग है। इसी पृष्ठभूमि मे भारत की योजनाओ मे नियोजित तथा वास्तव मे प्राप्त विकास-दरों का अध्ययन किया जा सकता है। E C A F E साहित्य मे प्रति व्यक्ति आय के दुगुना होने सम्बन्धी एक दिलचस्प सारणी प्रस्तुत की गई है, जिसका एक अश निम्न प्रकार है—

विकास-दर	जनसंख्या-वृद्धि-दर	प्रति व्यक्ति विकास-दर	अवधि जिसमे यह दुगुनी होती है
4½%	2½%	2%	35 वर्ष
5½%	2½%	3%	23 वर्ष
3½%	2½%	1%	70 वर्ष

यदि प्रति व्यक्ति आय 3% की दर से बढती है तो इसका तात्पर्य यह है कि राष्ट्रीय आय 5½% की दर से बढ़ रही है। यह वह विकास-दर है जिसकी चतुर्थ योजना मे परिकल्पना की गई थी। इस दर के अनुसार प्रति व्यक्ति आय 23 वर्ष मे दुगुनी हो सकती है। विकास की यह दर विशेष महत्त्वाकांक्षी नही है क्योंकि इस दर से भी हम अपनी प्रति व्यक्ति आय को 23 से 25 वर्ष की अवधि मे दुगुना

कर सकेंगे। पूर्व-योजनाओ की उपलब्धियो को देखने पर तो इस दर को भी स्थिर बनाए रखना असम्भव प्रतीत होता है क्योकि प्रथम योजना मे प्रति व्यक्ति विकास-दर 1%, द्वितीय मे 1·7% और तृतीय मे केवल 0 4% रही है। 18–19 वर्ष की दीर्घावधि मे भी प्रति व्यक्ति अधिकतम विकास-दर हम केवल 1 7% प्राप्त कर सके, जिसे भी स्थायी नही रखा जा सका। इस स्थिति मे जब तक परिवार-नियोजक किसी प्रकार का कोई चमत्कार नही कर रहे हैं तब तक 5 से 5½% विकास-दर को प्राप्त करना और उसे स्थायी बनाए रखना सम्भव प्रतीत नही होता है। यदि हम प्रथम तीन योजनाओ मे अधिकतम प्राप्त 1 7% की विकास-दर को भी स्थिर रख पाते हैं तब भी हम 16½ वर्षो मे अपनी प्रति व्यक्ति आय को दुगुना कर सकेंगे। इसका यह अर्थ है कि सन् 2016 मे हम इस स्थिति को प्राप्त कर पाएँगे। इन आंकडो को ध्यान मे रखते हुए 4% विकास-दर सम्भव व प्राप्ति योग्य प्रतीत होती है तथा 5 या 5½% विकास-दर का प्राप्त किया जाना उच्च उपलब्धि की श्रेणी मे आएगा। विकास-दर के अनुभागो के रूप मे कतिपय वृद्धि-सूचक अको को ध्यान मे रखना आवश्यक है, जो आगे दिए जा रहे हैं।

वृद्धि-सूचक अक

सन् 1950-51 से 1970-71 तक भारत की आय वृद्धि दर का अनुमान कई सूचको से लगाया जा सकता है। राष्ट्रीय आय की दर मे 3 6% वृद्धि हुई जबकि कृषि उत्पादन व औद्योगिक उत्पादन मे क्रमश 2 3% और 6·4% की वार्षिक दर से वृद्धि हुई। प्रति व्यक्ति आय के रूप मे, राष्ट्रीय आय मे 1 5% प्रतिवर्ष की दर वृद्धि हुई है, जबकि अनाज के उत्पादन मे 1 4% वार्षिक वृद्धि हुई। प्रति हैक्टर अनाज के उत्पादन मे 1 9% की वार्षिक दर से वृद्धि हुई। बचत आय अनुपात 5 7% से बढ कर 10 0% अर्थात् लगभग दुगुना हो गया। प्रथम तीन योजनाओ मे हुई विकास-दर का सक्षेप मे पहले ही विवेचन किया जा चुका है। इन योजनाओ के अनुभवो के आधार पर निर्मित चतुर्थ एव पचम् पचवर्षीय योजनाओ मे विकास-दरो का विश्लेषण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना की आय वृद्धि-दरें

चौथी योजना मे विकास की वार्षिक चक्रवृद्धि दर का लक्ष्य 5 5% से अधिक अर्थात् लगभग 5 6% था जबकि सन् 1969-70 मे अर्थ-व्यवस्था की वृद्धि-दर 5 3% व सन् 1970-71 में 4 8% रही। इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था की औसत वार्षिक चक्रवृद्धि-दर योजना मे प्रस्तावित लक्ष्य की तुलना मे केवल 5% ही रही।

कृषि मे 5% वार्षिक दर निर्धारित की गई थी पर वास्तविक वृद्धि-दर

सन् 1969-70 मे 5·1% और 1970-71 में 5·3% रही। इस प्रकार कुल मिलाकर कृषि-क्षेत्र की उपलब्धि लक्ष्यो के अनुरूप रही ।

खनन् और विनिर्माण (Mining and Manufacturing) मे 7·7% वृद्धि का प्रावधान था लेकिन सन् 1969-70 मे 5% और 3·2% की ही वृद्धि हुई । इस प्रकार दोनो वर्षों की औसत वृद्धि-दर 4·7% रही ।

बड़े पैमाने पर औद्योगिक उत्पादन का लक्ष्य 9 3% था किन्तु वार्षिक-वृद्धि-शुद्ध-मूल्य के रूप मे सन् 1969–70 मे 5·9% और 1970–71 मे 3·6% रही। इस प्रकार दो वर्षों की वार्षिक औसत-वृद्धि 4·7% रही ।

विद्युत, गैस और जल आपूर्ति क्षेत्र मे 9·5% वृद्धि-दर रही और सन् 1970–71 मे 7·9% । इस प्रकार औसत वृद्धि–दर 8·7% रही जो योजना के लक्ष्य 9·3% से कुछ कम थी ।

परिवहन और संचार के क्षेत्र मे योजना का 6 4% वार्षिक-वृद्धि का था लेकिन सन् 1969–70 मे परिवहन व सचार की वार्षिक–वृद्धि 5·9% रही और सन् 1970–71 मे केवल 3·8% रही । इस प्रकार दो वर्षों की औसत वार्षिक–वृद्धि–दर 4·9% रही । कमी मुख्यत इसलिए हुई कि रेलों मे शुद्ध–वृद्धि की दर केवल 0 4% रही ।

बैंकिंग और बीमा के क्षेत्र मे वृद्धि योजना के अनुमान से अधिक रही । योजना का लक्ष्य 4 7% वार्षिक-वृद्धि का था लेकिन सन् 1969-70 मे वास्तविक वृद्धि 9 2% रही और सन् 1970-71 मे 8 6% थी । इस प्रकार दो वर्षों के वृद्धि का औसत 8 9% रहा जो कि योजना के वार्षिक-वृद्धि के लक्ष्य से लगभग दुगुना था । संक्षेप मे चौथी योजना मे परिकल्पित 5 7% की कुल वृद्धि-दर की तुलना मे अर्थ-व्यवस्था मे सन् 1969-70 मे वृद्धि-दर 5 2% रही । इसके बाद सन् 1970–71 मे यह घट कर 4 2% और सन् 1972-73 मे 0 6% रह गई । आवश्यकताओ को देखते हुए चौथी योजना की अवधि की वृद्धि-दर बहुत कम और अपर्याप्त रही। पाँचवी योजना के प्रारूप मे 5 5% की वृद्धि-दर का लक्ष्य रखा गया ।

भारत के विकास की स्थिति के सिंहावलोकन के लिए राष्ट्रीय उत्पादन मे वास्तविक वृद्धि तथा उत्पादन के तीन मुख्य क्षेत्रो–कृषि-उद्योग, व्यापार तथा संचार के उत्पादन के आँकड़ों को एक सारणी मे प्रस्तुत किया जा रहा है । प्रथम तीन योजनाओ में वृद्धि के निर्धारित लक्ष्य 11·2%, 25% व 34% थे। लक्ष्यों की तुलना में उपलब्धि का प्रतिशत क्रमश: 18, 21 व 13 रहा । प्रथम योजना को छोड़ कर अन्य योजनाओं में प्राप्त वृद्धि-दर से कम रही ।

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन : कुल और बड़े मूल उत्पादन-क्षेत्र[1]

(Net National Product : Total and Major Originating Sectors)

वर्ष (1)	जनसंख्या (2)	एन एन पी राष्ट्रीय आय (3)		कृषि (4)		उद्योग (5)		व्यापार व संचार (6)	
	सूचनांक	योग	सूचनांक	योग	सूचनांक	योग	सूचनांक	योग	सूचनांक
1950–51	100	9325	100	5150	100	610	100	2510	100
1951–52	101 7	9400	102	5250	102	640	105	2620	104
1952–53	103 5	9775	105	5410	105	660	108	2715	108
1953–54	105 4	10325	111	5875	114	685	112	2790	111
1954–55	107 4	10625	114	5925	115	735	120	2890	115
1955–56	109 5	11000	118	5960	116	825	135	3020	120
औसत विकास दर प्रथम योजना	(1 7%)	(3 4%)		(3 0%)		(6 2%)		(3 7%)	
1956–57	111 7	11550	124	6125	119	895	147	3190	127
1957–58	114 0	11450	123	5925	115	945	155	3300	131
1958–59	116 4	12300	132	6450	125	970	159	3460	138
1959–60	118 7	12475	134	6375	124	1040	171	3640	145
1960–61	121 5	13294	143	6857	133	1215	199	3870	154

1. *Wilfred Malenbaum* Modern India's Economy, p 135

वर्ष (1)	जनसंख्या (2)	एन. एन. पी. राष्ट्रीय आय (3)		कृषि (4)		उद्योग (5)		व्यापार व संचार (6)	
औसत विकास-दर द्वितीय योजना	(2·1%)	(3·9%)		(2·8%)		(8·1%)		(5 1%)	
1961–62	124·1	13763	148	6925	135	1320	216	4070	162
1962–63	127·2	14045	151	6747	131	1463	240	4280	170
1963–64	130·3	14815	159	6940	135	1610	264	4570	182
1964–65	133·5	15917	171	7558	147	1723	283	4880	194
1965–66	136·9	15021	161	6520	127	1777	291	5130	205
औसत विकास-दर तृतीय योजना	(2·2%)	(2·2%)		(—0 9%)		(7·9%)		(5·8%)	
1966–67	140 0	15123	162	6442	125	1794	294	5265	210
1967–68	143 5	16583	178	7629	148	1799	295	5453	218
1968–69	147 0	16943	182	7558	147	1899	312	5700	228
औसत विकास-दर एक वर्षीय योजनाएँ	(2·5%)	(4·1%)		(5·0%)		(2·2%)		(3·6%)	

सारणी में जनसंख्या के वृद्धि-सूचकांक और औसत विकास-दर को प्रदर्शित किया गया है, जो प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं तथा एक वर्षीय योजनाओं में क्रमश 1 7%, 2 1%, 2 2% व 1 5% रही। निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या भारत की आर्थिक प्रगति में बड़ी बाधक है। शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन का वृद्धि-सूचकांक सारणी के तीसरे खाने में प्रस्तुत किया गया है। इसमें प्रदर्शित अंकों से स्पष्ट है कि प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में राष्ट्रीय उत्पादन की औसत वृद्धि-दर अधिक रही, किन्तु तीसरी योजना में यह बहुत कम हो गई, किन्तु पुन एकवर्षीय योजनाओं में 2 2% से बढ़कर 4 1% हो गई। यह एक अच्छी स्थिति का संकेत थी। सारणी के शेष खानों में अर्थ व्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों—कृषि, उद्योग तथा व्यापार-संचार आदि की विकास-दरों को दर्शाया गया है। कृषि की विकास-दर तीसरी योजना तक निरन्तर गिरती गई। प्रथम योजना में यह दर जो 3 0% थी, द्वितीय योजना में 2 8% रह गई और तीसरी योजना में तो इसका प्रतिशत ऋणात्मक (—0 9%) हो गया, किन्तु एकवर्षीय योजनाओं में यह पुन बढ़ कर 5% हो गई। दूसरी ओर उद्योग के क्षेत्र में विकास-दर द्वितीय योजना के बाद गिरती गई। द्वितीय योजना में यह दर 8 1% थी जो घटकर तीसरी योजना में 7 9% और एकवर्षीय योजनाओं में केवल 2 2% रह गई। यह चिन्ताजनक स्थिति का संकेत थी जिसमें सुधार के लिए औद्योगिक उत्पादन की दर को बढ़ाना अनावश्यक था। व्यापार व संचार के क्षेत्र में प्रगति का सूचकांक सन्तोषप्रद स्थिति को प्रकट करता है।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में विकास की दर और स्वरूप[1]

पाँचवी पंचवर्षीय योजना का प्रारूप प्रस्तुत करने के साथ-साथ राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इतने ज्यादा उतार-चढ़ाव आए और चहुँमुखी अत्यधिक मूल्य-वृद्धि ने योजना की सम्भावनाओं को इतने संकट में डाल दिया कि उस पर पुनर्विचार आवश्यक हो गया। लगभग तीन वर्ष के अन्तराल के बाद राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक हुई और सितम्बर, 1976 में पाँचवी योजना संशोधित रूप में अन्तिम रूप से स्वीकृत की गई। मार्च, 1977 में ऐतिहासिक सत्ता-परिवर्तन हुआ और जनता पार्टी की सरकार ने सम्पूर्ण नियोजन प्रणाली को बदलने का संकल्प व्यक्त किया। फलस्वरूप पाँचवी योजना को 31 मार्च 1979 के बजाय 31 मार्च, 1978 को ही समाप्त कर दिया गया और 1 अप्रैल, 1978 से नई राष्ट्रीय योजना (आवर्ती या अनवरत योजना) आरम्भ की। तथापि अध्ययन की दृष्टि से यह नितान्त आवश्यक है कि हम संशोधित पाँचवी योजना की सभी मुख्य बातों को जान लें। यहाँ हम संशोधित योजना में 'विकास की दर और स्वरूप' की चर्चा करेंगे। योजना आयोग के अनुसार सम्बन्धित विवरण इस प्रकार है—

"पाँचवी योजनावधि के प्रथम वर्ष 1974–75 में सकल आन्तरिक उत्पादन पिछले वर्ष से केवल 0 2 प्रतिशत बढ़ा। सन् 1975–76 में उत्पादन में उल्लेखनीय

1. योजना आयोग पाँचवीं पंचवर्षीय योजना 1974-79, अक्टूबर 1976, पृष्ठ 22-28

सुधार हुआ जिसके परिणामस्वरूप सकल आन्तरिक उत्पादन में 6 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि का अनुमान किया गया। सन् 1976–79 में अर्थ-व्यवस्था का विकास 5·2 प्रतिशत वार्षिक मिश्र दर से होने की सम्भावना है। इस वार्षिक विकास की रूपरेखा से पाँचवी योजना मे सकल आन्तरिक उत्पादन में 4·37 प्रतिशत औसत वार्षिक विकास का अनुमान किया गया।

पाँचवी योजना मे गरीबी दूर करने व आत्मनिर्भरता के उद्देश्यों की पूर्ति को आयातित उत्पादन वस्तुओ, यथा ईंधन, उर्वरकों और खाद्य के मूल्यों मे अत्यधिक वृद्धि के सन्दर्भ मे देखना होगा। इसलिए कृषि उत्पादन, विशेष रूप से खाद्य पदार्थों, उपलब्ध ऊर्जा ससाधनो का अधिकतम उपयोग और महत्त्वपूर्ण कच्ची सामग्रियो, मजदूरी, माल के उत्पादन तथा कुशलतापूर्वक वितरण की गति को तेज करने की ओर कार्यनीति निर्दिष्ट करनी होगी।"

विकास की क्षेत्रीय दरें

परस्पर अनुरूप क्षेत्रवार उत्पादन के स्तरो का अनुमान व्यापक आर्थिक नमूने, 66 क्षेत्रवार निवेश-उत्पादन नमूने व सपत उप-नमूने की पद्धति पर किया गया है। सामग्री सन्तुलन के अभ्यासों की शृंखला द्वारा वस्तुवार उत्पादन के स्तरो का अनुमान उनके माँग के अतिशेषो की पूर्ति से तैयार किया गया और निवेश-उत्पादन के नमूने द्वारा क्षेत्रीय वृद्धि दरों के साथ उनका सामंजस्य किया गया। विशिष्ट वस्तुओ के लिए सूक्ष्म स्तर पर कुछ स्वतन्त्र अध्ययन उत्पादन स्तरो की प्रतिजाँच करने के लिए किए गए।

पाँचवी योजना के दृष्टिकोण पर तकनीकी नोट में जैसा दिया गया है, पाँचवी योजना के आधार वर्ष 1973–74 के लिए निवेश-उत्पादन मैट्रिसिस को सन् 1974–75 के मूल्यो तक अद्यतन किया गया है। ऐसा सन् 1973–74 के लिए वस्तुवार उत्पादन के स्तरो और केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन के अद्यतन श्वेत पत्र मे दिए गए व्यापक आर्थिक समुदायो के अनुरूप बनाने के लिए किया गया। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के 25वे दौर (सन् 1970–71) के आन्तरिक उपभोक्ता व्यय के आँकड़ो और अभी हाल ही के श्वेत पत्र मे वस्तुओं और सेवाओ के विभिन्न बड़े समूहों से सम्बन्धित निजी अन्तिम उपभोक्ता व्यय के अनुमानो के आधार पर उपभोक्ता अनुपात मैट्रिसिस को भी सन् 1974–75 के मूल्यों तक अद्यतन किया गया है। सन् 1978–79 के सकेतों सम्बन्धी उद्देश्य के लिए प्रौद्योगिकी व प्रकृतिगत विचारों के आधार पर कुछ निवेश गुणांक की परिकल्पना की गई है।

निर्यात और सरकारी व्यय का अनुमान बहिर्जनित दृष्टि से किया गया है। सार्वजनिक उपभोग का वार्षिक 10 प्रतिशत औसत से बढ़ना माना गया है जबकि निर्यात 8·5 प्रतिशत बढ़ने का अनुमान किया गया है। अन्तिम वर्ष में सार्वजनिक उपभोग व आयात का अनुमान अन्तर्जनित दृष्टि से किया गया है। पाँचवी योजना के शेष वर्षों के लिए परिकल्पना किए गए परिव्यय इस अवधि के लिए उपयुक्त रूप से तैयार किए गए हैं।

पाँचवी योजना अवधि मे सकल आन्तरिक उत्पादन मे परिकल्पना की गई वृद्धि दर के अनुरूप विकास की क्षेत्रीय दर पूर्व मे उल्लेख किए गए नमूनो की पद्धति के द्वारा पाँचवी योजना के अन्तिम वर्ष 1978–79 के लिए तैयार की गई है। महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो के लिए इन सकेतो मे अर्थ-व्यवस्था मे उत्पादन सम्भाव्यताओं व क्षमता-उपयोग के आधार पर आयात प्रतिस्थापना की परिकल्पना की गई है। सारणी–1 मे सामान्य क्षेत्रो के सन्दर्भ मे और अनुलग्नक–5 मे अर्थ-व्यवस्था के 66 क्षेत्रो के लिए विकास का स्वरूप दिया गया है। कृषि सम्बन्धित क्षेत्र मे विकास की दर 3 94 प्रतिशत अनुमानित की गई है। खनन क्षेत्रो के उत्पादन की विकास दर जहाँ प्रतिवर्ष 12 58 प्रतिशत अनुमानित की गई है वहाँ कोयला उत्पादन की 9 38 प्रतिशत और कच्चे तेल की 14 68 प्रतिशत विकास दर बढने की सम्भावना है। विनिर्माण क्षेत्र के 6 92 प्रतिशत के दर पर बढने की सम्भावना है। इस क्षेत्र मे उर्वरक के 22 26 प्रतिशत, सीमेंट के 7 19 प्रतिशत और लोहा व इस्पात के 11 31 प्रतिशत की दर पर बढने की सम्भावना है।

सन् 1973–74 व 1978–79 मे सगठनात्मक परिवर्तन के उपाय के साथ सकल आन्तरिक उत्पादन की सरचना क्षेत्रो के कुछ बडे समूहो के लिए सारणी–1 मे और 66 क्षेत्रो के लिए अनुलग्नक–5 मे भी दिए गए है। जैसा कि आशा की जाती है कुल सकल मूल्य मे कृषि व सम्बन्धित क्षेत्रों का हिस्सा सन् 1973–74 मे 50 8 प्रतिशत से घटकर सन् 1978–79 मे 48 15 प्रतिशत तक हो जाने की सम्भावना है और खनन व विनिर्माण के साथ-साथ माध्यमिक व अन्यान्य क्षेत्रो का हिस्सा बढ जाने की आशा है।

विकास की सांकेतिक क्षेत्रीय दरो की सामग्री सन्तुलनो की विस्तृत पद्धति के उपयोग द्वारा वास्तविक लक्ष्यो म रूपान्तरित किया गया है। निवेश उत्पादन मण्डल सम्बद्ध स्वतन्त्र क्षेत्रो के अन्तर्गत कोयला, कच्चे तेल, लोहे अयस्क व सीमेन्ट जैसी मदो के लिए लक्ष्य क्षेत्रीय विकास दरो की मार्फत सीधे निश्चित किए गए है। कुछ विशिष्ट लक्ष्यो की प्रतिजाँच स्वतन्त्र रूप से सूक्ष्म स्तर के अध्ययन व परियोजनाओं के पूर्ण करने से सम्बन्धित विस्तृत अध्ययनो द्वारा भी की गई है। सारणी–2 मे सन् 1978–79मे कुछ महत्वपूर्ण मदो के अनुमानित वास्तविक उत्पादन प्रस्तुत किए गए है। सन् 1978–79 के लिए और अधिक विस्तृत अनुमान अनुलग्नक-6 मे प्रस्तुत किए गए है। कुछ महत्वपूर्ण मदो के अनुमानित वास्तविक उत्पादन के मूलाधार की चर्चा नीचे की गई है। बहुत से क्षेत्रो मे सन् 1978–79 के उत्पादन लक्ष्य पाँचवी योजना के प्रारूप मे अभिधारित किए गए स्तरो से नीचे है। यह दो कारणो से है। बहुत से मामलो मे सन् 1973–74 मे स्तरो से नीचे वास्तविक रूप स प्राप्त किया गया आधार उत्पादन पाँचवी योजना के प्रारूप मे परिकल्पित किया गया है। सन् 1974–75 म उत्पादन की वृद्धि बहुत कम थी। वैसे सन् 1975–76 मे महत्त्वपूर्ण सुधार हुआ। इस प्रकार सशोधित लक्ष्य को निर्धारित करने के लिए आधार स्तर मे परिवर्तन करने की दृष्टि से सुधारो की व्यवस्था करनी पडी और पाँचवी योजना के पहले वर्ष के अनुभव को ध्यान मे रखा गया।

सारणी-1

उत्पादन के कुल मूल्य में वृद्धि की सांकेतिक क्षेत्रीय दर और पाँचवीं योजना के लिए घटक लागत दर बढ़े हुए कुल मूल्य व सन् 1973–74 और 1978–79 में बढ़े हुए कुल मूल्य की क्षेत्रवार सरचना

क्षेत्र	विकास की औसत वार्षिक दर (प्रतिशत) 1973–74 की तुलना मे 1978–79 मे उत्पादन का मूल्य	1974–75 की कीमतों पर बढ़े हुए कुल मूल्य की सरचना		
		बढा हुआ मूल्य	1973–74	1978–79
(0)	(1)	(2)	(3)	(4)
1. कृषि	3·94	3·34	50·78	48·15
2. खनन व विनिर्माण	7 10	6·54	15·78	17 49
(क) खनन	12 58	11·44	0·99	1·37
(ख) विनिर्माण	6 92	6·17	14·79	16·11
(1) खाद्य उत्पाद	4 63	3·73	2·13	2 07
(2) वस्त्र उद्योग	3·45	3·21	3·50	3 31
(3) लकड़ी व कागज के उत्पाद	6·75	4·90	0·58	0·59
(4) चमड़े व रबड़ के उत्पाद	5 50	2·47	0·16	0 15
(5) रसायन उत्पाद	10 84	10 46	1·84	2·44
(6) कोयला व पैट्रोलियम उत्पाद	7 63	7 90	0 23	0·27
(7) अधात्विक खनिज उत्पाद	7 40	7·33	1 58	1·82
(8) आधारीय धातु	14·12	13 40	1·09	1·65
(9) धातु उत्पाद	5·60	4·64	1·08	1·09
(10) गैर बिजली के इन्जीनियरी उत्पाद	8·40	7 99	9 61	0 73
(11) बिजली इन्जीनियरी उत्पाद	7 64	6 42	0 60	0 67
(12) परिवहन उपकरण	3·73	3 12	0·96	0 90
(13) औजार	5·39	4·45	0 03	0 03
(14) विविध उद्योग	6·75	4·42	0·38	0·38
3 बिजली	10·12	8·15	0·79	0 94
4. निर्माण	5 90	5·18	4·06	4·21
5. परिवहन	4 79	4 70	3·43	3·48
6. सेवाएं	4 88	4·80	25·16	25·73
7. कुल		4·37	100 00	100·00

सारणी–2

सन् 1978–79 में वास्तविक उत्पादन स्तरों के संकेत

मद	एकक	1973–74	1978–79
(0)	(1)	(2)	(3)
1. खाद्यान्न	10 लाख टन	104 7	125
2. कोयला	10 लाख टन	79·0	124·0
3 लौह अयस्क	10 लाख टन	35·7	56 0
4. कच्चा तेल	10 लाख टन	7·2	14 18
5. सूती कपड़ा			
(क) मिल क्षेत्र	10 लाख मीटर	4083	4800
(ख) विकेन्द्रित क्षेत्र	10 लाख मीटर	3863	4700
6. कागज व गत्ता	हजार टन	776	1050
7. अखबारी कागज	हजार टन	48·7	80·0
8 पैट्रोलियम से बना सामान (जिसमें चिकनाई वाले पदार्थ शामिल हैं)	10 लाख टन	19 7	27 0
9. नत्रजनीय उर्वरक (एन)	हजार टन	1058	2900
10. फास्फेट उर्वरक (पी$_2$ओ$_5$)	हजार टन	319	770
11 सीमेंट	10 लाख टन	14·57	20 8
12. नर्म इस्पात	10 लाख टन	4·89	8 8
13 एलुमिनियम	हजार टन	147·9	310 0
14 ताम्बा	हजार टन	127	37 0
15. जस्ता	हजार टन	20 8	80 0
16. बिजली उत्पादन	जी. डब्ल्यू. एच	72	116-117
17 रेल में औरिजिनेटिंग ट्रैफिक	10 लाख टन		260

कृषि के क्षेत्र में विस्तृत आयोजना अभ्यास किए गए। कुल फसल क्षेत्र का विकास ऐसे क्षेत्रों और पहले से सिंचित किए गए क्षेत्रों में वृद्धि व सिंचाई के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र में निर्धारित वृद्धि के परस्पर सम्बन्ध पर अनुमानित हैं। बड़ी और मँझली सिंचाई के हेतु निधियों के आवटन के लिए परियोजना स्तर के अभ्यास चल रही परियोजनाओं को शीघ्र पूर्ण करने और छठी योजनावधि में आवश्यकताओं के अनुसार नई परियोजनाओं को शुरू करने को सुनिश्चित करने के लिए किए गए। लघु सिंचाई के विस्तार और जिन राज्यों में प्रगति धीमी है उनमें भूमिगत जल निदेशालयों के काम को सुचारु रूप से चलाने के लिए निधियों की व्यवस्था कर दी गई है। अधिक उपज वाले क्षेत्रों में वृद्धि कर और उर्वरक भागों का सावधानी से

अनुमान लगा लिया गया है। सिंचित अथवा असिंचित अधिक उपज वाली फसल के मामले मे उत्पादन सभाव्यनाएँ क्षेत्र मे पिछले अनुभव से उपज स्तरो के उपयुक्त किए जाने के आधार पर अनुमानित की गई हैं। उत्पादन के अनुमानो की मापदण्ड के उपयोग द्वारा प्रतिजाँच की गई है।

समुद्र मे अन्वेषण की वृद्धिगत आशा से सन् 1978–79 मे कच्चे तेल का देशीय उत्पादन 141 लाख टन की सम्भावना है जबकि पाँचवी योजना के प्रारूप में 120 लाख टन लक्ष्य निर्धारित किया गया था। पैट्रोलियम उत्पादो की नियंत्रित खपत के होते हुए भी सन् 1978–79 मे कच्चे तेल की माँग 290 लाख टन रखी गई है जिसके लिए लगभग 150 लाख टन के आयात की आवश्यकता होगी। योजना के प्रारूप मे 346 लाख टन के लक्ष्य की तुलना मे सन् 1978–79 में पैट्रोलियम उत्पादो का उत्पादन 270 लाख टन प्रत्याशित किया गया। तेल की कीमतो मे तीव्र वृद्धि के कारण तेल उत्पादो की माँग मे वृद्धि को नियन्त्रित करने के लिए कार्यवाही की गई और पैट्रोलियम उत्पादों की जगह उर्जा के वैकल्पिक स्रोतो के पूरे उपयोग के लिए सुविचारित कार्यवाही की गई। वैसे अर्थ-व्यवस्था की अनिवार्य आवश्यकताओ अर्थात् नत्रजनीय उर्वरको के निर्माण के लिए नेपथा व ईंधन तेल के लिए पर्याप्त प्रावधान किए गए है। इसी प्रकार देश की प्रमुख रूप से ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे सडक परिवहन के महत्त्व को देखते हुए हाई स्पीड डीजल आयल की माँग मे पर्याप्त वृद्धि की परिकल्पना की गई है। एल. डी ओ के मामले मे उपयुक्त रूप से उच्च स्तर की माँग की परिकल्पना कृषि विकास कार्यक्रम मे महत्वपूर्ण भूमिका के कारण की गई है। इन बातो को ध्यान मे रखते हुए यह अनुमान किया गया है कि पैट्रोलियम उत्पादो की खपत सन् 1978-79 मे 285 लाख टन से अधिक नही होने का अनुमान किया गया है। इस प्रकार सन् 1978–79 मे पैट्रोलियम उत्पादो के आयात का स्तर लगभग 15 लाख टन होगा।

विद्युत क्षेत्र के माँग के विश्लेषणो पर आधारित कार्यवाही से यह पता चलता है कि सन् 1974–75 मे 76 6 बिलियन किलोवाट आवर्स से बढकर सन् 1978-79 मे कुल 118 बिलियन किलोवाट आवर्स हो जाएगी। ये अनुमान उस वर्ष में उद्योग व अन्य क्षेत्रो से सभावित माँग पर आधारित हैं। वर्तमान सकेत यह है कि सन् 1978-79 के अन्त तक लगभग 300 लाख किलोवाट की स्थापित क्षमता हो जाएगी और ऊर्जा की उपलब्धता 116-117 बिलियन किलोवाट घण्टे के बीच होने की सम्भावना है। इससे परियोजना की निर्माणावधि को कम करने व अधिकता वाले क्षेत्र से कमी वाले क्षेत्र मे विद्युत के भेजने विद्युत प्रणाली की क्षमता मे सुधार (जैसे पारेषण व वितरण सम्बन्धी हानियो मे कमी) और विद्युत के लिए माँग मे संभावित वृद्धि की पूर्ति के लिए उपलब्ध क्षमता के उपयोग मे बढोतरी की आवश्यकता प्रतीत होती है।

कोयले के उत्पादन का लक्ष्य उसकी माँग के संशोधित अनुमानों के आधार पर 1240 लाख टन निश्चित किया गया है। सन् 1974–75 मे यह माँग खपत के स्वरूप से प्रकट प्रवृत्ति और कोयले की खपत करने वाले मुख्य क्षेत्र जैसे, इस्पात

संयत्र, विद्युत संयत्र, रेल मुख्य उद्योग, आन्तरिक क्षेत्र आदि में विकास के संशोधित अनुमान के आधार पर विश्लेषित की गई है।

इस्पात की 77 5 लाख टन की आन्तरिक माँग की तुलना में सन् 1978–79 में उसका उत्पादन 88 लाख टन अनुमानित किया गया है। देश में बड़ी किस्म के इस्पात उत्पादों की खपत के कारण यह सम्भव नहीं होगा कि इस्पात उत्पादों के सभी आकार-प्रकारों की माँग को देशीय मिले-जुले उत्पाद से पूरा किया जा सके। इससे कुछ इस्पात उत्पादों के कुछ आकारों के आयात करने की आवश्यकता होगी। ऐसे आयात सन् 1978–79 में 4 लाख टन से और बढ़ जाने की सम्भावना नहीं है।

अलौह धातुओं की माँग के अनुमान विस्तृत सामग्री सन्तुलनों के निर्माण द्वारा प्राप्त किए गए और उनकी निवेश उत्पादन मण्डल द्वारा प्रति जाँच की गई। परियोजना स्तर विश्लेषक द्वारा जाँच किए गए, सम्भावित क्षमता स्तरों पर आपूर्तियाँ आधारित हैं।

उर्वरक की माँग के संकेतन के लिए, पृथक् रूप से तत्सम्बन्धी विस्तार का प्रयास सावधानीपूर्वक किया गया। इसकी आवश्यकता सिंचाई की सुविधाओं पर दिए गए बल और विशेष रूप से नए क्षेत्रों में नए तकनीक के प्रसार के कारण हुई। किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि उर्वरक का उपयोग सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता और साथ ही नए तकनीक के प्रसार के लिए भी बहुत महत्त्वपूर्ण प्रभाव है। इन अन्तरण घटकों और साथ ही कर कोटि की भूमि के अन्तर्गत मात्राओं में वृद्धि को ध्यान में रखा गया है। ऐसा विश्लेषण फसल दर फसल और अनुमानित उर्वरक की कुल आवश्यकताओं के बारे में किया गया। सन् 1978–79 के लिए N P K की 48·0 लाख टन, N की 34 लाख टन, P_2O_5 की 8 70 लाख टन व K_2O की 5 30 लाख टन की पुष्टिकर रूप में ये आवश्यकताएँ होनी हैं। समग्रवार उत्पादन की रूपरेखा से यह पता चलता है कि सन् 1978–79 तक 19 0 लाख टन नाइट्रोजन का उत्पादन होगा। P_2O_5 का 7,77,000 टन के उत्पादन का अनुमान किया गया है। इस अन्तर का NK 5 00 लाख टन, P_2O_5 के 10 लाख टन और K_2O के 5 30 लाख टन—कुल 11 30 लाख टन के आयात से पूरा किया जाएगा।

पाँचवीं योजना के समाप्ति वर्ष में सीमेंट की आन्तरिक माँग का अनुमान वस्तु सन्तुलन प्रक्रिया से लगाया गया है। ऐसा करते समय अर्थ-व्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों जैसे कृषि, विद्युत, उद्योग, परिवहन और समाज सेवाओं में कुल स्थायी विनियोजन को ध्यान में रखा गया है। इस प्रकार इसकी माँग का अनुमान 193 लाख टन लगाया गया है। अब यह अनुमान किया गया है कि 15 लाख टन की सीमेंट का निर्यात हो सकेगा। इस मात्रा को शामिल करने के बाद सन् 1978–79 में सीमेंट की कुल माँग 208 लाख टन होने का अनुमान है। इन अनुमानों की 'काल शृंखला विश्लेषण' विधि द्वारा प्रति जाँच कर ली गई है।

सीमेंट, कागज और गत्ता, चीनी और खड़ उत्पादन तैयार करने वाली मशीनों के उत्पादन सम्बन्धित वस्तुओं की नवीन क्षमता पर निर्भर है जो सन् 1978-79 तक और छठी योजना के पूर्वकाल में सर्जित होगी। वर्तमान संयन्त्रों के आधुनिकीकरण और परिवर्तन के लिए भी व्यवस्था की गई है। कुछ विशेष प्रकार की मशीनों का निर्यात सन् 1978–79 तक होने लगेगा और इस निर्यात सम्भावना के लिए मशीनों के उत्पादन के लक्ष्यों में व्यवस्था की गई है। अन्य मशीनों के उत्पादन लक्ष्यों का निर्धारण करते समय विनियोजन योजनाओं उपभोगकर्त्ता उद्यमों मे वृद्धि, परिवर्तन आवश्यकताओं और निर्यात क्षमता को ध्यान मे रखा गया है।

सन् 1978–79 मे संगठित कारखाना क्षेत्र में सूती वस्त्रों के उत्पादन का अनुमान 48,000 लाख मीटर लगाया गया जबकि विकेन्द्रित क्षेत्र में 47,000 लाख मीटर उत्पादन होने का अनुमान है। सूती और कृत्रिम तन्तु से बनाए गए कपड़े के अंश का अनुमान अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अलग-अलग वर्गों द्वारा आय वृद्धि के साथ विभिन्न प्रकार के कपड़े का उपभोग के सम्बन्ध में किए गए अध्ययन द्वारा लगाया गया है। वस्त्र की सम्पूर्ण माँग के अनुमान व्यय लोच और व्यापक आर्थिक सन्तुलन से प्राप्त किए गए प्रति व्यक्ति उपभोग मे अनुमानित वृद्धि का प्रयोग करके निकाले गए हैं। पाँचवी योजना की अवधि मे और उसके बाद विकेन्द्रित क्षेत्र के अंश मे वृद्धि होने का अनुमान है जिसका कारण यह है कि हाथकरघा क्षेत्र को अधिक महत्त्व दिया गया है और संगठित क्षेत्र की कताई क्षमता मे तेजी से वृद्धि करने के लिए व्यवस्था की गई है। इन सम्भावनाओं के आधार पर सूती कपड़े और कृत्रिम वस्त्र की आन्तरिक माँग का अनुमान लगाया गया है। सूती कपड़े के निर्यात की माँग को भी ध्यान मे रखा गया है और इस प्रकार सन् 1978–79 मे कुल माँग अनुमानित उत्पादन स्तर के बराबर ही है।

सन् 1978–79 मे रेलो द्वारा माल ढुलाई के अनुमानों मे रेलो द्वारा कोयले, इस्पात, संयन्त्रों के लिए कच्चे माल और वहाँ से तैयार माल, निर्यात की जाने वाली लौह अयस्क की ढुलाई और खाद्यान्नों, उर्वरकों, पैट्रोलियम तथा अन्य स्नेहक, सीमेंट और रेल सामग्री जैसी कुछ प्रमुख जिन्सों की ढुलाई भी शामिल है। रेलो द्वारा इस तरह की जिन्सों की ढुलाई की मात्रा के अनुमान पिछली अवधि की प्रवृत्तियों के आधार पर भी निकाले गए हैं। संचालन की स्थिति मे सुधार की सम्भावनाओं को देखते हुए यह उम्मीद है कि रेलें इतनी मात्रा मे (2600 लाख टन) माल की ढुलाई कर सकेंगी।

उल्लेखनीय है कि पाँचवी योजना के प्रारूप मे 5·5 प्रतिशत की वृद्धि दर का लक्ष्य रखा गया था और यह माना गया था कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए (क) पहले से अधिक पूँजी-निवेश, (ख) अधिक कुशलता, (ग) पहले से अधिक बचत, आमदनी की असमानताएँ दूर करने और उपभोग को इस ढंग से घटाने की आवश्यकता पड़ेगी, जिससे समृद्ध वर्गों पर अधिकाधिक बचत करने का भार पड़े। योजना के लक्ष्य का इस ढंग से विकास करना रखा गया था कि मुद्रा स्फीति न होने

पाए। यह मानकर कहा गया था कि कुछ क्षेत्रो जैसे इस्पात, कोयला, लौह धातुएँ, सीमेंट और उर्वरक, उद्योगो मे पूँजी बहुल उद्योगो के विकास के लिए तो पूँजी जुटाना अनिवार्य है ही क्योंकि ऐसी वस्तुओ का उत्पादन होता है जो रोजगार देने वाली है और जिनका कृषि मे बहुत इस्तेमाल हो रहा है। इसी प्रकार इन क्षेत्रों पर भी अकुंश रखना होगा जो न तो आदमी के उपयोग की वस्तुओ मे ही आते है और न ही जिनसे निर्यात वृद्धि मे सहायता मिलती है। मुद्रा स्फीति के बिना विकास करने की नीति के अनुसार दीर्घ अवधि मे और अल्पावधि मे फल देने वाली परियोजनाओं का सतुलित मेल रखने और रोजगार देने वाले माल तैयार करने के उद्योगो और परमावश्यक मध्यवर्ती वस्तुएँ व पूँजीगत सामान बनाने वाले उद्योगो मे लगाई जाने वाली पूँजी का भी सन्तुलित और उचित वितरण आवश्यक है।

आर्थिक समीक्षा 1976-77 के अनुसार सकल राष्ट्रीय उत्पाद, बचत और पूँजी निवे [illegible]

भारत सरकार के प्रकाशन 'आर्थिक समीक्षा' सन् 1976-77 मे सकल राष्ट्रीय उत्पादन, बचत और पूँजी निवेश की जो स्थिति बताई गई, वह प्रकार है—

"चौथी आयोजना अवधि के दौरान राष्ट्रीय आय की वृद्धि की दर केवल 3 5 प्रतिशत थी। सकल राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि की दर सन् 1974-75 मे 0 3% थी और सन् 1975-76 के तुरन्त अनुमानो से 8 5 प्रतिशत की वृद्धि की दर से सकेत मिलते हैं। उपलब्ध निर्देशको से सकल राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि की दर मे सन् 1976-77 मे लगभग 2 प्रतिशत की कमी होने के सकेत मिलते हैं। इस प्रकार इन तीन वर्षो मे वृद्धि की वार्षिक औसत दर 3 5 प्रतिशत बैठती है।"

'केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन से प्राप्त अन्तिम आँकडो से पता चलता है कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद (बाजार की कीमतो पर) के मुकाबले सकल घरेलू बचतो का अनुपात सन् 1974-75 मे 17 5 प्रतिशत था वह अनुपात सन् 1975-76 मे बढकर 19 4 प्रतिशत हो गया। यह प्रतीत होता है कि यह बढोतरी घरेलू बचतो मे वृद्धि होने के कारण हुई क्योंकि सरकारी क्षेत्र की बचतो का अश इन दो वर्षों मे लगभग उतना ही बना रहा। बैंको मे जमा रकमो मे तेजी से वृद्धि, अल्प बचत सग्रह, कम्पनियो के लाभ कर सग्रह म वृद्धि तथा सरकारी क्षेत्र के उपक्रमो का कार्य-निष्पादन जैसे सभी निर्देशको क सम्बन्ध मे उपलब्ध तथ्यो तथा आँकडो से पता चलता है कि सन् 1976-77 के घरेलू बचतो की दर वही रही जो सन् 1975-76 म थी।"

"केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन के अनुमानो से भी पता चलता है कि सन् 1974-75 की तुलना म, 1975-76 म पूँजी निवेश ज्यादा हुआ। सकल राष्ट्रीय उत्पाद के अनुपात के रूप मे सकल घरेलू पूँजी सग्रह जो सन् 1974-75 म 19 1 प्रतिशत था, बढकर 1975-76 म 20 8 प्रतिशत हो गया। सीमेंट, इस्पात, मशीनो जैसी निवेश-वस्तुओ के उत्पादन से उपलब्ध होने और सावधिक ऋण संस्थाओ द्वारा पहले से अधिक वित्तीय सहायता दिए जाने से अनुमान लगाया गया है कि सकल

राष्ट्रीय उत्पाद के अनुपात के रूप में पूंजी-निवेश सन् 1976–77 में भी उतना ही हुआ जितना कि सन् 1975–76 में था।"

आर्थिक समीक्षा 1977–78 के अनुसार सकल राष्ट्रीय उत्पाद, बचत और पूंजी-निवेश

"चालू वर्ष (1977–78) में सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product· GNP) की वृद्धि की दर 5 प्रतिशत रहने की सम्भावना है। गत वर्ष के 1·6 प्रतिशत के स्तर से यह स्थिति 'सन्तोषजनक सुधार' की है तथापि सन् 1975-76 की 8·5 प्रतिशत वृद्धि दर से यह काफी कम है। सन् 1977–78 में समाप्त होने वाले चार वर्षों में वृद्धि की वार्षिक औसत दर 3.9 प्रतिशत रही है।

केन्द्रीय सांख्यिकी सगठनों के अनुमानों से पता चलता है कि सन् 1976–77 में सकल घरेलू पूंजी निर्माण सन् 1975–76 के स्तर पर ही था अर्थात् सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 19·3 प्रतिशत।"

3 प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाएँ-क्षेत्रीय लक्ष्य, वित्तीय आवंटन तथा उपलब्धियाँ
(FIRST THREE FIVE YEAR PLANS-SECTORAL TARGETS, FINANCIAL ALLOCATION AND ACHIEVEMENTS)

योजनाओं के उद्देश्यों को जब संख्यात्मक स्वरूप प्रदान किया जाता है तब उद्देश्य बन जाते हैं। किसी अर्थ-व्यवस्था के कृषि, उद्योग, परिवहन तथा संचार आदि क्षेत्रों से सम्बन्धित विकास-लक्ष्यों (Growth Targets) को क्षेत्रीय लक्ष्य (Sectoral Targets) कहते हैं। इन लक्ष्यों के अन्तर्गत मूलतः क्षेत्रों से सम्बन्धित भौतिक उत्पादन के लक्ष्य, क्षेत्रीय विकास दर, वित्तीय परिव्यय आदि लिए जाते हैं। भारतीय अर्थ-व्यवस्था को आर्थिक नियोजन के सन्दर्भ में कृषि, शक्ति खनिज उद्योग, परिवहन तथा संचार, सामाजिक सेवाएँ आदि क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है।

योजनाओं में वित्तीय आवंटन
(Financial Allocation in the Plans)

योजनाओं में विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित निर्धारित विकास-लक्ष्यों तथा इनकी उपलब्धियों के विश्लेषण से पूर्व यह उपयुक्त होगा कि इन क्षेत्रों पर आवंटित परिव्यय तथा इस परिव्यय की वित्त-व्यवस्था को जान लिया जाए। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम प्रथम विभिन्न सारणियों द्वारा विनियोग परिव्यय एवं वित्त-व्यवस्था को स्पष्ट करेंगे।

प्रथम तीन योजनाओं में विनियोग

सारणी-1 में दिए गए विनियोगों के अंकों से सरकारी और निजी क्षेत्र के विस्तार की सापेक्ष स्थिति स्पष्ट होती है। निरपेक्ष रूप में यद्यपि दोनों ही क्षेत्रों में विनियोग दर में काफी वृद्धि हुई किन्तु दोनों क्षेत्रों का अनुपात प्रथम तीन योजनाओं में क्रमशः लगभग 15 18, 37 31 तथा 71 49 रहा। इन अनुपातों से स्पष्ट है कि उत्तरोत्तर निजी क्षेत्र की तुलना में सरकारी क्षेत्र का अधिक विस्तार हुआ। यह स्थिति देश के समाजवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है।

सारणी-1

तीन योजनाओं में सरकारी और निजी क्षेत्र में विनियोग

(करोड़ रु में)

योजना	सरकारी क्षेत्र का परिव्यय				निजी क्षेत्र में विनियोग	योजना का कुल व्यय
	योजना प्रावधान	वास्तविक व्यय	चालू व्यय	विनियोग		
प्रथम पंचवर्षीय योजना	2,356	1 960	400	1,560	1,800	3,760
द्वितीय पंचवर्षीय योजना	4 800	4,673	941	3,731	3 100	7,772
तृतीय पंचवर्षीय योजना	7,500	8 577	1,448	7,129	4,190	12,767

तीनों योजनाओं के परिव्यय

सारणी–2 में योजनाओं के वास्तविक सार्वजनिक परिव्यय (Outlay) को दर्शाया गया है। योजना-परिव्यय मे राज्य व केन्द्र के भाग को पृथक्-पृथक् रखा गया है तथा कुल परिव्यय का विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों पर आवटन तथा कोष्ठकों मे राशि के आवटन का प्रतिशत दर्शाया गया है—

सारणी-2

प्रथम तीन योजनाओं में सरकारी क्षेत्र का परिव्यय

(करोड़ रु. में)

विकास की मद	प्रथम पंचवर्षीय योजना	द्वितीय पंचवर्षीय योजना			तृतीय पंचवर्षीय योजना		
	योग	केन्द्र*	राज्य	योग	केन्द्र	राज्य	योग
1 कृषि और सम्बद्ध क्षेत्र	290 (14·8)	53 (9·7)	496 (90·3)	549 (11·7)	117 (10·7)	972 (89 3)	1089 (12·7)
2 सिचाई और बाढ़ नियन्त्रण	434 (22·2)	55 (12·8)	375 (87·2)	430 (9·2)	10 (1·5)	655 (98·5)	665 (7·8)
3 विद्युत्	149 (7·6)	28 (6·2)	424 (93·8)	452 (9·7)	113 (9·0)	1139 (91 0)	1252 (14·6)
4 गांव और लघु उद्योग	42 (2·1)	106 (56·7)	81 (43·3)	187 (4·0)		203 (10·3)	241 (2·8)
5 खनिज और उद्योग	55 (2·8)	898 (95·7)	40 (4·3)	938 (20·1)	1764 (89·7)		1726 (20·1)

विकास की मद	प्रथम पंचवर्षीय योजना	द्वितीय पंचवर्षीय योजना			तृतीय पंचवर्षीय योजना		
	योग	केन्द्र	राज्य	योग	केन्द्र	राज्य	योग
6 यातायात और संचार	518 (26·4)	1092 (86·6)	169 (13·4)	1261 (27·0)	1818 (86·1)	294 (13·9)	2112 (24·6)
7 अन्य	472 (24·1)	357 (41 8)	498 (58·2)	855 (18·3)	590 (39·6)	902 (60·4)	1492 (17 4)
जिसमें							
(अ) शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसन्धान	149 (7 6)	—	—	273 (5 8)	—	—	660 (7 7)
(ब) स्वास्थ्य	98 (5 0)	—	—	216 (4·6)	—	—	226 (2 6)
(स) परिवार नियोजन							25 (0·3)
योग	1960 (100 0)	2589 (55·4)	2083 (44 6)	4672 (100·0)	4412 (51 4)	4165 (48·6)	8577 (100 0)

* शेष आँकड़े। जिस हद तक राज्य के हिस्से से कुल का परिव्यय 4600 करोड़ रुपये (जो बाद में संशोधित कर 4672 करोड़ रुपये कर दिया गया और जिसके लिए केन्द्र और राज्य वार ब्योरा उपलब्ध नहीं है)में से है, उस हद तक केन्द्र का परिव्यय अधिक हो सकता है। केन्द्र और राज्य मदों (कालमों) के नीचे कोष्ठक में दिए गए आँकड़े सम्बद्ध क्षेत्रों में परिव्यय का प्रतिशत बताते हैं।

Source . India 1973 & 1974.

योजना-परिव्यय की वित्त-व्यवस्था

विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों के लिए आवश्यक परिव्यय के वित्तीय सम्बन्ध सारणी–3 से स्पष्ट हैं—

सारणी-3

सरकारी क्षेत्र में योजना परिव्यय की वित्त-व्यवस्था

(करोड़ रु. में)

मद	प्रथम पचवर्षीय योजना		द्वितीय पचवर्षीय योजना		तृतीय पचवर्षीय योजना	
	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक
1. मुख्यतया अपने साधनों से						
(1) कराधान की योजना पूर्व दरो पर चालू राजस्व से बचत	740 (35 7)	725 (38·4)	1350 (28·1)	1230 (26 3)	2810 (37·5)	2908 (33 9)
(2) अतिरिक्त कराधान, जिसमे सार्वजनिक उद्यमो की बचत बढ़ाने के उपाय शामिल हैं	570	382	350	11	550	419
(3) रिजर्व बैंक से लाभ	अ	255ब	850ब	1052ब	1710	2892
(4) योजना के लिए अतिरिक्त साधन जुटाने के लिए उठाए गए उपायो से हुई आय को छोड़कर सार्वजनिक प्रतिष्ठानो की बचत	—	—	—	—	—	—
(क) रेल	170ई	115ई	150ई	167ई	100	62
(ख) अन्य	फ	फ	फ	फ	650	373

मद	प्रथम पंचवर्षीय योजना		द्वितीय पंचवर्षीय योजना		तृतीय पंचवर्षीय योजना	
	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक
2 मुख्यतया घरेलू ऋणों के जरिए	808 (39 1)	1019 (52 0)	2650 (55 2)	2393 (51 2)	2490 (33 9)	3246 (37 9)
(1) सार्वजनिक ऋण, बाजार और जीवन बीमा निगम से सरकारी उद्यमों द्वारा लिए गए ऋणों सहित शुद्ध	115ह	208ह	700ह	756ह र	800	823
(2) छोटी बचतें	225	243	500	422	600	565
(3) वार्षिकी जमा, अनिवार्य जमा, इनामी बॉंड और स्वर्ण बॉंड	—	—	—	—	—	117
(4) राज्य भविष्यनिधियों से	45	92	250	175ज	265	336
(5) इस्पात समानीकरण निधि (शुद्ध)	—	—	—	40	105	34
(6) विविध पूंजीगत प्राप्तियाँ (शुद्ध)	133	147	—	46	170	238
(7) घाटे का वित्त इ	290	333	1200	954	550	1133
3 कुल घरेलू साधन (1+2)	1546 (74 8)	1771 (90 4)	4000 (83 3)	3623 (77 5)	5300 (70 7)	6154 (71 8)

मद	प्रथम पचवर्षीय योजना		द्वितीय पचवर्षीय योजना		तृतीय पचवर्षीय योजना	
	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक
4. विदेशी सहायता न	521 (25·2)	189 (96)	800 (16 7)	1049 (22·5)	2200 (29·3)	2423 (28·2)
5. कुल साधन (3+4)	2069 (100·0)	1960 (100 0)	4800 (100 0)	4672 (100 0)	7500 (100 0)	8577 (100·0)

नोट—कोष्ठकों मे दिए गए आंकडे कुल के प्रतिशत हैं।

(अ) मद 1 (1) और 1 (4) के अन्तर्गत शामिल। (ब) रेल किराए और भाड़े में वृद्धि से हुई आय को छोडकर। (ई) रेल किराए और भाडे मे हुई वृद्धि से आय समेत। (फ) मद 1 (1) और (2) (6) के अन्तर्गत शामिल। (ह) केन्द्र और राज्य सरकारो द्वारा बाजार से ऋण (र) स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा पी. एल 480 कोषों का निवेश शामिल है। (क) प्रथम और द्वितीय योजनाओं के आंकडे अनिधिबद्ध ऋणों से सम्बद्ध हैं। (इ) तृतीय योजना अवधि और उसके बाद के लिए दर्शाए गए घाटे के वित्त के आंकडे सरकार की रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के प्रति ऋणता (दीर्घावधि और लघु अवधि दोनो) मे परिवर्तन को दर्शाते हैं। पूर्व योजनाओं के लिए ये घाटे के बजट की ओर सकेत हैं। प्रथम और द्वितीय योजना अवधियो मे घाटे का वित्त क्रमश 260 करोड़ रु. और 1,170 करोड रुपये था। (अ) राज्य भविष्य निधियो से भिन्न बिना खर्च किए गए ऋण शामिल है। (न) नई विनिमय-दर के अनुसार।

Source : India 1973 & 1974.

प्रथम योजना का परिव्यय तथा वित्त-व्यवस्था

सारणी–2 (परिव्यय 2) के अनुसार प्रथम योजना पर सरकारी क्षेत्र मे सन् 1960 करोड रु की राशि व्यय की गई। सारणी मे दिए गए व्यय के आवटन से स्पष्ट है कि इस योजना मे कृषि को सर्वाधिक महत्त्व मिला, क्योंकि योजना की कुल राशि का 37% भाग कृषि, सिंचाई और बाढ नियन्त्रण पर व्यय किया गया। योजना मे शक्ति, परिवहन तथा सचार को भी आवश्यक महत्त्व दिया गया, जो इन मदो पर व्यय के क्रमश 7 6% और 26 4% से परिलक्षित होता है। शक्ति तथा परिवहन व सचार को दी गई प्राथमिकता का उद्देश्य भावी विकास के लिए आधार-ढांचे (Infra-structure) का निर्माण करना था। सभी प्रकार के उद्योगो व खनिजों पर कुल व्यय का केवल 4 9% ही व्यय किया गया। शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसन्धान तथा स्वास्थ्य पर कुल राशि का क्रमश 7 6% व 5% व्यय हुआ। इन मदो पर व्यय का यह प्रतिशत यह प्रदर्शित करता है कि नियोजको का इस योजना मे शिक्षा व स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओ के विस्तार की ओर भी यथेष्ट ध्यान रहा।

1960 करोड रु के व्यय की वित्तीय व्यवस्था के लिए निजी साधनो से 752 करोड रु, घरेलू ऋणो से 1010 करोड रु तथा विदेशी सहायता से 189 करोड रु प्राप्त किए गए। प्रतिशत के रूप मे इन मदो का कुल राशि मे योगदान क्रमश 38 4%, 5 2% तथा 9 6% रहा। घरेलू ऋणो की मद मे घाटे के वित्त के 333 करोड रु भी सम्मिलित हैं। प्रथम योजना के अन्तिम वर्षों मे घाटे की वित्त-व्यवस्था का अधिक तेजी से उपयोग किया गया, किन्तु योजना की अवधि के दौरान उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि होने के कारण मूल्य-स्तर योजना की पूर्व अवधि की तुलना मे 13% कम रहा तथा भुगतान सन्तुलन की स्थिति भी अनुकूल रही।

द्वितीय योजना का परिव्यय तथा वित्त-व्यवस्था

द्वितीय योजना के लिए 4 800 करोड रु के व्यय का लक्ष्य रखा गया किन्तु वास्तव मे कुल व्यय 4,672 करोड रु हुआ जिसमे से राज्यों ने 2,589 करोड रु तथा केन्द्र ने 2,083 करोड रु व्यय किए। 4,800 करोड रु की प्रस्तावित राशि का कृषि व सामुदायिक विकास के लिए 11 8% सिंचाई के लिए 7 9%, शक्ति के लिए 8 9%, बाढ नियन्त्रण व अन्य परियोजनाओ के लिए 2 2%, उद्योग व खनिज के लिए 18 5%, परिवहन व सचार के लिए 28 9%, सामाजिक सेवाओ के लिए 19 7% तथा शेष 2 1% विविध कार्यों के लिए निर्धारित किया गया। इन मदो पर प्रस्तावित राशि की तुलना मे जो राशि वास्तव मे व्यय हुई, उसे 'परिव्यय सारणी' की कालम सख्या पाँच मे बताया गया है। प्रस्तावित तथा वास्तविक व्यय प्रतिशतो की तुलना को सारणी–4 म प्रस्तुत किया जा रहा है।

सारणी–4

द्वितीय योजना की मदों पर प्रस्तावित तथा वास्तविक व्यय के प्रतिशत

मद	प्रस्तावित व्यय का प्रतिशत	वास्तविक व्यय का प्रतिशत
1. कृषि और सम्बद्ध क्षेत्र	11 8	11·7
2. सिंचाई और बाढ़-नियन्त्रण	10·1	9·2
3 शक्ति (Power)	8 9	9 7
4. उद्योग व खनिज	18 5	24·1
5 परिवहन व संचार	28 9	27 0
6. सामाजिक सेवाएँ	19·7	10 4
7. अन्य	2·1	7·9
कुल	100·0	100 0

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि उद्योग व खनिज पर प्रस्तावित व्यय से वास्तविक व्यय की राशि अधिक रही तथा सामाजिक सेवाओं पर वास्तविक व्यय की राशि प्रस्तावित व्यय की राशि की तुलना मे काफी कम रही। अन्य मदों के प्रतिशत को मिला कर भी सामाजिक सेवाओं के वास्तविक व्यय का प्रतिशत प्रस्तावित व्यय के प्रतिशत से काफी कम रहा है। इस योजना मे सर्वाधिक प्राथमिकता यद्यपि उद्योग व खनिज क्षेत्र को दी गई, किन्तु कुल निरपेक्ष-राशि की दृष्टि से कृषि के लिए प्रथम योजना की तुलना मे द्वितीय योजना मे काफी बडी राशि का प्रावधान रखा गया। इसका अभिप्राय है कि उद्योग व खनिज के क्षेत्र पर अत्यधिक बल दिए जाने पर भी कृषि के महत्त्व को इस योजना मे पर्याप्त स्थान मिला।

जहाँ तक योजना के परिव्यय की वित्त-व्यवस्था का प्रश्न है, 4,800 करोड रु के प्रस्तावित व्यय के लिए 1,200 करोड़ रु की राशि का घाटे के वित्त के अन्तर्गत प्रावधान रखा गया तथा 400 करोड रु के घाटा (Uncovered Deficit) के रूप में घरेलू साधनों में वृद्धि के अतिरिक्त उपायो द्वारा पूर्ति के लिए छोड़ दिया गया। 800 करोड़ रु. विदेशी साधनो से तथा योजना की शेष 2,400 करोड़ रु की राशि को कर, जनता से ऋण, रेल व भविष्य-निधि आदि घरेलू साधनों से प्राप्त करने का प्रावधान किया गया। सरकारी क्षेत्र के 4,800 करोड़ रु. के अतिरिक्त 2,400 करोड़ रु. का विनियोग निजी क्षेत्र के लिए निर्धारित किया गया।

तृतीय योजना का परिव्यय तथा वित्त-व्यवस्था

सारणी—3 के अनुसार तृतीय योजना में सरकारी क्षेत्र के लिए 7,500 करोड़ रुपये तथा निजी क्षेत्र के लिए 4,100 करोड़ रुपये के परिव्यय का लक्ष्य रखा गया। 7,500 करोड़ रुपये के सरकारी व्यय का विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों के लिए निम्न प्रकार आवंटन किया गया—

सारणी–5

तृतीय पंचवर्षीय योजना में प्रस्तावित सरकारी व्यय का विभिन्न आर्थिक मदों पर आवंटन

मदें	प्रस्तावित व्यय (करोड़ रुपये में)	कुल का प्रतिशत
1. कृषि व सामुदायिक विकास	1068	14
2. बड़े व मध्यम सिंचाई के साधन	650	9
3. शक्ति	1012	13
4. ग्रामीण व लघु उद्योग	264	4
5. संगठित उद्योग व खनिज पदार्थ	1520	20
6. परिवहन व संचार	1486	20
7. सामाजिक सेवाएँ व विविध	1300	17
8. इन्वेन्टरीज	200	3
कुल	7500	100

तृतीय पंचवर्षीय योजना के कुल प्रस्तावित व्यय का कृषि, सिंचाई और सामुदायिक विकास के लिए 25 प्रतिशत व्यय निर्धारित किया गया। इन मदों को इस योजना में सर्वाधिक महत्त्व दिया गया। इस प्राथमिकता का मूल कारण द्वितीय योजना में कृषिगत उत्पादन के लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जाना था। इसीलिए इस योजना में खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि की आवश्यकता विशेष रूप से अनुभव की गई। संगठित उद्योगों तथा खनिजों व परिवहन और संचार की मदों को समान प्राथमिकता प्रदान की गई। इन मदों में से प्रत्येक के लिए कुल व्यय का 20 प्रतिशत व्यय निर्धारित किया गया।

योजना की प्रस्तावित 7,500 करोड़ रुपये की राशि की वित्त-व्यवस्था के लिए चालू राजस्व की बचत से 550 करोड़ रुपये, अतिरिक्त करारोपण से 1,720

करोड़ रुपये, रेलों से 100 करोड़ रुपये, सार्वजनिक प्रतिष्ठानों से 450 करोड़ रुपये, सार्वजनिक ऋण से 800 करोड़ रुपये, छोटी बचतों से 600 करोड़ रुपये, राज्य की भविष्य निधियों से 265 करोड़ रुपये, इस्पात-समानीकरण निधि से 105 करोड़ रुपये, विविध पूँजीगत प्राप्तियों से 170 करोड़ रुपये, घाटे के वित्त से 550 करोड़ रुपये तथा विदेशी सहायता से 2,200 करोड़ रुपये, प्राप्त करने का प्रावधान रखा गया। इन मदों को सारणी-3 में तृतीय पचवर्षीय योजना के शीर्षक के अन्तर्गत प्रारम्भिक अनुमान वाले कॉलम में दर्शाया गया है।

उपरोक्त वित्तीय मदों की मुख्य विशेषता 1,710 करोड़ रुपये का अतिरिक्त कराधान तथा घाटे की वित्त-व्यवस्था की राशि को द्वितीय योजना की तुलना में कम किया जाना है। इसके अतिरिक्त विदेशी सहायता की आवश्यकता को अधिक अनुभव किया गया। इस मद के अन्तर्गत द्वितीय योजना के प्रारम्भिक अनुमान जहाँ 800 करोड़ रुपये के थे वहाँ इस योजना में इस मद से प्राप्त की जाने वाली राशि 2,200 करोड़ रुपये अनुमानित की गई।

उपरोक्त विवेचन के अन्तर्गत सरकार अथवा सार्वजनिक व्यय का ही विश्लेषण किया गया है। सार्वजनिक व्यय के अतिरिक्त भारत की प्रथम तीन योजनाओं में निजी क्षेत्र का जो विनिमय हुआ है उसे सारणी 13 1 में प्रदर्शित किया गया है। इन योजनाओं में निजी क्षेत्र का विनिमय क्रमश 1,800 करोड़ रुपये 3,100 करोड़ रुपये व 4,190 करोड़ रुपये रहा। इस क्रम में यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि प्रथम पचवर्षीय योजना में सन् 1960 के कुल व्यय में से 400 करोड़ रुपये चालू व्यय पर खर्च हुए और इस प्रकार सरकारी क्षेत्र का इस योजना में शुद्ध विनिमय 1,560 करोड़ रुपये का हुआ। इसी प्रकार द्वितीय योजना के 4,672 करोड़ रुपये में से चालू व्यय के 941 करोड़ रुपये निकालने पर इस योजना की अवधि में सरकारी क्षेत्र का विनियोग 3,731 करोड़ रु तथा तृतीय योजना में व्यय की वास्तविक राशि 8,577 करोड़ रुपये में से चालू व्यय की 1,448 करोड़ रुपये की राशि निकालने पर इस योजना में सरकारी क्षेत्र का विनियोग 7,129 करोड़ रुपये हुआ।

योजनाओं में क्षेत्रीय लक्ष्य
(Sectoral Targets in Plans)

प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओं के वित्तीय आवंटन के उपरान्त अब हम इन योजनाओं के क्षेत्रीय लक्ष्यों का अध्ययन करेंगे। इन योजनाओं में भारत के आर्थिक विकास की क्या स्थिति रही, विभिन्न आर्थिक मदों के अन्तर्गत क्या उपलब्धियाँ रहीं, उत्पादन के प्रस्तावित भौतिक लक्ष्यों को किस सीमा तक प्राप्त किया जा सका, आदि प्रश्नों से सम्बन्धित तथ्यों को कृषिगत तथा औद्योगिक मदों के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया जा रहा है। सर्वप्रथम कृषिगत मदों के लक्ष्यों तथा इनकी उपलब्धियों को सारणी-6 में दिया जा रहा है।

सारणी–6

चुनी हुई कृषिगत वस्तुओं के उत्पादन–लक्ष्य तथा प्रगति

मदें	1950-51	1955–56		1960-61	1965–66	
	वास्तविक	प्रस्तावित लक्ष्य	वास्तव में प्राप्त लक्ष्य	वास्तविक	प्रस्तावित लक्ष्य	वास्तव में प्राप्त लक्ष्य
खाद्यान्न (मि टन)	54·92	61·60	69 22	82·0	72·29	72·0
तिलहन (मि. टन)	5 09	7 07	5 63	7 0	10 7	6 3
गन्ना गुड़ (मि टन)	6 92	6·32	7 29	1 12	13 5	12 0
कपास (मि. गाँठे)	2 62	4 23	4·03	5 3	8·60	4 8
जूट (मि गाँठे)	3 51	5 39	4·48	4·1	4 48	6 5

Source (i) Economic Survey, 1969-70, pp. 66-67.
(ii) *Paul Streeten* op cit, p 302

प्रथम योजनावधि में कृषि-उत्पादन में वृद्धि कृषिगत भूमि के क्षेत्रफल में विस्तार करके की गई। किन्तु द्वितीय योजना-काल में कृषि की उत्पादकता में वृद्धि, जल, रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाइयों, शक्ति आदि कृषिगत साधनों की पूर्ति बढ़ा कर की गई। इन साधनों की पूर्ति के विस्तार को सारणी–7 में प्रदर्शित किया गया है—

सारणी–7

कृषिगत साधन

मदें	1950–51	1965–66
खाद (हजार टन नाइट्रोजन)	56	600
विद्युत् (मि किलोवाट घंटा)	203	1730
सिंचाई नल कूप (सं)	3500	32499
ईंधन तेल (मूल्य करोड़ रु में)	4 5	27 7

Source . Economic Survey, 1969-70, pp 66-67

सारणी–7 से स्पष्ट है कि सन् 1950–51 की तुलना में सन् 1965–66 में कृषिगत साधनों के प्रयोग में वृद्धि हुई है। खाद का उपयोग दस गुना, विद्युत् का आठ गुना बढ़ा। नलकूपों की संख्या में दस गुनी अधिक वृद्धि हुई तथा ईंधन-तेल का उपभोग भी छ गुना अधिक किया जाने लगा।

सारणी–8
कुछ औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन-लक्ष्य

मदें	1950–51	1955–56		1965–66	
		प्रस्तावित	वास्तविक	प्रस्तावित	वास्तविक
1 तैयार इस्पात (मि. टन)	1·04	1·4	1·3	4·6	4·51
2 अल्युमिनियम धातु (हजार टन)	4·0	12·0	7·3		62·1
3 डीजल इंजन (हजारों में) स्टेशनरी	5·5		10·0	85·0	93·1
4 कुल मोटरगाड़ियाँ (हजारों में)	16·5		25·3	68·5	70·7
5 मशीनी औजार (मिलियन रु. में)	3·0		7·8	230·0	294·0
6 चीनी मिल मशीनरी (मिलियन रु. में)			1·9	80·0	77·0
7 साइकिलें (हजारों में)	99·0		513	1700	1574
8 सलफ्यूरिक एसिड (हजार टन)	101				662
9 सीमेन्ट (मि. टन)	2·7	4·8	4·6		10·8
10 नाइट्रोजन उर्वरक (हजार टन में)	9·0			233	232
11 कास्टिक सोडा (हजार टन)	12·0				218
12 कोयला (मि. टन) (लिग्नाइट सहित)	32·8		38·4		70·3
13 कच्चा लोहा (मि. टन) (गोवा को छोड़कर)	3·0		4·3		18·1
14 परिशुद्ध पेट्रोल पदार्थ (मिलियन टन)	0·2		3·6		9·4
15 उत्पन्न विद्युत् (मिलियन कि. घंटा)	5·3				32·0

Source : (i) Economic Survey, 1969-70, pp. 66 67.
(ii) *Paul Streeten* : op. cit., p. 301

अर्थ-व्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों के भौतिक लक्ष्यों को निरपेक्ष रूप में उपरोक्त सारणियों में प्रदर्शित किया गया है। लक्ष्यों की सापेक्ष स्थिति को और अधिक स्पष्ट करने की दृष्टि से विकास लक्ष्यों को वार्षिक औसत विकास-दरों के रूप में सारणी–9 में प्रस्तुत किया जा रहा है। यह अध्ययन Paul Streeten एवं Michael Lipton का है। इन विकास-दरों के माध्यम से यह सरलता से जाना जा सकता है कि कृषि, शक्ति, खनिज, उद्योग, यातायात और संचार आदि आर्थिक क्षेत्रों के विकास की सापेक्ष प्रवृत्ति प्रत्येक योजना अवधि में किस प्रकार की रही है।

सारणी–9

चुने हुए लक्ष्य और उपलब्धियाँ–वार्षिक औसत विकास दरें
(Selected Targets and Achievements–Annual Average Growth Rates)

मदें (Items)	भौतिक सूचकांक (Physical Indicator)	1950-51 के वास्तविक पर 1955 56 के लक्ष्य (Targets 1955 56 over Actuals 1950-51)	1950-51 के वास्तविक पर 1955-56 के वास्तविक (Actual 1955-56 over Actuals 1950 51)	1955-56 के वास्तविक पर 1960 61 के लक्ष्य (Targets 1960 61 over Actuals 1955-56)	1955-56 के वास्तविक पर 1960 61 के वास्तविक (Actual 1960-61 over Actuals 1955-56)	1960-61 के वास्तविक पर 1965-66 के लक्ष्य (Targets 1965-66 over Actuals 1960 61)	1950-51 के वास्तविक पर 1964-65 के वास्तविक (Actual 1964-65 over Actuals 1950 51)	1964-65 के वास्तविक पर 1970-71 के लक्ष्य (Targets 1970-71 over Actuals 1964 65)
1	2	3	4	5	6	7	8	9
1 कृषि								
(i) कृषिगत उत्पादन								
खाद्यान्न	वजन	3 4	4·7	4 1	3 5	4·0	2 0	5 1
कपास	गाँठें	7 7	6 6	10 2	0 5	5 8	0 6	8 0
गन्ना-गुड़	वजन	2 4	1 4	5 4	9 0	—	2 4	1 6
तिलहन	वजन	1 5	1 9	6 3	4 4	7 0	4 4	4 3
जूट	गाँठें	10 4	4 9	5 5	—	2 8	9 9	6 9
चाय	वजन		0 7	1 9	2 4	4 6	3 2	3 8
(ii) कृषिगत उत्पादक-कारक								
नेट्रजन खाद का उपयोग	वजन	—	13 8	n a	14 4	n.a.	2 0	23 8
फास्फेट का खाद उपयोग	वजन	—	13 1	n.a.	40 0	n.a	20 6	37 4

1	2	3	4	5	6	7	8	9
2. शक्ति								
विद्युत क्षमता का उत्पादन	मि. किलोवाट	9·4	8·1	14·9	10·5	17·8	11·3	15·1
3. खनिज								
कच्चा लोहा	वजन	5·9	7·5	23·8	20·6	18·7	8·3	23·6
कोयला	वजन	5·8	3·5	9·3	7·4	11·7	3·7	8·7
4. उद्योग								
इस्पात	वजन	10·6	5·0	27·8	12·1	24·3	16·5	12·1
मशीन यन्त्र	मूल्य	—	16·7	30·6	54·3	33·8	30·0	31·8
अल्यूमीनियम	वजन	24·6	12·8	31·3	19·9	34·2	31·2	35·2
नेत्रजन खाद	वजन	57·4	54·0	29·8	4·3	52·0	25·0	43·0
फास्फेट खाद	वजन	27·2	5·9	57·4	35·1	49·4	24·0	40·3
कागज तथा कागज के पुट्ठे	वजन	11·9	10·4	13·3	13·0	14·9	9·0	10·5
सीमेन्ट	वजन	12·2	11·2	23·1	11·3	10·3	5·3	12·4
सूती कपड़ा	लम्बाई	4·8	6·5	0·2	—	2·7	6·1	5·4
चीनी	वजन	6·0	10·7	3·9	9·4	3·1	1·8	5·5
साइकिलें	संख्या	39·8	39·0	14·3	15·8	13·8	7·7	6·1
विद्युत पंखे	संख्या	11·6	7·6	15·3	29·8	18·7	4·6	18·4

1	2	3	4	5	6	7	8	9
5. यातायात और संचार								
(i) रेलें								
यात्री	ट्रेन मील	—	2 7	2 8	4 5	n a	4 7	4 1
किराया	भार टनों में	—	4 5	7 3	6 1	9 8	5 6	8 1
(ii) सड़क वाहन	मील	—	4 6	3 1	5 1	3 0	4 0	3 6
(iii) जहाजरानी		—	4 2	13 4	12 3	7 8	12 9	13 5
(iv) डाक								
डाकघर	संख्या	—	8 8	6 4	7 0	4 1	5 9	1 2
टेलीफोन	संख्या	—	10 6	10 6	10 7	8 7	13 4	12 1
6. सामाजिक सेवाएँ								
(i) शिक्षा								
छात्र-संख्या								
प्राथमिक	छात्र	—	5 6	5 5	6 8	8 9	8 1	6 2
माध्यमिक		—	6 6	5 5	3 3	5 5	10 4	11 5
उच्च माध्यमिक, उच्चतर		—	9 2	7 9	9·3	12 7	12 1	11 4
(ii) स्वास्थ्य								
अस्पताल-शैया	संख्या	—	2 0	4 4	8 3	5 2	5·3	4 6
डॉक्टर	संख्या	—	3 0	1 5	1·2	3 0	4 0	8 1
परिवार नियोजन क्लीनिक	संख्या	—	n a.	78 0	62 0	37·8	47 0	35 8

n a.—not availble.
Source : *Paul Streeten and Michael Lipton* (Eds)—The Crisis of Indian Planning, pp 382-83

प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं की उपलब्धियों का मूल्यांकन
(An Evaluation of the Achievements of the First Three Five Year Plans)

प्रथम पचवर्षीय योजना मे राष्ट्रीय आय में 18% वृद्धि हुई। वृद्धि का लक्ष्य 11% रखा गया था। द्वितीय योजना मे राष्ट्रीय आय मे 25% वृद्धि के विरुद्ध वास्तविक वृद्धि केवल 20% हुई। तृतीय योजना मे 30% वृद्धि के लक्ष्य के स्थान पर राष्ट्रीय आय में 13 8% वृद्धि हुई। प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से प्रथम पंचवर्षीय योजना मे 11% वृद्धि हुई, द्वितीय योजना मे 18% वृद्धि के लक्ष्य के स्थान पर 11% वृद्धि हुई। सन् 1960-61 के मूल्यों पर प्रति व्यक्ति आय सन् 1960-61 मे 306·7 रुपये थी। यह बढ कर सन् 1964-65 मे 333 6 रुपये हो गई किन्तु सन् 1965-66 मे पुन. घट कर 307·3 रुपये रह गई। इससे स्पष्ट है कि तृतीय योजना के अन्त मे प्रति व्यक्ति आय लगभग वही रही है जो योजना के प्रारम्भ मे थी।

सन् 1950-51 से 1964-65 तक राष्ट्रीय आय में 65% वृद्धि हुई तथा प्रतिवर्ष चक्र-वृद्धि दर के हिसाब से लगभग 3 8% की वृद्धि हुई। प्रति व्यक्ति वास्तविक औसत दर लगभग 1 8% रही। इन अंकों की दृष्टि से यह कहना उपयुक्त नही है कि प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओं की 15 वर्षीय अवधि मे भारत मे आर्थिक विकास नही हुआ। किन्तु यह कहना सही है कि लक्ष्यों की तुलना मे उपलब्धि का स्तर कम रहा।

कृषि

प्रथम पचवर्षीय योजना मे कृषि के उत्पादन मे 18% वृद्धि हुई। खाद्यान्नों का उत्पादन 54·92 मिलियन टन से बढ कर 69·22 मिलियन टन हो गया। द्वितीय योजना के अन्तिम वर्ष 1960-61 मे खाद्यान्न का उत्पादन 82 0 मिलियन टन हो गया किन्तु तृतीय योजना में खाद्यान्नों का उत्पादन घट कर केवल 72 मिलियन टन ही रह गया। औसत वार्षिक-दर की दृष्टि से प्रथम पचवर्षीय योजना में खाद्यान्नों के उत्पादन में 3·4% औसत वार्षिक वृद्धि के लक्ष्य के स्थान पर 4·7% औसत वार्षिक वृद्धि हुई। किन्तु तृतीय योजना में 4 0% औसत वार्षिक वृद्धि के लक्ष्य के विरुद्ध केवल 2 0% की ही वृद्धि हुई। खाद्यान्नों के उत्पादन की सफलता तथा तृतीय पंचवर्षीय योजना की असफलता को प्रकट करते हैं। कुल मिलाकर खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धि मे वृद्धि हुई। सन् 1951 में खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धि जो 13·0 औंस थी वह सन् 1965 में बढ कर 16 8 औंस प्रति व्यक्ति हो गई।

तिलहन, गन्ना, जूट व कपास के उत्पादन की औसत वार्षिक वृद्धि-दर प्रथम योजना मे क्रमशः 1·9, 1·4, 4·9 व 6·6% रही। अधिकांश कृषि-उपजों की औसत वार्षिक वृद्धि-दर लक्ष्य से अधिक रही, किन्तु तृतीय योजना में जूट को छोड कर लगभग इन सभी कृषि-उपजों की औसत वार्षिक वृद्धि-दर कम हो गई। इस तथ्य को सम्बन्धित सारणी में देखा जा सकता है।

सिंचाई की दृष्टि से प्रथम तीन योजनाओ मे बडी व मध्यम श्रेणी की सिंचाई के अन्तर्गत 13 8 मिलियन एकड क्षेत्र व लघु सिंचाई के अन्तर्गत 31 6 मि एकड क्षेत्र की वृद्धि हुई। शक्ति के क्षेत्र मे सन् 1950-51 मे जो प्रस्थापित क्षमता (Installed Capac ty) 23 लाख किलोवाट थी वह 1965-66 मे बढ कर 102 लाख किलोवाट हो गई। विद्युत क्षमता मे इस प्रकार पाँच गुनी वृद्धि हुई।

सक्षेप मे, भारत की तीन पचवर्षीय योजनाओ के दौरान कृषिगत उत्पादन का सूचनांक काफी ऊँचा रहा। सन् 1950-51 मे 95 6 (1949-50=100) से सन् 1965-66 मे बढ कर 169 हो गया। इस तरह वृद्धि का प्रतिशत लगभग 65 रहा।

औद्योगिक क्षेत्र

कृषि की तुलना मे औद्योगिक क्षेत्र की उपलब्धियाँ प्रथम तीन योजनाओ की पन्द्रह वर्षीय अवधि मे अधिक हुई। औद्योगिक उत्पादन का सूचनांक सन् 1951 मे 100 से बढ कर सन् 1961 मे 194 हो गया। सन् 1955-56 मे यह सूचनांक 139 तथा औद्योगिक उत्पादन का यह सूचनांक सन् 1956 के 100 से बढ कर सन् 1965-66 मे 182 हो गया। उपभोग वस्तुओ के उत्पादन का मूल्य सन् 1950-51 मे (1960-61 के मूल्यो पर) जो 200 करोड रुपये था वह सन् 1965-66 मे बढ कर 488 करोड रुपये हो गया। मध्यवर्ती वस्तुओ का उत्पादन मूल्य 90 करोड रुपये से बढ कर 620 करोड रुपये तथा मशीनी उत्पादन का मूल्य 31 करोड रुपये से बढ कर 316 करोड रुपये हो गया। इस प्रकार सर्वाधिक वृद्धि मशीनी उत्पादन मे हुई।

प्रमुख उद्योगो की प्रगति का उल्लेख सारणी 8 व 9 मे किया जा चुका है। सारणी के अनुसार आर्थिक नियोजन के प्रथम 15 वर्षो मे डीजल इजन, मशीनी-औजार, नेत्रजन खाद, पैट्रोल पदार्थों, अल्यूमीनियम आदि के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई। अल्यूमीनियम का उत्पादन सन् 1950-51 मे केवल 4000 टन था। सन् 1965-66 मे बढ कर यह 62 1 हजार टन हो गया। डीजल इजन सन् 1950-51 मे 5 5 हजार टन थे उनका उत्पादन 1965 66 मे बढ कर 93 1 हजार हो गया। मशीनी औजारो का मूल्य सन् 1950-51 मे जो केवल 3 मिलियन था वह सन् 1965-66 मे बढ कर 794 मिलियन हो गया। सीमेन्ट के उत्पादन मे भी काफी वृद्धि हुई। सन् 1950-51 में इसका उत्पादन 2 7 मिलियन टन था। सन् 1965-66 में बढ कर यह 10 8 मिलियन टन हो गया। नेत्रजन खाद का उत्पादन सन् 1950-51 के 9 हजार टन के मुकाबले सन् 1965 66 में 232 हजार टन हो गया। आर्थिक नियोजन की इस पन्द्रह वर्षीय अवधि मे तैयार इस्पात का उत्पादन लगभग चार गुना बढा। डीजल इजनो की सख्या 17 गुना बढी। मशीनी औजारो म 98 गुना अधिक वृद्धि हुई। नाइट्रोजन खाद का उत्पादन 26 गुना अधिक होने लगा। पैट्रोल से बने पदार्थों का उत्पादन 47 गुना अधिक हुआ।

औसत वार्षिक विकास-दरो की दृष्टि से कृषि की तुलना मे औद्योगिक वस्तुओं

में वृद्धि की औसत वार्षिक दरें अपेक्षाकृत कहीं अधिक रही हैं। इन वार्षिक दरों को सम्बन्धित सारणी से देखा जा सकता है। मशीनों-यन्त्रों की औसत वार्षिक वृद्धि-दर प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त में 16·7% थी। तृतीय योजना के अन्त में यह 38% हो गई। अल्यूमीनियम की औसत वार्षिक विकास-दर सन् 1955-56 में 12·8% थी। सन् 1965-66 में बढ़ कर यह 21·2% हो गई। इसी प्रकार अन्य औद्योगिक मदों की स्थिति को आंका जा सकता है।

द्वितीय योजना मुख्य रूप से औद्योगीकरण की योजना थी। इस योजना की अवधि में लोहा एवं इस्पात के तीन कारखाने भिलाई (मध्य प्रदेश), रूरकेला (उड़ीसा) और दुर्गापुर (पश्चिम बंगाल) में स्थापित किए गए। इस योजना में चितरंजन, टाटा, लौह-उद्योग में विस्तार और इंजीनियरिंग उद्योगों का विकास किया गया। लघु उद्योगों के विकास पर 180 करोड़ रुपये व्यय किए गए तथा विभिन्न उद्योगों के विकास के लिए अखिल भारतीय बोर्डों की स्थापना हुई।

सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार

आर्थिक योजनाओं के माध्यम से भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का अत्यधिक विस्तार हुआ। अब देश में एक सुदृढ़ सार्वजनिक क्षेत्र की स्थिति विद्यमान है। सार्वजनिक क्षेत्र में औद्योगिक प्रतिष्ठानों की संख्या में हुई उत्तरोत्तर वृद्धि को सारणी-10 में निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

सारणी-10

सार्वजनिक प्रतिष्ठानों की स्थिति

प्रारम्भ में	प्रतिष्ठानों की संख्या	कुल विनियोग (मिलियन रुपये में)
प्रथम योजना	5	290
द्वितीय योजना	21	810
तृतीय योजना	48	9530
चतुर्थ योजना	85	39020

सन् 1971–72 तक सार्वजनिक प्रतिष्ठानों को कोई लाभ नहीं हुआ अपितु भारी हानि हुई। सन् 1971–72 में विशुद्ध हानि की राशि 191·5 मिलियन थी किन्तु सन् 1972–73 में 101 प्रतिष्ठानों में से 67 प्रतिष्ठानों से 1044·6 मिलियन रुपये का विशुद्ध लाभ हुआ और 74 प्रतिष्ठानों में 876·6 मिलियन रुपये की हानि हुई। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र का विशुद्ध लाभ 177·6 मिलियन रुपये रहा भारी उद्योग मंत्रालय के सन् 1973–74 के प्रतिवेदन के अनुसार 14 सार्वजनिक प्रतिष्ठानों ने सन् 1973–74 के वर्ष में 4090 मिलियन रुपये के उत्पादन मूल्य के मानदण्ड स्थापित किया। विकास-दर की दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्र की विकास-दर जहाँ 5·5% रही वहाँ निजी क्षेत्र की विकास-दर सन् 1971-72 में 1% और 1972-73 में 2·5% रही। औद्योगिक उत्पादन में सरकारी क्षेत्र का अंश सन् 1951 में केवल 2% था वह सन् 1970 में बढ़ कर 5% हो गया।

यातायात एवं संचार-क्षेत्र की उपलब्धियाँ

यातायात एवं संचार व्यवस्था का विकास औद्योगीकरण की आधारशिला है। अतः प्रथम योजना में रेल की 380 मील लम्बी नई लाइनें बिछाई गईं और रेल-ट्रैफिक में 24.8% की वृद्धि हुई। 636 मील लम्बी सड़कों का निर्माण हुआ। जहाजरानी की क्षमता 3.9 लाख जी. आर. टी. से बढ़ा कर 4.8 लाख जी. आर. टी. कर दी गई। सन् 1950–51 में रेल इंजनों का वार्षिक उत्पादन 27 से बढ़ कर सन् 1955–56 में 179 इंजन हो गया।

द्वितीय योजना में रेलों, सड़कों और जहाजरानी के विकास के लिए विस्तृत विकास-कार्य किए गए। 8000 मील लम्बी रेलवे लाइनों का सुधार, 1,300 मील लम्बी लाइनों का दोहरीकरण और 500 मील लम्बी लाइनों का विद्युतीकरण किया गया जिससे माल ढोने की क्षमता 11.6 करोड़ टन से बढ़ कर 15.6 मैट्रिक टन हो गई। रेलों के विकास पर 1,044 करोड़ रुपये व्यय हुआ। सड़क-विकास पर 224 करोड़ रुपये व्यय करने से कच्ची व पक्की सड़कों की लम्बाइयाँ क्रमशः 2,94,000 मील और 1,47,000 मील हो गई। इस प्रकार कच्ची एवं पक्की सड़कों में क्रमशः 37,000 मील और 22,000 मील की वृद्धि हुई। जहाजरानी की क्षमता 4.8 लाख जी. आर. टी. से बढ़ कर 8.6 लाख जी. आर. टी. हो गई।

तृतीय योजना में यातायात एवं संचार के लिए 1,486 करोड़ रुपये (कुल का 20%) निर्धारित किया गया जबकि वास्तविक व्यय 2110.7 करोड़ रुपए हुआ। अधिक व्यय का कारण सैनिक दृष्टि से भौतिक लक्ष्यों एवं कार्यक्रमों में परिवर्तन था। रेलों के माल ढोने की क्षमता 1450 लाख टन से बढ़ा कर 2540 लाख टन करने का (59% वृद्धि) लक्ष्य था, पर योजना के अन्त में यह क्षमता सिर्फ 2050 लाख टन ही थी। सड़कों के निर्माण में 292 करोड़ रुपये का व्यय कर 2,70,400 मील लम्बी कच्ची-पक्की सड़कें बनाई गईं। जहाजरानी की क्षमता 8.6 लाख टन से बढ़ कर 15.4 लाख टन कर दी गई। इस प्रकार लगभग 7 लाख जी. आर. टी. की वृद्धि हुई।

सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र की उपलब्धियाँ

सामाजिक सेवाओं पर प्रथम योजना में कुल योजना व्यय का 25% भाग व्यय किया गया। प्राथमिक शालाओं की संख्या 2.09 लाख से बढ़ कर 2.8 लाख हो गई। मेडिकल कॉलिजों की संख्या 30 से बढ़ कर 42 और विद्यार्थियों की संख्या 2,500 से बढ़ कर 3,500 हो गई। अस्पतालों की संख्या में 1,400 की वृद्धि हुई और डॉक्टरों की संख्या 59,000 से बढ़ कर 70,000 हो गई।

द्वितीय योजना में शिक्षा के क्षेत्र में विस्तार एवं विकास से छात्रों की संख्या 3.13 करोड़ से बढ़ कर 4.35 करोड़, चिकित्सालयों की संख्या 10,000 से बढ़ कर 1,26,000, मेडिकल कॉलिजों की संख्या 42 से बढ़ कर 57, परिवार नियोजन केन्द्रों की संख्या 147 से बढ़ कर 1649 कर दी गई। गृह निर्माण-कार्य पर 250 करोड़ रुपये व्यय किए गए जिससे आवास-गृहों की संख्या में 5 लाख की वृद्धि हुई। पिछड़े वर्गों में 4800 छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान की गई।

तृतीय योजना मे शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा पर 1300 करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान था पर वास्तविक व्यय 1355·5 करोड़ रुपये हुआ जिससे स्कूलों व शिक्षा प्राप्त करने वालों की संख्या 4 लाख और 4·5 करोड़ से बढ़ कर 5 लाख तथा 6·8 करोड़ हो गई। अस्पतालों की संख्या मे 2000 की वृद्धि हुई। परिवार-नियोजन केन्द्रों की संख्या 1649 से बढ़ कर 11,474 हो गई। मेडिकल कॉलेजों की संख्या में 30 की वृद्धि हुई जिससे मेडिकल कॉलेजो की कुल संख्या देश मे इस योजना के अन्त मे 87 हो गई।

बचत व विनियोग

भारत में आर्थिक-नियोजन के प्रथम 15 वर्षों मे बचत व विनियोग के क्षेत्र में रही स्थिति को सारणी-11 मे प्रदर्शित किया गया है—

सारणी-11

वर्ष	बचत-राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप मे	विनियोग-राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप मे
1950-51	5 53	5·44
1955-56	9 26	9 86
1960-61	9·45	12 88
1965-66	10·5	14 00

1965-66 के सूचतांक से स्पष्ट है कि विनियोगो के लगभग 3 5 प्रतिशत भाग के लिए हमे विदेशी साधनों पर निर्भर रहना पड़ा है। घरेलू बचतो मे वृद्धि आवश्यक विनियोगो के अनुरूप नहीं हुई।

इस प्रकार आर्थिक नियोजन की प्रथम 15 वर्षीय अवधि मे कृषि, उद्योग, यातायात और सचार, सामाजिक-सेवाएँ आदि क्षेत्रों मे उक्त उपलब्धियाँ रही। आर्थिक नियोजन की इस अवधि मे देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ और गतिमान हुई है तथा विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों की उपलब्धियाँ उल्लेखनीय रही हैं तथापि योजनाओ के लक्ष्यो और वास्तविक उपलब्धियो मे पर्याप्त अन्तर रहने, मुद्रा-स्फीति के कारण मूल्य-स्तर के असामान्य रूप से बढ़ने, बेरोजगारी मे निरन्तर वृद्धि, विदेश-विनिमय-सकट और उत्पादन के केन्द्रीकरण से सर्वसाधारण का जीवन-स्तर अभी तक भी बहुत निम्न स्तर पर है। कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था के होते हुए भी खाद्यान्नो के क्षेत्र मे आवश्यकता की पूर्ति आयातों से करनी पड़ती है। ऐसी स्थिति मे सर्वसाधारण के जीवन-स्तर को उठाने और गरीबी का उन्मूलन करने के लिए हमको योजना के क्रियान्विति पक्ष पर विशेष ध्यान देना होगा। प्रशासनिक-कुशलता एव ईमानदारी मे वृद्धि करनी होगी। गत वर्षों के योजनाबद्ध आर्थिक विकास ने भारत की अर्थव्यवस्था को स्वयं-स्फूर्त तथा आत्म-निर्भरता की स्थिति की ओर बढाया है, किन्तु आयोजन के फलस्वरूप कृषि, उद्योग आदि क्षेत्रो मे हुए रचनात्मक परिवर्तनों का लाभ उठाने के लिए हमको आर्थिक आयोजन के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना होगा।

4

विनियोग-वृद्धि के उपाय और उत्पादकता-सुधार के उपाय

(MEASURES TO INCREASE INVESTMENT AND MEASURES TO IMPROVE PRODUCTIVITY)

एक समाजवादी ढाँचे मे आर्थिक विकास की व्यूह-रचना (Strategy) मुख्यत तीन मान्यताओ पर निर्भर करती है। प्रथम मान्यता है कि अर्थव्यवस्था का विकास विनियोग दर पर निर्भर करता है और विनियोग की आवश्यक दर का निर्धारण राज्य का उत्तरदायित्व है। इस दृष्टि से भारत मे विनियोग दो प्रकार से बढाए जा सकते हैं—(1) निजी क्षेत्र के अवितरित लाभो के पुन विनियोजन द्वारा एव (2) सार्वजनिक नियोजन के माध्यम से। विनियोग-वृद्धि के लिए पहले उपाय पर बल देते हुए यदि निजी क्षेत्र के लाभो को पुन निजी क्षेत्र मे ही विनियोजित किया जाता है तो पूँजी और वित्तीय शक्ति उत्तरोत्तर निजी क्षेत्र मे केन्द्रित होती चली जाएगी। स्पष्ट है कि यह अर्थव्यवस्था के समाजवादी ढाँचे के प्रतिकूल होगा। अत भारत मे विनियोगो के सुधार के लिए और विनियोग-दर को बढाने के लिए सार्वजनिक नियोजन पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। निजी क्षेत्र की अपेक्षा सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार तथा इसकी लाभदायकता (Profitability) की ओर अधिक साधन लगाए जाने चाहिए। द्वितीय मान्यता विनियोग के अन्त -उद्योग वितरण (Inter-Industry Allocation of Investment) से सम्बन्धित है। विनियोगो के उचित उपयोग के लिए राज्य का विनियोगो के अन्त -उद्योग वितरण पर नियन्त्रण आवश्यक है। तृतीय मान्यता निजी और सार्वजनिक क्षेत्रो के मध्य विनियोगो की सरचना से सम्बन्धित है। इस मान्यता का आशय दोनो क्षेत्रो के लिए विनियोगो की प्रकृति के निर्धारण से है, अर्थात् कौनसा विनियोग किस क्षेत्र के अन्तर्गत किया जाना चाहिए।

योजना-काल मे विनियोग-दर

आयोजन से पूर्व भारत मे विनियोग सम्बन्धी स्थिति पूर्णत असन्तोषजनक थी। अत राष्ट्रीय आय में वृद्धि के लिए देश की विभिन्न योजनाओ मे विनियोग की दर में उत्तरोत्तर वृद्धि आवश्यक समझी गई। आयोजन के फलस्वरूप प्रथम योजना

की अवधि में विनियोग-दर की वृद्धि सन्तोषप्रद रही। विनियोग-दर तथा बचत-दर में बहुत कम अन्तर रहा। विनियोग-दर 8% के लगभग तथा बचत-दर 7% के रही। दूसरी योजना में भी विनियोग-दर की दृष्टि से स्थिति आशाजनक रही। यह दर 11 प्रतिशत के लगभग रही जो निर्धारित लक्ष्य के अनुरूप थी। किन्तु तृतीय योजना में विनियोग व बचत दर में प्रगति असन्तोषजनक रही। सन् 1965–66 में 14 से 15 प्रतिशत के लक्ष्य की तुलना में विनियोग-दर 13·4 प्रतिशत के लगभग रही। आगे की तीन वार्षिक योजनाओं में भी स्थिति उत्तरोत्तर असन्तोषजनक होती गई। विनियोग-दर निरन्तर गिरती गई। सन् 1966–67 में यह गिर कर 12 2 प्रतिशत, 1967–68 में 19 6 प्रतिशत और 1968–69 में 9 5 प्रतिशत रह गई। विनियोग-दर की इस गिरती हुई स्थिति पर चौथी योजना में विशेष ध्यान दिया गया। फलस्वरूप स्थिति में पुन. सुधार हुआ और विनियोग-दर बढ़ कर सन् 1970–71 में 10·5 प्रतिशत तथा सन् 1971–72 में 11 5 प्रतिशत के लगभग हो गई।

यदि आँकड़ों से हटकर भी देखें तो देश में उत्पादकता और मुद्रा-प्रसार की जो स्थिति है उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि राष्ट्रीय उत्पादन अपेक्षित स्तर से बहुत कम है, और इसके लिए विनियोग की असन्तोषजनक स्थिति भी एक सीमा तक उत्तरदायी मानी जा सकती है। अत. आवश्यकता इस बात की है कि एक ओर विनियोजित पूँजी की उत्पादकता में वृद्धि की जानी चाहिए तथा दूसरी ओर उत्पादन में वृद्धि के लिए विनियोगों की दशा में ऐसे प्रयत्न किए जाने चाहिए जिनसे विनियोगों में वृद्धि हो सके। इससे पूर्व कि हम विनियोगों में वृद्धि के लिए सम्भावित उपायों पर विचार करें, उन तकनीकियों की जानकारी कर लेना उपयुक्त है जिनके द्वारा देश की योजनाओं के लिए बचतों को विनियोग-क्षेत्रों में आकर्षित करने के प्रयत्न किए गए। योजनाओं के विनियोग-विश्लेषण से स्पष्ट है कि बचतों को प्राप्त करने के लिए निम्न तीन तकनीकियाँ अपनाई गई—

(1) प्रत्यक्ष हस्तान्तरण विधि (Technique of Direct Transfer)
(2) अप्रत्यक्ष हस्तान्तरण विधि (Technique of Indirect Transfer)
(3) अनिवार्य हस्तान्तरण विधि (Technique of Forced Transfer)

प्रत्यक्ष हस्तान्तरण—बचतकर्त्ताओं से साधनों के संग्रह के लिए पहली विधि जो योजनाओं में प्रयुक्त हुई वह प्रत्यक्ष हस्तान्तरण की विधि थी। इस विधि के अन्तर्गत किए गए प्रयत्नों का मूल उद्देश्य बचतकर्त्ताओं को वित्तीय सम्पत्तियों के क्रय के लिए प्रेरित करना था। राष्ट्रीय बचत प्रमाण-पत्र, डाकघर जमा योजनाएँ आदि शुरू की गई। इस विधि के अन्तर्गत विशेष रूप से यह प्रयत्न किया गया कि बचतों का उपयोग उत्पादक-क्षेत्रों (Productive Channels) में हो तथा निजी क्षेत्र की अपेक्षा लोगों की बचतें सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवाहित हों।

अप्रत्यक्ष हस्तान्तरण—जनता की बचतों को विनियोजन के लिए प्रोत्साहित करने के लिए दूसरी विधि अप्रत्यक्ष हस्तान्तरण की अपनाई गई। इस विधि के

अन्तर्गत कुछ राजकोषीय तरीकों (Fiscal Measures) को प्रयोग में लाया गया। इन तरीकों के अन्तर्गत कराधान, अनिवार्य जमा आदि के माध्यम से बचतों को विनियोग के लिए उपलब्ध कराने के प्रयत्न हुए तथा साथ ही जीवन-बीमा भुगतान, प्रोवीडेण्ट-फंड आदि (Contractual Savings) के परिमाण को बढ़ाने के प्रयत्न किए गए। इन सब प्रयत्नों का मुख्य लक्ष्य उपभोग्य आय (Disposal Income) को कम करके बचतों का सृजन करना तथा इन बचतों को अनिवार्य एवं अर्द्ध-अनिवार्य तरीकों के माध्यम से सरकारी क्षेत्र पर पहुँचाना था। द्वितीय योजना में इस सम्बन्ध में स्पष्ट किया गया कि, पहला अनिवार्य बिन्दु यह है कि क्या निजी बचतें, निजी विनियोगों की आवश्यकता को पूरा करने के उपरान्त, इतनी अधिक हो सकती हैं कि राज्य की सम्भावित आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। बचतों में पर्याप्तता की स्थिति तभी सम्भव है जबकि उपभोग को आवश्यक प्रतिबन्धों में रखा जाए। करों के रूप में या सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के लाभों के रूप में जितनी कम मात्रा में बचतें प्राप्त होंगी, उतनी ही अधिक आवश्यकता उपभोग को नियन्त्रित रखने की महसूस की जाएगी। परिणामस्वरूप उपभोग पर नियन्त्रण रखने के लिए अन्य तरीके काम में लिए जाएँगे।

अनिवार्य हस्तान्तरण—बचतों को विनियोजन के लिए उपलब्ध कराने की तीसरी विधि अनिवार्य हस्तान्तरण की प्रयोग में ली गई। यदि सरकारी प्रतिभूतियों की सीधी खरीद के द्वारा निजी बचतें सार्वजनिक क्षेत्र के लिए प्राप्त नहीं होती हैं तो बचतों की उपलब्धि के लिए स्वीकृत मात्रा से अधिक मात्रा में निजी क्षेत्र से बैंक नकदी तथा जमाओं को अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त करते हैं।

विनियोगों में वृद्धि के लिए उपरोक्त सैद्धान्तिक तकनीकियों के अतिरिक्त समय पर सरकार द्वारा तथा रिजर्व बैंक द्वारा राजकोषीय और मौद्रिक तरीके घोषित किए जाते हैं। साख, ऋण, कर आदि नीतियों में संशोधन किए जाते हैं, बैंक-दर को घटाया-बढ़ाया जाता है। अनेक प्रकार के नए कर लगाए जाते हैं और पुरानी कर-व्यवस्था में सुधार किए जाते हैं। बैंक-दर, खुले बाजार की क्रियाएँ, नकद कोष अनुपात में परिवर्तन आदि विनियोग तथा बचतों को प्रभावित करने वाली विधियाँ तथा कर, ऋण एवं व्यय-नीति सम्बन्धी राजकोषीय तरीकों से प्राय सभी परिचित हैं। इन नीति के सैद्धान्तिक पहलुओं में जाकर हमको यह मानना लेते हुए कि विनियोग का वर्तमान स्तर देश की आवश्यकताओं से बहुत कम है, उन उपायों को देखना चाहिए जिनमें भविष्य में विनियोग की दर में देश की आवश्यकताओं के अनुरूप वृद्धि की जा सके।

विनियोग-वृद्धि के उपाय

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में विनियोगों की वृद्धि के लिए साधन-संग्रह के कुछ सुझाव दिए गए थे जो न्यूनाधिक हेर-फेर के साथ वर्तमान परिस्थितियों में भी अपना महत्व रखते हैं—

1 सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के अन्तर्गत सार्वजनिक उपयोगिता प्रतिष्ठान और

राजकीय क्षेत्र के अन्य व्यावसायिक प्रतिष्ठान लिए जा सकते हैं। नियोजन काल में सार्वजनिक क्षेत्र का योजनाओं में निरन्तर विस्तार किया गया है और लगभग 5 हजार करोड़ से भी अधिक की राशि इस क्षेत्र में विनियोजित की गई है किन्तु इस भारी विनियोजन के यथेष्ट लाभ प्राप्त नहीं हो पा रहे हैं। सार्वजनिक क्षेत्र से मिलने वाले लाभ विनियोग-योग्य साधन-संग्रह के लिए सर्वाधिक महत्त्व रखते हैं। सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के सम्बन्ध में नियुक्त कुछ समितियों ने इन उपक्रमों के लिए निश्चित प्रतिफल दर की सिफारिश की है।

2 जिन क्षेत्रों पर अतिरिक्त साधन जुटाने के लिए विशेष रूप से ध्यान दिया जा सकता है, उनमें राजकीय विद्युत संस्थानों का प्रमुख स्थान है। वैंकट रमन समिति की सिफारिशों के अनुसार विद्युत् संस्थानों से कम से कम 11% की दर से प्रतिफल मिलना चाहिए। जहाँ यह दर 11% से कम है, वहाँ इसे कम से कम 11% तक बढ़ाया जाना चाहिए। धीरे-धीरे शुल्क में वृद्धि अपेक्षित है तथापि बिजली दरों को इस प्रकार मिश्रित करना चाहिए जिससे आर्थिक दृष्टि से अच्छी स्थिति वाले उपभोक्ताओं को अधिक दाम चुकाना पड़े।

3. सिंचाई परियोजनाओं के सम्बन्ध में नियुक्त निजलिंगप्पा समिति की यह सिफारिश भी विनियोग-वृद्धि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि सिंचाई की दरें सिंचित फसलों से कृषकों को प्राप्त अतिरिक्त विशुद्ध लाभ के 25–40% पर निश्चित की जानी चाहिए। कृषकों के उस वर्ग के साधन जुटाने के प्रयास बढ़ाने होंगे जिन्हें सिंचाई योजनाओं से प्रत्यक्ष लाभ मिलता है।

4. चतुर्थ योजना में अतिरिक्त साधन व्यवस्था की दृष्टि से इस बात को भी महत्त्वपूर्ण समझा गया कि सार्वजनिक उपयोग के लिए सचालित उद्योगों को छोड़कर सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक और वाणिज्य प्रतिष्ठानों में लगी पूँजी पर होने वाली आय को धीरे-धीरे बढ़ा कर 15% करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

5. साधनों को बढ़ाने तथा साधनों में वृद्धि से विनियोगों का विस्तार करने का एक बड़ा उपाय करारोपण सम्बन्धी राजकोषीय साधन है। कृषि-क्षेत्र अभी तक कर-मुक्त है। यद्यपि इस क्षेत्र में योजना-काल के दौरान अरबों रुपयों का विनियोजन किया गया है और इस क्षेत्र में आय में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। अनेक बड़े किसान समृद्ध पूँजीपति बन गए हैं। अतः बढ़ती हुई आय-विषमताओं को रोकने तथा विनियोगों के लिए आवश्यक धन जुटाने के लिए कृषि-आय पर कर लगाया जाना चाहिए। वस्तुओं पर भी करारोपण की इस रूप में प्रभावशाली व्यवस्था होनी चाहिए अथवा अप्रत्यक्ष करों का ढाँचा इस प्रकार का होना चाहिए कि प्रदर्शनकारी उपभोग (Conspicuous Consumption) या विलासी उपभोग (Luxury Consumption) प्रतिबन्धित रहे। बिक्री कर की दरों में पायी जाने वाली विभिन्न राज्यों में विषमता को दूर किया जाना चाहिए। बिक्री-दरों में समानता लाने से भी एक बड़ी राशि प्राप्त की जाना सम्भव है। शहरी सम्पत्ति के मूल्यों में अनार्जित वृद्धि (Unearned increase) पर कर लगाया जाना चाहिए तथा आय और धन

पर करो को अधिक प्रभावकारी बनाया जाना चाहिए। मृत्यु-कर तथा पूंजी लाभ करो को शक्ति से क्रियाशील बनाया जाना चाहिए।

6 करो के सम्बन्ध मे करारोपण की अपेक्षा करो की चोरी (Tax evasion) को रोकने के प्रयत्न अधिक आवश्यक है।

7. ग्रामीण बचतो से विनियोग के लिए बहुत बडी राशि प्राप्त हो सकती है। ग्रामीण बचत को प्राप्त करने के लिए ग्रामीण ऋण-पत्र निर्गमित किए जाने चाहिए। इसके अतिरिक्त ग्रामीण जनता को ग्रामीण उद्योग, सिंचाई कार्यक्रम, ग्राम-विद्युतीकरण, आवास एव पेय-जल की प्रभावी व्यवस्था द्वारा प्रत्यक्ष लाभ पहुँचा कर उनसे समुचित मात्रा मे धन-सग्रह किए जाने पर बल दिया जाना चाहिए।

8 काले धन की वृद्धि की रोकथाम करने और काले धन को बाहर निकलवा कर विनियोग के लिए प्रयुक्त करने की नीतियो पर पुनर्विचार आवश्यक है। ऐसा करते हुए इन उपायो पर विशेष बल देना होगा—तस्करी की रोकथाम, महत्त्वपूर्ण कृषि जिन्सो की सप्लाई पर और अधिक मात्रा मे सामाजिक नियन्त्रण, उचित शहरी भूमि सम्बन्धी नीति पर अमल आदि। अनुमान है कि देश मे लगभग उसी मात्रा म लोगो के पास काला धन छिपा हुआ है जिस मात्रा मे देश मे मुद्रा प्रचलन मे है। अत मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियो पर पुनर्विचार करके उन्हे इस रूप मे प्रभावी बनाया जाना चाहिए कि काले धन मे वृद्धि सम्भव न रहे। साथ ही काले धन को बाहर निकालने के लिए कठोर वैधानिक उपायो का आश्रय लिया जाना चाहिए। इससे विनियोगो के लिए एक बडी राशि प्राप्त की जा सकती है।

9 वित्त-व्यवस्था मे घाटे को इस स्तर तक कम किया जाना चाहिए कि जनता के पास धन वृद्धि होने से वह अर्थ-व्यवस्था की मांगो से अधिक नही बढे ताकि योजना के लिए धन की व्यवस्था करने मे मुद्रा-स्फीति की स्थिति न आए।

10 राज सहायता पर पुनर्विचार किया जाकर इसमे यथासम्भव कमी से भी विनियोग-वृद्धि के लिए भारी राशि प्राप्त की जा सकती है।

11 निर्यात मे तेजी से वृद्धि और आयात प्रतिस्थापन की दिशा मे कमजोर बिन्दुओ को दूर किया जाना चाहिए।

12 कुछ विदेशी सहायता की राशि को यथाशीघ्र इस स्तर तक घटाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए कि केवल ऋणो के भुगतान के लिए आवश्यक राशि ही विदेशी सहायता के रूप म स्वीकार की जाए।

किसी देश के आर्थिक नियोजन मे विनियोग की क्या स्थिति होगी, यह बहुत कुछ उस देश के जीवन-स्तर, उपभोक्ताओ की पसन्द, जनसख्या, श्रम-शक्ति, योजना के उद्देश्य आदि पर निर्भर करता है। योजनाओ के लिए विनियोग-वृद्धि की दृष्टि से हमे कई दिशाओ मे एक साथ काम करना होगा लोगो की बढती आय का एक बडा भाग विकास-कार्यो के लिए सग्रहीत करना होगा और घरेलू बचत की दर मे पर्याप्त वृद्धि करनी होगी। भारत मे घरेलू बचत-दर मे वृद्धि बहुत ही महत्त्वपूर्ण है क्योकि 88% विनियोगो की पूर्ति घरेलू बचतो मे की जाती है। सकल राष्ट्रीय उत्पादन

(GNP) के रूप में सकल घरेलू पूँजी-संग्रह सन् 1974–75, 1975–76 और 1976–77 में क्रमशः 19.1, 19.3 एवं 19.3 था। यह नितान्त आवश्यक है कि बचत-उपायों की क्रियान्विति के लिए प्रशासनिक यन्त्र को अधिकाधिक कुशल और सक्षम बनाना होगा। अनुत्पादक व्यय पर नियन्त्रण लगाना होगा तथा उत्पादन की उत्पादकता में वृद्धि करनी होगी। एक ओर उत्पादकता-वृद्धि के प्रयत्न तथा दूसरी ओर अनुत्पादक व्यय पर नियन्त्रण से ही योजनाओं के लिए आवश्यक विनियोग की पूर्ति सम्भव होगी। यह भी आवश्यक है कि विनियोग की प्रकृति का निर्धारण, व्यक्तिगत न होकर, नियोजित और सामूहिक हो, क्योंकि तभी उस विनियोग से अधिकतम उत्पादन सम्भव है। व्यक्तिगत निर्णय से अधिकतम उत्पादन इसलिए नहीं हो सकता क्योंकि—(1) निजी विनियोगी अपने विनियोग से निजी दृष्टिकोण के अनुसार तो सीमान्त उत्पादन अधिकतम कर सकता है पर समग्र समाज के दृष्टिकोण से वह उसे अधिकतम नहीं कर सकता, (2) निजी विनियोग में लिए गए व्यक्तिगत निर्णय सीमित ज्ञान पर आधारित होते हैं और त्रुटिपूर्ण विनियोग के कुफल सारे समाज को सहने पड़ सकते हैं, (3) पूँजी की अविभाज्यता के कारण विनियोग क्रियाओं में होने वाले विशाल परिवर्तन व्यक्तिगत विनियोग के लिए उपयुक्त नहीं हो सकते।

भारत जैसी विकासशील अर्थ-व्यवस्था में विनियोग के सामान्य नियमों में विशेष महत्त्वपूर्ण हैं—

1. विनियोग की प्रत्येक इकाई से राष्ट्रीय आय में अधिकतम योगदान होना चाहिए, अर्थात् विनियोग ऐसा होना चाहिए जिससे अधिकतम उत्पादन सम्भव हो सके।

2. विनियोग इस तरह नियोजित होना चाहिए कि आन्तरिक साधनों का अधिकाधिक उपयोग और विदेशी प्रसाधनों का कम से कम उपयोग हो।

3. विनियोग ऐसे क्षेत्रों में होना चाहिए कि सीमित साधनों की प्रति इकाई की विनियोग से श्रम-शक्ति और दूसरे संसाधनों में अधिकतम सुधार हो सके।

4. विनियोग द्वारा देश में उपार्जित वास्तविक आय के वितरण में सुधार होना चाहिए और आर्थिक विषमता की खाई अधिकाधिक घटनी चाहिए।

5. विनियोग ऐसी प्रायोजनाओं में किया जाना चाहिए जिनसे राष्ट्र की वास्तविक आय में वृद्धि हो।

6. श्रम-बाहुल्य अर्थ-व्यवस्था में विनियोग श्रम-प्रधान प्रयोजनाओं में किया जाना चाहिए अर्थात् श्रम का अधिक उपयोग होना चाहिए और पूँजी का कम। दूसरी ओर श्रम के अभाव की स्थिति में विनियोग पूँजी-प्रधान प्रायोजनाओं में किया जाना चाहिए।

7. विनियोग के लिए प्रायोजनाओं की प्राथमिकता के प्रश्नों पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। प्राथमिकताओं का निर्धारण इस दृष्टिकोण से होना चाहिए कि देश शीघ्रातिशीघ्र आत्म निर्भरता की ओर बढ़ सके।

उत्पादकता-सुधार के उपाय[1]
(Measures to Improve Productivity)

भारत में उत्पादकता आन्दोलन का इतिहास लगभग 17 वर्ष पुराना है किन्तु इसका प्रारम्भ अमेरिका में कई दशकों पहले हो चुका था। द्वितीय महायुद्ध के अन्त में उत्पादकता की विचारधारा को पश्चिमी जगत में व्यापक स्वीकृति मिली। जापान ने अमेरिका में जन्मी उत्पादकता की विचारधारा का पूरा लाभ उठाया। इसने अपने सभी स्तरों के औद्योगिक कर्मचारियों को अमेरिका भेजा ताकि वे वहाँ के औद्योगिक संयन्त्रों से अनुभव प्राप्त कर सकें तथा अपने देश में संयन्त्रों की कार्य प्रणाली में क्रान्ति ला सकें। भारत ने भी इनका अनुसरण किया और एक शिष्ट-मण्डल जापान यह ज्ञात करने भेजा कि किस प्रकार उस देश ने अपनी उत्पादकता में शीघ्र वृद्धि की है। शिष्ट-मण्डल के प्रतिवेदन के आधार पर भारत में सन् 1958 में राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् (National Productiv ty Coun.il=NPC) की स्थापना की गई। विख्यात अर्थशास्त्री पी एस लोकनाथन् इसके अध्यक्ष मनोनीत किए गए।

उत्पादकता का अर्थ

भारतीय नियोजन के सन्दर्भ में उत्पादकता-सुधार के उपायों पर आने से पूर्व उत्पादकता का अर्थ समझ लेना उपयुक्त है। उत्पादकता से आशय केवल बढ़े हुए उत्पादन से ही नहीं है और न ही श्रमिक की उत्पादकता से सम्बन्धित है। वास्तव में उत्पादकता का अर्थ कम से कम उपकरणों के साथ उत्पादन बढ़ाने की एक विधि के रूप में लगाया जाना उपयुक्त है। यह पूँजी के विनियोग, बिजली और ईंधन की खपत, वस्तु-सूची, वित्त तथा अन्य साधनों के रूप में मापी जा सकती है।

प्राय उत्पादकता, आदा व प्रदा के अनुपात के रूप में परिभाषित की जाती है। उत्पादकता के उच्च स्तर के लिए लागत को कम करने तथा उत्पादन को बढ़ाने पर बल दिया जाता है। न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन साधनों के कुशल उपयोग (Efficient ut lization) पर निर्भर करता है। किन्तु लागत की कमी व उत्पादन की वृद्धि वस्तु की किस्म को गिरा कर की जानी चाहिए। उत्पादकता के अन्तर्गत कम लागत तथा अधिक उत्पादक के अतिरिक्त माल की श्रेष्ठ किस्म का भी ध्यान रखा जाता है। उत्पादकता की इस अवधारणा में भी एक कमी रह जाती है। वह यह है कि उत्पादकता की उपरोक्त परिभाषा वितरण पक्ष की व्याख्या नहीं करती है। एक विकासशील देश में उत्पादकता-वृद्धि का परीक्षण उन वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन के रूप में किया जाना चाहिए, जो सामान्य व्यक्ति के माँग-ढाँचे से अधिक अनुकूल होती हैं। उत्पादकता के विश्लेषण के अन्तर्गत इस प्रकार की वस्तुओं पर लगे साधन तथा इन साधनों के कुशलतम उपयोग को लिया जाना

1 (a) योजना, 7 सितम्बर, 1972—विकास के दो दशक (डॉ. बी बी भट्ट)
(b) योजना, फरवरी, 1971—उत्पादिता-विशेषांक
(c) India 1973, India 1974, India 1976.
(d) योजना, 13 फरवरी, 1972 (उत्पादिता के सिद्धान्त)

चाहिए। उत्पादकता और उत्पादन दो भिन्न तत्त्व हैं। इन्हे समान अर्थों मे प्रयुक्त नही किया जाना चाहिए। उत्पादकता तथा उत्पादन मे एक महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि उत्पादन शब्द वस्तुओ के उत्पादन की भौतिक मात्रा के लिए प्रयुक्त होता है जबकि उत्पादकता शब्द का प्रयोग साधनो के उपयोग मे दिखाई गई कुशलता तथा श्रेष्ठता के लिए किया जाता है।

उत्पादकता का विचार उत्पादन-साधनों तथा आर्थिक विकास के कृषि, उद्योग आदि क्षेत्रो के सन्दर्भ मे किया जाता है। उत्पादन के साधन-श्रम का प्रति इकाई उत्पादन-श्रम की उत्पादकता तथा प्रति इकाई पूंजी का उत्पादन पूंजी की उत्पादकता कहलाता है। प्रति एकड अथवा प्रति हैक्टेयर कृषि के उत्पादन को कृषि की उत्पादकता कहा जा सकता है। इसी प्रकार प्रति इकाई पूंजी के रूप मे अथवा प्रति मानव घण्टे (Man Hour) के रूप मे औद्योगिक उत्पादन को प्राय औद्योगिक उत्पादकता कहते हैं।

राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के कार्यकारी निदेशक श्री डी जी आर दालवी ने 'उत्पादकता' की अवधारणा के अर्थ और महत्त्व को 11 अगस्त, 1977 के अपने एक लेख मे इस प्रकार व्यक्त किया है—

"भारत के समान, विकासशील अर्थ-व्यवस्थाओ मे सबमे बडी बाधा–साधनो का स्वच्छ समुचित उपयोग करने की असमर्थता है। इसी के साथ-साथ विदेशी सहायता पर बहुत अधिक निर्भरता किसी भी राष्ट्र के लिए हितकर नही हो सकती। इस सन्दर्भ मे उत्पादकता का महत्त्व बढ जाता है क्योकि उत्पादकता और आर्थिक उन्नति मे सीधा सम्बन्ध है।"

"उत्पादकता का विचार इतना सरल नही है जितना यह प्रतीत होता है। इस पर बहुत विचार-विमर्श किया जा चुका है और भिन्न-भिन्न लोगों को यह भिन्न-भिन्न रूपों का नजर आता है। अर्थशास्त्री उत्पादकता के बारे मे उन उत्पादन कार्यों के सन्दर्भ मे सोचते है जो पूंजी और श्रम तथा अन्य साधनो के बीच प्रतिस्थापन के निर्माण की सम्भावनाओ को निर्दिष्ट करते हैं, जबकि उत्पादकता और उत्पादकता को मापने के सम्बन्ध मे इंजीनियारो के विचार और तरीके बिल्कुल भिन्न हैं। प्रबन्धक उत्पादकता को आयोजना, सगठन, क्रियान्वयन, समन्वयन, उत्प्रेरणा, उत्पादन, विपणन, वित्त-प्रधान, कार्मिक, लेखा, अनुसधान और विकास के दृष्टिकोण से देखते हैं। संगठित श्रमिक वर्ग उत्पादकता को मानव-घण्टो से समस्त उत्पादन के मूल्य को कार्य के विभाजन के रूप में देखता है।"

"मापने की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि उत्पादकता उत्पादन कार्य में प्रयुक्त संसाधनों और उससे माल तथा सेवाओ के रूप मे हुए उत्पादन के बीच का अनुपात है। यद्यपि उत्पादन की मात्रा का पक्ष महत्त्वपूर्ण है, यदि स्तर को भी बहतर बना दिया जाए, तो इससे उत्पादकता की स्थिति और अच्छी होगी। राज्यों के बढते कल्याणकारी रुझान ने उत्पादकता के क्षेत्र को और विस्तृत कर दिया है। वितरण-न्याय को भी उत्पादकता में शामिल कर दिया गया है। इसका तात्पर्य यह

है कि उत्पादकता मे वृद्धि का लाभ उत्पादकता से सम्बद्ध सभी लोगो—नियोजको, श्रमिको और सामान्य रूप से समाज के सभी वर्गों को मिलना चाहिए।"

"उत्पादकता—द्वितीय विश्व-युद्ध समाप्त होने के बाद वाले वर्षों मे प्रकाश मे आई। मार्शल योजना के माध्यम से जब सन् 1950 मे यूरोपीय उत्पादकता आन्दोलन चलाया गया तो यूरोप निवासियो के मस्तिष्क मे यह विचार आया कि रहन-सहन के स्तर को ऊपर उठाने मे सर्वतोमुखी उत्पादकता बहुत महत्त्वपूर्ण तत्व है।"

"जापान मे सन् 1953 मे एक उत्पादकता परिषद् की स्थापना हुई जिसे बाद मे जापान उत्पादकता केन्द्र के रूप मे पुनर्गठित कर दिया गया। कुछ ही वर्षों मे उत्पादकता अभियान की सहायता से जापान जिस प्रकार युद्ध-पूर्व उत्पादन के स्तर पर पहुँच गया, उससे एशियाई क्षेत्र के अनेक देशो को राष्ट्रीय उत्पादकता सगठनो की स्थापना पर विचार करने के लिए प्रोत्साहन मिला।"

भारतीय राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् द्वारा उत्पादकता वृद्धि के प्रयत्न

राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् श्रमिको, मालिको और सरकार के प्रतिनिधियो का एक ऐसा स्वायत्त सगठन है, जिसका उद्देश्य देशभर मे उत्पादकता की चेतना उत्पन्न करना और उत्पादकता के जरिए देश को प्रगति के पथ पर ले जाना है। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् का मुख्य कार्यालय नई दिल्ली मे है और इसके आठ क्षेत्रीय निदेशालय बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, बगलौर, कानपुर, दिल्ली, अहमदाबाद और चण्डीगढ जैसे महत्त्वपूर्ण औद्योगिक नगरो मे स्थित है। इसके अतिरिक्त 49 स्थानीय उत्पादकता परिषदे भी हैं, जिनके निकट सहयोग से उत्पादकता-कार्यक्रमों का सचालन किया जाता है।

राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की स्थापना सन् 1958 मे हुई थी और तब से अब तक उसका उद्देश्य रहा है कि कैसे उत्पादकता को राष्ट्रीय जीवन का अभिन्न अग बना दिया जाए, ताकि लोगो के रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठे और देश खुशहाल हो। प्रबन्ध तथा उत्पादकता के क्षेत्रो मे गत 16 वर्षों से राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् ने अपनी सेवाओ को विकसित किया है और उन्हे एक मानक रूप प्रदान किया है। इन क्षेत्रो मे परिषद् प्रशिक्षण तथा परामर्श सेवाएँ देती रही है। इसके अलावा इसने नए क्षेत्रो में अपनी उत्पादकता तथा विशिष्ट सेवाओ को विकसित करने का प्रयास किया है। कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्र निम्नलिखित हैं—

(1) 'ईंधन क्षमता' मे दो वर्ष का प्रशिक्षण-कार्यक्रम।
(2) 'आचरण विज्ञान' मे दो वर्ष का प्रशिक्षण-कार्यक्रम।
(3) 'वित्तीय प्रबन्ध' मे दो वर्ष का प्रशिक्षण-कार्यक्रम।
(4) (क) निगमित योजना, (ख) उद्देश्यो के अनुसार प्रबन्ध, (ग) सम्भाव्यता अध्ययन, (घ) यातायात उद्योग, (ङ) नागरिक पूर्ति निगम, तथा (च) अस्पतालों मे विशिष्ट सेवाओ के विकास के लिए विशेषज्ञो के दलो का गठन।

(5) औद्योगिक स्नेहन, कम्पन तथा ध्वनि, औद्योगिक विद्युत यन्त्र, संयन्त्र, रख-रखाव उपकरण तथा प्रक्रिया-नियन्त्रण मे औद्योगिकी सेवाओं का विकास आदि विषयों मे कई प्रशिक्षण कार्यक्रमो का आयोजन।

श्री वी के सिंघल, निदेशक, राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद्, भोपाल ने परिषद् की 20वी स्थापना दिवस के अवसर पर 14 फरवरी, 1977 को अपने एक लेख मे राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के मुख्य क्रियाकलापो का वर्णन इस प्रकार किया है :—

"यह परिषद् राष्ट्र का ध्यान ऊर्जा के सरक्षण, सामग्रियो के सरक्षण और सयत्र, मशीनरी तथा उपकरण के रूप मे विद्यमान सामग्रीगत परिसम्पत्तियो के अनुरक्षण जैसे महत्त्वपूर्ण विषयो पर केन्द्रित करके आय तथा मूल्यो, राष्ट्रीय वेतन नीति और बोनस को उत्पादकता के साथ जोडने से सम्बन्धित जटिल विषयो के बोध का निर्माण करके,उद्योग मे श्रमिको की भागीदारी को बढावा देने के लिए तथा उनके तकनीकी कौशलो को बढाने के लिए विशाल पैमाने पर कार्यक्रमो का सगठन करके और उत्पादकता को अवरुद्ध कर देने वाले नाजुक क्षेत्रो मे प्रशिक्षण तथा परामर्श सेवाएँ प्रदान करके अर्थ-व्यवस्था के मूल क्षेत्रो मे उत्पादकता के सवर्द्धन के कार्य मे प्रभावी ढग से योगदान देती रही है।"

मुख्य क्रियाकलाप—"राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के मुख्य क्रियाकलाप लोहा तथा इस्पात उद्योग, कपडा उद्योग, उर्वरक तथा सीमेंट उद्योगो की उत्पादकता प्रवृत्ति अध्ययनो से सम्बन्धित है। प्रौद्योगिकी के मूल क्षेत्र मे, विशेषत ईंधन के दक्षतापूर्ण उपयोग तथा सरक्षण के क्षेत्र मे राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् ने तकनीकी विकास महानिदेशालय, भारतीय तेल निगम तथा राष्ट्रीय विज्ञान एव प्रौद्योगिकी समिति के सहयोग से भट्टी तेल के उपयोग मे मितव्ययता लाने के लिए अनेक अध्ययन किए। पैट्रोलियम उत्पादों के सरक्षण से सम्बन्धित सारे क्रियाकलापो के समन्वयन के लिए शासन ने पैट्रोलियम सरक्षण कार्यवाही समूह का गठन किया है। जिसमे राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् प्रमुख भूमिका निर्वाह कर रही है।"

"राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की सर्वेक्षण एव कार्यान्वियन परिषद् के 20वें स्थापना दिवस तक1400 से अधिक उद्योगो को प्रबन्ध तथा पर्यवेक्षी विकास, सगठन, विश्लेषण तथा विकास, वित्त विपणन उत्पादन तथा सम्बद्ध क्षेत्र, प्रौद्योगिकी उन्मुखी सेवाएँ तथा कृषि के फसल कटाई पश्चात् किए जाने वाले कार्य जैसे विविध प्रकार के उत्पादकता सम्बन्धी विषयो को लाभ पहुँचा है। लघु उद्योग क्षेत्र के लिए भी राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् अपनी सेवाएँ नियमित आधार पर प्रदान कर रही है। कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश तथा हरियाणा मे विशेष उत्पादकता कोष्ठ कार्यरत है और कई अन्य राज्यों में नए कोष्ठो के शीघ्र आरम्भ किए जाने की आशा है।"

अन्य योजनाएँ—"राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की अन्य योजनाएँ पर्यवेक्षी विकास, श्रमिक सगठन के पदाधिकारियो तथा श्रमिकों के लिए उत्पादकता कार्यक्रम, व्यावहारिक अनुसधान परियोजनाओ,,पुस्तकालय तथा प्रलेखीकरण से सम्बन्धित हैं। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के प्रकाशनों में 'प्रोडक्टिविटी' नामक एक त्रैमासिक

पत्रिका, जो कि एशियाई क्षेत्र मे अपने ढग की एकमात्र पत्रिका है, 'प्रोडक्टिविटी न्यूज' के नाम एक अग्रेजी मासिक पत्रिका और 'उत्पादकता' नामक एक हिन्दी मासिक पत्रिका तथा उत्पादकता से सम्बन्धित अन्य सारभूत साहित्य शामिल है।"

"अन्तर्राष्ट्रीय मोर्चे पर राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् एशिया उत्पादकता सगठन (एशियन प्रोडक्टिविटी ओर्गनाइजेशन), भारतीय-जर्मन तकनीकी सहयोग कार्यक्रम (इण्डो-जर्मन टैक्निकल कोग्रापरेशन प्रोग्राम) के प्राधिकारियो तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय प्राधिकरणो से सहयोग से अपने क्रियाकलापो का विस्तार कर रही है। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् ने एशियाई उत्पादकता सगठन को निर्यात निरीक्षण तथा मानकीकरण, कृषिगत पशुधन तथा पोल्ट्री उत्पादन के विविधीकरण, प्रबन्ध तथा उपसविदा सम्बन्धी सर्वेक्षण मे सहायता पहुँचाई है।"

"हाल ही मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् को 'न्यू फार्म्स ग्रॉफ वर्क ग्रोगनाइजेशन' मे, जिसे भारत तथा तजानिया मे नार्वे के कार्य-अनुसधान सस्था की सहायता से सचालित किया जा रहा है, अपनी परियोजनाओ तथा क्षेत्र परामर्श सेवाओ के लिए समन्वयकारी सस्था के रूप मे कार्य करने का काम सौंपा है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् को भारत के अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकरण की मार्फत न्यूघाट एयर पोर्ट प्रोजेक्ट, लीबिया के क्रियाकलापो के आयोजन तथा नियत्रण के सम्बन्ध मे एक परियोजना प्रबन्ध पद्धति विकसित करने की परियोजना का काम सौंपा गया था। यह कार्य हाल ही मे सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ है।"

श्री डी जी आर डालवी, कार्यकारी निदेशक, राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् ने 11 अगस्त, 1977 के अपने लेख मे राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के कार्यों और उपलब्धियो का लेखा-जोखा इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

"पिछले अनेक वर्षों मे राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् ने बहुत सराहनीय उपलब्धियाँ प्राप्त की है। इस परिषद् के दो प्रमुख कार्य (1) उत्पादकता मे प्रशिक्षण और (2) उत्पादकता सम्बन्धी परामर्श है। अभी तक इस परिषद् ने लगभग 5,437 प्रशिक्षण कार्यक्रमो का आयोजन करके प्रबन्ध के सभी स्तरो के लगभग 1,00,450 लोगो को प्रशिक्षित किया है। इसने 1,500 से अधिक परामर्श-कार्यों को अपने हाथ मे लिया है। जिन सगठनो के लिए इसने यह कार्य किया उन्हे आर्थिक एव अन्य रूप से भारी लाभ हुआ। इसी प्रकार, इस परिषद् द्वारा चलाई जा रही ईंधन-कुशलता सेवा से अनेक सगठनो को ईंधन की लागत म बचत के रूप में यथेष्ट लाभ हुआ है। इस परिषद् की सेवाओ के लिए बढती हुई मांग इस बात का परिचायक है कि अधिकाधिक उपक्रमो के विकास और स्थिरता के लिए उद्यमी अधिकाधिक उत्पादकता तकनीकियो के उपयोग के लाभ को स्वीकार करते है।

राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के ध्यान देने योग्य कुछ अन्य कार्य इस प्रकार है—सन् 1969–70 मे प्रारम्भ किए गए विशेष उत्पादकता कक्षो के माध्यम से छोटे पैमाने के उद्योगो को परामर्श सेवाएँ प्रदान करना जिसके द्वारा यह परिषद्

ब तक लगभग 150 इकाइयों को अपनी सेवाएँ प्रदान कर चुकी है, उत्पादकता सम्बन्धी धारणाओं और प्रणालियों के सम्बन्ध में श्रमिकों के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत इस परिषद् ने लगभग 650 प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करके लगभग 13,000 श्रमिकों को प्रशिक्षण दिया है।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के प्रयत्नों ने देश में, विशेषकर, औद्योगिक क्षेत्र में, उत्पादकता के प्रति जागरूकता पैदा करने में बहुत अधिक योगदान दिया है। फिर भी, उत्पादकता आन्दोलन में सरकार, उद्योग, श्रमिक नेताओं, श्रमिकों, तकनीशियनों और जनसाधारण द्वारा अधिकाधिक भाग लेकर इस आन्दोलन को और भी सशक्त बनाने की आवश्यकता है। इसका विस्तार अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों जैसे—कृषि, सेवा सगठनों (विद्युत मण्डलों, अस्पतालों, विश्वविद्यालयों आदि) और छोटे पैमाने के उद्योगों तथा ग्रामीण उद्योगों में भी करना आवश्यक है।

यह आवश्यक है कि व्यक्तिगत उपक्रमों, जनोपयोगी सेवाओं और फार्मों में सभी स्तरों पर विशिष्ट उत्पादकता उपायों को लागू करके राष्ट्रीय योजनाओं को दृढ़ बनाया जाना चाहिए। इस प्रकार के सगठनों को उत्पादकता का दृढ़ता से पालन किया जाना चाहिए।

उत्पादकता की वृद्धि का प्रारम्भ, उपलब्ध ससाधनों के सर्वोत्तम उपयोग के लिए संयन्त्र स्तर पर उत्पादकता-तकनीकों का प्रयोग करके किया जा सकता है। प्रबन्धकों द्वारा उपलब्ध किए गए नेतृत्व का स्तर ही बढ़ी हुई कुशलता के लिए, प्रबन्धकों और श्रमिकों के सयुक्त प्रयास के लिए मानसिक वातावरण तैयार करता है। श्रमिकों के लिए यह स्वीकार करना आवश्यक है कि उत्पादकता निष्पादन में सुधार करना उनके जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने और रोजगार के अवसर पैदा करने, दोनों दोनों दृष्टिकोणों से हितकर है।

कार्य करने के लिए अच्छी दशा, शिकायतों को दूर करने के लिए उचित माध्यम और उपयुक्त मानविक सम्बन्ध प्रदान करने के अलावा श्रमिकों को तर्कसंगत आर्थिक प्रोत्साहन देना भी आपेक्षित है। अत. उत्पादकता के लाभों को सभी को उपलब्ध कराने के लिए दृढ़ उपायों की आवश्यकता है। इसी के साथ-साथ, यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि उत्पादकता में वृद्धि के बिना मजदूरी वेतन में वृद्धि अर्थ-व्यवस्था को निष्क्रिय बना देती है और इससे मूल्य-वृद्धि होती है जबकि उत्पादकता में वृद्धि के कारण वेतन-वृद्धि सम्पूर्ण उपलब्धियों में योगदान करती है। अतः श्रमिक सघों को राष्ट्रीय प्रगति के लिए उत्पादकता को एक सशक्त साधन के रूप में स्वीकार करना चाहिए। उन्हें सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों के कारखानों में उत्पादकता समझौते पर हस्ताक्षर करके औद्योगिक शान्ति और अनुशासन का वातावरण बनाए रखना चाहिए।"

अर्थ-व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में उत्पादकता को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् उद्योगवार उत्पादकता-मण्डलों की स्थापना का प्रयास

कर रही है। यह उद्योगवार उत्पादकता की प्रकृति के अध्ययन को भी प्रोत्साहित कर रही है। अर्थ-व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो मे उत्पादकता को बढावा देने के लिए एक दूसरा प्रयत्न उत्पादकता की समस्याओ के अध्ययन और उत्पादकता मे सुधार की सम्भावनाओ का पता लगाने के लिए विशेष दलो का गठन किया जाना है। कोयला उद्योग, सडक परिवहन उद्योग, बन्दरगाहो और गोदियो के लिए इस प्रकार के तीन दलो का गठन किया जा चुका है। ये विशेषज्ञ दल का इन उद्योगों मे उत्पादकता सेवा प्रदान करने के लिए साधनो से पूर्णतया सुसज्जित हैं। उत्पादकता का मूलमन्त्र उपलब्ध ससाधनो का समुचित उपयोग है। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के प्रयत्न इस समय तीन क्षेत्रो मे केन्द्रित हैं—(1) ऊर्जा का सचय, (2) खनिजो, विशेषकर अलौह धातुओ का सरक्षण, और (3) सयन्त्रो, मशीनो और उपकरणो के रूप मे उपलब्ध राष्ट्रीय सम्पत्ति का उचित रख-रखाव।

उत्पादकता-आन्दोलन का प्रभाव : एक मूल्यांकन

योजनाबद्ध कार्यक्रमो के पश्चात् अब यह कहा जा सकता है कि विकास के लिए विस्तृत स्तर पर आधारभूत औद्योगिक-ढाँचे का निर्माण किया जा चुका है तथा अनेक प्रकार के नवीन आर्थिक कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं। 25,000 करोड रु की महत्त्वाकांक्षी चौथी पचवर्षीय योजना तथा 50,000 करोड रु से अधिक की पचवर्षीय योजना अर्थ-व्यवस्था के उत्पादक-स्वरूप के ही प्रतिफल हैं। सन् 1968-69 की अवधि मे औद्योगिक उत्पादन मे 60% की वृद्धि विनियोग की किसी विशिष्ट वृद्धि के परिणामस्वरूप न होकर उपयुक्त औद्योगिक क्षमता मे वृद्धि के कारण ही सम्भव हो सकी थी।

आज हम लोहा, इस्पात, खाद, रसायन, मशीनी-यन्त्र, पैट्रो-रसायन, भारी इन्जीनियरिंग आदि उद्योगो की स्थापना करके देश के आधारभूत औद्योगिक ढाँचे का निर्माण करने मे हम समर्थ हो सके हैं। भारत इन वस्तुओ को उन्ही देशो को निर्यात कर रहा है जिनसे वह 20 वर्ष पूर्व आयात करता था। 20 वर्ष पूर्व सूती वस्त्र, जूट, सीमेन्ट आदि कुछ एक उद्योगो को छोडकर अधिकांश आवश्यकताओ की पूर्ति विदेशी आयातो से होती थी। शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य आदि से सम्बन्धित सुविधाएँ प्राय नगण्य थी। कुछ आवश्यक वस्तुओ की प्रति व्यक्ति उपलब्धि इस प्रकार है—

विद्युत्	0 0063 किलोवाट
मशीनी यन्त्र	0 0083 मि क
इस्पात	0 0027 टन
रेल	0 0001 किलोमीटर
क्रूड तेल	0 0007 टन

भारतीय राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के प्रयत्नो तथा पचवर्षीय योजनाओ मे किए गए प्रयासो के बावजूद उत्पादकता कभी बहुत कम है। कुछ अपवादो को छोडकर भारत मे निर्मित प्रत्येक वस्तु की लागत अन्तर्राष्ट्रीय लागत की तुलना मे बहुत ऊँची है। इसके अतिरिक्त हमारी उत्पादन-क्षमता का भी पर्याप्त उपयोग

नहीं किया गया। अतः उत्पादकता वृद्धि के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण उपाय प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

कृषि-उत्पादकता बढ़ाने के उपाय

गत कुछ वर्षों से कृषि के क्षेत्र में उत्पादकता में पर्याप्त वृद्धि हुई है। कृषि-उत्पादकता एक अच्छे स्तर पर पहुँच गई है। नई कृषि-नीति का पैकेज-कार्यक्रम कृषिगत ढाँचे में उत्पादकता की ओर संकेत करता है। इस समय लगभग मिलियन से अधिक हैक्टेयर भूमि पर उन्नत किस्म के बीजों का प्रयोग होता है। गेहूँ की कुछ किस्मों में 5 से 6 टन प्रति हैक्टेयर उत्पादन होने लगा है जबकि इससे पूर्व सिंचित भूमि में भी केवल 2 टन की पैदावार होती थी। उन्नत किस्म के बीजों के कारण अन्य अनाजों की पैदावार में भी काफी वृद्धि हुई है। चावल के क्षेत्र में 'Break Through' की स्थिति है। इसलिए यह दावा उचित प्रतीत होता है कि खाद्यान्नों में 20 से 50 मिलियन टन की वार्षिक वृद्धि कृषि उत्पादकता में सुधार के कारण ही सम्भव हुई है।

इस स्थिति से प्रोत्साहित होकर ही योजना आयोग ने कृषि-क्षेत्र में विज्ञान व तकनीकी प्रयोग को चतुर्थ योजना की व्यूह-रचना (Strategy) में महत्त्व दिया था। हम उत्तरोत्तर इस तथ्य का अनुभव कर रहे हैं कि कृषि के क्षेत्र में उत्पादकता की वृद्धि के लिए सबसे अधिक अवसर प्राप्त हैं तथा वास्तविक मजदूरी में वृद्धि के रूप में और राष्ट्रीय बाजारों के विस्तार के रूप में कृषि-उत्पादकता में वृद्धि से आर्थिक विकास के अनेक अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होते हैं। भारत में कुछ भागों में देखे जाने वाले ट्रैक्टर कृषि उपकरण तथा उच्चतर जीवन-स्तर कृषि के क्षेत्र में नवीन उत्पादकता तकनीकियों के प्रयोग के ही परिणाम हैं। राष्ट्रीय उत्पादकता में कृषि-क्षेत्र के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए कृषि की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए कृषि के लिए नियोजित विनियोग की राशि को बढ़ाना आवश्यक है।

उत्पादन वृद्धि के लिए निम्नलिखित सुझाव हैं—

1. अनुसंधान उत्पादकता-वृद्धि का मूल आधार है। अतः वैज्ञानिक अनुसंधान को बढ़ावा देकर तथा उसे व्यवहार में लाकर उत्पादकता में वृद्धि की जानी चाहिए। योजना आयोग ने कृषि-क्षेत्र में विज्ञान व तकनीकी प्रयोग को चौथी और पाँचवीं योजना की व्यूह-रचना में अत्यधिक महत्त्व दिया है।

2. कृषि के लिए नियोजित विनियोग (Planned Investment) के अंश को बढ़ाया जाना चाहिए। जब कभी योजनाओं के परिव्यय में कमी करना आवश्यक समझा गया, योजना परिव्यय में कटौतियाँ कृषि के भाग को कम करके की गई तथा कृषि का वास्तविक भाग संशोधित अनुमानों में नियोजित अथवा प्रस्तावित राशि से बहुत कम रहा। विनियोग की अपर्याप्तता के कारण कृषि-उत्पादकता में अपेक्षित वृद्धि नहीं की जा सकी। प्रथम तीन योजनाओं में कृषि-विनियोग की स्थिति कुछ इसी प्रकार की रही।

3 मानव शक्ति का पूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए तथा सहकारी खेती को और अधिक प्रभावपूर्ण बनाया जाकर पैमाने, विनियोग और सगठन (Scale, Investment and Organ zat on) के समस्त लाभ कृषि-क्षेत्र मे लेने चाहिए।

4 आवश्यक प्रशिक्षण द्वारा कृषि-श्रमिको की उत्पादकता मे वृद्धि की जानी चाहिए तथा कृषि के नए उपकरणो और नई तकनीकी प्रयोग के लिए इन्हे प्रेरित किया जाना चाहिए।

5 कृषि मूल्य नीति इस प्रकार की होनी चाहिए कि किसान को अपनी उपज का उचित मूल्य प्राप्त हो सके। कृषि मूल्यो से अनिश्चितता की स्थिति दूर की जानी चाहिए।

6 कृषि शिक्षा की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए। देश के कृषि विश्वविद्यालयो को प्रयोगात्मक ज्ञान के ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने चाहिए कि जिनसे कृषि के छात्रो को कार्य करने का अवसर मिले तथा वे व्यवहार मे लाकर कृषि-उत्पादकता-वृद्धि मे योग दे सकें। पाँचवी योजना मे 25,500 कृषि स्नातक, 4,200 पशु चिकित्सक और 1,400 कृषि इन्जीनियरो के बनने का अनुमान है। कृषि के लिए प्रशिक्षित इस वर्ग से कृषि-उत्पादकता म वृद्धि की भारी आशाएँ हैं।

7 रासायनिक खाद का प्रयोग बढाया जाना चाहिए। पाँचवी योजना के आधार वर्ष 1973–74 मे रासायनिक खाद की खपत लगभग 19 7 लाख टन थी। योजना के अन्त तक यह खपत 52 लाख टन तक बढाने का प्रस्ताव है। आशा की जाती है कि रासायनिक खाद के बढते हुए इस प्रयोग से कृषि-उत्पादकता मे आवश्यक वृद्धि सम्भव हो सकेगी। मिट्टी-परीक्षण की पर्याप्त सुविधाएँ बढाई जानी चाहिए, क्योकि मिट्टी के आधार पर ही फसलो के उगाए जाने का नियोजन किया जा सकता है। पांचवी योजना म मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओ को सुदृढ बनाने और उनका उपयोग बढाने के अतिरिक्त 150 स्थायी मिट्टी परीक्षा प्रयोगशालाएँ स्थापित किए जाने का प्रावधान है।

8 छोटे और सीमान्त किसानो (Marginal Farmers) को शामिल किया जाना चाहिए। बारानी खेती बडे पैमाने पर शुरू की जानी चाहिए। शुष्क खेती के विस्तार की भी बडी आवश्यकता है।

9 पांचवी योजना मे कृषि-उत्पादकता बढाने के लिए खेती को रोकने तथा शुष्क भूमि के उचित उपयोग और बीहडो, खारी तथा रेतीली भूमि को खेती योग्य बनाने का भी सुझाव है।

10 विश्वविद्यालयो और अन्य शोध सस्थानो मे किए अनुसन्धानो पर प्रयोग करने मे जो कठिनाइयां सामने आई हैं, उन्हें दूर करने के प्रयत्न किए जाने चाहिए। इसके लिए विश्वविद्यालयो, अनुसन्धान-सस्थानो और सरकार के बीच समन्वय स्थापित किया जाना आवश्यक है।

11 शुष्क क्षेत्रो मे घास, फसलों के पेड और वन लगाने पर ध्यान दिया

जाना चाहिए। इन क्षेत्रो मे सौर शक्ति के उपयोग तथा हवा भरे पोलीथिलीन के तम्बुओ मे खेती करने का पाँचवी योजना मे सुझाव दिया गया है। कुछ रेगिस्तानी इलाको मे इस तरह से खेती की भी जा रही है।

12. ऊँचाई वाले इलाको में भूमि के उचित उपयोग पर ध्यान दिया जाना चाहिए। उर्वर भूमि क्षरण और झूम खेती की स्थानीय समस्याओं को भी ध्यान में रखा जाना आवश्यक होगा।

13. कृषि के आधुनिकीकरण के लिए बडी मात्रा में Industrial Inputs की आवश्यकता है।

14. कृषि-ऋण व साख सुविधाओ का विस्तार किया जाना चाहिए। कृषि वित्त निगम, सहकारी बैंक एव राष्ट्रीयकृत व्यापारिक बैंकों आदि वित्तीय सस्थाओ द्वारा ऋण देने की सुविधाएँ है। इन सुविधाओ मे पर्याप्त वृद्धि की आवश्यकता है।

सक्षेप मे कृषि-उत्पादकता बढाने के लिए कृषि-प्रशासन व संगठन को सुदृढ़ बनाने, प्रामाणिक बीजो की पैदावार बढाने, रासायनिक खाद का अधिक मात्रा मे और भली-भाँति प्रयोग करने, सिंचाई करने की उचित व्यवस्था, कटाई के बाद कृषि-उपज रखने की सग्रह-व्यवस्था, बाजार-व्यवस्था आदि की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।

श्रम-उत्पादकता मे वृद्धि के उपाय

भारतीय श्रम-उत्पादकता का स्तर विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है। अतः श्रम-उत्पादकता बढाने के लिए कुछ उपाय आवश्यक हैं—

1 श्रमिक की कार्य दशाएँ असन्तोषप्रद हैं। कार्य करने के लिए अच्छी मशीनें और औजार श्रमिक को नहीं मिलते। कारखानो मे श्रमिक की प्राथमिक आवश्यकताओ का अभाव है। अत. श्रमिको को अच्छे वेतन, चिकित्सा, शिक्षा, सुरक्षा आदि की सुविधाएँ मिलनी चाहिए ताकि उनकी कुशलता व उत्पादकता मे अपेक्षित वृद्धि हो सके।

2. कार्य-अध्ययन तथा प्रोत्साहन पुरस्कारो (Work Studies and Incentives) द्वारा भी श्रम-उत्पादकता मे वृद्धि की जा सकती है।

3. उत्पादकता-वृद्धि के लिए पर्याप्त कार्यशील पूँजी (Working Capital) आवश्यक है।

4. उत्पादकता-वृद्धि मे मानव तत्त्व (Human element) भी एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसलिए संयंत्र के फेल होने (Plant breakdown), बिजली न मिलने, आवश्यक निर्देशो के अभाव के कारण व्यर्थ मे खोए जाने वाले कार्य के घण्टों पर सामयिक रोक लगाई जानी चाहिए, साथ ही पदार्थ व यन्त्र सम्बन्धी नियन्त्रण (Scientific material & tool control) और उपयुक्त वर्क-शॉप सुविधाओं की व्यवस्था (Provision for work-shop services) भी श्रम की कुशलता को बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

5 कच्चे माल तथा आधुनिक मशीनरी के अभाव को दूर किया जाना चाहिए। समय पर कच्चा माल न मिलने के कारण बहुत से मानव घण्टे (Man-hours) बेकार हो जाते हैं।

6. श्रम-उत्पादकता के लिए अच्छे औद्योगिक सम्बन्धो का होना अत्यावश्यक है। प्रबन्ध पक्ष की ओर से श्रमिको को अच्छे वेतन, सुविधाएँ तथा कार्य करने की अच्छी अवस्थाएँ प्रदान कर उनकी प्रगति मे रुचि रखना है और श्रमिको की ओर से सक्रिय सहयोग देना है ताकि उद्योग के लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। दोनो ओर से अच्छे औद्योगिक सम्बन्धो के कारण औद्योगिक एकता (Industrial Harmony) विकसित होती है। सामान्यत इस प्रकार की पृष्ठभूमि मे दोनो वर्गों के हित-साधन की दृष्टि से निम्नलिखित क्षेत्रो को लिया जाना चाहिए—

(1) अधिक उत्पादन,
(2) सुरक्षापूर्ण व स्वास्थ्य कार्य-दशाएँ,
(3) कर्मचारियों को उचित प्रशिक्षण,
(4) औद्योगिक इकाइयो का उचित विस्तार और स्थायित्व।

इस प्रकार श्रम उत्पादकता मे वृद्धि के लिए जहाँ एक ओर श्रमिको के लिए कार्य की श्रेष्ठ अवस्थाओ और आवश्यक प्रशिक्षण की सुविधाओ की व्यवस्था करना आवश्यक है वहाँ दूसरी ओर कार्यशील पूँजी का पर्याप्त प्रावधान तथा उत्पादन के सयत्र की क्षमता का नियमित रूप से कुशलतम उपयोग करना भी अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध मे राष्ट्रीय-उत्पादिता परिषद् ने श्रमिको के प्रशिक्षण के लिए प्रबन्ध और निरीक्षण सेवाओ के विकास, कार्य अध्ययन विधि, उत्पादिता-सर्वेक्षण आदि की दिशा मे किए गए प्रयत्न महत्त्वपूर्ण हैं।

औद्योगिक उत्पादकता-वृद्धि के उपाय

कृषि-उत्पादकता तथा श्रम-उत्पादकता के अतिरिक्त औद्योगिक उत्पादकता का विश्लेषण भी आवश्यक है। औद्योगिक उत्पादकता का सामान्य अर्थ उद्योग मे लगे साधनो की प्रति इकाई उत्पादकता से लिया जाता है। औद्योगिक उत्पादकता से सम्बन्धित उपायो मे मुख्य हैं—'Waste Control'। 'वेस्ट कण्ट्रोल' की प्रभावशील व्यवस्था द्वारा उत्पादकता मे वृद्धि की जा सकती है। पहला आवश्यक कदम हर प्रकार 'Waste' को लेखा करके उसके कारण तथा उसके प्रति उत्तरदायित्व का विश्लेषण करना है। यह सिद्धान्तत सरल प्रतीत होता है, किन्तु व्यवहार मे स्थिति विपरीत देखने को मिलती है। अधिकाँश लघु-उद्योग इकाइयो के पास ऐसी कोई व्यवस्था नही होती जिसके द्वारा यह अनुमान लगाया जाए कि उनके साधन किस सीमा तक बेकार जाते हैं। साधनो की बरबादी के नियन्त्रण के दो प्रभाव होते हैं। एक ओर यह लागत को कम करता है तथा दूसरी ओर उत्पादन-वृद्धि मे सहायक होता है। साधनो की बरबादी के मुख्य रूप हो सकते हैं—(i) व्यर्थ मे जाने वाले प्रयत्न (Lost efforts), (ii) गति मे रुकावट (Lost motions), (iii) अवधारणाओं की अस्पष्टता (Ambiguity of Concepts), एव (iv) वस्तुओ की अनावश्यक

किस्मे (Undue variety of materials and products)। इन सभी प्रकार की 'Wastes' को स्टेंडर्डाइजेशन (Standardisation) से नियन्त्रित किया जा सकता है।

'स्टेण्डर्डाइजेशन तथा उत्पादिता' (Standardisrtion and Productivity) की दृष्टि से एक औद्योगिक प्रतिष्ठान के कार्यक्रम को तीन बडी श्रेणियो मे रखा जा सकता है—प्रबन्ध, इन्जीनियरिंग और क्रय (Management, Engineering and Purchase)। प्रबन्ध के अन्तर्गत नियोजन, सगठन, निर्देशन, नियन्त्रण व प्रशिक्षण सम्बन्धी क्रियाएँ आती हैं। यदि प्रबन्ध-व्यवस्था इन उत्तरदायित्वों को ठीक से निभाती है तो वह उत्पादिता वृद्धि मे सहायक होती है।

इन्जीनियरिंग प्रक्रिया के अन्तर्गत उत्पादन से सम्बन्धित डिजाइनिंग, निर्माण-कार्य, किस्म-नियन्त्रण (Quality Control) आदि तकनीकी फलन आते हैं। इन तकनीकी फलनो पर उत्पादिता निर्भर करती है। अत उत्पादकता-वृद्धि के लिए इन्जीनियरिंग पहलुओ पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

क्रय नीति का भी उत्पादकता पर गहरा प्रभाव पडता है, क्योकि आधुनिक उत्पादन-तकनीकी अधिकांश कच्चे माल के स्तर पर निर्भर करती है। यदि स्टेंडर्डाइजेशन को ध्यान मे रखकर कच्चे माल की खरीद की जा सकती है, तो उत्पादन-व्यवस्था मे एक अनिश्चितता व असन्तुलन का तत्त्व आ जाता है। सामान्यत. बिना स्टेण्डर्ड की वस्तुएँ खरीदने पर उत्पादकता इस प्रकार प्रभावित होती है—

(i) समय पर ठीक ढग का सामान न मिलने से कार्य मे दीर्घकालीन अथवा अल्पकालीन रुकावट,

(ii) किसी काम की बार-बार अस्वीकृति तथा उसे बार-बार करना (Excessive rejection and re-working),

(iii) दोष-पूर्ण वस्तुओ (Defective Products) के उत्पादन को रोकने के लिए अतिरिक्त निरीक्षण कार्य,

(iv) उपरोक्त कारणो से ऊपरी लागत मे वृद्धि (Increasing Overhead charges for the above)।

भारत अब क्रेता से विक्रेता मे बदलता जा रहा है। दिन-प्रतिदिन प्रतिस्पर्द्धा बढती जा रही है। अत व्यावसायिक सस्थानो के लिए श्रेष्ठ बिक्री-व्यवस्था करना आवश्यक है। बिक्री मे वृद्धि से लागत कम आती है और लागत मे कमी से उत्पादकता बढती है।

5

भारतीय योजना-परिव्यय के आवंटन का मूल्यांकन

(CRITICISMS OF PLAN ALLOCATION IN INDIA)

योजना परिव्यय के आवटन का प्रश्न मूलत प्राथमिकताओ (Priorities) का प्रश्न है। प्राय प्रत्येक देश मे साधन सीमित होते हैं, अत योजनाओ मे किस मद (Item) को कम या अधिक महत्त्व दिया जाए प्रश्न ही योजनाओ मे प्राथमिकताओ का प्रश्न है। प्राथमिकताओ की समस्या के दो पक्ष हैं—प्रथम, वित्तीय साधनो की उपलब्धि (Resource Availability) और द्वितीय, उपलब्ध वित्तीय साधनो का आवटन (Resource Allocation)। समस्या के दूसरे पक्ष का विश्लेषण प्राय देश की क्षेत्रीय आवश्यकताओ (Regional needs), उत्पादन तथा वितरण सम्बन्धी आवश्यकताओ (Production & Distribution needs), प्रौद्योगिक स्थिति (State of Technology), उपभोग तथा विनियोग सम्बन्धी आवश्यकताओ (Consumption and Investment needs) तथा सामाजिक आवश्यकताओ (Social needs) को ध्यान मे रखते हुए किया जाता है। इन्ही के आधार पर योजना मे प्राथमिकताएँ निर्धारित की जाती हैं।

प्रथम पचवर्षीय योजना की प्राथमिकताएँ
(Priorities of First Five Year Plan)

प्रथम योजना मे परिव्यय की राशि प्रारम्भ मे 2069 करोड रुपये प्रस्तावित की गई, सशोधित अनुमानो मे यह राशि बढा कर 2378 करोड रुपये कर दी गई। योजना पर वास्तविक व्यय 1960 करोड रुपये हुआ।

कृषि व सिंचाई

कृषि व सिंचाई के लिए प्रथम योजना के प्रारूप मे 823 करोड रुपये प्रस्तावित किए गए थे, जो कुल प्रस्तावित व्यय का 35% था, किन्तु इस मद पर वास्तविक व्यय 724 करोड रुपये हुआ जो प्रस्तावित व्यय से 99 करोड रुपए कम था। किन्तु योजना के कुल वास्तविक व्यय (1960 करोड रु) मे इस मद का प्रतिशत 37% रहा जो प्रस्तावित प्रतिशत से 2% अधिक था।

इस प्रकार प्रथम योजना में कृषि और सिंचाई को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। यह प्राथमिकता उचित थी तथा योजना की पूर्व-निर्धारित व्यूह-रचना (Strategy) के अनुकूल थी, क्योंकि प्रथम योजना की व्यूह-रचना का मूल लक्ष्य देश मे औद्योगीकरण के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार करना था। कृषि के विकास से ही कच्चे माल की आवश्यक पूर्ति प्राप्त हो सकती थी तथा देश की अतिरिक्त श्रम-शक्ति (Surplus labour force) को रोजगार के अवसर प्रदान किए जा सकते थे। कृषिगत विनियोग की गर्भावधि (Gestation Period) भी औद्योगिक विनियोग की तुलना मे बहुत छोटी होती है। कृषिगत विनियोगों से शीघ्र प्रतिफल मिलने लगते है। अतः देश की राष्ट्रीय ग्राय मे वृद्धि के लिए भी कृषि के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता का दिया जाना उचित था तथा अन्य मदो की तुलना मे इस मद पर आवटित राशि का आयोजन योजना के उद्देश्यो के अनुकूल था।

परिवहन और सामाजिक सेवाएँ

परिवहन तथा सचार के लिए इस योजना मे 570 करोड़ रुपये प्रस्तावित किए गए जो कुल प्रस्तावित व्यय का 24% था। इस मद पर वास्तविक व्यय 518 करोड़ रुपये का हुआ जो कुल वास्तविक व्यय का 26% था। सामाजिक सेवाओ के लिए प्रस्तावित व्यय 532 करोड रुपये का रखा गया था लेकिन वास्तविक व्यय 412 करोड रुपये हुआ। इस प्रकार प्रथम योजना मे परिवहन तथा सचार का द्वितीय तथा सामाजिक सेवाओ का तीसरा स्थान रहा।

परिवहन तथा सामाजिक सेवाओ की प्राथमिकता को सरकारी क्षेत्रों मे उचित ठहराया गया। परिवहन तथा सचार को दी गई प्राथमिकता को उचित कहा जा सकता है, क्योंकि आर्थिक विकास मे परिवहन तथा सचार की सुविधाओं के विस्तार का बड़ा महत्त्व है। कृषि, उद्योग आदि किसी भी क्षेत्र मे प्रगति के लिए कुशल परिवहन तथा सचार सेवाएँ आवश्यक हैं। बाजारो के विस्तार तथा देश के विभिन्न भागो को एक दूसरे से जोड़ने मे और नवीन आर्थिक क्रियाओ के सचालन मे इनका महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। किन्तु सामाजिक सेवाओ के लिए निर्धारित व्यय तथा इनको दी गई प्राथमिकता को उचित नही कहा जा सकता। यह तो उचित है कि देश के विकास के लिए मानव-तत्त्व की कुशलता को बढाने के लिए अधिक से अधिक शिक्षा और चिकित्सा की सुविधाएं मिलनी चाहिए। किन्तु भारत जैसे देश मे इस मद पर किए जाने वाले व्यय का अधिकांश भाग प्रशासनिक व्यय के रूप मे जाता रहा। सामाजिक कल्याण के नाम पर देश मे करोड़ो रुपयो का अपव्यय हुआ। इस मद में से कटौती कर उद्योग तथा खनिज के विकास परिव्यय की मात्रा बढ़ाई जानी चाहिए थी। विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे आर्थिक ऊपरी पूँजी (Economic over-heads) का निर्माण सामाजिक ऊपरी पूँजी (Social over-heads) की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

उद्योग तथा खनिज

किया गया था किन्तु वास्तव मे केवल 97 करोड रुपये ही व्यय हुए। इस मद पर इतना कम राशि का आवटन अनुचित था।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना की प्राथमिकताएँ (Priorities of the Second Five Year Plan)

द्वितीय योजना मे 4800 करोड रुपये का परिव्यय प्रस्तावित किया गया। इस प्रस्तावित राशि के मुकाबले वास्तविक व्यय 4672 करोड रुपये का हुआ। यह उद्योग-प्रधान योजना थी। इस योजना मे कृषि की प्राथमिकता को कम किया गया तथा प्रथम योजना की तुलना मे उद्योग तथा खनिजो के लिए एक बडी राशि निर्धारित की गई।

कृषि तथा सिचाई

कृषि तथा सिचाई के लिए योजना मे 1101 करोड रुपये की राशि प्रस्तावित की गई थी जो कुल प्रस्तावित व्यय का 23 प्रतिशत थी। इस मद पर वास्तविक व्यय 979 करोड रुपये का हुआ जो कुल योजना परिव्यय का 21 प्रतिशत था। प्रथम योजना मे इस मद पर व्यय का प्रतिशत जहाँ कुल व्यय का 37 था, वहाँ यह प्रतिशत घट कर इस योजना मे केवल 23 रह गया। कृषि के विनियोग को कम करना नियोजको की अदूरदर्शिता को दर्शाता है। पहली योजना के दौरान खाद्यान्न की अच्छी स्थिति होने का कारण अच्छी वर्षा का होना था, किन्तु नियोजको ने योजना की सफलता मान कर, द्वितीय योजना मे कृषि पर कम ध्यान दिया। कृषि-विनियोगो मे कमी का यह परिणाम निकला कि दूसरी योजना मे कृषि के लक्ष्य पूर्ण रूप से असफल रहे और खाद्यान्नो का उत्पादन गिर गया।

परिवहन तथा सचार

परिवहन तथा सचार के लिए योजना मे 1385 करोड रुपये प्रस्तावित किए गए थे कुल परिव्यय के 29 प्रतिशत थे। इस मद पर वास्तविक व्यय 1261 करोड रु का हुआ जो कुल वास्तविक व्यय का 27 प्रतिशत था। जहाँ तक व्यय के प्रतिशत का प्रश्न है, पहली योजना की तुलना मे इसमे कोई विशेष अन्तर नही आया। पहली योजना मे यह प्रतिशत 26 था। किन्तु निरपेक्ष अको के रूप म पहली योजना म जहाँ इस मद पर हुए वास्तविक व्यय की राशि केवल 518 करोड रुपये थी, वहाँ इस योजना मे यह राशि 1261 करोड रुपये ही थी। इस मद के लिए इस बडी राशि का प्रावधान इस योजना मे परिवहन व सचार को दिए गए ऊँचे महत्त्व का स्पष्ट करता है। इस योजना मे परिव्यय की दृष्टि से सर्वोच्च प्राथमिकता इसी मद को दी गई। यह प्राथमिकता उचित थी, क्योंकि आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने के लिए परिवहन तथा सचार के कुशल तथा तेज रफ्तार वाले साधनो के रूप मे अधिक ऊपरी पूँजी का होना अत्यावश्यक था।

उद्योग तथा खनिज

द्वितीय योजना मे इस मद के लिए 825 करोड रुपये की राशि निर्धारित की गई। वास्तविक व्यय की राशि तो इससे कहीं अधिक (1125 करोड रुपये)

थी। कुल प्रस्तावित व्यय मे इस मद के प्रस्तावित व्यय का प्रतिशत 19 तथा कुल वास्तविक व्यय मे इस मद के वास्तविक व्यय का प्रतिशत 24 रहा। इस प्रकार वास्तविक व्यय का प्रतिशत प्रस्तावित व्यय के प्रतिशत से 5 अधिक रहा। ये आँकड़े इस योजना मे उद्योग तथा खनिजो को दिए गए महत्त्व को प्रकट करते हैं। इस मद को योजना मे दूसरा स्थान मिला। उद्योगों के क्षेत्र में भी मूल व भारी उद्योगों जैसे लोहा व इस्पात, मशीन, इन्जीनियरी, रासायनिक आदि उद्योगों को विशेष स्थान दिया गया। निर्धारित विनियोगो का अधिकाँश भाग इन उद्योगो के लिए प्रस्तावित किया गया। औद्योगीकरण की गति मे तीव्रता लाने के लिए इस मद के लिए बड़ी राशि का आवटन उचित था। पहली योजना मे इस मद की उपेक्षा की गई थी जिसके कटु अनुभव का लाभ उठाते हुए इस योजना मे इस मद के लिए किया गया वित्तीय आवटन (F nanc al Allocation) सर्वथा उचित था।

सरकारी क्षेत्र मे किए गए उपरोक्त व्यय के अतिरिक्त निजी क्षेत्र मे संगठित उद्योग और खनिजो पर 575 करोड रुपये व्यय किए गए। देश को औद्योगिक दिशा देने के लिए प्राथमिकता का यह परिवर्तन योजना के उद्देश्यो के अनुकूल था।

सामाजिक सेवाएँ तथा विविध

सामाजिक सेवाओ के मद के लिए योजना मे 1044 करोड रुपये की राशि का प्रस्ताव किया गया था। इस मद पर वास्तविक व्यय 855 करोड रुपये का हुआ जो कुल वास्तविक योजना-परिव्यय का 18 प्रतिशत था। प्राथमिकताओ की दृष्टि से इस मद का योजना मे काफी ऊँचा स्थान रहा। पहली योजना मे सामाजिक सेवाओ के व्यय का प्रतिशत जहाँ 21 था, वहाँ इस योजना मे इस मद के व्यय का प्रतिशत 18 रहा। पहली योजना की तुलना मे व्यय के प्रतिशत मे यह गिरावट उचित थी, क्योंकि प्रथम योजना के सन्दर्भ मे यह स्पष्ट किया जा चुका है कि देश के विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे साधनो का अधिक भाग सामाजिक मदो की अपेक्षा आर्थिक मदो पर अधिक लगाया जाना चाहिए। सामाजिक सेवाओ के व्यय मे अनेक प्रकार की 'Leakages' का रहना स्वाभाविक है।

तृतीय पंचवर्षीय योजना की प्राथमिकताएँ
(Priorities of the Third Five Year Plan)

तृतीय योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय 7509 करोड रुपये क निर्धारित किया गया। सार्वजनिक क्षेत्र मे इस योजना के दौरान वास्तविक व्यय 8577 करोड़ रुपये का हुआ।

कृषि और सिंचाई

कृषि और सिंचाई के लिए 1718 करोड रुपये प्रस्तावित किए गए। कुल प्रस्तावित व्यय का यह 23 प्रतिशत था। इस मद पर वास्तविक व्यय 1753 करोड़ रुपये हुआ जो कुल वास्तविक व्यय का 21 प्रतिशत था। प्रतिशत व्यय की दृष्टि से योजना मे इस मद को तीसरा स्थान प्राप्त हुआ। 25 प्रतिशत पर प्रथम परिवहन व संचार को तथा 23 प्रतिशत पर द्वितीय स्थान उद्योग और खनिज को मिला।

इस योजना मे कृषि-क्षेत्र को द्वितीय योजना की अपेक्षा अधिक महत्व दिया गया। कृषि-विकास के लिए 1068 करोड रुपये तथा सिंचाई विकास के लिए 650 करोड रुपये का निर्धारण इस स्थिति को स्पष्ट करता है कि इस योजना मे समस्त व्यय का एक-चौथाई भाग कृषि-विकास के लिए रखा गया। यह वित्तीय प्रावधान उचित था। देश की बढती हुई आबादी की आवश्यकता-पूर्ति के लिए खाद्यानो के उत्पादन मे भारी वृद्धि अपेक्षित थी। कृषि के क्षेत्र मे रही द्वितीय योजना की असफलताओ की पूर्ति के लिए भी तृतीय योजना मे कृषि को प्राथमिकता दिया जाना उचित था।

उद्योग और खनिज

द्वितीय योजना की भाँति इस योजना म भी उद्योग और खनिज को प्राथमिकता दी गई। इस मद के लिए 1784 करोड रु प्रस्तावित किए गए जो कुल प्रस्तावित व्यय का 24 प्रतिशत था तथा वास्तविक व्यय इस मद पर 1967 करोड रु हुआ जो कुल वास्तविक व्यय का 23 प्रतिशत था। द्वितीय योजना मे द्रुत औद्योगीकरण (Rap d Industrialisation) के लिए लोहा व इस्पात, खाद, भारी मशीनरी आदि के कारखानो के रूप मे ऊपरी आर्थिक पूँजी (Economic overheads) का एक सुदृढ आधार निर्मित हो चुका था। अत इस ऊपरी आर्थिक पूँजी के अपेक्षित उपयोग के लिए यह आवश्यक था कि अधिक से अधिक उद्योग स्थापित किए जाएँ और औद्योगिक आधार को अधिक सुदृढ बनाने के लिए नए खनिजो की खोज की जाए तथा पुराने खनिजो का उत्पादन बढाया जाए। इसलिए इस योजना मे उद्योग तथा खनिज पर किया गया वित्तीय आवटन उचित था। इस मद पर बडी राशि का प्रावधान तीव्र आर्थिक विकास और आत्म निर्भरता के लिए आवश्यक था।

परिवहन तथा सचार

परिवहन तथा सचार के लिए 1486 करोड रुपये प्रस्तावित किए गए, किन्तु वास्तविक व्यय 2112 करोड रु का हुआ जो सभी मदो की अपेक्षा अधिक था। किन्तु वास्तविक व्यय के प्रतिशत की दृष्टि से इस मद का स्थान पहला रहा। तीव्र औद्योगीकरण के उद्देश्य की दृष्टि से परिवहन तथा सचार को अधिक महत्व दिया जाना आवश्यक था। अत इस मद के लिए किया गया वित्तीय आयोजन उचित था।

सामाजिक सेवाएँ

सामाजिक सेवाओ पर योजना मे 1493 करोड रु व्यय किए गए जबकि प्रस्ताव 1300 करोड रु का रखा गया था। इस योजना मे सामाजिक सेवाओ को वित्तीय आवटन की दृष्टि से चौथा स्थान दिया गया। दो योजनाओ के बाद कृषि तथा उद्योग का जो आधारभूत ढाँचा निर्मित हुआ, उसके अनुरूप कार्यक्रमो को आगे बढाने के लिए अधिक सख्या मे कुशल श्रमिको, इजीनियरो एव कृषि विशेषज्ञो की आवश्यकता थी अत इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए सामान्य तथा तकनीकी शिक्षा आदि सामाजिक सेवाओ के लिए निर्धारित 1300 करोड रु की राशि उचित ही थी।

विद्युत् शक्ति

तीव्र औद्योगीकरण के लिए विद्युत् शक्ति को भी प्राथमिकता दिया जाना उचित था। इस मद के लिए प्रथम योजना मे 179 करोड रु., द्वितीय योजना में 380 करोड रु. तथा इस योजना मे 1012 करोड रु. निर्धारित किए गए। प्रथम योजना की तुलना मे इस योजना मे देश मे बढती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए 6 गुना व्यय वृद्धि का प्रावधान आवश्यक था।

शक्ति-विनियोग के औचित्य का Indian Energy Survey Committee द्वारा परीक्षण किया गया। इस समिति की रिपोर्ट के अनुसार देश के सम्मुख औद्योगिक तथा पारिवारिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए विद्युत् शक्ति उत्पादन के लिए बड़ी राशि की आवश्यकता थी।

चतुर्थ योजना में प्राथमिकताएँ
(Priorities in the Fourth Five Year Plan)

चतुर्थ योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे 15,902 करोड रु. का व्यय प्रस्तावित किया गया। तृतीय योजना की भाँति इसमे उद्योग तथा खनिजो का महत्त्वपूर्ण स्थान रखा गया। कृषि तथा उद्योग को लगभग समान महत्व दिया गया। तृतीय योजना की अवधि मे आर्थिक सकटो के परिणामस्वरूप 'योजना-अवकाश' (Plan-holiday) की स्थिति हो गई तथा पचवर्षीय योजना के स्थान पर तीन वार्षिक योजनाएँ। अतः कृषि और उद्योग पर लगभग समान विनियोग के कार्यक्रम योजना के उद्देश्यों के अनुरूप थे। कृषि तथा सिचाई के लिए 3815 करोड़ रु तथा उद्योग और खनन के लिए 3631 करोड रु प्रस्तावित किए गए।

परिवहन तथा सचार को दूसरा स्थान दिया गया। विद्युत् शक्ति के लिए 2448 करोड रु का प्रस्ताव किया गया तथा सामाजिक सेवाओ के लिए 2771 करोड रु प्रस्तावित किए गए। इन मदो पर प्रस्तावित व्यय की उपरोक्त राशियाँ प्राथमिकता के क्रम में अनुरूप थी, किन्तु मूल्य-स्तर की दृष्टि से इन राशियो को देश की आवश्यकताओ के उचित नही कहा जा सकता। विशेष रूप से विद्युत् शक्ति के विकास के लिए अधिकतम साधनो की आवश्यकता थी।

पाँचवीं योजना में प्राथमिकताएँ
(Priorities in the Fifth Five Year Plan)

सितम्बर, 1976 मे राष्ट्रीय विकास परिषद् ने पाँचवीं पचवर्षीय योजना को संशोधित रूप में अन्तिम रूप से स्वीकृत किया। योजना के प्रस्ताव मे ही स्पष्ट कर दिया गया कि आत्मनिर्भरता और गरीबी हटाने के उद्देश्य से कृषि, सिचाई, ऊर्जा आदि महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों को प्राथमिकता दी गई है। पांचवी योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे 39,303·24 करोड़ रुपये सार्वजनिक क्षेत्र मे खर्च करने का प्रावधान किया गया। योजना के मूल प्रारूप में जिन विषयों को प्राथमिकता मिली थी, उन्हें अपरिवर्तित रखा गया। कृषि-क्षेत्र को सबसे महत्त्वपूर्ण मानते हुए इसके लिए

के लिए 3,440 18 करोड रुपये रखे गए। इस प्रकार कृषि और सिंचाई को मिलाकर 8,083 68 करोड रुपये प्रस्तावित किए गए। उद्योग एवं खनन के लिए 10,200 60 करोड रुपये और बिजली के लिए 7,293 90 करोड रुपये का प्रावधान किया गया। योजना-परिप्रेक्ष्य म स्पष्ट कर दिया गया कि—

'गरीबी दूर करने और आत्म निर्भरता प्राप्त करने के उद्देश्यो को सामने रखा गया है। यहाँ पर विकास के वृहद् परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जा रहा है, जिससे दीर्घावधि निवेश का चयन करने मे सहायता मिलेगी और कार्य नीतियो को स्पष्ट किया जा रहा है जिससे लक्ष्यो को प्राप्त करने मे आने वाली बाधाओ को दूर करने मे सहायता मिलेगी। ये नीतियाँ इन तीन प्रमुख क्षेत्रो से सम्बन्धित हैं—कृषि, ऊर्जा तथा महत्त्वपूर्ण मध्यवर्ती वस्तुएँ, रोजगार के अतिरिक्त अवसरो की व्यवस्था।"

जनता पार्टी की सरकार और प्राथमिकताओ तथा नीतियो के पुन. निर्धारण की आवश्यकता पर बल : नई योजना के दिशा-निर्देशन

मार्च, 1977 के ऐतिहासिक सत्ता-परिवर्तन के बाद जनता पार्टी की सरकार ने पांचवी पचवर्षीय योजना को 31 मार्च, 1979 की जगह एक वर्ष पूर्व ही 31 मार्च, 1978 को समाप्त कर दिया है और 1 अप्रैल, 1978 से नई राष्ट्रीय योजना आरम्भ की है। इस सम्बन्ध मे, पुनर्गठित योजना आयोग ने, प्राथमिकताओ और नीतियो के पुनर्निर्धारण की आवश्यकता पर बल देते हुए नई योजना के लिए जो दिशा निर्देशन दिया है वह दूरदर्शितापूर्ण है। भारत सरकार की 26 अक्तूबर, 1977 की प्रेस विज्ञप्ति मे इस सम्बन्ध मे जो मुख्य बातें बताई गईं, वे इस प्रकार हैं—

नई योजना के लिए दिशा-निर्देशन

"योजना आयोग ने वर्ष 1978–79 के लिए वार्षिक योजना और पहली अप्रैल, 1978 से आरम्भ होने वाली नई पचवर्षीय योजना का स्वरूप तैयार करने के लिए राज्य सरकारो और केन्द्रीय मन्त्रालयों को दिशा निर्देशन जारी किए हैं। योजना आयोग ने सचिव ने राज्य सरकारो के मुख्य सचिवो के नाम जारी एक पत्र मे कहा है कि योजना के उद्देश्य बेरोजगारी दूर करने, गरीबी उन्मूलन, आय और सम्पदा की विभिन्नताओ को कम करने के समयबद्ध लक्ष्यो की दृष्टि से पुनर्गठित किए जाने चाहिए।"

प्राथमिक क्षेत्र

"आगामी कुछ वर्षो के दौरान केन्द्रीय और राज्य योजनाओ मे पूंजी-निवेश प्राथमिकताओ मे पर्याप्त परिवर्तन करना होगा और आर्थिक नीतियाँ नई प्राथमिकताओ के साथ समन्वित करनी होंगी।

बढ़ी हुई कृषि उत्पादकता मे सुनिश्चित जल आपूर्ति और रोजगार के अवसरो की मुख्य भूमिका के कारण सिंचाई पर पूंजी-निवेश को पहले से बढ़ी

अधिक ऊँची प्राथमिकता दी जानी चाहिए। सिंचाई और कृषि-उत्पादन (बरसाती क्षेत्रों में सघन कृषि विस्तार आदि सहित) और कृषि विकास के लिए आवश्यक बुनियादी वस्तु अर्थात् बिजली में पूँजी-निवेश के लिए पहले से ही पूँजी अलग रखनी होगी।

पत्र में कुटीर और लघु उद्योग तथा ग्रामीण उद्योगों और अपने धन्धों की योजना के विकास के लिए परिव्यय बढ़ाने पर बल दिया गया है। ग्रामीण विकास बुनियादी सुविधाओं पर विशेष बल और ग्रामीण क्षेत्रों में सेवाएँ जैसे पीने के पानी की सप्लाई, बुनियादी शिक्षा, औपचारिक प्रौढ़ शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल को अब और अधिक ऊँची प्राथमिकताएँ देनी होंगी।"

नई योजना

"केन्द्रीय और राज्य योजनाओं में इस नीति के अनुसरण में पूँजी-निवेश प्राथमिकताओं को कम से कम समय में पुनः निर्धारित करने के लिए प्रस्ताव किया गया है कि ऐसा समझा जाए कि पाँचवी पंचवर्षीय योजना 31 मार्च, 1978 को समाप्त हो रही है और पहली अप्रैल, 1978 से पाँच वर्षों 1978–79 से 1982–83 के लिए एक नई मध्यकालिक योजना शुरू की जा रही है।

इसलिए वर्ष 1978–79 की वार्षिक योजना में नई योजना के पहले वर्ष के लिए पूँजी-निवेश करना होगा। योजना आयोग को आशा है कि नई मध्यकालिक योजना के लिए प्रमाणात्मक ढाँचे का अपना काम 31 दिसम्बर, 1977 तक पूरा हो जाएगा।

राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा योजना की रूपरेखा फरवरी, 1978 में विचार किए जाने की सम्भावना है। आयोग मुख्य मन्त्रियों के साथ अपनी बैठकों में योजना के उद्देश्यों और प्राथमिकताओं, योजना की वर्तमान प्रणाली में सुझाए गए सुधार और सन् 1978-83 की राज्य योजना के सम्भावित आकार पर विचार-विमर्श करेगा।"

पूँजीगत साधनों का विस्तार

"भेजे गए पत्र में कहा गया है कि छठे वित्त आयोग द्वारा आवंटित स्रोत सन् 1978–79 के लिए मान्य होंगे। राज्यों के लिए केन्द्रीय योजना सहायता के आवंटन सम्बन्धी गाडगिल फार्मूला भी लागू रहेगा। योजना और गैर-योजना में विकास परिव्यय का पुनर्वर्गीकरण, जो साधारणतः प्रत्येक पंचवर्षीय योजना अवधि के अन्त में किया जाता है, अब अप्रैल, 1979 से किया जाएगा। इसलिए सातवें वित्त आयोग के विचारणीय विषय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

अपने पत्र में योजना आयोग ने केन्द्रीय और राज्य सरकारों से अपील की है कि वे योजना के सार्वजनिक क्षेत्र के लिए अधिक साधन जुटाने के लिए निश्चयपूर्वक प्रयास करें। योजना आयोग का विचार है कि आगामी योजनाएँ ऐसी स्थिति पैदा न होने दे जो अतीत में आमतौर पर पैदा होती रही है जबकि परिव्यय साधनों की उपलब्धि से अधिक नियोजित किए जाते रहे हैं और परिणामतः असन्तुलन से मुद्रा-

स्फीति के दबाव को बढावा मिला है। सन् 1978–79 की योजना यथार्थ स्वदेशी विदेशी स्रोतो तथा निष्पाद कुल विकास पर आधारित होगी। केन्द्रीय और राज्य सरकारो को सन् 1978–79 मे आगामी योजना के लिए स्रोतो का अधिक सुदृढ आधार तैयार करने के लिए विशेष प्रयास करना होगा।"

क्षेत्रीय योजनाएँ

"पत्र मे राज्यो को परिव्यय के लिए गैर-योजना पक्ष पर भी उचित धन खर्च करने का अनुरोध किया गया है।

नि सदेह इन परिव्यो का राज्यो के गैर-योजना बजटो मे प्रावधान होगा, तथापि योजना आयोग वार्षिक योजना पर विचार करते समय आवश्यक सेवाओ के सचालन और रख-रखाव तथा वर्तमान उत्पादक क्षमता के उपयोग के लिए इन प्रावधानो की समीक्षा करने के बारे मे सोच रहा है।

वर्ष 1978–79 के लिए वार्षिक योजना के लिए क्षेत्रवार विस्तृत प्रस्ताव तैयार करने के लिए निम्नलिखित दिशा-निर्देश सुझाए गए हैं—

(क) सिचाई और बिजली की ऐसी परियोजनाएँ जो निर्माण के अग्रिम चरणो मे हैं—को कम से कम समय मे पूरा किया जाना और चालू किया जाना आश्वस्त करने का पूरा प्रयास किया जाना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए हर प्रकार के साधन जुटाए जाने चाहिए।

(ख) कृषि और सम्बद्ध गतिविधियो तथा ग्रामीण तथा लघु उद्योगो की जारी योजनाओ के लिए पूंजी चालू वर्ष की योजना मे निर्धारित दरो पर प्रदान की जानी चाहिए।

(ग) सिंचाई, बिजली और कृषि के अतिरिक्त क्षेत्रो मे जारी योजनाओ के लिए पूरी पूंजी जुटाई जानी चाहिए यद्यपि वे निर्माण की अग्रिम स्थिति मे हैं और उनके आगामी दो या तीन वर्षों मे लाभ देने लगने की आशा है। इन क्षेत्रो की अन्य योजनाओ पर इस दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए कि नई योजना मे उन्हे क्या प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

(घ) पाँचवी पचवर्षीय योजना म न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के कार्यान्वयन पर इन योजनाओ से आबादी मे लक्षि-समूहो को प्राप्त लाभो की दृष्टि से समीक्षा की जानी चाहिए। इन योजनाओ के लिए सन् 1978–79 योजना मे प्रावधान सुविचारित योजनाओ और उनके कार्यान्वयन की सक्रिय मशीनरी की उपलब्धि की दृष्टि से सन् 1977–78 के स्तर से पर्याप्त रूप से बढाए जाने चाहिए। भूमिहीन मजदूरो के लिए आवास स्थल, ग्रामीण जल आपूर्ति, ग्रामीण विद्युतीकरण, मण्डियो को जाने वाली सडको और ग्रामीण स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओ के लिए साधन जुटाने पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए।

(ड) जहाँ तक नई योजनाओ को शुरू करने का सम्बन्ध है, सिंचाई और बिजली क्षेत्रो का प्राथमिकता दी जानी चाहिए। सन् 1978–79 मे शुरू की जाने

वाली प्रस्तावित नई परियोजनाओं के लिए दिसम्बर, 1977 तक विस्तृत व्यवहार्यता जानकारी उपलब्ध की जानी चाहिए। सभी नई योजनाओं मे यह बताया जाना चाहिए कि उनसे रोजगार के कितने अवसर पैदा होंगे।

(च) विशेष रूप से सिंचाई, बिजली और जल आपूर्ति के क्षेत्रों में नई परियोजनाओ के सर्वेक्षण और जांच के लिए पर्याप्त प्रावधान किया जाना चाहिए।

राज्य और केन्द्र शासित प्रदेशो से योजना आयोग को 20 नवम्बर, 1977 तक योजना प्रस्ताव भेजने का अनुरोध किया गया।"

नई राष्ट्रीय योजना पर, जो 1 अप्रेल, 1978 से चालू की गई है, आगे एक अध्याय मे पृथक् से प्रकाश डाला गया है।

चतुर्थ योजना का मूल्यांकन
(अप्रेल 1969 से मार्च 1974)
(APPRAISAL OF THE FOURTH PLAN)

उद्देश्य (Objectives)

चतुर्थ योजना का लक्ष्य स्थिरतापूर्वक विकास की गति को तीव्र करना, कृषि के उत्पादन मे उतार-चढाव को कम करना तथा विदेशी सहायता की अनिश्चितता के कारण उसके प्रभाव को घटाना था। इसका उद्देश्य ऐसे कार्यक्रमो द्वारा लोगो के जीवन-स्तर को ऊँचा करना था जिससे समानता और सामाजिक न्याय को प्रोत्साहन भी मिले। इस योजना मे रोजगार और शिक्षा की व्यवस्था द्वारा कमजोर और कम सुविधा प्राप्त वर्ग की दशा को सुधारने पर विशेष बल दिया गया। इस योजना में सम्पत्ति, आय और आर्थिक शक्ति को अधिकाधिक लोगो मे प्रसार करने और उन्हें कुछ ही हाथो मे एकत्र होने से रोकने के प्रयत्न भी किए गए।

योजना का लक्ष्य शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन को, जो सन् 1969–70 मे 29,071 करोड रु. था, बढाकर सन् 1973–74 मे 38,306 करोड रु. करने का था। इसका अर्थ था कि सन् 1960–61 के मूल्यो पर सन् 1968–69 के 17,351 करोड रु. के उत्पादन को सन् 1973–74 मे 22,862 करोड़ रु. कर दिया गया। विकास की प्रस्तावित औसत वार्षिक चक्रवृद्धि दर 5 7 प्रतिशत थी।[1]

परिव्यय और निवेश (Outlay and Investment)

प्रारम्भ मे चतुर्थ योजना के लिए 24,882 करोड रु का प्रावधान रखा गया था। इसमे सरकारी क्षेत्र के लिए 15,902 करोड रु (इसमे 13,655 करोड़ रु. का निवेश शामिल है) और निजी क्षेत्र मे लगाने के लिए 8,980 करोड रु. की राशि थी। सन् 1971 मे इस योजना का मध्यावधि मूल्यांकन किया गया और सरकारी क्षेत्र के परिव्यय को बढाकर 16,201 करोड रु कर दिया गया।

1 India 1976, p 171

चतुर्थ योजना में सरकारी क्षेत्र का परिव्यय[1]

(करोड़ रु. में)

मद	केन्द्र	राज्य	योग
1. कृषि और सम्बद्ध क्षेत्र	1,235	1,508	2,743
	(7 6)	(9 3)	(16 9)
2. सिंचाई और बाढ़ नियन्त्रण	17	1,188	1,205
	(0 1)	(7 3)	(7 4)
3. बिजली	510	2,370	2,880
	(3 2)	(14·6)	(17·8)
4. ग्रामीण और लघु उद्योग	132	122	254
	(0 8)	(0 7)	(1 5)
5. उद्योग और खनिज	2,772	211	2,983
	(17 1)	(1 4)	(18 5)
6. यातायात और सचार	2,345	638	2,983
	(14·5)	(3 9)	(18·4)
7. अन्य	541	1,612	3 153
	(9 6)	(9·9)	(19 5)
जिसमें से			
(अ) शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसधान	375	529	904
	(2 3)	(3 3)	(5 6)
(ब) स्वास्थ्य	151	186	337
	(0 9)	(1·1)	(2·0)
(स) परिवार नियोजन	262	—	262
	(1 6)		(1·6)
योग .	8,552	7,649	16,201
	(52 9)	(47 1)	(100·0)

कोष्टकों में दिए गए आंकड़े सम्बद्ध क्षेत्रों से परिव्यय का प्रतिशत बताते हैं

शेष आंकड़े जिस हद तक राज्यों के हिस्से का कुल परिव्यय 4,600 करोड़ रुपये (जो बाद में सशोधित कर 4,672 करोड़ रु. कर दिया गया) जिसके लिए केन्द्र और राज्य-वार ब्यौरा उपलब्ध नहीं है में से है, उस हद तक केन्द्र का परिव्यय अधिक हो सकता है।

परिव्यय की वित्त-व्यवस्था
(Financing of Plan Outlay)

चतुर्थ योजना में सरकारी क्षेत्र में परिव्यय की वित्त-व्यवस्था अग्रानुसार रही–

1. India 1976, p. 172.

चतुर्थ योजना में सरकारी क्षेत्र में योजना परिव्यय की वित्त-व्यवस्था[1]

(करोड़ रु. में)

मद	आरम्भिक अनुमान	अन्तिम उपलब्ध अनुमान
1 मुख्यतया अपने साधनों से	7,102 (44 7)	5,475 (33 9)
(1) कराधान की योजना पूर्व दरों पर चालू राजस्व से बचत	1,673	(—) 236
(2) अतिरिक्त कराधान, जिसमें सार्वजनिक उद्यमों की बचत बढ़ाने के उपाय शामिल हैं	3,198	4,280
(3) रिजर्व बैंक के लाभ	202	296
(4) योजना के लिए अतिरिक्त साधन जुटाने के लिए किए गए उपायों से हुई आय को छोड़कर सार्वजनिक प्रतिष्ठानों की बचत	2,029	1,135
(क) रेल	265	(—) 165
(ख) अन्य	1,764	1,300
2. मुख्यतया घरेलू रिणों के जरिए	6,186 (38 9)	8,598 (53 2)
(1) सार्वजनिक रिण, बाजार और जीवन बीमा निगम से सरकारी उद्यमों द्वारा लिए गए रिणों सहित (शुद्ध)	2,326	3,145
(2) छोटी बचत	769	1,162
(3) वार्षिकी जमा, अनिवार्य जमा, इनामी बाँड और स्वर्ण बाँड	(—) 104	(—) 98
(4) राज्य भविष्य निधियाँ	660	874
(5) इस्पात समानीकरण निधि (शुद्ध)	—	—
(6) विविध पूंजीगत प्राप्तियाँ (शुद्ध)	1,685	1,455
(7) घाटे का वित्त	850	2,060
3 कुल घरेलू साधन (1+2)	13,288	14,073 (87 1)
4 विदेशी सहायता	2,614 (16 4)	2,087 (12 9)
5 कुल साधन (3+4)	15,902 (100 0)	16,160 (100 0)

कोष्ठकों में दिए गए आँकड़े कुल के प्रतिशत हैं।

1 India 1976, p 173

उपलब्धियाँ (Achievements)[1]

चतुर्थ योजना के अन्तर्गत वृद्धि की दर का लक्ष्य 5·7% वार्षिक था, परन्तु सन् 1969-70 में यह 5·7% रही। सन् 1970-71 में यह घटकर 4·9%, 1971-72 में 1·4%, 1972–73 में (–) 0·9% और 1973–74 में 3·1% रह गई। योजना के प्रत्येक वर्ष में कृषि और उद्योग जैसे मुख्य क्षेत्र में भिन्न प्रकार के रुख दिखाई दिए।

चौथी योजना में खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य 12·9 करोड़ टन था। अन्तिम अनुमानों के अनुसार सन् 1973–74 में यह उत्पादन 10·4 करोड़ टन था। उत्पादन कम होने का मुख्य कारण मौसम था। योजना में अपनाई गई नई कृषि नीतियों से गेहूँ के उत्पादन में नई सफलताएँ मिली। हालाँकि चावल का उत्पादन सन्तोषजनक था, परन्तु इस क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय तकनीकी सफलता प्राप्त नहीं हुई। दालों और तिलहनों के उत्पादन में वृद्धि की दर योजना में अपेक्षित वृद्धि की दर से कम थी।

जब चौथी पंचवर्षीय योजना बनाई गई थी तब आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी और औद्योगिक क्षेत्र की बहुत क्षमता का उपयोग भी नहीं हो रहा था। इसलिए मौजूदा क्षमता का भली प्रकार प्रयोग इस योजना का एक मुख्य उद्देश्य था। योजना के वर्षों में औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि की दर आँके गए 8 से 10% से कम थी। योजना के पहले चार वर्षों में यह क्रमशः 7·3, 3·1, 3·3 और 5·3% थी। सन् 1973–74 में केवल नाममात्र की वृद्धि (एक प्रतिशत से भी कम) हुई। कुछ उद्योगों में तो उत्पादन की क्षमता कम थी, परन्तु कई अन्य प्रमुख उद्योगों—जैसे इस्पात और उर्वरक की उत्पादन क्षमता का उपयोग करने में बिजली और कच्चे माल की कमी और संचालन की समस्याओं के कारण रुकावट पड़ी।

बाधाओं के बावजूद योजना-काल की उपलब्धियाँ सराहनीय रहीं और राष्ट्र शक्तिशाली ढंग से आत्मनिर्भर तथा कुशल अर्थ-व्यवस्था की ओर बढ़ा जिसका लेखा-जोखा निम्नांकित तालिका से स्पष्ट होता है—

आर्थिक प्रगति आँकड़ों में[2]

मद	1960-61	1965-66	1973-74
राष्ट्रीय आय			
शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन			
वर्तमान मूल्यों पर	13,300 करोड़ रु.	20,600 करोड़ रु.	49,300 करोड़ रु.
स्थिर मूल्यों पर	13,300 करोड़ रु.	15,100 करोड़ रु.	19,700 करोड़ रु.
प्रति व्यक्ति आय वर्तमान			
मूल्यों पर	306 रु.	426 रु.	860 रु.
स्थिर मूल्यों पर	306 रु.	311 रु.	340 रु.

1. India 1976, p. 174.
2. भारत सरकार : सफलता के दस वर्ष (1966-1975), पृष्ठ 47-53.

मद	1960-61	1965-66	1973-74
कृषि			
कुल बोया गया क्षेत्र	13 करोड़ 30 लाख हैक्टेयर	13 करोड़ 60 लाख हैक्टेयर	14 करोड़ 10 लाख हैक्टेयर
एक से अधिक फसलों वाला क्षेत्र	2 करोड़ हैक्टेयर	1 करोड़ 90 लाख हैक्टेयर	2 करोड़ 60 लाख हैक्टेयर
शुद्ध सिंचित क्षेत्र	2 करोड़ 50 लाख हैक्टेयर	2 करोड़ 70 लाख हैक्टेयर	3 करोड़ 20 लाख हैक्टेयर
उर्वरकों की खपत	3 लाख 6 हजार टन	7 लाख 28 हजार टन	28 लाख 39 हजार टन
खाद्यान्नों का उत्पादन	8 करोड़ 20 लाख टन	7 करोड़ 20 लाख टन	10 करोड़ 36 लाख टन
पशुओं की संख्या	33 करोड़ 60 लाख	34 करोड़ 40 लाख	35 करोड़ 50 लाख
सहकारी ऋण			
प्राथमिक कृषि सहकारियाँ			
संख्या	2 लाख	2 लाख	2 लाख
सदस्य संख्या	1 करोड़ 70 लाख	2 करोड़ 61 लाख	3 करोड़ 68 लाख
दिए गए रिण (अल्पावधि और मध्यावधि)	203 करोड़ रु.	342 करोड़ रु	315 करोड़ रु
उद्योग और खनन			
कोयले का उत्पादन	5 करोड़ 60 लाख टन	7 करोड़ टन	8 करोड़ 10 लाख टन
क्रूड पेट्रोलियम	4 लाख 54 हजार टन	30 लाख 22 हजार टन	71 लाख 98 हजार टन
लौह अयस्क	1 करोड़ 10 लाख टन	1 करोड़ 80 लाख टन	3 करोड़ 40 लाख टन
अल्यूमीनियम	18 हजार टन	62 हजार टन	1 लाख 48 हजार टन
चीनी	26 लाख 99 हजार टन	33 लाख 88 हजार टन	37 लाख 45 हजार टन
वनस्पति	3 लाख 40 हजार टन	4 लाख 1 हजार टन	4 लाख 49 हजार टन
चाय	32 करोड़ किग्रा.	37 करोड़ 30 लाख किग्रा.	46 करोड़ 50 लाख किग्रा

मद	1960-61	1965-66	1973-74
काफी	54 हजार टन	62 हजार टन	92 हजार टन
सूती कपड़ा	670 करोड़ मीटर	740 करोड़ मीटर	780 करोड़ मीटर
जूते (चमड़े और रबड़ के)	5 करोड़	6 करोड़	5 करोड़
	40 लाख जोड़े	90 लाख जोड़े	40 लाख जोड़े
कागज और गत्ता	3 लाख	5 लाख	6 लाख
(पेपर बोर्ड)	50 हजार टन	58 हजार टन	51 हजार टन
टायर (साइकिल, ट्रैक्टर	1 करोड़	1 करोड़	2 करोड़
और विमानों के)	12 लाख	86 लाख	21 लाख
ट्यूब (साइकिल, ट्रैक्टर,	1 करोड़	1 करोड़	1 करोड़
और विमानों के)	33 लाख	87 लाख	46 लाख
अमोनियम सल्फेट	80 हजार टन	84 हजार टन	1 लाख
			21 हजार टन
सुपर फास्फेट	52 हजार टन	1 लाख	1 लाख
		10 हजार टन	20 हजार टन
साबुन	1 लाख	1 लाख	2 लाख
	45 हजार टन	67 हजार टन	11 हजार टन
सीमेंट	80 लाख टन	1 करोड़	1 करोड़
तैयार इस्पात	24 लाख टन	8 लाख टन	47 लाख टन
डीजल इन्जन	55·50 लाख	45 लाख टन	47 लाख टन
शक्ति चालित पम्प	1 लाख, 9,000	1 लाख 1,200	1 लाख 37,70[illegible]
सिलाई मशीनें	3 लाख 3,000	2 लाख 44 हजार	3 लाख27 हजार
घरेलू रेफ्रिजरेटर	11 700	4 लाख 30 हजार	3 लाख
बिजली के मीटर	7 लाख	30,600	1 लाख 13,300
	28 हजार	17 लाख	29 लाख
	अश्व शक्ति	53 हजार	8 हजार
बिजली के लैम्प	4 करोड़	अश्व शक्ति	अश्व शक्ति
	85 लाख	7 करोड़	13 करोड़
बिजली के पंखे	10 लाख	21 लाख	32 लाख
	59 हजार	13 लाख	23 लाख
रेडियो सेट	2 लाख	58 हजार	20 हजार
	82 हजार	6 लाख	17 लाख
साइकिलें	10 लाख	6 हजार	74 हजार
	71 हजार	15 लाख	25 लाख
बिजली उत्पादन	1,700 करोड़ केडब्ल्यूएच.	74 हजार	77 हजार
		3,681 करोड केडब्ल्यूएच.	7,275 करोड़ केडब्ल्यूएच.
औद्योगिक उत्पादन का सूचक (1960=100)	100	154	201

मद	1960-61	1965-66	1973-74
सामान तैयार करने वाले उद्योग			
पंजीकृत कारखाने	43 हजार	48 हजार	80 हजार
उत्पादन पूंजी	2 700 करोड रु.	8,000 करोड रु.	14,800 करोड रु
रोजगार में लगे मजदूर	33 लाख	39 लाख	60 लाख
व्यावसायिक शिक्षा पाने वाले व्यक्ति (इंजीनियरिंग)			
स्नातक	7,500	12,900	14,30)
स्नातकोत्तर	500	1,000	1,400
चिकित्सा			
स्नातक	4,70)	7,300	10,200
स्नातकोत्तर	500	1,100	1,900
कृषि			
स्नातक	2,600	4,900	4 600
स्नातकोत्तर	600	1,200	1,700
पशु चिकित्सा			
स्नातक	813	889	924
स्नातकोत्तर	104	90	244
रेलें			
रेलमार्ग की लम्बाई	57 हजार किमी	59 हजार किमी	60 हजार किमी
यात्री किलोमीटर	7,800 करोड	9,700 करोड	13,600 करोड
माल भाड़ा (टन किलोमीटर)	8,800 करोड	11,700 करोड	12,200 करोड
चालू रोलिंग स्टॉक इंजन	11 हजार	12 हजार	11 हजार
यात्री डिब्बे	28 हजार	33 हजार	36 हजार
माल के डिब्बे	3 लाख 8 हजार	3 लाख 70 हजार	3 लाख 88 हजार
सड़कें			
पक्की	2 लाख 63 हजार किमी.	3 लाख 43 हजार किमी.	4 लाख 74 हजार किमी
सड़कों पर मोटर गाड़ियों की संख्या	6 लाख 94 हजार	10 लाख 99 हजार	20 लाख 88 हजार
जहाजरानी			
जहाज	172	221	274
सकल रजिस्टर्ड टन-भार	8 लाख 58 हजार	15 लाख 40 हजार	30 लाख 90 हजार
डाक और अन्य सेवाएं			
डाकघर	77 हजार	97 हजार	1 लाख 17हजार

मद	1960-61	1965-66	1973-74
तार घर	12 हजार	13 हजार	17 हजार
टेलीफोन	4 लाख	8 लाख	16 लाख
	63 हजार	58 हजार	37 हजार
समाचार-पत्रों की प्रचार संख्या	2 करोड़	2 करोड़	3 करोड़
रेडियो लाइसेंस	10 लाख	50 लाख	31 लाख
	20 ,,	40 ,,	1 करोड़
टेलीविजन लाइसेंस	—	200	40 लाख
			1 ,,
			63 हजार
भुगतान सन्तुलन			
विदेशी मुद्रा कोष	304 करोड़ रु	298 करोड़ रु	947 करोड़
विदेशी व्यापार			
निर्यात	660 करोड़ रु.	810 करोड़ रु	2,483 करोड़ रु
आयात	1,140 करोड़ रु.	1,394 करोड़ रु.	2,921 करोड़ रु

नोट—1973-74 के आंकड़े स्थायी हैं ।

7 पाँचवीं पंचवर्षीय योजना

(1974-79)

(THE FIFTH FIVE YEAR PLAN, 1974-79)

पाँचवी पचवर्षीय योजना 1 अप्रेल, 1974 से लागू की गई। इसे 31 मार्च, 1979 को समाप्त होना था, किन्तु जनता पार्टी की सरकार द्वारा इसे अवधि से एक वर्ष पूर्व ही 31 मार्च, 1978 को समाप्त कर दिया गया है। 1 अप्रेल, 1978 से नई राष्ट्रीय योजना चालू की गई। तथापि पाँचवी पचवर्षीय योजना का विस्तृत अध्ययन नितान्त आवश्यक है क्योकि इससे हमें हमारी अर्थ-व्यवस्था के विकास की झाँकी मिलती है और हमारे अध्ययन का तारतम्य खण्डित नही होता।

पाँचवी पचवर्षीय योजना यद्यपि 1 अप्रेल, 1974 से लागू कर दी गई, लेकिन विभिन्न कठिनाइयो के कारण योजना के मूल प्रारूप को लम्बे अर्से तक अन्तिम रूप नही दिया जा सका है। राष्ट्रीय विकास परिषद् ने सितम्बर, 1976 मे पाँचवीं पचवर्षीय योजना को सशोधित रूप मे अन्तिम रूप से स्वीकार किया। जिन कारणों से योजना को सशोधित रूप मे स्वीकार करना पडा, उनका विवेचन परिषद् मे 'आर्थिक स्थिति की समीक्षा' शीर्षक के अन्तर्गत किया।

पाँचवी योजना के दृष्टिकोण पत्र को 'आर्थिक स्वतन्त्रता का घोषणा-पत्र' कहा गया और दो मुख्य उद्देश्यो पर बल दिया गया—गरीबी का उन्मूलन तथा आत्म निर्भरता। योजना की रीति-नीति म इन बातो पर भी विशेष बल दिया गया-(1) उत्पादन बढाने वाले रोजगार का विस्तार, (2) समाज कल्याण कार्यक्रमो को और आगे बढाने, (3) गरीब लोगो के लिए उचित भावो पर उपभोग वस्तुएँ मिल सकें, इसके लिए पर्याप्त वसूली और वितरण की प्रणाली, (4) निर्यात की वृद्धि और आयात होने वाली चीजो की जगह देशी चीजें पैदा करने का जोरदार प्रयत्न (5) अनिवार्य उपभोग पर कडाई से पाबन्दी, (6) कीमतो, वेतनो और आयो का समुचित सन्तुलन, तथा (7) सामाजिक, आर्थिक और क्षेत्रीय असमानताएँ घटाने के लिए सस्थागत, वित्तीय तथा अन्य उपाय।

पाँचवी योजना के मूल प्रारूप मे 53,411 करोड रुपये का परिव्यय निर्धारित किया गया जिसमे 37,250 करोड रुपये सार्वजनिक क्षेत्र के लिए और 16,161 करोड रुपये निजी क्षेत्र के लिए थे। किन्तु सितम्बर 1976 मे स्वीकृत सशोधित

योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में 39,303·24 करोड़ रुपये खर्च करने का प्रावधान किया गया जो मूल प्रारूप-योजना से लगभग 2,000 करोड़ रुपये अधिक था। अलग-अलग मदों को लें तो सशोधित योजना में व्यय का आवंटन इस प्रकार रखा गया।

मद	व्यय राशि (करोड़ रु. में)
कृषि तथा इससे सम्बन्धित विषय	4643·50
सिंचाई तथा बाढ़ नियन्त्रण	3440·18
बिजली	7293·90
उद्योग तथा खनन्	10200 60
परिवहन तथा संचार	6881·43
शिक्षा	1284·29
समाज तथा सामुदायिक सेवाओं पर	4759·77
पहाड़ी तथा आदिवासी क्षेत्रों पर	450·00
अन्य विविध क्षेत्रों पर	333·73

पाँचवी पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में जिन विषयों को प्राथमिकता मिली थी, उन्हें अपरिवर्तित रखा गया है।

पाँचवी योजना की 39303 24 करोड़ रु की राशि में केन्द्र का योगदान 19954 10 करोड़ रु राज्यों का 18265 08 करोड़ रु संघीय क्षेत्र का 634·06 करोड़ रुपये तथा पहाड़ी और आदिवासी क्षेत्रों का 450 करोड़ रुपये का रखा गया।

संशोधित योजना की यह मोटी रूपरेखा है। अग्रिम विवरण में योजना के सार-संक्षेप[1] को दिया जा रहा है। इससे हमें संशोधित योजना की सभी मुख्य बातों की संक्षिप्त किन्तु ठोस जानकारी मिल सकेगी।

प्रस्ताव

पाँचवी योजना पर प्रस्ताव : समाज के सभी वर्गों से अपील

पाँचवी पंचवर्षीय योजना के मसविदे के अन्तिम रूप पर पूरी तरह विचार करते हुए,

आत्म-निर्भरता और गरीबी हटाने के उद्देश्यों को पुन. स्वीकार करते हुए; मुद्रा-स्फीति की रोकथाम के लिए किए गए प्रभावी उपायों को देखते हुए;

कृषि, सिंचाई, ऊर्जा आदि महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों को दी गई प्राथमिकता का समर्थन करते हुए;

नए आर्थिक कार्यक्रम को कार्यान्वित करने में राष्ट्र के मनोबल और निष्ठा को जानते हुए;

विशाल मात्रा में किए गए विनियोजनों से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त

1. योजना जनवरी-फरवरी, 1978 में प्रकाशित 'सार-संक्षेप' का ही लघु रूप। विस्तार के लिए देखें योजना आयोग द्वारा प्रकाशित 'पाँचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79)' अक्टूबर, 1976

करने की सतत् आवश्यकता और ससाधन जुटाने की महती आवश्यकता को समझते हुए;

राष्ट्रीय विकास परिषद् अपनी सितम्बर, 1976 की इस बैठक मे पांचवी पंचवर्षीय योजना को स्वीकार करती है; और

समाज के सभी वर्गों के लोगो से योजना मे निर्धारित लक्ष्य पूरा करने के राष्ट्रीय प्रयास मे सहयोग प्रदान करने की अपील करती है।

विद्युत और सिंचाई प्रणालियों पर प्रस्ताव

सिंचाई और विद्युत प्रणालियो मे देश ने काफी पूंजी लगाई है और यह निश्चित है कि आगामी वर्षों मे भी इन क्षेत्रो मे योजना ससाधनो का अधिक भाग लगाना होगा। इसलिए यह बहुत ही जरूरी है कि ये क्षेत्र अब राज्यो के बजट पर भार न रहकर उसमे अपना योगदान करें।

राष्ट्रीय विकास परिषद् यह निश्चित करती है कि सिंचाई प्रणालियाँ अपना सचालन खर्च पूरा करें और सम्भव हो तो इससे कुछ अधिक भी प्राप्त करें और विद्युत् प्रणालियां भी अपना खर्च पूरा करें और लगाई गई पूंजी पर यथोचित लाभ भी दें। निम्नलिखित प्रकार से कार्यवाही तुरन्त की जानी चाहिए—

(i) विद्युत और सिंचाई प्रणालियो मे पहले से निर्मित क्षमता का भरपूर उपयोग किया जाए,

(ii) ऊपरी खर्च और कार्य-सचालन व्यय घटाकर, लागत घटाएँ, नुकसान और चोरी कम से कम हो और बकाया रकम की वसूली मे सुधार करें,

(iii) कुशल प्रबन्ध-व्यवस्था से परियोजनाएँ समय पर पूरी करें,

(iv) जहाँ कही जरूरी हो, वहां दर बढाएं।

आर्थिक स्थिति की समीक्षा

पचवर्षीय योजना का मसौदा सन् 1972–73 के मूल्यो के आधार पर और 1973–74 के पूर्वार्द्ध मे विद्यमान आर्थिक स्थिति के सन्दर्भ मे तैयार किया गया था किन्तु उसके बाद स्थिति मे दो बडे परिवर्तन हुए—मुद्रा-स्फीति का दबाव बढा और सितम्बर, 1974 तक दबाव बढता रहा और अन्तर्राष्ट्रीय तेल सकट के बाद भुगतान सन्तुलन की स्थिति विषम हो गई।

सितम्बर, 1974 तक मूल्यो का सूचक अक 31·8 प्रतिशत बढ गया। इसमें से दो तिहाई मूल्य-वृद्धि खाद्य पदार्थों और औद्योगिक कच्चे माल मे हुई। समग्र मूल्य-वृद्धि मे मशीनो, परिवहन उपकरणो और तैयार माल के दामो मे बढोत्तरी का योग एक चौथाई से कुछ ही अधिक था। मुद्रा-स्फीति का दबाव पहली बार सन् 1972–73 मे भयकर सूखे की स्थिति के कारण अनुभव किया गया और उसके बाद अनेक आवश्यक वस्तुओ, कच्चे माल और निवेशो की कमी अनुभव की गई। बिजली की कमी और आयातित माल के अधिक मूल्यो तथा उनकी पर्याप्त उपलब्धि के कारण सन् 1973–74 मे औद्योगिक उत्पादन मे शिथिलता आई। मूल्य-स्थिति धन की आपूर्ति मे निरन्तर बढोतरी से विषम हो गई। धन की आपूर्ति मे वृद्धि का आंशिक कारण

घाटे की अर्थ-व्यवस्था और आंशिक कारण वाणिज्यिक क्षेत्र के बैंक ऋण में अत्यधिक बढ़ोत्तरी था। सन् 1973–74 मे धन की आपूर्ति मे 15·4 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई जो 1972–73 मे हुई 15 9 % की बढ़ोत्तरी के अलावा थी। धन की अतिरिक्त सप्लाई और बिना हिसाब के (करों की चोरी से बचाए गए) धन से वस्तुओं की स्थिति मे माँग की बहुलता हो गई। सट्टेबाजों और असामाजिक तत्त्वों की गतिविधियों पर इसका अधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। लागत और दामों मे बढ़ोत्तरी होने से मध्यवर्ती माल जैसे कि इस्पात, कोयला सीमेंट अल्यूमीनियम के दाम रक्षात्मक कार्यवाई के रूप मे बढ़ाने पड़े। चावल और गेहूँ जैसे महत्त्वपूर्ण अनाजों के वसूली और विक्रय दामों मे भी उल्लेखनीय बढ़ोत्तरी हुई। इसका न केवल जीवन-निर्वाह-व्यय सूचक-अंक पर सीधा प्रभाव पड़ा बल्कि इससे मुद्रा-स्फीति की प्रवृत्तियों को भी बल मिला।

भुगतान सन्तुलन की स्थिति पर भी काफी दबाव पड़ा। बड़ी मात्रा में खाद्यान्न और अन्य जीवनोपयोगी वस्तुएँ आयात करनी पड़ी। तेल के मूल्यों में चार गुनी बढ़ोत्तरी और खाद्यान्नो, उर्वरकों, मशीनो एवं उपकरणों, अलौह धातुओं एवं अन्य आयातित वस्तुओं के मूल्यों अर्थात् खाद्यान्नों, उर्वरकों और पैट्रोल, चिकनाई तथा तेल पर होने वाला व्यय सन् 1974–75 मे कुल आयात व्यय का 53·2% हो गया जबकि यह व्यय सन् 1973–74 में 42·6% और 1972–73 मे 23% ही था। समग्र रूप से इन वस्तुओं के आयात होने वाला खर्च सन् 1972–73 मे 431 करोड़ रु. से बढ़कर 1973–74 मे 1260 करोड़ रुपये और 1974–75 मे 2500 करोड़ रु. हो गया। नि सन्देह निर्यात का मूल्य भी बढ़ा, लेकिन भुगतान सन्तुलन की स्थिति निरन्तर घाटे की बनी रही। सन् 1972–73 का 103·4 करोड रुपये का व्यापार अधिशेष 1973–74 मे 432 करोड रुपये के घाटे में और 1974–75 मे 1190 करोड़ रुपये के घाटे मे परिवर्तित हो गया। इस प्रवृत्ति का कारण सन् 1973 के बाद व्यापार में तेजी से कमी होना और अधिक मात्रा मे माल का मगाना था। इस कारण भुगतान सन्तुलन सम्बन्धी घाटा पूरा करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष से विशेष तेल सुविधा सहित 485 करोड़ रुपये का ऋण लेना पड़ा। इन घटनाओं तथा कुछ अन्य देशों में विषम आर्थिक स्थिति और अस्थिर अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-स्थिति के कारण पाँचवीं योजना पर प्रतिकूल प्रभाव पडा।

इससे योजना के वित्तीय तथा भौतिक आकार और भुगतान सन्तुलन की स्थिति विकृत हो गई। लागत में वृद्धि, सार्वजनिक उपभोग पर अधिक परिव्यय और गैर-विकास कार्यों के खर्च मे बढ़ोत्तरी से योजना के साधनों मे कमी हो गई जिसके परिणामस्वरूप कार्यक्रमो मे शिथिलता आ गई। निजी क्षेत्र के पूँजी-निवेश पर भी इसका प्रभाव पड़ा। देश और विदेश मे इस प्रकार की अस्थिर परिस्थितियों मे योजना को अन्तिम रूप देने का काम अधिक स्थिरता आने तक के लिए रोक देना पड़ा।

लेकिन योजना को अन्तिम रूप देने को स्थगित करने का अर्थ यह नही था

कि योजना को छुट्टी दे दी गई। इसका अर्थ केवल यह था कि बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप योजना परिव्यय की नये सिरे से व्यवस्था की जा रही थी। इसका अर्थ यह भी था कि योजना तैयार करते समय अर्थ-व्यवस्था की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। देश में मुद्रा-स्फीति को रोकने के लिए और तेजी से बदलती हुई अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के अनुसार व अर्थ-व्यवस्था को ठीक रूप से रखने के लिए तत्काल कदम उठाने आवश्यक थे। इसके लिए यह आवश्यक हो गया कि मसविदे के उद्देश्यों के अनुरूप प्राथमिकताओं के भीतर प्राथमिकताएँ निश्चित की जाएँ। इसलिए पूँजी लगाने की दृष्टि से खाद्य और ऊर्जा योजना के सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गए। इन्हीं तथ्यों के आधार पर एक के बाद दूसरी वार्षिक योजनाएँ तैयार की गई।

1974–75 की वार्षिक योजना उस समय तैयार की गई जब मुद्रा-स्फीति की दर बहुत अधिक थी। इसलिए यह मुख्य रूप से मुद्रा-स्फीति रोकने के लिए और महत्वपूर्ण क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने के लिए तैयार की गई थी। योजना के खर्च की राशि कम रखनी थी। फिर भी इस बात का ध्यान रखा गया कि सिंचाई और उर्वरकों सहित कृषि, ऊर्जा (बिजली कोयला और तेल) इस्पात की चालू परियोजनाओं, अलौह धातुओं और कुछ बुनियादी उपभोक्ता माल तैयार करने वाले उद्योगों के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था की जाए। उपभोग न की जा रही क्षमता के पूरे उपयोग पर जोर दिया गया। इसी के साथ ही, सामाजिक सेवाओं पर व्यय कुछ कम किया गया।

वर्ष के दौरान एक विस्तृत नीति तैयार की गई और अनेक उपाय–वित्तीय, मौद्रिक और प्रशासकीय—किए गए। इनमें शामिल थे—अतिरिक्त साधन जुटाना (केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा), उच्च प्राथमिकता प्राप्त परियोजनाओं के लिए निधियों का आवंटन, धन की सप्लाई पर अंकुश और असामाजिक तत्वों पर सख्ती से प्रहार। अतिरिक्त आय के कुछ अंश का भुगतान रोका गया, लाभांश देने पर प्रतिबंध लगाया गया और उच्च आय वर्ग के करदाताओं के लिए बचत अनिवार्य कर दी गई। प्रमुख फसलों के वसूली मूल्य नहीं बढ़ने दिए गए। इन उपायों का समग्र परिणाम यह हुआ कि धन की सप्लाई में कमी हुई, मूल्य स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुआ और आवश्यक वस्तुएँ आसानी से मिलने लगीं। सन् 1974–75 में धन की सप्लाई में 6.9% की बढ़ोत्तरी हुई, जबकि इसके पिछले वर्ष 15.4% हुई थी। थोक भावों का सूचक अंक सितम्बर, 1974 और मार्च, 1975 के बीच 7.1% कम हो गया।

यद्यपि मुद्रा-स्फीति रोक दी गई, फिर भी अर्थ-व्यवस्था को अनेक बन्धनों में काम करना पड़ रहा था। सन् 1974–75 में कृषि उत्पादन में 3·1% की कमी हुई किन्तु औद्योगिक उत्पादन में 2.5% की बढ़ोत्तरी हुई। यद्यपि समग्र पूंजी-निवेश की दर (शुद्ध) में 1.2% बढ़ोत्तरी हुई किन्तु शुद्ध घरेलू बचत में केवल 0.3% वृद्धि हुई। भुगतान सन्तुलन की स्थिति में गिरावट आई।

सन् 1974–75 के अन्त तक मूल्यों में कुछ स्थिरता लाने के बाद सन् 1975–76 की वार्षिक योजना में मूल्य स्थिरता की स्थिति में विकास की ओर

ध्यान दिया जा सका। कृषि, सिंचाई, बिजली, कोयला, तेल और उर्वरकों को प्राथमिकता दी जाती रही; शीघ्र फल देने वाली परियोजनाओं की ओर विशेष ध्यान दिया गया। श्रम अनुशासन और जमाखोरों तथा तस्करों के विरुद्ध लगातार अभियान से समुचित वातावरण का निर्माण हुआ। बढ़िया फसल से अर्थ-व्यवस्था को नया बल और बढ़ावा मिला। अनुमान है कि सन् 1975–76 में राष्ट्रीय आय में 6 से 6·5% की बढ़ोत्तरी हुई—कृषि-उत्पादन में 10% की और औद्योगिक-उत्पादन में 5·7% की। सन् 1975–76 में आयात करने से और देश में 1 करोड़ 30 लाख टन अनाज की वसूली से खाद्यान्न का अच्छा खासा भण्डार (1 करोड़ 70 लाख टन) बनाया जा सका। थोक भावों का सूचक अंक जो मार्च, 1975 के अन्त में 307·1 था मार्च, 1976 के अन्त में 283·0 हो गया अर्थात् लगभग 8% की कमी। सन् 1975–76 का वर्ष, अनुमानित 490 करोड़ रु के घाटे के स्थान पर 200 करोड़ रुपये के अधिशेष के साथ समाप्त हुआ। सन् 1975–76 में भी भुगतान सन्तुलन की स्थिति चिन्ता का विषय बनी रही और व्यापार का घाटा 1216 करोड़ रुपये रहा। यह तब हुआ जबकि निर्यात में 18·4% की बढ़ोत्तरी हुई और आयात में केवल 14% की बढ़ोत्तरी हुई थी। तथापि, तस्करों के विरुद्ध कारगर कारवाई और विदेशी मुद्रा के गैर-कानूनी लेन-देन को समाप्त करने से विदेशों में रहने वाले भारतीय नागरिकों ने अधिक विदेशी मुद्रा भेजी और शुद्ध विदेशी सहायता में भी बढ़ोत्तरी हुई—इससे भुगतान सन्तुलन पर दबाव नहीं पड़ा, बल्कि पिछले वर्ष के अन्त में विदेशी मुद्रा का जो 969 करोड़ रुपये का सुरक्षित कोष था वह सन् 1975-76 के अन्त में 1885 करोड़ रुपये हो गया।

वर्ष 1975–76 में प्राप्त मूल्यों में स्थिरता और आर्थिक विकास को ध्यान में रखते हुए सन् 1976–67 के लिए पूँजी-निवेश का काफी बड़ा कार्यक्रम तैयार किया गया। सन् 1976–77 की वार्षिक योजना में 7,852 करोड़ रुपये के खर्च की व्यवस्था है, जो सन् 1975–76 के मूल योजना आवटन से 31·4% अधिक है। नए आर्थिक कार्यक्रम और सामाजिक न्याय के कार्यक्रमों की ओर अधिक ध्यान दिया गया। अर्थ-व्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रों-सिंचाई सहित कृषि, ऊर्जा और मध्यवर्ती वस्तुओं के उद्योगों को दी गई उच्च प्राथमिकता जारी रही। न केवल चालू स्कीमों पर पूरा ध्यान दिया गया वरन् नाजुक क्षेत्रों में चुनींदा आधार पर नई स्कीमें शुरू करने की भी योजना में व्यवस्था की गई। अतिरिक्त साधनों की व्यवस्था के साथ इस नीति से आशा है कि अर्थ-व्यवस्था की विकास दर बढ़ेगी।

इस प्रकार अब तक किए गए प्रयत्नों से मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति रुकी है और आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। आवश्यक कच्चा माल और मध्यवर्ती वस्तुएँ आसानी से उपलब्ध हैं। इस समय देश में पहले से अधिक आर्थिक अनुशासन है और फिर से गतिशीलता आई है। आशा है कि हाल की मूल्य-वृद्धि को प्रभावी उपायों से रोक लिया जाएगा, जो शुरू किए जा चुके हैं। सार्वजनिक एजेन्सियों के पास खाद्यान्नों का काफी सुरक्षित भण्डार है और विदेशी मुद्रा की स्थिति बहुत सन्तोषजनक है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा व्यवस्था मे भी कुछ सीमा तक स्थायित्व आ गया है । इसलिए योजना आयोग की राय मे लम्बी अवधि के लिए विचार करने के वास्ते यह सर्वथा उचित समय है । इस उद्देश्य के साथ आयोग ने पांचवी पचवर्षीय योजना के शेष दो वर्षों के विकास कार्यक्रमो की सावधानी से विस्तृत जांच की है । इससे पांचवी पचवर्षीय योजना की अधिक स्पष्ट तस्वीर सामने आई है, विशेषकर प्राथमिक क्षेत्रो के बारे मे ।

परिप्रेक्ष्य

गरीबी दूर करने और आत्म-निर्भरता प्राप्त करने के उद्देश्यो को सामने रखा गया है । यहाँ पर विकास के वृहत् परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जा रहा है, जिससे दीर्घावधि निवेश का चयन करने मे सहायता मिलगी और कार्य नीतियो को स्पष्ट किया जा रहा है जिससे लक्ष्यो को प्राप्त करने मे आने वाली बाधाओ को दूर करने मे सहायता मिलगी । ये नीतियाँ इन तीन प्रमुख क्षेत्रो से सम्बन्धित हैं—कृषि, ऊर्जा तथा महत्वपूर्ण मध्यवर्ती वस्तुएँ, रोजगार के अतिरिक्त अवसरो की व्यवस्था ।

कृषि-क्षेत्र

यह सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। कृषि और सम्बद्ध क्षेत्रो मे सकल घरेलू उत्पादन सन् 1960-61 के मूल्यो पर 1961-62 से 1973-74 तक की अवधि मे 2 07 प्रतिशत की निरन्तर वार्षिक दर से बढा । अनुमान है कि इसी अवधि मे खाद्यान्नो की उपज मे 2 72 प्रतिशत वार्षिक दर से बढोत्तरी हुई । लगभग 30 प्रतिशत जिलो मे जहाँ लगभग इतना ही फसल क्षेत्र होगा और जहाँ अधिक निवेश हुआ, कृषि उपज मे 3 प्रतिशत निरन्तर दर स बढोत्तरी हुई । दूसरे एक तिहाई जिलो मे, जहाँ कुल फसल क्षेत्र को 30 98 प्रतिशत है विकास की दर 1 से लेकर 2 99 प्रतिशत निरन्तर प्रति वर्ष तक होने का अनुमान है ।

कृषि-क्षेत्र की दीर्घावधि योजना की कार्य नीति मे समस्याग्रस्त क्षेत्रो और समाज के दुर्बल वर्गों की विशेष आवश्यकताओ पर ध्यान देने के साथ-साथ भूमिगत और सतही जल का विस्तृत सर्वेक्षण और उपयोग, कृषि के क्षेत्र मे नई तकनीकों का अधिक उपयोग, विस्तार प्रणाली तथा अधिक निवेश की पूर्ति करने के कार्यक्रम शामिल हैं ।

अनुमान है कि सन् 1961-62 से 1972-73 की अवधि मे सकल फसल क्षेत्र की विकास दर 0 54 प्रतिशत निरन्तर प्रतिवर्ष रही । राष्ट्रीय कृषि आयोग ने कुल सिंचित क्षेत्रो मे एक से अधिक फसलो की लोच के आधार पर सन् 1970-71 से 2000 ई० तक कुल फसल क्षेत्र मे वृद्धि की दर 0 66 प्रतिशत निरन्तर प्रतिवर्ष होने का अनुमान लगाया है । सम्पूर्ण देश मे सकल फसल क्षेत्र की सकल सिंचित क्षेत्र के साथ लोच 0 20 रहने का अनुमान है । पांचवीं योजना में सकल सिंचित क्षेत्र में 4 प्रतिशत की दर से बढोत्तरी होगी । यह बात निर्विवाद रूप से मानी जा सकती है । बाद की योजना अवधियो मे विकास-दर को तेज करना आवश्यक होगा ।

परिमित आधार पर यह माना जा सकता है कि पाँचवी पंचवर्षीय योजना मे सकल फसल क्षेत्र मे 0·7 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढोत्तरी होगी और बाद की अवधि मे 0·6 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि होगी।

अनुमान है कि सकल फसल क्षेत्र में सन् 1961-62 से 1972-73 की अवधि मे 0 49 प्रतिशत निरन्तर दर से बढोत्तरी हुई। पाँचवी योजना के लिए विकास दर 0·6 प्रतिशत प्रति वर्ष रखी गई है। आशा है कि खाद्यान्नेत्तर फसलों में रुचि, बाद की योजना अवधियो में बनी रहेगी।

खाद्यान्न की माँग

खाद्यान्न की माँग का अनुमान, आय के विकास और वितरण के पूर्वानुमानों पर निर्भर है। सन् 1975-76 तक आय मे हुए विकास, पाँचवी पंचवर्षीय योजना के शेष वर्षों मे आय मे 5·2 प्रतिशत प्रतिवर्ष निरन्तर वृद्धि के लक्ष्य और खाद्यान्न की खरीद तथा प्रति व्यक्ति कुल उपभोग व्यय मे वृद्धि के मध्य अनुमानित सम्बन्ध—, इसके आधार पर सन् 1978-79 मे खाद्यान्न की माँग 1276 90 लाख टन होने का अनुमान है। अभी छठी और सातवी पचवर्षीय योजनाओं मे आय मे विकास के जो लक्ष्य रखे गए हैं उनके आधार पर खाद्यान्न की माँग का अनुमान क्रमश 1509 00 लाख टन और 1782 00 लाख टन बैठता है, बशर्ते कि उपभोक्ता व्यय की तुलना मे खाद्यान्न माँग की लोच स्थिर रहे। ये अनुमान, राष्ट्रीय कृषि आयोग द्वारा लगाए गए सन् 1985 मे खाद्यान्न की अधिकतम आवश्यकता के अनुमानों के अनुरूप हैं। आयोग ने 1500 लाख टन से 1630 लाख टन का अनुमान लगाया है। किन्तु यह भी सम्भव है कि आने वाले समय मे खाद्यान्न की माँग मे कुछ कमी आए क्योंकि आय मे वृद्धि होने पर अधिकाधिक परिवार उच्चतर उपभोक्ता व्यय वर्ग मे पहुँचते हैं और तब उनकी खाद्यान्नो की माँग घटकर अन्य पदार्थों की माँग बढती है।

खाद्यान्नेत्तर फसलें

यह कार्यनीति खाद्यान्नेत्तर फसलो पर भी लागू होती है, अर्थात् सिंचाई क्षेत्र का विस्तार और अधिक उपज देने वाली किस्मो का प्रसार। वर्तमान अनुमानों के अनुसार पाँचवी पंचवर्षीय योजना की अवधि मे खाद्यान्नेत्तर फसलो मे 3·94 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि होने का अनुमान है, जो सातवी योजना की अवधि तक बढकर 4·96 प्रतिशत हो जाएगा। पशुपालन, मत्स्य उद्योग और वन उद्योग क्षेत्रों मे वृद्धि दर को शामिल कर लेने से पाँचवीं योजना की अवधि मे कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत कुल 3·94 प्रतिशत तथा छठी और सातवीं योजना की अवधियो मे 4 30 प्रतिशत वृद्धि होगी।

उर्वरक

उर्वरक की माँग सिंचाई की सुविधाओ मे वृद्धि और नई तकनीक के प्रसार पर निर्भर है। सन् 1978-79 मे पोषक तत्त्वों की माँग 48 लाख टन और 1983-84 में 80 लाख टन होने का अनुमान है।

वन उद्योग

देश के आर्थिक विकास मे वन उद्योग को महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सन् 1952 मे भारत की राष्ट्रीय वन नीति मे कहा गया था कि देश के कुल क्षेत्र के 33 प्रतिशत में वन होने चाहिए जबकि कुल क्षेत्र के 23 प्रतिशत भाग म वन हैं। सन् 1960-61 के मूल्यो के आधार पर शुद्ध घरेलू उत्पादन मे उनका अशदान 1 4 प्रतिशत है।

वन उद्योग क्षेत्र से सम्बन्धित समस्याएँ मुख्यत सगठनात्मक हैं। इस बात को देखते हुए कि भविष्य मे जमीन की स्थिति विषम होगी, वन लगाने के कार्यक्रम के साथ समन्वय करना होगा।

भूमिगत जल साधनो का सर्वेक्षण

जिन क्षेत्रो का भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण किया जा चुका है, नीचे दी गई सारणी मे देखने से पता चलता है कि अभी भी 63 प्रतिशत क्षेत्रो की जांच नही की गई है। यह कमी उत्तर-पूर्व के राज्यो, पूर्वी क्षेत्र (पश्चिम बगाल को छोडकर) मध्यवर्ती क्षेत्र और दक्षिणी क्षेत्र मे अधिक है जहाँ देश के अधिक सूखा पडने वाले इलाके हैं। उपयुक्त सर्वेक्षण और खोज के अभाव मे भूमिगत जल की चरम सम्भाव्यता मोटे तौर पर 3 5 करोड हेक्टेयर आंकी जा सकती है।

जल साधनो का व्यवस्थित भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण
(1 जनवरी 1975 को स्थिति)

क्षेत्र	सर्वेक्षणीय क्षेत्र (वर्ग कि मीटर)	पूरा किया गया सर्वेक्षण (वग कि मीटर)	शेष क्षेत्र (वग कि मीटर)	प्रतिशत
उत्तरी क्षेत्र	271293	170070	101223	37 3
उत्तर पश्चिमी क्षेत्र	140563	97953	4261 l	30 3
पश्चिमी क्षेत्र	538198	308690	229508	42 6
पूर्वी क्षेत्र	425694	153055	272639	64 0
उत्तर पूर्वी क्षेत्र	217177	25665	191512	88 2
मध्य क्षेत्र	754416	14 245	613171	81 3
दक्षिणी क्षेत्र	636624	201495	435129	68 4
योग	2983965	1098173	1885792	63 2

पांचवी योजना मे देश के भूगिगत जल ससाधनो के व्यवस्थित मूल्यांकन के लिए धन के आवटन मे पर्याप्त वृद्धि की गई है। अधिक जानकारी प्राप्त होने पर छठी पचवर्षीय योजना की अवधि मे और उसके बाद, व्यापक भूमि उपयोग योजना और भूतल तथा भूमिगत जल के उपयोग के लिए समन्वित योजना तैयार करना सम्भव होगा। राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के लिए इस प्रकार की योजना को स्थानीय और क्षेत्रीय विकास योजनाओ के साथ एकीकृत करना आवश्यक है।

ऊर्जा क्षेत्र

अर्थ-व्यवस्था के अ-नवीकरणीय ससाधन आधार को देखते हुए अधिक जोर कोयला, बिजली, क्रूड तेल और जहाँ कहीं सम्भव हो आयातित ऊर्जा स्रोत के विकल्प पर दिया गया है। सन् 1973-74 मे गैर-कृषि क्षेत्र मे जोड़े गए सकल मूल्य में ऊर्जा के इन तीन प्रमुख क्षेत्रो का हिस्सा 3·96 प्रतिशत था। आशा है कि यह हिस्सा पाँचवी योजना के अन्त मे 5·00 प्रतिशत और छठी योजना के अन्त मे 5·56 प्रतिशत हो जाएगा।

कोयला क्षेत्र के संशोधित्त उत्पादन अनुमानो के अनुसार सन् 1978–79 मे 12 करोड़ 40 लाख टन कोयले का उत्पादन होगा और 1983–84 मे 18 करोड़ 50 लाख टन हो जाएगा। आशा है कि इस क्षेत्र मे सातवी योजना के दौरान भी 7 से 8 प्रतिशत प्रतिवर्ष की निरन्तर विकास दर बनी रहेगी।

बिजली उत्पादन के कार्यक्रम और परिपोषण एव वितरण मे होने वाले नुकसान को कम से कम करके 1978–79 तक 90 अरब किलोवाट घण्टे की बिजली की माँग पूरी की जा सकेगी। वर्तमान अनुमानो के अनुसार छठी योजना के अन्त मे मोटे तौर पर 138 अरब यूनिट बिजली की खपत होगी। आशा है कि सातवी योजना म बिजली क्षेत्र मे 8 5 से 9 5 प्रतिशत विकास दर बनाए रखेगा।

सन् 1960–1973 की अवधि मे तेल शोधक कारखानो के उत्पादों की खपत 8 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की निरन्तर दर से बढी है। उपयुक्त मौद्रिक उपायों और तेल उत्पादो के अनावश्यक प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाकर सन् 1974–75 में खपत का स्तर 1972 के स्तर पर ले आया गया और अतिरिक्त माँग नियन्त्रित कर दी गई है। आशा है कि सन् 1978–79 मे उर्वरक, परिवहन, सिंचाई, उद्योग और घरेलू ईंधन जैसे महत्वपूर्ण आवश्यक्ताओ सहित पैट्रोलियम उत्पादों की कुल आवश्यकता 2 85 करोड़ टन होगी। तेल की खोज और शोधन दोनों क्षेत्रों मे साथ-साथ विकास से तब तक 1 करोड़ 41 लाख 80 हजार टन क्रूड तेल का उत्पादन होगा जबकि योजना के मसविदे मे 1 करोड़ 20 लाख टन का लक्ष्य था। पाँचवी योजना के दौरान क्रूड तेल क्षेत्र का 14 68 प्रतिशत की दर से विकास होगा। सन् 1983–84 तक उत्पादन का स्तर मोटे तौर पर 2 करोड 20 लाख टन होने की सम्भावना है। सन् 1978–79 तक देश मे 3 करोड़ 15 लाख टन तेल साफ करने की क्षमता होगी।

अ-नवीकरणीय संसाधन

महत्त्वपूर्ण मध्यवर्ती वस्तुओ की योजना अ-नवीकरणीय ससाधनो से सम्बद्ध होनी चाहिए क्योंकि पूरे प्रयत्न करने पर भी पुनर्प्राप्ति का अनुपात इकाई से कम ही होता है। भूमि और समुद्र से अ-नवीकरणीय ससाधनो के विकास के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(क) प्राकृतिक संसाधनो की विस्तृत वस्तु सूची तैयार करना,

(ख) न्यूनतम समाजमूलक कीमतो पर बढती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति,

(ग) राष्ट्र के अ-नवीकरणीय ससाधनों का सर्वोत्तम उपयोग, जिसमें बरबादी की दर शून्य हो।

(घ) तकनीक, उत्पादन और सरक्षण के क्षेत्र मे आत्म-निर्भरता प्राप्त करना,

(च) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की उन सम्भावनाओं का उपयोग जो दीर्घकालिक योजना के अन्य उद्देश्यों के अनुरूप हो।

(छ) पुन उपयोग की सम्भावनाओं का लाभ उठाना, और

(ज) अनुसधान और विकास कार्य करना।

औद्योगीकरण की वर्तमान स्थिति मे, सकल घरेलू उत्पाद या निर्माण गतिविधियों से खनिज उपभोग की लोच इकाई से अधिक है। यह अनुभव, अन्य देशों मे औद्योगीकरण की ऐसी ही स्थिति से प्राप्त हुए अनुभव के अनुरूप है।

नीचे दी गई सारणी मे भूवैज्ञानिक मानचित्रण की स्थिति दिखाई गई है। यथेष्ट प्रयासो के बाद भी देश मे भौगोलिक क्षेत्र के केवल 46 14% भाग का भूवैज्ञानिक मानचित्र 1 50000 के पैमाने पर तैयार किया जा सका है। भू-वैज्ञानिक मानचित्र बनाने के काम को भूमि प्रयोग और अ-नवीकरणीय ससाधनों के उपयोग की योजना के सम्पूर्ण कार्यक्रम मे प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

भारत में भूवैज्ञानिक मानचित्रण की स्थिति
(1:63360/50,000)
(1 जनवरी, 1975 की स्थिति)

देश क क्षत्र	उनका क्षेत्रफल	मानचित्रित क्षत्र	
	(वग कि मीटर)	(वग कि मीटर)	प्रतिशत
पूर्वी क्षेत्र	699837	331631	47 39
उत्तरी क्षेत्र	668504	174435	26 09
पश्चिमी-मध्य क्षत्र	1292614	640220	49 53
दक्षिणी क्षत्र	638032	375873	59 91
योग	3298987	1522159	46·14

परिमित श्रेणी के भण्डार, जिनके सम्बन्ध मे जानकारी विस्तृत अन्वेषणो से प्राप्त हुई है, भविष्य की दीर्घकालिक ससाधन योजना की अपेक्षाओं से कम है। आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कई खनिजो, जैसे क्रोमाइट, कायनाइट और मैगनीज के ज्ञात भण्डार सन् 2000 तक रिक्त हो जाएँगे। यह गम्भीर प्रश्न है। ताँबा और जस्ते जैसे ज्ञात भण्डारो का आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के उद्देश्य से कम से कम दर पर उपयोग किया जाए तब भी ये अगले 15 वर्षों मे समाप्त हो जाएँगे। इसलिए यह स्वाभाविक है कि इस स्थिति का असर इन धातुओं की आयात योजना और उपभोग दोनो पर पड़े। लौह अयस्क और बॉक्साइट जैसे महत्त्वपूर्ण खनिजो के भण्डार आन्तरिक माँग पूरी करने और निर्यात करने के लिए पर्याप्त हैं। चूने के पत्थर के भण्डार भी पर्याप्त मात्रा मे हैं।

महत्वपूर्ण औद्योगिक मध्यवर्ती

इस्पात की माँग के सम्बन्ध मे किए गए अध्ययनों से ज्ञात होता है कि सन् 1983–84 तक आन्तरिक जरूरतें पूरी की जा सकती हैं और निर्यात भी किया जा सकता है। सातवी योजना के पूर्वार्द्ध मे तैयार इस्पात विशेषन आकृति वाले उत्पादो की अपेक्षित मात्रा मे उपलब्धि सुनिश्चित करने के लिए नई पूँजी लगाने के सम्बन्ध मे निर्णय करने होगे। योजना प्रारूप मे एल्यूमीनियम के उत्पादन का लक्ष्य 4 लाख टन रखा गया था, जिसके अब छठी योजना की अवधि के अन्त तक पूरा होने की सम्भावना है। सातवी योजना की अवधि मे एल्यूमीनियम की माँग मे 50 प्रतिशत वृद्धि होने की सम्भावना है।

जनसाँख्यिकीय सम्भावनाएँ

राष्ट्रीय जनसख्या नीति मे छठी योजना की अवधि के अन्त तक जन्म-दर 25 प्रति हजार और जनसख्या मे वृद्धि की दर 1·4 करने का लक्ष्य है। इस नीति के अन्तर्गत कई बुनियादी उपाय करने का सुझाव है। इनमे विवाह की आयु मे वृद्धि, स्त्री-शिक्षा, छोटे परिवार के लाभो का व्यापक प्रचार, सन्तानोत्पत्ति सम्बन्धी शरीर-विज्ञान और गर्भ-निरोध पर अनुसधान कार्य बढाना, व्यक्तियो, समूहो और समुदायो को प्रोत्साहन और राज्यो को अनिवार्य वन्ध्याकरण कानून बनाने की अनुमति देना भी शामिल है। राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के लक्ष्य पाँचवी योजना के प्रारूप मे दिए गए लक्ष्यों के समान ही हैं जिन्हे छठी योजना की समाप्ति तक पूरा किया जाना है और सम्भावना यही है कि ये लक्ष्य पूरे हो जाएँगे। सन्1986–91 मे जनसख्या मे वृद्धि की दर 1·1 प्रतिशत होने का अनुमान है। सन् 1988–89 तक कुल जनसख्या 7254 लाख और 1991 तक 7448 लाख हो जाने की सम्भावना है। सन् 1988–89 मे ग्रामीण जनसंख्या 5451 लाख और शहरी जनसंख्या 1803 लाख हो जाने की सम्भावना है।

उत्पादन की सम्भावनाएँ

सन् 1960-61 के मूल्यों के आधार पर सन् 1961-62 से 1973-74 की अवधि मे कुल आतरिक उत्पादन में 3·40% निरन्तर वार्षिक दर से वृद्धि हुई (देखिए पृष्ठ 451 पर दी गई सारणी) और पाँचवी योजना के पहले वर्ष (1974-75) में पिछले वर्ष से केवल 0·2% वढोत्तरी हुई, तथापि सन् 1975-76 मे उल्लेखनीय प्रगति हुई और सकल राष्ट्रीय उत्पादन मे 6% की वढोत्तरी हुई। सन् 1976 79 मे आशा है कि अर्थ-व्यवस्था मे 5·2% की मिश्र दर से वृद्धि होगी।

घटक लागत पर कुल आन्तरिक उत्पादन मे वृद्धि की दर
(1961-62 से 1973-74 तक)

क्षेत्र	वृद्धि की दर (प्रतिशत)
कृषि और सम्बद्ध कायक्रम	2·07
खनन् और उत्खनन	4 04
विनिर्माण (कुल)	4·21
विनिर्माण (पंजीकृत)	4 95
विनिर्माण (अपजीकृत)	2·89
निर्माण	4 80
बिजली, गैस और जल पूर्ति	9 90
रेलें	3 27
अन्य परिवहन	5 16
अन्य सेवाएँ	*4 35*
जोड़ कुल अतिरिक्त उत्पादन	3 40

वार्षिक विकास-दर की इस रूपरेखा से अनुमान है कि पाँचवी योजना मे सकल राष्ट्रीय उत्पादन मे 4 37% की औसत वार्षिक विकास दर से बढ़ोत्तरी होगी।

इस प्रकार अब आने वाले समय मे उत्पादन के स्वरूप का सारांश प्रस्तुत किया जा सकता है। पर *अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के दबाव, उपभोक्ता व्यय का* अपेक्षित स्वरूप और प्राकृतिक समाधन (अ-नवीकरणीय समावनो सहित) अर्थ-व्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रो का निर्धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त निर्यात के अवसर और विनियोजन तथा जन उपभोग के अपेक्षित स्तर उत्पादन के वांछित स्वरूप का निर्धारण करते हैं। पाँचवी पचवर्षीय योजनावधि मे कृषि-क्षेत्र के कुल उत्पादन मे 3 94% वार्षिक दर मे वृद्धि का अनुमान लगाया गया है और छठी तथा सातवी योजना मे 4% से अधिक का अनुमान लगाया गया है।

पाँचवी पचवर्षीय योजनावधि मे खान क्षेत्र के कुल उत्पादन मे 12 58% वार्षिक दर से और विद्युत क्षेत्र में 10 12% की दर से वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया है। पाँचवी पचवर्षीय योजनावधि में विनिर्माण क्षेत्र के अन्तर्गत 6 92% निरन्तर वार्षिक की दर से विकास जारी रहेगा और छठी तथा सातवीं योजनावधियो *में यह दर 7 23 हो जाने की सम्भावना है। वृद्धि की यह रूपरेखा विकास के लक्ष्य* के अनुरूप है, जो पाँचवीं योजनावधि में 4 37% है (1976-77 से 1978-79 तक - यह लक्ष्य 5 2% है), छठी योजना में 5 65% और सातवी योजना में 6% है।

आने वाले समय में घटक लागत पर कुल आंतरिक उत्पादन के स्वरूप में परिवर्तन हो जाने की सम्भावना है। कृषि क्षेत्र मे अधिक ऊँची विकास दर की सम्भावना है—किन्तु इसका अश सन् 1973-74 मे 50 78% से घटकर सन् 1978-79 मे 48 15%, सन् 1983-84 मे 44 40% और सन् 1988-89 मे 40 25% हो जाएगा।

खान और विनिर्माण क्षेत्रो का अश सन् 1973-74 में 15 78% से बढ़ कर सन् 1978-79 मे 17 49%, सन् 1983-84 मे 19 01% और सन् 1988-89 मे 20 25% हो जाएगा।

निर्यात और आयात

सन् 1960-61 से 1973-74 की अवधि में निर्यात मे 7% वार्षिक वृद्धि हुई है। इस अवधि मे विनिर्मित वस्तुओ के निर्यात मे 12 8% वार्षिक की दर से वृद्धि हुई है और विनिर्मित वस्तुओ का अश 47 5% से बढकर 59 2% हो गया है। इस वृद्धि का मुख्य कारण नव-निर्मित और अपारम्परिक वस्तुओं के निर्यात मे वृद्धि है। इस अवधि मे यूरोपीय साझा बाजार के देशो, तेल, उत्पादक तथा निर्यातकर्ता देशो और समाजवादी देशो के साथ अधिक व्यापार हुआ। किन्तु विश्व निर्यात मे भारत का अश घट गया क्योकि जहाँ विश्व व्यापार का मूल्य 12·2% वार्षिक की दर से बढा, भारत के व्यापार में केवल 8% वृद्धि हुई।

सन् 1960-61 के बाद मे औद्योगिक मशीनो, कागज, रसायनो, लोहा और इस्पात तथा अलौह धातुओ के आयात प्रतिस्थापन मे पर्याप्त प्रगति हुई है। देश के कुल (स्थायी) पूँजी निर्माण मे आयातित मशीनरी और उपकरण का अश जो सन् 1960-61 मे 43 4% था उसमे एकदम गिरावट आई और सन् 1965-66 मे यह अश 25·3% और सन् 1973-74 मे 9 6% रह गया। यह आत्म-निर्भरता की ओर बढने का द्योतक है। चौथी योजना की अवधि मे कुल आयात के मूल्य मे वृद्धि गेहूँ, उर्वरक, अलौह धातुओ और पैट्रोल, तेल और चिकनाई उत्पादो जैसी सामग्री के मूल्य बढ जाने के कारण हुई थी।

भारत के शोधन सन्तुलन से सम्बन्धित भावी योजना का लक्ष्य आत्म-निर्भरता प्राप्त करना है। खाद्य, उर्वरक, पैट्रोलियम तथा अन्य स्नेहक पदार्थों का आयात, योजनाबद्ध विनियोजन करके आयात प्रतिस्थापन द्वारा घटाना होगा। इस्पात, औद्योगिक मशीनो, धातु से बनी वस्तुओ, सिले हुए वस्त्रो, चमडे की वस्तुओ, सागर से प्राप्त उत्पाद, इलैक्ट्रानिक्स और परिवहन उपकरणो के विनिर्माण क्षेत्रो मे पूर्ति और माँग दोनो की लोच का अधिकतम लाभ उठाकर निर्यात की मात्रा बनाए रखनी होगी। लौह अयस्क, अभ्रक और बाक्साइट जैसे प्राकृतिक ससाधनो के निर्यात मे अधिक मूल्यवान घटकयुक्त उत्पाद पर बल देना होगा और पिण्ड निर्माण, एल्यूमिना उत्पादन, अभ्रक बनाने आदि की क्षमता का विस्तार करना होगा।

आशा है कि जो बाजार भौगोलिक स्थिति के कारण भारत के लिए सुलभ हो सकते हैं उन बाजारो का निर्यात बढाया जाएगा। इन बाजारो को निर्माण, परामर्श और सयुक्त उद्यम सम्बन्धी सुविधाओ के निर्यात की सम्भावनाएँ भी उपलब्ध होगी।

छठी योजना की अवधि मे महत्त्वपूर्ण उपभोग वस्तुओ के आयात के लिए विदेशो पर निर्भरता घटाना सम्भव है। जहाँ तक मशीनो, उपकरणो तथा अन्य औद्योगिक वस्तुओं के आयात का सम्बन्ध है, भावी योजना कार्यनीति मे यह परिकल्पना की गई है कि चुनीदा आयात प्रतिस्थापना की नीति सावधानीपूर्वक कार्यान्वित की जाए। अ-नवीकरणीय संसाधनों की कमी को भी ध्यान मे रखना होगा।

रोजगार तथा जीवन-स्तर

इस बात के स्पष्ट संकेत हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने की तत्काल आवश्यकता है। किन्तु इस समस्या के सही स्वरूप को तभी समझा जा सकता है जब यह समझ लिया जाए कि शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या ग्रामीण क्षेत्र में इसकी व्यापकता का ही परिणाम है। इसके अतिरिक्त इस बात का भी पता चलता है कि यह समस्या अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग मात्रा में है।

उपर्युक्त कार्य-नीति और रोजगार-नीति तैयार करने की दृष्टि से, तीन बात आपस में सम्बन्धित हैं जिनका ध्यान रखा जाना चाहिए—(1) एक ऐसा कार्यक्रम कार्यान्वित करने की आवश्यकता है जिसमें पंचवर्षीय योजना के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों—जैसे सिंचाई, अधिक उपज देने वाली किस्मों से सम्बद्ध विस्तार कार्य आदि का सदुपयोग हो, (2) ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार पैदा करने का कार्य स्थानीय विकास सम्बन्धी कार्य-नीति से जुड़ा होना चाहिए, और (3) पट्टेदारी प्रथा में सुधार कर ग्रामीण काश्तकार वर्ग को सुरक्षित तथा छोटे काश्तकारों की खेती को लाभकारी बनाना होगा।

उपर्युक्त कार्य-नीति के निष्पादन से कुछ कार्य-संकेत मिलते हैं—(क) बीज, खाद, महत्त्वपूर्ण वस्तुओं की उपलब्धता और उनका प्रभावी रूप से उपयोग सुनिश्चित करना—योजना के उत्पादन और विनियोजन पक्ष के अन्तर्गत इस बात का ध्यान रखा गया है। (ख) कृषि के माध्यम से रोजगार की योजना का स्वरूप क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित होना चाहिए और इसलिए इस सम्बन्ध में बहुस्तरीय नीति अपनानी होगी। प्रत्येक क्षेत्र की मिट्टी और कृषि-जलवायु को ध्यान में रख कर सिंचाई की सुविधाओं की उपलब्धता के विस्तृत अनुमान तैयार किए जाने चाहिएँ जो भूतल और भूमिगत दोनों प्रकार के जल स्रोतों से सम्बन्धित हो। सिंचाई-प्राप्त और बारानी दोनों प्रकार के क्षेत्रों में नई किस्मों के विस्तार की सम्भावनाओं का अनुमान सावधानीपूर्वक लगाना होगा और उनके लिए अपेक्षित संगठनात्मक तथा निवेश सम्बन्धी सुविधाएँ सुनिश्चित करनी होंगी। इस बात का ध्यान रखना होगा कि इस काम में विसंगतियाँ उत्पन्न न होने पाएँ।

सफल स्थानीय योजना के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि 20-सूत्री कार्यक्रम में भूमि सुधार के कार्यों को प्राथमिकता दी जाए और इसे लागू करने के उपाय किए जाएँ। छोटे किसानों को और बटाईदारों को सम्पत्ति के अधिकार देने या पट्टेदारी के अन्तर्गत सुरक्षा प्रदान करने और इसके साथ कृषि कार्यक्रमों, विशेषत लघु किसानों के विकास की एजेन्सी और सीमान्तक किसानों के विकास की एजेन्सी के कार्यक्रमों के माध्यम से उत्पादन में सहायता देने की स्कीम बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। व्यापक क्षेत्रीय नीति के आधार पर बनाई गई कृषि योजना के अन्तर्गत पशुपालन, पारस्परिक बेकार वस्तुओं का और अच्छा उपयोग जैसी सहायक गतिविधियों द्वारा अतिरिक्त रोजगार पैदा करने में काफी मदद मिल सकती है।

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वे क्षेत्र के परिकल्पों पर आधारित अनुमानो के अनुसार पाँचवी योजनावधि मे कृषि क्षेत्र मे श्रम-बल की संख्या मे वृद्धि लगभग 182·6 लाख से 189·6 लाख तक होगी और छठी योजना मे 195 7 लाख से 203 9 लाख तक होगी। भारत की जैसी अर्थ-व्यवस्था है, उसमे श्रम-बल की पूर्ति के अनुमान अस्थिर रहते है। ऊपर वर्णित किए गए लक्ष्यो को सफलतापूर्वक पूरा कर लेने पर श्रम-बल की वृद्धि को पाँचवी योजनावधि मे काम पर लगाया जा सकता है और छठी योजनावधि मे पहले से ही बेरोजगार व्यक्तियों को काम देने के लिए उपयोगी प्रयास किए जा सकते हैं।

पाँचवी योजनावधि मे पजीकृत विनिर्माण क्षेत्र में विनिर्माण कार्यों मे रोजगार मे वृद्धि दर, चौथी योजनावधि की दर से काफी अधिक रहने की सम्भावना है। आने वाले समय मे इस वृद्धि की प्रवृत्ति को और तेज करना होगा। यदि खान, खनन, निर्माण, उद्योग, बिजली, रेलवे तथा अन्य परिवहन और सेवाओ के क्षेत्रो में भी लक्ष्य पूरे किए जा सकें तो भी रोजगार के अवसरो मे काफी वृद्धि हो सकती है।

अपजीकृत निर्माण क्षेत्र मे, जिसके अन्तर्गत घरेलू क्षेत्र आता है, पाँचवी पंचवर्षीय योजना मे कुटीर उद्योग क्षेत्र के प्रस्तावित कार्यक्रमो के लिए परिव्यय मे काफी वृद्धि की गई है। यह वृद्धि हाथकरघा, नारियल, रेशे, गलीचे बुनने और प्रशिक्षण तथा अन्य क्षेत्रो के योजना कार्यक्रमो के क्षेत्र में विशेष रूप से की गई है। यह सम्भावना है कि घरेलू क्षेत्र को कृषि पर आधारित वस्तुओ की पूर्ति कुछ आसानी से होने लगेगी। इस क्षेत्र से सम्बन्धित कर, ऋण और उत्पादन-सहायता नीतियो का ठीक प्रकार से प्रयोग करना अनिवार्य है ताकि और अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जा सकें। श्रम बहुलता वाले प्रौद्योगिक सुधार करने और उनका प्रसार करने की भी आवश्यकता है।

दीर्घकालीन भावी योजना के अन्तर्गत सुझायी गई रोजगार नीति मे इन बातो पर बल है—सरकारी विनियोजन दर बढाना ताकि योजनाओ में निर्धारित किए गए उत्पादन के अनुमानो को पूरा किया जा सके, कृषि योजना नीति को, विशेष रूप से उसके स्थानीय स्वरूप को व्यापक और उन्नत करना, 20-सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत भूमि सुधार लक्ष्यों को पूरा करना, छोटे किसानों को उत्पादन मे सहायता देना और अन्त मे अपजीकृत क्षेत्र मे एक उपयुक्त नीति के अन्तर्गत रोजगार के अवसर बढाना। जब एक बार, उपलब्ध श्रम-बल को लाभदायक कार्यकलापो मे लगाने की नीति सफल हो जाए तो रोजगार स्थिति के गुणात्मक पक्षो में परिवर्तन किया जाना चाहिए।

जहाँ तक रहन-सहन का सम्बन्ध है, पाँचवी योजना के प्रारूप में बताई गई कार्यनीति का ही प्रयोग करके ऊपर वर्णित रोजगार की सम्भावनाओ के साथ उपभोग के स्तरो का एकीकरण करने की व्यवस्था है। उत्पादन के वस्तु-वार अंशों मे यथोचित सशोधन करके उसका योजना मे अनुमानित उत्पादन के स्वरूप से तालमेल बिठाया गया है।

विकास की दर और स्वरूप

पाँचवी योजना अवधि मे विभिन्न क्षेत्रो मे प्रस्तावित विकास दरो (तालिका I) को वस्तु सन्तुलन की विस्तृत प्रणाली अपनाकर उत्पादन के लक्ष्यो मे बदला गया है (तालिका II)

तालिका I

उत्पादन के कुल मूल्य में वृद्धि की प्रस्तावित क्षेत्रवार दर और पाँचवीं योजना के लिए घटक लागत दर बढ़े हुए कुल मूल्य व सन् 1973–74 और 1978–79 में बढ़ हुए मूल्य की क्षेत्रवार सरचना

क्षेत्र	1973–74 की तुलना में विकास की औसत वार्षिक दर प्रतिशत 1978-79 म उत्पादन मूल्य	बढ़ा हुआ मूल्य	1974–75 की कीमतो पर बढ़े हुए कुल मूल्य और सरचना 1973–74	1978-79
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
1 कृषि	3 94	3 34	50 78	48 15
2 खनन व विनिर्माण	7 10	6 54	15 78	17 49
(क) खनन	12 58	11 44	0 99	1 37
(ख) विनिर्माण	6 92	6 17	14 79	16 11
(1) खाद्य उत्पाद	4 63	3 71	2 13	2 07
(2) वस्त्र उद्योग	3 45	3 21	3 50	3 31
(3) लकडी व कागज के उत्पाद	6·75	4 90	0 58	0 59
(4) चमडे व रबड के उत्पाद	5 50	2 47	0 16	0 15
(5) रसायन उत्पाद	10 84	10 46	1 84	2 44
(6) कोयला व पेट्रोलियम उत्पाद	7 63	7 90	0 23	0 27
(7) अधात्विक खनिज उत्पाद	7 40	7 33	1 58	1 82
(8) आधारीय धातु	14 12	13 40	1 09	1 65
(9) धातु उत्पाद	5 60	4 64	1·08	1·09
(10) गैर बिजली इजीनियरी के उत्पाद	8 40	7 99	0 61	0 73
(11) बिजली इजीनियरी उत्पाद	7 61	6 42	0 60	0 67
(12) परिवहन उपकरण	3 73	3 12	0 96	0 90
(13) औजार	5 39	4 45	0 03	0 03
(14) विविध उद्योग	6 75	4 42	0 38	0 38
3 बिजली	10 12	8 15	0 79	0 94
4 निर्माण	5 90	5 18	4 06	4 21
5 परिवहन	4 79	4 70	3 43	3 48
6 सेवाएँ	4 88	4 80	25 18	25 74
कुल		4 37	100·00	100 00

तालिका II

1978–79 में वास्तविक उत्पादन स्तर के लक्ष्य

क्र. स.	वस्तु	इकाई	1973–74	1978–79
1.	खाद्यान्न	लाख टन	1047	1250
2.	कोयला	लाख टन	790	1240
3.	लौह अयस्क	लाख टन	357	560
4.	क्रूड पेट्रोलियम	लाख टन	72	141·8
5.	सूती कपड़ा . मिल क्षेत्र	लाख मीटर	40830	48000
	असंगठित क्षेत्र	लाख मीटर	38630	47000
6.	कागज और गत्ता	हजार टन	776	1050
7.	अखबारी कागज	हजार टन	48·7	80·0
8.	पेट्रोलियम उत्पाद (चिकनाई सहित)	लाख टन	197	270
9.	नाइट्रोजन उर्वरक (N)	हजार टन	1058	2900
10	फास्फेटिक उर्वरक (P_2O_5)	हजार टन	319	770
11.	सीमेंट	लाख टन	146·7	208 0
12.	साधारण इस्पात	लाख टन	48·9	88·0
13.	अल्यूमीनियम	हजार टन	147·9	310 0
14.	तांबा	हजार टन	12·7	37 0
15.	जस्ता	हजार टन	20 8	80 0
16.	बिजली उत्पादन	के. डब्लू. एच.	72	116-117
17.	रेल यातायात	लाख टन		260

सन् 1978–79 मे उत्पादन का स्तर

सन् 1978–79 मे कुछ महत्त्वपूर्ण वस्तुओ के अनुमानित वास्तविक उत्पादन की चर्चा नीचे की गई है। बहुत से क्षेत्रो मे सन् 1978–79 के उत्पादन लक्ष्य, पाँचवी योजना के प्रारूप मे अभिधारित-स्तरो से नीचे हैं। यह दो कारणो से है। बहुत से मामलो मे सन् 1973–74 मे वास्तविक रूप से प्राप्त किया गया आधार उत्पादन पाँचवी योजना के प्रारूप मे परिकल्पित स्तर से नीचे था, सन् 1974–75 मे उत्पादन की वृद्धि बहुत कम थी यद्यपि सन् 1975–76 मे काफी सुधार हुआ।

ऊर्जा का उत्पादन और खपत—समुद्र मे खोज से अधिक तेल मिलने की आशा से सन् 1978-79 मे कच्चे तेल का देशीय उत्पादन 141·8 लाख टन होने की सम्भावना है कि जबकि पाँचवी योजना के प्रारूप मे 120 लाख टन लक्ष्य निर्धारित किया गया था। पेट्रोलियम उत्पादो की नियन्त्रित खपत के बावजूद सन् 1978-79 मे कच्चे तेल की माँग 290 लाख टन आँकी गई है, जिसके लिए लगभग 150 लाख

टन क्रूड के आयात की आवश्यकता होगी । योजना के प्रारूप मे 346 लाख टन के लक्ष्य की तुलना मे सन् 1978-79 म पेट्रोलियम उत्पादो का उत्पादन 270 लाख टन प्रत्याशित किया गया । तेल की कीमतो मे तीव्र वृद्धि के कारण तेल उत्पादो की माँग मे वृद्धि की रोकथाम और पेट्रोलियम उत्पादो की जगह ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतो के पूरे उपयोग के लिए सुविचारित कार्यवाही की गई । फिर भी अर्थ व्यवस्था की अनिवार्य आवश्यकताओ, जैसे कि नत्रजनीय उर्वरको के निर्माण के लिए नेपथा तथा ईंधन तेल की पर्याप्त व्यवस्था की गई है । इसी प्रकार, देश की प्रमुख रूप से ग्रामीण अर्थ व्यवस्था मे सडक परिवहन के महत्व को देखते हुए हाई स्पीड डीजल आयल की माँग मे काफी वृद्धि की परिकल्पना की गई है । लाइट डीजल आयल के मामले मे माँग काफी बढने की परिकल्पना, कृषि विकास कार्यक्रम मे इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका के कारण की गई है । इन बातो को ध्यान मे रखते हुए यह अनुमान किया है कि पट्रोलियम उत्पादो की खपत सन् 1978-79 मे 285 लाख टन से अधिक नही होगी । इस प्रकार सन् 1978–79 मे पेट्रोलियम उत्पादो के आयात का स्तर लगभग 15 लाख टन होगा ।

विद्युत क्षेत्र मे माँग के विश्लेषणो से यह पता चलता है कि बिजली उत्पादन सन् 1974-75 मे 76 6 अरब किलोवाट घटे से बढकर सन् 1978-79 मे कुल 118 अरब किलोवाट घटे करना पडेगा । य अनुमान उस वर्ष मे उद्योग व अन्य क्षत्रो की सम्भावित माग पर आधारित है । वर्तमान सकेत यह है कि सन् 1978-79 के अन्त तक लगभग 300 लाख किलोवाट क्षमता स्थापित हो जाएगी और ऊर्जा की उपलब्धता 116-117 अरब किलोवाट घटे के बीच होने की सम्भावना है । इससे ये काम जरूरी हो जाते हैं—परियोजनाओ की निर्माणावधि कम करना, अधिकता वाले क्षेत्र से कमी वाले क्षेत्र मे विद्युत भेजना, विद्युत प्रणाली की कार्यक्षमता मे सुधार (जैसे पारपरण व वितरण सम्बन्धी हानियो मे कमी) और विद्युत मे सम्भावित वृद्धि की पूर्ति के लिए उपलब्ध क्षमता के उपयोग मे बढोतरी ।

कोयले के उत्पादन का लक्ष्य उसकी माँग के सशोधित अनुमानो के आधार पर 1240 लाख टन निश्चित किया गया है । यह माँग सन् 1974-75 मे खपत के स्वरूप के आधार पर और कोयले की खपत वाले मुख्य क्षेत्रो जैसे, इस्पात सयत्र, विद्युत सयत्र, रेल मुख्य उद्योगो, घरेलू क्षेत्र आदि के विकास के सशोधित अनुमान के आधार पर निश्चित की गई है ।

इस्पात और अलौह धातुएँ—सन् 1978-79 मे इस्पात की 77 5 लाख टन की आन्तरिक माँग होगी जबकि उसका उत्पादन 88 लाख टन होने का अनुमान है । देश मे अनेक किस्मो के इस्पात उत्पादो की खपत के कारण यह सम्भव नही होगा कि इस्पात उत्पादो के सभी आकार-प्रकारो की माँग देशीय मिले-जुले उत्पादन से पूरी की जा सके । इससे कुछ इस्पात उत्पादो के कुछ आकारो के आयात करने की आवश्यकता होगी । ऐसे आयात सन् 1978-79 मे 4 लाख टन से अधिक बढने की सम्भावना नही है ।

अलौह धातुओं की माँग के अनुमान, विस्तृत वस्तु सन्तुलन द्वारा प्राप्त किए गए और इनकी निवेश उत्पादन मॉडल द्वारा जाँच की गई। परियोजना स्तर विश्लेषण द्वारा जांच किए गए सम्भावित क्षमता स्तरो पर आपूर्तियाँ आधारित हैं।

उर्वरक की माँग—अब तक किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि उर्वरकों का उपयोग सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धि और साथ ही नई तकनीक के प्रसार पर बहुत निर्भर करता है। इन घटकों को और हर किस्म की भूमि के अन्तर्गत उर्वरकों की मात्रा मे वृद्धि को ध्यान मे रखा गया है। ऐसा विश्लेषण हर तरह की फसल और उर्वरको की कुल अनुमानित आवश्यकताओं के बारे मे किया गया। सन् 1978-79 मे पोषक खाद के रूप में *NPK* की 48·0 लाख टन, *N* की 34 लाख टन, P_2O_5 की 8 70 लाख टन, K_2O की 5·30 लाख टन की आवश्यकता होगी। संयन्त्रवार उत्पादन की रूपरेखा से पता चलता है कि सन् 1978-79 मे 29·0 लाख टन नाइट्रोजन का उत्पादन होगा। अनुमान है कि P_2O_5 का उत्पादन 770,000 लाख टन होगा। इस अन्तर को कुल 11·30 लाख टन के आयात से पूरा किया जाएगा। (*N*-5 00 लाख टन, P_2O_5 1·00 लाख टन, K_2O 5·30 लाख टन)

सीमेंट की माँग—पाँचवी योजना के समाप्ति वर्ष में सीमेंट की आन्तरिक माँग का अनुमान वस्तु सन्तुलन प्रक्रिया से लगाया गया है। ऐसा करते समय अर्थ-व्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों जैसे कृषि, विद्युत, उद्योग, परिवहन और समाज सेवाओं में कुल स्थायी विनियोजन को ध्यान मे रखा गया है। इस प्रकार इसकी माँग का अनुमान 193 लाख टन लगाया गया है। अनुमान है कि 15 लाख टन सीमेंट की निर्यात के लिए आवश्यकता होगी। इस मात्रा को शामिल करके सन् 1978-79 मे सीमेंट की कुल माँग 208 लाख टन होने का अनुमान है।

सूती कपड़ा--सन् 1978-79 मे सगठित कारखाना क्षेत्र मे 48,000 लाख मीटर सूती कपड़े का उत्पादन होने का अनुमान है जबकि असंगठित क्षेत्र मे 47,000 लाख मीटर उत्पादन होने का अनुमान है। सूती और कृत्रिम रेशे से बनाए गए कपडो के अंशो का अनुमान, आय वृद्धि के अनुपात में विभिन्न प्रकार के कपडों के उपयोग मे अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप का अध्ययन करके लगाया गया है।

पाँचवी योजना की अवधि मे और उसके बाद हाथकरघा क्षेत्र को दिए गए महत्त्व और सगठित क्षेत्र मे कताई क्षमता मे तेजी मे वृद्धि के कारण असगठित क्षेत्र के अंश मे काफी वृद्धि होने का अनुमान है।

वित्तीय संसाधन

सार्वजनिक क्षेत्र की योजना के लिए वित्तीय व्यवस्था

अनुमान है कि सरकारी क्षेत्र मे योजना के प्रथम तीन वर्षों में 19396 करोड रुपये के संसाधनों की आवश्यकता होगी। इस प्रकार पांच वर्ष की अवधि के लिए यह राशि 39303 करोड रुपये होनी है। ये अनुमान सन् 1974-75 के लिए विद्यमान

मूल्यो पर और उसके बाद के वर्षों के लिए सन् 1975–76 के मूल्यो के आधार पर लगाए गए हैं। यदि सन् 1974-75 के ससाधनो का 1975-76 के मूल्यो के आधार पर फिर से आकलन किया जाए तो पाँच वर्षों की कुल राशि में थोडा सा परिवर्तन होगा।

उपर्युक्त अनुमानो में वस्तु-सूचियो के लिए रखे गए प्रावधान को और सरकारी वित्तीय संस्थानो के उन आन्तरिक ससाधनो को सम्मिलित नही किया गया है, जिनका वे स्थायी परिसम्पत्तियो में निजी विनियोजन के रूप में उपयोग करते है। पाँचवी योजनाकाल में सरकारी क्षेत्र की वस्तु-सूचियो में लगभग 3,000 करोड रुपये की वृद्धि होने का अनुमान है। इसे देखते हुए सरकारी क्षेत्र मे कुल विकास परिव्यय राशि लगभग 42,300 करोड रुपये हो जाएगी। धन के रूप मे, पाँचवी योजना प्रारूप के अनुमान से यह राशि 5050 करोड रुपये अधिक होगी। यदि सरकारी वित्तीय संस्थानो द्वारा अपनी निजी स्थायी परिसम्पत्तियो म लगाए जाने वाले आन्तरिक ससाधनो को भी हिसाब में लिया जाए तो यह राशि लगभग 5,150 करोड रुपये हो जाएगी। किन्तु योजना प्रारूप का यह अनुमान सन् 1972–73 के मूल्यो के आधार पर लगाया गया था। यदि इसके बाद मूल्यो म जो वृद्धि हुई उसके लिए गुंजाइश रख दी जाए तो वास्तविक समाधन पहले के अनुमान से कम होगे।

स्थिरता के साथ विकास करने की सर्वोपरि आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए, योजना के लिए ऐसे तरीके से धन की व्यवस्था करनी होगी जिससे मुद्रा-स्फीति न हो। इसके लिए आवश्यक है कि कठोर वित्तीय अनुशासन बरता जाए, सरकारी क्षेत्र के उद्यमो के काम म और सुधार किया जाए, अतिरिक्त ससाधन जुटाए जाएँ तथा उपभोग पर, खासकर समाज के सम्पन्न वर्गों द्वारा, नियन्त्रण रखा जाए। धन की कुल माँग के कारण मुद्रा का आवश्यक विस्तार न हो, इसके लिए मुद्रा नीति को कर-नीति के अनुकूल रखना होगा। यह बात स्पष्ट दिखाई देने लगी है कि विनियोजन परिव्ययो के आयोजन के साथ-साथ ऋण का आयोजन भी करना होगा ताकि इसका सोद्देश्य उपयोग हो और इसे उत्पादन बढाने मे सम्बद्ध आवश्यकताओ की कठोर सीमाओ के अन्दर रखा जा सके। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक होगा कि योजना मे निर्दिष्ट लक्ष्यों को पूरी तरह प्राप्त किया जाए। ससाधन बढाने और मूल्य स्थिरता बनाए रखने की दृष्टि स यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विस्तार कर उसे मजबूत बनाना होगा। इसके साथ-साथ आवश्यक वस्तुओ के मूल्य स्थिर रखने और उनमे अल्पकालिक उतार-चढाव समाप्त करने की व्यापक व्यवस्था करनी होगी। पर्याप्त खाद्य भण्डार और विदेशी मुद्रा का सचय होने से इस समय सरकार इस स्थिति मे है कि वह मूल्य स्थिति सम्बन्धी प्रतिकूल परिस्थिति का कारगर ढग से सामना कर सकती है। परन्तु आर्थिक प्रवृत्तियो और विकास के सम्बन्ध मे कठोर सतर्कता बरतनी होगी और उनके बारे मे जानकारी प्राप्त करते रहना होगा ताकि आवश्यकतानुसार तुरन्त कार्यवाही की जा सके।

योजना के लिए अपेक्षित कुल ससाधनो मे से आन्तरिक बजट ससाधनो से

32,115 करोड रुपये अथवा 81 7% राशि उपलब्ध होने की आशा है। विदेशी सहायता 5,834 करोड रुपये की या योजना परिव्यय के 14·9% की उपलब्ध हो सकेगी। परन्तु विनियोजन और मध्यवर्ती वस्तुओ के आयात मूल्यों मे तेजी से वृद्धि होने के कारण, विनियोजन के लिए वास्तविक सहायता का योगदान इस गणना से कम ही होगा। बाकी 3 4% योजना परिव्यय की व्यवस्था घाटे की वित्त-व्यवस्था से की जाएगी। सार्वजनिक क्षेत्र की योजना के लिए वित्तीय-व्यवस्था साथ की तालिका मे दी गई है।

अतिरिक्त ससाधन जुटाना

पाँचवी योजना अवधि के पहले तीन वर्षो मे केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें और उनके उद्यमो ने जो उपाय (इनमे वे उपाय भी शामिल हैं, जिन्हे अभी लागू किया जाना है) अपनाए उनसे योजना अवधि में लगभग 13,000 करोड रुपये प्राप्त होने की आशा है। यह राशि योजना प्रारूप मे निर्दिष्ट 6850 करोड रुपये की राशि के दुगुने से कुछ ही कम है। इस वृद्धि मे केन्द्र और राज्य दोनो भागीदार हैं।

योजनावधि के शेष दो वर्षो मे केन्द्रीय सरकार और उसके उद्यमो द्वारा 900 करोड रुपये (राज्यो के भाग सहित) और जुटाने की परिकल्पना की गई है। इसके अलावा राज्य सरकारें तथा उनके उद्यम 701 करोड रुपये के और ससाधन जुटाएँगे। उसमे वह राशि भी शामिल है जो करों व अन्य सरकारी रकमो की अच्छी वसूली से और योजनेत्तर खर्चे मे बचत करने से प्राप्त होगी।

पाँचवीं योजना के वित्तीय संसाधनों का अनुमान (सार्वजनिक क्षेत्र)

(करोड रुपये)

	पाँचवीं योजना प्रारूप	पहले तीन वर्षो में 1974 से 1977 तक	आगामी दो वर्षों में 1977 से 1979 तक	सशोधित पाँचवीं योजना 1974-75
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
(क) आन्तरिक बजट ससाधन	33,807	15,208	16,907	32,115
1 1973-74 की कराधान दरो पर राजस्व से बकाया	7,348	3,338	1,563	4,901
2 1973-74 की किराया, भाडा और शुल्क दरो पर सरकारी उद्यमों का सकल अधिशेष	5 988	624	225	849
(क) रेलवे	649	(—) 1,005	(—) 813	(—) 1,818
(ख) डाक व तार	842	181	199	380
(ग) अन्य	4,497	1,448	839	2,287
3 सरकार, सरकारी उद्यमो और स्थानीय निकायों द्वारा बाजार से लिया गया रिण	7,232	3,030	2,849	5879

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
4 छोटी बचत	1,850	1,092	930	2,022
5 राज्य भविष्य निधि	1,280	1,050	937	1,987
6 वित्तीय ससाधनो से सावधिक रिण (शुद्ध)	895	340*	288*	628*
7 बैंको से वाणिज्यिक रिण	1185			
8 सार्वजनिक वित्तीय सस्थानो के आन्तरिक ससाधन जिनका वे स्थायी परिसम्पत्तियों मे निजी विनियोजन करते है	90	*	*	*
9 विविध पूंजीगत प्राप्तियाँ (शुद्ध)	1,089	(—) 556	1,112	556
10 अतिरिक्त ससाधन जुटाना	6,850	6,290	8,403	14,693
(क) केन्द्र	4,300	3,773	4,721	8,494
(1) 1974-77 के उपाय	—	3,773	3,821	7,594
(2) 1977-79 के उपाय	—	—	900	900
(ख) राज्य	2,550	2,517	3,682	6,199
(1) 1974-77 के उपाय	—	2,517	2,981	5,498
(2) 1977-79 के उपाय	—	—	701**	701**
11 सचित विदेशी मुद्रा के उपयोग के बदले में उधार	—	—	600	600
(ख) विदेशी सहायता (शुद्ध)				
(क) तेल ऋण तथा विशेष ऋणो के अलावा	2,443	2,526	2 400	5,834
(ख) तेल ऋण और विशेष ऋण		908		
(ग) घाटे की वित्त-व्यवस्था	1,000	754	600	1,354
कुल ससाधन (क, ख व ग का जोड़)	37,250	19,316	19,907	39,303

* पांचवीं योजना का प्रारूप तैयार करने के बाद, यह निश्चय किया गया था कि इन ससाधनो की राशि योजना वित्त मे शामिल न की जाए।

** करो और अन्य सरकारी करो की ज्यादा अच्छी वसूली करने और योजनेत्तर व्यय में कटौती करने से प्राप्त होने वाली कुल राशि शामिल है।

संचित विदेशी मुद्रा के उपयोग के आधार पर ऋण प्राप्त करना

विदेशी मुद्रा की स्थिति काफी सतोषप्रद है और सचित राशि मे वृद्धि हो गई है। इसलिए यह वाँछनीय है कि आगामी दो वर्षों मे इस सचित राशि से लगभग 600 करोड रुपये निकाले जाएँ ताकि योजना के लिए अतिरिक्त ससाधन जुटाए जा सकें। सचित विदेशी मुद्रा मे 600 करोड रुपये कम करने के लिए, इन वर्षों मे रिजर्व बैंक से 600 करोड रुपयो के ऋण लेने की व्यवस्था योजना मे की गई है। अतिरिक्त आयात की भी सावधानीपूर्वक ऐसी व्यवस्था करनी होगी, जिससे आधारभूत क्षेत्रो मे विनियोजन क्षमताएँ बढाने और आवश्यक वस्तुओ के मूल्य स्थिर

करने में सहायता मिले। परन्तु आयात नीति मे मुख्य बल आवश्यक सामग्री के मूल्यो को स्थिर करने पर दिया जाना चाहिए। आयातित वस्तुओं के बिक्री मूल्य देशी वस्तुओं के बराबर रखकर देशी उत्पादको के हितों की रक्षा आसानी से की जा सकती है। इस प्रकार मूल्यों मे बनावटी ह्रास नहीं होगा और देश के उत्पादक भी निरुत्साहित नहीं होगे।

घाटे की वित्त-व्यवस्था

पाँचवी योजना अवधि के प्रारम्भ से ही घाटे की वित्त-व्यवस्था मे काफी कमी कर दी गई है। सन् 1974–75 मे यह राशि 654 करोड रुपये थी, जिसका अधिकांश आयातित अनाज और उर्वरक पर खर्च हुआ। ये दोनों चीजे सचिन विदेशी मुद्रा से धन निकाल कर विदेशो मे खरीदी गई। अतः इसका मुद्रा-प्रसार पर कोई प्रभाव नहीं पडा। बाकी घाटा पिछले वर्षों की अपेक्षा बहुत कम था— सन् 1973–74 मे 775 करोड़ रुपये, सन् 1972–73 मे 848 करोड रुपये और सन् 1971–72 मे 710 करोड रुपए। इससे मुद्रा-स्फीति करने वाले प्रभावो को नियंत्रित करने मे सहायता मिली। सन् 1975–76 मे वस्तुत: 206 करोड रुपये का अधिशेष रहा। इससे मूल्यो को और स्थित करने मे सहायता मिली। इस वर्ष के बारे मे 306 करोड रुपये के घाटे के अनुमान लगाए गए है। इस आधार पर पाँचवी योजना के पहले तीन वर्षों मे घाटे की वित्त-व्यवस्था का जोड 754 करोड रुपये होता है। आगामी दो वर्षों मे 300 करोड रुपये प्रतिवर्ष की घाटे की वित्त-व्यवस्था का अनुमान है।

केन्द्रीय सहायता

समस्त पाँचवी योजना मे कुल केन्द्रीय सहायता की राशि 6,000 करोड रुपये आँकी गई है। इसमे से पहाडी और जनजाति क्षेत्रो व उत्तर-पूर्व परिषद् को 450 करोड रुपये देने का प्रस्ताव है। इसके अलावा, यह भी उचित ही प्रतीत होता है कि राज्यो मे जो राज्य योजना स्कीमे अन्तर्राष्ट्रीय विकास अभिकरण विश्व बैंक की सहायता से चल रही है उनके लिए राज्यो को सहायता देने के लिए 100 करोड़ रुपये की राशि अलग से रख दी जाए। बाकी 5,450 करोड रुपये की राशि, गाडगिल सूत्र के अन्तर्गत अद्यतन आँकलन के आधार पर राज्यो को आवंटित करने का प्रस्ताव है।

बचत और विनियोजन

पाँचवी पचवर्षीय योजना के सशोधित अनुमानो मे कुल 63,751 करोड रुपयो के विनियोजन की व्यवस्था है। वर्ष 1974-75 के अनुमान उसी वर्ष के मूल्यो पर आधारित हैं, जबकि उसके बाद के वर्षों के अनुमान 1975-76 के मूल्यो पर आधारित हैं। इस विनियोजन के लिए आन्तरिक बचत से 58,320 करोड़ रुपये उपलब्ध होंगे और विदेशो से 5,431 करोड़ रुपये प्राप्त होंगे। इस प्रकार 91 प्रतिशत विनियोजन आन्तरिक बचत से उपलब्ध होगा, जबकि चौथी योजना मे इसका अनुमान 84 प्रतिशत लगाया गया था।

सरकारी और निजी क्षेत्रों मे इस विनियोजन का विवरण इस प्रकार है—

सरकारी क्षेत्र	36,703*करोड रुपये
निजी क्षेत्र	27,048 करोड रुपये
जोड	63 751 करोड रुपये

*वस्तु-सूचियाँ सम्मिलित हैं।

आन्तरिक बचत

उत्पादन क्षेत्रों द्वारा आन्तरिक बचत के अनुमानों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है —

कुल 58,320 करोड रुपयों की आन्तरिक बचत मे से लगभग 27 प्रतिशत राशि का जो 15,994 करोड रुपये होती है, योगदान सार्वजनिक क्षेत्र करेगा। सार्वजनिक क्षेत्र में सरकारी प्रशासन, विभागीय और अविभागीय प्रतिष्ठान और सार्वजनिक वित्तीय संस्थान आते हैं। बाकी लगभग 73 प्रतिशत योगदान निजी क्षेत्र करेगा, जिसमे निगमित उद्यम, सहकारियां और घरेलू क्षेत्र आते हैं। आन्तरिक बचत की औसत दर सन् 1973-74 के मूल्यो के अनुसार 1973-74 के कुल राष्ट्रीय उत्पादन के 14 4 प्रतिशत से बढकर 1978-79 मे 1975-76 के मूल्यो के अनुसार 15 9 प्रतिशत हो जाने का अनुमान है।

आन्तरिक बचत के क्षेत्र-वार अनुमान इस प्रकार है—

	(करोड रुपये)
1 सरकारी क्षेत्र	15,028
(क) केन्द्रीय और राज्य बजट	8,536
(ख) केन्द्रीय और राज्य गैर-विभागीय उद्यम	6,492
2 वित्तीय संस्थान	1,263
(क) भारतीय रिजर्व बैंक	841
(ख) अन्य	422
3 निजी क्षेत्र	42,029
(क) निजी निगमित वित्तेतर क्षेत्र	5,373
(ख) सहकारी ऋणेतर संस्थान	175
(ग) घरेलू क्षेत्र	36,481
कुल आन्तरिक बचत	58,320

विदेशों से प्राप्ति

शोधन सतुलन के चालू लेखा घाटे की पूर्ति के लिए विदेशों से 5,431 करोड रुपये प्राप्त होने का अनुमान है, जिसका विवरण इस प्रकार है—

प्राप्तियाँ	(करोड रुपये)
1. कुल विदेशी सहायता 2. वाणिज्यिक ऋण	9,052
देनदारियाँ	
1 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (सकल)	(+) 115
2. ऋण सम्बन्धी अदायगियाँ	(—) 2,465
3 दूसरे देशो को सहायता	(—) 494
4 अन्य	(—) 473
5. सचित धन वृद्धि मे परिवर्तन	(—) 304
शुद्ध प्राप्तियाँ	5,431

शोधन सन्तुलन

पाँचवी योजना के शोधन सन्तुलन की सम्भावनाएँ नीचे सारणी मे दी गई हैं–

शोधन सन्तुलन की सम्भावनाएं

(करोड़ रुपयो मे)

	पाँचवीं योजना के मसविदे मे संकल्पित	संशोधित सम्भावनाएँ
चालू खाता		
(1) व्यापार		
(i) निर्यात	12,580	21,722
(ii) आयात	(—) 14,100	(—) 28,524
(iii) व्यापार सन्तुलन	(—) 1,520	(—) 6,802
(2) सेवाएँ (शुद्ध)	94	(—) 431
(3) चालू हस्तान्तरण (शुद्ध)	326	2,377
(4) निवेश से आमदनी (शुद्ध)		
(i) ऋण सम्बन्धी अदायगी	(—) 911	(—) 1,180
(ii) ऋण से भिन्न	(—) 220	(—) 257
	(—) 2,231	(—) 5,431
पूँजी खाता		
(1) निजी पूँजी	(—) 86	(—) 210
(2) बैंक पूँजी (शुद्ध)		(+) 45
(3) सरकारी पूँजी (शुद्ध)	(—) 45	(—) 174
(4) ऋण सम्बन्धी अदायगी	(—) 1,646	(—) 2,465
(5) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (शुद्ध)	—	(+) 115
(6) विदेशों को सहायता (शुद्ध)	(—) 300	(—) 494
(7) निर्यात और उसके मूल्य वसूली में अन्तराल	(—) 100	(—) 134
(8) व्यापारिक कर्ज (कुल)	400	
(9) विदेशी सहायता (कुल)	4,008	(+) 9,052
(10) विदेशी मुद्रा कोष में उतार-चढ़ाव : वृद्धि		(—) 304
	2,231	5,431

निर्यात-आयात

सन् 1974-75 में निर्यात बढ़कर 3,329 करोड़ रुपये तक पहुँच गया। इस तरह निर्यात में 32 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। सन् 1975-76 में निर्यात बढ़कर 3,942 करोड़ रुपये हो गया, यानी 18 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। सन् 1974-75 में कुल आयात 4,519 करोड़ रुपये का हुआ था जबकि सन् 1973-74 में 2,955 करोड़ रुपये का आयात हुआ था। सन् 1975-76 में आयात बढ़कर 5,158 करोड़ रुपये तक पहुँच गया—इस प्रकार पिछले वर्ष की अपेक्षा इसमें 14 प्रतिशत बढ़ोतरी हुई।

निम्न तालिका में योजना के पहले दो वर्षों का आयात-निर्यात तथा योजना अवधि में आयात निर्यात व्यापार की सम्भावनाएँ दिखाई गई हैं—

प्रमुख वस्तुओं का निर्यात और आयात (करोड़ रुपयों में)

	1974-75	1975-76	पाँचवीं योजना मसविदा	संशोधित योजना
निर्यात	3 328 8	3,941 6	12 580	21,722
आयात	4 518 8	5 157 8	14 100	28,524

विदेशी मुद्रा कोष

सन् 1974-75 में विदेशी मुद्रा कोष में उतार-चढ़ाव इस प्रकार हुआ—

(करोड़ रुपयों में)

वर्ष	कुल राशि	उतार-चढ़ाव
1973-74	947	
1974-75	969	+ 22
1975-76	1 885	+ 916

सन् 1975-76 में विदेशी मुद्रा कोष में बढ़ोतरी बहुत कुछ इसलिए हुई कि तस्करी और गैर-कानूनी विदेशी मुद्रा व्यापार के विरुद्ध सरकारी कार्यवाही के कारण प्राधिकारिक माध्यमों द्वारा भारी मात्रा में लोगों ने विदेशी मुद्रा भेजी।

विदेशी सहायता

जैसा कि ऊपर बताया गया, योजनाकाल में अर्थ-व्यवस्था को अब कुल मिलाकर 9,052 करोड़ रुपये की विदेशी पूँजी की आवश्यकता है। इसमें यदि 3,645 करोड़ रुपयों की ऋण सम्बन्धी अदायगी (1,180 करोड़ रुपये ब्याज में और 2,465 करोड़ रुपये ऋणों की अदायगी) को हिसाब में ले लिया जाए तो उपरोक्त विदेशी पूँजी में से कुल 5,407 करोड़ रुपयों का ही उपयोग हो सकेगा। पाँचवीं योजना की सम्भावनाओं में कुल 494 करोड़ रुपये की सहायता विदेशों को देने का प्रस्ताव भी है। यदि इस रकम को भी निकाल दें तो केवल 4,913 करोड़ रुपये विदेशी मुद्रा की नाना प्रकार की आवश्यकताओं के लिए उपलब्ध होंगे।

पाँचवीं योजना के प्रस्तावित पूँजी निवेश कार्यक्रम में इन चार मुख्य क्षेत्रों में आयात प्रतिस्थापन पर बल देने की व्यवस्था है—ऊर्जा, धातु, उर्वरक और कृषि। ऊर्जा आयात प्रतिस्थापन के लिए तेल की खोज की जाएगी और देश में उपलब्ध कोयले और पानी-बिजली की क्षमता दोनों का और अधिक उपयोग किया जाएगा। इस्पात के क्षेत्र में विचार है कि इस्पात कारखानों की क्षमता का पूरा उपयोग करके और इन कारखानों की उत्पादन क्षमता बढ़ा कर कुछ विशेष प्रकार के इस्पात तक ही आयात को सीमित कर दिया जाए। अलौह धातुओं के मामले में स्थिति ज्यादा अनुकूल होती जा रही है क्योंकि खानों में और अधिक अलौह धातुएँ निकाली जा रही हैं और इस क्षेत्र में कारखानों की क्षमता का अधिक उपयोग किया जा रहा है। आशा है कि उर्वरक कारखानों की उत्पादन क्षमता बढ़ाकर तैयार उर्वरकों का आयात पाँचवीं योजना के अन्तिम वर्ष तक काफी घटाया जा सकेगा। देश में ही उर्वरकों के उत्पादन के लिए जरूरी कच्चे माल का प्रबन्ध किया जा चुका है।

अदृश्य

निवेश आय अदायगी और हस्तान्तर के अलावा अदृश्य लेन-देन का ब्यौरा इस प्रकार है—

योजना अवधि में सेवाओं द्वारा शुद्ध सम्भावित प्राप्ति

		(करोड़ रुपयों में)	
	प्राप्ति	अदायगी	शुद्ध प्राप्ति
(1) विदेशी भ्रमण	589	123	466
(2) परिवहन	1,097	977	120
(3) बीमा	153	94	59
(4) सरकारी जिसे अन्यत्र कहीं नहीं शामिल किया गया	121	120	1
(5) विविध	315	530	(—) 215
योग	2,275	1,844	431

योजना परिव्यय तथा विकास कार्यक्रम

योजना परिव्यय

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में सरकारी क्षेत्र में 37,250 करोड़ रुपये की परिव्यय की कल्पना की गई थी। अब 39,303 करोड़ रुपये के संशोधित योजना परिव्यय का अनुमान लगाया गया है।

सरकारी क्षेत्र में परिव्यय—37,250 करोड़ रुपये के कुल योजना के प्रथम तीन वर्षों के लिए निर्धारित 19,401 करोड़ रुपये के अनुमान के मुकाबले अगले दो वर्षों के लिए 19,902 करोड़ रुपये का परिव्यय निर्धारित किया गया है।

विकास की मुख्य मदों के अन्तर्गत संशोधित परिव्यय निम्नलिखित तालिका में देखिए—

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना परिव्यय (1974-79)

(करोड़ रुपये)

	पाँचवीं योजना प्रारूप	संशोधित पाँचवी योजना		
		1974 77	1977-79	1974 79
1. कृषि तथा सम्बद्ध कार्यक्रम	4935 00	2130 19	2513 40	4643 59
2 सिंचाई तथा बाढ़ नियन्त्रण	2181 00	1651 50	1788 68	3440 18
3 विद्युत	6190 00	3513 05	3780 85	7293 90
4 उद्योग तथा खनन	9029 00	5205 35	4995 25	10200 90
5 परिवहन तथा संचार	7115 00	3552 67	3328·76	6881 43
6. शिक्षा	1726 00	587 77	696 52	1284 29
7 सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाएँ (जिनमें आर्थिक तथा सामान्य सेवाएँ शामिल हैं, किन्तु शिक्षा शामिल नहीं है)	5074·00	2322 42	24444 35	4766 77
8 पहाड़ी, जनजातीय तथा उत्तर-पूर्वी क्षेत्र स्कीमें	500 00	177 50	272 50	450 00
9 राशि जिसके मदवार वितरण की अभी सूचना नहीं है।	—	260 44	66 29	326 73
जोड़	**37250 00	19400 89	*19886 60	*39287 49

*इसमें 16 करोड़ रुपये शामिल नहीं हैं जिसका मदवार ब्यौरा अभी तैयार नहीं।

**203 करोड़ रुपये शामिल नहीं हैं जो बाद में बढ़ाए गए।

योजना के शेष वर्षों के लिए परिव्यय निम्नलिखित मुख्य बातों पर आधारित है—

1 पाँचवीं योजना के प्रारूप में रखी गई योजना प्राथमिकताओं में कोई तब्दीली नहीं की गई है।

2 चालू परियोजनाओं/स्कीमों के लिए परिव्यय, वर्तमान और भविष्य की माँग, पिछली उपलब्धियों, कार्यक्रमों को पूरा करने की वर्तमान समय-सारणियों तथा लागत में हुई वृद्धि के आधार पर निर्धारित किया गया है।

3 सन् 1981-82 की और कुछ मामलों में सन् 1983-84 की माँग को ध्यान में रखते हुए नए कार्यक्रम शुरू करने की व्यवस्था की गई है, जिनमें ऐसे कार्यक्रम भी शामिल हैं जिनके पूरा होने में काफी समय लगता है।

4 यह देखने का भी प्रयास किया गया है कि पूँजी निवेश न केवल उपयोगी हो, बल्कि उससे पर्याप्त मात्रा में आमदनी भी हो। कृषि उत्पादन, विद्युत, सिंचाई तथा शिक्षा के क्षेत्रों में राष्ट्रीय लक्ष्यों, राज्यों के प्राकृतिक साधनों तथा राज्यों की तैयारी की वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए लक्ष्य सुलझाए गए हैं।

सिंचाई तथा बाढ़ नियन्त्रण, विद्युत तथा उद्योग एवं खनिजों के लिए परिव्यय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। कृषि, शिक्षा तथा सामाजिक सेवाओं के क्षेत्रों में

यद्यपि पूरी पाँचवी योजना के लिए सशोधित परिव्यय कम है, तथापि योजना के लिए सशोधित परिव्यय अधिक है।

कुल परिव्यय

क्षेत्रों, मन्त्रालयों, राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों के अनुसार परिव्यय के विस्तृत विवरण तैयार किए गए हैं। सक्षेप मे संशोधित योजना परिव्यय इस प्रकार हैं—

पांचवीं पंचवर्षीय योजना—केन्द्र

(करोड़ रुपये)

मन्त्रालय/विभाग	सशोधित पाँचवी योजना
कृषि	1828 09
परमाणु ऊर्जा	619 03
नागरिक पूर्ति और सहकारिता	148 93
कोयला	1147 58
वाणिज्य	207 33
सचार	1266·61
वैज्ञानिक औद्योगिक अनुसन्धान परिषद्	81·77
शिक्षा और सस्कृति	405 29
इलैक्ट्रानिक्स	46 37
उर्वरक एव रसायन	1602 06
वित्त	131 73
स्वास्थ्य एव परिवार नियोजन	833 19
भारी उद्योग	365 43
गृह	143 12
औद्योगिक विकास	609 59
सूचना एवं प्रसारण	109 18
सिंचाई	114 63
श्रम	14·18
खान	550 95
कार्मिक	0 50
योजना	25·24
पैट्रोलियम	2051·53
विद्युत	557 45
रेल	2202 00
पुनर्वास	102 61
विज्ञान एवं टैक्नोलॉजी	58·96
जहाजरानी एव परिवहन	1682 61
समाज कल्याण	63·53
बाह्य अन्तरिक्ष	128 27
पूर्ति	2·15
पर्यटन तथा नागरिक उड्डयन	375·59
निर्माण एवं आवास	241·49
कुल	19954 10

पांचवीं पचवर्षीय योजना—राज्यक्षेत्र

राज्य	(करोड़ रुपये) संशोधित पांचवीं योजना
आन्ध्र प्रदेश	1333 58
असम	473 84
बिहार	1296 0[illegible]
गुजरात	1166 62
हरियाणा	601 34
हिमाचल प्रदेश	238 95
जम्मू व कश्मीर	362 [illegible]4
कर्नाटक	997 67
केरल	568 96
मध्य प्रदेश	1379 71
महाराष्ट्र	2374 61
मणिपुर	92 86
मेघालय	8[illegible] 53
नागालैंड	83 63
उड़ीसा	585 02
पंजाब	1013 49
राजस्थान	709 24
सिक्किम	39 64
तमिलनाडु	1122 32
त्रिपुरा	69 68
उत्तर प्रदेश	2445 8[illegible]
पश्चिमी बंगाल	1246 83
सभी राज्य	18265 80

संशोधित पांचवीं पचवर्षीय योजना—केन्द्र शासित क्षेत्र

	(करोड़ रुपयों में)
अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह	33 72
अरुणाचल प्रदेश	63 30
चण्डीगढ़	39 76
दादरा तथा नगर हवेली	9 41
दिल्ली	316 61
गोवा दमन तथा दीव	85 00
लक्षद्वीप	6 23
मिजोरम	46 59
पाण्डिचेरी	34 04
	634 06

20–सूत्री आर्थिक कार्यक्रम

प्रधानमन्त्री ने एक जुलाई, 1975 को 20–सूत्री आर्थिक कार्यक्रम की घोषणा

की थी। इस कार्यक्रम के विभिन्न भागो का निश्चय कर लिया गया है विशेषकर ऐसे भागो का जिनमे पूंजी निवेश की आवश्यकता है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाली स्कीमो को प्राथमिकता दी गई है। योजना के शेष दो वर्षों सन् 1977-79 के लिए तथा पाँचवी योजना के लिए केन्द्र, राज्यो और केन्द्र सशासित क्षेत्रो के परिव्यय इस प्रकार है—

(लाख रुपयों मे)

	1977-79	1975-79
केन्द्र	75706	103978
राज्य तथा केन्द्र शासित क्षेत्र	533467	935932
कुल	609173	1039910

कृषि और सिचाई

मौसम के प्रभाव की विभिन्नताओ को ध्यान मे रखते हुए प्रत्येक राज्य की योजना मे राशि का प्रावधान कुछ अधिक मात्रा मे किया गया है, ताकि देश का कोई भाग मौसम से प्रभावित हो भी जाए तो भी देश के कुल उत्पादन मे अधिक कमी न हो। कुल उत्पादन निम्नांकित सारणी के अनुसार होने की सम्भावना है—

मद	1973-75 का स्तर	अनुमानित अधिकतम उत्पादन
खाद्यान्न (दस लाख टन)	104 7	132·9
पांच मुख्य तिलहन (दस लाख टन)	8 9	12·6
गन्ना (दस लाख टन)	140 8	173 5
कपास (दस लाख गाँठें–170 कि ग्रा. प्रत्येक)	6·3	9 0
पटसन और सन(दस लाख गाँठें–180 कि. ग्रा. प्रत्येक)	7·7	7·7
अधिक उपज देने वाली किस्मे (दस लाख हैक्टेयर)	25 8	40·0
उर्वरक खपत (दस लाख टन)	2·8	5 0
छोटी सिचाई (दस लाख हैक्टेयर)	23 1	31 6

कृषि और सम्बद्ध कार्यक्रमो पर सन् 1974-77 के दौरान 2130 करोड़ और योजना के अन्तिम दो वर्षो मे 2513 करोड कुल 4643 करोड़ रुपये क परिव्यय प्रस्तावित है, जैसा कि निम्नांकित तालिका मे दिया गया है—

कृषि और सम्बद्ध सेवाओ (केन्द्र राज्य तथा केन्द्र शासित क्षेत्र) के परिव्यय

(लाख रुपये मे)

विकास मद	कुल परिव्यय
भूमि सुधार को छोड़ कर कृषि	132215·14
भूमि सुधार	16253·36
छोटी सिचाई	79232·10
उर्वरक भू-सरक्षण	22113·54
क्षेत्र विकास	20659 00

खाद्य	12350 55
पशु पालन तथा डेरी विकास	43770 51
मत्स्योद्योग	14999 65
वन	20569 59
कृषि वित्त सस्थाओ मे पूँजी निवेश	51977 00
सामुदायिक विकास	12744 97
सहकारिता	37574 04
जोड	464359 45

सिंचाई

पाँचवी योजना अवधि मे कुल मिलाकर 131 लाख हैक्टेयर भूमि मे सिंचाई करने की क्षमता हो जाने की सम्भावना है। इसमे 58 लाख हैक्टेयर भूमि बडी और मध्यम सिंचाई के तथा 73 लाख हैक्टेयर भूमि 'लघु' सिंचाई के अन्तर्गत है। नए कार्यों मे कुछ त्रुटियाँ तथा पुराने कार्यों की क्षमता मे कमी होने की सम्भावनाओ के कारण अतिरिक्त सिंचाई क्षमता 110 लाख हैक्टेयर से कुछ अधिक होनी चाहिए।

बडी तथा मध्यम सिंचाई—पाँचवी योजना के पहले तीन वर्षों मे बडी तथा मध्यम सिंचाई परियोजनाओं पर लगभग 1,474 करोड रुपय खर्च होने की सम्भावना है। प्रत्येक परियोजना मे हुई प्रगति, काम पूरा होने की नई समय सारणियो, अतिरिक्त नियन्त्रण क्षेत्र का विकास तथा लागत मे वृद्धि का ध्यान मे रखते हुए योजना के शेष दो वर्षों के लिए 1,621 करोड रुपय का परिव्यय रखा गया है। नागार्जुन सागर, शारदा सहायक, राजस्थान नहर, मालप्रभा तथा कडाना जैसी जिन परियोजनाओ के काम म तेजी लाई जा सकती है उनके लिए अधिक परिव्यय की व्यवस्था की गई है। अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियो के प्रति देनदारियो को भी ध्यान मे रखा गया है।

योजना अवधि के दौरान नई परियोजनाएँ हाथ मे लेने के लिए 1,013 करोड रुपये के परिव्यय की व्यवस्था की गई है। पाँचवी योजना मे 58 लाख टन हैक्टर भूमि की सिंचाई की अतिरिक्त क्षमता प्राप्त करने की सम्भावना है।

बिजली

चौथी योजना मे बिजली की उत्पादन क्षमता मे 4280 मेगावाट की वृद्धि होने से कुल स्थापित क्षमता 18456 मेगावाट हो गई। पाँचवी योजना के प्रथम दो वर्षों मे 3542 मेगावाट की वृद्धि की गई तथा सन् 1976–77 मे बिजली की उत्पादन क्षमता मे 2387 मेगावाट की और वृद्धि होने की सम्भावना है। योजना के पहले तीन वर्षो मे विद्युत उत्पादन परियोजनाओ के लिए लगभग 2145 करोड रुपये व्यय होंगे। पाँचवी योजना की अवधि म बिजली की उत्पादन क्षमता मे कुल मिलाकर लगभग 12,500 मेगावाट की वृद्धि की जा सकेगी। इसके अतिरिक्त इस समय साथ मे ली गई परियोजनाओ के अन्तर्गत 6,000 मेगावाट की उत्पादन क्षमता बढाने का काम पाँचवी योजना के अन्त मे चल रहा होगा।

विद्युत से सम्बन्धित पाँचवी योजना को अन्तिम रूप देते समय चालू स्कीमों को शीघ्रातिशीघ्र पूरा करने पर बल दिया गया है। विभिन्न श्रेणियों में संशोधित परिव्यय का सारांश नीचे तालिका में दिया गया है—

पाँचवीं योजना में विद्युत क्षेत्रीय वित्तीय परिव्यय (करोड़ रुपयों में)

क्र. स.	मद	राज्य	केन्द्रशासित क्षेत्र	केन्द्र	जोड़	पाँचवीं योजना प्रारूप
1.	विद्युत उत्पादन	3722·71	6·52	665·24	4394·47	3323·81
2.	पारेषण तथा वितरण	1897·73	78 78	104·74	2081·25	1634·27
1.	ग्रामीण विद्युतीकरण					
	(क) न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम और राज्य योजना	360·54	10·74	—	371·28	698 24
	(ख) ग्रामीण विद्युतीकरण निगम	314·02	—	—	314 02	400·00
4.	सर्वेक्षण और अन्वेषण	74·92	2·72	55·24	132·88	133·68
	जोड़	6369 92	98·76	825·22	7293·90	6190·00

उद्योग और खनिज

औद्योगिक वृद्धि सन् 1974–75 में 2 5 प्रतिशत रही, जो 1975–76 में घटकर 5 7 प्रतिशत हो गई। उल्लेखनीय बात यह है कि इस्पात, कोयला, सीमेंट, अलोह धातुओं तथा बिजली-उत्पादन जैसी बुनियादी उद्योगों में उत्पादन महत्वपूर्ण बढ़ोतरी हुई है। सवारी मोटरकारों, उपभोक्ता टिकाऊ सामग्री तथा कपड़ा जैसे कुछ उद्योगों में उत्पादन में विशेष रूप से गिरावट देखी गई।

इस स्थिति में सुधार लाने के उद्देश्य से किए गए कुछ उल्लेखनीय उपाय इस प्रकार हैं- रुई कातने, बुनियादी दवाओं तथा औद्योगिक मशीनरी सहित 21 उद्योगों को लाइसेंस मुक्त कर दिया गया है। 29 चुनींदा उद्योगों में, मौजूदा कारखानों को अपनी स्थापित क्षमता का पूर्ण उपयोग करने की अनुमति दे दी गई है। इंजीनियरी वस्तुओं का निर्यात बढ़ाने के उद्देश्य से 15 इंजीनियरी उद्योगों को उत्पादन क्षमता में 5 प्रतिशत तक वार्षिक वृद्धि करने अथवा योजना अवधि में अधिक से अधिक 25 प्रतिशत तक वृद्धि कर लेने की अनुमति प्रदान की गई है। भारत से बाहर बसे भारतीयों को यहाँ पर कारखाने लगाने तथा अपना धन चुनींदा उद्योगों में लगाने के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ दी गईं। आई. डी. बी. आई. तथा अन्य ऋणदात्री संस्थाओं की पूँजी में भी वृद्धि करने का प्रस्ताव है।

पाँचवीं योजना के प्रारूप में 13,528 करोड़ रुपये की तुलना में संशोधित योजना में परिव्यय 16,660 करोड़ रुपये रखा गया है। इसमें से 9,660 करोड़ रुपये केन्द्र और राज्यों के क्षेत्रों के लिए हैं तथा 7,000 करोड़ रुपये गैर-सरकारी तथा सहकारी क्षेत्रों के लिए हैं।

केन्द्रीय क्षेत्र मे औद्योगिक और खनिज कार्यक्रमो का परिव्यय सलग्न सारणी मे दिया गया है। अनुमान है कि पाँचवी पचवर्षीय योजना के दौरान औद्योगिक विकास की दर लगभग सात प्रतिशत रहेगी। पांचवी योजना के पहले दो वर्षो मे विकास की यह दर अपेक्षाकृत कम रही अत शेष तीन वर्षो मे इसे नौ-दस प्रतिशत के बीच बनाए रखना होगा।

केन्द्रीय क्षेत्र मे औद्योगिक और खनिज कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं पर परिव्यय

(करोड रुपये)

क्र० स०	मन्त्रालय/विभाग	सशोधित पाँचवी योजना क परिव्यय
1	इस्पात और खान मन्त्रालय (इस्पात विभाग)	2237 42
2	इस्पात और खान मन्त्रालय (खान विभाग)	550 59
3	ऊर्जा मन्त्रालय (कोयला विभाग)	1147 58
4.	पट्रोलियम मन्त्रालय	2051·53
	(क) पेट्रोलियम	(1691 28)
	(ख) रसायन	(360 25)
5	उर्वरक तथा रसायन मन्त्रालय	1602 07
	(क) उर्वरक	(1488 16)
	(ख) रसायन	(113 91)
6	उद्योग मन्त्रालय (औद्योगिक विकास विभाग)	380 22
7	उद्योग मन्त्रालय (भारी उद्योग विभाग)	365 43
8	परमाणु ऊर्जा विभाग	184 18
9.	इलैक्ट्रानिक्स विभाग	46 37
10	जहाजरानी तथा परिवहन मन्त्रालय	146 58
11.	वाणिज्य मन्त्रालय	143 18
12	नागरिक पूर्ति तथा सहकारिता मन्त्रालय	46 13
13	वित्त मन्त्रालय	131 73
	(क) बैंकिंग	(105 03)
	(ख) राजस्व	(1 79)
	(ग) आर्थिक विकास	(24 91)
	जोड	9033 00

ग्राम तथा लघु उद्योग

लघु उद्योग— लघु उद्योगो की सख्या, उत्पादन की मात्रा तथा उनमे उत्पादित होने वाली वस्तुओ मे निरन्तर वृद्धि हो रही है। इस वृद्धि से विस्तार सेवाओ की स्कीमो तथा सस्थागत वित्तीय सहायता मे बढोतरी का विशेष योगदान रहा है। क्षेत्रीय परीक्षण केन्द्र स्थापित किए गए हैं। लघु उद्योग सेवा सस्थान की कुछ शाखाएँ भी खोली गई हैं।

औद्योगिक बस्तियाँ —मार्च, 1974 मे कुल 455 औद्योगिक बस्तियाँ थी जिनमे से 347 शहरी अथवा अर्द्ध-शहरी क्षेत्रो मे तथा 108 ग्रामीण क्षेत्रो मे थी।

इन औद्योगिक बस्तियो मे चलने वाले 10140 कारखानों मे 1 76 लाख लोगो को रोजगार उपलब्ध था।

खादी तथा ग्रामोद्योग—सन् 1974-75 में खादी उद्योग मे 9·78 लाख लोगो को रोजगार मिला हुआ था। सन् 1975-76 मे यह सख्या बढकर 10 लाख हो गई। इसी प्रकार ग्रामीण उद्योगों मे काम करने वाले लोगों की सख्या 9 82 लाख से बढकर 11 28 हो गई।

ग्राम तथा लघु उद्योग क्षेत्र के उत्पादन तथा निर्यात के आँकड़े नीचे तालिका मे दिए गए हैं—

ग्राम तथा लघु उद्योग
पाँचवीं योजना में कुल परिव्यय 535·03 करोड़ रुपये
उत्पादन तथा निर्यात के लक्ष्य और उपलब्धियाँ

(करोड रुपयों मे)

	पाँचवीं योजना प्रारूप	1974-75 वास्तविक	1975-76 सम्भावित	1976-77 प्रस्तावित
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
उत्पादन				
1 हाथकरघे और शक्तिचालित करघे का सूती कपड़ा (दस लाख मीटर)	4,800	3,800	4,100	4,200
2. खादी-मात्रा (दस लाख मीटर)	—	59 72	61·20	63 00
मूल्य (करोड रुपये)	—	43 28	52 50	53·85
3. कच्चा रेशम (दस लाख कि. ग्रा.)	4 60	3 00	3 20	3 80
4. ग्रामोद्योग* मूल्य (करोड रुपये)	—	136 31	155·46	176 11
निर्यात				
5. हाथकरघा कपड़ा तथा उससे तैयार वस्तुएँ (करोड रुपये)	**	92·00	97·00	107 00
6 रेशमी कपड़ा तथा रेशा (करोड रुपये)	21·00	12 70	17·50	18 50
7. नारियल जटा वस्तुएँ (मात्रा 000 टन)	—	47 00	36 00	40 00
मूल्य (करोड रुपये)	19·00	17 90	19·00	20 00
8. हस्तशिल्प (करोड रुपये)	*** 220 00	190 40	192·00	205 00

* ये आँकड़े उन केन्द्रों के सम्बन्ध मे हैं, जिन्हें खादी एव ग्रामोद्योग आयोग द्वारा सहायता दी जाती है।

** पाँचवीं पचवर्षीय योजना के प्रारूप मे हाथकरघा कपड़े से बनी वस्तुओं के सम्बन्ध मे पाँच वर्ष की अवधि (1974-79) के लिए 155 करोड रुपये मूल्य का निर्यात लक्ष्य निर्धारित किया गया था।

*** यद्यपि पाँचवीं योजना मे हस्तशिल्प के निर्यात के लिए सन् 1978-79 में 2 0 करोड रुपये का लक्ष्य रखा गया है, तथापि इसे बढ़ा कर 250 करोड रुपये करने का प्रयास किया जाएगा।

परिवहन तथा संचार

परिवहन और संचार के लिए केन्द्रीय क्षेत्र में परिव्यय का क्षेत्रवार ब्योरा नीचे सारणी में दिया गया है—

सारणी : संशोधित पाँचवीं योजना

परिव्यय : परिवहन, पर्यटन और संचार—केन्द्रीय क्षेत्र

(करोड़ रुपये)

मद	पाँचवीं योजना प्रारूप	संशोधित पाँचवीं योजना
रेलें	2550 00	2202 00
सड़कें	714 (0	445·44
सड़क परिवहन	26 00	58 17
बन्दरगाह	330 00	543 58
जहाजरानी	258·00	450·00
अन्तर्देशीय जल परिवहन	40·00	24 92
प्रकाश स्तम्भ	12·00	13 66
फरक्का बैराज	32 00	31 55
नागर विमान		
परिवहन	391·00	334 85
पर्यटन	78 00	40·74
संचार	1176 00	1266 61
प्रसारण	120 00	94 38
जोड़	5717·00	5505·90

पर्वतीय तथा जनजातीय क्षेत्र, पिछड़े वर्ग, समाज-कल्याण और पुनर्वास

पहाड़ी क्षेत्र

देश के पहाड़ी क्षेत्रों तथा जनजातीय इलाकों में विकास कार्यों को बढ़ाया जा रहा है। उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के विकास पर विशेष जोर दिया जा रहा है।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में अगले दो वर्षों (1977–79) में केन्द्र सरकार द्वारा पहाड़ी इलाकों के विकास के लिए 94 करोड़ रुपये खर्च करने की व्यवस्था है। योजना के पहले तीन वर्षों (1974–77) में इस कार्य पर 76 करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है। इस योजना के अन्तर्गत असम, तमिलनाडु उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा पश्चिमी घाट के पहाड़ी इलाके आते हैं। योजना के प्रथम तीन वर्षों में केन्द्रीय सरकार द्वारा 76 करोड़ रुपये के अतिरिक्त राज्यों द्वारा 68 करोड़ रुपये खर्च किए जाने की सम्भावना है। पहाड़ी इलाकों के विकास के लिए पाँचवीं योजना में केन्द्रीय क्षेत्रों में कुल मिलाकर 170 करोड़ रुपये खर्च करने की व्यवस्था की गई है।

जन-जाति क्षेत्र

जन-जाति क्षेत्रों के विकास के लिए पाँचवीं योजना में कुल 190 करोड़ रु. रखे गए हैं। इसमें से सन् 1974–77 में 65 करोड़ रुपये खर्च होने की आशा है। शेष दो वर्षों (1977–79) के लिए 125 करोड़ रुपये रखे गए हैं। 16 राज्यों तथा 2 केन्द्र शासित क्षेत्रों में अनुसूचित जन-जातियों के घनी आबादी वाले क्षेत्रों के लिए, जन-जाति उप-योजनाओं के अन्तर्गत जन-जाति अर्थ-व्यवस्था से सम्बन्धित विशेष महत्व के कार्यक्रम बनाए जा रहे हैं। उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के सन्तुलित विकास के लिए कृषि, विद्युत एवं संचार सम्बन्धी क्षेत्रीय योजनाओं के लिए अलग से 90 करोड़ रुपये रखे गए हैं। आशा है कि इसमें से पहले तीन वर्षों (1974–77) में 28 करोड़ रुपये ऐसी स्कीमों पर खर्च किए जाएँगे। पाँचवीं योजना के शेष दो वर्षों (1977–79) के लिए 62 करोड़ रुपयों की व्यवस्था है।

इन कार्यक्रमों के लिए खर्च का विवरण इस प्रकार है—

(करोड़ रुपयों में)

	अनुमानित खर्च 1974–77	1977–79 का व्यय	योजना का कुल व्यय
1. पर्वतीय क्षेत्र	76	94	170
2. जन-जातीय क्षेत्र	65	125	190
3. उत्तर-पूर्वी परिषद् की स्कीमें	28	62	90
योग	169	281	450

पिछड़े वर्गों का कल्याण

संशोधित पाँचवीं योजना में परिव्यय बढ़ाकर केन्द्र के लिए 119 करोड़ रुपये तथा राज्यों के लिए 208 करोड़ रुपये कर दिया गया है। केन्द्रीय योजना में मैट्रिक के बाद की छात्रवृत्तियों, छात्र-छात्राओं के प्रशिक्षण की स्कीमों तथा लड़कियों के छात्रावासों पर जोर दिया गया है। राज्य योजनाओं में शैक्षणिक प्रोत्साहनों, आर्थिक सहायता-प्राप्त आवास, विशिष्ट कृषि कार्यक्रमों व विकास निगमों के लिए व्यवस्था की गई है। पिछड़े वर्गों के विकास की विभिन्न मदों के परिव्यय का विवरण निम्नलिखित है—

समाज कल्याण

केन्द्र और राज्यों के लिए संशोधित पाँचवीं योजना में क्रमशः 63·53 करोड़ रुपये और 22·60 करोड़ रुपये की व्यवस्था है। केन्द्रीय क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों, समेकित शिशु देख-रेख सेवाओं, नौकरी पेशा महिला छात्रावासों, अपंगों को छात्रवृत्ति और राज्य क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों (महिला और शिशु कल्याण कार्यक्रम) और समाज सुरक्षा कार्यक्रम के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था की गई है।

पुनर्वास

संशोधित पाँचवीं योजना में 67067 परिवारों के भारत में पुनर्वास की

व्यवस्था है। योजना के पहले तीन वर्षों मे 47 62 करोड रुपये खर्च से 35767 परिवारो को फिर से बसाये जाने का अनुमान है।

अन्य महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाएँ

शिक्षा

सन् 1974–75 मे शिक्षा पर योजना और गैर-योजना का कुल सरकारी खर्च 1,450 करोड रुपये होने का अनुमान था, जो बढकर सन् 1976–77 मे लगभग 2,287 करोड रुपये हो गया। शिक्षा विकास से सम्बन्धित नाना कार्य पूरे करने के लिए विभिन्न क्षेत्रो के लिए 1 285 करोड रुपये की व्यवस्था की गई है। (देखिए निम्न तालिका)

शिक्षा परिव्यय

(करोड रुपयो मे)

क्रम स.	मदें	1974–77 का अनुमानित व्यय	प्रस्तावित 1977–79	सशोधित पांचवी योजना के कुल व्यय
1.	प्राथमिक शिक्षा	180	230	410
2	माध्यमिक शिक्षा	111	139	250
3	विश्वविद्यालय शिक्षा	140	152	292
4	विशेष शिक्षा	9	9	18
5	अन्य कार्यक्रम	57	65	112
6	जोड (सामान्य शिक्षा)	497	595	1,092
7	तकनीकी शिक्षा	75	81	156
8	कला और सस्कृति	16	21	37
	जोड (शिक्षा)	588	697	1,285

स्वास्थ्य परिवार नियोजन और पोषाहार

राज्यो और केन्द्र शासित क्षेत्रो की योजनाओ के अन्तर्गत विभिन्न स्वास्थ्य कार्यक्रमो के लिए योजना मसविदे मे 543 21 करोड रुपये की व्यवस्था थी। पाँचवी योजना के पहले तीन वर्षो मे इन कार्यक्रमो पर कुल खर्च 159 92 करोड रुपये होने का अनुमान है। पाँचवी योजना के शेष दो वर्ष के लिए यानी सन् 1977-79 के लिए 185 91 करोड रुपये के व्यय की सिफारिश की गई है। सशोधित पाँचवी योजना मे स्वास्थ्य पर कुल व्यय 681 करोड रुपये होगा।

परिवार कल्याण नियोजन सम्बन्धी कार्यक्रमो के लिए योजना के मसविदे मे 516 करोड रुपये की व्यवस्था की गई थी। पाँचवी योजना के पहले तीन वर्षों मे इन कार्यक्रमो पर 237 65 करोड रुपये खर्च होने का अनुमान है और सन् 1977–79 की अवधि मे 259 71 करोड रुपये खर्च करने का विचार है, कुल 497 36 करोड।

पाँचवी योजना के मसविदे में दी गई कार्यनीति के आधार पर परिवार नियोजन कार्यक्रमों को स्वास्थ्य, मातृ और शिशु कल्याण और पोषाहार सेवाओं के साथ-साथ चलाया जाएगा। पोषाहार कार्यक्रम पर पाँचवी योजना का संशोधित व्यय कुल 88·18 करोड़ रुपया बैठता है। सारी स्थिति निम्न तालिकाओं से स्पष्ट होगी।

पाँचवीं योजना में परिवार कल्याण नियोजन कार्यक्रमों पर व्यय

(करोड़ रुपये में)

कार्यक्रम	पाँचवी योजना का मसविदा	संशोधित पाँचवी योजना का व्यय
सेवाएँ और आपूर्ति	422 53	419·41
प्रशिक्षण	13·54	12·07
जन-शिक्षा	22 00	13·13
शोध और मूल्यांकन	14 33	9·03
विश्व बैंक परियोजना	19 50	24 74
मातृ और शिशु स्वास्थ्य	15 00	8 57
संगठन	9·10	9·41
कुल	516 00	497 36*

* इसमें परिवार नियोजन विभाग द्वारा बनाई जाने वाली नई स्कीमों के लिए एक करोड़ रुपये की राशि भी शामिल है।

पोषाहार कार्यक्रम

(करोड़ रुपयों में)

कार्यक्रम	क्षेत्र	पाँचवी पंचवर्षीय योजना का मसविदा	संशोधित पाँचवी योजना का व्यय
न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम	राज्य/केन्द्र शासित क्षेत्र	330·00	88·18
केन्द्रीय खाद्य विभाग की पोषाहार स्कीमें	केन्द्रीय	50 00	14 50
केन्द्रीय ग्राम विकास विभाग का व्यावहारिक पोषाहार कार्यक्रम	केन्द्र समर्थित	20·00	12·99
	योग	400 00	115 67

आयोजन का मूल्यांकन : क्या हमारा आयोजन हमारी आकांक्षाओं को पूरा कर सका ?

पाँचवी पंचवर्षीय योजना को जनता सरकार ने अवधि से एक वर्ष पूर्व ही 31 मार्च, 1978 को समाप्त कर और 1 अप्रेल, 1978 से सम्पूर्ण नियोजन को नई दिशा और दृष्टि देते हुए नई राष्ट्रीय योजना लागू कर देश की जनता की इस भावना को समझा है कि पिछला आयोजन जन-आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर सका है और

कुछ महत्त्वपूर्ण सफलताओं के बावजूद हमारी पिछली योजनाएँ कुल मिलाकर काफी असन्तोषजनक रही है। यह उचित होगा कि हम पिछले नियोजन के मूल्यांकन के रूप में कुछ प्रमुख अर्थशास्त्रियों और नई सरकार का दृष्टिकोण प्रस्तुत करें और सन् 1976–77 तथा 1977–78 की अर्थ-व्यवस्था का सर्वेक्षण करें।

विभिन्न मत

श्री वी के. नरसिम्हन ने मई, 1977 के अपने एक विशेष लेख में लिखा है–

"यह बात निर्विवाद है कि अगर भारत में सर्वव्यापी गरीबी के विरुद्ध छेड़े गए अभियान में इस शताब्दी के अन्त से पहले विजय प्राप्त करनी है तो देश मे 25 वर्षों से लागू आयोजनाओं पर पुनर्विचार करने और नई नीतियों और दृष्टिकोण को अपनाना अति आवश्यक है।"

"अधिकतर सार्वजनिक क्षेत्र के विभिन्न उद्योगों और सिंचाई और पन-बिजली के साधनों के विकास में काफी पूँजी लगाई गई है। परन्तु जन-साधारण की आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने, बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने और लोगों की आय में व्याप्त बड़े अन्तर को कम करने में ये योजनाएँ असफल रही है। इस बात में कोई शंका नहीं है कि इन योजनाओं में पूँजी लगाने के ढंग और उन्हें लागू करने में की गई गलतियों के कारण ही ये योजनाएँ असफल हुई हैं। अधिक पूँजी वाले और भारी उद्योगों पर बहुत अधिक जोर दिया गया जबकि जन-साधारण के उपयोग में आने वाली वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया। सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं के संचालन में आने वाली लागत की कोई परवाह नहीं की गई। योजना-दर-योजना पूँजी और उत्पादन का अनुपात घटता ही गया है। इसका तात्पर्य यह है कि अधिक से अधिक पूँजी लगा कर उसके अनुपात में कम से कम उत्पादन हुआ। सरकारी आँकड़ो से यह स्पष्ट होता है कि उत्पादन और पूँजी का अनुपात जो कि प्रथम योजना अवधि में,47% था, चौथी योजना तक घटकर 19% तक पहुँच गया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सन् 1951–56 की अवधि मे जहाँ 100 रुपये की पूँजी लगाकर 47 रुपये के मूल्य का उत्पादन हुआ वहीं 1969–74 की अवधि में केवल 19 रुपये के मूल्य का उत्पादन हुआ। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मुद्रा-स्फीति एक स्थायी रोग बन चुकी है और अर्थ-व्यवस्था की विकास की दर वास्तव में बहुत ही चिंताजनक रूप से कम है।"

श्री अमरनाथ अग्रवाल ने भारत सरकार द्वारा प्रकाशित और आकाशवाणी से प्रसारित अपने एक विशेष लेख में यह विचार व्यक्त किया है कि—

"दूसरी योजना के समय से हमने जिस व्यूह रचना अथवा युक्ति का सहारा लिया है— वह है मूल व भारी उद्योगों के विकास पर आधारित तेज गति से देश के औद्योगीकरण की युक्ति। भारी उद्योगों के विकास पर आधारित तेज गति से औद्योगीकरण की इस युक्ति को अपनाए 20 वर्ष से अधिक समय बीत चुका है। इस अवधि में देश की प्रगति बहुत धीमी व असंतोषजनक रही है। निर्धारित लक्ष्य के

हिसाब से राष्ट्रीय आय बहुत कम बढ़ी और चूंकि जनसंख्या तेजी से बढ़ी, इस कारण प्रति व्यक्ति आय में हुई वृद्धि और भी थोड़ी रही। फलस्वरूप औसत जीवन-स्तर में कोई विशेष सुधार नहीं हो पाया। यही नहीं, बल्कि अनेक अनिवार्य वस्तुओं की प्रति व्यक्ति उपलब्धि घट गई और कीमत वृद्धि के नए से नए रिकार्ड स्थापित होते रहे। इस बीच बेरोजगारी भी बढ़ी और निर्धनता रेखा के नीचे गुजर करने वाले लोगों की संख्या भी। इस प्रकार कुल मिलाकर आयोजन काल में देश की स्थिति काफी असन्तोषजनक रही थी। इस बात को लेकर भारतीय आयोजन की बड़ी आलोचना की गई। आर्थिक कठिनाइयों के बढ़ने के साथ-साथ आलोचनाओं को और बल मिला और आयोजन की व्यूह रचना में आमूल परिवर्तन लाने की माँग तेजी से रखी जाने लगी और जनता पार्टी ने अपने चुनाव घोषणा-पत्र में भारतीय आयोजन को नई दिशा देने का प्रस्ताव रखा।"

प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई ने 25 अप्रैल, 1977 को योजना और कार्यान्वयन पद्धति सम्बन्धी एक गोष्ठी में अपने भाषण में कहा—

"इस देश के लिए महान् सेवा की बात थी कि जवाहरलाल जी ने यहाँ योजना की शुरुआत की लेकिन योजना शुरू करने से वह लक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ जिसे ध्यान में रखकर उसे अपनाया गया था क्योंकि योजना अच्छी चीज है, पर वह जब रास्ते से भटक जाती है तो भलाई की बजाय हानि अधिक पहुँचाती है।"

"मैं यह नहीं कह सकता कि हमने कोई प्रगति नहीं की है हमने प्रगति की है। जब हम आजाद हुए थे तो इस देश में एक पिन तक नहीं बनाई जाती थी। चर्खे का तकुआ तक भी विदेश से मँगवाना पड़ता था। वह स्थिति अब बदल गई है और हम न केवल इस्पात, अल्यूमीनियम अथवा रेलवे के सभी साज-सामान, चीनी उद्योग की मशीनरी अथवा बिजली की मशीनरी बनाते हैं बल्कि आज हम पूरे स्टील मिल भी बना सकते हैं। भारी उद्योग के क्षेत्र में इतनी प्रगति होने के बावजूद आज उसमें कहीं अधिक असंतोष है जो कभी स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय था। यद्यपि कुछ क्षेत्रों में समृद्धि बढ़ी है, सम्पन्न लोगों की प्रगति से तुलना करें तो उनके मुकाबले में अन्य वर्गों में समृद्धि समुचित मात्रा में नहीं हुई है। उनमें काफी असंतोष है क्योंकि उनकी आकांक्षाओं की जो मेरे विचार हैं बहुत अधिक नहीं हैं, पूर्ति नहीं हुई। योजना असंतोष दूर करने वाली परिस्थितियाँ पैदा करने में सफल नहीं हुई है।"

"हमारी योजनाओं के बारे में बड़े-बड़े खर्चे के हिसाब से अनुमान लगाया जाता है क्योंकि हमने भारी उद्योगों के बारे में अधिक सोचा। सिंचाई के मामले में भी हमने छोटे और मध्यम दर्जे की सिंचाई की उपेक्षा की। हमें पहले उन पर ध्यान देना चाहिए था।"

"कृषि हमारे लिए बुनियादी जरूरत है। वह हमारे लिए मूल आधार है बल्कि यों कहें कि जब तक कृषि की उन्नति नहीं कर सकते मुझे डर है कि हम चाहे कुछ भी करें इसके बिना खुशहाली और सन्तुष्टि की भावना नहीं आ सकती। हम अभी तक अपनी जरूरतों के लिए पर्याप्त चीजें तैयार करने में सफल नहीं हुए हैं।

यह पिछले 1-2 साल के बारे मे नही कही जा सकती क्योंकि उन दिनो मौसम भी अच्छा रहा। हमे मौसम की निर्भरता से मुक्त होना होगा और मेरे ख्याल से इसके लिए हमारे पास पर्याप्त क्षमता है। हमारे देश मे जमीन ऐसी है जिससे हम जो कुछ आज उपजा रहे है उससे तीन गुना पैदा कर सकते हैं बल्कि तीन गुना से भी अधिक हो सकता है। तीन गुना मैं कम से कम बता रहा हूँ। कल्पना कीजिए कि जो कुछ आज हम उत्पादन कर रहे हैं उसका दुगुना उत्पादन होता तो क्या स्थिति होती। अगर ऐसा होता तो न केवल असतोष मिट जाता बल्कि जिन साधनो के लिए हमे एक जगह से दूसरी जगह भटकना पडता है उन साधनो की कमी न रहती। यह तभी हो सकता है जबकि छोटे किसानो को अधिक पैदावार करने के लिए आवश्यक सहायता मिले। हमारे किसानो मे से अधिकांश भाग छोटे किसानो का है। 70% कृषक छोटे किसान ही है। वे उतना अधिक उत्पादन नही कर सकते जितना कि होना चाहिए था। क्योंकि ध्यान बडी मशीनो, उर्वरको और कृषि के आधुनिक तरीको की ओर लगा दिया गया। आधुनिकतम तरीको म जो कुछ अच्छा है हम उसे अपना सकते है और ऐसा हमे करना चाहिए पर हम अपने जीवन की ऐसी बुनियादी आवश्यकताओ को नही भूल सकते।"

"हमने यह भी गलती की कि चादर को देखे बिना पैर पसारे और अपने घाटे की अर्थ-व्यवस्था का सहारा लेना पडा। कीमतो पर जितना बुरा असर घाटे की अर्थ व्यवस्था का पडता है उतना और किसी बात का नही। लोगो की जेबो मे ज्यो ज्यो रुपया बढता जाता है, कीमतें भी बढती जाती हैं। यदि मुद्रा प्रसार के साथ साथ आम आदमी के इस्तेमाल की चीजो का उत्पादन भी बराबर बढता ह तो उससे उतना नुकसान ही होता, लेकिन मुद्रा प्रसार तो बढता जाता ह और उत्पादन की दर घटती जाती है, दोनो विपरीत दिशाओ मे चलते है। यही कारण ह कि कीमतो मे उत्तरोत्तर बढ़ोतरी होती है।"

"योजना को पूरी तरह कार्यान्वित नही किया जाता, उससे उत्साह भग ही होता है, उत्साह बढता नही है। यदि कोई योजना लक्ष्य से भी अधिक पूरी की जाती है, तब आशाएँ चढती है और इसमे हमे अधिक ताकत मिलती है, लेकिन यदि योजना बढ चढ कर बना ली जाए और उसे पूरी तरह कार्यान्वित न किया जाए, तो वह नीचे जाने का एक आम रास्ता बन जाता है। इसके सिवा और कोई नतीजा नही होता। कुछ मामलो मे हमारे साथ ऐसा हुआ है।"

"अब तक के आयोजन का परिणाम क्या निकला है ? लोग अपने गाँवो को छोडकर शहरो की ओर भागे आ रहे है। नतीजा यह है कि शहरो मे गदी बस्तियो म लोग भरे हुए हैं और ये गदी बस्तियाँ भी दिन-ब-दिन बढती जा रही हैं। जब लोग गदी बस्तियो मे रहते है तो उनके भीतर अपराध-वृत्ति पनपती है। गदी बस्तियो मे रहने वाला कोई भी आदमी ऐसा बन जाता है, चाहे आप हो या मैं हूँ या कोई और, यदि हम अपना रवैया नही बदलते, और यदि हम प्रणाली को नही बदलते तो यह सिलसिला जारी रहेगा।"

"हम उसी पुराने ढर्रे के अनुसार काम करते रहे हैं जो कि ब्रिटिश राज में अपनाया गया था और जिसमें ग्राम आदमी की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया जाता था, उससे ज्यादा महत्त्व था सरकार चलाना ।"

1976–77 की अर्थ-व्यवस्था का सर्वेक्षण : असन्तुलित और असन्तोषजनक स्थिति

वित्त मन्त्री श्री एच एम पटेल ने 13 जून, 1977 को संसद् में बजट से पूर्व का आर्थिक सर्वेक्षण पेश किया । इस सर्वेक्षण में सन् 1976–77 के दौरान भारतीय व्यवस्था की स्थिति के प्रति सावधानीपूर्वक रवैया अपनाया है । सर्वेक्षण के अनुसार सन् 1976–77 के दौरान अर्थ-व्यवस्था की प्रगति असमान रही । इसमें अर्थ-व्यवस्था के उन अनेक क्षेत्रों की तरफ ध्यान आकर्षित किया गया है जिनकी स्थिति सन् 1975–76 से भी खराब रही ।

सकल राष्ट्रीय उत्पादन में दो प्रतिशत से भी कम वृद्धि होने का अनुमान लगाया गया, जबकि सन् 1975–76 के दौरान यह वृद्धि 8·5 प्रतिशत थी । कृषि उत्पादन में 5 से 6 प्रतिशत की कमी हुई जबकि सन् 1975–76 के दौरान इसमें 15 6% की बढोतरी हुई थी । अनाज की पैदावार घटकर लगभग 11 करोड़ 10 लाख टन हो गई जबकि सन् 1975–76 में यह 12 करोड़ 8 लाख टन थी । खाद्य तेलों के उत्पादन में भारी गिरावट आई । कपास के उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं हुई ।

इन कृषिक वस्तुओं के उत्पादन में कमी आने के परिणामस्वरूप कीमतों में 11·6% की वृद्धि हुई । मुद्रा पूर्ति में 17·1% की वृद्धि हुई, जिससे मुद्रा-स्फीतिकारी दबाव बढने की सम्भावनाएँ अधिक हो गई । उद्योगों में निवेश की प्रवृत्ति में सुधार के कोई खास लक्षण दिखाई नहीं दिए । सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि रोजगार की स्थिति में भी सुधार के कोई आसार नजर नहीं आते ।

दूसरी तरफ गन्ने, पटसन और मेस्ता के उत्पादन में वृद्धि हुई । औद्योगिक उत्पादन 10% बढा जो कि पिछले दस वर्षों से भी अधिक समय के दौरान की एक उल्लेखनीय बात थी । बड़े पैमाने पर अनाज वसूली का कार्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा किया गया और वर्ष के अन्त तक 1 करोड़ 80 लाख टन अनाज का भण्डार बनाया गया । सन् 1976–77 के दौरान निर्यात में 23% की वृद्धि हुई । निर्यात में यह वृद्धि माल के परिमाण और कीमत दोनों दृष्टि से आश्चर्यजनक थी । सन् 1975–76 के विपरीत आयात में 7% की कमी हुई और विदेश व्यापार में 72 करोड़ रु की बचत हुई । सर्वेक्षण ने वर्ष के दौरान भारत में विदेशों से प्राप्तियों के आने में वृद्धि हुई । अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में 303 करोड़ रु का भुगतान किए जाने के बाद भी वर्ष के अन्त में भारत का विदेशी मुद्रा भण्डार 2,863 करोड़ रु. के बराबर था । सर्वेक्षण के अनुसार इन सब बातों से भारतीय अर्थ-व्यवस्था के सामने आ रही समस्याओं के बारे में स्पष्ट ज्ञान हुआ । अर्थ-व्यवस्था के विकास की दर जनता के जीवन स्तर में ठोस सुधार लाने के लिए आवश्यक दर से भी बहुत कम रही, विकास की दर कम रही

क्योकि कृषि उत्पादन जो कि सकल राष्ट्रीय उत्पादन मे लगभग आधार होता है, तेजी मे नही बढा । ऐसा लगा कि हरित क्रान्ति की विकास लहर समाप्त हो गई है और चावल या मोटे अनाज के उत्पादन मे यह लहर दिखाई नही दे रही है । दालो और गन्ने को छोडकर अन्य व्यापारिक फसलो के उत्पादन मे एक प्रकार का ठहराव-सा आ गया ।

वर्ष 1976–77 को छोडकर औद्योगिक विकास भी काफी धीमा रहा । माँग का अभाव कम उत्पादन और परिणामस्वरूप अधिक क्षमता का मुख्य कारण प्रतीत हुआ । औद्योगिक निवेशो की स्थिति मे ठोस सुधार नही आया । दूसरी ओर अलाभकारी होने के कारण कारखाने बन्द होने की घटनाएँ बढती गई । निर्यात मे वृद्धि होने से इन बातो का प्रभाव कुछ सीमा तक कुछ कम हो गया ।

सर्वेक्षण मे यह सुझाव दिया गया कि कुल मिलाकर विकास की उच्च दर प्राप्त करने के लिए कृषि विकास की दर में काफी वृद्धि होनी चाहिए । यह प्राप्त करने के लिए अधिक निवेश और कार्यान्वियन की बेहतर व्यवस्था का होना आवश्यक है । कृषि म अधिक निवेश का अर्थ मुख्य रूप से सिचाई मे अधिक निवेश करना है । पानी कृषि के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है और इस समय कुल खेती वाले क्षेत्रो मे से मात्र लगभग 25% सिचाई की जाती है, इसे देखते हुए सिचाई को उच्चतम प्राथमिकता देने की आवश्यकता है । इसके लिए भूमि के ऊपर और नीचे उपलब्ध जल साधनो के उचित उपयोग और जल प्रबन्ध मे पर्याप्त सुधार लाने के लिए उपयुक्त योजना बनानी होगी । साथ ही साथ, बेहतर बीज, उर्वरक, कीटनाशी दवाओ, अच्छे किस्म के औजार और ऋण आदि जैसी सामग्री के अलावा अनुसधान कार्यो मे भी सुधार लाने के लिए उपाय करने होगे ।

सर्वेक्षण मे यह बताया गया कि कृषि का इस प्रकार विकास अधिक औद्योगिक विकास के लिए भी आवश्यक है । महत्त्वपूर्ण उद्योग कृषि पर आधारित है इसलिए कृषि उत्पादन मे वृद्धि होने से उनकी कच्चे माल सम्बन्धी समस्याएँ समाप्त हो जाएँगी । हमारी अधिकाँश जनता कृषि पर निर्भर है, इसलिए कृषि मे अधिक समृद्धि का अर्थ होगा उद्योग के लिए बडा बाजार और इस प्रकार कृषि के और विस्तार का यह औचित्य प्रदान करता है ।

निरन्तर विकास के लिए कीमतो का स्थिर रहना बहुत ही जरूरी है । सन् 1976–77 मे जिन कारणों से कीमतें बढी थी वे सन् 1977–78 मे भी विद्यमान हैं । इसलिए कीमतो के क्षेत्र मे बहुत ही सावधान रहने की आवश्यकता है । ऋण नीति मे न केवल सयम रखने पर जोर दिया जाना चाहिए बल्कि अधिक वित्तीय अनुशासन बरतना चाहिए । आवश्यक निवेश के अधिकाँश भाग की व्यवस्था सार्वजनिक रूप से जुटाए साधनो मे से की जानी चाहिए, लेकिन इस प्रकार के साधनो के अधिकाँश भाग को सार्वजनिक उपभोग मे लगाने की अपेक्षा उनकी बचत की जानी चाहिए । साथ ही साथ सूझबूझ वाली कर नीति के माध्यम से अधिक से अधिक साधन जुटाए जाने के प्रयास किए जाने चाहिए । समिति अप्रत्यक्ष कर सुधारो के

बारे में विचार कर रही है। इसी प्रकार प्रत्यक्ष कर सुधारों के प्रश्न पर भी विचार किया जाना चाहिए।

सरकार के पास मौजूद भण्डारों को आवश्यकतानुसार काम में लाया जाना चाहिए और उसी के अनुसार आयात नीति को लचीला रखना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए भण्डारों और विदेशी मुद्रा भण्डार का प्रभावशाली रूप से उपभोग किया जाना चाहिए। घरेलू उत्पादन सम्भावनाओं और आयात की अग्रिम योजना के बारे में पहले से ही जानकारी मिलना बहुत ही आवश्यक है।

चालू निर्यात कार्य नीति पर अमल करने की आवश्यकता साफ है। विदेशी मुद्रा भण्डार के बढ़ने में उत्पन्न अनुकूल स्थिति को जोरदार निर्यात अभियान के माध्यम से बनाए रखा जाना चाहिए, लेकिन इस अभियान से देश में उपभोग की आवश्यक वस्तुएँ प्रभावित नहीं होनी चाहिए। भारत के पास विशिष्ट जानकारी और क्षमता दोनों ही है और अब तक प्राप्त अनुभव का पूरा-पूरा लाभ उठाया जाना चाहिए।

सर्वेक्षण में कहा गया कि बेरोजगारी भारत की सबसे गम्भीर समस्या है। इसे अर्थ-व्यवस्था की विकास दर में वृद्धि लाए बिना नहीं सुलझाया जा सकता। इसके समाधान के लिए लचीली वित्त नीति के माध्यम से निवेश के लिए अधिक साधन जुटाने होंगे और सार्वजनिक उपभोग पर नियन्त्रण के माध्यम से अधिक बचत करनी होगी। यह उपाय व्यक्तिगत बचतों में वृद्धि करने के लिए आवश्यक उपायों के अलावा है। सार्वजनिक बचतों में सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं में अधिक उत्पादकता, बेहतर प्रबन्ध और उपयुक्त कीमत नीतियों के माध्यम से काफी वृद्धि की जा सकती है।

दूसरी बात यह है कि निवेश को निश्चित रूप से अधिकाधिक रोजगार मूलक बनाना होगा। कृषि, सिंचाई, ग्राम-उद्योगों, लघु उद्योगों में अधिक मात्रा में निवेश करना होगा और उपयुक्त प्रौद्योगिकी की खोज के लिए व्यापक अनुसंधान कार्य करना होगा। हमारे साधन बेकार न जाएँ —इसके लिए हमें निवेशों का अधिक कुशलता से उपयोग करना होगा।

संतोषजनक रूप से यह महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने के लिए अनेक सांविधानिक सुधार करना आवश्यक है। भूमि सुधारों को प्रभावशाली रूप से लागू करने की आवश्यकता है। यदि उत्पादकता और साधन जुटाने के काम में सुधार लाना है तो योजना-निर्माण और कार्यान्वयन प्रक्रिया में जनता का अधिक से अधिक सहयोग होना चाहिए। अन्त में विस्तार, अनुसंधान, आवश्यक सामान की पूर्ति और विपणन सम्बन्धी संगठनात्मक आधार को मजबूत बनाया जाना आवश्यक है।

1977–78 की अर्थ-व्यवस्था का सर्वेक्षण

मार्च, 1977 में कांग्रेस के 30 वर्षीय एकछत्र शासन की समाप्ति के बाद प्रधानमन्त्री श्री देसाई के नेतृत्व में जनता सरकार बनी। नई सरकार ने समूची अर्थ-व्यवस्था के प्रति एक नया दृष्टिकोण अपनाया जो पिछले किसी भी समय की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी था। सन् 1977–78 का वित्तीय वर्ष काफी सन्तोषजनक

रहा और वित्त मन्त्री श्री पटल ने 23 फरवरी, 1978 को ससद् मे प्रस्तुत की गई बजट पूर्व की आर्थिक समीक्षा मे सन् 1977–78 मे भारतीय अर्थ-व्यवस्था की प्रगति पर सतोष व्यक्त किया। यह आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार की प्रेस विज्ञप्ति दिनांक 13 फरवरी, 1978 के अनुसार इस प्रकार है—

"आर्थिक समीक्षा मे आशा व्यक्त की गई कि चालू वर्ष मे सकल राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि दर सन् 1976-77 की वृद्धि दर के मुकाबले काफी अधिक रहेगी। कृषि के क्षेत्र मे भी, गत वर्ष के मुकाबले विशेषकर अनाज की पैदावार के सम्बन्ध मे काफी सुधार होने की उम्मीद है। मुद्रा स्फीति के दबावो को नियन्त्रण मे रखा गया है और कीमतो का वर्तमान स्तर उससे किंचित अधिक है, जो इस राजकोषीय वर्ष के शुरू मे था।"

'मुद्रा पूर्ति के विस्तार को अकुश में रखने मे इससे भी अधिक सफलता मिली है और ऋण नीति के कारण आवश्यक वस्तुओ की सट्टेबाजी के प्रयोजन से जमाखोरी को रोका गया है और साथ ही अर्थ-व्यवस्था के उत्पादक क्षेत्रो की वास्तविक ऋण सम्बन्धी जरूरतो पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नही पडने दिया गया। पूर्ति व्यवस्था मे काफी सुधार हुआ है।'

"विश्व मण्डियो मे प्रतिकूल स्थिति के बावजूद निर्यात मे निरन्तर वृद्धि हो रही है और हमारी विदेशी मुद्रा आरक्षित निधि मे इस समय जो राशि जमा है वह 9 महीने के आयात के बराबर है।'

"समीक्षा का समापन करते हुए कहा गया कि अर्थ व्यवस्था की वर्तमान स्थिति कुल मिलाकर ऐसी है कि उसमे पूँजी निवेश बिना किसी जोखिम के काफी बढाया जा सकता है।'

"पर समीक्षा मे अर्थ-व्यवस्था का कुछ बातो से सतर्क भी किया गया, जिनके प्रति हमे हाथ पर हाथ धरकर नही बैठना चाहिए। चालू वर्ष मे औद्योगिक उत्पादन मे 5–6 प्रतिशत वृद्धि होने की सम्भावना है जबकि सन् 1976–77 मे 10% वृद्धि हुई थी। कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्र मे उत्पादन वृद्धि की दर शिथिल हो गई है और सूती वस्त्र जैसे प्रमुख उद्योगो मे कठिनाई लगातार अनुभव की जा रही है। बिजली की फिर कमी होने लगी है। यह भी लगता है कि औद्योगिक पूँजी निवेश अपेक्षानुसार नही बढ रहा है। यद्यपि कृषि की स्थिति सतोषजनक रही है, फिर भी वर्ष-दर-वर्ष होने वाली काफी घट बढ तथा दाल और तिलहन जैसी जरूरी जिसो की पैदावार की धीमी गति चिन्ता का विषय है। यद्यपि भुगतान शेष की मजबूत स्थिति पूर्ववर्ती वर्षों मे अनुभव की गई, विकट कठिनाइयों के बाद अत्यन्त उत्साहवर्धक है, पर इससे एक निर्धन देश मे एक विरोधाभास की स्थिति पैदा हो रही है जबकि इन साधनो का एक भाग विदेशी मुद्रा विनिमय आरक्षित निधि के रूप मे विदेशो मे उधार बाँटा जाए और अपने ही देश मे उसका उपयोग न हो। इसी प्रकार मौद्रिक नीति भी निःसदेह सफल रही है पर इस प्रणाली मे नकदी की स्थिति ऐसी थी जिसमे मुद्रा-स्फीति के दबावो का खतरा काफी है और अन्तिम बात यह है कि देश मे गरीबी का स्तर और

बारे मे विचार कर रही है । इसी प्रकार प्रत्यक्ष कर सुधारो के प्रश्न पर भी विचार किया जाना चाहिए ।

सरकार के पास मौजूद भण्डारो को आवश्यकतानुसार काम मे लाया जाना चाहिए और उसी के अनुसार आयात नीति को लचीला रखना चाहिए । इस उद्देश्य के लिए भण्डारो और विदेशी मुद्रा भण्डार का प्रभावशाली रूप से उपभोग किया जाना चाहिए । घरेलू उत्पादन सम्भावनाओ और आयात की अग्रिम योजना के बारे मे पहले से ही जानकारी मिलना बहुत ही आवश्यक है ।

चालू निर्यात कार्य नीति पर अमल करने की आवश्यकता साफ है । विदेशी मुद्रा भण्डार के बढने से उत्पन्न अनुकूल स्थिति को जोरदार निर्यात अभियान के माध्यम से बनाए रखा जाना चाहिए, लेकिन इस अभियान से देश मे उपभोग की आवश्यक वस्तुएँ प्रभावित नही होनी चाहिए । भारत के पास विशिष्ट जानकारी और क्षमता दोनो ही है और अब तक प्राप्त अनुभव का पूरा-पूरा लाभ उठाया जाना चाहिए ।

सर्वेक्षण मे कहा गया कि बेरोजगारी भारत की सबसे गम्भीर समस्या है । इसे अर्थ-व्यवस्था की विकास दर मे वृद्धि लाए बिना नही सुलझाया जा सकता । इसके समाधान के लिए लचीली वित्त नीति के माध्यम से निवेश के लिए अधिक साधन जुटाने होगे और सार्वजनिक उपभोग पर नियन्त्रण के माध्यम से अधिक बचत करनी होगी । यह उपाय व्यक्तिगत बचतो मे वृद्धि करने के लिए आवश्यक उपायो के अलावा है । सार्वजनिक बचतो मे सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओ मे अधिक उत्पादकता, बेहतर प्रबन्ध और उपयुक्त कीमत नीतियो के माध्यम से काफी वृद्धि की जा सकती है ।

दूसरी बात यह है कि निवेश को निश्चित रूप से अधिकाधिक रोजगार मूलक बनाना होगा । कृषि, सिंचाई, ग्राम-उद्योगो, लघु उद्योगो मे अधिक मात्रा मे निवेश करना होगा और उपयुक्त प्रौद्योगिकी की खोज के लिए व्यापक अनुसधान कार्य करना होगा । हमारे साधन बेकार न जाएँ —इसके लिए हमे निवेशो का अधिक कुशलता से उपयोग करना होगा ।

सतोषजनक रूप से यह महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने के लिए अनेक सांविधानिक सुधार करना आवश्यक है । भूमि सुधारो को प्रभावशाली रूप से लागू करने की आवश्यकता है । यदि उत्पादकता और साधन जुटाने के काम मे सुधार लाना है तो योजना-निर्माण और कार्यान्वयन प्रक्रिया मे जनता का अधिक से अधिक सहयोग होना चाहिए । अन्त मे विस्तार, अनुसधान, आवश्यक सामान की पूर्ति और विपणन सम्बन्धी संगठनात्मक आधार को मजबूत बनाया जाना आवश्यक है ।

1977–78 की अर्थ-व्यवस्था का सर्वेक्षण

मार्च, 1977 मे काँग्रेस के 30 वर्षीय एकछत्र शासन की समाप्ति के बाद प्रधानमन्त्री श्री देसाई के नेतृत्व मे जनता सरकार बनी । नई सरकार ने समूची अर्थ-व्यवस्था के प्रति एक नया दृष्टिकोण अपनाया जो पिछले किसी भी समय की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी था । सन् 1977–78 का वित्तीय वर्ष काफी सन्तोषजनक

रहा और वित्त मन्त्री श्री पटल ने 23 फरवरी, 1978 को ससद् मे प्रस्तुत की गई बजट-पूर्व की आर्थिक समीक्षा मे सन् 1977–78 मे भारतीय अर्थ-व्यवस्था की प्रगति पर सतोष व्यक्त किया। यह आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार की प्रेस विज्ञप्ति दिनांक 13 फरवरी, 1978 के अनुसार इस प्रकार है—

"आर्थिक समीक्षा मे आशा व्यक्त की गई कि चालू वर्ष मे सकल राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि दर सन् 1976-77 की वृद्धि दर के मुकाबले काफी अधिक रहेगी। कृषि के क्षेत्र मे भी, गत वर्ष के मुकाबले विशेषकर अनाज की पैदावार के सम्बन्ध म काफी सुधार होने की उम्मीद है। मुद्रा-स्फीति के दबावो को नियन्त्रण मे रखा गया है और कीमतो का वर्तमान स्तर उससे किंचित अधिक है, जो इस राजकोषीय वर्ष के शुरू मे था।"

'मुद्रा पूर्ति के विस्तार को अकुश मे रखने मे इससे भी अधिक सफलता मिली है और ऋण नीति के कारण आवश्यक वस्तुओ की सट्टेबाजी के प्रयोजन से जमाखोरी को रोका गया है और साथ ही अर्थ-व्यवस्था के उत्पादक क्षेत्रो की वास्तविक ऋण सम्बन्धी जरूरतो पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नही पडने दिया गया। पूर्ति व्यवस्था मे काफी सुधार हुआ है।'

"विश्व मण्डियो म प्रतिकूल स्थिति के बावजूद निर्यात मे निरन्तर वृद्धि हो रही है और हमारी विदेशी मुद्रा आरक्षित निधि मे इस समय जो राशि जमा है वह 9 महीने के आयात के बराबर है।

"समीक्षा का समापन करते हुए कहा गया कि अर्थ-व्यवस्था की वतमान स्थिति कुल मिलाकर ऐसी है कि उसमे पूंजी निवेश बिना किसी जोखिम के काफी बढाया जा सकता है।'

"पर समीक्षा म अर्थ-व्यवस्था का कुछ बातो स सतर्क भी किया गया, जिनक प्रति हमे हाथ पर हाथ धरकर नही बैठना चाहिए। चालू वर्ष मे औद्योगिक उत्पादन मे 5–6 प्रतिशत वृद्धि होने की सम्भावना है जबकि सन् 1976–77 मे 10% वृद्धि हुई थी। कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्र म उत्पादन वृद्धि की दर शिथिल हो गई है और सूती वस्त्र जैसे प्रमुख उद्योगो म कठिनाई लगातार अनुभव की जा रही है। बिजली की फिर कमी होने लगी है। यह भी लगता है कि औद्योगिक पूंजी निवेश अपेक्षानुसार नही बढ रहा है। यद्यपि कृषि की स्थिति सतोषजनक रही है, फिर भी वर्ष दर-वर्ष होने वाली काफी घट बढ तथा दाल और तिलहन जैसी जरूरी जिंसो की पैदावार की धीमी गति चिन्ता का विषय है। यद्यपि भुगतान शेष की मजबूत स्थिति पूर्ववर्ती वर्षों मे अनुभव की गई विकट कठिनाइयो के बाद अत्यन्त उत्साहवर्धक है, पर इससे एक निर्धन देश मे एक विरोधाभास की स्थिति पैदा हो रही है जबकि इन साधनो का एक भाग विदेशी मुद्रा विनिमय आरक्षित निधि के रूप म विदेशो मे उधार बांटा जाए और अपने ही देश मे उसका उपयोग न हो। इसी प्रकार मौद्रिक नीति भी नि सदेह सफल रही है पर इस प्रणाली मे नकदी की स्थिति ऐसी थी जिसमे मुद्रा-स्फीति के दबावो का खतरा काफी है और अन्तिम बात यह है कि देश मे गरीबी का स्तर और

विद्यमान बेरोजगारी काफी बड़े पैमाने पर बनी हुई है। इसलिए समीक्षा में इस बात पर जोर दिया गया है कि अर्थ-व्यवस्था की इन कमजोरियों को दूर करने और स्थिरता तथा विकास के रूप में बढ़िया कार्य निष्पादन प्राप्त करने की तात्कालिक आवश्यकता है।"

सकल राष्ट्रीय उत्पाद में 5 प्रतिशत की वृद्धि—समीक्षा के अनुसार सन् 1977–78 मे सकल राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि दर 5% होने का अनुमान लगाया है जबकि सन् 1976–77 में यह केवल 1·6% रही थी। चालू वर्ष मे सकल राष्ट्रीय उत्पाद मे वृद्धि का मुख्य श्रेय खरीफ के अच्छे मौसम और चालू रबी मौसम मे खेती के क्षेत्र मे अधिक उपज आसार को है। अनुमान है कि खरीफ के अनाजो का उत्पादन लगभग 710–730 लाख मीट्रिक टन तक पहुँच जाएगा जबकि सन् 1976–77 मे इन अनाजो का उत्पादन 666 लाख मीट्रिक टन हुआ था। देश मे रबी की बुआई और मौसम काफी अच्छा रहता है। इसलिए समीक्षा मे रबी की भी फसल होने का अनुमान लगाया गया है, अत उम्मीद है कि अनाज का कुल उत्पादन लगभग 1210 लाख मीट्रिक टन होगा जो कि गत वर्ष के उत्पादन के मुकाबले एक करोड़ मीट्रिक टन ज्यादा होगा।

वाणिज्यिक फसलो की पैदावार भी सन् 1976–77 के मुकाबले अच्छी होने की उम्मीद है। कपास और तिलहनो का उत्पादन पिछले साल के मुकाबले ज्यादा होगा और गन्ने से गुड के रूप मे उत्पादन पिछले साल के रिकार्ड उत्पादन से अधिक होने की उम्मीद है। केवल जूट और मेस्ता का उत्पादन चालू वर्ष मे पिछले साल के मुकाबले मामूली कम रहेगा। पर समीक्षा में दाल और तिलहन के उत्पादन की गति, इन आवश्यक वस्तुओ की माँग के अनुरूप न होने की दीर्घकालीन प्रवृत्ति की ओर ध्यान दिलाया गया है और इनका उत्पादन बढाने के लिए आवश्यक कदम उठाने के लिए कहा गया। कपास का उत्पादन बढाने की आवश्यकता है।

कृषि उत्पादन में बढ़ोतरी—कृषि क्षेत्र मे अच्छी सफलता का बडा श्रेय पानी, उर्वरक, कीटनाशक दवाओ और अधिक उपज देने वाली किस्मो के बीजो जैसी कृषि के काम आने वाली वस्तुओ के अधिक उपयोग को है। बडी, मझौली और छोटी सिंचाई योजनाओं से इस वर्ष मे अनुमानत 22 2 लाख हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि में सिंचाई की व्यवस्था की गई है। यह अकेले एक वर्ष में सबसे अधिक है। उर्वरक का उपयोग 42 लाख मी टन तक बढ़ जाने की उम्मीद है जो कि पिछले वर्ष के मुकाबले 26% ज्यादा होगा। अधिक उपज देने वाली किस्मों के अन्तर्गत 20 लाख हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि मे खेती की गई है। अधिक वस्तुओं के सम्बन्ध मे वसूली और कीमत समर्थन की समुचित नीति का भी पालन किया गया। पर समीक्षा मे इस बात पर जोर दिया गया है कि अधिक घट-बढ को खत्म करने और कृषि मे विकास की लम्बे समय से चली आ रही वृद्धि दर को बनाए रखने की तात्कालिक आवश्यकता है। इसके लिए कृषि में काम आने वाली वस्तुओं की पूर्ति और उपयोग को बढ़ाने के वर्तमान कार्यक्रम पर जोरदार ढंग से अमल करने, खेती के बेहतर तरीको का अधिक

व्यापक विस्तार कार्यक्रमो के द्वारा प्रसार करने, समन्वित समर्थन नीति अपनाने और खासतौर से अनाज के अलावा अन्य फसलो के सम्बन्ध मे अधिक अनुसधान करने की आवश्यकता होगी।

औद्योगिक उत्पादन कम—समीक्षा मे वर्ष 1977–78 म औद्योगिक उत्पादन म अपेक्षाकृत कम वृद्धि पर चिन्ता व्यक्त की गई है। वर्तमान सकेतो के अनुसार औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि दर 5–6 प्रतिशत रहेगी जबकि सन् 1976–77 म 10 4 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गई थी। इसका कारण बिजली परिवहन उपकरण, लोहा व इस्पात, कोयला व सूती वस्त्र जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रो में वृद्धि की दर मन्द होना है। इस तरह की स्थिति के लिए जो बाते जिम्मेदार लगती है, वे है—(क) बिजली की कमी, (ख) विस्तार के लिए क्षमता की कमी, (ग) कुछ क्षेत्रो म श्रमिक असन्तोष और (घ) कुछ उद्योगो की माँग मे कमी। समीक्षा मे इस बात पर जोर दिया गया है कि औद्योगिक उत्पादन मे फिर गति लाने का उपाय सावजनिक निवेश म वृद्धि है जिससे वर्तमान अडचनो मे से कुछेक दूर हो जाएगी और इसके परिणामस्वरूप माँग खासतौर से पूँजीगत माल उद्योग की माँग म वृद्धि होगी कृषि आमदनी बढेगी और अधिक औद्योगिक शान्ति होगी। समीक्षा मे औद्योगिक उत्पादन को सहारा देन के लिए निर्यात की भूमिका पर भी जोर दिया गया है और अधिक निर्यात सवर्द्धन तथा अधिक उत्पादन की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

रुग्ण एकक—समीक्षा मे औद्योगिक एकको मे रुग्णता की समस्या की भी चर्चा की गई है और उधार देने वाली सस्थाओ द्वारा दी गई बडी वित्तीय सहायता का उल्लेख किया गया है। मजूर की गई वित्तीय सहायता फरवरी, 1977 से जनवरी 1978 तक 132 करोड रु की थी। रुग्ण एकको का स्वस्थ एकको के साथ विलय क लिए मार्ग निर्देशन निश्चित कर दिए गए है जिसस कि दोनो के मिलने से जो एकक बने वह कार्यशील एकक हो। समीक्षा मे बढते हुए औद्योगिक श्रमिक असन्तोष की भी चर्चा की गई है और औद्योगिक शान्ति की स्थापना के लिए भी सम्बन्धित पक्षो के सहयोग की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

कीमतो मे स्थिरता—अर्थव्यवस्था म कीमतो की स्थिति की समीक्षा करत हुए इस समीक्षा म इस बात पर सन्तोष व्यक्त किया गया है कि इस वर्ष कीमतो क सम्बन्ध म अपेक्षाकृत स्थिरता प्राप्त कर ली गई है। वर्ष के प्रारम्भ म मुद्रास्फीति का काफी दबाव था क्योकि सन् 1976 77 म मुद्रा उपलब्धि मे 20 ० % विस्तार म कुल मौद्रिक माँग तथा सकल राष्ट्रीय उत्पादन म मामूली वृद्धि से प्रकट कुल पूर्ति म असन्तुलन था। सरकार वनस्पति कपास और मानव निर्मित रेशे जैसी वस्तुओ के उदार आयात के जरिये सवेदनशील वस्तुओ की अधिक अच्छी पूर्ति व्यवस्था सार्वजनिक वितरण के अच्छे तरीके और कुछ अन्य के निर्यात पर अकुश लगा कर, इन दोनो के बीच बेहतर सन्तुलन प्राप्त करने मे सफल हुई। साथ ही, प्रतिबन्धात्मक मुद्रा और ऋण नीति का पालन किया गया जिससे कि मुद्रा पूर्ति का विस्तार रोका जा सके। समीक्षा मे घरेलू उत्पादन मे वृद्धि के महत्व पर दीर्घकालिक समाधान के

रूप में प्रकाश डाला गया है। यह समाधान बढती हुई कीमतों, खासतौर से दाल और खाद्य तेलो जैसी चीजो की बढती हुई कीमतो की समस्या का दीर्घकालिक समाधान के रूप मे घरेलू उत्पादन मे वृद्धि के महत्व को इसमे दर्शाया गया है। समीक्षा मे इस बात पर भी जोर दिया गया है कि उत्पादन के बढावा देने तथा सार्वजनिक वितरण की सगठित प्रणाली और उपभोक्ता सरक्षण के लिए भी समुचित समर्थन नीति की आवश्यकता है ताकि कीमतो की स्थिरता को सुनिश्चित किया जा सके।

मुद्रा विस्तार पर नियन्त्रण—सर्वेक्षण मे इस बात पर ध्यान दिया गया है कि चालू वर्ष के दौरान मुद्रा विस्तार अभी तक केवल 8·7 प्रतिशत रहा है जबकि 1976–77 के राजकोषीय वर्ष की इसी अवधि मे यह वृद्धि 12·4 प्रतिशत थी। इन सभी तीनो बातो मानी बैंकिंग क्षेत्र की निवल विदेशी मुद्रा परिसम्पत्ति, सरकार को दिया गया रिजर्व बैंक ऋण तथा वाणिज्यिक क्षेत्र को दिए गए बैंक ऋण ने चालू वर्ष मे मुद्रा विस्तार मे लगभग समान अनुपात मे योग दिया है फिर भी चालू वर्ष मे सरकार की बैंक ऋण मे वृद्धि खासतौर से काफी अधिक रही है। दूसरी तरफ अनुसूचित बैंक ऋण मे वृद्धि, पिछले वर्ष की इसी अवधि के दौरान हुए ऋण विस्तार का केवल 56 प्रतिशत थी। यह आंशिक रूप मे खाद्य वसूली के लिए ऋण मे मामूली वृद्धि और रिजर्व बैंक द्वारा सवेदनशील वस्तुओ पर उधार देने के सम्बन्ध मे लगाए गए कडे नियन्त्रण की वजह से था। रिजर्व बैंक ने उनके साधनो के बडे अश पर रोक लगा कर बैंको द्वारा उधार देने योग्य साधनो को सीमित कर दिया और पुनर्वित्त की सुविधाओ को विवेकहीन बनाकर भी ऐसा किया।

बैंक मे जमा राशि- दूसरी ओर बैंकिंग प्रणाली के पास जमा राशि की वृद्धि की दर चालू वित्त वर्ष मे कम यानी 19 4 प्रतिशत थी जबकि गत वर्ष 21 2 प्रतिशत थी। विशेषकर सावधिक जमा राशियो की वृद्धि, जो सामान्यत मुद्रा पूर्ति पर सकोचनशील प्रभाव डालती है, चालू वर्ष के प्रथम दस महीनो मे केवल 18 5 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि सन् 1976–77 मे इसी अवधि मे यह वृद्धि 25 9% थी। यह कुछ चिन्ताजनक बात है क्योंकि सावधि जमा राशि बचत का महत्वपूर्ण साधन है।

समीक्षा मे इस साल रिजर्व बैंक द्वारा अपनाई गई प्रतिबन्धात्मक मौद्रिक नीति की अधिक सफलता का उल्लेख किया गया है किन्तु इसमे यह भी बताया गया है कि मौद्रिक और ऋण विस्तार के सम्बन्ध मे लगातार सावधान रहने की जरूरत है। इसका कारण इस प्रणाली मे नकदी साधनो की अधिकता है।

उपेक्षित क्षेत्रो को ऋण—बैंको को सलाह दी गई कि वे कृषि, लघु उद्योग, सडक परिवहन आदि जैसे उपेक्षित क्षेत्रो को अधिक ऋण दे। छोटा ऋण लेने वालो को ऋण सुविधाएँ बढाने की दृष्टि से बैंको को यह भी सलाह दी गई कि वे अपनी ग्रामीण और अर्द्ध-शहरी शाखाओं के माध्यम से ऋण और जमा रकमो के बीच कम से कम 60 प्रतिशत का अनुपात प्राप्त करें।

सर्वेक्षण मे इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि राज्य सरकारो के

बजट मे अधिक घाटे से राज्य सरकारो का वित्तीय बोझ काफी बढ गया है और बजट का घाटा 84 करोड रु की छोटी राशि तक सीमित रखने की उन सामर्थ्य पर प्रतिकूल असर पडा है ।

प्राकृतिक विपदाओ पर अधिक खर्च, महँगाई भत्ते की अतिरिक्त किश्त की अदायगी, अनिवार्य जमा की दूसरी किस्त का भुगतान, कामगारो को न्यूनतम बोनस की स्वीकृति, बन्दरगाह और गादी कर्मचारियो के वेतनो मे सशोधन और खाद्य तथा उर्वरको के लिए राज सहायता मे वृद्धि, घाटे को बढाने का मुख्य कारण होगी। अधिक बाजार ऋण, रेलवे की वित्तीय स्थिति मे सुधार जैसी कुछ अनुकूल बाते सन्तोषकारी तत्त्व भी हैं ।

ग्रामीण क्षेत्रो के लिए अधिक राशि—सन् 1977–78 के योजना परिव्यय मे नई सरकार के उद्देश्यो के अनुसार परिवतन करके उसमे ग्रामीण क्षेत्र को प्राथमिकता दी गई । कृषि और सम्बद्ध सेवाओ का परिव्यय 41 प्रतिशत बढाया गया । सिचाई और बाढ नियन्त्रण के मद मे 50 प्रतिशत की, बिजली विकास मे 30 प्रतिशत और ग्राम तथा लघु उद्योगो के लिए 52 प्रतिशत की वृद्धि की गई ।

सन् 1977–78 के केन्द्रीय बजट मे जो कुल परिव्यय रखा गया था उसमे से विकास सम्बन्धी खर्च 54 5 प्रतिशत था । किन्तु बजट सम्बन्धी घाटे को 84 करोड रु की छोटी राशि पर रखा गया था जबकि सन् 1976–77 (सशोधित अनुमान) मे यह घाटा 325 करोड रु का था । इसका उद्देश्य बजट पर मुद्रा-स्फीति के प्रभाव को कम से कम करना था । शेष परिव्यय के लिए वित्त-व्यवस्था राजस्वो द्वारा की जानी थी जिसमे अतिरिक्त कराधान 44 1 प्रतिशत था। घरेलू पूंजी प्राप्तियाँ कुल परिव्यय का 29 1 प्रतिशत थी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि विदेशी सहायता कुल परिव्यय का केवल 7 7 प्रतिशत थी। सन् 1975-76 मे कुल परिव्यय का यह 13 4 प्रतिशत थी । इस प्रकार विदेशी सहायता पर हमारी निर्भरता लगभग आधी हो गई ।

यद्यपि केन्द्रीय सरकार ने साधन जुटाने के काम मे समुचित प्रयत्न किए हैं किन्तु राज्य सरकारो के उक्त दिशा मे प्रयत्न आमतौर पर निराशाजनक रहे हैं। उन्होने साधन जुटाने के लिए न केवल पर्याप्त प्रयास नही किए बल्कि कर सम्बन्धी कई रियायतें देकर और कई नए दायित्व सम्भालकर उन्होने साधनो मे कटौती ही की । केन्द्र को मजबूर होकर उन्हे अर्थोपाय और अग्रिम योजना सहायता देकर उनकी मदद करनी पडी ।

भुगतान शेष की स्थिति सुदृढ –समीक्षा ने उल्लेख किया गया है कि भुगतान शेष की स्थिति चालू वर्ष मे भी मजबूत बनी हुई है । सन् 1977–78 मे पहले आठ महीनो मे अर्थ-व्यवस्था को 72 करोड रु का व्यापारिक अधिशेष प्राप्त हुआ है । इस अवधि मे निर्यात मे 9 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई है जबकि सन् 1976–77 की इसी अवधि मे यह 31 प्रतिशत थी । विदेशी मुद्रा आरक्षित निधि मे इस वजह से और विदेशो से लगातार प्राप्त होने वाली रकमो के कारण निरन्तर वृद्धि हो रही है और आजकल विदेशी मुद्रा आरक्षित निधि 4000 करोड रु से कुछ ही कम है ।

सन् 1976–77 मे निर्यात वृद्धि की दर 27 प्रतिशत थी। इसमे से 18% निर्यात के परिमाण मे वृद्धि के कारण हुई । जिन वस्तुओ के निर्यात मे खास प्रगति

देखने में आईं, वे थी—इंजीनियरी सामान, सूती कपड़ा, जिसमें सिले-सिलाए वस्त्र शामिल हैं, चमड़ा और चमड़े का सामान, लोहा और इस्पात, हस्तशिल्प वस्तुएँ, काफी और चाय। चालू वर्ष में जिनमें से अधिकांश वस्तुओं की निर्यात वृद्धि निराशाजनक है क्योंकि विश्व अर्थव्यवस्था की प्रगति की रफ्तार धीमी रही। इसके अलावा विकसित देशों ने हमारे निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा दिए हैं और पश्चिम एशिया जैसे क्षेत्रों में माँग शिथिल हो गई है। समीक्षा में निर्यात सवर्द्धन के प्रयत्नों को, अर्थव्यवस्था के दीर्घकालिक हितों को ध्यान में रखते हुए लगातार बनाए रखने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है।

समीक्षा में कहा गया है कि भुगतान शेष में सुधार होने से हमारे लिए काफी बड़े पैमाने पर आयात को उदार बनाना सम्भव हुआ है। खाद्य तेल, कपास और मानव निर्मित धागों के काफी मात्रा में आयात करने के अलावा उद्योग की कच्चे माल सम्बन्धी उचित जरूरतों और अधिक उत्पादन के लिए आवश्यक कलपुर्जों को उदारतापूर्वक मँगाने की अनुमति दी गई।

विदेशी मुद्रा आरक्षित निधि—सर्वेक्षण में विदेशी मुद्रा आरक्षित निधि की बढ़ती हुई राशि के प्रति चिन्ता व्यक्त की गई है और इस बात पर जोर दिया गया है कि उनका देश के आन्तरिक आर्थिक विकास के लिए वित्त पोषण करने के लिए इस्तेमाल किया जाना चाहिए। साथ ही इस बात की ओर भी ध्यान दिलाया गया है कि हमें इतना चिन्तित भी नहीं होना चाहिए कि हम विदेशी मुद्रा की आरक्षित निधि को यों ही खर्च कर दें। हमारे जैसे देश में घरेलू कृषि उत्पादन और आयातित कच्चे माल की कीमतों में भारी घट-बढ़ होने के कारण हमारे आयात बिल में बड़ी मात्रा में घट-बढ़ होती रहती है और हमारे पास दूसरी पंक्ति की आरक्षित निधि नहीं है। अतः हमें आरक्षित निधि की उससे काफी बड़ी राशि की जरूरत है जितनी कि हम पहले रखते रहे हैं।

अधिक वृद्धि के लिए पूँजी निवेश—समीक्षा के समापन में कहा गया है कि भारत की अर्थव्यवस्था अधिक विकास प्राप्त करने के लिए अनुकूल स्थिति में है। जरूरत इस बात की है कि सार्वजनिक पूँजी निवेश बढ़ाकर रुकावटें दूर की जाएँ, अन्य क्षेत्रों को सक्रिय किया जाए और विदेशी मुद्रा आरक्षित निधि का आगे चलकर अधिक उपयोग हो। हमारे पास लगभग 170 लाख मीट्रिक टन अन्न का भण्डार है और विदेशी मुद्रा आरक्षित निधि की बहुत अच्छी स्थिति है इससे हमारी अर्थव्यवस्था का काम करने की योजना बनाने की और ऐसी कार्यविधि निर्धारित करने की काफी हद तक स्वतन्त्रता है जिसमें कि रोजगार बढ़ाने और गरीबी हटाने पर अधिक ध्यान दिया जा सके। समीक्षा में पूँजी निवेश सम्बन्धी आयोजन और समुचित परियोजनाओं और कार्यक्रमों की कार्यान्विति करने के तन्त्र को सुदृढ़ बनाने के सम्बन्ध में पूरा ध्यान देने की आवश्यकता बताई गई है। साथ ही यह भी महत्त्वपूर्ण है कि लोगों को योजना तैयार करने और उसको कार्यान्वित करने के काम में शामिल किया जाए ताकि विकास सम्बन्धी कार्य में सभी लोगों की शक्ति लगे और सभी लोगों को लाभ पहुँचे।

8 जनता सरकार द्वारा 1 अप्रैल 1978 से लागू नयी छठी राष्ट्रीय योजना (1978–83)

(THE NEW SIXTH PLAN (1978-83) INTRODUCED BY THE JANTA GOVERNMENT)

मार्च 1977 म हुए ऐतिहासिक ससदीय चुनावो के बाद बनी नई सरकार ने एक वर्ष के सक्षिप्त काल मे देश के चहुँमुखी आर्थिक और सामाजिक विकास को अनेकानेक उपायो से अधिक गतिमान बनाया है। द्रुत विकास के मार्ग मे जो भी बाधाएँ थी और नई सरकार की जो भी समस्याएँ और कानूनी कठिनाइयाँ धरोहर म मिली थी, उन्हे दूर करने के लिए दृढ सकल्प के साथ कदम उठाए गए। उन कदमो म से कुछ के सुखद परिणाम इसी एक वर्ष मे सामने आ गए और कुछ दूरगामी उपायो के सुफलो के लक्षण प्रकट है। नई सरकार ने उन बुनियादी मूल्यो, सिद्धान्तो और नीतियो को सम्पुष्ट किया जो स्वतन्त्र भारत के आर्थिक और सामाजिक लक्ष्यो की प्राप्ति का आधार बन चुके है। पिछले कुछ वर्षों मे और विशेष रूप से आपात् शासनकाल मे लोकतन्त्र की नीव चरमरा गई थी अर्थ-व्यवस्था के लिए कई खतरे पैदा हो गए थे, विदेशो म भारत की प्रतिष्ठा को भारी ठेस लगी थी और गरीबी और बेरोजगारी की समस्याएँ अपने विकराल रूप मे ज्यो की त्यो बनी हुई थी। नई सरकार के लिए य भीषण चुनौतियाँ थी। सब दिशाओ और क्षेत्रो मे तत्परता, साहस और दृढ निश्चय के साथ कार्रवाई की गई, जिससे जनता का सरकार की क्रियात्मकता के बारे मे विश्वास पुनर्स्थापित हुआ। वर्षों के बाद उन्होने अपनी प्रतिनिधि सरकार से एकात्मकता अनुभव की।

पिछले आयोजन से जन आकाँक्षाओ की पूर्ति न होते देख जनता सरकार ने सम्पूर्ण नियोजन प्रणाली पर पुनर्विचार किया है और पाँचवी योजना को 31 मार्च, 1979 की बजाय 31 मार्च, 1978 को भी समाप्त कर 1 अप्रैल, 1978 से नई राष्ट्रीय छठी योजना लागू कर दी है। नई योजना प्रणाली अनवरत या 'आवर्ती' योजना प्रणाली (Rolling Plan) है जिसका परिचयात्मक विवरण पुस्तक के द्वितीय भाग के प्रथम अध्याय मे दे दिया गया है।

नई राष्ट्रीय योजना का प्रारूप योजना आयोग द्वारा राष्ट्रीय विकास परिषद् के समक्ष मार्च, 1978 में प्रस्तुत कर दिया गया है। भारत सरकार की 20 मार्च, 1978 की प्रेस विज्ञप्ति में इस नई योजना के प्रारूप का सार संक्षेप में दिया गया है। इस सम्पूर्ण सार संक्षेप को हम आगे ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर रहे हैं, पर इसके पूर्व कुछ पंक्तियों में छठी योजना (1978–1983) की परिचयात्मक मोटी रूपरेखा जान लेना उपयुक्त होगा।

छठी योजना (1978-83) के प्रारूप की मोटी रूपरेखा

योजना आयोग द्वारा राष्ट्रीय विकास परिषद् की 19 मार्च, 1978 को हुई बैठक में प्रस्तुत सन् 1978–83 के योजना प्रारूप में कुल परिव्यय 1,16,240 करोड़ रु. रखने का प्रस्ताव किया गया है जिसमें से सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय 69,380 करोड़ रु होगा। प्रारूप में 4 7 प्रतिशत विकास दर की परिकल्पना की गई है और यह आशा व्यक्त की गई है कि योजनावधि के अन्त तक 5·5 प्रतिशत विकास दर की क्षमता बन जाएगी। पाँचवी योजना के चार वर्षों के दौरान औसत विकास दर 3·9 प्रतिशत रही जबकि योजना लक्ष्य 4 37 प्रतिशत की विकास दर का था। इस योजना में पूर्ण रोजगार उपलब्ध कराने, गरीबी को समाप्त करने और अधिक समानता वाले समाज की रचना करने के लक्ष्यों को प्राप्त करने पर मुख्य रूप से जोर दिया जाएगा। इसलिए योजना के प्रारूप में कहा गया है कि इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए योजना में चार क्षेत्रों—कृषि, कुटीर व लघु उद्योग, समन्वित ग्रामीण विकास के लिए क्षेत्रीय आयोजन और न्यूनतम आवश्यकताओं की व्यवस्था पर जोर देने के लिए कहा गया है। अनाज का उत्पादन बढ़कर 12 करोड़ 10 लाख टन से 14 करोड़ 10 लाख टन, तिलहनों का 92 लाख टन से एक करोड़ 12 लाख टन तथा कपास का 64 30 लाख गाँठों से बढ़कर 81 50 लाख गाँठें होने की आशा है। वार्षिक विकास दर कृषि के लिए 3·98 प्रतिशत, उद्योग व खनिजों के लिए 6 92 प्रतिशत, बिजली उत्पादन के लिए 10 80 प्रतिशत, निर्माण के लिए 10 55 प्रतिशत, परिवहन के लिए 6·24 प्रतिशत और अन्य सेवाओं के लिए 6 01 प्रतिशत रखी गई है। योजना के प्रारूप में यह परिकल्पना की गई है कि प्रति व्यक्ति खपत के स्तर में सन् 1978–83 की अवधि में 2 21 प्रतिशत और सन् 1983–88 की अवधि में 3 18 प्रतिशत की दर से वृद्धि होगी। सकल घरेलू उत्पादन के विस्तार के रूप में बचत सन् 1977-78 में 19 8 प्रतिशत से बढ़कर सन् 1982–83 में 23·4 प्रतिशत होने की आशा है। सन् 1982–83 तक निर्यात बढ़कर 7,750 करोड़ रु. मूल्य के बराबर होने की सम्भावना है। योजना प्रारूप में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के लिए धन राशि में भारी वृद्धि की गई और कुल मिलाकर 4,180 करोड़ रु निर्धारित किए गए हैं जबकि पाँचवी योजना में इसके लिए 800 करोड़ रु. रखे गए थे। इस योजना में मूल आवश्यकताओं की पूर्व सूची के विषयों अर्थात् पेयजल की पूर्ति, बेघर लोगों को घर बनाने के लिए भूमि देना, गाँवों तक सड़क निर्माण, गरीब ग्रामीण बच्चों

को प्राथमिक शिक्षा देना, ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओ की व्यवस्था करना, ग्रामीण विद्युतीकरण का विस्तार करना, गन्दी बस्तियो के पर्यावरण का सुधार करना, अल्पपोषितो के लिए पौष्टिक आहार के अलावा प्रौढ शिक्षा भी शामिल की जाएगी। योजना के प्रारूप मे एक ऐसी कार्य नीति का प्रस्ताव रखा गया है जिसके परिणामस्वरूप गरीबी के स्तर से नीचे का जीवन बिता रहे लोगो के प्रतिशत मे भारी कमी आएगी। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्राथमिकताओ मे परिवर्तन करने के लिए पुनर्वितरण उपाय करना आवश्यक है। सबसे पहले परिसम्पत्तियो, विशेषकर कृषि भूमि, शहरी सम्पदा और सम्मिलित सम्पत्ति की मौजूदा वितरण व्यवस्था बदलनी चाहिए। दूसरे सरकारी क्षेत्र के कार्यकलापो को कम आय वाले उपभोक्ताओ के हक मे इस प्रकार परिवर्तित करना चाहिए ताकि इन्हे आवश्यक वस्तुओ का वितरण, आधारभूत सुविधाएँ तथा सामाजिक सेवाएँ आसानी से सुलभ हो सकें। तीसरे, उत्पादन पक्ष की ओर छोटे किसानो और लघु उद्यमियो का संस्थागत ऋण और निवेश वस्तुओ की पूर्ति के लिए हिस्सा बढाया जाना चाहिए तथा उन्हे तकनीकी और विपणन सहायता देने मे सुधार किया जाना चाहिए। चौथे, बेरोजगारी कम करने के लिए ऐसी नीतियाँ तैयार की जानी चाहिए कि उनसे असमानताएँ कम हो और अन्त मे गाँवो तथा शहरो मे गरीब वर्ग के लोगो को सगठित करना होगा। योजना प्रारूप मे योजना की ससाधनो की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए कराधान के आधार को व्यापक बनाने के लिए विस्तृत सुझाव दिए गए हैं। योजना मे अप्रत्यक्ष करो से अधिक राजस्व प्राप्त करने का प्रस्ताव रखा गया है लेकिन यह भी कहा गया है कि ऐसा करते समय विभिन्न सामाजिक-आर्थिक लक्ष्यो को ध्यान मे रखा जाना चाहिए। योजना पर सफलतापूर्वक अमल करने के लिए इस प्रारूप मे परियोजनाओ तथा कार्यक्रमो पर निगरानी व्यवस्था को सुचारु बनाने तथा जिन क्षेत्रो मे सुधार की आवश्यकता है उनका पता लगाने के लिए अधिक कारगर समीक्षा करने तथा वित्तीय संस्थाओ और सरकार के बीच समन्वय सुनिश्चित करने के लिए अधिक कार्यकुशल व्यवस्था के लिए उपाय करने का प्रस्ताव है। कई विशेषज्ञ समितियाँ बनाई जा रही हैं जो—(क) जन-सांख्यिकीय नीतियो तथा उनके कार्यान्वियन, (ख) ऊर्जा नीति, (ग) व्यापक परिवहन आयोजन के बारे मे अपनी रिपोर्ट देंगी। योजना बनाने की प्रक्रिया के विकेन्द्रीयकरण को वास्तविक बनाने के लिए इस प्रारूप मे सुझाव दिया गया है कि राज्यो मे योजना बनाने की व्यवस्था को सुदृढ किया जाए तथा जिला स्तर पर योजना बनाने की स्वतन्त्रता और क्षमता का विकास किया जाए। योजना आयोग द्वारा इन स्तरो पर आदर्श योजना के स्वरूप का सुझाव दिया गया है परन्तु प्रत्येक राज्य को उन्हें अपनी आवश्यकता के अनुसार अपनाने की स्वतन्त्रता होगी। सन् 1979–80 की वार्षिक योजना तैयार करते समय 1978–79 मे प्रमुख क्षेत्रो की प्रगति की समीक्षा की जाएगी। यदि किसी क्षेत्र मे कमियाँ पाई गई तो सन् 1982–83 के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त प्रयत्न करने के बारे मे सकेत दिया जाएगा।

फिर भी यदि योजना तैयार करने के बाद किसी क्षेत्र में माँग के स्रोत में बहुत अधिक परिवर्तन हो गया है या किसी प्रकार की अच्छी जानकारी के मिल जाने से पहले के अनुमानों में संशोधन आवश्यक हो गये हैं तो आवश्यक सीमित समायोजन कर दिया जाएगा। संक्षेप में अनवरत योजना का यही रीति विधान है। परन्तु समय की कमी के कारण इस प्रारूप में सन् 1978–83 तक के समय के प्रत्येक वर्ष का परिव्यय और उत्पादन लक्ष्य देना सम्भव नहीं हो सकता है। यह कार्य शीघ्र ही पूरा कर लिया जाएगा।

छठी योजना (1978-83) के प्रारूप की विस्तृत रूपरेखा

भारत सरकार की 20 मार्च, 1978 की प्रेस विज्ञप्ति में नई छठी योजना की विस्तृत रूपरेखा इस प्रकार दी गई है।

योजना आयोग द्वारा राष्ट्रीय विकास परिषद् के समक्ष प्रस्तुत सन् 1978-83 के योजना प्रारूप में कुल परिव्यय 1 16,240 करोड़ रुपये रखने का प्रस्ताव किया गया है जिसमें से सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय 69,380 करोड़ रु होगा। प्रारूप में 4·7% विकास दर की परिकल्पना की गई है और यह आशा व्यक्त की गई है कि योजनावधि के अंत तक 5·5% विकास दर की क्षमता बन जाएगी। पाँचवीं योजना के चार वर्षों के दौरान औसत विकास दर 3 9% रही जबकि योजना लक्ष्य 4·37% की विकास दर का था।

नई विकास कार्य-नीति

इस योजना में पूर्ण रोजगार उपलब्ध कराने, गरीबी को समाप्त करने और एक अधिक समानता वाले समाज की रचना करने के लक्ष्यों को प्राप्त करने पर बहुत अधिक प्रगति करने पर मुख्य रूप से जोर दिया जाएगा। इसलिए योजना प्रारूप में कहा गया है कि आयोजना के मुख्य लक्ष्यों की व्याख्या अब इस प्रकार की जानी चाहिए की दस वर्ष की अवधि के भीतर—

(1) बेरोजगारी और काफी सीमा तक अल्प बेरोजगारी को दूर करना;

(2) जनसंख्या के सबसे गरीब वर्गों के जीवन-स्तर में उल्लेखनीय सुधार लाना,

(3) इन आय समूहों के अन्तर्गत आने वाले लोगों को पीने के साफ पानी, प्रौढ़ शिक्षा, प्रारम्भिक शिक्षा, स्वास्थ्य-सेवा, ग्रामीण सड़कें, भूमिहीनों के लिए गाँवों में आवास और शहरों की गंदी बस्तियों के लिए न्यूनतम सेवाओं जैसी बुनियादी आवश्यकताओं की राज्य द्वारा व्यवस्था करना।

इन प्राथमिक उद्देश्यों की प्राप्ति निम्नलिखित बातों को करते हुए की जानी चाहिए—

(4) पिछले समय की अपेक्षा अर्थ-व्यवस्था की उच्च विकास दर प्राप्त करना;

(5) आय व सम्पत्ति की वर्तमान विषमताओं को उल्लेखनीय रूप से कम करने की दिशा मे आगे बढना, और

(6) आत्मनिर्भरता की दिशा मे देश की सतत् प्रगति को सुनिश्चित करना।

इन लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए योजना मे चार क्षेत्रो—कृषि, कुटीर व लघु उद्योग, समन्वित ग्रामीण विकास के लिए क्षेत्रीय आयोजन और न्यूनतम आवश्यकताओ की व्यवस्था पर जोर देने के लिए कहा गया है।

योजना का स्वरूप

सन् 1978 83 के लिए योजना का सकल स्वरूप 1,16,240 करोड रु का रखा गया है जिसमे से सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय 69,380 करोड रु है जो कि कुल योजना परिव्यय का 59 7% है। योजना प्रारूप को ग्रामोन्मुखी बनाया गया है। ग्रामीण और कृषि विकास के लिए जो परिव्यय निर्धारित किया गया है, वह कुल योजना परिव्यय का 43 1% है। कृषि और ग्रामीण विकास के लिए निर्धारित धन राशि पाँचवी योजना मे की गई व्यवस्था से दुगुनी है।

अनाज का उत्पादन बढकर 12 करोड 10 लाख टन से 14 करोड 10 लाख टन, तिलहनो का 92 लाख टन से 1 करोड 12 लाख टन तथा कपास का 64 30 लाख गाँठो से बढकर 81 50 लाख गाँठे होने की आशा है।

सन् 1982-83 मे प्रमुख वस्तुओ के उत्पादन अनुमान

क्रम स	मद	इकाई	1977-78	1982-83
1	खाद्यान्न	10 लाख टन	121 00	140 48 से 144·48
2	गन्ना	10 लाख टन	156 90	188 00
3	कपास	लाख गाँठ (प्रत्येक 170 कि ग्रा की)	64·30	81 50 से 92 50
4	तिलहन (प्रमुख)	लाख टन	92·00	112 00 से 115 00
5	कोयला	10 लाख टन	103·20	149 00
6	कच्चा पेट्रोलियम	10 लाख टन	10 77	18 00
7	कपडा—मिल क्षेत्र	10 लाख मीटर	4200 00	4600 00
	विकेन्द्रित क्षेत्र	10 लाख मीटर	5400 00	7600 00
8	नाइट्रोजनीय उर्वरक (N)	हजार टन	2060 00	4100 00
9	फास्फेटिक उर्वरक (PO_5)	हजार टन	660 00	1125 00
10	कागज और गत्ते	हजार टन	900 00	1250 00
11	सीमेंट	10 लाख टन	19 00	29 00 से 30 00
12	मृदु इस्पात	10 लाख टन	7 73	11 80
13	अल्यूमीनियम	हजार टन	180 00	300 00
14	वाणिज्यिक वाहन	हजार संख्या	40 00	65 00
15	बिजली उत्पादन	बी. डब्ल्यू. एच.	100 00	107 00

वार्षिक विकास दर कृषि के लिए 3·98%, उद्योग व खनिजों के लिए 6·92%, बिजली उत्पादन के लिए 10 80%, निर्माण के लिए 10·55%, परिवहन के लिए 6·24% और अन्य सेवाओं के लिए 6·01% रखी गई है।

क्षेत्रीय विकास का स्वरूप : 1977-78 से 1982-83 तक

क्र स.	वर्ग	बढ़ाए गए मूल्य का भाग		विकास दर का प्रतिशत	
		1977-78	1982-83	बढ़ाए गए मूल्य	उत्पादन
1.	कृषि	42 50	38·71	2·76	3 98
2	खनन और विनिर्माण	18 47	18 70	5 03	6 92
3.	बिजली	1 71	2 14	9 55	10 80
4.	निर्माण कार्य	5 74	7 64	10 09	10 55
5.	परिवहन	4 37	4 96	4·65	6·24
6.	सेवाएँ	26·61	27·79	5 61	6 01

योजना प्रारूप में यह परिकल्पना की गई है कि प्रति व्यक्ति खपत के स्तर में सन् 1978-83 की अवधि में 2 21% और सन् 1983-88 की अवधि में 3 18% की दर से वृद्धि होगी। सकल घरेलू उत्पादन के विस्तार के रूप में बचत सन् 1977-78 में 19 8% से बढ़कर सन् 1982-83 में 23 4% होने की आशा है। सन् 1982-83 तक निर्यात बढ़कर 7,750 करोड़ रु मूल्य के बराबर होने की सम्भावना है।

रोजगार

योजना प्रारूप की कार्य नीति में (क) रोजगार प्रधान, क्षेत्रीय योजना अपनाने, (ख) रोजगार बनाए रखने तथा उसके विस्तार के लिए शिल्प वैज्ञानिक परिवर्तन का नियमन करने, और (ग) पूर्ण रोजगार के लिए क्षेत्रीय योजना में वृद्धि करने को शामिल किया गया है। सिंचित कृषि के विस्तार और डेरी विकास, वन उद्योग तथा मत्स्य-पालन—उद्योग के विस्तृत सम्बद्ध क्षेत्रों से काफी बड़ी संख्या में रोजगार के अतिरिक्त अवसर पैदा किए जाएँगे। योजना में (क) आधारभूत और सामाजिक सेवाओं, जैसे सड़क निर्माण, विद्युतीकरण, जल पूर्ति, ग्रामीण स्कूलों और सामुदायिक स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार करके, और (ख) गरीब लोगों की खपत की वस्तुओं में वृद्धि करके भी रोजगार के अवसर पैदा किए जाएँगे। खपत में वृद्धि होने से ऐसा सामान तैयार करने के लिए रोजगार के अतिरिक्त अवसर पैदा होंगे, जो श्रम प्रधान तरीकों से तैयार किए जा सकते हैं। सिंचाई, विद्युत तथा आवास कार्यक्रमों के भी निर्माण सम्बन्धी कार्य में अधिक वृद्धि होगी जिससे साथ-साथ रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे।

चीनी तथा वस्त्रों जैसे विशेष चुने हुए क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी का चयन करने सम्बन्धी अध्ययन कार्य पूरा किया जा चुका है। जहाँ भी उचित होगा

उत्पादन के श्रम प्रधान तरीको को बढावा दिया जाएगा। इन उपायो मे आन्तरिक तथा लघु क्षेत्र उत्पादन सम्बन्धी क्षेत्रो का आरक्षण तथा उत्पादन शुल्क विभेदक संरक्षण भी शामिल है। उपरोक्त उपायो के साथ-साथ निवेश और उत्पादन के लक्ष्यो से 4 926 करोड श्रम वर्ष के बराबर रोजगार के अवसर पैदा होगे। आशा की जाती है कि सन् 1978-83 तक की अवधि मे 3 करोड व्यक्तियो को काम देने के साथ-साथ पहले से चली आ रही बेरोजगारी को भी एक सीमा तक समाप्त किया जा सकेगा।

संशोधित न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम

योजना प्रारूप मे न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के लिए धन राशि मे भारी वृद्धि की गई है और कुल मिलाकर 4,180 करोड रु निर्धारित किए गए हैं जबकि पाँचवी योजना म इसके लिए 800 करोड रु रखे गए थे। इस योजना मे मूल आवश्यकताओ की पूर्व सूची के विषयो अर्थात् पेयजल की पूर्ति, बेघर लोगो को घर बनाने के लिए भूमि देना, गाँवो तक सडक निर्माण, गरीब ग्रामीण बच्चो को प्राथमिक शिक्षा देना, ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओ की व्यवस्था करना, ग्रामीण विद्युतीकरण का विस्तार करना, अल्पपोषितो के लिए पौष्टिक आहार के अलावा प्रौढ शिक्षा भी शामिल की जाएगी। इस कार्यक्रम की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(क) प्राथमिक और प्रौढ शिक्षा—प्राथमिक शिक्षा मे करीब 320 लाख बच्चो को शामिल किया जाएगा और इसम 6-14 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चो को शामिल करके इसे 69% से बढाकर 90% किया जाएगा। इस योजना के अन्त तक 15-35 वर्ष की आयु वर्ग के 1000 लाख या इसके लगभग प्रौढ निरक्षरो मे से 660 लाख प्रौढो को साक्षर बनाने का प्रयत्न किया जाएगा।

(ख) ग्रामीण स्वास्थ्य—यह लक्ष्य है कि प्रत्येक 1000 की आबादी क एक क्षेत्र के लिए एक सामुदायिक स्वास्थ्य कर्मचारी और एक प्रशिक्षित दाई यथाशीघ्र उपलब्ध कराई जाएगी। इस योजना के अन्त तक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रो और उप-केन्द्रो के भवनो के निर्माण के पिछले काम को पूरा किया जाएगा और इसके अलावा प्रत्येक विकास खण्ड मे एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र होगा तथा 38,000 नए उप-केन्द्र होग। इसके अतिरिक्त 400 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रो का दर्जा बढाकर उन्ह 30-30 बिस्तर वाले चिकित्सालयो के रूप मे परिवर्तित किया जाएगा।

(ग) पेय जल—पहले लगाए गए अनुमान के अनुसार करीब एक लाख गाँवो मे शुद्ध पेयजल की कमी है, इस योजना के अन्त तक यह कमी दूर की जाएगी।

(घ) ग्रामीण सडकें—जिन गांवो की आबादी 100 से 1500 तक है उनम से करीब आधे गाँवो को सडको मे आपस मे जोड दिया जाएगा और शेष आधे गाँवो को अगली पचवर्षीय योजना मे शामिल किया जाएगा।

(ङ) ग्रामीण विद्युतीकरण—वर्तमान ग्रामीण विद्युतीकरण प्रणाली को बढाने के अलावा प्रत्येक राज्य और सघ राज्यो के गाँवो की सख्या के कम से कम

50% गाँवों को प्रावस्था कार्यक्रम के एक भाग के रूप में सन् 1982-83 तक करीब 40,000 गाँवों का विद्युतीकरण किया जाएगा ।

(च) आवास और शहरी विकास—पाँचवी योजना मे करीब 70 लाख भूमिहीन मजदूरों को घर बनाने के लिए जगह दी गई थी किन्तु उन्हें विकसित करने या उन पर घर बनाने के लिए कोई सहायता नहीं दी गई । इस योजना में करीब 80 लाख भूमिहीन मजदूरों को एक स्कीम से लाभ होगा जिसमें उन्हें विकसित प्लाट, प्रत्येक 30 घरों के लिए एक पेय जल स्रोत, सफाई और घर बनाने की सामग्री के लिए कुछ सहायता दी जाएगी, इस स्कीम के अन्तर्गत सभी शारीरिक काम फायदा पाने वाला व्यक्ति करेगा । शहरी आवास में गन्दी बस्तियों के अधीन गन्दी बस्तियों मे रहने वाले करीब 130 लाख व्यक्तियों को लाभ होगा और शेष करीब 180 लाख व्यक्तियों को अगली योजना मे शामिल किया जाएगा । आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों, विशेषकर छोटे शहरों मे रहने वालों के आवास के लिए विशेष बल दिया जाएगा । शहरी विकास नीति का मुख्य लक्ष्य छोटे शहरों का विकास करना और बड़े शहरों की घनी आबादी को कम करना है ।

(छ) पोषाहार—अल्प-पोषित बच्चों को दोपहर का भोजन देने और माताओं एवं शिशुओं के पूरक पोषाहार कार्यक्रम की स्कीम के अधीन उन विकास खंडों को प्राथमिकता दी जाएगी जिनमें अनुसूचित जाति और जन-जाति की आबादी का अधिक अनुपात होगा । पोषण-आहार स्कीम के अधीन 26 लाख बच्चों और दोपहर का भोजन स्कीम के अधीन 40 लाख अतिरिक्त बच्चों को फायदा होने का अनुमान है ।

सर्व सुलभ न्याय

योजना प्रारूप में एक ऐसी कार्य नीति का प्रस्ताव रखा गया है जिसके परिणामस्वरूप गरीबी के स्तर से नीचे का जीवन बिता रहे लोगों के प्रतिशत में भारी कमी आएगी । इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्राथमिकताओं में परिवर्तन करने के लिए पुनर्वितरण उपाय करना आवश्यक है । सबसे पहले परिसम्पत्तियों, विशेषकर कृषि भूमि, शहरी सम्पदा और सम्मिलित सम्पत्ति की मौजूदा वितरण व्यवस्था बदलनी चाहिए । दूसरे, सरकारी क्षेत्र के कार्यकलापों को, कम आय वाले उपभोक्ताओं के हक में इस प्रकार परिवर्तित करना चाहिए ताकि इन्हें आवश्यक वस्तुओं का वितरण, आधारभूत सुविधाएँ तथा सामाजिक सेवाएँ आसानी से सुलभ हो सकें । तीसरे, उत्पादन पक्ष की ओर छोटे किसानों और लघु उद्यमियों का संस्थागत ऋण और निवेश वस्तुओं की पूर्ति के लिए हिस्सा बढ़ाना चाहिए तथा उन्हें तकनीकी और विपणन सहायता देने में सुधार किया जाना चाहिए । चौथे, बेरोजगारी कम करने के लिए ऐसी नीतियाँ तैयार की जानी चाहिए कि उनसे असमानताएँ कम हों और अन्त में गाँवों तथा शहरों में गरीब वर्ग के लोगों को संगठित करना होगा ।

इस प्रकार वित्तीय उपायो के अलावा उत्पादन, वितरण और रोजगार नीति के परिप्रेक्ष्य मे तथा सरकार और गैर-सरकारी अभिकरणो के सगठनात्मक प्रयास से एक पुर्नवितरण आधार तैयार किया जाना है। प्रारूप मे अनेक पुर्नवितरण नीतियाँ प्रस्तावित की गई है जिनमे भूमि सुधारो व काश्तकारी सुधारो को तेजी से लागू करना, शहरी और नियमित सम्पत्ति को युक्तिसगत बनाना, कमजोर वर्गों का ध्यान रखते हुए वस्तुओ व सेवाओ का और अधिक प्रभावी वितरण करना, दोहरी मूल्य निर्धारण नीति, उपभोक्ता वस्तुओ के लिए एक सुदृढ सार्वजनिक वितरण प्रणाली और छोटे उत्पादको और किसानो को ऋण व अन्य साज-सामान का वितरण शामिल है।

पुर्नवितरण कार्य-नीति के एक भाग के रूप मे योजना प्रारूप मे पिछडे वर्गों और पिछडे इलाको के विकास को बढावा देने के लिए अनेक प्रावधान शामिल किए गए हैं। क्षेत्रीय योजना उपायो, न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम और पिछडे वर्गों, पहाडी व जन-जातीय इलाको के लिए विशेष कार्यक्रमो मे इन्हे विशेष प्राथमिकता दी जाएगी। योजना मे आय की विषमताओ को घटाने के लिए एक आय नीति बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है।

योजना प्रारूप मे लगभग प्रत्येक कार्यक्रम मे ग्रामीण क्षेत्रो के लिए अधिक साधनो की व्यवस्था करने का प्रस्ताव रखा गया है।

योजना के लिए साधन

योजना प्रारूप मे योजना को ससाधनो की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए कराधान के आधार को व्यापक बनाने के लिए विस्तृत सुझाव दिए गए हैं। योजना मे अप्रत्यक्ष करो से अधिक राजस्व प्राप्त करने का प्रस्ताव रखा गया है लेकिन यह भी कहा गया है कि ऐसा करते समय विभिन्न सामाजिक-आर्थिक लक्ष्यो को ध्यान मे रखा जाना चाहिए। यह सुझाव भी दिया गया है कि राज सहायता मे कमी की जानी चाहिए, सार्वजनिक प्रतिष्ठानो की वर्तमान मूल्य निर्धारण नीति की समीक्षा की जानी चाहिए और सरकारी कर्मचारियो के भविष्य निधि योगदान की दर 6% से बढा 8 3% कर दी जानी चाहिए, अनिवार्य जमा योजना अगले पाँच साल तक जारी रखी जानी चाहिए और सारे सगठित क्षेत्र के कर्मचारियो के लिए अनिवार्य समूह बीमा लागू किया जाना चाहिए।

राज्य क्षेत्र मे अतिरिक्त साधन जुटाने के लिए किए गए प्रस्तावो मे कृषि कर या भू-राजस्व के अधिभार और बाजार उप-करो मे उत्तरोत्तर वृद्धि करने, सिंचाई और बिजली के टैरिफ की समीक्षा करने को कहा गया है। अन्य सुझाए गए उपायो मे ग्रामीण ऋण-पत्रो का विस्तार करना और भूमि व सम्पत्ति मूल्यो के पूँजीगत लाभ के एक भाग को जुटाना है।

12,880 करोड रु का कर—राजस्व प्राप्त होगा। सरकार, सार्वजनिक उद्यमो व स्थानीय निकायो द्वारा बाजार से ऋण लेने पर 15,986 करोड रु प्राप्त होगे। वित्तीय सस्थानो से 1,296 करोड रु के शुद्ध सावधि ऋण लिए जाएँगे। विदेशी मुद्रा के भडार मे से 1,180 करोड रु की राशि का उपयोग किया जाएगा। इस सबके बावजूद अपूरित अन्तर 2,226 करोड रु का रहेगा।

आर्थिक नीतियाँ

योजना मे बताया गया है कि मुख्य उद्देश्य निवेश कार्यक्रम लागू करते समय अर्थ व्यवस्था मे कीमतो को स्थिर रखना है। इस उद्देश्य को निम्नलिखित उपायो द्वारा प्राप्त किया जाएगा—(क) वित्तीय और आर्थिक नीतियो के माध्यम से कुल माँग और पूर्ति के बीच उचित सतुलन कायम रखा जाएगा, (ख) सार्वजनिक उपभोग की आवश्यक वस्तुओ की पूर्ति निरन्तर बढाने की व्यवस्था की जाएगी, और (ग) कृषि वस्तुओ की कीमतो, सरकारी तथा गैर सरकारी क्षेत्र के विनिर्माण और विभिन्न सेवाओ की कीमतो से निबटने के लिए ऐसी नीतियाँ तैयार की जाएँगी जो आन्तरिक परिस्थितियो के अनुरूप हो।

जहाँ तक कृषि उत्पादो की कीमतो का सम्बन्ध है प्रारूप मे कृषि मूल्य आयोग के दृष्टिकोण की सराहना की गई है। कीमतो को स्थिर बनाए रखने के लिए यह सुझाव दिया है कि जब तक निवेश मूल्यो मे पर्याप्त वृद्धि न हो तब तक कृषि उत्पादो की कीमतो मे वृद्धि नही की जानी चाहिए। प्रारूप मे इस बात की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है कि प्रतियोगी फसलो के सापेक्ष मूल्य निर्धारित करने की तरफ अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। विनिर्माण के मामले मे यह कहा गया है कि मूल्य निर्धारण ऐसी वस्तुओ तक ही सीमित रखा जाना चाहिए जहाँ मूल्य स्थिर रखने की आवश्यकता पडती हो।

मुद्रा नीति

मुद्रा नीति का मुख्य उद्देश्य मूल्यो मे होने वाले भारी उतार-चढावो का नियत्रण मे रखना है। यह सुझाव दिया गया है कि वस्तुओ की कुल माँग और सप्लाई के बीच सतुलन बनाया जाना चाहिए और मुद्रा पूर्ति मे वृद्धि को निवल घरेलू उत्पादन की वृद्धि से जोडा जाना चाहिए। प्रारूप मे मुद्रा पूर्ति की वृद्धि की दर को निश्चित करने म सावधानी बरतने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। यह आवश्यकता इसलिए है क्योकि योजना म निवेश का स्वरूप ऐसा बनाया गया है कि उससे उन लोगो की आय म वृद्धि होगी, जिनकी बचत करने की क्षमता बहुत कम है।

व्यापार

यद्यपि विश्व व्यापार की प्रवृत्ति कुछ अनिश्चित सी चल रही है और विकसित देश कुछ सीमा तक भारत से कुछ वस्तुओ के आयात पर प्रतिबन्ध लगा सकते हैं तो भी भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बढाने की सम्भावनाएँ बहुत अच्छी हैं। प्रारूप मे इस बात को मान्यता दी गई है कि पश्चिमी एशियाई बाजार का विकास होने के

कारण भारत के व्यापार का विविध स्वरूप ठीक ही है। प्रारूप मे भारत द्वारा अनेक देशों के साथ द्विपक्षीय समझौते करने के परिणामस्वरूप व्यापार मे वृद्धि होने की सम्भावना भी व्याप्त की गई है। लेकिन यह कहा गया है कि भविष्य मे निर्यात वृद्धि के लिए वस्तुओं का चुनाव निर्यात योग्य वस्तु की घरेलू साधन लागत को ध्यान मे रखते हुए मुख्य रूप से गतिशील तुलनात्मक लाभो के आधार पर किया जाना चाहिए।

इस प्रारूप की एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि योजना अब सहायता की राशि पर अधिक निर्भर नही रहेगी। कुल योजना परिव्यय मे सहायता की राशि कुल परिव्यय का केवल 5% है।

कृषि और ग्राम विकास

इस क्षेत्र को सबसे अधिक प्राथमिकता दी जाएगी। फसल उत्पादन मे सिंचाई के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र को, सकल फसल वाले क्षेत्र को और फसल गहनता को बढाने तथा निवेश के अधिक प्रयोग को सुनिश्चित करने की नीति रहेगी। इसमे सहायता के रूप मे अच्छे बीजो के विकास और प्रचार, सुदृढ विस्तार व्यवस्था, ऋण की निश्चित उपलब्धता और विपणन भडारण और प्रासेसिंग की अधिक अच्छी [illegible] के जरिए अधिक दक्षता वाली उन्नत फसल पद्धतियो की नीति होगी। [illegible]. और काश्तकारी सुधार और चकबन्दी के कार्यक्रम को जो जल के अच्छे उपयोग के लिए महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है आग्रहपूर्वक आगे बढाया जाएगा। भूमि के अनुकूलतम उपयोग की नीति अपनाई जाएगी जिसमे एकीकृत जल विभाजक प्रबन्ध की आवश्यकता होगी और इसमे बाढ नियन्त्रण, जल निकास, भूमि उद्धार और भूमि को नया आकार देना, सीमान्त भूमि के लिए निषिद्ध खेती तथा वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए वन पशु चारणिक दृष्टिकोण के उपाय शामिल हैं।

कृषि के सम्बद्ध क्षेत्रो—जैसे कि पशुपालन, डेरी, मछली पालन और वन मे सुधार के लिए सगठित प्रयत्न करने का प्रस्ताव है।

सिंचाई

पांचवी योजना के पहले चार वर्षों मे 86 लाख हेक्टेयर क्षमता की सिंचाई सुविधा उपलब्ध की गई थी। इसके मुकाबले इस योजना मे सिंचाई क्षमता बढाकर 170 लाख हेक्टेयर करने का प्रस्ताव है। इसमे से छोटी सिंचाई स्कीमो द्वारा 90 लाख (भू-जल से 70 लाख और शेष 20 लाख) छोटी सिंचाई योजनाओ से होगा। बड़ी और मझोली सिंचाई परियोजनाओ से 80 लाख हेक्टेयर क्षमता निर्मित होगी। योजना के प्रारूप मे सिंचाई और बाढ नियन्त्रण के लिए 9,650 करोड़ रुपये का परिव्यय रखा गया है जबकि पांचवी योजना मे 4,226 करोड़ रुपये का परिव्यय था।

उर्जा

विद्युत—योजना के प्रारूप मे कहा गया है कि मद्रास परमाणु बिजली घर पूरा किए जाने और नरोरा मे पहली यूनिट स्थापित किए जाने के अतिरिक्त इस

योजना अवधि में एक और परमाणु बिजली घर शुरू करने का प्रस्ताव है। इस प्रकार करीब 18,500 मेगावाट अतिरिक्त बिजली पैदा करने की क्षमता उपलब्ध होगी जिसमे से 13,000 मेगावाट तापीय बिजली से, 4,550 मेगावाट पन-बिजली से और 925 मेगावाट परमाणु बिजली से होगा। इससे देश में योजना के अन्त तक कुल सस्थापित क्षमता लगभग 44,500 मेगावाट हो जाएगी। इस योजना के दौरान तीन वृहद् ताप-बिजलीघरो (सुपर थर्मल पावर स्टेशन) का कार्य प्रारम्भ होगा। विद्युत क्षेत्र के लिए इस योजना मे 15,750 करोड रु का परिव्यय रखा गया है जबकि पाँचवी योजना मे 7,016 करोड रु का था।

ग्रामीण विद्युतीकरण पर और जोर दिया जाएगा। सन् 1978-83 की अवधि मे 20 लाख पपसेटो और एक लाख गाँवो को बिजली दी जाएगी जबकि पिछले चार वर्षो मे नौ लाख पपसेटो और 80 हजार गाँवो को बिजली दी गई।

पेट्रोलियम—तेल की खोज के काम मे और तेजी लाने का प्रस्ताव है। बम्बई हाई तथा बेसिन सरचना का विकास अगले दो से तीन वर्ष म पूरा कर लिया जाएगा और इससे प्रतिवर्ष 125 लाख मी टन तल उत्पादन की क्षमता हो जाएगी। अगले कुछ वर्षो मे तेल उत्पादन की नीति मे हमारे सीमित साधनो के सरक्षण पर जोर दिया जाएगा। इस प्रकार तट के पास या तट से दूर दोनो ही क्षेत्रो मे तेल का उत्पादन तकनीकी रूप से जितना सम्भव है, उससे कम रखना पड सकता है।

मथुरा और बोगाईगाँव तेलशोधक कारखानो के चालू होने तथा गुजरात तलशोधक कारखाने के विस्तार से देश म तेलशोधन की कुल क्षमता सन् 1980-81 तक 374 5 लाख टन तेल साफ करने की हो जाएगी। इसका मतलब यह होगा कि पेट्रोलियम उत्पादो के आयात मे कुछ वृद्धि होने से योजना के अन्त तक देश मे तेल को साफ करने की क्षमता इतनी हो जाएगी जो आवश्यकता को पूरा करने के लिए काफी होगी।

कोयला—तापीय बिजली उत्पादन, इस्पात तथा अन्य उद्योगो का तेजी से विस्तार होने के कारण आगामी वर्षो म कोयले की माँग बहुत बढेगी। भारत मे घटिया कोयले के भडार तो बहुत हैं परन्तु उपयोग मे आने योग्य कोकिंग कोयला सीमित है। इसलिए सरक्षण के उपाय के रूप मे कम राख वाले कोकिंग कोयल का काफी मात्रा मे आयात करने का प्रस्ताव है। इन तीन क्षेत्रो के लिए कुल परिव्यय निम्नलिखित होगा—

ऊर्जा क्षेत्र के लिए परिव्यय

(करोड रुपये)

क स	शीर्ष	पाँचवी योजना 1974-79	योजना 1978-83
1	विद्युत	7016	15750
2	पेट्रोलियम	1691	2550
3	कोयला	1148	1850
	जोड	9855	20150

क्षेत्रवार परिव्यय

क्षेत्र	पाँचवी योजना 1974-79	कुल परिव्यय का प्रतिशत	योजना 1978-83	कुल परिव्यय का प्रतिशत	पाँचवीं योजना के मुकाबले 1978-83 मे प्रतिशत वृद्धि
कृषि और सबद्ध कार्यकलाप	4302	11 0	8600	12 4	99·5
सिंचाई व बाढ नियन्त्रण	4226	10·7	9650	13 9	128·3
उद्योग व खनिज (ऊर्जा को छोड़कर)	7362	18 7	10350	14 9	40 6
ऊर्जा, विज्ञान व टेक्नोलॉजी	10291	26·2	20800	30 0	102 1
परिवहन और सचार	6027	17 6	10625	15 3	53 6
समाज सेवाएँ	6224	15·8	9355	13·5	50·1
कुल योग	39322	100 00	69380	100·00	76 4

औद्योगिक नीति

योजना में अपनाई गई औद्योगिक नीति इस प्रकार है—

(क) वर्तमान क्षमता का भरपूर उपयोग किया जाए। अनेक क्षेत्रों मे उपभोक्ता, मझोले और पूँजीगत सामान के उद्योग इस समय क्षमता से कम काम कर रहे हैं। इनमे इंजीनियरी, सूती कपड़ा, चीनी आदि के उद्योग उल्लेखनीय है।

(ख) जिन प्रौद्योगियो के उपयोग से उत्पादन पूँजी के अनुपात मे अधिक हो उनका उपयोग किया जाए। परन्तु इसमें इस बात का ध्यान रखा जाए कि उत्पादन लागत पर अधिक प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। इस क्षेत्र के विकास को समर्थन प्रदान करने के लिए बुनियादी आधार, ऋण और विभिन्न प्रकार की सहायता दी जाएगी।

(ग) जिन दुर्लभ साधनो की पूर्ति नही की जा सकती, उनको बनाए रखा जाए, जैसे पत्थर का कोयला और अन्य खनिज, क्योंकि इनके हमारे पास बहुत कम भण्डार हैं।

(घ) विदेशी जमा पूँजी का उपयोग करें। इसके लिए जिन वस्तुओ को बाहर से मगाया जाना है उनकी माँग और उपलब्धि मे सुनियोजित अन्तर रखना होगा। सामान्यतया अब सरकारी क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र मे पूँजी नियोजन पहले की अपेक्षा अधिक मात्रा मे उत्पादन की लागत और किफायती आयात को ध्यान मे रखकर करना होगा। परन्तु किसी भी स्थिति मे इतना अन्तर न रखा जाए जिससे उस वस्तु का आयात कुछ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को देखते हुए अधिक न हो जाए। इसमें सन्तुलन बनाए रखने के लिए श्रम साध्य निर्मित सामान जैसे—हाथकरघा, चमडे का सामान, सिले-सिलाए कपडे और इंजीनियरी के

सामान के निर्यात में वृद्धि करनी होगी, क्योंकि इन वस्तुओं में हम किसी भी देश से प्रतिस्पर्धा करने की स्थिति में हैं।

(ङ) मिश्रित नीति, विनियमन और संगठनात्मक उपाय अपनाकर निगमित निजी क्षेत्र में आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण को कम करना होगा।

(च) निजी क्षेत्र की कम्पनियाँ ठीक प्रकार से काम करती रहें इसके लिए उन्हें समय पर धन देने की प्रबन्ध सम्बन्धी व्यवस्था ठीक करने के लिए सरकारी नीति में संशोधन करने की व्यवस्था करनी होगी।

(छ) जिस चीज का देश में उत्पादन हो रहा है उन्हें आयातित माल से अधिक प्रतिस्पर्धा न करनी पड़े तथा जहाँ किफायत करनी आवश्यक है वहाँ केवल आर्थिक दृष्टि से उपयोगी आकार की यूनिटें स्थापित की जाएँ, इस प्रकार के अनेक उपाय अपनाकर उत्पादन लागत घटाई जाए।

ग्रामोद्योग तथा लघु उद्योग

सुनियोजित रूप में रोजगार प्रदान करने वाले मुख्य योगदान के रूप में इस क्षेत्र का बहुत ऊँची प्राथमिकता दी जाएगी। इस काम के लिए विभिन्न मोर्चों पर काम होगा जिनमें उद्योगों के लिए आरक्षण तथा उत्पादन-शुल्क में राहत दिया जाना शामिल है। समन्वित विकास को सुनिश्चित करने तथा उद्यमियों को अपने काम के लिए जिन कार्यालयों से सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है उनकी संख्या कम करने के उद्देश्य से जिला उद्योग केन्द्रों की स्थापना की जाएगी। अनुसंधान और प्रौद्योगिकी को इस क्षेत्र को देने में योजना को काफी बल मिलेगा। जहाँ तक ऋण सुविधा का प्रश्न है मामूली मात्रा में धन देने की योजना का विस्तार करने की सम्भावना पर विचार किया जा रहा है। हाट व्यवस्था के क्षेत्र में सुधार के लिए मुख्यतः बिचौलियों का समाप्त करने और सहकारी क्षेत्र के माध्यम से कुटीर उद्योगों की वस्तुओं का लाभदायक मूल्य दिलाने के लिए विशेष प्रयास किया जाएगा। प्रशिक्षण की व्यवस्था, तकनीकी सहायता और अन्य सुविधाएँ बढ़ाने के उपाय किए जाएँगे। ग्रामोद्योगों और लघु उद्योगों के लिए परिव्यय की राशि पाँचवीं योजना में 387 8 करोड़ रुपये थी। इसे बढ़ाकर 1410 करोड़ रुपए कर दिया जाएगा। इस क्षेत्र के उत्पादन लक्ष्यों को भी बढ़ाया जाएगा।

बड़े और मध्यम उद्योग

सहकारी क्षेत्र के बड़े और मध्यम उद्योगों के लिए पाँचवीं योजना में परिव्यय 6852 करोड़ रुपए था। इसे बढ़ाकर 8940 करोड़ रुपये कर दिया जाएगा।

इस्पात—इस्पात का उत्पादन 77 लाख टन से बढ़कर 118 लाख टन हो जाने की उम्मीद है। योजना के अन्त में एक नए इस्पात संयंत्र पर काम शुरू होने की भी सम्भावना है।

सीमेंट—आशा है कि सीमेंट की माँग सन् 1982-83 तक 3 करोड़ 10 लाख टन हो जाएगी। जबकि देश में उत्पादन 3 करोड़ टन का होगा। हाल में घोषित

सीमेंट की लाभकारी कीमत धातु मल (स्लैग) के उपयोग तथा उन्नत प्रौद्योगिकियों से सीमेंट के उत्पादन में तेजी से वृद्धि होने की सम्भावना है।

उर्वरक—नाइट्रोजन उर्वरक की माँग सन् 1982-83 में 41 लाख टन तक पहुँच जाने की उम्मीद है जबकि सन् 1977-78 में यह 206 लाख टन थी। नौ नए कारखाने बनाने की शुरुआत की जाएगी जिनमें छः सरकारी क्षेत्र में रखे जाने की उम्मीद है।

पेट्रो-रसायन—सरकारी क्षेत्र की जिन योजनाओं पर काम चल रहा है उनके लिए परिव्यय की व्यवस्था करने के अलावा बड़े पैमाने पर ओलीफिन कम्पलैक्स तथा पोलिएस्टर संयंत्र की स्थापना के लिए भी प्रावधान किया गया है।

औषध तथा औषध निर्माण—सरकारी क्षेत्र के अन्तर्गत काम कर रही दो यूनिटों—इण्डियन ड्रग्स एण्ड फार्मेसीट्यूकल कम्पनी और हिन्दुस्तान एण्टीबायोटिक तथा पूर्वी अंचल में स्थापित की जाने वाली तीसरी यूनिट द्वारा उत्पादन क्षमता में काफी विस्तार करने में प्रमुख योग दिए जाने की सम्भावना है।

वस्त्र उद्योग—कपड़े के सम्बन्ध में जो अतिरिक्त जरूरत होगी उसका अधिकांश भाग हाथकरघा क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाकर पूरा किया जाएगा। मिल या पावरलूम क्षेत्र में करघों को बढ़ाने की अनुमति नहीं दी जाएगी यद्यपि उन्हें आधुनिकीकरण करने और पुराने करघों की जगह नए करघे लगाने की अनुमति होगी। यदि हाथकरघा क्षेत्र में अनुमान से अधिक उत्पादन करने में सफलता मिलती है तो तदनुसार अन्य क्षेत्रों के उत्पादन लक्ष्यों में समुचित कटौती की जाएगी।

चीनी—चूँकि चीनी उत्पादन की निर्मित अथवा निर्माणाधीन क्षमता पर्याप्त होगी इसलिए चीनी का कोई नया कारखाना नहीं लगाया जाएगा। प्रौद्योगिकी विकल्पों के बारे में हाल में जो अध्ययन किए गए हैं उनसे यह संकेत मिले हैं कि भविष्य में विकास खंडसारी संयंत्रों में किया जाएगा क्योंकि ये अधिकतम रोजगार सुलभ करने के साधन हैं। इस आधार पर नीतियाँ निर्धारित की जा रही हैं।

समाज सेवाएँ

शिक्षा—अगली योजना में निरक्षरता को दूर करने, प्राथमिक शिक्षा को सभी के लिए सुलभ बनाने और शिक्षा को अधिक रोजगारोन्मुख और समाज के लिए सार्थक बनाने को प्राथमिकता दी जाएगी। माध्यमिक और विश्वविद्यालयों में सामान्य शिक्षा पाठ्यक्रमों को कम किया जाएगा और व्यावसायिक शिक्षा देने तथा शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाने पर बल दिया जाएगा।

स्वास्थ्य—मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों और शहरों की गरीब जनता के लिए स्वास्थ्य की देखभाल तथा चिकित्सा सेवाएँ सुलभ करना होगा। नए अस्पतालों की स्थापना, वर्तमान अस्पतालों का विस्तार और उनमें रोगी शैयाओं की वृद्धि का काम इस प्रकार सुनियोजित किया जाएगा जिससे सन्तुलित क्षेत्रीय विकास हो सके और गतिशीलता तथा सुप्रबन्ध को बनाए रखा जा सके। संचारी रोगों की रोकथाम उन्मूलन खासकर मलेरिया पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

परिवार कल्याण—परिवार कल्याण कार्यक्रम को बहुत ऊँची प्राथमिकता दी जाती रहेगी। सभी स्तरों पर स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, जच्चा-बच्चा स्वास्थ्य और पोषाहार सम्बन्धी सेवाओं को अधिकाधिक एकीकृत करने का प्रयास किया जाएगा।

समाज सेवाओं के लिए परिव्यय (करोड़ रु.)

क्र.सं.	क्षेत्र	पाँचवीं योजना 1974-79	योजना 1978-82
1.	शिक्षा	1285	1555
2	स्वास्थ्य और परिवार कल्याण	1179	2095
3.	आवास, शहरी विकास और निर्माण कार्य	1189	2540
4.	जलपूर्ति	971	1580
5.	समाज कल्याण और पोषाहार	202	305
6.	पिछड़ी जाति और हरिजन कल्याण	327	545
7.	अवर्गीकृत सहित अन्य (पुनर्वास, श्रमिक कल्याण आदि)	1071+	335
	जोड़	6224	9355

+इस क्षेत्र के परिव्ययों को 1978-83 की योजना में पुनः वर्गीकृत किया गया है और अन्य क्षेत्रों के परिव्यय में सम्मिलित किया गया है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी

योजना में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के लिए 650 करोड़ रुपय का प्रावधान किया गया है। इसमें परमाणु ऊर्जा, अन्तरिक्ष और वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् शामिल है। योजना में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के दो मुख्य उद्देश्य रखे गए हैं—

(क) ग्रामीण विकास की आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर ध्यान आकृष्ट करना और

(ख) प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अधिक आत्म-निर्भरता प्राप्त करना।

योजना तथा कार्यान्वयन

योजना पर सफलतापूर्वक अमल करने के लिए इस प्रारूप में परियोजनाओं तथा कार्यक्रमों पर निगरानी व्यवस्था को सुचारु बनाने तथा जिन क्षेत्रों में सुधार की आवश्यकता है उनका पता लगाने के लिए अधिक कारगर समीक्षा करने तथा वित्तीय संस्थाओं और सरकार के बीच समन्वय सुनिश्चित करने के लिए अधिक कार्यकुशल व्यवस्था के लिए उपाय करने का प्रस्ताव है। कई विशेषज्ञ समितियाँ बनाई जा रही हैं जो—

(क) अन-साँख्यिकीय नीतियों तथा उनके कार्यान्वयन,

(ख) ऊर्जा-नीति,

(ग) व्यापक परिवहन आयोजन

के बारे में अपनी रिपोर्ट देंगी। योजना बनाने की प्रक्रिया के विकेन्द्रीकरण को वास्तविक बनाने के लिए इस प्रारूप मे सुझाव दिया है कि राज्यों में योजना बनाने की व्यवस्था को सुदृढ किया जाए तथा जिला स्तर पर योजना बनाने की स्वतन्त्रता क्षमता और विकास किया जाए। योजना आयोग द्वारा इन स्तरो पर आदर्श योजना के स्वरूप का सुझाव दिया गया है परन्तु प्रत्येक राज्य को उन्हे अपनी आवश्यकता के अनुसार अपनाने की स्वतन्त्रता होगी।

अनवरत योजना

समग्र निवेश योजना, सरकारी क्षेत्र परिव्यय तथा प्रमुख क्षेत्रों के लिए क्षमता तथा उत्पादन के लक्ष्य 1978–83 की पाँच वर्ष की अवधि के लिए तैयार किए गए है। कुछ क्षेत्रो के लिए 1987–88 तक की पाँच वर्ष की आगामी अवधि के लिए प्रत्याशित विकास का संकेत दिया गया है। परन्तु समय की कमी के कारण इस प्रारूप मे 1978–83 तक के समय के प्रत्येक वर्ष का परिव्यय और उत्पादन लक्ष्य देना सम्भव नही हो सकता है। यह कार्य शीघ्र ही पूरा कर लिया जाएगा। इस बीच जहाँ अभी तक विभिन्न क्षेत्रो के अधीन कार्यक्रम तथा परियोजनाएँ तैयार नही की गई है वहाँ केन्द्रीय मत्रालयों तथा राज्य सरकारो के परामर्श से विस्तार से तैयार कर ली जाएँगी। इसके बाद निष्पादक अभिकरण वार्षिक लक्ष्य पूर्ति के बारे मे एक कार्यक्रम तैयार करेंगे। इस वर्ष की समाप्ति के पूर्व अधिक महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो के लिए वर्तमान अवधि के बाद एक अतिरिक्त वर्ष के लिए यानि 1983–84 तक अनुमान तय कर दिए जाएँगे। इस प्रकार सिंचाई तथा विद्युत जैसे क्षेत्रो मे निवेश के निर्णय को स्वरूप देने के लिए योजना की अवधि को बढाना आवश्यक है। 1979–80 की वार्षिक योजना तैयार करते समय 1978–79 मे प्रमुख क्षेत्रो की प्रगति की समीक्षा की जाएगी। यदि किसी क्षेत्र मे कमियाँ पाई गई है तो 1982–83 के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त प्रयत्न करने के बारे मे सकेत दिया जाएगा। फिर भी यदि योजना तैयार करने के बाद किसी क्षेत्र मे माँग के स्रोत मे बहुत अधिक परिवर्तन हो गया है या किसी प्रकार की अच्छी जानकारी के मिल जाने से पहले के अनुमानों मे संशोधन आवश्यक हो गए हैं तो आवश्यक सीमित समायोजन कर दिया जाएगा। संक्षेप मे अनवरत योजना का यही रीति विधान है।

सहभागिता

ग्रामीण जीवन के पुनर्निर्माण से सम्बन्धित किसी मौलिक योजना की सफलता के लिए चार बातें आवश्यक हैं--सर्वप्रथम योजना पर ही राष्ट्रीय सहमति होनी आवश्यक है और बाद मे भी प्रत्येक राष्ट्रीय योजना मे इस प्रकार का सामंजस्य बना रहना चाहिए। इस समय जो नीति तैयार की गई है वह विकास के अगले चरण के लिए उपयुक्त है। योजना आयोग का विश्वास है कि इस प्रारूप में निर्धारित किए गए लक्ष्यों, प्राथमिकताओ और नीतियों को केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें, सभी राजनैतिक दल तथा देश मे समस्त शिक्षित वर्ग सामान्य रूप से स्वीकार कर लेगा।

दूसरी बात यह है कि योजना के लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए सरकार को पूरी शक्ति लगानी होगी तथा आवश्यक साधन जुटाने और लगाने के लिए कृतसकल्प होना पडेगा । तीसरे, समाज को चाहिए कि वह अपने भविष्य के लिए इस बात के वास्ते तत्पर रहे कि वर्तमान उपभोग स्तर को बढाने पर यदि कोई रोक लगती है तो उसे स्वीकार करे ।

अन्त मे सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि योजना मे इस बात का आह्वान होना चाहिए कि अधिक से अधिक नागरिक उत्साह के साथ उसमे भाग ले । विशेषकर उन लोगो को आगे लाना होगा जिनके लाभार्थ ग्रामीण रोजगार की नीति को लागू किया जाना है । दीन-हीन लोग योजनाओ और कार्यक्रमो से अपने आप आगे नही बढ सकेंगे भले ही उनका उद्देश्य और उपदेश कितना ही अच्छा क्यो न हो । योजना को सफल बनाने के लिए उनको सगठित करने मे मदद करनी होगी ताकि जो लाभ उन्हे मिलना चाहिए उस पर वे दावा कर सके और उसके बदले मे वे समाज को अपना अपेक्षित सहयोग दे सकें ।

ये लक्ष्य प्राप्त किए जा सकते है । आवश्यकता है बिना हतोत्साहित हुए उनकी ओर लगातार बढते रहने के दृढ सकल्प की ।

वर्ष 1978–79 की वार्षिक योजना
(वित्त मन्त्री के बजट भाषण के अनुसार)

भारत सरकार के वित्त मन्त्री श्री एच एम पटेल ने लोकसभा मे 28 फरवरी, 1978 को सन् 1978–79 का बजट प्रस्तुत करते हुए अपने भाषण मे सन् 1978–79 की वार्षिक योजना के अनुमान प्रस्तुत किए । इस वार्षिक आयोजना की मुख्य बाते, वित्त मन्त्री महोदय के भाषण के अनुसार, इस प्रकार हैं—

1. वर्ष 1978–79 की वार्षिक आयोजना उस समय तैयार की गई जबकि नई 'राष्ट्रीय योजना' को अन्तिम रूप नही दिया गया था । चालू वित्तीय वर्ष की समाप्ति के साथ पाँचवी आयोजना समाप्त हो रही है और पहली अप्रेल, 1978 से नई राष्ट्रीय योजना चालू हो जाएगी । आयोजना एक सतत् प्रक्रिया है और किसी भी समय अनेको ऐसी योजनाएँ और कार्यक्रम चालू रहते हैं जिन्हे छोडा नही जा सकता । इसके अलावा, इनमे बहुत सी परियोजनाएँ समाप्ति की ओर काफी ज्यादा बढ चुकी होती है और इसलिए अगर उनसे समय पर फल प्राप्त करने हैं तो उनके लिए समुचित व्यवस्था करनी पडती है । इन्ही बातो ने सन् 1978–79 की आयोजनागत प्राथमिकताओ का फिर से क्रम निर्धारण करने की स्वतन्त्रता को सीमित कर दिया है । फिर भी सन् 1978–79 की वार्षिक आयोजना, जिस रूप मे यह तैयार हुई है, विकास की कृषि-प्रधान और रोजगार-बहुल नई नीति को अपनाने के वर्तमान सरकार के वायदे को प्रतिबिम्बित करती है ।

2 वर्ष 1978–79 के लिए केन्द्र, राज्यो और सघ राज्य क्षेत्रो की वार्षिक आयोजनाओं का कुल परिव्यय, सन् 1977–78 के 9,960 करोड रुपये के मुकाबले, 11,649 करोड रुपये का होगा । यह 17 प्रतिशत वृद्धि का द्योतक है । इस परिव्यय

में से कोई 10,465 करोड़ रुपये पहले से चली आ रही योजनाओं पर खर्च होंगे। शेष में से 150 करोड़ रुपये नई विद्युत परियोजनाओं का श्रीगणेश करने के लिए रखे गए हैं और 1,034 करोड़ रुपये अन्य क्षेत्रों की योजनाओं के लिए निर्धारित किए गए हैं। उपरोक्त राशि का 80 प्रतिशत भाग, यानी 828 करोड़ रुपये कृषि सम्बन्धी और ऐसी अन्य योजनाओं के लिए हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में सहायक होंगी।

3. वर्ष 1978–79 के केन्द्रीय बजट में 7,281 करोड़ रुपये की राशि केन्द्रीय आयोजना के लिए और राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों की आयोजनाओं में सहायता देने के लिए रखी गई है। वर्ष 1977–78 के लिए यह राशि 5,790 करोड़ रुपये की थी।

4. राज्यों की आयोजनाओं में और संघ राज्य क्षेत्रों की आयोजनाओं में, पहाड़ियों और आदिम जातीय क्षेत्रों की उप-आयोजनाओं में केन्द्रीय सहायता देने के लिए तथा उत्तर पूर्व परिषद् को और ग्रामीण विद्युतीकरण निगम को सहायता देने के लिए 2,761 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। बजट में केन्द्रीय आयोजना के लिए 4,520 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों के आन्तरिक और अन्य साधनों को मिलाकर, सन् 1978–79 की केन्द्रीय आयोजना, सन् 1977–78 की 4,939 करोड़ रुपये की आयोजना के मुकाबले, 5,664 करोड़ रुपये की होगी। कुल मिलाकर राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों की आयोजनाएँ, उनके अपने साधनों सहित 5,985 करोड़ रुपये की होंगी जबकि सन् 1977–78 में ये आयोजनाएँ 5,021 करोड़ रुपए की थी।

5. बहुत-से वर्षों में ऐसा पहली बार हुआ है जबकि राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों की आयोजनाएँ कुल मिलाकर केन्द्रीय आयोजना से बड़ी होंगी। कुल मिलाकर राज्यों की आयोजनाओं के परिव्यय में 19 प्रतिशत की वृद्धि की गई है जब कि संघ राज्य क्षेत्रों की आयोजनाओं में 27 प्रतिशत की वृद्धि होगी। दूसरी ओर, केन्द्रीय आयोजना में 15 प्रतिशत की वृद्धि होगी। इसमें कृषि, सिंचाई, बिजली और ग्रामीण विकास के पक्ष में हमने आयोजना सम्बन्धी प्राथमिकताओं का जो नया क्रम-निर्धारण किया है उसका पता चलता है क्योंकि ये सभी योजनाएँ राज्यों की आयोजनाओं का प्रमुख अंग हैं, और इससे कुछ अंश तक इस परिवर्तन का भी पता चलता है कि आयोजन के मामले में विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति पहले से ज्यादा है। प्रत्येक राज्य की आयोजना में कृषि, पहले से चल रही बड़ी दरमियानी सिंचाई की परियोजनाओं तथा बिजली परियोजनाओं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पूरी व्यवस्था की गई है। इन दो क्षेत्रों की अत्यावश्यक नई योजनाओं के लिए भी पर्याप्त व्यवस्था की गई है।

6. कृषि और ग्रामीण विकास पर बल देने की नीति के अनुसार, सन् 1978–79 में कृषि के लिए 1,754 करोड़ रुपये का आयोजना परिव्यय रखा गया है; इस प्रकार इसमें 490 करोड़ रुपये की वृद्धि की गई है। खासतौर से

सिंचाई क्षेत्र विकास के परिव्यय को, जो सन् 1977–78 में 49 करोड रुपये था, बढाकर सन् 1978–79 के लिए 82 करोड रुपए कर दिया गया है और केन्द्रीय आयोजना में छोटे किसानों के विकास अभिकरण (एजेंसी) के परिव्यय को 45 करोड रुपये से बढाकर सन् 1978–79 के लिए 115 करोड रुपये कर दिया गया है। प्राय सूखा ग्रस्त रहने वाले इलाकों के कार्यक्रम के परिव्यय को, जो सन् 1977-78 में 51 करोड रुपए था, बढाकर सन् 1978–79 के लिए 76 करोड रुपये कर दिया गया है। मरुस्थल विकास कार्यक्रम के लिए सन् 1978–79 मे 20 करोड रुपये रखे जा रहे हैं जबकि सन् 1977–78 मे उसके लिए केवल 6 करोड रुपये रखे गए थे।

7 नई आयोजन-नीति के अनुसार, खण्ड विकास आयोजनाएँ एक समयबद्ध कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों मे पूरे रोजगार की व्यवस्था करने के लिए एक बडा साधन होंगी। इस कार्यक्रम का ब्यौरा तैयार किया जा रहा है। इस बीच, इस कार्यक्रम के लिए 20 करोड रुपये की सांकेतिक व्यवस्था कर दी गई है। जब इस कार्यक्रम का पूरा ब्यौरा मालूम हो जाएगा तब इस राशि को और बढा दिया जाएगा।

8 ग्रामीण विकास की नई नीति के एक अंग के रूप मे डेरी विकास के एक विशाल कार्यक्रम – ऑपरेशन फ्लड II – को चालू करने का प्रस्ताव है। इस कार्यक्रम से लोगो का पोषण-स्तर ऊँचा होगा। पहले दौर में इससे लगभग 40 लाख लोगों को रोजगार मिलेगा और इसके सक्षम सहायक धन्धों के जरिये ग्रामीण क्षेत्रों में आय बढेगी। इस परियोजना पर लगभग 500 करोड रुपये खर्च होने का अनुमान है। इसके कार्यान्वयन के लिए अभी तैयारी की जा रही है लेकिन इस बीच कार्यक्रम-पूर्व के कुछ आवश्यक तत्वों पर कार्रवाई करने की स्वीकृति दे दी गई है ताकि कार्यक्रम का मुख्य काम समय पर शुरू किया जा सके।

9 इस बात को ध्यान मे रखते हुए कि हमारे देश का समुद्र-तट बहुत विस्तृत है और मछियारी का काम करने वालो की संख्या भी बहुत बडी है, केन्द्रीय आयोजना में मीनक्षेत्रों के परिव्यय को, जो सन् 1977–78 मे 33 करोड रुपये था, बढाकर सन् 1978-79 में 61 करोड रुपये कर दिया गया है। इस प्रकार परिव्यय बढा दिए जाने से बुनियादी आधारभूत सुविधाएँ तो मजबूत होंगी ही, साथ ही रोजगार में भी वृद्धि होगी और मछुओं की आय भी बढेगी।

10 ग्रामीण आधारभूत ढांचे के विकास सम्बन्धी व्यापक कार्यक्रम के एक अंग के रूप में, सब तरह के मौसम में काम देने वाली पहुँच सडकें बनाने और समस्याग्रस्त गाँवों में पीने के पानी की व्यवस्था करने के काम को तेजी से पूरा करने की जरूरत है। वर्ष 1978–79 में राज्यों की आयोजनाओं में ग्रामीण सडकों के परिव्यय को, जो चालू वर्ष में 85 करोड रुपये था, बढाकर 115 करोड रुपये कर दिया गया है। गाँवों में पानी की व्यवस्था करने के लिए सन् 1978–79 में राज्यों की परियोजनाओं में 105 करोड रुपये की व्यवस्था की जाएगी जबकि चालू वर्ष में इसके लिए 70

करोड़ रुपये रखे गए थे। इसकी अनुपूर्ति के लिए केन्द्रीय आयोजना में भी 60 करोड़ रुपये की एक विशेष व्यवस्था की गई है। इस प्रकार पिछले साल जो यह वचन दिया गया था कि गाँवों में पानी की व्यवस्था और सड़कों के निर्माण के लिए अधिक धन-राशि निर्धारित की जाएगी, वह पूरा कर दिया गया है। राज्यों को यह आश्वासन है कि यदि इन कार्यक्रमों को कारगर तरीके से कार्यान्वित किया गया तो केन्द्र इन धनराशियों को और बढ़ाने के लिए भी तैयार रहेगा।

11. ग्रामोद्योगों और लघु उद्योगों के जरिए ग्रामीण क्षेत्रों में लाभदायक रोजगार के अवसर बढ़ाने की जरूरत है। इसके लिए 1978–79 में कुल 219 करोड़ रुपये की राशि रखी गई है जबकि सन् 1977–78 में इनके लिए 145 करोड़ रुपये रखे गए थे।

12 अनुसूचित जातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण के कार्यक्रमों को अब विशेष प्रोत्साहन मिलेगा क्योंकि इनके परिव्यय को, जो सन् 1977–78 में 86 करोड़ रुपये था, बढ़ाकर वर्ष 1978-79 में 125 करोड़ रुपये कर दिया गया है। राज्यों की आयोजनाओं में आदिम जातियों के विकास के लिए परिव्यय को, जो सन् 1977–78 में 258 करोड़ रुपये था, बढ़ाकर वर्ष 1978–79 में 343 करोड़ रुपये कर दिया गया है। इसके अलावा, आदिम जातियों से सम्बन्धित उप-आयोजनाओं के लिए केन्द्र की ओर से जो विशेष सहायता दी जाती है वह भी बढ़ाकर 1978–79 में 70 करोड़ रुपये की जा रही है जबकि सन् 1977-78 में इसके लिए 55 करोड़ रुपये रखे गए थे।

13 अगले पाँच वर्षों में 170 लाख हैक्टेयर की अतिरिक्त सिंचाई की क्षमता बनाने का जो महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम निर्धारित किया गया है उसके लिए पूँजी निवेश में भारी वृद्धि करनी होगी और आयोजन, निष्पादन तथा पर्यवेक्षण के लिए संगठनात्मक व्यवस्था को नया रूप देने, सुदृढ़ करने और सुचारु बनाने की आवश्यकता होगी। बड़ी और दरमियानी सिंचाई परियोजनाओं के लिए 1978–79 में 1,166 करोड़ रुपये का परिव्यय होगा जबकि सन् 1977–78 में इसके लिए 1,032 करोड़ रुपये की राशि रखी गई थी। छोटी सिंचाई परियोजनाओं के लिए 1978–79 में, सन् 1977–78 के 206 करोड़ रुपये के मुकाबले 235 करोड़ रुपये का आयोजना परिव्यय होगा। कृषि पुनर्वित्त और विकास निगम से ऋण लेकर इस परिव्यय की काफी हद तक अनुपूर्ति की जाएगी। आशा की जाती है कि 1978–79 में, सन् 1977–78 के 22 3 लाख हैक्टेयर के मुकाबले 30 लाख हैक्टेयर की अतिरिक्त सिंचाई की क्षमता का निर्माण किया जाएगा।

14. पिछले वर्षों में, बिजली के लिए अपर्याप्त धन-राशि नियत किए जाने और बिजली परियोजनाओं को धीमी गति से कार्यान्वित किए जाने की वजह से इस बुनियादी आधारभूत सुविधा में बराबर कमी महसूस की जाती रही है। यदि हम चाहते हैं कि बिजली की बार-बार होने वाली कमी की वजह से हमारी विकास की गति अवरुद्ध न हो तो इन दोनों बातों में सुधार करना होगा। इसलिए 1978–79

की आयोजना मे बिजली पैदा करने की क्षमता मे अत्यधिक वृद्धि करने और पारेषण तथा वितरण व्यवस्था का विकास करने की परिकल्पना की गई है। आगामी वर्ष मे कुल मिलाकर लगभग 30,000 मेगावाट बिजली पैदा करने की क्षमता का निर्माण करने की योजनाओ को विभिन्न चरणो मे कार्यान्वित किया जाएगा। इसमे लगभग 3,500 मेगावाट बिजली 1978–79 मे पैदा की जाने लगेगी जबकि चालू वर्ष मे लगभग 2,000 मेगावाट बिजली पैदा किए जाने का अनुमान था और इस तरह देश मे बिजली पैदा करने की कुल क्षमता बढ कर 29,000 मेगावाट हो जाएगी।

15 केन्द्रीय क्षेत्र मे कई परियोजनाओ, जैसे कोरबा उच्च तापीय परियोजना, रामगुंडम उच्च तापीय परियोजना, नेवेली स्थित द्वितीय खान कटाव समेत बिजली-घर, बदरपुर तापीय बिजली-घर, तीसरा चरण, दामोदर घाटी निगम के बोकारो तापीय बिजली-घर और पचेत पहाडी के उद्वाहित संग्रहण संयन्त्र (पम्प्ड स्टोरेज प्लाट) मे नया काम शुरू करने के लिए व्यवस्था की जा रही है। उच्च तापीय बिजली-घरो से सम्बद्ध केन्द्रीय क्षेत्र मे तथा राज्यो मे 400 के वी की नई पारेषण लाइनो का काम हाथ मे लेने के लिए भी व्यवस्था की गई है। भार प्रेषण केन्द्रो के काम की रफ्तार भी तेज की जा रही है। इससे सदन को बिजली पैदा करने के उस कार्यक्रम के बारे मे जानकारी मिल जानी चाहिए जिसे हम हाथ मे लेने जा रहे हैं।

16 बिजली के विकास के लिए केन्द्रीय आयोजना मे 244 करोड रुपये की व्यवस्था की गई है। बिजली के लिए अधिकांश व्यवस्था राज्यो और संघ राज्य क्षेत्रो की आयोजनाओ म की गई है जहाँ इसके परिव्यय के लिए कुल 1,953 करोड रुपये की राशि रखी गई है। बिजली के क्षेत्र के लिए 1978–79 म 2,217 करोड रुपये की व्यवस्था की गई है जबकि चालू वर्ष मे इसके लिए 1,925 करोड रुपये की रकम रखी गई थी। ग्रामीण विद्युतीकरण के महत्त्व को देखते हुए इसके लिए व्यवस्था को बढा कर 297 करोड रुपये कर दिया गया है जबकि चालू वर्ष मे इस प्रयोजन के लिए 195 करोड रुपये रखे गए थे। इस बात की सुनिश्चित व्यवस्था की जाएगी कि इन परियोजनाओ को शीघ्रता तथा कुशलता से कार्यान्वित किया जाए ताकि इतनी भारी मात्रा मे लगाई गई पूंजी से अर्थ-व्यवस्था को पूरा-पूरा लाभ पहुँचे।

17 तेल के क्षेत्र के लिए 1978–79 मे 630 करोड रुपये की व्यवस्था की जा रही है क्योकि कच्चे तेल के मामले मे आत्मनिर्भर बनने के हमारे प्रयासो मे कोई ढिलाई नही आनी चाहिए। यह दूसरा कदम है जो राष्ट्र ने आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उठाया है।

18 इस्पात के लिए 1978–79 के बजट मे 563 करोड रुपये की व्यवस्था की जा रही है, जबकि सन् 1977–78 मे 511 करोड रुपये की व्यवस्था की गई थी। भिलाई और बोकारो के विस्तार कार्यक्रमो, राउरकेला के कोल्ड रोल्ड ग्रेन ओरिएन्टेड प्लाट और सेलम इस्पात संयन्त्र की आवश्यकताएँ पूरी कर दी गई हैं। कुद्रेमुख परियोजना के परिव्यय को, सन् 1977–78 के 142 करोड रुपये मे बढा कर अगले वर्ष मे 213 करोड रुपये किया जा रहा है ताकि परियोजना को सुनिश्चित समय पर पूरा किया जा सके।

19. इस तरह की धारणा बनाने की कोशिश की जा रही है कि यह सरकार परिवार नियोजन के कार्य को कम महत्त्व दे रही है। इस प्रकार की धारणा बिल्कुल गलत है। परिवार नियोजन के जोरदार तथा राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम को कार्यान्वित करने का हमारा वायदा पक्का और साफ है। स्वास्थ्य और परिवार कल्याण के लिए 1978–79 में 393 करोड़ रुपये की व्यवस्था की जा रही है जबकि सन् 1977–78 में इस प्रयोजन के लिए केवल 284 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी। अब इस बात को महसूस किया जा रहा है कि परिवार नियोजन के संकुचित पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करने की बजाय, परिवार कल्याण की व्यापक संकल्पना को अपनाने से परिवार नियोजन की पद्धतियों को ज्यादा अच्छी तरह से स्वीकार किया जाएगा। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार करने के लिए भी, जिसमें सामुदायिक स्वास्थ्य कर्मचारियों की योजना भी शामिल है, केन्द्रीय आयोजना तथा राज्यों की आयोजना में पर्याप्त मात्रा में धनराशि की व्यवस्था कर दी गई है।

20 यह सरकार इस तथ्य को पूर्ण रूप से मान्यता देती है कि हमारी अर्थ-व्यवस्था के आधुनिकीकरण में और कृषि तथा उद्योग के विकास में, विज्ञान और प्रौद्योगिकी को मूल्यवान योगदान देना है। सम्मानित सदस्यों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के परिव्यय को, जो सन् 1977–78 में 179 करोड़ रुपये था, बढ़ाकर 1978–79 में 220 करोड़ रुपये कर दिया गया है, अर्थात् उसमें 23% की वृद्धि की गई है। इसी प्रकार भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के लिए व्यवस्था को, 1977–78 के 37 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 1978–79 में 51 करोड़ रुपये कर दिया गया है। भारतीय उपग्रह परियोजना (इन्सेट–1), जिसके सम्बन्ध में 1978–79 में 23 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है, विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह परियोजना इस अर्थ में अद्वितीय है कि इसमें दूर संचार, ऋतु विज्ञान तथा दूरदर्शन की अनेक सुविधाएँ एक साथ रखी गई हैं।

नई योजना : एक समीक्षा

किसी भी योजना का निर्माण एक बात है और उसका क्रियान्वयन दूसरी बात। सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष में जब साम्य स्थापित नहीं हो पाता तो आलोचना-प्रत्यालोचना और दोषारोपण का वातावरण चिन्तन के लगभग सभी क्षेत्रों को क्षुब्ध कर देता है। कांग्रेस सरकार ने योजनाएँ बनाईं और इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि योजनाएँ अच्छी थीं और योजनाओं के लक्ष्य प्रशंसनीय थे। लेकिन योजनाओं का कार्यान्वियन समुचित रूप में नहीं हो सका और कार्यान्वियन-मशीनरी (Implementing Machinery) की गड़बड़ के कारण योजनाओं से अपेक्षित लाभ प्राप्त नहीं हो सके। जनता सरकार ने अपने नए आर्थिक दृष्टिकोण के अनुरूप नई योजना बनाई है लेकिन मूल बात यही है कि योजना का क्रियान्वयन सही ढंग से हो सकेगा या नहीं। यदि 'कथनी' को 'करनी' में उतारा जा सका तो नई राष्ट्रीय योजना के रसभरे फलों का स्वाद जनता चख सकेगी, अन्यथा वही 'टाँयटाँय फिस' वाली बात बन जाएगी। नई राष्ट्रीय योजना पूर्वापेक्षा अधिक यथार्थवादी है और अनवरत

योजना (Rolling Plan) की तकनीक भी अधिक आकर्षक और प्रभावित दिखाई देती है, लेकिन सभी बाते अभी 'कोरी कागजी' हैं, उनका मूल्यांकन भविष्य के गर्भ मे है। यदि कार्यान्वयन-मशीनरी योजना को सही रूप मे लागू कर सकी तो यह देश के लिए बहुत बडा सौभाग्य होगा, क्योकि अब तक योजनाओ के अपेक्षित लाभ से वचित रहने के कारण जनसाधारण का जीवन बद से बदतर ही बना है और आर्थिक विषमता की खाई निरन्तर चौडी होती गई है। हमने समाजवाद के जितना अधिक निकट पहुँचने की कोशिश की है, हम समाजवाद से उतने ही दूर हटे है, क्योकि गरीबी तो नही मिट रही है पर गरीब जरूर मिटते जा रहे है अर्थात् उनकी हालत आज पहले से कही अधिक दयनीय है और मुद्रा की क्रय शक्ति इतनी गिर गई है कि जन-सामान्य के लिए जीवन-निर्वाह एक कठिन चुनौती भरी समस्या है। यह सही है कि सदियो पुरानी गरीबी और जडता अल्प समय मे दूर नही की जा सकती, लेकिन यदि आवश्यक राजनीतिक सकल्प बना रहे और आर्थिक अनुशासन का कठोरतापूर्वक पालन किए जाए, तो हम काफी हद तक घोर निर्धनता की खाई को पाट देने की आशा करते है। यह नितान्त आवश्यक है कि हम ठोस कदमो के आधार पर आगे बढे और आत्म निर्भरता से लक्ष्य को यथाशीघ्र प्राप्त करें।

सन् 1978–79 का नया बजट भी आर्थिक क्षेत्र मे एक साहसिक कदम माना गया है। भारत के नए बजट का उद्देश्य एक ऐसी प्रक्रिया को चालू करना है जिससे विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रो मे उत्पादन और रोज़गार मे बराबर वृद्धि होती चली जाए। निवेश मे सरकारी व्यय के कार्यक्रम को एक प्रमुख साधन के रूप मे इस्तेमाल किया गया है। आधारभूत सुविधाओ के निवेश व्यय मे बहुत ज्यादा बढोतरी की जा रही है ताकि विकास के मार्ग मे आने वाली रुकावटें दूर हो जाएँ। बहुत अधिक मात्रा मे अतिरिक्त साधन जुटाना आवश्यक समझा गया है लेकिन साथ ही कृषि और उद्योगो मे निवेश को बढावा देने के लिए प्रोत्साहनो और कर-रियायतो की घोषणा भी की गई है। वित्त मन्त्री पटेल का कहना है कि इस समय देश की आर्थिक स्थिति एक साहसी कदम उठाने के लिए बहुत ही अनुकूल है और यह बजट उसी दिशा मे एक साहसी कदम है।

वास्तव मे हमारे लिए 'भविष्योन्मुखी आर्थिक योजना' की आवश्यकता है। हम इस बात पर दुख होना चाहिए कि हम भारत के लुप्त गौरव को अभी तक नहीं पा सके हैं। कुछ पक्तियो की एक कविता रह-रह कर हमे हमारे गौरव की याद दिलाती है—

"यूनान मिस्र रोमा सब मिट गए।
जहाँ से,
बाकी मगर अभी है नामोनिशाँ हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नही
हमारी,
सदियो रहा है दुश्मन दौरे-जहाँ हमारा।"

हमे सोचना चाहिए कि क्या हमारा अतीत का वैभव हम पुनः प्राप्त कर सकेंगे—क्या हम समय रहते,पिछड़ेपन और गरीबी की व्याधियों पर विजय प्राप्त कर सकेंगे। जनवरी, 1978 की योजना मे विद्वान् लेखक वी शकर ने हमारी पिछली योजनाओ की भूलों की ओर सकेत करते हुए इस बात पर बल दिया है कि हमारे आर्थिक विकास के लिए अगले पच्चीस वर्षों के लिए एक नई दृष्टि, एक नए रवैये, एक नूतन अध्ययन की आवश्यकता है। श्री वी शकर की दृष्टि में हमारे नए दृष्टिकोण के आधारभूत तत्त्व इस प्रकार होने चाहिएँ—

1 सरकार को ऐसी आर्थिक नीति तैयार करनी चाहिए जिससे धन अर्जित करने मे किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित न हो, उल्टे आय और बचत के लिए प्रोत्साहन हो। साथ ही इस बात पर बल हो कि खर्च उन वस्तुओं पर किया जाए जिनसे देश के सभी वर्गों, विशेषकर कमजोर वर्गो का भला हो सके।

2. आर्थिक विकास का कार्यक्रम व्यावहारिक होना चाहिए जिसका ध्येय नियत अवधि के भीतर निश्चित लक्ष्य प्राप्त करना हो।

3 शिक्षा प्रणाली का आर्थिक विकास की आवश्यकता के अनुसार ही पुनर्गठन करना चाहिए। शिक्षा विकासोन्मुख होनी चाहिए और विश्वविद्यालय से निकले स्नातक विकास पद्धति के लिए बोझ या बाधा न हों बल्कि उस पद्धति के साथ एकजुट होकर कार्य करें।

4. हमारे विकास में कतिपय मूलभूत बाधाएँ हैं, जैसे मौसम की अनिश्चितता, बाढ़, जमीन का कटाव, क्षारीयता मे वृद्धि और पानी का ठहराव, जगलों का कटाव, जल ससाधनो का अपर्याप्त वैज्ञानिक प्रयोग, अल्प मात्रा मे वैज्ञानिक तौर तरीकों का इस्तेमाल, खेतों मे रासायनिक खाद का अल्प मात्रा मे प्रयोग, पानी का अभाव, सिलसिलेवार पैदावार न करना, फसल का कीड़ों से बचाव तथा परती भूमि। इन सब के बारे मे वैज्ञानिक अनुसंधान होना चाहिए।

5. उद्योग और कृषि को सहारा देने के लिए वैज्ञानिक स्कन्ध की बेहतर व्यवस्था हो।

6. लोगों की मूल आवश्यकताओं को पूरा करने पर अधिक बल दिया जाए। जैसे भोजन, कपड़ा, घरेलू और औद्योगिक बिजली, पानी की सप्लाई, मकान, जल निकासी और सचार व्यवस्था।

7. परिणामो की बलि दिए बिना सामाजिक न्याय को दृष्टि में रखकर उद्योग और कृषि के विकास पर और अधिक बल देना चाहिए। दूसरे शब्दों मे, तुरन्त परिणाम प्राप्त करने के लिए औद्योगिक और कृषि सम्बन्धी क्रियाकलाप अधिकतम कर देना चाहिए और सामाजिक न्याय के लिए प्रतिबन्धों के स्थान पर नियमन का सहारा लेना चाहिए।

अगले 25 वर्षों में विकास को इच्छित दिशा देने के लिए हमें ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का पुनर्गठन करना पड़ेगा। इस प्रकार के प्रयास से शहरी विकास में किसी भी प्रकार बाधा नहीं पड़ेगी। कृषि उत्पादन स्वयं औद्योगिक उत्पादन पर

निर्भर होता है। कृषि उत्पादन का सदुपयोग भी औद्योगिक प्रक्रिया द्वारा ही हो सकता है, चाहे वह ग्रामीण उद्योग हो, लघु उद्योग या बड़े पैमाने का उद्योग हो। तिलहन, गन्ना, पटसन, कपास और अनेक खाद्य वस्तुएँ औद्योगिक इकाइयों में पहुँचनी चाहिएँ ताकि रूपान्तर या उपचार द्वारा वे न केवल भारत में बल्कि विदेशों में भी बिकने योग्य बनें।

जितने विकास की आवश्यकता है उसे देखते हुए हमें पूरे राष्ट्रीय प्रयास को इस सीमा तक बढ़ाना चाहिए जिससे प्रत्येक पाँच वर्षों की निश्चित लक्ष्य-प्राप्ति ही न हो, बल्कि पिछली कमी भी पूरी हो जाए और आगामी वर्षों के लिए भी उत्पादन में बढ़ोतरी होती जाए, अन्यथा सारे योजनाबद्ध प्रयासों के बावजूद हम उन्नति नहीं करेंगे तथा विकास की दौड़ में पिछड़ जाएँगे।

इतिहास बहुत अर्से से इस विशाल देश के प्रति क्रूर रहा है। प्रकृति ने अपनी नियामत उदारता से प्रदान की है परन्तु यहाँ के लोग इन नियामतों से अधिक लाभान्वित न हो सके तथा गरीबी और पिछड़ेपन की दलदल में फँसे रहे। हमारी योजनाओं का इतिहास विफलताओं का इतिहास है। इस इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए। बजाय इसके हम अपनी ही उधेड़-बुन में रहें, हमें अतीत के पर्यालोचन से यह सबक लेना चाहिए कि भविष्य के लिए कुछ ठोस कार्य करना है।

9

भारत में योजना-निर्माण-प्रक्रिया और क्रियान्वयन की प्रशासकीय मशीनरी

(THE ADMINISTRATIVE MACHINERY FOR PLAN-FORMULATION PROCESS AND IMPLEMENTATION IN INDIA)

यदि अर्द्ध-विकसित देश द्रुत आर्थिक विकास करना चाहते है तो उन्हें अपनी आर्थिक योजनाएँ बनाकर क्रियान्वित करनी चाहिए। सोवियत रूस ने भी आर्थिक योजनाओ द्वारा ही आर्थिक प्रगति की है। किन्तु आर्थिक विकास हेतु जहाँ योजनाओ का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है वहाँ इनके विवेकपूर्ण निर्माण और उनके उचित क्रियान्वयन का भी कम महत्त्व नही है। वस्तुत योजना की सफलता उसके युक्तियुक्त निर्माण तथा उसकी क्रियान्विति पर निर्भर करती है। उदाहरणार्थ योजना निर्माण और क्रियान्वयन मे अधिकाधिक व्यक्तियो को भागीदार बनाए जाने पर इसकी सफलता का अश बढ जाता है। किन्तु यदि योजना के लक्ष्य और कार्यक्रम सरकार द्वारा केवल ऊपर से जनता पर लादे जाएँ तो योजना की सफलता सदिग्ध हो जाती है। भारतीय योजना आयोग के उपाध्यक्ष डी आर. गाडगिल के अनुसार, "किसी योजना के निर्माण की अवस्था और तत्पश्चात् इसके क्रियान्वयन मे जितना अधिक प्रत्येक व्यक्ति भागीदार होगा उतना ही अधिक अच्छा हमारा नियोजन होगा।"[1] अतः योजना के निर्माण और क्रियान्वयन मे अपनाई गई प्रणालियो का भी बहुत महत्त्व है।

भारत में योजना-निर्माण की प्रक्रिया
(Planning Formulation-Process in India)

भारत मे योजना-निर्माण का कार्य 'भारतीय योजना आयोग' द्वारा किया जाता है। भारत की राष्ट्रीय योजना मे एक ओर केन्द्र और राज्य सरकारो की योजनाएँ तथा दूसरी ओर निजी-क्षेत्र की योजनाएँ सम्मिलित होती हैं। भारत मे योजना स्वीकार किए जाने से पूर्व निम्नलिखित अवस्थाओ मे होकर गुजरती है—

सामान्य दिशा-निर्देश (General Approach)—प्रथम अवस्था मे योजना-निर्माण हेतु सामान्य दिशा निर्देश पर विचार किया जाता है। योजना प्रारम्भ

1. *Dr D R. Gadgil :* Formulating the Fourth Plan in Yojna, 23 Feb., 1969

होने के लगभग तीन वर्ष पूर्व से ही योजना आयोग अर्थव्यवस्था की तत्कालीन स्थिति का अध्ययन-विश्लेषण करता है और अवरोध उपस्थित करने वाले आर्थिक, सामाजिक तथा सस्थागत कारणों को दूर करने हेतु सुझाव देता है। यह सुझाव केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल और राष्ट्रीय विकास परिषद् के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किए जाते हैं। ये सस्थाएँ इन सुझावों पर विचार करके योजना आयोग को विकास-दर, मुख्य नीतियों तथा किन उद्देश्यों तथा पहलुओं को अधिक महत्त्व दिया जाए, इस बारे में प्रारम्भिक निर्देश देती हैं। उक्त बातों पर विचार करते समय नियोजन की दीर्घकालीन आवश्यकताओं पर भी ध्यान रखा जाता है।

विभिन्न अध्ययन और ड्राफ्ट मेमोरेण्डम का निर्माण—योजना निर्माण की द्वितीय अवस्था में विभिन्न प्रकार के अध्ययनों का आयोजन किया जाता है। यह अध्ययन ही योजना के लिए ड्राफ्ट मेमोरेण्डम (Draft Memorandum) का आधार बनते हैं। इन अध्ययनों के लिए अनेक कार्यशील दलों (Working Groups) को सगठित किया जाता है। इन कार्यशील दलों में योजना आयोग और केन्द्रीय मन्त्रालय से तकनीकी सलाहकारों और प्रशासक विशेषज्ञों को नियुक्त किया जाता है। प्रत्येक दल को अर्थव्यवस्था के किसी विशेष क्षेत्र के अध्ययन का कार्य सौंपा जाता है। तृतीय योजना में वित्तीय ससाधनों, कृषि, सिंचाई, शक्ति, ईंधन, इस्पात, सामान्य-शिक्षा, तकनीकी-शिक्षा, वैज्ञानिक अनुसधान, स्वास्थ्य और परिवार-नियोजन, आवास, ग्रामीण-नियोजन और पिछडी जातियों के कल्याण के अध्ययन के लिए ये कार्यशील दल नियुक्त किए गए। ये कार्यशील दल योजना आयोग के प्रस्तावों को पूर्ण रूप से स्वीकार कर लेते हैं अथवा आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन या सशोधन कर देते हैं और तदनुसार यह बताते हैं कि उनसे सम्बन्धित क्षेत्र के दीर्घकालीन लक्ष्य क्या हो सकते हैं। ये दल पचवर्षीय योजना के लक्ष्य भी तैयार करते हैं। जिस प्रकार केन्द्र में ये कार्यशील-दल नियुक्त किये जाते हैं, उसी प्रकार राज्यों को भी अध्ययन के लिए ऐसे कार्यशील-दल नियुक्त करने की सलाह दी जाती है। साथ ही मन्त्रालयों, राज्य सरकारों, अनुसधान सगठनों और औद्योगिक उपक्रमों द्वारा भी विभिन्न अध्ययन किए जाते हैं। केन्द्रीय कार्यशील-दलों से इन सब की सूचनाओं का लाभ उठाने की आशा की जाती है। कार्यशील-दलों द्वारा इन अध्ययनों के साथ ही योजना आयोग, योजना निर्माण में नीति और प्रणाली पर सलाह देने हेतु विभिन्न क्षेत्रों के लिए विशेषज्ञों और कार्यकर्त्ताओं का पैनल (Panel) नियुक्त किया जाता है। तृतीय योजना निर्माण में योजना आयोग ने अर्थशास्त्रियों वैज्ञानिकों तथा कृषि, भूमि-सुधार, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास और सामाजिक-कल्याण सम्बन्धी पैनलों की सेवाओं का उपयोग किया था। इसके अतिरिक्त इस अवस्था में योजना-निर्माण में 'राष्ट्रीय नियोजन परिषद्' (National Planning Council) भी सहायता करती है जिसकी स्थापना मार्च, 1965 में की गई थी। यह वैज्ञानिक, इजीनियरों, तकनीशियनों, अर्थ-शास्त्रियों से युक्त एक छोटी सस्था है, जिन्हें अशकालीन आधार पर नियुक्त किया जाता है।

योजना-आयोग इन सभी संस्थाओं द्वारा प्रस्तुत अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों सम्बन्धी कार्यक्रमों के आधार पर 'संक्षिप्त ड्राफ्ट मेमोरेण्डम' (Draft Memorandum) तैयार करता है। इस मेमोरेण्डम में योजना के आकार, नीति सम्बन्धी मुख्य विषय, अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की अपेक्षा योजना के प्रयत्नों में कम पड़ने वाले सम्भावित क्षेत्रों आदि को भी प्रस्तुत किया जाता है। ड्राफ्ट मेमोरेण्डम में निजी-क्षेत्र के कार्यक्रमों का अधिक ब्यौरा नहीं रहता है। योजना-आयोग द्वारा यह ड्राफ्ट मेमोरेण्डम केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है, तत्पश्चात् यह 'राष्ट्रीय विकास परिषद्' (National Development Council) में प्रस्तुत किया जाता है।

ड्राफ्ट प्रारूप का निर्माण—इस अवस्था का सम्बन्ध ड्राफ्ट आउट-लाइन (Draft Outline) के निर्माण से है। राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा सुझाए गए प्रस्तावों तथा परिवर्तनों आदि के आधार पर योजना की ड्राफ्ट आउट-लाइन तैयार की जाती है। ड्राफ्ट मेमोरेण्डम की अपेक्षा यह अधिक व्यापक और बड़ा दस्तावेज़ (Memorandum) होता है, जिसमे विभिन्न क्षेत्रों (Sectors) के लिए विभिन्न योजनाओं और परियोजनाओं का ब्यौरा तथा मुख्य नीति-सम्बन्धी विषय, उद्देश्य और उनकी प्राप्ति के तरीके दिए होते हैं। इस दस्तावेज को विभिन्न मन्त्रालयों और राज्य सरकारों के पास समीक्षार्थ भेजा जाता है। इस पर केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में भी विचार किया जाता है। इसके पश्चात् राष्ट्रीय विकास परिषद् इस पर विचार करती है, जिसकी सहमति के पश्चात् योजना की इस ड्राफ्ट आउट-लाइन को जनता एवं विभिन्न संस्थाओं, विश्वविद्यालयों द्वारा विचार-विमर्श एवं समालोचना के लिए प्रकाशित किया जाता है और जनता के सुझाव और विचार आमन्त्रित किए जाते हैं। राज्यों में राज्य-स्तर पर और जिला-स्तर पर तथा राष्ट्रीय-स्तर पर संसद के दोनों सदनों द्वारा विचार किया जाता है। संसद् में पहले इस पर कुछ दिनों तक सामान्य विचार-विमर्श चलता है उसके पश्चात् कई संसदीय समितियों द्वारा अधिक विचारपूर्वक विचार किया जाता है।

राज्य-सरकारों से विचार-विमर्श—इस बीच जबकि योजना के इस प्रारूप पर देश भर में विचार होता रहता है, योजना आयोग विभिन्न राज्यों से उनकी योजनाओं के सम्बन्ध में विस्तृत वार्तालाप करता है। वार्ता के मुख्य विषय उनके विकास की सविस्तार योजनाएँ, वित्तीय समाधन और अतिरिक्त साधनों के जुटाने सम्बन्धी उपाय आदि होते हैं। योजना-आयोग और राज्य-सरकारों का यह परामर्श विशेषज्ञ और राजनीतिज्ञ दोनों स्तरों पर चलता है। अन्तिम निर्णय राज्य के मुख्य मन्त्री से सलाह-मशविरे के पश्चात् ही लिए जाते हैं।

नया मेमोरेण्डम—इस अवस्था की मुख्य बात योजना-आयोग द्वारा योजना के सम्बन्ध में नया मेमोरेण्डम तैयार करना है, जो राज्य-सरकारों के साथ सविस्तार वार्तालाप, जनता और संगठित संस्थाओं द्वारा की गई समीक्षा तथा विभिन्न पैनल एवं कार्यशील-दलों द्वारा दिए गए विस्तृत सुझावों के आधार पर तैयार किया जाता

है। इस दस्तावेज मे योजना की मुख्य विशेषताओ, नीति-सम्बन्धी निर्देश, जिन पर बल दिया जाता है तथा उन विषयों का वर्णन होता है जिन पर योजना के अन्तिम रूप से स्वीकार किए जाने के पूर्व विचार की आवश्यकता है। इस मेमोरेण्डम पर पुन केन्द्रीय-मन्त्रिमण्डल और राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा विचार किया जाता है।

योजना को अन्तिम रूप दिया जाना—केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल और राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा लिए गए निर्णयों के आधार पर योजना-आयोग योजना की अन्तिम रिपोर्ट तैयार करता है। यह अन्तिम रिपोर्ट बहुत व्यापक होती है और इसमें योजना के उद्देश्य, नीतियो, कार्यक्रम और परियोजनाओ का विस्तृत वर्णन होता है। यह अन्तिम योजना पुन केन्द्रीय-मन्त्रिमण्डल और राष्ट्रीय विकास परिषद् के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, जिसकी सहमति के पश्चात् इसे संसद् के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। दोनों सदनो म कई दिनों के बाद विवाद के पश्चात् दोनों सदनों द्वारा स्वीकृति मिल जाने के बाद इसे लागू कर दिया जाता है तथा राष्ट्र से इसके क्रियान्वयन और उद्देश्यो तथा लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए अपील की जाती है।

योजना निर्माण—भारत मे उपरोक्त प्रकार से ऊपर से केन्द्र द्वारा योजना बनाने के साथ-साथ सगठन की निचली इकाइयो की आवश्यकताओ, उनके द्वारा लक्ष्यों के मूल्यांकन तथा सुझावो के अनुसार सरकार इस योजना म परिवर्तन या सशोधन करती है। विभिन्न राज्यो, जिलो और विकास-खण्डो द्वारा योजना के प्रारूप मे निर्धारित व्यापक लक्ष्यो को ध्यान मे रखते हुए योजनाएँ तैयार करने के लिए कहा जाता है। उनमे आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके अन्तिम योजना मे समायोजन कर लिया जाता है। योजना आयोग, राज्यो, जिलो और पचायत समितियो द्वारा प्रस्तुत आवश्यकताओ, प्रस्तावो, कार्यक्रमो और परियोजनाओ की आर्थिक और तकनीकी दृष्टियो से सावधानीपूर्वक जाँच करता है और उनके आधार पर योजना-निर्माण किया जाता है।

समय-समय पर पुनरावलोकन—योजना-निर्माण मे काफी समय लगता है और इस बीच तथा योजना की पचवर्षीय अवधि मे भी परिस्थितियो मे परिवर्तन हो सकता है। अत योजना आयोग एक बार पचवर्षीय योजना बना देने के पश्चात् भी देश और अर्थ-व्यवस्था मे समय-समय पर होने वाले परिवर्तनो पर निगरानी रखता है, तत्सम्बन्धी अध्ययन करता है और आवश्यकतानुसार योजना मे परिवर्तन और सशोधन करता रहता है। इसके अतिरिक्त पचवर्षीय योजना को वार्षिक योजनाओ मे विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक वर्ष नवम्बर या दिसम्बर म योजना-आयोग और केन्द्रीय मन्त्रालयो तथा राज्य-सरकारों के बीच गत प्रगति की समीक्षा, ससाधनो की स्थिति, लक्ष्यो के समायोजन की तकनीकी सम्भावनाओ और आगामी वर्ष की योजना की आवश्यकताओ पर विचारार्थ परामर्श चलता रहता है। केन्द्र और राज्य-सरकारो के बजट इन्ही वार्षिक योजनाओ का ध्यान मे रखते हुए आगामी वर्ष फरवरी मे बनाए जाते हैं। ये वार्षिक योजनाएँ अब भारतीय नियोजन की प्रमुख विशेषता बन गई है।

भारत में योजना-निर्माण की तकनीक
(Techniques of Plan-formulation in India)

भारत में योजना आयोग द्वारा मध्यम और दीर्घकालीन योजनाओं के निर्माण में निम्नलिखित तकनीकों का प्रयोग किया जाता है—

1. अर्थ-व्यवस्था की स्थिति का साँख्यिकीय विश्लेषण—पर्याप्त और विश्वसनीय आँकड़ों के अभाव में कोई नियोजन सफल नहीं हो सकता। साँख्यिकी आधारशिला पर ही नियोजन के प्रासाद का निर्माण होता है। अतः भारत में पंचवर्षीय योजना के निर्माण में सर्वप्रथम अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं का साँख्यिकी विश्लेषण किया जाता है। आँकड़ों के आधार पर भूतकालीन प्रवृत्तियों और प्रगति की समीक्षा की जाती है और मुख्य आर्थिक समस्याओं का अनुमान लगाया जाता है। इन सबके लिए देश की अर्थ-व्यवस्था के समस्त क्षेत्रों के बारे में साँख्यिकी एकत्रित किए जाते हैं। यह कार्य भारत में कई सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा किया जाता है और योजना-निर्माण में इनका उपयोग किया जाता है। भारत में साँख्यिकी सम्बन्धी स्थिति सुधारने हेतु विगत वर्षों में बहुत प्रयत्न किए गए हैं। 'केन्द्रीय साँख्यिकी संगठन' (Central Statistical Organisation) सन् 1948-49 से राष्ट्रीय आय के आँकड़े तैयार करता है। रिज़र्व बैंक ऑफ इण्डिया और केन्द्रीय साँख्यिकी संगठन द्वारा अर्थ-व्यवस्था में बचत और विनियोग के अनुमान तैयार किए जाते हैं। रिज़र्व बैंक के द्वारा व्यापक मौद्रिक और वित्तीय साँख्यिकी एकत्रित किए जाते हैं। कृषि और औद्योगिक साँख्यिकी सूचनाओं के सुधार के लिए भी विगत वर्षों में अच्छे प्रयास किए गए हैं। योजना आयोग की 'अनुसंधान कार्यक्रम समिति' द्वारा भी विभिन्न समस्याओं के सम्बन्ध में अध्ययन अनुसंधान किए जाते हैं तथा यह विकास से सम्बन्धित अध्ययन अनुसन्धानों के लिए विश्वविद्यालयों और अन्य शिक्षण संस्थाओं को अनुदान भी देती है। योजना आयोग के 'कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन' (Programme Evaluation Organisation) द्वारा भी ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। अनेक विशिष्ट संस्थाएँ जैसे—'केन्द्रीय जल और शक्ति आयोग' (Central Water and Power Commission), 'जियोलॉजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया' (Geological Survey of India), 'ब्यूरो ऑफ माइन्स' (Bureau of Mines), जनगणना विभाग, आइल एण्ड नेच्यूरल गैस कमीशन (Oil and Natural Gas Commission), प्राकृतिक साधनों सम्बन्धी समिति (Committee on Natural Resources) आदि ने सम्बन्धित साधनों एवं समस्याओं के बारे में विस्तृत अध्ययन किए हैं और करती रहती हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मन्त्रालय में साँख्यिकी-कक्ष होते हैं जो अपने विषय पर सभी प्रकार की सूचनाएँ एकत्रित करते हैं। योजना-आयोग इन सभी स्रोतों द्वारा साँख्यिकी सूचनाओं और अध्ययनों के आधार पर अर्थ-व्यवस्था की स्थिति का विश्लेषण करता है और योजना-निर्माण प्रक्रिया में आगे बढ़ती है।

2. आर्थिक विकास की सम्भावनाओं का अनुमान लगाना—उपरोक्त अध्ययन

के आधार पर देश की आवश्यकताओं का अनुमान लगाया जाता है। इस पर विचार किया जाता है कि विकास की वांछनीय दर क्या होनी चाहिए। साथ ही नियोजन की प्रमुख प्राथमिकताएँ तथा नीतियों के बारे में निश्चय किया जाता है। उदाहरणार्थ जनसंख्या और उसकी आयु-संरचना सम्बन्धी भावी अनुमान योजना के दौरान खाद्यान्न, वस्त्र, निवास आदि की आवश्यकताओं का अनुमान लगाने मे सहायक होते हैं। इसी प्रकार विकास की वांछनीय दर के आधार पर योजनावधि में बचत और विनियोग की आवश्यकताओं पर निर्णय लिया जाता है। तत्पश्चात् योजना-निर्माण सम्बन्धी इन आवश्यकताओं की योजनावधि म उपलब्ध होने वाले वित्तीय साधनों के सन्दर्भ में छानबीन की जाती है। इस प्रकार, वित्तीय साधनों का अनुमान लगाया जाता है। निजी-क्षेत्र के वित्तीय साधनों का अनुमान रिजर्व बैंक के द्वारा और सार्वजनिक क्षेत्र के साधनों का अनुमान योजना-आयोग और वित्त-मन्त्रालय द्वारा लगाया जाता है। साथ ही इस बात की सम्भावना पर भी विचार किया जाता है कि योजनावधि म केन्द्र और राज्य-सरकारें अतिरिक्त करारोपण द्वारा कितनी राशि जुटा सकेंगी। भारत जैसे अर्द्ध विकसित देश मे, जहाँ जन-साधारण का जीवन-स्तर बहुत नीचा है, मनमाने ढग से कर नही लगाए जा सकते, अत इस बात पर सावधानीपूर्वक विचार करना होता है। योजना आयोग विदेशी मुद्रा की आवश्यकताओं और सम्भावित विदेशी सहायता के बारे मे भी अनुमान लगाता है। सार्वजनिक उपक्रमो के लाभो से नियोजन की कितनी वित्त व्यवस्था हो सकेगी तथा किस सीमा तक हीनार्थ-प्रबन्धन (Deficit Financing) का लाभपूर्वक आश्रय लिया जा सकता है। हीनार्थ-प्रबन्धन को कम से कम रखने का प्रयत्न किया जाता है अन्यथा मुद्रा प्रसारिक मूल्य-वृद्धि होने से योजना-निर्माण के प्रयत्न विफल हो जाते हैं। इस प्रकार पहले विनियोग की आवश्यकताओं और उसके पश्चात् वित्तीय साधनों का अनुमान लगाया जाता है। तत्पश्चात् योजना आयोग किसी एक को दूसरे से या दोनों मे संशोधन करके समायोजन करता है। साथ ही, योजना आयोग विभिन्न प्रकार से इस बात की जाँच करता है कि तैयार की जाने वाली योजना मे कहीं असगति तो नही है। उदाहरणार्थ, यह देखा जा सकता है कि प्रस्तावित विनियोग उपलब्ध बचतों के अनुरूप है या नही, विदेशी विनिमय की आवश्यकता के अनुरूप इसकी उपलब्धि हो सकेगी या नही, आधारभूत कच्चे माल का आवश्यकता के अनुरूप उत्पादन होगा या नहीं। इस प्रकार, योजना आयोग विभिन्न कार्यक्रमों की सगति की जाँच करता है ताकि अर्थ-व्यवस्था मे असतुलन उत्पन्न नही होने पाए।

3 आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यो का निर्धारण—योजना-निर्माण के लिए प्रमुख आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यो के निर्धारण का कार्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है, अत भारत मे योजना निर्माता इन उद्देश्यो के निर्धारण पर भी बहुत ध्यान देते हैं। इन उद्देश्यो के निर्धारण मे उपलब्ध समय तथा भौतिक और वित्तीय दोनों प्रकार के साधनों के सन्दर्भ मे विचार किया जाता है, विभिन्न उद्देश्यो मे परस्पर विरोध होता है उनमें समायोजन किया जाता है। उदाहरणार्थ, अल्पकालीन और

दीर्घकालीन उद्देश्यों तथा कई आर्थिक तथा गैर-आर्थिक उद्देश्य परस्पर विरोधी होते हैं। आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण, ये दो उद्देश्य भी परस्पर विरोध प्रस्तुत कर सकते हैं। आर्थिक विकास पर अधिक महत्व देने से सामाजिक कल्याण की अवहेलना हो सकती है और सामाजिक कल्याण के कार्यक्रम अधिक प्रारम्भ करने पर आर्थिक विकास की गति धीमी भी हो सकती है। अत योजना-निर्माता इन उद्देश्यों में सामजस्य और समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं।

4. **विभिन्न क्षेत्रों में लक्ष्य-निर्धारण**—इसके पश्चात् विभिन्न क्षेत्रों जैसे—कृषि, उद्योग, विद्युत्, सिंचाई, यातायात, समाज-सेवाओं आदि के लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है और यह कार्यशील दलों (Working Groups) द्वारा किया जाता है। इन कार्यशील दलों के सदस्य, विभिन्न मन्त्रालयों और अन्य संगठनों से लिए गए विशेषज्ञ होते हैं। लक्ष्य-निर्धारण करते समय यह कार्यशील दल योजना आयोग द्वारा दिए गए निर्देशों और पथ प्रदर्शन के अधीन कार्य करते हैं तथा जनमत पर भी ध्यान देते हैं। विभिन्न क्षेत्रों में लक्ष्य-निर्धारण के इस कार्य के पूर्ण होने के पश्चात् योजना आयोग समस्त अर्थ-व्यवस्था के दृष्टिकोण से इन लक्ष्यों की जाँच करता है और देखता है कि विभिन्न लक्ष्यों में परस्पर असंगति (Inconsistency) तो नहीं है। योजना के लक्ष्यों के निर्धारण की विधि का वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

योजना को अन्तिम रूप दिया जाना – अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों जैसे—कृषि, उद्योग, विद्युत्, सिंचाई, यातायात, समाज-सेवाओं आदि में भिन्न-भिन्न लक्ष्यों के निर्धारण के पश्चात् इन सबको मिलाया जाता है और मूल अनुमानों से तुलना की जाती है। इस अवस्था में उपलब्ध होने वाले पूँजीगत साधनों और विदेशी मुद्रा के सन्दर्भ में इन लक्ष्यों पर विचार किया जाता है तथा साधनों को और अधिक गतिशील बनाने या लक्ष्यों को घटाने-बढ़ाने की गुँजाइश पर विचार किया जाता है। साथ ही, योजना के रोजगार-सम्बन्धी प्रभावों तथा बुनियादी भौतिक पदार्थों, जैसे—लोहा, इस्पात, सीमेन्ट आदि की आवश्यकताओं पर सावधानीपूर्वक विचार किया जाता है। इन सबके आधार पर सरकार और योजना आयोग द्वारा योजना की नीति, आकार, क्षेत्र, विनियोगों के आवटन, प्राथमिकताओं के निर्धारण आदि के सम्बन्ध में निर्णय लिए जाते हैं और योजना को अन्तिम रूप दिया जाता है, जिसे क्रमशः केन्द्रीय-मन्त्रिमण्डल, राष्ट्रीय विकास परिषद् और संसद् द्वारा स्वीकृति दिए जाने पर लागू किया जाता है।

चतुर्थ योजना निर्माण तकनीक— चतुर्थ योजना के निर्माण में अपनाई गई तकनीक के अध्ययन से भारतीय नियोजन निर्माण की तकनीक स्पष्ट रूप से समझी जा सकती है। चतुर्थ योजना पर प्रारम्भिक विचार योजना आयोग के दीर्घकालीन नियोजन संभाग (Perspective Planning Division . P.P.D.) में सन् 1962 में शुरू हुआ। योजना-निर्माण के समय एक महत्वपूर्ण निर्णय इस सम्बन्ध में लेना होता है कि राष्ट्रीय आय का कितना भाग बचाया जाए और कितने का विनियोजन

किया जाए ? बचत-दर अधिक बढाने पर जनता को उपभोग कम करना पड़ता है इस प्रकार, कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है । अत इस सम्बन्ध मे बहुत सोच-विचार की आवश्यकता होती है । दीर्घकालीन नियोजन सभाग ने योजना-निर्माण की प्रारम्भिक अवस्था मे, मुख्य रूप से इसी समस्या पर विचार-विमर्श किया कि योजना मे विनियोजन-दर क्या हो ? विनियोग-दर के निर्धारण हेतु जनता के लिए उपभोग-स्तर का निर्धारण भी आवश्यक है । योजना आयोग के दीर्घकालीन नियोजन सभाग (P P D) ने इस बात का निर्णय किया कि जनसख्या को न्यूनतम जीवन-स्तर उपलब्ध कराने के लिए सन् 1960 61 के मूल्य-स्तर पर 35 रुपये प्रति व्यक्ति प्रति माह आवश्यक होंगे । अत यह निर्णय लिया गया कि नियोजन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य जनता के जीवन-स्तर को उक्त 35 रुपये के स्तर तक ऊँचा करना है । किन्तु यदि इस उद्देश्य को सन् 1975 तक प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय-आय मे 40% या वर्ष 1961-75 मे 10% से 20% वार्षिक वृद्धि आवश्यक थी । किन्तु ये लक्ष्य अत्यन्त महत्त्वाकाँक्षी थे । अत न्यूनतम 35 रुपये के जीवन-स्तर प्रदान करने का लक्ष्य छोडना पडा । इसके पश्चात् प्रमुख अर्थ शास्त्रियो और राजनीतिज्ञो का एक अन्य अध्ययन दल नियुक्त किया गया, जिसने 5 व्यक्तियो के परिवार के लिए 100 रुपये अर्थात् 20 रुपये प्रति व्यक्ति के न्यूनतम जीवन-स्तर का प्रबन्ध किए जाने की सिफारिश तथा यह लक्ष्य सन् 1975-76 तक अर्थात् सन् 1965-66 से 10 वर्षों मे प्राप्त करने थे । इस आधार पर दीर्घकालीन नियोजन सभाग ने चतुर्थ और पाँचवी योजना मे राष्ट्रीय आय मे 7 5 या 7 7% वृद्धि के लक्ष्य का सुझाव दिया । समग्र राष्ट्रीय आय सम्बन्धी निर्णय कर लेने के पश्चात् दूसरा कार्य अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों मे तत्सम्बन्धी निर्णय लेना और उत्पादन वृद्धि के लक्ष्यो को पूर्ण करने हेतु आवश्यक विनियोगो का विस्तृत अनुमान लगाना था । इसके पश्चात् दीर्घकालीन नियोजन सभाग ने असख्य सूक्ष्म योजनाओ (Micro Plans) को समस्त अर्थ-व्यवस्था के लिए एक पूर्णसगत योजना मे समावेशित करने का कार्य किया । इसके लिए निम्नलिखित तकनीक अपनाई गई—

(i) सूक्ष्म या व्यष्टि स्तर (Micro-Level) पर सभी प्रकार के भावी अनुमान लगाना,

(ii) सूक्ष्म या व्यष्टि स्तर पर बड़ी मात्रा मे भौतिक सतुलनों का प्रयास करना ।

प्रथम तकनीक के अन्तर्गत कुल घरेलू उत्पादन और व्यय तथा इसके प्रमुख भागो के सम्बन्ध मे गणनाएँ की गईं । चतुर्थ और पाँचवी योजना मे विदेशी-सहायता, शुद्ध विनियोग दर, सार्वजनिक उपभोग स्तर और व्यक्तिगत उपभोग के अनुमान लगाए गए । इसके पश्चात् 'समय-समय पर कुल घरेलू माँग की वृहद् वस्तु सरचना' (Broad Commodity Pattern of the Gross Domestic Demand at Various Points of Time) को ज्ञात करने के लिए कदम उठाया गया । दीर्घ-कालीन नियोजन सभाग ने विभिन्न व्यक्तिगत पदार्थों के लिए तथ्यो को ज्ञात किया ।

योजना आयोग (Planning Commission)

भारत में योजना-निर्माण सम्बन्धी उत्तरदायित्व योजना आयोग का है, जिसकी स्थापना मार्च, 1950 में की गई थी। योजना आयोग ही हमारे नियोजन तन्त्र का महत्त्वपूर्ण अंग है। भारतीय संविधान में योजना आयोग की नियुक्ति की कोई व्यवस्था नहीं है, अत: इसकी स्थापना भारत सरकार के एक प्रस्ताव द्वारा की गई थी।

आयोग के प्रमुख कार्य—योजना आयोग की स्थापना के समय ही आयोग के प्रमुख कार्यों का स्पष्ट संकेत दिया गया था। तदनुसार आयोग के मुख्य कार्य संक्षेप में निम्नलिखित हैं—

1 प्रथम महत्त्वपूर्ण कार्य देश के साधनों का अनुमान लगाना है। योजना आयोग देश के भौतिक, पूंजी-सम्बन्धी और मानवीय साधनों का अनुमान लगाता है। वह ऐसे साधनों की बढ़ोत्तरी की सम्भावना का पता लगाता है, जिनका देश में अभाव होता है। साधनों का अनुमान और उनमें अभिवृद्धि का प्रयत्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है क्योंकि इसके अभाव में कोई भी नियोजन असम्भव है।

2 योजना आयोग का दूसरा कार्य है योजना-निर्माण। योजना आयोग देश के संसाधनों के सर्वाधिक प्रभावशाली और सन्तुलित उपयोग के लिए योजना-निर्माण करता है।

3 योजना आयोग का तीसरा कार्य है—योजना को पूरा किए जाने की अवस्थाओं को परिभाषित करना तथा योजना की प्राथमिकताओं का निर्धारण करना।

4 इसके पश्चात् योजना आयोग इनके आधार पर देश के साधनों का समुचित आवंटन करता है।

5 योजना आयोग का पाँचवाँ कार्य है, योजना-तन्त्र का निर्धारण। आयोग योजना की प्रत्येक अवस्था के सभी पहलुओं में सफल क्रियान्विति के लिए योजना-तन्त्र की प्रकृति को निर्धारित करता है।

6 योजना आयोग समय-समय पर योजना की प्रत्येक अवस्था के क्रियान्वयन में की गई प्रगति का मूल्यांकन करता है। इस मूल्यांकन के आधार पर वह नीतियों और प्रयत्नों में परिवर्तन या समायोजन की सिफारिश करता है।

7 योजना आयोग का सातवाँ कार्य सुझाव और दिशा निर्देश सम्बन्धी है। योजना आयोग आर्थिक विकास की गति अवरुद्ध करने वाले घटकों को बताता है और योजना की सफलता के लिए आवश्यक स्थितियों का निर्धारण करता है। योजना निर्माण कार्य को पूर्ण करने हेतु आर्थिक परिस्थितियों, नीतियों, विकास-कार्यक्रमों आदि पर योजना आयोग सरकार को सुझाव देता है। यदि राज्य या केन्द्रीय सरकार किसी समस्या विशेष पर सुझाव माँगे तो आयोग उस समस्या विशेष के समाधान के लिए भी अपने सुझाव देता है।

अपने कार्य के सफल-सम्पादन की दृष्टि से योजना आयोग को कुछ अन्य कार्य भी सौंपे गए हैं, जैसे—

(i) सामग्री, पूंजी और मानवीय साधन का मूल्यांकन, संरक्षण तथा उनमे वृद्धि की सम्भावनाओं आदि को ज्ञात करना। इस सम्बन्ध में योजना आयोग का कर्त्तव्य है कि वह वित्तीय-साधनों, मूल्य-स्तर, उपभोग प्रतिमान आदि का निरन्तर अध्ययन करता रहे।

(ii) साधनों के सन्तुलित प्रयोग की दिशा मे योजना आयोग को इस प्रकार की विधि अपनानी चाहिए जिससे एक ओर तो विकास की अधिकतम दर प्राप्त की जा सके तथा दूसरी ओर सामाजिक न्याय की स्थापना भी हो सके।

(iii) योजना आयोग, योजनाओं की सफलता के लिए, सामाजिक परिवर्तनों का अध्ययन करता रहे।

(iv) योजना आयोग आर्थिक एव अन्य नीतियों का सामयिक मूल्यांकन करे और यदि नीतियों में किन्हीं परिवर्तनों की आवश्यकता हो तो इसके लिए मन्त्रिमण्डल को सिफारिश करे।

(v) नियोजन की तकनीक का आवश्यक अध्ययन करते हुए उसमे सुधार का प्रयत्न करे।

(vi) योजना के सफल क्रियान्वयन के लिए जन-सहयोग प्राप्त करे ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपना दायित्व महसूस करते हुए योजना के कार्यों मे भागीदार बन सके।

सगठन—योजना आयोग की रचना करते समय यह उद्देश्य रखा गया था कि आयोग और मन्त्रि-परिषद् मे परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध हो। यही कारण है कि आरम्भ से ही आयोग मे अन्य सदस्यों के अतिरिक्त मन्त्रि-परिषद् के केबिनेट स्तर के कुछ मन्त्रियों को सदस्यता प्रदान की गई। प्रधान मन्त्री आयोग का अध्यक्ष होता है। सितम्बर, 1967 में पुनर्गठन के बाद से प्रधान मन्त्री और वित्त मन्त्री के अतिरिक्त अन्य सभी सदस्य पूर्णकालीन (Whole time) रहे हैं और वे सरकार के मन्त्री नहीं होते। यद्यपि योजना आयोग के सभी सदस्य एक निकाय (Body) के रूप में कार्य करते हैं तथापि सुविधा की दृष्टि से प्रत्येक सदस्य को एक या अधिक विषयों का उत्तरदायित्व सौंप दिया जाता है। वित्त मन्त्री योजना आयोग के आर्थिक सम्भाग (Economic Division) से निकटतम सम्पर्क रखता है।

यह प्रश्न विवादास्पद है कि मन्त्रियों को योजना आयोग का सदस्य बनाना कहाँ तक उचित है। कुछ का मत है कि योजना आयोग का पूर्णतः स्वतन्त्र सगठन होना चाहिए। योजना आयोग का प्रमुख कार्य देश की आर्थिक समस्याओं पर सरकार को परामर्श देना है, अतः यह उचित है कि इसका सदस्य उन्ही को बनाया जाए जो ख्याति प्राप्त हों। साथ ही सदस्यों को स्वतन्त्र किन्तु संयुक्त रूप से कार्य करने का अधिकार दिया जाए। प्रधान मन्त्री व अन्य मन्त्रियों को आयोग का सदस्य बनाना उचित नहीं है, क्योंकि इससे आयोग की स्वतन्त्रता कम होती है।[1] लेकिन

1. Also see : Estimate Committee, 1957-59, Twenty First Report (Second Lok Sabha), Planning Commission, p. 21.

इस प्रकार का मत वज़न नही रखता है । वास्तव मे मन्त्री जनता के निकट सम्पर्क मे रहते हैं और जनता की नब्ज की अधिक अच्छी तरह पहिचानते हैं, अत जनता के लिए बनाई जाने वाली योजनाओ और योजना-मशीनरी से उनका निकट-सम्पर्क होना चाहिए । वैसे भी अधिक प्रभावशाली मत यही रहा है कि मन्त्रियो का आयोग के साथ निकटतम सम्पर्क होना चाहिए ताकि मन्त्रिमण्डल और आयोग के मध्य ताल-मेल बना रहे । इसके अतिरिक्त योजना के क्रियान्वयन के लिए अन्तिम उत्तरदायित्व मन्त्रि-मण्डल पर ही होता है । प्रशासन ही वह यन्त्र है, जो योजना को सफल बनाने और क्रियान्वयन की दिशा मे सर्वोपरि भूमिका निभाता है । अत नियोजन आयोग मे मन्त्रियो को सदस्यता देना वाँछित है । वी टी कृष्णमाचारी के मतानुसार योजना का क्रियान्वयन उसी स्थिति मे अच्छा हो सकता है, जब मन्त्रि-मण्डल के सदस्य भी आयोग के विचार-विवेचन और निर्णयो मे भाग लें ।

प्रशासन सुधार आयोग की सिफारिशें और योजना आयोग का पुनर्गठन—सितम्बर, 1967 मे योजना-आयोग का पुनर्गठन किया गया । योजना-आयोग का यह पुनर्गठन प्रशासनिक सुधार आयोग (Administrative Reforms Commission) की सिफारिशो के आधार पर किया गया था, जो निम्नलिखित थी—

(i) आयोग के उपाध्यक्ष तथा अन्य सदस्य केन्द्रीय मन्त्रियो मे से नहीं लिए जाने चाहिएँ ।

(ii) योजना आयोग केवल विशेषज्ञो की ही संस्था नही होनी चाहिए और इसके सदस्यो को विभिन्न क्षेत्रो का ज्ञान और अनुभव होना चाहिए ।

(iii) राष्ट्रीय नियोजन परिषद् योजनाओ के निर्माण मे बुनियादी निर्देश देती रहे । उसकी और उसके द्वारा नियुक्त विभिन्न समितियो की नियमित रूप से अधिक बैठकें की जानी चाहिएँ ।

(iv) योजना आयोग को सलाहकार समितियो की नियुक्ति मे मितव्ययिता करनी चाहिए और उनकी स्थापना सोच विचार करके की जानी चाहिए । नियुक्ति के समय ही समितियो के कार्यक्षेत्र और कार्य-सचालन विधि निर्धारित कर दी जानी चाहिए । योजना आयोग को अपने कार्य के लिए केन्द्रीय मन्त्रालयो मे कार्य कर रही सलाहकार समितियो का अधिकाधिक सहयोग लेना चाहिए ।

(v) लोकसभा की सार्वजनिक उपक्रम समिति के समान लोकसभा के सदस्यो की एक अन्य समिति बनाई जानी चाहिए जो योजना आयोग के वार्षिक प्रतिवेदन तथा योजनाओ के मूल्यांकन से सम्बन्धित प्रतिवेदनो पर विचार करे ।

(vi) आयोग के लिए सलाहकार विषय-विशेषज्ञ एव विश्लेषणकर्त्ता इस प्रकार के तीन पूर्ण स्तरीय होने चाहिएँ ।

(vii) विकास से सम्बन्धित विभिन्न विषयो मे प्रशिक्षण देने हेतु दिल्ली मे एक प्रशिक्षण-संस्थान स्थापित किया जाना चाहिए ।

(viii) उद्योगो के लिए स्थापित विभिन्न विकास परिषदो के साथ एक योजना समूह सलग्न रहना चाहिए, जो निजी-क्षेत्र के उद्योगो से योजना-निर्माण मे परामर्श एव सहयोग प्राप्त कर सकते हैं ।

(ix) एक स्टेन्डिंग कमेटी की स्थापना की जानी चाहिए जो केन्द्रीय सरकार के विभिन्न आर्थिक सलाहकार कक्षों में अधिक समन्वय और सम्पर्क का कार्य करे। इसके सदस्य भिन्न-भिन्न मन्त्रालयों तथा योजना आयोग के आर्थिक एवं सांख्यिकीय कक्षों के अध्यक्ष होने चाहिएँ।

(x) प्रत्येक राज्य में निम्न प्रकार के त्रि-स्तरीय नियोजन तन्त्र स्थापित किए जाने चाहिए—

(a) राज्य योजना परिषद्—यह विशेषज्ञों की संस्था होनी चाहिए। यह परिषद् राज्य में योजना आयोग के समान योजना सम्बन्धी कार्य करे, (b) विभागीय नियोजन संस्थाएँ—ये सम्बन्धित विभाग की भिन्न-भिन्न विकास परियोजनाओं में समन्वय स्थापित करने और उनके क्रियान्वयन की देखभाल करने का कार्य करें, (c) क्षेत्रीय तथा जिला-स्तरीय नियोजन संस्थाएँ—इसके लिए प्रत्येक जिले में एक पूर्णकालीन योजना और विकास अधिकारी तथा एक जिला-योजना समिति होनी चाहिए। समिति में पंचायतों और नगरपालिकाओं के प्रतिनिधि एवं कुछ व्यावसायिक विशेषज्ञ भी होने चाहिएँ।

अप्रैल, 1973 में पुनर्गठन—योजना आयोग की रचना और कार्य-विभाजन में 1 अप्रैल, 1973 को पुनः परिवर्तन किया गया। तदनुसार आयोग के संगठन की रूपरेखा इस प्रकार रही—

(1) प्रधान मन्त्री, पदेन अध्यक्ष।

(2) एक उपाध्यक्ष (योजना मन्त्री स्वर्गीय दुर्गाप्रसाद धर उस समय उपाध्यक्ष थे)।

(3) उपाध्यक्ष के अतिरिक्त आयोग के 4 और सदस्य (जिनमें कोई भी मन्त्री शामिल नहीं था, यद्यपि वित्त मन्त्री आयोग की बैठकों में भाग ले सकता था। ये सभी सदस्य पूर्णकालिक थे)।

जुलाई, 1975 में आयोग का गठन—जुलाई, 1975 में आयोग का गठन इस प्रकार था[1]—

1. श्रीमती इन्दिरा गाँधी	प्रधान मन्त्री तथा अध्यक्ष
2. पी. एन हक्सर	उपाध्यक्ष
3. सी. सुब्रह्मण्यम	वित्त मन्त्री
4. इन्द्रकुमार गुजराल	योजना राज्य मन्त्री
5. एस. चक्रवर्ती	सदस्य
6. बी. शिवरामन	सदस्य

जनता सरकार द्वारा आयोग का पुनर्गठन, 1977—मार्च, 1977 में केन्द्र में कांग्रेस सरकार के पतन और जनता पार्टी सरकार के गठन के बाद देश की संविधानिक और संविधानेतर संस्थाओं को नई दिशा और नया स्वरूप देने की

1. India 1976, p. 170.

जो परिवर्तन-प्रक्रिया शुरू हुई उसके फलस्वरूप योजना आयोग का पुनर्गठन किया गया है, उसे नया स्वरूप प्रदान किया गया है। तदनुसार आयोग का वर्तमान संगठनात्मक ढांचा इस प्रकार है—

श्री मोरारजी देसाई	प्रधान मन्त्री तथा अध्यक्ष
डॉ डी टी लकड़वाला	उपाध्यक्ष
श्री एच एम पटेल	वित्त मन्त्री (सदस्य)
श्री चरणसिंह	गृह मन्त्री (सदस्य)
श्री जगजीवनराम	रक्षा मन्त्री (सदस्य)
श्री वी जी राजाध्यक्ष	मुख्य परामर्शदाता
श्री राजकृष्ण	सदस्य

प्रधान मन्त्री श्री मोरारजी देसाई ने कुछ दिन पूर्व कहा था कि अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ करने के लिए इसे नई दिशा देना जरूरी है। योजना आयोग के नए उपाध्यक्ष डॉ डी टी लकड़वाला और उनके सहयोगियो को यह उत्तरदायित्व निभाना होगा। डॉ लकड़वाला बम्बई विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग के निदेशक रहे हैं और उनकी गिनती देश के चोटी के अर्थशास्त्रियो म होती है जबकि उनके पूर्ववर्ती श्री पी एन हक्सर, मुख्यतया प्रशासक और राजनीतिज्ञ थे। आयोग के नए सदस्यो मे श्री वी जी राजाध्यक्ष इस समय योजना आयोग के मुख्य सलाहकार हैं।

वित्त मन्त्री के अतिरिक्त, गृह मन्त्री और रक्षा मन्त्री को पहली बार योजना आयोग का सदस्य नियुक्त किया गया है। कुछ समय तक भूतपूर्व रक्षा मन्त्री श्री वी के कृष्णमेनन भी योजना आयोग के सदस्य थे, लेकिन रक्षा मन्त्री होने स अधिक अपने व्यक्तित्व के कारण। रक्षा मन्त्री श्री जगजीवनराम को आयोग का सदस्य का स्पष्ट अर्थ, योजना को रक्षाउन्मुख बनाना नही, बल्कि दुर्बल वर्ग के हितो की योजनाओ म प्राथमिकता देना है। योजना के सम्बन्ध मे गृह मन्त्री श्री चरणसिंह के विचार इस प्रकार के रहे है कि योजना ग्रामोन्मुख हो और साथ ही कुटीर उद्योग, लघु उद्योग तथा भारी उद्योग के बीच अलोचित प्रतिस्पर्द्धा रोकने के लिए कानूनी सरक्षण हो। प्रधान मन्त्री होने के नाते श्री मोरारजी देसाई योजना आयोग के अध्यक्ष हैं। श्री देसाई का इस बात पर बल है कि जब तक हम योजना के बारे म अपना दृष्टिकोण और प्राथमिकताएँ तथा योजना को लागू करने के तरीके नही बदलते तब तक विकास की समस्या हल नही हो सकेगी। उनका कहना है कि देश के लगभग 70% छोटे किसानो की समस्याओ पर अधिक ध्यान देना होगा। जब तक हम गाँवो मे रहने वाले 80% लोगो को अधिक महत्व देकर उनका शहरो मे आना नही रोकते तब तक देश मे व्याप्त असन्तुलित स्थिति ठीक नही हो सकेगी।

आयोग मे कार्य विभाजन

प्रशासनिक सुधार आयोग के सुझाव के अनुसार आयोग के कार्यों को तीन मुख्य भागो मे बाँटा गया है—योजना-निर्माण कार्य, मूल्यांकन कार्य एव प्रतिष्ठापन कार्य। भारत सरकार की 10 जून, 1977 की प्रेस विज्ञप्ति के अनुसार योजना

आयोग के उपाध्यक्ष और तीन सदस्यों के कार्य-विभाजन का जो फैसला किया गया है वह इस प्रकार है—

योजना आयोग के उपाध्यक्ष डॉ. डी. टी. लकड़वाला निम्नलिखित कार्य देखेंगे—योजना समन्वय, सामान्य प्रशासन, वित्तीय ससाधन, आर्थिक नीति, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और विकास और भारत-जापान समिति, कार्यक्रम प्रशासन, शिक्षा, सामाजिक, आयोजन, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण और पोषण, आवास, शहरी विकास, जलपूर्ति, योजना, सूचना और जन-सहयोग । योजना आयोग के सदस्य प्रोफेसर राजकृष्ण निम्नलिखित कार्य देखेंगे—सूचना प्रणाली, अक-सकलन और सर्वेक्षण, भावी आयोजन विभाग, सगणक केन्द्र और सामग्री कोष, रोजगार और श्रम, जनशक्ति आयोजन और औद्योगिक स्वीकृति इकाई । योजना आयोग के सदस्य श्री वी. जी. राजाध्यक्ष निम्नलिखित कार्य देखेंगे—अनुश्रवण (मानिटरिंग) परियोजना मूल्यांकन, उद्योग, खनिज और लघु उद्योग, बिजली और ऊर्जा परिवहन और सचार अनुसंधान तथा विकास । योजना आयोग के सदस्य श्री वी शिवरामन ये कार्य देखेंगे—कृषि, सिंचाई और ग्राम विकास दल, ग्रामोद्योग, योजना की कार्यान्विति बहुस्तरीय आयोजन तथा पर्वतीय और आदिवासी क्षेत्र विकास ।

योजना आयोग के कार्यों के सचालन हेतु आन्तरिक सगठन की दृष्टि से विभिन्न विभाग हैं, जो चार भागो मे विभाजित हैं- -

1. समन्वय विभाग (Co-ordination Division)—इसके दो उप-विभाग है—योजना समन्वय विभाग (Plan Co-ordination Section) तथा कार्यक्रम प्रशासन विभाग (Programme Administrative Division) । जब आयोग को विभिन्न विभागो मे सहयोग की आवश्यकता होती है, तो समन्वय विभाग अपनी भूमिका निभाता है । प्रशासन विभाग के कार्य वार्षिक और पचवर्षीय योजनाओ मे समन्वय, अविकसित क्षेत्रो का पता लगाना, प्रदेशो को केन्द्रीय सहायता के तरीकों तथा योजना को कुशल प्रभावपूर्ण ढग से कार्यान्वित करने के सम्बन्ध मे परामर्श देना आदि हैं ।

2. साधारण विभाग (General Division)—योजना से सम्बन्धित विभिन्न कार्यों के लिए अनेक साधारण विभाग है । प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष एक निदेशक होता है । मुख्य साधारण विभाग ये है—दीर्घकालीन योजना विभाग, आर्थिक विभाग, श्रम एव रोजगार विभाग, प्राकृतिक एव वैज्ञानिक अनुसधान विभाग, सांख्यिकी तथा सर्वेक्षण विभाग, प्रबन्ध एवं प्रशासन विभाग ।

3. विषय विभाग (Subject Division)—आर्थिक गतिविधि के विभिन्न क्षेत्रों के लिए विषय-विभाग 10 हैं जो अपने विषय से सम्बन्धित योजना के लिए कार्य और शोध करते हैं—कृषि विभाग, भूमि सुधार विभाग, सिंचाई और शक्ति विभाग, ग्राम और लघु उद्योग विभाग, समाज सेवा विभाग, गृह-विभाग, यातायात एवं संचार विभाग, उद्योग एवं खनिज पदार्थ विभाग, शिक्षा विभाग, स्वास्थ्य विभाग ।

4. विशिष्ट विकास कार्यक्रम विभाग (Special Development Programme Division)—कतिपय विशेष कार्यक्रमो के लिए 'विशेष विकास कार्यक्रम विभाग' बनाए गए है। ये दो हैं—ग्रामीण कार्य विभाग एव जन-सहकारिता विभाग।

योजना आयोग से सम्बद्ध अन्य सस्थाएँ

1. राष्ट्रीय नियोजन परिषद् (National Planning Council)—इस सस्था की स्थापना सरकार द्वारा फरवरी, 1965 मे योजना आयोग के सदस्यो की सहायता से की गई। जिसमे सावधानीपूर्वक चुने हुए सीमित सख्या मे विशेषज्ञ नियुक्त किए जाते हैं। 'राष्ट्रीय नियोजन परिषद्' योजना आयोग के उपाध्यक्ष की अध्यक्षता मे कार्य करता है।

2. कार्यशील दल (Working Groups)—योजना आयोग समय-समय पर 'कार्यशील समूह' नियुक्त करता है, जिनका कार्य अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो के लिए योजना-निर्माण मे योजना आयोग और विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालयो मे समन्वय करना है। इन कार्यशील समूहो के सदस्य योजना आयोग और विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालयो से लिए गए तकनीकी विशेषज्ञ, अर्थशास्त्री और प्रशासनिक अधिकारी होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ उप-समूह (Sub-groups) भी नियुक्त किए जाते हैं।

भारत सरकार की 14 अक्टूबर, 1977 की प्रेस विज्ञप्ति के अनुसार योजना आयोग ने पाँचवी पचवर्षीय योजना के दौरान हुई प्रगति की समीक्षा करने मे और अगली योजना के नीति सम्बन्धी मुख्य मुद्दो पर विचार करने तथा सन् 1978-83 के दौरान कृषि और सम्बन्धित क्षेत्रो के लक्ष्य निर्धारित करने की सलाह देने के लिए 21 कार्यकारी दलो का गठन किया है। प्रत्येक कार्यकारी दल मे सम्बन्धित विभाग के प्रतिनिधि, योजना आयोग के कृषि और ग्रामीण विकास का एक अधिकारी और जहाँ आवश्यक है वहाँ परिप्रेक्ष्य आयोजना विभाग का एक प्रतिनिधि रखा गया है। कार्यकारी दलो को निर्देश था कि वे अपनी अन्तरिम रिपोर्ट नवम्बर, 1977 के मध्य तक और अन्तिम रिपोर्ट जनवरी 1978 के मध्य तक दे दें। कृषि-क्षेत्र मे कार्यकारी दलो से कहा गया है कि वे कमान क्षेत्रो के विकास, लघु सिचाई योजनाओ, भूमि और जल सरक्षण और भूमि को कृषि योग्य बनाने, फसल उत्पादन, कृषि प्रबन्ध और शिक्षा, पशु पालन, डेयरी, मत्स्य पालन, वनारोपण और कृषि साँख्यिकी का अध्ययन करें। ग्रामीण विकास के लिए कार्यकारी दलो को निर्देश दिया गया है कि वे समन्वित ग्रामीण विकास, पचायती राज, सहकारिता और ग्रामीण ऋण, विपणन और नियमित बाजारो की भूमिका तथा मरुस्थल विकास जैसे विषयो का अध्ययन करें। इसके अलावा अन्य कार्यकारी दलो से कहा गया है कि वे खाद्य विधायन भण्डारण, कृषि अनुसधान और शिक्षा, बाढ नियन्त्रण तथा सिंचाई जैसे विषयो का अध्ययन करें।

3. परामर्शदात्री सस्थाएँ (Advisory Bodies)—इन्हें Panel or Consultative Bodies भी कहते हैं। ये स्थायी सस्थाएँ होती हैं जो सरकार की विभिन्न नीतियो और कार्यक्रमो पर सुझाव देती हैं। इसके अतिरिक्त, ससद सदस्यो से परामर्श

लेने की व्यवस्था की गई है। इसके लिए Consultative Committee of Members of Parliament for Planning Commission तथा Prime Minister's Informal Consultative Committee for Planning बनाई गई है।

4. एसोसिएटेड बॉडीज (Associated Bodies)—इनमें से प्रमुख केन्द्रीय मन्त्रालय, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया और केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन (Central Statistical Organisation) हैं। रिजर्व बैंक के आर्थिक विभाग से योजना आयोग निकट-सम्पर्क रखता है तथा उसके द्वारा किए गए अध्ययन योजना आयोग के लिए उपयोगी होते है। रिजर्व बैंक के इस विभाग का संचालक योजना आयोग के लिए अर्थ-शास्त्रियो के पैनल का सदस्य होता है। आयोग के लिए आवश्यक सांख्य एकत्रित करने का कार्य केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन करती है।

5. मूल्यांकन समितियाँ (Evaluation Committees)—योजनान्तर्गत प्रारम्भ की गई विभिन्न परियोजनाओं के कार्य-सचालन के मूल्यांकन हेतु 'मूल्यांकन समितियाँ' नामक विशिष्ट संस्थाओ का निर्माण किया गया है। Committee on Plan Projects इस प्रकार का उदाहरण है।

6 अनुसंधान संस्थाएँ (Research Institutions)—योजना आयोग ने इस सम्बन्ध मे 'अनुसधान कार्यक्रम समिति' (Research Programme Committee) नामक विशिष्ट सस्था की स्थापना की है, जिसका अध्यक्ष आयोग का उपाध्यक्ष होता है। इसमे देश के ख्याति प्राप्त समाज वैज्ञानिकों को भी सदस्य नियुक्त किया जाता रहा है। इसी प्रकार प्राकृतिक साधनों के सरक्षण, विकास और उचित विदोहन आदि के लिए प्राकृतिक ससाधन समिति (Committee of Natural Resources) स्थापित की गई। इसके अतिरिक्त, भारतीय सांख्यिकी सस्थान, भारतीय व्यावहारिक आर्थिक अनुसधान परिषद् (Indian Council of Applied Economic Research) और आर्थिक विकास सस्थान (Institute of Economic Growth) आदि संस्थाएँ महत्त्वपूर्ण आर्थिक-सामाजिक अनुसधान कार्य करती हैं जिसका उपयोग योजना आयोग करता रहता है।

7. राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council)—राष्ट्रीय विकास परिषद् योजना आयोग की सर्वोच्च नीति-निर्धारक सस्था है। यह योजना आयोग और विभिन्न राज्यों मे समन्वय स्थापित करने का भी कार्य करती है। इसके मुख्य कार्य हैं—

(i) समय-समय पर राष्ट्रीय योजना के कार्य-सचालन का पर्यावलोकन करना।

(ii) राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने वाले सामाजिक और आर्थिक नीति-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना।

(iii) राष्ट्रीय योजना मे निर्धारित उद्देश्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उपाय सुझाना।

(iv) जनता का सक्रिय सहयोग प्राप्त करना।
(v) प्रशासनिक सेवाओं की कुशलता में वृद्धि करना।
(vi) अल्प विकसित समाज के वर्गों और प्रदेशों के पूर्ण विकास के लिए प्रयत्न करना।
(vii) समस्त नागरिकों के समान त्याग के द्वारा राष्ट्रीय विकास के लिए संसाधनों का निर्माण करना।

योजना आयोग की तरह राष्ट्रीय विकास परिषद् के पीछे भी सांविधानिक या कानूनी सत्ता नहीं होती, किन्तु इसकी सिफारिशों का केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा आदर किया जाता है। इस परिषद् में देश के प्रधान मन्त्री और योजना आयोग के सदस्य होते हैं। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के मूल प्रारूप पर विचार करने के लगभग तीन वर्ष बाद सितम्बर, 1976 में राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक हुई थी जिसमें योजना के संशोधक रूप को अन्तिम रूप से स्वीकार किया गया है। मार्च, 1977 के सत्ता परिवर्तन के बाद जनता सरकार ने एक नई राष्ट्रीय योजना आरम्भ करने का विचार किया और सन् 1978–83 की पंचवर्षीय योजना का प्रारूप योजना आयोग द्वारा राष्ट्रीय विकास परिषद् के समक्ष 19 मार्च, 1978 को प्रस्तुत किया गया।

योजना का क्रियान्वयन
(Implementation of the Plan)

भारत में योजना आयोग विशुद्ध रूप से परामर्शदात्री संस्था है। इसका कार्य योजनाओं का निर्माण करना और उनका मूल्यांकन करना है। इसके पास कोई प्रशासनिक शक्ति नहीं है अत योजनाओं के क्रियान्वयन का कार्य केन्द्रीय सरकार और राज्य-सरकारों का है। योजना निर्माण के पश्चात् केन्द्रीय और राज्य सरकारें अपने विभिन्न मन्त्रालयों और उनके अधीन विभागों द्वारा योजना के लिए निर्धारित कार्यक्रमों और लक्ष्यों की प्राप्ति की कार्यवाही करती है। कृषि, सिंचाई, सहकारिता, विद्युत, शिक्षा स्वास्थ्य आदि के कार्यक्रमों को प्रमुख रूप से राज्य सरकारें क्रियान्वित करती हैं क्योंकि ये राज्य-सूची में आते। अन्य विषयों जैसे—वृहद्-उद्योग, रेलें, राष्ट्रीय राजमार्ग, प्रमुख बन्दरगाह, जहाजरानी, नागरिक उड्डयन, संचार आदि से सम्बन्धित योजनाओं के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व केन्द्रीय सरकार पर होता है। भारत के नियोजन सम्बन्धी परियोजनाओं में से कुछ को केवल केन्द्रीय सरकार क्रियान्वित करती है, कुछ को राज्य सरकारों द्वारा क्रियान्वित किया जाता है और कुछ को केन्द्रीय और राज्य सरकारें दोनों मिलकर करती हैं। उदाहरणार्थ, भारत में विशाल नदी घाटी योजनाओं में से कुछ का निर्माण और संचालन पूर्ण रूप से केन्द्रीय सरकार द्वारा, कुछ का केवल राज्य सरकारों द्वारा और कुछ केन्द्र और राज्य सरकारों ने तथा एक से अधिक राज्य सरकारों ने मिलकर किया है। निजी क्षेत्र की योजनाओं का क्रियान्वयन निजी क्षेत्र द्वारा किया जाता है, यद्यपि सरकार इस कार्य में निजी-क्षेत्र को आवश्यक वित्तीय, तकनीकी तथा अन्य प्रकार की सहायता देती है।

सार्वजनिक-क्षेत्र की योजनाओं का क्रियान्वयन सरकार द्वारा किया जाता है। कई अन्य देशों के समान भारत मे भी योजनाकरण में विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण द्वारा जिला-स्तर पर जिला-परिषदें तथा खण्ड स्तर पर पंचायत समिति है, जो खण्ड-स्तर पर योजनाओं के निर्माण और क्रियान्वयन का कार्य करती है।

इस प्रकार भारत मे योजना का क्रियान्वयन केन्द्रीय और राज्य-सरकारों के विभिन्न मन्त्रालयो और उनके अधीनस्थ विभागो द्वारा किया जाता है। योजना की सफलता इन विभागो के अधिकारियों और अन्य सरकारी कर्मचारियों की कुशलता, कर्त्तव्यपरायणता तथा ईमानदारी पर निर्भर करती है। योजनाओ की सफलता सामान्यतः जनता के सहयोग पर निर्भर करती है।

प्रगति की समीक्षा—योजना के क्रियान्वयन के लिए उनका निरन्तर निरीक्षण और प्रगति की समीक्षा आवश्यक है ताकि योजना की असफलताओं और उसके क्रियान्वयन के मार्ग मे आने वाली बाधाओं का पता लगाया जा सके। भारत मे योजना आयोग का योजना-निर्माण के अतिरिक्त एक प्रमुख कार्य "योजना की प्रत्येक अवस्था के क्रियान्वयन द्वारा प्राप्त प्रगति का समय-समय पर ब्यौरा रखना तथा उसके अनुसार नीति मे समायोजन तथा अन्य उपायो के लिए सिफारिशें करना है।" अत. योजना आयोग समय-समय पर अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे योजना के क्रियान्वयन और सफलता का पर्यवेक्षण करता है। जब वार्षिक योजना का निर्माण किया जाता है और उसे वार्षिक बजट मे सम्मिलित किया जाता है तो आयोग केन्द्र और राज्य सरकारो से गत वर्ष की प्रगति के प्रतिवेदन मंगाता है। इसके आधार पर योजना आयोग गत वर्ष की प्रगति-प्रतिवेदन तैयार करता है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय-मन्त्रालयो और राज्य सरकारो द्वारा विभिन्न क्षेत्रो मे विकास-कार्यक्रमो के व्यक्तिगत सम्बन्ध मे विस्तृत रिपोर्ट तैयार की जाती है। कार्यक्रम मूल्यांकन सगठन तथा योजना की परियोजना समिति योजनाओ के क्रियान्वयन से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करती है। इन अध्ययनों का उद्देश्य परियोजनाओ की विलम्ब पूर्ति अपर्याप्त सफलता, ऊँची लागतों आदि के कारणों की जाँच करना और इन्हे दूर करने के उपाय बतलाना होता है। योजना आयोग योजना अवधि के मध्य मे ही विभिन्न क्षेत्रो मे योजना कार्यक्रमो की पूर्ति के सम्बन्ध मे 'Mid Term' प्रतिवेदन भी प्रकाशित करती है जिसमे आगे की कार्यवाही की दिशाओ का भी संकेत होता है। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के अन्त मे योजना आयोग अवधि की समग्र समीक्षा, विकास सम्बन्धी तथ्यों तथा आई हुई कठिनाइयों और भविष्य के लिए सुझावों सहित प्रकाशित करता है। निजी-क्षेत्र में योजना की प्रगति की समीक्षा और मूल्यांकन के लिए और अधिक प्रयत्नों की आवश्यकता है।

भारतीय नियोजन की विशेषताएँ—भारतीय नियोजन की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ हैं—

(1) भारतीय नियोजन जनतान्त्रिक नियोजन है।

(ii) भारतीय नियोजन सोवियत रूस और चीन की तरह पूर्ण या व्यापक (Comprehensive) नियोजन नही है।

(iii) भारतीय नियोजन का उद्देश्य समाजवादी समाज की स्थापना है।

(iv) भारतीय नियोजन केन्द्रित और विकेन्द्रित दानो प्रकार का है

भारतीय योजना-निर्माण प्रक्रिया की समीक्षा

1 कई आलोचको ने योजना आयाग को 'समानान्तर सरकार' (Parallel Government), 'सुपर केबिनेट' (Super Cab net) और 'गाडी का पांचवां पहिया' (The Fifth Wheel of the Coach) कहा है। किन्तु इस प्रकार की आलोचनाएँ अतिरंजित है। भारत मे सम्पूर्ण आयोजन इस प्रकार का है कि राष्ट्रीय योजना भी कार्यान्वित होती है और राज्यिक योजनाएँ भी। इस प्रकार, राष्ट्रीय हितो की पूर्ति भी होती है और प्रान्तीय एव स्थानीय हितो की भी। मुख्य उद्देश्य यही रहता है कि दोनो एक दूसरे के पूरक बनें। यदि इस उद्देश्य की पूर्ति मे केन्द्रीकरण को कुछ प्रोत्साहन मिलता है और केन्द्र और राज्य सम्बन्ध एकात्मकता के लक्षणों से प्रभावित होत हैं तो इसमे अशुभ कोई बात नही है। इसके अतिरिक्त योजना आयोग एक परामर्शदात्री सस्था रहा है, इसके पास प्रशासनिक अधिकार नही हैं। योजना आयोग कन्द्र तथा राज्यो के विभिन्न स्तरो पर व्यापक विचार-विमर्श के पश्चात् ही निर्णय पर पहुँचता है। इस प्रकार राज्य के सम्बन्ध मे आयोग नियोजन-क्षेत्र मे जो कुछ भी कहता है, उसमे राज्यो की पूर्ण स्वीकृति प्राप्त होती है।

2 कुछ आलोचको क अनुसार, योजना आयोग एक स्वतन्त्र और परामर्शदात्री सस्था के रूप म कार्य नही कर पाता। मन्त्रियो को योजना आयोग का सदस्य नियुक्त किया जाता रहा है। इस प्रकार, यह सस्था राजनीति प्रेरित है और यह विशेषज्ञ सस्था नहीं है। योजना आयोग की इस परम्परा का भी प्रतिरोध किया जाता है कि जब कभी किसी मन्त्रालय से सम्बन्धित विषय पर आलोचको का सुझाव ह कि राष्ट्रीय विकास परिषद् और मन्त्रिमण्डल को तो राष्ट्रीय योजना सम्बन्धी प्रमुख रेखाओ और विशिष्ट सीमाओ का ही निरूपण करना चाहिए। इसके पश्चात् योजना निर्माण और विस्तृत ब्यौरा तैयार करने, प्राथमिकताओ और लक्ष्यो का निर्धारण करन, विभिन्न वैकल्पिक उपायो म से विकास की किसी विशिष्ट पद्धति का अपनाने आदि के काय पूर्णरूप से योजना आयोग पर छोड दिए जाने चाहिए, क्योकि ये तकनीकी मामले हैं। योजना आयोग के सदस्य सुविख्यात तकनीकी विशेषज्ञ होने चाहिए।[1]

मन्त्रियो की सदस्यता न होने सम्बन्धी आयोग का तक सैद्धान्तिक रूप मे अच्छा है और कुछ वर्षों पूर्व प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी सिफारिश की थी कि मन्त्रियो को आयोग का सदस्य नही बनाया जाना चाहिए। लेकिन व्यावहारिक स्थितियो का तकाजा ह कि आयोग मे मन्त्रिमण्डल को स्थान दिया जाए, क्योकि

1 वही पृष्ठ 132-33

नीतियों और निर्णयों के क्रियान्वयन का अन्तिम उत्तरदायित्व मन्त्रियों पर होता है। योजना की असफलता के लिए जनता प्रधान मन्त्री और योजना-मन्त्री को ही दोषी ठहराएगी, आयोग के विशेषज्ञों को नहीं। मन्त्रियों का जनता से निकट सम्पर्क होता है, वे जनता की आकांक्षाओं से परिचित होते हैं अत आयोग के तकनीकी विशेषज्ञों के विचारों को अपनी सलाह से अधिक व्यावहारिक और जनानुकूल बना सकते हैं। एक परामर्शदात्री संस्था में परामर्श के स्रोत जितने प्रभावशाली होंगे, निर्णय उतने ही अच्छे हो सकेंगे। हाँ, इस प्रकार के रक्षा कवच अवश्य होने चाहिए ताकि मन्त्रियों की उपस्थिति से आयोग के तकनीकी विशेषज्ञों और स्वतन्त्र सदस्यों की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका न रहे।

3. यह आलोचना की जाती है कि आयोग का आकार अनावश्यक रूप से काफी बड़ा हो गया है और इसके पदाधिकारियों, कर्मचारियों, विभिन्न समितियों और संस्थाओं में पर्याप्त मितव्ययिता किए जाने की गुंजाइश है। आयोग की कई विभागीय शाखाओं में कार्यों का स्पष्ट वर्गीकरण नहीं है और उनके कार्य एक दूसरे की परिधि में आ जाते हैं। अत प्रत्येक विभाग में विवेकीकरण किया जाना चाहिए। ... सम्भागों पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए और साधारण सम्भागों को कम की जानी चाहिए।

4. अधिकांश राज्य संसाधनों को गतिशील बनाने और उनके एकत्रीकरण के मामलों में राष्ट्रीय और दीर्घकालीन दृष्टिकोण से कार्य नहीं करते हैं। अनेक राज्य सरकारों में योजना के समन्वय सम्बन्धी प्राथमिक विचारों का भी अभाव है और योजना आयोग को दूध देने वाली गाय समझते हैं। उनमें से अधिकांश के लिए आयोग ऋण का अन्तिम नहीं प्रथम आश्रयदाता है। अब तक राज्य-सरकारें योजना आयोग से अधिक से अधिक प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रही हैं और स्वयं ने कम प्रयास किए हैं।

बहुधा ऐसे अवसर भी आते हैं जबकि योजना आयोग को राज्यों के मुख्य-मन्त्रियों को, संसाधनों के आवटन को गतिशील बनाने के सम्बन्ध में अप्रसन्न करना पड़े और ऐसा तभी हो सकता है जबकि आयोग के सदस्य गैर-राजनीतिक क्षेत्र से लिए गए हों। तृतीय योजना में कृषि पर कर द्वारा साधनों के एकत्रीकरण के बारे में एक भी बात नहीं कही गई, यद्यपि ऐसा करना नितान्त आवश्यक था। यह कहा जाता है कि आयोग ने ऐसा राजनीतिक कारणों से नहीं किया।

5. इसके अतिरिक्त पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण और क्रियान्वयन में और भी कई कमियाँ हैं। कई आलोचकों के अनुसार सरकारी नीतियों और योजना के उद्देश्यों के बीच पर्याप्त अन्तर रहता है। सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियाँ और किए गए उपाय योजना के सामाजिक न्याय-क्षेत्र को और अधिक व्यापक बनाने की योजना के उद्देश्य के विपरीत पड़ती है। यह भूमि-सुधारों को क्रियान्वित करने, निजी-क्षेत्र में कारपोरेट उपक्रम के विकास और मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियों के नियन्त्रण आदि से सम्बन्धित समस्याओं को हल करने के सरकारी विधियों के बारे

मे अधिक सही है। राज्य-सरकारो ने बहुधा योजना के क्रियान्वयन मे निर्धारित प्राथमिकताओ का अनुपालन नही किया। बहुधा विशिष्ट परियोजनाओ हेतु राज्यो को दी गई केन्द्रीय सहायता का उपयोग निश्चित उद्देश्यो के लिए नही किया गया। योजना के क्रियान्वयन से एक और कमी यह अनुभव की गई कि योजना व्यय को सम्पूर्ण योजनावधि मे समान रूप से वितरित नही किया गया। बहुधा योजना के प्रथम दो तीन वर्षो मे कार्य धीरे चलता और अन्तिम वर्षो मे निर्धारित व्यय शीघ्रता से पूरा किया जाता है। इससे सरकारो का ध्यान योजना के भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति की अपेक्षा निर्धारित राशि को योजनावधि मे व्यय करने पर अधिक केन्द्रित रहता है। परिणामस्वरूप, उतनी ही राशि व्यय करन पर भी अपेक्षाकृत कम लाभ रहता और प्रगति की दर कम रहती है। पचवर्षीय योजनाओ को एक वर्षीय कार्यक्रमो मे विभाजित करके क्रियान्वित करने के निश्चय के भी विशेष उपयोगी परिणाम सामने नही आए हैं।

6 भारतीय नियोजन मे अब तक भी प्राथमिकताओ के मूल्यांकन के लिए कोई कसौटी उदाहरणार्थ लागत-लाभ विश्लेषण (Cost benefit Analysis) आदि का व्यवहार अभी तक नही किया गया है। यह आवश्यक है कि इस प्रकार के मापदण्ड का उपयोग किया जाए, अन्यथा प्रत्येक विशेषज्ञ अपने विभाग के लिए कुछ न कुछ प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार भारतीय नियोजन सभी प्रकार की दिशाओ मे बनाई गई विभिन्न योजनाओ का सग्रह है। इसका कारण यह है कि हमारे पास परियोजनाओ के मूल्यांकन के लिए कोई उपयुक्त मापदण्ड नही है जिससे विभिन्न विकल्पो मे से कुछ विकल्पो का चयन किया जा सके। इस प्रकार, हमारे साधनो का अपव्यय होता है। उदाहरणार्थ, सामाजिक कल्याण मे बाल अपराध (Juvenile Delinquency), परित्यक्त बच्चे, भिक्षुक, वेश्याएँ, अपग व्यक्ति, तथा अन्य कई प्रकार के पहलू आते हैं और यदि हम इस सम्बन्ध मे अपने देश की अन्य देशो से तुलना करें, तो हमारे विशेषज्ञ स्वाभाविक रूप से यही कहेगे कि ये सब पहलू अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, किन्तु यदि हमारे साधन सीमित हैं तो हमे इनमे चुनाव करना पडेगा। उदाहरणार्थ, हम पहले बाल अपराधियो और परित्यक्त बच्चो पर सारी राशि व्यय कर सकते है और भिखारियो और वेश्याओ के लिए अधिक चिन्ता नही करें। यद्यपि कुछ वर्गो की इस प्रकार उपेक्षा करना एक कठोर निर्णय है, किन्तु हमे ऐसा करना ही पड़ेगा। इस प्रकार सभी क्षेत्रो मे सब कार्यक्रमो को अपनाने की अपेक्षा कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमो मे अधिकाधिक साधन लगाए जाने चाहिए अन्यथा विशेष परिणाम नही निकल पाएँगे।

7 हमारे योजना निर्माण की एक कमी यह है कि यद्यपि हमारा देश एक अत्यन्त निर्धन देश है किन्तु वित्त-मन्त्रालय और योजना आयोग के अतिरिक्त नियोजन के सभी स्तरो पर ससाधनो के उपयोग मे सयम की आवश्यकता को अनुभव नही किया गया है और ससाधनो का कई जगह अपव्यय किया गया है। हमे इस बात को अनुभव करना चाहिए कि हमारा देश विश्व के निर्धनतम देशो मे से एक है, अत

हमे देश के साधनों का अत्यन्त मितव्ययितापूर्वक कार्य करना चाहिए। साथ ही प्रबन्धात्मक प्रयत्नो (Management Efforts) मे अधिक सतर्कता की आवश्यकता है। राज्यों की सहायता देने की प्रणाली भी उचित नही कही जा सकती। प्रशासनिक सुधार आयोग ने विभिन्न प्रकार के 'अनुरूप अनुदान' (Matching Grants) और सहायता की वर्तमान पद्धति मे परिवर्तन का सुझाव दिया है। सौभाग्य से इसे राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक मे मुख्य मन्त्रियो और केन्द्रीय वित्त-मन्त्रालय ने भी स्वीकार कर लिया है। अब राज्यों को 'प्रमापीकृत योजनाओ' (Standard Schemes) से युक्त योजनाओ को बनाने की आवश्यकता नही है। वे अपनी इच्छानुसार योजनाएँ बना सकते हैं। केवल उन्हें योजना आयोग को उनके उद्देश्य बताने, और यह बताने की आवश्यकता है कि वे उन योजनाओं को किस प्रकार क्रियान्वित करेंगे ? अब राज्यों को निश्चित रूप से यह बता दिया जाएगा कि उन्हें कितनी सहायता मिलने वाली है ? उसके पश्चात् उन्हे अपने प्रयत्नो द्वारा प्राप्त राशि का अनुमान लगाना होगा और उसके अनुरूप वे अपनी योजनाएँ बना सकेंगे। अब राज्यो की योजनाओ का आधार उनके स्वयं के प्रयासो द्वारा साधनों को गतिशील बनाने पर निर्भर करेगा क्योंकि उन्हे केन्द्रीय सहायता का स्पष्ट अनुमान पहले ही प्राप्त हो जाएगा और राज्य 'Inflated Plans' प्रस्तुत नही करेंगे।

वास्तव मे इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि आयोग के गठन और योजनाओ के क्रियान्वयन मे अनेक गम्भीर दोप रहे है और राष्ट्र को इनकी कीमत चुकानी पडी है। कांग्रेस सरकार के पतन के बाद सत्तारूढ जनता पार्टी की सरकार ने योजना आयोग को नया स्वरूप दिया है और अनवरत योजना प्रणाली लागू करके सम्पूर्ण नियोजन को नई दिशा और नई गति दी है। प्राथमिकताओं और नीतियों की पुन निर्धारण के आवश्यकता को समझा गया है और यह व्यवस्था की गई है कि आगामी कुछ वर्षों मे केन्द्रीय और राज्य योजनाओ मे पूंजी निवेश प्राथमिकताओं मे पर्याप्त परिवर्तन हो तथा आर्थिक नीतियाँ नई प्राथमिकताओ के साथ समन्वित हो जाएँ। गैर-योजना पक्ष पर भी उचित धन खर्च करने पर बल दिया गया है। प्राथमिकताओं और नीतियो के पुन.निर्धारण-विषय पर एक पिछले अध्याय मे काफी कुछ लिखा जा चुका है। नए आयोजन मे समन्वित ग्रामीण विकास की नई नीति अपनाई गई है। सन् 1978–83 की छठी योजना मे इस बात का ध्यान रखा गया है कि बेरोजगारी और गरीबी पर सीधा प्रहार किया जाए तथा जन-सामान्य की बुनियादी आवश्यकताओ को सुनिश्चित किया जाए। नई योजना की प्रमुख विशेषताओ मे एक यह है कि योजना का लक्ष्य रोजगार के अवसरों मे पाँच प्रतिशत वार्षिक की दर से वृद्धि करना है। इससे योजना अवधि मे बढी हुई श्रम शक्ति को काम दिया जा सकेगा और पहले के बेरोजगारों को भी काफी सीमा तक रोजगार मिल सकेगा। कृषि विकास से, जिसकी लगभग 4 प्रतिशत विकास दर का लक्ष्य रखा गया है, लगभग आधे रोजगार के अवसर पैदा हो सकेंगे। रोजगार के आधे अवसर लघु उद्योग, संगठित क्षेत्र और सेवाओं मे पैदा होंगे। राष्ट्रीय विकास

परिषद् की 19–20 मार्च, 1978 की बैठक मे अधिकांश राज्यो के मुख्य मन्त्रियो ने योजना के पुनर्निर्धारण का स्वागत किया।

परिषद् के समापन सत्र को सम्बोधित करते हुए प्रधान मन्त्री श्री मोरारजी देसाई ने कहा कि अनवरत योजना की विचारधारा से आयोजना प्रणाली मजबूत हुई है और इससे यह भी सुनिश्चित हो गया है कि योजना के कार्यान्वयन मे कोई कठिनाई नही होगी। उन्होने कहा कि राज्यो के मुख्य मन्त्रियो को इस नई विचारधारा के बारे मे उन्होने पत्र लिखकर यह बताया है कि अनवरत योजना मे योजना को लागू करने के साथ-साथ इसमे हुई प्रगति का मूल्यांकन किया जा सकता है और गलतियों को सुधारा भी जा सकता है। प्रधान मन्त्री ने कहा कि विकास के प्रश्न को राष्ट्रीय सन्दर्भ मे देखा जाना चाहिए और हमे अपने स्थानीय हितो को आवश्यकता से अधिक महत्व नही देना चाहिए क्योकि उसी अवस्था मे हम उल्लेखनीय प्रगति कर सकते हैं। हमारे राजनीतिक मतभेद कितने ही क्यो न हो लेकिन हम सबको एक साथ मिलकर काम करना चाहिए। उन्होंने कहा कि राज्य का हित राष्ट्रीय हित मे शामिल है, लेकिन यदि हम केवल राज्य के ही हितो को देखे तो यह ठीक नही होगा। श्री देसाई ने कहा कि कुछ राज्य अन्य राज्यो की अपेक्षा अधिक उन्नत हो सकते हैं, लेकिन ऐसा केवल तुलनात्मक दृष्टि से ही होता है। कोई भी ऐसा राज्य नही है, जिसमे बेरोजगारी न हो या वहाँ गरीब लोग न रहते हो। लेकिन कुछ राज्य ऐतिहासिक या अन्य कुछ कारणों से ही दूसरे राज्यो की अपेक्षा अधिक प्रगति कर पाए हैं। यह हमारा काम है कि हम यह देखें कि सभी राज्यो का विकास हो। राज्य भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, लेकिन हमे यह नही भूलना चाहिए कि भारत की जनता एक है। इस देश मे अनन्त विभिन्नताएँ हैं और यह सोचना न्याय सगत नही होगा कि सभी लोग एक जैसे होंगे। लेकिन हरेक को सन्तोष होना चाहिए। अधिक विकसित राज्यो का यह प्रयास होना चाहिए कि वे दूसरे राज्यो की मदद करें। विकास के लिए हम सभी को प्रयास करना चाहिए। केवल बाहरी मदद काफी नही होगी।[1]

1 भारत सरकार प्रेस विज्ञप्ति, दिनांक 19 मार्च, 1978

10 भारत में गरीबी और असमानता

(POVERTY AND INEQUALITY IN INDIA)

भारत मे गरीबी और असमानता इस हद तक व्याप्त है कि विश्व के आर्थिक रंगमंच पर भारत की भूमिका के महत्त्व की बात करना हास्यास्पद लगता है। आर्थिक आँकडे, देशवासियो का जीवन-स्तर, आर्थिक विषमताओ की गहरी खाई, गरीबी के मुँह बोलते चिह्न इस बात की स्पष्ट झलक देते हैं कि भारत विश्व का एक अत्यधिक गरीब देश है। भारत मे गरीबी की व्यापकता और भयावहता का अनुमान सरकार के 'गरीबी हटाओ' के नारे से भी व्यक्त होता है। देश की पाँचवी पंचवर्षीय योजना का मूल उद्देश्य ही गरीबी और असमानता पर प्रहार करना तथा देश को आत्म-निर्भरता के स्तर पर पहुँचाना रखा गया था। योजना-प्रारूप में यह निश्चय व्यक्त किया गया था कि अति-भयावह निर्धनता अथवा गरीबी का जीवन-यापन करने वाले व्यक्तियो के जीवन-स्तर को एक न्यूनतम स्तर पर लाया जाएगा। जनता सरकार के नए आयोजन मे भी गरीबी और असमानता को हटाना सर्व प्रधान माना गया है।

भारत मे गरीबी और विषमता की एक झलक

विश्व-बैंक द्वारा प्रकाशित सूचना के अनुसार, विश्व के लगभग 122 देशो मे प्रति व्यक्ति आय के सम्बन्ध मे भारत का स्थान 102वाँ है। हमारे देश मे प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय 825 रु है और विगत दस वर्षों मे देश के आर्थिक विकास मे मात्र 1·2% प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई है।[1] एक अन्य अध्ययन के अनुसार विश्व मे 25 देश ऐसे हैं, जो बहुत ही गरीबी की स्थिति मे हैं और इन देशो मे भारत का स्थान प्रमुख है। इन गरीब देशो मे उद्योगों का राष्ट्रीय आय में अंशदान 10% से भी कम है तथा 15 साल से बडी उम्र की 20% से भी अधिक जनसख्या अशिक्षित है। संयुक्तराष्ट्र के अनुसार इन देशों के 20% व्यक्तियो को पूरा भोजन नही मिलता और 60% लोगो को अपौष्टिक भोजन प्राप्त होता है। प्रतिवर्ष 30 लाख टन प्रोटीन

1. डॉ. रामधन राय, निदेशक भारतीय सामाजिक अनुसन्धान परिषद् का लेख 'देश के जिले और विकास के आयाम'—साप्ताहिक हिन्दुस्तान 23 दिसम्बर, 1973, पृष्ठ 13.

वाले औद्योगिक राष्ट्र इन देशो मे खाद्यान्न भेजते हैं।[1] भारत, जो गरीब देशो मे प्रमुख है, विश्व की 15% जनसख्या का उसके 1/7 क्षेत्रफल मे भरण-पोषण कर रहा है, किन्तु राष्ट्रीय उत्पादन की दृष्टि से विश्व के 122 देशो मे उसका स्थान 95वाँ तथा एशिया के 40 देशो मे 30वाँ है। भारत की 4 5 करोड़ जनता किसी न किसी रूप मे बेरोजगार है। 38 करोड 60 लाख व्यक्ति निरक्षर हैं। प्रत्येक भारतीय लगभग 1,314 रु के विदेशी-ऋणभार से दबा हुआ है।[2] रुपये की क्रय-शक्ति मई, 1974 मे, मात्र 33 9 पैसे (आधार 1959 वर्ष) थी।[3] देश के लगभग 22 करोड व्यक्ति अत्यन्त गरीबीपूर्ण जीवन बिता रहे हैं। देश मे आर्थिक विषमता चौंका देने वाली है। जहाँ एक ओर गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ है और वैभव अठखेलियाँ करता है वहीं दूसरी ओर व्यक्तियों के पास रहने को झोपडी भी नहीं है। वे सडक पर ही जन्म लेते हैं, सडक पर ही पलते हैं और सडक पर ही मर जाते हैं।

(क) दाँडेकर एव नीलकण्ठ रथ का अध्ययन

दाँडेकर एव रथ ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'भारत मे गरीबी' मे देश की निर्धनता (1960-61 की स्थिति) का चित्र खीचा है और यह चित्र वर्तमान स्थिति मे भी बहुत कुछ सही उतरता है। इसके अनुसार, देश की निर्धनता ही देश की गरीबी का प्रमुख कारण है। ससार के सभी देशो मे भारत अत्यन्त निर्धन देश है। अफ्रीका, दक्षिणी-अमेरिका तथा एशिया के अनेक अविकसित देशो की अपेक्षा भी भारत गरीब है। निर्धनता मे भारत की बराबरी केवल दो ही देश—पाकिस्तान और इण्डोनेशिया कर सकते हैं। यदि इस गरीबी को आँकडो मे स्पष्ट करना हो तो लोगो का जीवन-स्तर देखना होगा। सन् 1960-61 मे देश का औसत जीवन-स्तर अर्थात् प्रति व्यक्ति वार्षिक निर्वाह-व्यय लगभग केवल 275 से 280 रुपयो तक ही था। अर्थात् प्रतिदिन औसतन 75-76 पैसो मे लोग जीवन-यापन करते थे। इस औसत को ग्रामीण एव शहरी भागो के लिए भिन्न-भिन्न करके बताना हो तो यह कहा जा सकता है कि देहाती भाग मे प्रति व्यक्ति वार्षिक निर्वाह-व्यय लगभग 260 रुपये था, वार्षिक तौर पर देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि शहरी भाग का जीवन-स्तर ग्रामीण भाग के जीवन-स्तर की अपेक्षा लगभग 40% अधिक था। परन्तु जीवनोपयोगी वस्तुओ के मूल्यो मे ग्रामीण एव शहरी भागो मे विद्यमान अन्तर को ध्यान में रखा जाए तो दोनो विभागो का औसत जीवन-स्तर लगभग समान हो जाता है। सक्षेप मे सन् 1960-61 मे ग्रामीण जनता प्रतिदिन लगभग 75 पैसो मे और शहरी जनता लगभग 1 रुपये मे जीवन-यापन करती थी।

"समाज मे विद्यमान असमानताओ को ध्यान मे रखा जाए तो स्पष्ट है कि आधे से अधिक व्यक्ति औसत से नीचे होंगे बल्कि लगभग 2/3 व्यक्ति औसत से नीचे

1. डी आर. वर्मा—'समाजवादी समाज की स्थापना के लिए गरीबी हटाना आवश्यक' योजना 22 मार्च 1973, पृष्ठ 21.
2. वही, पृष्ठ 21.
3. केन्द्रीय भूतपूर्व वित्त मन्त्री श्री चह्वाण की सूचना—हिन्दुस्तान, 27 जुलाई 1974.

थे। अर्थात् ग्रामीण भाग मे दो तिहाई व्यक्तियों का दैनिक खर्च 75 पैसों से भी कम था और शहरी भाग में दो तिहाई लोगो का दैनिक व्यय एक रुपये से भी कम था। इनमे से अनेक व्यक्तियो का दैनिक व्यय इस औसत से बहुत ही कम था। संक्षेप मे 40 प्रतिशत ग्रामीण जनता प्रतिदिन 50 पैसो से भी कम खर्च में जीवन-यापन करती थी। इसमे घर का अनाज या अन्य कृषि-उपज, दूध वगैरह का जो प्रयोग घर मे किया जाता है उसका बाजार मूल्य शामिल है। शहरी भाग मे 50 प्रतिशत जनता प्रतिदिन 75 पैसो से भी कम खर्च मे निर्वाह चलाती थी। दोनो भागों के बाजार-मूल्यों के अन्तर को ध्यान में रखा जाए तो ग्रामीण भाग के 60 पैसे और शहरी भाग के 75 पैसे लगभग समान थे।"

इस गरीबी का जिन लोगो को प्रत्यक्ष अनुभव नही है, उन्हे इन आँकडो पर सहसा विश्वास नही होगा। स्वर्गीय डॉ राममनोहर लोहिया ने कुछ वर्ष पूर्व लोकसभा में यह कह कर सनसनी उत्पन्न कर दी थी कि भारतीय ग्रामीण की औसत आय 19 पैसे प्रतिदिन है। जैसा होना चाहिए था सरकारी स्तर पर इसका प्रतिवाद किया गया। परन्तु कुछ समय पश्चात् सरकारी स्तर पर भी यह माना गया कि भारतीय ग्रामीण की औसत आय 37 पैसे प्रतिदिन है, और यह माना जा सकता है कि सरकारी आँकडो और वास्तविक आँकडों मे कितना अन्तर होता है।[1] दाडकर एव रथ की टिप्पणी है कि "अनेक व्यक्तियो को इसका विश्वास ही नही होता था और अब भी अनेक लोग इसकी सच्चाई मे सन्देह करते हैं। परन्तु देश की गरीबी का यह सच्चा स्वरूप है, इन आँकडो मे पैसे-दो पैसो का अन्तर पड सकता है। प्रतिशत मे एक-दो अकों का अन्तर हो सकता है किन्तु स्थूल रूप मे यह आँकडे तथ्य-प्रदर्शक है।"[2]

"प्रश्न उठता है कि इतने से खर्च मे ये लोग कैसे निर्वाह करते हैं? एक दृष्टि से इस प्रश्न का उत्तर बडा सरल है। इन लोगों के सामने यह सवाल कभी खड़ा नहीं होता कि पैसो का क्या किया जाए? शरीर की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने मे ही उनका सारा पैसा खर्च हो जाता है। उदाहरणार्थ सन् 1960-61 के मूल्यो को ध्यान मे रखा जाए तो ग्रामीण भाग मे प्रति व्यक्ति 50 पैसों मे निर्वाह करना हो तो 55 से 60 प्रतिशत खर्च केवल गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा आदि खाद्यान्नों पर, 20 से 25 प्रतिशत तेल, नमक, मिर्च, चीनी, गुड आदि खाद्य वस्तुओं पर, और 7 से 3 प्रतिशत ईंधन, दीया-बत्ती आदि पर करना पड़ता है अर्थात् कुल निर्वाह व्यय का 35 प्रतिशत भाग केवल जीवित रहने पर ही व्यय होता है। उसमे यह सोचने के लिए अवसर ही नही होता कि क्या खरीदा जाए और कौन-सी वस्तु न ली जाए। शेष 15 प्रतिशत मे कपड़ा, साबुन, तेल, पान, तम्बाकू, दवा-दारू आदि का खर्च चलाना पड़ता है। उसी मे कुछ कमी-बेसी हो सकती है।"[3]

1. डॉ. रामाश्रय राय : वही, पृष्ठ 13.
2. दाडेकर एव रथ : वही, पृष्ठ 2.
3. वही, पृष्ठ 3.

दाडेकर एव रथ ने अपने अध्ययन से निष्कर्ष निकाला है कि "1960-61 मे उस समय के मूल्यो को ध्यान मे रखा जाए तो ग्रामीण भाग मे न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए प्रतिदिन 50 पैसे या वार्षिक 180 रु लगते थे और इस हिसाब से सन् 1960-61 मे देश की 40 प्रतिशत जनता गरीब थी। इन लोगों को साल भर में दो जून भोजन नही मिलता था अर्थात् उनका विश्वास नही था। शहरी भाग से जीवनोपयोगी वस्तुओ के मूल्यो को ध्यान मे रखा जाए तो वहाँ प्रतिदिन 75 पैसे या वार्षिक 240 रुपये लगते थे। शहरी जनता मे से 50 प्रतिशत व्यक्तियो को वे उपलब्ध नही थे। सक्षेप मे गरीबी की इस न्यूनतम परिभाषा के अनुसार भी सन् 1960-61 मे अर्थात् स्वाधीनता-प्राप्ति के 10-12 वर्ष बाद और आर्थिक विकास की पचवर्षीय योजनाओ के पूरा हो जाने के बाद भी देश की 40 प्रतिशत देहाती जनता और 50 प्रतिशत शहरी जनता गरीब थी। इन सभी व्यक्तियो का हिसाब लगाया जाए तो उनकी सख्या 18 करोड से अधिक हो जाती है। सन् 1960 61 में देश के लगभग 43 करोड लोगो मे से 18 करोड लोग गरीब थे, अर्थात् भूखे थे।"[1]

"गरीबी की यह मात्रा देश के सभी भागो मे न समान थी और न है। साधारणतया उत्तरी भारत मे अर्थात् पजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश, गुजरात आदि राज्यो मे गरीबी कम है। इस प्रदेश की देहाती जनता मे गरीबी की मात्रा 20-25% से अधिक नहीं है। इसके विपरीत दक्षिणी भारत मे अर्थात् तमिलनाडु, केरल, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र आदि राज्यो की देहाती जनता मे गरीबी की मात्रा 50-60% या उससे भी अधिक है। पूर्वी-भारत मे अर्थात् बिहार, उडीसा पश्चिमी बगाल असम आदि राज्यो मे भी देहाती जनता मे गरीबी की मात्रा 40-50% है। देहाती व्यक्तियो मे से अधिकतर व्यक्ति रोटी की तलाश मे शहरो की ओर आते हैं, इसलिए भारत के विभिन्न प्रदेशो मे शहरी जनता मे गरीबी की मात्रा भी उसके अनुसार कम या अधिक है।"

"रोटी की आशा मे यही गरीबी जब शहरो मे पहुँच जाती है तब उसका स्वरूप घृणित हो जाता है। गन्दी बस्तियो या फुटपाथ पर बैठकर सामने की आलीशान इमारतो की तडक भडक देखते हुए, वहाँ के विलासी-जीवन के सुरो का सुनते हुए, इससे पैदा होने वाली लालसा एव ईर्ष्या को दबाते हुए या उसका शिकार बन कर यह गरीबी बुरे मार्ग पर चलने लगती है।"

"सन् 1960 61 मे, अर्थात् योजनाबद्ध विकास की दो पचवर्षीय योजनाओ के पूरे हो जाने के पश्चात् भी देश की 40% देहाती और 50% शहरी जनता इस न्यूनतम जीवन-स्तर की यन्त्रणा मे फँसी हुई थी।"[2]

सन् 1960-61 की स्थिति का चित्रण करने के उपरान्त दाडेकर और रथ ने आगामी दस वर्षों के आर्थिक विकास पर दृष्टि डाली है और बताया है कि "1960-61

1. वही, पृष्ठ 3
2. वही, पृष्ठ 4

"गरीबी की व्यापकता का यह एक बहुत ही दुखदायी तथ्य है कि 1960-61 मे ग्रामीण क्षेत्र के लगभग 2 27 करोड व्यक्तियो मे प्रति व्यक्ति मासिक व्यय 8 रु से भी कम था अर्थात् 27 पैसे प्रतिदिन से भी कम। यदि हम पाँचवी पचवर्षीय योजना की रूपरेखा मे निर्धारित गरीबी के न्यूनतम उपभोक्ता व्यय (सन् 1960-61 के मूल्यो के अनुसार 20 रु प्रतिमास और अक्तूबर, 1972 के मूल्यो के अनुसार लगभग 40 रु) को यहाँ लागू करें तो विदित होगा कि सन् 1960 61 मे ग्रामीण क्षेत्र के 22 49 करोड व्यक्ति अथवा लगभग 63% जनसख्या उस स्तर से भी नीचे का जीवन-यापन कर रही थी। शहरी क्षेत्र का भी यही हाल था, किन्तु उनकी स्थिति उतनी बदतर नही थी। सन् 1960-61 मे 8 रु प्रतिमाह तक अर्थात् 27 पैसे प्रतिदिन से भी कम खर्च करने वाले व्यक्तियो की सख्या वहाँ 17 लाख अथवा 2 20 प्रतिशत थी। इसे भी यदि गरीबी की परिभाषा के उसी परिप्रेक्ष्य मे देखे तो विदित होगा कि शहरी क्षेत्र की लगभग 44% जनसख्या निम्न-स्तर पर अपना गुजारा कर रही थी। उन व्यक्तियो को जो जनसख्या के इन गरीब वर्गों तथा ग्रामीण क्षेत्र के लगभग 63% और शहरी क्षेत्र के 44% से अछूते है, उन्हे यह अत्यन्त आश्चर्यजनक व कल्पनातीत लगेगा कि ये अत्यधिक गरीब लोग इस स्तर पर किस प्रकार अपना जीवन-यापन कर रहे होगे। इसीलिए जब कोई व्यक्ति गरीबी के ये तथ्य जनता के सामने उजागर करता है तो कुछ व्यक्ति स्तब्ध रह जाते है और सम्यक् दृष्टि से उस पर अपना रोष प्रकट करते हैं तथा कुछ लोग तो इस पर विश्वास ही नही कर पाते। फिर भी, इस देश मे इस प्रकार गरीबी एक भयावह सत्य है।"[1]

(ग) डॉ रामाश्रय राय का आर्थिक विषमता पर अध्ययन

देश मे व्याप्त आर्थिक विषमता का बडा विद्वतापूर्ण अध्ययन डॉ रामाश्रय राय (निदेशक, भारतीय सामाजिक अनुसधान परिषद्) ने साप्ताहिक हिन्दुस्तान दिनाँक 23 सितम्बर, 1973 म प्रकाशित अपने लेख 'देश के जिले और विकास के आयाम' मे प्रस्तुत किया है। इस अध्ययन के कुछ मुख्य उद्धरण नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

1 समाज के विभिन्न वर्गों, देश की भौगोलिक इकाइयों मे सुलभ आर्थिक साधनों एव सुविधाओं के वितरण के ढग मे यह विषमता ठीक प्रकार परिलक्षित होती है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि भारतीय जनता का जीवन-स्तर बहुत ही निम्न है। जहाँ अमेरिका मे प्रति व्यक्ति आय का औसत 6000 डॉलर (लगभग 43,000 रु) है, वहाँ हमारे देश मे मात्र 100 डॉलर (लगभग 625 रु) है। ऐसी विकटता की स्थिति मे यदि प्राप्य साधनो के वितरण मे विषमता हो तो स्थिति कितनी शोचनीय हो जाएगी, इसकी कल्पना मात्र से सिहरन उत्पन्न हो जाएगी।

साधनो के वितरण की विषमता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि सन् 1960-61 के मूल्यो के आधार पर ग्रामीण क्षेत्रो मे प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति

1 एस एम. दिटवे वही, पृष्ठ 19-20

औसत उपभोक्ता व्यय केवल 258·5 रु मात्र था और सन् 1967-68 तक इसमे मात्र 10 रु की वृद्धि हुई जबकि तृतीय पंचवर्षीय योजना तथा उसके पश्चात् दो वार्षिक योजनाओ मे कुल मिलाकर लगभग 15,000 करोड रु देश के विकास पर व्यय किए गए। अर्थात् प्रति व्यक्ति औसतन 300 रु व्यय किए गए। अत स्पष्ट है कि विकास का लाभ सम्पन्न वर्ग ने उठाया। इसका एक ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जिनकी आय की मात्रा जितनी अधिक है उनको विकास-स्वरूप प्राप्त लाभ मे से उतना ही अधिक अश प्राप्त होता है।

2. आर्थिक साधनो एव सुविधाओ के विकास के साथ-साथ धनहीन एवं धनी वर्ग के अन्तराल मे वृद्धि हुई है। ऐसी बात नही कि यह विषमता ग्रामीण क्षेत्रो तक ही सीमित हो। शहरी क्षेत्रो मे भी इस अन्तराल मे व्यापक वृद्धि हुई है। एक ओर जहाँ आलीशान कोठियो का निर्माण हुआ है, जहाँ एक वर्ग अत्यधिक आधुनिक एवं सम्पन्न नजर आ रहा है वहाँ भूखे पेट या आधा पेट खा कर सोने वालो की संख्या में भी आशातीत वृद्धि हुई है।

3 यदि भौगोलिक इकाइयो के सम्बन्ध मे विषमता को लें तो भी बडे रोचक तथ्य सामने आते हैं। देश के सभी राज्यो मे लगभग 350 जिले है। इनमे 303 जिलो मे किए गए सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि केवल 130 जिले ही ऐसे है जिन्हे औद्योगिक एव विकास की दृष्टि से शीर्षस्थ माना जा सकता है। कुल 134 जिले ऐसे हैं, जिन्हे कृषि-विकास की दृष्टि से उच्चकोटि का माना जा सकता है। औद्योगिक एवं कृषि-क्षेत्र मे विकास की दृष्टि से सम्पन्न जिलो की संख्या मात्र 53 है और औद्योगिक दृष्टि से मध्यम किन्तु कृषि-विकास की दृष्टि से उच्चकोटि मे रखे जाने वाले जिलों की संख्या केवल 86 है।

अत स्पष्ट है कि कृषि-विकास की प्रक्रिया केवल उन्ही जिलो मे चल पाती है, जिनमे औद्योगिक विकास द्वारा कृषि-विकास मे सहायक ढाँचे का निर्माण हो चुका है अर्थात् औद्योगिक दृष्टि से विकसित जिलो मे ही कृषि-विकास का कार्य होता है। कुछ ऐसे भी जिले हैं जो औद्योगिक दृष्टि से कम विकसित हैं परन्तु कृषि-क्षेत्र में काफी विकसित है। लेकिन ऐसे जिले केवल वही है, जिनके निकटवर्ती जिलों मे औद्योगिक एव कृषि विकास हो चुका है और वे निकटवर्ती होने का लाभ उठा रहे है। जो जिले आरम्भ से ही आर्थिक विकास की दृष्टि से पिछड़े हुए थे उनमे पिछली दोनो दशाब्दियों मे विकास-कम या तो आरम्भ ही नही किए गए या बहुत कम किए जा सके हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विषमता आर्थिक क्षेत्र मे ही नही, भौगोलिक क्षेत्र मे भी व्यापक रूप से व्याप्त है।

4 हम एक अन्य तरीके से भी इस विषमता को मान लें कि हम इन 303 जिलो को 6 वर्गों में बाँट लें और प्रत्येक वर्ग का 6 विशेषताओ के आधार पर अध्ययन करें। ये 6 वर्ग हो सकते है—औद्योगिक विकास, आयुस्तरण, कृषि-विकास, धार्मिक विविधता एवं आर्थिक हीनता, अचल जनसंख्या तथा सामाजिक पिछड़ापन। यो चाहे तो अन्य वर्ग भी हो सकते है।

प्रथम वर्ग में 58 जिले हैं जिनमे औद्योगिक विकास नाममात्र को भी नही हुआ और कृषि-विकास के नाम पर भी इन 58 मे से केवल 18 जिलो ने थोडी-बहुत प्रगति की है। आयुस्तरण की दृष्टि से श्रम-कार्य हेतु मानव शक्ति का अभाव है, और जो मानव-शक्ति सुलभ है, वह केवल जिले मे ही रोजगार खोजती है। जिले के बाहर जाना उसके स्वभाव के विरुद्ध है। सामाजिक दृष्टि से इन जिलो के निवासी एकलय है।

द्वितीय वर्ग मे 54 जिले है। जिनमे औद्योगिक विकास तो काफी हुआ है, परन्तु कृषि-विकास के नाम पर थोडा-बहुत ही कार्य हो पाया है। मानव-सम्पदा भी कम है। फिर इनमे से 40% जिलो की श्रम-शक्ति कार्य की खोज मे अन्यत्र चली जाती है। सामाजिक दृष्टि से पर्याप्त मात्रा मे धार्मिक विविधता विद्यमान है और जिलो मे समाज के पिछडे वर्गो की सख्या अधिक है।

तृतीय वर्ग मे 68 जिले हैं, जो कृषि-क्षेत्र मे काफी विकसित हैं। इनमे से 30 जिले ऐसे हैं, जो औद्योगिक विकास की दृष्टि से बहुत पिछडे हुए हैं। यहाँ श्रम-शक्ति पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध है। केवल 4 जिलो को छोड कर शेष जिलो के श्रमिक अपने जिलो से अन्य कहीं नहीं जाते। सामाजिक दृष्टि से 23 जिलो मे धार्मिक विविधता पाई जाती है और 53 जिलो म पिछडे वर्ग के व्यक्ति अधिक सख्या मे हैं।

चतुर्थ वर्ग मे 45 जिले है। यह औद्योगिक विकास की दृष्टि में उन्नत हैं, परन्तु 18 जिल कृषि-विकास मे पिछडे हुए हैं। 11 जिले ऐसे हैं जहाँ श्रम-शक्ति का अभाव है, फिर भी आधे से अधिक जिलो मे श्रमिक कार्य की खोज मे इधर-उधर चले जाते हैं। सामाजिक दृष्टि से धार्मिक विविधता बहुत अधिक पाई जाती है और 19 जिलो मे पिछडे वर्गो की जनसख्या अधिक है।

पाँचवी श्रेणी के 45 जिलो मे से 11 जिले औद्योगिक विकास की दृष्टि से तथा 5 जिले कृषि-विकास की दृष्टि से पिछडे हुए है। इस श्रेणी के अधिकतर जिलो मे श्रम-शक्ति प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है और 13 जिलो के केवल थोडे से श्रमिक आजीविका की खोज मे इधर-उधर जाते हैं। सामाजिक दृष्टि से 42 जिलो मे धार्मिक विविधता बहुत अधिक है और 29 जिलो मे पिछडे वर्गों की सख्या काफी है।

अन्तिम वर्ग मे 33 जिले आते हैं। इन सभी जिलो ने औद्योगिक दृष्टि से काफी प्रगति की है। कृषि-विकास मे भी केवल 2 जिले ही पीछे हैं। श्रम शक्ति भी सभी जिलो मे प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है, लेकिन आर्थिक विकास के बावजूद श्रमिक आजीविका के लिए अन्य क्षेत्रो मे जाते रहते हैं। केवल 8 जिलो मे धार्मिक विविधता अधिक है और 26 जिलो मे पिछडे वर्गो की सख्या अधिक है।

आर्थिक असमानता यहाँ तक बढ गई है कि सरकारी क्षेत्र मे इस बात पर पर चिन्ता प्रकट की जाती है कि देश के गिने-चुने हाथो मे आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण होता जा रहा है। अत्यन्त अल्प-सख्यक वर्ग उत्पादन के यन्त्रो पर एकाधिकार रखे हुए है तथा एकाधिकारी-पूंजी का तीव्र विकास होता जा रहा है। नियोजन का एक मूलभूत उद्देश्य देश मे व्याप्त आर्थिक विषमताओं को अधिकाधिक कम करके

समाजवादी ढग से समाज की स्थापना की ओर आगे बढना है। हमारे देश मे एक ओर तो कुछ प्रतिशत लोग वैभव का जीवन बिता रहे हैं तो दूसरी ओर जनता का अधिकांश भाग अभाव की छाया मे पल रहा है। न उन्हे भोजन की निश्चिन्तता है और न आवास की। खाने और तन ढकने की सुविधा भी देश के करोड़ लोगों को ढग से उपलब्ध नही है। लाखो लोग "फुट-पाथो पर पैदा होते हैं, पनपते हैं, मुर्झाते, मर जाते हैं।"[1]

(घ) भारतीय व्यापार एवं उद्योग मण्डलों के महासघ द्वारा किया गया अध्ययन

भारतीय व्यापार एव उद्योग मण्डलों के महासघ ने जो अध्ययन किया तदनुसार आँकड़ो का जादू कुछ भिन्न बैठता है। इस अध्ययन का सारांश 16 अक्तूबर, 1972 के दैनिक हिन्दुस्तान मे निम्नानुसार प्रकाशित हुआ था—

देश मे दस व्यक्तियो मे से चार से अधिक व्यक्ति गरीबी की निर्धारित सामान्य सीमा से भी नीचे हैं। वे प्रतिमास देहात के लिए अपेक्षित राष्ट्रीय न्यूनतम राशि 27 रुपए प्रति मास और शहरो के लिए 40 5 रुपये प्रतिमास से भी कम व्यय करते है। सन् 1969 के अन्त मे कुल 52 करोड 95 लाख की जनसख्या मे 21 करोड 83 लाख व्यक्ति अर्थात् 14 2% गरीबी की निर्धारित सीमा से नीचे हैं।

सख्या की दृष्टि से उत्तर प्रदेश और बिहार मे सर्वाधिक गरीब व्यक्ति हैं। उत्तर प्रदेश मे 3 करोड़ 86 लाख व्यक्ति गरीब हैं। देश के गरीबो का 30% इन दोनो राज्यो मे रहता है। परन्तु प्रतिशत की दृष्टि से सर्वाधिक गरीब लोग उड़ीसा मे हैं। वहाँ 64 7% व्यक्ति गरीबी की निर्धारित सीमा से नीचे हैं। इसके पश्चात् अरुणाचल प्रदेश का स्थान है। वहाँ 57 4 प्रतिशत व्यक्ति गरीबी की सीमा से नीचे है। नागालैण्ड मे 52 9% व्यक्ति गरीबी की सीमा से नीचे है। दस अन्य राज्यो मे गरीबी की सीमा से नीचे वाले व्यक्तियो का प्रतिशत 40 से 50 के बीच है। अन्य राज्यो का प्रतिशत इस प्रकार है—आन्ध्रप्रदेश 42 9, असम 40 6, बिहार 49·4, जम्मू व कश्मीर 44 6, मध्य प्रदेश 44 9, मणिपुर 42·7 मैसूर (कर्नाटक) 41 3, राजस्थान 45 6, उत्तर प्रदेश 44 8 और तमिलनाडु 40 4। राजधानी दिल्ली मे गरीबी का प्रतिशत सबसे कम अर्थात् 12 2% है। गोआ, दमन और दीव का प्रतिशत 14 8 है। प्रति व्यक्ति वार्षिक आय दिल्ली मे सर्वाधिक 1,185 रुपये, और गोआ, दमन व दीव मे 1,13 रुपये है जबकि सम्पूर्ण देश की औसत प्रति व्यक्ति आय 589 रुपये है। पजाब व हरियाणा मे प्रति व्यक्ति औसत आय क्रमशः 1,002 रुपये और 903 रुपये है जबकि वहाँ गरीबी की सीमा के नीचे अपेक्षाकृत कम लोग अर्थात् 20·8% हैं।

1. सी. एस. चन्द्रशेखर (सयुक्त मुख्य नगर नियोजक, सेन्ट्रल टाउन एण्ड कन्ट्री प्लानिंग आर्गेनाइजेशन) से वार्ता पर आधारित लेख के अनुसार—प्रस्तुतकर्ता पुष्पेश पत—साप्ताहिक-हिन्दुस्तान, दिनांक 23 सितम्बर, 1973, पृष्ठ 33.

अन्य राज्यों के आँकड़े इस प्रकार हैं—

राज्य	प्रति व्यक्ति वार्षिक आय (रुपये)	गरीबी की सीमा (प्रतिशत में)
गुजरात	746	33 ।
हिमाचल प्रदेश	725	34·1
केरल	645	37 9
महाराष्ट्र	739	33·5
त्रिपुरा	680	36 0
पश्चिम बगाल	705	34 9
अण्डमान व निकोबार द्वीप	800	30 5
दादरा व नगर हवेली	792	30 7
चण्डीगढ	812	29 8
लक्षद्वीप द्वीप	746	32 9
पाण्डिचेरी	770	31·8

(ड) भारत में गरीबी और असमानता पर श्री वर्मा का अध्ययन

भारत मे गरीबी और असमानता का एक विशिष्ट और सन्तुलित अध्ययन श्री बाबूलाल वर्मा के लेख 'हमारी अर्थ-व्यवस्था' मे मिलता है। यह अध्ययन श्री वर्मा ने तब किया था जब फरवरी, 1977 मे वे जेल मे थे। जनता सरकार बनने पर वे उत्तर प्रदेश के क्षेत्रीय विकास उपमन्त्री बने। देश मे गरीबी व असमानता पर श्री वर्मा के लेख के मुख्य अंश इस प्रकार हैं—

गरीबी कितनी हटी ?—सन् 1966 के पूर्व गरीबी से नीचे के स्तर पर जीने वाले मजदूरो की सख्या 40 प्रतिशत थी, जो सन् 1975 के आते-आते 66 प्रतिशत हो गई। दूसरे शब्दो मे, श्रीमती इन्दिरा गाँधी के कार्यकाल मे 26% की वृद्धि उन लोगों की सख्या मे हुई जिनका जीवन स्तर गरीबी की सीमा रेखा से नीचे है और जिन्हे दो जून भरपेट भोजन भी नही जुट पाता। गरीबी की सीमा रेखा से नीचे उन्हे रखा जाता है जिनकी प्रति माह आय 15 से 18 रु तक होती है। इसका अर्थ हुआ कि करीब 40करोड लोगो की आय 15रु प्रतिमास के आसपास है। भारत की बढती गरीबी के सम्बन्ध मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सघ के महानिदेशक ने लिखा है कि हिन्दुस्तान की 66·9 प्रतिशत जनसख्या गम्भीर रूप से गरीब है। यह गरीबी बराबर बढती जा रही है। भारत विश्व के 16 गम्भीरतम गरीब देशो मे एक है।

कुवैत मॉरिशस, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, कैनाडा आदि मे 3 से 5 व्यक्तियो के पीछे 1 मोटरकार है, जबकि भारत मे 60 व्यक्तियो के पीछे 1 साइकिल आती है। समान परिस्थितियो वाला चीन सन् 1948 मे भारत के बाद स्वाधीन हुआ, आज उसकी आबादी 78 करोड है। परन्तु उसकी राष्ट्रीय आय प्रति व्यक्ति 270 डॉलर प्रति वर्ष है जबकि भारत की राष्ट्रीय आय प्रति व्यक्ति 120 डॉलर वार्षिक है। अग्रांकित तालिकाओं से स्पष्ट है कि भारत विश्व मे कहाँ खड़ा है—

देश	डॉलर
1. कुवैत	12,050
2. यूनाइटेड अरब	11,630
3. अमरिका	6,200
4. क्यूबा	6,040
5. स्विट्जरलैण्ड	6,010
6. स्वीडन	6,900
7. कनाडा	5,450
8. प. जर्मनी	5,320
9. डनमार्क	5,210 .
10. पूर्वी जर्मनी	3,000
11. चेकोस्लोवाकिया	2,870
12. पोलैण्ड	2,090
13. रूस	2,030
14. चीन	260
15. भारत	120

भारत में प्रति व्यक्ति आय : सन् 1973–74

राज्य	रुपये
1. पजाब	1,385
2. महाराष्ट्र	1,334
3. गुजरात	1,034
4. प. बगाल	910
5. हिमाचल प्रदेश	902
6. तमिलनाडु	870
7. आन्ध्र प्रदेश	808
8. केरल	785
9. राजस्थान	769
10. मध्य प्रदेश	720
11. जम्मू व कश्मीर	708
12. कर्नाटक	704
13. उत्तर प्रदेश	698
14. मणिपुर	609
15. बिहार	604
16. असम	601

गरीबी की सीमा रेखा से नीचे : सन् 1970

राज्य	जनसख्या प्रतिशत
1. पजाब	15·30
2. हिमाचल प्रदेश	12·26
3. गोवा दमन दीव	16.52
4. असम	16·63
5. केरल	51·13

6. आन्ध्र प्रदेश	46 94
7. कर्नाटक	43·55
8. उत्तर प्रदेश	37·43
9. बिहार	46·48
10. प. बगाल	44 67
11 हरियाणा	24 95
12 तमिलनाडु	59 23
13. उडीसा	56 58

(च) भारत मे गरीबी की 1974–75 मे स्थिति

भारत मे व्याप्त गरीबी और असमानता के जो विभिन्न अध्ययन ऊपर प्रस्तुत किए गए है, उनके आँकडो मे थोडा-बहुत अन्तर अवश्य है, लेकिन उनसे इस तथ्य की निर्विवाद रूप से पुष्टि होती है कि देश भयावह गरीबी की स्थिति मे है। सन् 1960-61 मे देश जिस भयानक गरीबी से ग्रस्त था, लगभग उतनी ही भयावह गरीबी से आज भी है। नियोजन का अधिकाँश लाभ सम्पन्न वर्ग को मिला है, विपन्न वर्ग को बहुत कम, और लाभ का यह वितरण कुछ इस रूप मे हुआ है कि आर्थिक विषमता की खाई पूर्वापेक्षा अधिक चौडी हो गई है। केन्द्रीय सरकार के भूतपूर्व योजना राज्य मन्त्री श्री मोहन धारिया ने 1 अगस्त 1974 को राज्य-सभा मे स्वीकार किया था कि भारतीय जनता का $\frac{2}{3}$ भाग (अर्थात् 67 प्रतिशत भाग) गरीबी की सीमा-रेखा से नीचे (Below Poverty line) जीवन व्यतीत कर रहा है—यदि सन् 1960-61 के मूल्यो पर 20 रुपये मासिक प्रति व्यक्ति उपभोग को लिया जाए।[1]

सयुक्त राष्ट्रसघ की 3 अगस्त, 1974 की सूचना के अनुसार सयुक्त राष्ट्र महासचिव कुर्त वाल्दहीम ने भारत की गणना विश्व के 28 निर्धनतम देशो म की है। दैनिक हिन्दुस्तान, दिनाँक 4 अगस्त, 1974 मे यह जानकारी इस प्रकार प्रकाशित हुई थी[2]—

"सयुक्तराष्ट्र महासचिव कुर्त वाल्दहीम ने भारत, पाकिस्तान तथा बगलादेश का उन 28 देशो की सूची मे रखा है जो खाद्य तथा ईधन की महँगाई से बुरी तरह पीडित है। डॉ वाल्दहीम ने बताया कि एक ही आर्थिक धरातल पर स्थित ये देश आर्थिक सकट के परिणामस्वरूप उत्पन्न कठिनाइयो का मुकाबला कर रहे है।

"24 देशो की जिनका प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय उत्पादन 200 डॉलर से नीचे है तथा चार देशो का 200 से 400 डॉलर के बीच है, सूची सयुक्तराष्ट्र के आपात् सहायता कार्यक्रम मे दानदाताओ के सूचनार्थ प्रदान की गई। आँकडे सन् 1971 से

1 The Economic Times, Friday, August 2, 1974—"Two-thirds of Indian population was now living below poverty line, taking the monthly per capita private consumption of Rs 20 at 1960-61 prices as the standard"

2. हिन्दुस्तान, 4 अगस्त, 1974, पृष्ठ 4.

है। संयुक्तराष्ट्र महासचिव ने बताया कि यद्यपि प्रत्येक देश की वास्तविक स्थिति भिन्न है लेकिन विश्वास किया जाता है कि वे सभी गम्भीर समस्याओं का सामना कर रहे हैं तथा कुछ मामलों में तो स्थिति इतनी चिन्ताजनक है कि लोगों को अत्यधिक छीना-झपटी तथा भुखमरी का सामना करना पड़ता है। 14 देश जिनका प्रति व्यक्ति वार्षिक राष्ट्रीय उत्पादन 200 डॉलर से कम है उनमें कैमरून, मध्य अफ्रीका गणतन्त्र, चाँद, इथोपिया, केनिया, लिसोथा, मालागासी गणतन्त्र, माली, मॉरिटानिया नाइजर, सिएराधिओन, सोमालिया, सूडान, तन्जानिया तथा अपर वोल्टा। एशिया में बगलादेश, भारत, खमेर गणतन्त्र, लाओस, पाकिस्तान, श्रीलंका, उत्तरी यमन तथा दक्षिणी यमन।

"चार अतिरिक्त देश जिनका प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय 200 से 400 डॉलर तक है, उनमें सेनेगल, एच. साल्वा डोर, गुयाना तथा होन्डूरास है।"

गरीबी का मापदण्ड और भारत में गरीबी

गरीबी एक सापेक्षिक चीज है। वस्तुत गरीबी का मापदण्ड देश और काल के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। "सन् 1964 में अमेरिका के राष्ट्रपति को प्रस्तुत किए गए एक सरकारी प्रतिवेदन के अनुसार वहाँ के 20 प्रतिशत लोग गरीबी की स्थिति में जीवन-यापन कर रहे थे। यदि गरीबी जाँचने के उसी पैमाने को यहाँ भी लागू किया जाए तो कतिपय व्यक्तियों के अतिरिक्त देश की सम्पूर्ण जनसंख्या गरीब सिद्ध होगी।" विवरण को अधिक स्पष्ट रूप में लें तो अमेरिका जैसे समृद्ध देश में भी गरीबी विद्यमान है। अमेरिकी शासन ने मुख्यत: यह निर्धारित किया है कि यदि किसी परिवार की वार्षिक आय 3,000 डॉलर से कम है तो उसे 'गरीब' परिवार माना जाएगा। अमेरिका 'आर्थिक अवसर' के संघ कार्यालय ने अनुमान लगाया है कि सन् 1967 में अमेरिका में कुल 2 करोड़ 20 लाख व्यक्ति गरीबी की श्रेणी में आते थे। अमेरिका सामाजिक सुरक्षा प्रशासन के अनुसार पाँच व्यक्ति वाले एक गरीब खेतिहर परिवार की न्यूनतम आवश्यक आय 2,750 डॉलर वार्षिक अर्थात् लगभग 21,000 रुपये वार्षिक आँकी गई है। यदि इस आँकड़े को भारत के सन्दर्भ में देखें तो यहाँ के इस आय वाले पाँच सदस्यीय खेतिहर परिवार को देश के सर्वाधिक सम्पन्न परिवारों की श्रेणी में रखा जाएगा अर्थात् अमेरिका में गरीबी की जो सीमा-रेखा है, भारत में वह अमीरी की सीमा-रेखा है।[2] अत स्पष्ट है कि हमें अपने देश की स्थिति के अनुरूप अपने आँकड़े रखने होंगे, भले ही अप्रिय और कटु लगे।

देश में विगत कुछ वर्षों से गरीबी को मापने हेतु उचित आँकड़े खोजने का प्रयास किया जा रहा है, जिसके आधार पर देश की गरीबी का आँकलन किया जा सके और उसका समाधान ढूँढा जा सके। योजना आयोग ने 'न्यूनतम मासिक उपभोक्ता-व्यय की आवश्यकताओं' के आधार पर प्रतिमान को स्वीकार किया है,

1. डॉ. के. एन. राज 'गरीबी और आयोजन', योजना, 22 सितम्बर, 1972.
2. एल. एच. सिटवे : वही, पृष्ठ 19.

और पांचवी पचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र मे गरीबी की परिभाषा और समस्या निम्न प्रकार से दी गई है[1]—

"उपभोग के निम्नतम स्तर के रूप मे गरीबी के स्तर को स्पष्ट करना है। चतुर्थ योजना दस्तावेज मे, सन् 1960-61 के मूल्यो के अनुसार 20 रुपये प्रतिमास निजी-उपभोग को वाँछित निम्नतर स्तर माना गया था। वर्तमान (अक्तूबर, 1972) के मूल्यों के अनुसार यह राशि लगभग 40 रुपये होगी। अत. गरीबी के उन्मूलन के लिए यह आवश्यक है कि हमारे असख्य देशवासी, जो इस समय गरीबी के स्तर से भी निम्न जीवन-निर्वाह कर रहे है, उन्हे ऊपर दर्शाए गए निम्नतम निजी-उपभोग का स्तर प्राप्त हो सके। समस्या की प्रचण्डता और प्रभावित लोगो की सख्या प्रत्येक क्षेत्र मे भिन्न-भिन्न है। परन्तु प्रत्येक क्षेत्र मे गरीबी प्रमुख समस्या है।"

बढ़ती कीमतें और आर्थिक विषमता तथा गरीबी

बढ़ती कीमते भारत के गरीबो को और भी गरीब बना रही है, रात-दिन मेहनत करके वे अपनी आय मे जो भी वृद्धि करते हैं उस वृद्धि को मूल्यवृद्धि खा जाती है। बढती कीमते भारत मे गरीबी और आर्थिक विषमता की वृद्धि के लिए कितनी उत्तरदायी है, इसका एक अच्छा सकेत हमे फरवरी 1978 की योजना मे प्रकाशित श्री सतीशचन्द्र श्रीवास्तव के एक लेख मे मिलता है। श्री श्रीवास्तव ने बढती कीमतों पर अकुश लगाने के लिए कुछ उपयोगी सुझाव भी प्रस्तुत किए हैं—

भारतीय अर्थ-व्यवस्था का पूरा ढाँचा आज लड़खड़ा उठा है और साथ ही साथ मध्यमवर्गीय और निम्नवर्गीय व्यक्तियो मे अपना और अपने बच्चो का भरण-पोषण एक समस्या बन कर रह गया है। आम आदमी अपनी निश्चित आय और अपने परिवार के सदस्यो के पेटो के बीच सघर्ष करता हुआ दिखाई दे रहा है। आधिकारिक रूप से न सही परन्तु वास्तविक स्थिति तो यह है कि आदमी का जीना एक गुत्थी है जिसे कम से कम निम्न और मध्यम वर्गीय परिवारो को रोज सुलझाना पडता है। गाँव से शहरो की ओर आने वालो की सख्या बढती जा रही है और शहरो मे उन गन्दी बस्तियो की सख्या बढती जा रही है जिनकी झोंपड़ियो के भीतर लोग कई-कई दिन तक बिना खाए गुजार देते है और कभी-कभी समाप्त भी हो जाते हैं। मध्यम वर्गीय परिवारो ने रुचि के स्थान पर वास्तविकता से समझौता करने की कोशिश की है लेकिन बच्चो का पेट भरना कोई सरल कार्य नहीं है। इस स्थिति ने जहां पारिवारिक वातावरण मे अभाव का कटु सगीत भर दिया है वही सडको पर भिखारियों और असामाजिक तत्त्वो की वृद्धि भी कर दी है। इन सबके पीछे एक ही मुख्य कारण है और वह है कीमतें—लगातार बढती हुई कीमतें।

भारतीय अर्थ-व्यवस्था मे ऐसे कई लम्बे दौर आये हैं जब कीमतें तेजी से बढी हैं। उदाहरण के लिए यदि भारतीय स्वतन्त्रता के बाद के वर्षो पर विचार करें तो सन् 1947 से 1952 तक, सन् 1959 से 1961 तक, सन् 1964 से 1967 तक,

1. भारत सरकार योजना आयोग पाँचवीं योजना के प्रति दृष्टिकोण, 1974-79, पृष्ठ 1.

सन् 1972 से 1975 तक तथा मार्च 1977 से प्रारम्भ हुए वर्तमान काल को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। तीस वर्षों की अवधि में केवल सन् 1962-63, सन् 1968-71 तथा जुलाई 1975 से दिसम्बर 1976 के दौरान कीमतों पर नियन्त्रण रहा है। दूसरे शब्दों मे स्वतन्त्रता-प्राप्ति के तीस वर्षों में से 17 वर्ष भयंकर महँगाई और बढ़ती हुई कीमतों के वर्ष रहे हैं। दुखद स्थिति यह है कि कीमतें कभी पीछे की ओर नहीं लौटी। ऊपर जिन वर्षों को नियन्त्रित कीमतों के वर्ष बताया गया है उनमे भी कीमतें स्थिर रहीं, कम नहीं हुईं। आपात स्थिति के दौरान मुद्रास्फीति पर लगे हुए अंकुश से यह प्रतीत हो रहा था कि हमने मुद्रास्फीति पर काबू पा लिया है, जो एक भ्रम मात्र था। आपात स्थिति की समाप्ति के साथ ही मुद्रास्फीति ने ऑक्टोपस की भाँति अपनी बाहें फैला ली और समूची भारतीय अर्थ-व्यवस्था इस जकड से पिसती चली गई। आपातकाल के दौरान आर्थिक कार्यक्रम सम्बन्धी किए गए समस्त प्रयासों में अर्थ-व्यवस्था का रिपेयरिंग मात्र ही सम्भव हो सका।

नवीन सूचकांक (सन् 1970-71 = 100) से मूल्यों में निरन्तर वृद्धि की प्रवृत्ति स्पष्ट है। फरवरी 1976 के द्वितीय सप्ताहात मे थोक मूल्यों का सूचकांक 182 5 था जो 14 मई को बढ कर 186 तक पहुँच गया था। सन् 1976-77 की पहली छमाही मे जिन चीजों के कारण महँगाई हुई, उनमें गुड, मूँगफली, कपास एवं मूँगफली का तेल प्रमुख रहे। इनकी कीमतो मे क्रमश 66 6%, 71·6%, 46·4%, 60 7% की वृद्धि हुई। यद्यपि पिछले वर्ष की अपेक्षा मूँगफली के उत्पादन में इस वर्ष 20% की वृद्धि हुई है तथापि मूल्य स्तर को खाद्य तेलों की बढ़ती हुई कीमतो ने सबसे अधिक प्रभावित किया है। मूल्यो में इस प्रकार वृद्धि अब आम बात हो गई है। प्रश्न यह है कि आखिर इस मूल्य वृद्धि और अभाव के मूल मे कौन से तत्त्व सक्रिय हैं?

भारतीय अर्थ-व्यवस्था मे, कीमतों में वृद्धि का मुख्य कारण यह है कि यहाँ मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त $P=F(M)$ लागू न होकर मुद्रा का कीमत सिद्धान्त $M=F(P)$ लागू होना है। वस्तुओं की कीमत का निर्धारण उनकी माँग एवं पूर्ति के द्वारा हुआ करता है, परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि वस्तुओं की माँग और पूर्ति का निर्धारण वस्तुओं की कीमतें कर रही हैं।

सामान्यतया यह धारणा है कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था में मुद्रा स्फीति का एक प्रमुख कारण मुद्रा सभरण में वृद्धि है। इस धारणा की पुष्टि निम्न तालिका-1 से होती है।

तालिका–1—मुद्रा सभरण

(करोड रुपयो मे)

वर्ष	चालू नोट	बैंक मुद्रा	मुद्रा की पूर्ति	मुद्रा की पूर्ति प्रतिशत मे
1970-71	4597	2871	7468	
1971-72	48 2	3316	8138	14 2
1972-73	5444	3969	9413	16 9
1973-74	6336	4512	10848	14 9
1974-75	6378	5178	11557	6 4
1975-76	6735	5948	12682	11 3
दिसम्बर 1976	7399	7060	14459	14 9

तालिका से स्पष्ट है कि सन् 1974-75 मे मुद्रा प्रसार की दर 6 4% थी तथा सन् 1973 74 की तुलना मे 8 5% की दर से मुद्रा प्रसारण मे गिरावट आई। परिणामस्वरूप मूल्य स्तर मे स्थिरता कायम रही, परन्तु मुद्रा की पूर्ति मे वृद्धि के कारण, मार्च 1976 के बाद से पुन मूल्यो मे वृद्धि की प्रवृत्ति स्पष्ट होने लगी।

हमारे देश मे मुद्रा प्रसार म वृद्धि की दर 14% है जबकि विकास दर 3 5% से अधिक नही रही है। अत 10 5% की दर से अतिरिक्त मुद्रा का निर्माण मूल्य-वृद्धि का कारण रहा है। एक विकासशील राष्ट्र मे यदि मुद्रा मे 10% वृद्धि कर दी जाए तो यह अर्थ-व्यवस्था के लिए उस स्थिति मे घातक नही होगी जब उत्पादन की वृद्धि 5% हो।

कीमतो के साथ जो चीज जीवन-मृत्यु की तरह जुडी है वह है रुपये की क्रय शक्ति। वर्तमान समय मे रुपये की क्रय शक्ति 1949 की तुलना मे मात्र 26 पैसे पर रह गई है। इसके साथ ही क्रय-शक्ति का बहुत थोडा भाग निम्न आय वाले व्यक्तियो के पास पहुँच पाता है जिसे वे ऊँचे दामो पर प्राप्त होने वाली उपभोग वस्तुओ पर व्यय करते है। उच्च मध्यवर्ग और उच्च वर्गो को अतिरिक्त मुद्रा प्राप्त होने के कारण उनमे प्रदर्शन प्रभाव अधिक होता है और दिखावे आदि की वस्तुओ की मांग बढ जाती है। परिणाम नवीन तकनीको के माध्यम से सीमित साधनो को इन्ही वस्तुओ के उत्पादन मे लगाया जाता है जबकि उपभोग वस्तुओ का उत्पादन उद्योगो मे श्रम धन तकनीक से किया जाता है।

विभिन्न वर्गो की पारिश्रमिक दर मे विभिन्नता के कारण वस्तुओ के मूल्यो म काफी अन्तर पाया जाता है। फलस्वरूप निम्न आय के उत्पादक अपने उत्पादनो को सस्ता बेचते है और महँगे उत्पादन खरीदते है जबकि उच्च आय वाले उत्पादको के लिए स्थिति उल्टी और अधिक लाभकर होती है। अर्थ-व्यवस्था मे जहाँ एक ओर कुछ व्यवसाय बढते हुए मूल्य स्तर के परिणामस्वरूप अपने लाभ की मात्रा बढा रहे है, वही दूसरी ओर कुछ व्यवसाय मन्दी के चगुल मे फँसे हैं। इसका मूल कारण भारतीय अर्थ व्यवस्था मे स्वचालकता के गुण का अभाव है।

भारतीय अर्थ-व्यवस्था में, जहाँ 60% यfh गरीबी के स्तर से भी अपना जीवन व्यतीत कर रहे है तथा रहन-सहन के परम्परागत स्तर पर रहना ही जिनका स्वभाव बन चुका है—उपभोग वस्तुओ की माँग मे अत्यधिक वृद्धि की आस्था नहीं की जा सकती। अत- अतिरिक्त मुद्रा की माँग का कारण बढी हुई कीमतें हैं। क्रय-शक्ति के रूप में प्राप्त अतिरिक्त मुद्रा का अधिकांश उपभोग वस्तुओ पर व्यय हो जाता है तथा विनियोग के लिए बचत नही हो पाती। परिणाम यह होता है कि अतिरिक्त क्रय-शक्ति उत्पादन में नही परिवर्तित हो पाती।

मूल्यों में निरन्तर वृद्धि होने का एक कारण मन्दी युग के अर्थशास्त्री कीन्स का मन्दी का सरकारी व्यय मे वृद्धि के सुझाव का अन्धानुकरण रहा हो मात्र विकसित राष्ट्रों के लिए ही उपयुक्त था। भारतीय अर्थ-व्यवस्था के लिए, जहाँ रोजगार बेरोजगारी के आँकडो से त्रस्त है तथा उत्पादन आवश्यकता की तुलना मे न्यून है—यह सुझाव अपने मे कोई महत्त्व नही रखता।

सरकार द्वारा मुद्रा-स्फीति की जड से समाप्ति के लिए यह आवश्यक है कि एक नई मुद्रा नीति बनाई जाए। इस समस्या के समाधान के लिए राष्ट्रीय उत्पाद तथा मुद्रा-प्रसार मे एक वैधानिक अनुपात निश्चित कर दिया जाना चाहिए।

मूल्य वृद्धि के लिए जहाँ एक ओर अन्य अनेक कारण उत्तरदायी है, वही [illegible] ओर घाटे की वित्त-व्यवस्था की प्रणाली भी इस दौड मे पीछे नही है। पिछली [illegible] ने भारी मात्रा में घाटे की वित्त व्यवस्था की नीति को अपनाया था।

काले धन की समानान्तर अर्थ-व्यवस्था का भी मूल्य स्तर की वृद्धि मे बहुत बड़ा हाथ है। सन् 1969 से 74 तक देश को आर्थिक सङ्कट से गुजरना पड़ा था जिसका प्रमुख कारण 400 करोड रुपये वार्षिक दर से काले धन मे वृद्धि रहा। अत काले धन की इस समानान्तर अर्थ-व्यवस्था को समाप्त करना आवश्यक है।

बढती कीमतों की इस समस्या को हल करने के लिए अर्थ-व्यवस्था के सम्पूर्ण ढाँचे मे परिवर्तन करना होगा तथा उपभोग प्रधान नीति के स्थान पर उत्पादन प्रधान-नीति को अपनाना होगा, अन्यथा बढती कीमतें राष्ट्र को जर्जर बनाती जाएँगी। मुद्रा-स्फीति को रोकने के लिए न सिर्फ घाटे की बजट प्रणाली का समाप्त करना होगा, बल्कि सरकारी व्यय मे भी कटौती करनी आवश्यक होगी।

गरीबी और असमानता के मापदण्ड

गरीबी और असमानता एक सापेक्ष भाव है, जिसका ठीक-ठीक पता लगाना कठिन होता है। किन्तु लोगों के जीविकोपार्जन से सम्बन्धित क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन करके हम अमीरी और गरीबी के बीच एक सम्भावित सीमा-रेखा खींच सकते हैं। कुल गरीबी सूचक-स्तर निम्नलिखित है[1]—

1. जी. आर. वर्मा का लेख—'समाजवादी समाज की स्थापना के लिए गरीबी हटाना आवश्यक'—योजना, 22 मार्च, 1973, पृष्ठ 21-22.

1. आय-व्यय स्तर— गरीबी सूचक पहला स्तर आय-व्यय पर आधारित होता है। भारत मे सर्वाधिक सम्पन्न वे माने जा सकते हैं जिनकी वार्षिक आय 20,000 रु से अधिक है, किन्तु अमेरिका मे इस आय से कम वाले गरीब समझे जाते हैं, अर्थात् अमेरिका म जो गरीबी की सीमा-रेखा है वह हमारे देश म अमीरो की सीमा-रेखा है। दांडेकर और रथ के अध्ययन के अनुसार सन् 1960-61 मे गावो मे 50 पैसे और शहरो म 85 पैसे प्रतिदिन प्रति व्यक्ति व्यय था। उस समय ग्रामीण जनसख्या की 40% और शहरी 50% जनसख्या गरीबी का कष्टमय जीवन बिता रही थी। सन् 1967-68 के सरकारी आकडो के अनुसार 5% व्यक्ति प्रतिदिन 20 पैसे, 5-10% व्यक्ति प्रतिदिन 27 पैसे और 40-50% व्यक्ति प्रतिदिन 51 पैसे व्यय करते हैं। यदि प्रति व्यक्ति 20 रुपये मासिक खर्च मानें तो 60% ग्रामीण और 40% शहरी जनसख्या गरीबी की सीमा रेखा से नीचे आएगी।

2. उपभोग और पौष्टिकता का स्तर—एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए सामान्यत 2,250 कैलोरी खुराक प्रतिदिन आवश्यक मानी गई है, किन्तु रिजर्व बैंक के एक अध्ययन, जिसमे ग्रामीण और शहरी क्षेत्रो मे क्रमश 1100 और 1500 कैलोरी खुराक प्रति व्यक्ति प्रतिदिन मानी गई है, के अनुसार 1960-61 मे गाँवो मे 52% जनसख्या इससे कम भोजन पाती थी। सरकारी आँकडो के अनुसार वर्तमान मे 70% ग्रामीण जनसख्या खुराक के सम्बन्ध मे गरीबी मे पल रही है तथा शहरी जनसख्या 50 से 60% भाग भोजन और पोषण की कमी में पलता है।

3 भूमि-जोत स्तर—देश की जनसख्या का 80% या 44 करोड व्यक्ति गाँवो म बसते है जिनम 70% कृषि पर निर्भर है। इनमे 5 एकड से कम जोत वाले 5 करोड 31 लाख या 74% हैं। 2 5 करोड एकड से कम जोत वाले 4 करोड 15 लाख या 58% है और 1 करोड 58 लाख या 22% बिल्कुल भूमिहीन हैं। इस प्रकार भूमिहीनो से लेकर 5 एकड से कम जोत वाले 11 करोड से भी अधिक लोग है जो अत्यन्त गरीबी की हालत मे जीवन बिता रहे है।

4 रोजगार-स्तर—सम्पन्न या विकसित देश वे है, जहाँ रोजगार-स्तर ऊँचा होता है अथवा उत्पादन के सभी साधनो को उनकी योग्यतानुसार रोजगार प्राप्त होता है, किन्तु भारत मे पिछले 30 वर्षो मे बेरोजगारी 10 लाख से बढकर 4 5 करोड तक पहुँच गई है। इनमे लगभग 23 लाख शिक्षित बेरोजगार है। बेरोजगारी और अर्द्ध बेरोजगार के कारण देश की लगभग 22 करोड जनता की आमदनी एक रुपया रोज से भी कम है। विनियोग और रोजगार के अभाव मे 70% औद्योगिक क्षमता बेकार पडी है। विनियोग आय और रोजगार की यदि यही स्थिति रही तो गरीबी हटाओ' का स्वप्न 20वी शताब्दी के अन्त तक भी साकार नही हो सकेगा।

भारत मे गरीबी और असमानता के कारण

योजना आयोग ने पाँचवी पचवर्षीय योजना के प्रति दृष्टिकोण 1974-79 म गरीबी के दो मुख्य कारण बतलाते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की है—

"गरीबी के दो मुख्य कारण हैं—(1) अपूर्ण विकास तथा (2) असमानता। इन दोनों पक्षों में से किसी एक को कम मानना या उपेक्षा करना उचित नहीं है। अधिकांश जन-समुदाय दैनिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं कर पाता, क्योंकि प्रथम बहुत बड़ी जनसंख्या को देखते हुए कुल राष्ट्रीय आय और इस प्रकार कुल उपभोग बहुत ही कम है। द्वितीय इस आय और उपभोग का वितरण एक समान नहीं है। केवल एक ही दिशा मे प्रयत्न करने से इस समस्या पर काबू नहीं पाया जा सकता। यदि असमानता उतनी ही विकट रही, जितनी कि इस समय है, तो वास्तविक रूप से परिकल्पित विकास दर मे इस समस्या का समाधान सम्भव नहीं। इसी प्रकार, विकास-दर में तीव्र वृद्धि किए बिना सम्भावित समतामय नीतियाँ स्थिति मे किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं ला सकती। अत व्यापक गरीबी को दूर करने के लिए विकास करना तथा असमानताएँ घटना आवश्यक है।"

गरीबी और असमानता के उपरोक्त प्रमुख कारणों से सम्बद्ध अन्य सहायक कारण भी हैं। संक्षेप मे अन्य कारण निम्नलिखित हैं—

1 यद्यपि पिछले दशक मे शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन दुगुने से भी अधिक हो गया, किन्तु इसी अवधि मे वस्तुओं के मूल्यों मे भी दुगुनी वृद्धि हो गई तथा मूल्यों मे वृद्धि की गति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन से बहुत अधिक है। जनसंख्या मे 2·5% प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि होना, जबकि प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन मे अनुकूल रूप मे विशेष वृद्धि न हो पाना देश की आर्थिक अवनति और गरीबी के प्रसार का परिचायक है।

2 नियोजन के फलस्वरूप जो भी आर्थिक विकास हुआ है, उस अल्प-वृद्धि का लाभ सम्पन्न वर्ग को अधिक हुआ है अर्थात् सम्पन्नता मे वृद्धि हुई है और विपन्नता पूर्वापेक्षा अधिक बढी है।

3 जनसंख्या वृद्धि को देखते हुए कुल राष्ट्रीय आय और इस प्रकार कुल उपभोग बहुत ही कम है। इसके अतिरिक्त आय और उपभोक्ता वितरण एक समान नहीं है। व्यावहारिक रूप में आन्तरिक उत्पादन-दर मे वृद्धि के साथ-साथ जनसंख्या की वृद्धि-दर को घटाने के प्रयत्न अधिकांशत असफल ही रहे हैं। चतुर्थ योजनावधि मे भी अर्थ-व्यवस्था का वास्तविक सचालन इसी प्रकार हुआ जिससे आन्तरिक उत्पादन दर काफी घट गई।

4. पिछले पृष्ठों मे दिए गए आँकड़े सिद्ध करते है कि देश मे ग्रामीण और शहरी दोनो ही जनसंख्या के सभी वर्गों मे उपभोक्ता व्यय मे गिरावट हुई है। वास्तव मे प्रति व्यक्ति उपभोक्ता व्यय ही व्यक्तियों का जीवन-स्तर प्रदर्शित करता है। गाँवों और शहरों दोनो मे ही गरीब वर्ग बहुत बुरी तरह प्रभावित हुआ है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार आय की असमानता मे कमी होने की अपेक्षा वृद्धि ही हुई है। दांडेकर एव रथ के अनुसार आर्थिक विकास का अधिकतम लाभ ग्रामीण और शहरी दोनो ही क्षेत्रों मे उच्च मध्यम श्रेणी तथा अमीर वर्ग को ही हुआ है और निर्धन वर्ग को इससे कुछ भी तो लाभ नहीं हुआ है, बल्कि उनके उपभोग मे गिरावट ही हुई है।

5 प्रति व्यक्ति अन्न उपभोग को जीवन निर्वाह का मापदण्ड मान लिया जाए और पौषणिक स्थिति देखी जाए तो भी 1960–61 की अपेक्षाकृत स्थिति बदतर हुई है। सन् 1960–61 मे ग्रामीण क्षेत्र मे पौषणिक न्यूनता ग्रामीण जनसख्या का 51% थी जो बढकर सन् 1967–68 मे 70% तक पहुँच गई। इसके पश्चात् भी स्थिति उत्तरोत्तर गिर ही रही है। अत स्पष्ट है कि देश की गरीब ग्रामीण जनसख्या घोर अपोषण की स्थिति मे जीवन-निर्वाह कर रही है।

6 राष्ट्रीय आय मे वृद्धि को बढी हुई जनसख्या वृद्धि खा गई है या वह देश के बडे-बडे पूंजीपतियो, व्यापारियो और एकाधिकारियो की जेबो मे चली गई है। इसके अतिरिक्त, मूल्य वृद्धि, बेरोजगारी, महँगाई और रिश्वतखोरी ने जनता की कमर तोड डाली है। उत्पादन को तहखानो मे छिपाकर काला-बाजारी करने, मूल्य वृद्धि करने और मुनाफा कमाने की प्रवृत्ति ने विपन्नता को बढाया ही है। इसलिए सहकारियाँ, सुपर बाजार और सस्ते मूल्य की दूकाने असफल रही है। सम्पत्ति की असमानता और गरीबी को बढाने मे हडतालें, तालाबन्दी, घेराव, धरना आदि की घटनाएँ भी सहायक रही है।

7 साधनो का अभाव भी गरीबी और असमानता को बढाने मे सहायक रहा है। योजना बनाते समय साधन एकत्र करने के सम्बन्ध मे बढा-चढाकर अनुमान लगाए जाते है, अनेक प्रशासकीय तथा राजनीतिक बाधाओ का ध्यान नही रखा जाता है। परिणामस्वरूप प्रस्तावित कार्यक्रमो का एक भाग कार्यान्वित नही हो पाता और जो कार्यक्रम लागू होते भी है, उनका वह प्रभाव और परिणाम नही हो पाता जो अधिक नियन्त्रित और सतर्क दृष्टिकोण अपनाने से होता।

8 पूंजी और भू-स्वामित्व मे अन्तर आर्थिक विषमता का एक प्रमुख कारण है। अधिक भूमि और पूँजी वालो को बिना विशेष परिश्रम किए ही लगान, ब्याज, लाभ आदि के रूप मे आय प्राप्त होती है और उनकी आय भी काफी अच्छी होती है। भारत म जमीदारी-प्रथा के उन्मूलन से पूर्व कृषक-क्षेत्र मे घोर विषम वितरण था। जमीदारी-प्रथा के उन्मूलन के पश्चात् नेता और पूंजीपति नए जमीदार और भू-पति बन गए है, जिनमे से अधिकाँश का काय है रुपया उधार देना, डटकर ब्याज लेना और निर्धनो का शोषण करना। औद्योगिक क्षेत्र मे भी हम देखते हैं कि देश के प्रमुख उद्योगो पर कतिपय लोगो का ही एकाधिकार है, जो प्रतिवर्ष करोडो रुपयो का लाभ अर्जित करते हैं।

9 आर्थिक विषमता का द्वितीय प्रमुख कारण उत्तराधिकार है। प्राय धनिक पुत्र, उसकी सम्पत्ति बिना किसी परिश्रम के उत्तराधिकार मे प्राप्त कर लेते हैं और धनी बन जाते हैं। इस प्रकार, उत्तराधिकार के माध्यम से, आय की विषमता फलती फूलती आती है। दूसरी ओर निर्धन बच्चो को न तो समुचित शिक्षा ही मिल पाती है और न ही उनके लिए कमाई के लाभकारी उत्पादन क्षेत्र ही सुलभ होते हैं।

10. आर्थिक विषमता का एक बड़ा कारण धनी व्यक्तियों की बचत-क्षमता का अधिक होना है। उनकी आय प्राय इतनी अधिक होती है कि भरपूर आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् भी उनके पास पर्याप्त धन बचा रहता है। धनिकों की यह बचत आर्थिक विषमता को बढाती ही तो है। यह बचत विभिन्न उत्पाद-क्षेत्रों में पूंजी का रूप धारण करती है तथा किराए, ब्याज या लाभ के रूप मे आय को और अधिक बढाती है। दूसरी ओर निर्धन शोषण की चक्की मे पिसते ही रहते है, अत. उनकी बचत-क्षमता नगण्य होती है।

11 आर्थिक शोषण की प्रवृत्ति आर्थिक विषमता का प्रबलतम कारण है। श्रमिको की सौदा करने की शक्ति कम होने के कारण आर्थिक शोषण की प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ और पूंजीपति इसी कारण उनको उनकी सीमान्त-उत्पादकता से कम मजदूरी देकर उनका आर्थिक शोषण करते है। फलस्वरूप, पूंजीपतियो का लाभ दिन प्रतिदिन बढता है, जबकि श्रमिको की स्थिति प्राय दीन-हीन (विशेषकर अर्द्ध-विकसित समाजो मे) बनी रहती है। इस प्रकार आर्थिक असमानता निरन्तर बढती जाती है।

12 17 नवम्बर, 1977 को नई दिल्ली मे अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय संघ की भारतीय राष्ट्रीय समिति की 48वी वार्षिक बैठक के उद्घाटन भाषण मे उद्योगमन्त्री जार्ज फर्नान्डीज ने कहा था—"यथास्थितिवादी नीति राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरो पर आर्थिक विषमता को ही बढावा देगी—इससे मुक्ति पाने के लिए दोनो स्तरो पर परिवर्तनो की नीति अपनायी जानी चाहिए। राष्ट्रीय स्तर पर गरीबो का शोषण हो रहा है और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गरीब देशो का इसे रेखांकित करने के लिए। उन्होंने बताया कि कश्मीर मे बना जो गलीचा जर्मनी मे उन्होने 60,000 रुपया मे बिकते देखा उसे बनाने वाले 10-12 वर्ष के बालक बालिकाओ को केवल 3 रुपया रोज की दिहाड़ी मिलती है। यह गरीबी, विषमता और शोषण का जीता जागता नमूना है। शोषण को समाप्त करने का आग्रह करते हुए मन्त्री महोदय ने कहा कि क्रयशक्ति का समान्तर वितरण होना चाहिए और बिचौलियों की भूमिका समाप्त हो ही जानी चाहिए।"[1]

13 भारत मे गरीबी का एक मुख्य कारण यह है कि खेत मजदूर सदियों से अन्याय और शोषण के शिकार रहे है। रैयतेलेटिंग एक्ट के बन जाने के बाद से जमीदारों ने उनके शोषण का एक अन्तहीन सिलसिला चला दिया था जो भारत की आजादी के 30 वर्ष बाद भी देश के कुछ भागो मे चलता रहा है। भारत सरकार द्वारा गठित श्रम आयोग ने कुछ वर्ष पूर्व यह स्वीकार किया था कि खेत मजदूरों की हालत अर्द्ध गुलामो जैसी है। इन अर्द्धगुलामों को विभिन्न राज्यों मे विभिन्न सबोधनो से सम्बोधित किया जाता है। उड़ीसा का हलिया मुलिया, नाग हरवाहस,बरसामियां; दक्षिण बिहार और छोटा नागपुर का कमिया, मध्यप्रदेश का हुरवाली, राजस्थान

1. दिनमान, नवम्बर-दिसम्बर 1977, पृष्ठ 20.

का सगरी, पजाव का सेरी और उत्तर प्रदेश का हलवाहा ही भारतीय समाज का अर्द्धदास है। यूरोप और अमेरिका जैसे विकसित देशो की कृषि व्यवस्था मे अर्द्धगुलाम या बेगार का कोई स्थान नही है। वहाँ के कृषि क्षेत्रो मे खेत मजदूर की भी सेवा शर्तें कारखाना मजदूर की तरह होती हैं। ऐसी व्यवस्था मे खेती का सम्पूर्ण आधार वैज्ञानिक होता है और श्रम की सामाजिक शक्तियो का कृषि व्यवस्था मे जमाव होता है। महाजनी या सूदखोरी पूँजी की जगह नियोजित वित्त व्यवस्था का स्थान होता है। किन्तु भारत के कृषि क्षेत्र मे पूँजी का ही बोलबाला है और फिर महाजनी पूँजी के अतिरिक्त श्रम का शोषण दोहन हो रहा है।

आजाद भारत मे सूदखोर महाजनो को रोकने का कोई कारगर नियम आज तक नही बन पाया और जमीदारी उन्मूलन के बाद भी 'बढती मजबूरी—गिरती मजदूरी' की हालत बनी रही। 26 जून, 1975 को राष्ट्रीय आपात की उद्घोषणा के बाद कुछ ऐसे कदम उठाये गए कि गाँवो मे बन्धुआ मजदूरी और अन्य प्रकार के शोषणो का अन्त हो सके। लेकिन गरीबी मिटने का रास्ता कोई छोटा नही है। अब तक देश मे जो भीषण गरीबी विद्यमान रही है, उसका एक अनुमान देश के विभिन्न अचलो मे खेत मजदरो की दैनिक मजदूरी की निम्नलिखित तालिका स लग सकेगा—

देश के विभिन्न अचलो मे खेत मजदूरो की दैनिक मजदूरी (पैसा म)[1]

अचल	1946	1951	1971	197!	1974
पूर्वी उत्तर प्रदेश	25	40	150	200	250
पश्चिमी उत्तर प्रदेश	30	55	225	275	350
पजाब	30	60	350	42>	>00
महाराष्ट्र	50	100	425	500	600
मद्रास	35	35	340	400	500
कलकत्ता	60	100	445	500	600
दिल्ली	50	100	400	>00	600

1 स्रोत दिनमान 8 जून 1975

गरीबी एवं असमानता को दूर अथवा कम करने के उपाय

भारत सरकार देश की गरीबी और आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए दृढ सकल्प है। सरकार ने भारतीय गरीबी की तस्वीर को पहचाना है और 'गरीबी हटाओ' का सकल्प लिया है। भारतीय इतिहास मे अपने ढग का यह पहला और महत्त्वपूर्ण सकल्प है और इसी नारे को साकार बनाने के लिए सरकार एक के बाद एक कदम उठा रही है तथा पाँचवी पचवर्षीय योजना को इसी रूप मे ढालने का प्रयत्न किया गया है कि वह गरीबी और असमानता को दूर करने वाली तथा देश का आत्म-निर्भरता की सीढियो पर बढाने वाली सिद्ध हो। गरीबी और असमानता को मिटाने अथवा यथासाध्य कार्य करने के स्वप्न को साकार बनाने हेतु ही भारत सरकार

ने 14 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया । राजा महाराजाओं को दिया जाने वाला मुआवजा प्रीविपर्स बन्द किया है । भूमि की अधिकतम जोत-सीमा तथा शहरी सम्पति-निर्धारण के क्रान्तिकारी कदमों पर सक्रिय विचार हो रहा है और कुछ दिशाओं में आवश्यक कदम भी उठाए गए हैं । पाँचवी योजना 'गरीबी हटाओ' के उद्देश्य को लेकर चली है । आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण को रोकने हेतु सरकार ने विभिन्न कदम उठाए हैं—जैसे औद्योगिक लाइसेंस-नीति मे समुचित सशोधन करना, जमाखोरी और कालेबाजारी के विरुद्ध कठोर वैधानिक कदम उठाना, रिजर्व बैंक द्वारा देश के बैंकों को '50 बड़े खातों' पर सतर्क दृष्टि रखने के आदेश देना आदि ।

गरीबी और असमानता को कम करने की दिशा मे निम्नलिखित अपेक्षित कदमों को उठाना आवश्यक है—

1 निजी-सम्पत्ति की सीमा कठोरतापूर्वक निर्धारित कर दी जाए । ऐसे कानून बना दिए जाएं ताकि भूमि, नकद-पूंजी, मकान आदि के रूप में एक सीमा से अधिक सम्पत्ति कोई नही रख सके । विषमता का मूल आधार ही निजी-सम्पत्ति का स्वामित्व है, अत. इसकी सीमा-रेखा निर्धारित करना अनिवार्य है ।

2 इस प्रकार के वैधानिक उपाय किए जाएँ जिनसे निजी-सम्पत्ति के उत्तराधिकार और सम्पत्ति-अन्तरण की प्रथा समाप्त हो जाए अथवा वांछित रूप से सीमित हो जाएँ । यह उपयुक्त है कि उत्तराधिकार मे सम्पत्ति प्राप्त करने वालो पर 'भारी उत्तराधिकार कर' लगा दिए जाएँ । धनिको पर ऊँची दर से मृत्यु-कर लगाया जाए। सम्पत्ति-अन्तरण पर भेंट-कर लगा दिया जाए ताकि किसी भी धनिक द्वारा अपनी सम्पत्ति अन्य के नाम अन्तरित करते समय उसे कुछ अश सरकार को देना पड़े ।

3 यद्यपि वर्तमान कर-नीति समाजवादी समाज की स्थापना की दिशा मे सहयोगी है, तथापि यह अपेक्षित है कि धनिको पर अधिकाधिक कठोरतापूर्वक आरोही कर लगाए जाएँ । दूसरी ओर निर्धनों को करो मे अधिकाधिक छूट दी जाए, लेकिन उद्देश्य तब निष्फल हो जाएगा यदि वसूली ठीक ढंग से न की गई ।

4. यद्यपि सरकार एकाधिकारी प्रवृत्ति पर नियन्त्रण के लिए प्रयत्नशील है, तथापि अपेक्षित है कि बिना किसी हिचक के कठोर एकाधिकार विरोधी कानून लागू किया जाए और मूल्य-सन्धियो को रोका जाए । जो कदम उठाए जा चुके है उन्हे इस दृष्टि से अधिकाधिक प्रभावी बनाया जाए जिससे धनी व्यक्ति एकाधिकार-गुट का निर्माण न कर सकें । यह उपाय भी विचारणीय है कि सरकार एकाधिकार द्वारा उत्पादित वस्तु का अधिकतम मूल्य निर्धारित करे ।

5. विभिन्न साधनों के अधिकतम और न्यूनतम मूल्य-निर्धारण की नीति द्वारा आय की असमानताएँ कम की जा सकती हैं । इस नीति का क्रियान्वयन प्रभावी ढंग से होने पर आय की असमानताओं का कम होना निश्चित है । लेकिन साथ ही, इस नीति से उत्पन्न समस्याओं के निराकरण के प्रति सजग रहना भी आवश्यक है ।

6. आय और सम्पत्ति की विषमता को कम करने हेतु अनार्जित आयों पर अत्यधिक उच्च-दर से प्रगतिशील करारोपण आवश्यक है । भूमि के मूल्यों मे वृद्धि

अथवा लगान से प्राप्त आय, आकस्मिक व्यावसायिक लाभ, काला बाजारी से प्राप्त आय, एकाधिकारी लाभ, आदि पर अत्यधिक ऊँची दर से कर लगाया जाना चाहिए ।

7 सरकार को निजी सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण करके आय-विषमता का निराकरण करना चाहिए । लेकिन यह उपाय एक बडा उग्र-अस्त्र है, जिसे भारत जैसे अर्द्ध विकसित और रूढिवादी-समाज के अनुकूल नही कहा जा सकता । इस बात का भय है कि उग्र उपाय से देश मे व्यावसायिक उद्यम को भारी बाधा पहुँचे । भारत की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ निजी-सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण के प्रतिकूल हैं ।

8 सामाजिक सुरक्षा-सेवाओ का विस्तार किया जाए । यद्यपि सरकार इस दिशा मे प्रयत्नशील है, तथापि कार्यक्रमो को अधिक प्रभावी रूप मे लागू करना अपेक्षित है बेरोजगारी, बीमारी, वृद्धावस्था, दुर्घटना और मृत्यु—इन सकटो का सर्वाधिक दुष्प्रभाव निर्धन वर्ग पर ही पडता है, अत इनसे सुरक्षा हेतु सरकार को विस्तृत सामाजिक सुरक्षा योजना कार्यान्वित करनी चाहिए ताकि निधनो की आय मे वृद्धि हो सके ।

9 यह भी कहा जाता है कि सरकार को निर्धन-वर्ग को कार्य की गारण्टी देनी चाहिए । सरकार को रोजगार-वृद्धि की प्रभावशाली योजना अपनाकर यह निश्चित करना चाहिए कि बेरोजगारो को रोजगार उपलब्ध हो और यदि वह सम्भव न हो तो न्यूनतम जीवन स्तर निर्वाह करने हेतु उन्हे अनिवार्य आर्थिक सहायता सुलभ हो सके ।

10 सरकार कानूनी रूप से अधिक सन्तानोत्पत्ति पर नियन्त्रण लगाए । यह निश्चित कर देना उपयुक्त होगा कि तीन बच्चो से अधिक सन्तान उत्पन्न करना कानूनी अपराध माना जाएगा । परिवार-नियोजन के कार्यक्रम मे शिथिलता बिन्दुओ को दूर करने की प्रभावी चेष्टा की जाए ।

11 उत्पादन वृद्धि दर और सार्वजनिक निजी-क्षेत्रो की बचत दर असन्तोषजनक है, अत उसमे वृद्धि करने के हर सम्भव उपाय किए जाएँ और यदि इस दृष्टि से कटु और अप्रिय साधनो का प्रयोग करना पडे, तो उसम भी हिचक न की जाए ।

12 ठोस कार्यक्रमो को लागू किया जाए । विकास की रोजगार-बहुल मदो जैसे छोटी सिचाई योजनाएँ भू-सरक्षण, केन्द्रीय विकास, दुग्ध उद्योग और पशुपालन, वन-उद्योग, मत्स्य उद्योग, गोदाम व्यवस्था, पणन, कृषि आधारित उद्योगो समेत लघु-उद्योग, सडकें तथा अन्य विशेष कार्यक्रमो पर अधिकाधिक बल दिया जाए । दाँडेकर एव रथ के अनुसार उन समस्त व्यक्तियो को जो कार्य करने को तैयार हैं, तत्काल शुरू हो सकने वाले कामो मे न्यूनतम मजदूरी देकर लगा दिया जाए जैसे भूमि-विकास, कृषि, वन-वृद्धि, सडक-निर्माण ।

13 नैतिकता और न्याय की माँग करते हुए दाँडेकर एव रथ ने गरीबी हटाने की दिशा मे समाज के समृद्ध वर्गों से त्याग की माँग की है । उनके अनुसार

समाज के समृद्ध वर्गो को जो आज उस न्यूनतम स्तर से कही अधिक ऊँचे स्तर पर जीवनयापन कर रहे है, जिसका हम आज गरीबो को आश्वासन देना चाहते हैं, इस कार्यक्रम का बोझ उठाना ही पड़ेगा । गाँव और शहर की जनसख्या के समृद्ध वर्ग मे से पहले 5% लोगो के प्रतिदिन के व्यय मे 15% की कटौती तथा उसके बाद के (कम समृद्ध) 5% लोगो के प्रतिदिन के व्यय मे 7½% कटौती कर देने से ही काम चल जाएगा । यह बोझ बड़ा नही है, बशर्ते कि अमीर लोग इन्साफ और बुद्धि से काम लें । साथ ही आवश्यक वित्तीय-उपाय भी करने होगे ताकि उन अमीरो से आवश्यक आर्थिक साधन प्राप्त किए जा सकें ।

दाम नीति और गरीबी निवारण
(कलकत्ता का 'दाम बाँधो सम्मेलन' जनवरी 1978)

कलकत्ता (शिक्षायतन, लॉर्ड सिन्हा रोड) मे 30-31 दिसम्बर, 1977 और 1 जनवरी, 1978 को 'समता' (8 इडियन मिरर स्ट्रीट) द्वारा एक 'दाम बाँधो सम्मेलन' आयोजित किया गया था । वास्तव मे दाम नीति और गरीबी का भी बहुत निकट का सम्बन्ध है । सम्मेलन मे सवसम्मति से जो प्रस्ताव पारित किए गए और गरीबी के कारणो को दूर करने के लिए जो सुझाव दिए गए, वे निश्चय ही गरीबी की समस्या और उसके निदान पर अच्छा प्रकाश डालते है[1]—

"अन्त मे सम्मेलन मे ये प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुए—राजनीतिक और सामाजिक सत्ता के लम्बे अर्से से चले आ रहे विषम और असमान बँटवारे के परिणामस्वरूप आज हमारे देश मे बर्बादी और गैरबराबरी की एक भयानक अर्थ-व्यवस्था पैदा हुई है—आजादी के बाद प्राय तीस साल बीत चुके है, फिर भी यही स्थिति बनी हुई है । इसमे कोई गुणात्मक परिवर्तन अभी तक नही हुआ है, बल्कि सच यह है कि और भी गैरबराबरी तथा गरीबी बढी है ।"

ऐसी स्थिति मे मौजूदा दामो की प्रणाली के तहत आर्थिक विकास और समतावादी समाज का निर्माण असम्भव है । वास्तव मे समतावादी समाज के निर्माण के लिए जब तक उपलब्ध सभी साधनो का नियोजन नही होता, तब तक हमारा आर्थिक विकास नही हो सकता ।

उपभोक्ताओ की दृष्टि से विचार करने पर हमारा समाज तीन श्रेणियो मे विभक्त दिखाई पड़ता हैं—(1) कृषि और उद्योग धन्धो के मालिक और बड़े व्यापारी (2) स्वतन्त्र पेशेवर उच्च मध्यवित्त के लोग और सशक्त मजदूर (3) छोटे किसान, *अत्यन्त गरीब अलाभकार जोत वाले किसान भूमिहीन मजदूर असगठित शहरी मजदूर ।*

हमारी जनसख्या मे 20-25% लोग इसी वर्ग के हैं और प्राय ये सभी लोग ग्रामीण हैं । इसके अलावा पहले दो वर्गों के लोगो के आय-व्यय और उपभोक्ता का सारा बोझ भी इन्हे ही ढोना पड़ता है । ये सारे लोग दामो की प्रणाली के बिलकुल बाहर पड़ते हैं । इनकी समस्या का समाधान मौजूदा आर्थिक और राजनीतिक सत्ता

1. दिनमान, जनवरी फरवरी 1978 पृष्ठ 39-40.

के समतामूलक बँटवारे के बिना सम्भव नही है । इसमे सन्देह नही कि इसमे समय लगेगा । लेकिन इस समस्या से निपटने के लिए हम इन्तजार नही कर सकत । समस्या की गुरुता को समझते हुए हमे तत्काल कार्यवाही करनी होगी ।

हमारा पहला कर्त्तव्य है गरीबी के प्रसार को रोकना यही हमारे दाम बाँधो आन्दोलन की सार्थकता है । जो परिवार थोडी बहुत मूल्य वृद्धि के कारण ही भयावह दरिद्रता के शिकार हो जाते है उनको बचाने के लिए जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुओं के दामों को लागत खर्च के आसपास ही बाँधना होगा ।

यह सम्मेलन मानता है कि जीवन की आवश्यक वस्तुओं का तथा इनके उत्पादन म सहायक सामग्रियो के उत्पादन तथा सब के वितरण के लिए हम मौजूदा बाजार व्यवस्था पर निर्भर नही कर सकते । सरकार इस कार्य को अपनी सामाजिक जिम्मेदारी के रूप म ही निभा सकती है ।

इनके अतिरिक्त अन्य वस्तुओं के उत्पादन की सीमा बाँधनी होगी या अगर जरूरी हो तो इनका उत्पादन ही बिलकुल बद कर देना होगा और उत्पादित वस्तु का दाम लागत के आधार पर ही निर्धारित करना होगा । ऐसा न करने पर अर्थनीति की अनियन्त्रित कमाई का पमा पूरी अर्थ-व्यवस्था को ही विकृत करता रहेगा जो गरीबी निवारण के कार्य म स्पष्टत बाधक होगा ।

कृषि उद्योग मे उत्पादन वृद्धि का तर्क देकर या निर्यात के तर्क के नाम पर कोई ऐसी सुविधा नही दी जानी चाहिए जिससे विषमता बढे या कायम रहे ।

मौजूदा हालत मे आय व्यय को सीमित किए बिना और मजदूरों की न्यूनतम आय निर्धारित किए बगैर दामो के बाँधने का काम नही हो सकता । हम अपनी आर्थिक योजना का निर्माण इस प्रकार करना चाहिए कि सबसे गरीब तबक के लोगो को काम मिले और किसानों को अपनी उपज से जीवन निर्वाह की पूर्ति हो सके जो कि अत्यन्त गरीब है और इस तरह एक ऐसी स्थिति लानी होगी जिस म किसानों के अपने उत्पादन को बढाकर अनाज के बदले अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं को खरीद सकें । इस प्रकार की ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के आधार पर हम जीवनोपयोगी वस्तुओं के उत्पादन के लिए उद्योग धन्धों का विकास करना होगा ।

वस्तुत हमारे देश म जिन कारणों स गरीबी है, उन्ही कारणो के फलस्वरूप उत्पादन म कमी होती है और दाम बढते है और गरीबी का फैलाव होता है ।

उपर्युक्त विचारों को साकार करने के लिए य कार्यक्रम है—(1) कारखाना म बनी किसी भी जीवनोपयोगी वस्तु का विक्रय मूल्य लागत खर्च के ड्योढे म लागत खर्च तथा सभी प्रकार के कर मुनाफा और वितरण पर होने वाले व्यय भी शामिल होगा (2) जीवनोपयोगी वस्तुओं के अलावा भी कारखाने म बनी चीजो के दाम सरकारी कर छोड कर ड्योढा से अधिक नही होना चाहिए (3) विभिन्न वस्तुओं के सर्वाधिक दाम को मद्देनजर रखते हुए ही सरकार को कर लगाना चाहिए । सरकार को न केवल कर पर बल्कि अपने खर्चे पर भी सीमा लगानी चाहिए । देश के दारिद्र्य को देखते हुए अनुत्पादक को बाँधना जरूरी ही नही अनिवार्य है, (4) लागत खर्च का हिसाब लगाने के लिए लगातार जाँच, निगरानी तथा नियन्त्रण रखना होगा,

(5) जमीन का पुनर्वितरण कर के किसानों को बीज सिंचाई, खाद आदि चीजें बिना कर के सरकार के द्वारा मुहैया की जाए, (6) किसान को उसके अनाज और कच्चे माल का ऐसा दाम मिले जो लागत खर्च और जीवन निर्वाह के अनुकूल हो, (7) खेतिहर और औद्योगिक वस्तुओं के दामों में सन्तुलन कायम हो, (8) दो फसलों के बीच किसी भी अनाज का दाम 20% से अधिक न हो, (9) आज की स्थिति में लोगों की निम्नतम आय को देखते हुए सर्वाधिक आय प्रति व्यक्ति 2000 रु. महीने से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। इस सीमा को बनाए रखने के लिए कुछ खास प्रकार के खर्चों पर पाबन्दी लगानी होगी, (10) उपभोग की चीजों के उत्पादन में असंख्य प्रकार के जो भेद है, उन्हें घटा कर इतना सीमित कर देना होगा जिससे एक ही चीज के दामों में बहुत अन्तर न हो (11) देश में कम से कम 20 हजार करोड़ रु का काले धन का कारोबार चल रहा है। इसके कारण एक समानान्तर अर्थ-व्यवस्था निर्मित हो गई है। बिना इसे खत्म किए दामों का बँधना कठिन होगा। इसके लिए बहुत से उपाय बताए गए है। किसी भी उपाय से सरकार इस काले धन की व्यवस्था को समाप्त करे।

गरीबी-निवारण और असमानता दूर करने के सरकारी प्रयत्न

देश की पचवर्षीय योजनाओं का एक प्रमुख उद्देश्य यह रहा है कि भारत की जनता की गरीबी को दूर किया जाए और आर्थिक विषमता की खाई पाटी जाए। इस दिशा में योजनाओं में जो व्यवस्थाएँ की गई, और योजनाओं की जो उपलब्धियाँ रही, उनका विवेचन पिछले अध्यायों में यथास्थान किया जा चुका है। पाँचवी पचवर्षीय योजना का सीधा लक्ष्य गरीबी और असमानता पर प्रहार करना तथा जनसख्या वृद्धि पर कठोर अकुश लगा देना था। मार्च, 1977 के सत्ता परिवर्तन के बाद जनता सरकार ने समूची अर्थ-व्यवस्था और समग्र नियोजन के प्रति एक नया दृष्टिकोण अपनाया है जो पिछले किसी भी समय की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी है। सन् 1978-1983 की छठी योजना का जो प्रारूप राष्ट्रीय विकास परिषद् के समक्ष प्रस्तुत हुआ है उसमें विभिन्न व्यवस्थाएँ इस प्रकार की है जिनसे बेरोजगारी और गरीबी के अभिशाप से कुछ मुक्ति मिलने की आशा बलवती हुई है। जनता सरकार कागज में लिखी बातों को अमली जामा पहनाने को कटिबद्ध दिखाई देती है, अत हमें आशा करनी चाहिए कि कांग्रेस शासन 30 वर्ष में जिन जन-आकाँक्षाओं की पूर्ति नहीं कर सका, उसे जनता शासन लगभग 10 वर्ष की अवधि में पूरी कर लेगा। वैसे नई राष्ट्रीय योजना का वास्तविक मूल्यांकन तो भविष्य के गर्भ में है।

जनता सरकार ने सन् 1978-79 का जो बजट प्रस्तुत किया है, उसका मुख्य लक्ष्य भी 'गरीबी-उन्मूलन' है। अखिल भारतीय ग्लास निर्माता सघ के चौतीसवें वार्षिक सम्मेलन में भाषण देते हुए वित्त मन्त्री श्री पटेल ने 14 मार्च को यह स्पष्ट शब्दों में कहा था—"जनता पार्टी की आर्थिक नीति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य गरीबी दूर करना है।" बजट में इस बात का स्पष्ट सकेत है कि सरकार इस प्राथमिक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कृत सकल्प है। कृषि और ग्रामीण विकास में अधिक पूँजी-निवेश द्वारा रोजगार के अधिक अवसर पैदा करना, बुनियादी सुविधाओं

का विकास और ग्रामीण उद्योगो मे अधिक पूंजी निवेश, गरीब लोगो का स्तर ऊँचा उठाने के उपाय हैं। गरीबी की समस्या बहुत बडी है और पिछले एक वर्ष मे मात्र सीमित सफलता ही प्राप्त की जा सकी है, परन्तु बजट के उद्देश्य एव निर्देश स्पष्ट हैं और फिर निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करने पर ही इस दिशा मे अत्यधिक प्रगति की जा सकती है।

मन्त्री महोदय ने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति इस बात से सहमत होगा कि देश मे प्राथमिक उद्देश्य गरीबी दूर करना होना चाहिए। निर्धनता रेखा से नीचे के लोगो के बारे मे अनुमान भिन्न भिन्न हो सकते है, परन्तु इस बात पर आम सहमति है कि ऐसे लोगो की सख्या करोडो मे है। यह निर्धनता या तो बेरोजगारी के कारण है, अथवा उचित रोजगार न मिल पाने के कारण है और यह ग्रामीण क्षेत्रो मे विशेष रूप से विद्यमान है। कृषि मजदूर, छोटे और सीमान्त कृषक तथा ग्रामीण उद्योगो मे काम करने वाले श्रमिक इतना कम कमाते हैं कि वे अपनी न्यूनतम जरूरतें भी पूरी नही कर पाते। शहर मे रहने वाले गरीबो की समस्या भी कम गम्भीर नही है क्योकि उनमे से बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो गाँवो से जीविका की खोज मे शहरो मे आए होते हैं। अनुमान है कि कुल मिलाकर लगभग 6 करोड लोगो, जो या तो बेरोजगार हैं अथवा जिन्हे उचित रोजगार प्राप्त नही है के लिए तलाश करना है। और यह उन्ही क्षेत्रो मे करना होगा जहाँ वे लोग रहते है, क्योकि बडी सख्या मे लोगों का स्थानान्तरण कठिन और सामान्यत अवांछनीय स्थितियो म ही होता है।

वित्त मन्त्री ने कहा कि कृषि और ग्रामीण विकास मे अधिक पूंजीनिवेश द्वारा रोजगार के अधिक अवसर पैदा किए जा सकते हैं। इसीलिए कृषि और सम्बद्ध सेवाओ, बुनियादी सुविधाओ, सिंचाई और बिजली के लिए पूंजीनिवेश मे काफी वृद्धि की जा रही है। ताकि ग्रामीण क्षेत्रो मे आय और रोजगार के अवसर बढ सकें।

मन्त्री महोदय ने कहा कि बजट का उद्देश्य अर्थ व्यवस्था का सामान्य पुनरुत्थान भी है। 11600 करोड रुपये के विकास परिव्यय से निसन्देह दोनो–प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अर्थ व्यवस्था मे माँग का स्तर बढेगा। इस विशेष रूप से उन उद्योगो, जिन्हे माँग की मन्दी का सामना करना पड रहा है, पर अवश्य लाभदायक प्रभाव पडेगा।

गरीबी और असमानता का निवारण केवल सरकार का ही काम नही है, सारे समाज का है। गरीबी उन्मूलन की विशालता को ध्यान मे रखना आवश्यक है। जब तक कतिपय शर्तों की पूर्ति नही की जाती तब तक योजना चाहे कितनी भी अच्छी हो देश अपना उद्देश्य प्राप्त नही कर सकता। सबसे बडी आवश्यकता दृढ स्वावलम्बन की भावना से कृषि, फैक्ट्री और कार्यालय मे कार्य करने की है। जीवन और कार्यकलाप के सभी क्षेत्रो मे सामाजिक अनुशासन बनाए रखना भी आवश्यक है। इसके लिए बलिदान करना पड़ेगा विशेषकर उन व्यक्तियो को जो अच्छी स्थिति मे हैं। इन मामलो पर काफी जन-चेतना पैदा हो चुकी है और गरीबी की चुनौती का सामना करने के लिए प्रत्येक नागरिक को अपना योगदान करना पडेगा। सम्बन्धित बाधाओं को देखते हुए काफी धैर्य से कार्य करना होगा। शताब्दियो पुरानी गरीबी को दूर करना कोई आसान काम नही है। अत राष्ट्र को सुनिश्चित कार्यवाही द्वारा, अपने सकल्प की पूर्ति हेतु सनद्ध हो जाना चाहिए।

11

भारत में बेरोजगारी-समस्या का स्वरूप तथा वैकल्पिक रोजगार नीतियाँ

(THE NATURE OF UNEMPLOYMENT PROBLEM AND ALTERNATIVE EMPLOYMENT-POLICIES IN INDIA)

भारत एक विकासमान किन्तु अर्द्ध-विकसित देश है जहाँ बेरोजगारी का स्वरूप औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों की अपेक्षा भिन्न है। देश मे काफी बड़ी सख्या मे श्रमिक और शिक्षित बेरोजगार हैं अथवा अल्प-रोजगार की स्थिति में हैं। ऐसे श्रमिकों की सख्या में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है, जो वर्ष के कुछ महीनों में तो कार्यरत होते हैं और शेष महीनो मे बेकार रहते हैं। भारत मे बेरोजगारी की समस्या इतनी विकराल बन चुकी है कि उससे हमारा सम्पूर्ण अर्थ-तन्त्र बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। समाजवादी समाज की स्थापना के लिए, लोगों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए, देश की बहुमुखी प्रगति और समृद्धि के लिए बेरोजगारी की समस्या के प्रभावी हल ढूँढना भारत के लिए निस्सन्देह एक आवश्यक शर्त और गम्भीर चुनौती है। इस ओर पूरा-पूरा ध्यान दिया जाना परमावश्यक है तथा समस्या का चिन्ताजनक पहलू यह है कि अब तक किए गए प्रयत्न बेरोजगारी की बढ़ती फौज पर अकुश नहीं लगा सके हैं। कुछ दृष्टियों से सफलता मिली है, पर कुल मिलाकर वह लगभग निष्प्रभावी ही मानी जानी चाहिए, क्योंकि प्रत्येक योजना के अन्त में बेरोजगारों की कुल सख्या पूर्वापेक्षा अधिक ही मिलती है।

भारत में बेरोजगारी का स्वरूप और किस्में
(Nature and Types of Unemployment in India)

भारत में बेरोजगारी के कई रूप हैं। इनमें खुली बेरोजगारी, आंशिक बेरोजगारी, ग्रामीण अल्प-रोजगारी, शिक्षित वर्ग की बेरोजगारी, औद्योगिक-क्षेत्र में बेरोजगारी आदि प्रमुख हैं। इन्हें दो मोटे वर्गों में रखा जा सकता है—ग्रामीण बेरोजगारी एवं शहरी बेरोजगारी। भारत मे बेरोजगारी के जो विभिन्न रूप उपलब्ध हैं, वे कृषि-प्रधान अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं मे प्रायः देखने को मिलते हैं।

संरचनात्मक बेरोजगारी (Structural Unemployment)—भारत में बेरोजगारी का विशेष पहलू यह है, कि यह बेरोजगारी 'सरंचनात्मक' (Structural) किस्म की है अर्थात् इसका सम्बन्ध देश के पिछड़े आर्थिक ढाँचे के साथ है। इसीलिए यह बेरोजगारी दीर्घकालिक प्रकृति (Chronic Nature) की है। अर्थात् भारत में श्रमिकों की सख्या की अपेक्षा रोजगार के अवसर अथवा रोजगार माता न केवल बहुत कम है, वरन् यह कमी देश की पिछड़ी अर्थ व्यवस्था से सम्बद्ध भी है। पूँजी-निर्माण दर बहुत नीची होने से रोजगार-मात्रा का कम पाया जाना स्वाभाविक है। इस दीर्घकालिक प्रकृति की बेरोजगारी का हल यही है कि देश का तेजी से आर्थिक विकास किया जाए।

छिपी या प्रच्छन्न बेरोजगारी (Disguised Unemployment)—भारत मे बेरोजगारी के इस रूप से श्रमिकों का बड़ा भाग प्रभावित है। यह बेरोजगारी मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों मे पाई जाती है। ऊपर से तो ऐसा लगता है कि व्यक्ति कार्यरत है किन्तु वास्तव मे, वे बेरोजगार होते हैं अर्थात् कार्यरत रहने के बावजूद उनसे उत्पादन मे कोई वास्तविक योगदान नही मिलता। प्रो. नर्कसे के मतानुसार अर्द्ध विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में कृषि-क्षेत्र म सलग्न अधिकांश श्रमिक ऐसे होते है जिन्हें यदि कृषि-कार्य से हटा लिया जाए तो कृषि उत्पादन मे कोई कमी नहीं होगी। आर्थिक दृष्टि मे ऐसे श्रमिको को बेरोजगार ही कहा जाएगा,क्योकि यह उत्पादन-कार्य मे कोई योग नही देते अथवा इनका सीमान्त उत्पादन शून्य होता है। चूंकि ऊपर से देखने पर ये श्रमिक काम मे लगे होते हैं, इसीलिए इनकी बेरोजगारी को 'प्रच्छन्न बेरोजगारी' कहा जाता है। ऐसी बेरोजगारी के सम्बन्ध मे यह कहना बहुत कठिन होता है कि कितने व्यक्ति इस रूप मे बेरोजगारी के शिकार हैं।

अल्प-बेरोजगारी (Under-employment)—बेरोजगारी का 'अल्प-बेरोजगारी' स्वरूप भी देश मे पाया जाता है। इसके अन्तर्गत वे श्रमिक आते हैं जिन्हें थोडा बहुत काम मिलता है और वे थोड़ा बहुत उत्पादन मे योगदान भी देते है, किन्तु जिन्हें वस्तुतः अपनी क्षमतानुसार कार्य नहीं मिलता अथवा पूरा कार्य नही मिलता। ये श्रमिक उत्पादन म अपना कुछ न कुछ योगदान तो करते हैं, लेकिन उतना नही कर पाते जितना कि ये वस्तुतः कर सकते हैं। बेरोजगारी का यह रूप भी एक प्रकार से प्रच्छन्न बेरोजगारी का ही एक अंग है।

मौसमी बेरोजगारी (Seasonal Unemployment)—बेरोजगारी का यह स्वरूप भी मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में ही देखने को मिलता है। कृषि म सलग्न अधिकांश श्रमिक ऐसे होते हैं,जिन्हें वर्ष के कुछ महीनो मे काम उपलब्ध नही होता। ये श्रमिक वर्ष के कुछ मौसम मे तो पूर्णरूप से कार्य मे व्यस्त रहते हैं और कुछ मौसम म बिल्कुल बेरोजगार हो जाते हैं। साथ ही कृषि छोड़कर दूसरे काम की तलाश मे बाहर भी नहीं जा पाते।

खुली बेरोजगारी (Open Unemployment)—इसका अभिप्राय ऐसी बेरोजगारी से है जिसमे श्रमिकों को कोई रोजगार नहीं मिलता, वे पूर्णरूप से

बेरोजगार रहते है। गाँवो से अनेक व्यक्ति रोजगार की तलाश में शहरों मे जाते हैं, लेकिन कार्य न मिल पाने के कारण बेरोजगार पड़े रहते हैं।

चक्रीय बेरोजगारी (Cyclical Unemployment)—बेरोजगारी का यह स्वरूप प्राय. पूंजीवादी उद्योग प्रधान तथा विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं मे विशेष रूप से दिखाई देता है। वहाँ माँग मे कमी आ जाने से कुछ उद्योग अल्पकाल के लिए बन्द हो जाते है और आर्थिक मन्दी की स्थिति पैदा हो जाती है। भारत मे भी कुछ वर्षों से औद्योगिक क्षेत्र मे मन्दी का वातावरण छा जाने से कुछ उद्योगों मे चक्रीय बेरोजगारी प्रकट हुई है। सूती वस्त्र उद्योग और इंजीनियरिंग उद्योग इसके विशेष रूप से शिकार बने हैं। सन् 1975 में देश मे बिजली के पखों, मोटरकारों, एयर कण्डीशनरो आदि की माँग घट जाने से सम्बन्धित कारखानो मे उत्पादन क्षमता का कम प्रयोग होने लगा जिससे श्रमिको मे बेरोजगारी फैलने की स्थितियां पैदा हो गई सरकार ने जागरूकता प्रदर्शित की और सन् 1976–77 के बजट मे उत्पादन शुल्कों मे कमी करके इन उद्योगों मे माँग बढाने का प्रयास किया गया। समय-समय पर भारत मे इस प्रकार की चक्रीय बेरोजगारी उत्पन्न होकर पहले से ही विद्यमान बेरोजगारी की समस्या को और बढा देती है।

शिक्षित बेरोजगारी (Educated Unemployment)—शिक्षा के प्रसार के साथ साथ इस प्रकार की बेरोजगारी का कुछ वर्षों से अधिक प्रसार होने लगा है। शिक्षित व्यक्तियो या श्रमिको की कार्य के प्रति प्रत्याशाएँ अलग सी होती हैं और वे विशेष प्रकार के कार्यों के योग्य भी होते है। शिक्षित बेरोजगारो मे अधिकांश ऐसे हैं जो अल्प-रोजगार की स्थिति मे हैं और विशाल सख्या मे ऐसे है, जो खुली बेरोजगारी की अवस्था मे हैं। शिक्षित बेरोजगार अधिकतर शहरो मे पाए जाते हैं। शिक्षित ग्रामीण भी रोजगार की तलाश में प्राय' शहरो मे भटकते रहते हैं।

बेरोजगारी की माप
(Measurement of Unemployment)

भारत मे बेरोजगारी के विभिन्न प्रकारो को देखते हुए प्रश्न उठता है कि बेरोजगारी की कौनसी किस्म मे कितने बेरोजगार हैं अथवा देश मे कुल बेरोजगारों की वास्तविक सख्या कितनी है ? लेकिन इस प्रश्न का उत्तर सरल नही है, क्योंकि देश मे बेरोजगारी की उचित माप असम्भव सी है। हमारे यहाँ बेरोजगारी कुछ इस प्रकार की है कि अभी तक ठीक ढग से इसकी माप नही की जा सकी है और इस सम्बन्ध में उपस्थित विभिन्न कठिनाइयों को देखते हुए ही सन् 1971 की जनगणना मे बेरोजगारों के आगमन का कार्य बन्द कर दिया गया है। दांतेवाला समिति की सन् 1970 में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार देश मे बेरोजगारी के सम्बन्ध मे जो भी अनुमान लगाए गए हैं, वे अविश्वसनीय हैं और समुचित अवधारणाओं तथा विधियों के सहारे नही लगाए गए हैं।

भारत में कृषि-क्षेत्र में प्रच्छन्न बेरोजगारी का मापना एक बहुत ही कठिन समस्या है, क्योंकि इस बात का पता लगाना लगभग असम्भव ही है कि कृषि-क्षेत्र में

कितने व्यक्तियो की वस्तुत आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, देश मे कृषि, मौसम पर निर्भर है और काम-काज मौसम के अनुसार चलता है अर्थात् वर्ष के कुछ भाग मे अत्यधिक श्रमिको की आवश्यकता है तो कुछ भाग मे बहुत कम। अत जो श्रमिक किसी एक समय मे उत्पादन-दृष्टि से बहुत आवश्यक होते हैं, वे किसी दूसरे समय मे गैर-जरूरी बन जाते हैं। यह भी एक बडी कठिनाई है कि ग्रामीण बेरोजगारी के सम्बन्ध मे सही आँकडो का अभाव है। शहरी बेरोजगारी के सम्बन्ध मे भी आँकडो का अभाव है, जो आँकडे उपलब्ध हैं वे रोजगार कार्यालयो द्वारा तैयार किए गए हैं। इन कार्यालयो मे मुख्यत. शहरी लोग ही अपना नाम दर्ज कराते है और वह भी प्राय: कम सख्या मे। देश मे बेरोजगार व्यक्तियो के लिए इन कार्यालयो मे नाम दर्ज कराना अनिवार्य नही है, अतः विशाल सख्या मे लोग अपना नाम इन कार्यालयो मे दर्ज नही करवाते। एक अध्ययन के अनुसार, भारत मे लगभग 25% बेरोजगार ही—और वे भी शहरी—इन कार्यालयो मे अपना नाम दर्ज कराते हैं। अधिकांश व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो कार्यरत तो होते हैं लेकिन बेरोजगारो की सूची मे अपना नाम इसलिए दर्ज करा देते हैं कि उन्हे अधिक अच्छी नौकरी का अवसर मिल सके। सक्षेप मे बेरोजगारी की माप सम्बन्धी विषम कठिनाइयों के परिणामस्वरूप ही देश मे बेरोजगारी के सम्बन्ध मे अधिक अनुमान उपलब्ध नही है और जो थोडे बहुत हैं उनमे भी परस्पर बहुत अन्तर हैं।

भारत में बेरोजगारी के अनुमान
(Estimates of Unemployment in India)

यद्यपि बेरोजगारी के बारे मे विश्वस्त अनुमान और आँकडे उपलब्ध नही हैं, तथापि इसमे सदेह नही कि देश के ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र मे बहुत अधिक सख्या मे श्रमिक और शिक्षित व्यक्ति बेरोजगार है। दांतेवाला समिति के जो भी विचार रहे हो, लेकिन ये विचार श्रम-बाजार मे विद्यमान परिस्थितियो पर आधारित नही हैं और इस निष्कर्ष से बहुत कम लोगो की सहमति होगी कि ग्रामीण क्षेत्रो मे बेरोजगारी-समाधान का उद्देश्य प्राप्त करने मे असमर्थ रही है। इसके विपरीत, प्रत्येक उत्तरोत्तर योजना के साथ बेरोजगारो की सख्या मे बढोतरी होती गई है। एक अनुमान के अनुसार रोजगार कार्यालयो मे पजीकृत बेरोजगारो की सख्या एक करोड से अधिक है और इससे भी बडी सख्या उन बेरोजगार लोगो की है जिनके नाम कार्यालयों मे दर्ज नही हैं और जिनके बारे मे अधिकृत आँकडे उपलब्ध नही। अनुमान है कि केवल ग्रामीण क्षेत्रो मे ही पांच करोड से अधिक लोग बेरोजगारी या अर्द्ध-बेरोजगारी से जूझ रहे हैं। बेरोजगारी का अर्थ है—काम करने योग्य और काम करने के इच्छुक लोगो के लिए काम का अभाव। यानी वह व्यक्ति बेरोजगार है जो शारीरिक एव मानसिक दृष्टि से काम करने की क्षमता तो रखता है परन्तु उसे काम नही मिलता अथवा काम से अलग होने के लिए बाध्य किया जाता है।

पचवर्षीय योजनाओ मे बेरोजगारी के अनुमान

एक अध्ययन के अनुसार प्रथम योजना के अन्त तक कुल श्रम-शक्ति मे से

केवल 2·9% व्यक्ति बेरोजगार थे, तृतीय योजना के अन्त तक बेरोजगारी की मात्रा बढ़कर 4 5% हो गई और मार्च, 1969 तक यह 9 6% के आश्चर्यजनक आँकड़े तक पहुँच गई। चतुर्थ योजना के प्रारम्भ मे ही लगभग 100 लाख व्यक्ति बेरोजगार थे और यह अनुमान था कि चतुर्थ योजना के दौरान लगभग 230 लाख नए श्रमिक श्रम-बाजार मे प्रवेश कर जाएँगे। अतः नौकरियाँ प्राप्त करने वालो की संख्या 330 लाख हो जाएगी। नौकरियो की इस माँग के विरुद्ध, 185 से लेकर 190 लाख तक नौकरियाँ कायम की जाएँगी। जिनमे से 140 लाख गैर-कृषि-क्षेत्र में और 43 से 50 लाख कृषि-क्षेत्र मे होगी। चतुर्थ योजना के अन्त पर 140 लाख बेरोजगार व्यक्ति शेष रह जाने की सम्भावना व्यक्त की गई।

मार्च, 1978 की योजना मे प्रकाशित अपने एक लेख मे श्री नारायण व्यास ने पचवर्षीय योजनाओ मे बेरोजगारों की सख्या निम्नानुसार बताई है—

बेरोजगार लोगों की संख्या (लाखों मे)

योजना काल	बेरोजगारों का पिछला बकाया	नई श्रम शक्ति प्रवेश	योजनाकाल में कुल बेरोजगार	योजनाकाल मे रोजगार की व्यवस्था	योजना के अन्त में शेष बेरोजगार
प्रथम पचवर्षीय योजना	33	90	123	70	53
द्वितीय पचवर्षीय योजना	53	118	171	100	71
तृतीय पचवर्षीय योजना	71	170	241	145	96
तीन वार्षिक योजनाएँ	96	140	236	110	126
चतुर्थ पचवर्षीय योजना	126	273	399	180	219

भगवती समिति के अनुमान

भगवती समिति की रिपोर्ट मई, 1973 मे प्रकाशित, तथ्यो के अनुसार सन् 1971 मे देश मे बेरोजगार व्यक्तियो की सख्या लगभग 187 लाख थी। इनमे से 90 लाख तो ऐसे व्यक्ति थे जिनके पास कोई रोजगार नही था और 97 लाख ऐसे थे, जिनके पास 14 घण्टे प्रति सप्ताह का कार्य उपलब्ध था और जिन्हे बेरोजगार ही माना जा सकता था। इनमे से 161 लाख बेरोजगार व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों से थे और 26 लाख शहरी क्षेत्रो से। कुल श्रम-शक्ति के प्रतिशत के रूप मे बेरोजगार व्यक्तियों की मात्रा 10 4% थी। ग्रामीण क्षेत्रो मे बेरोजगारी की मात्रा 10·9% और नगरीय क्षेत्रो मे 8·1% थी। यह विवरण निम्नलिखित सारणी मे स्पष्ट है—

1971 मे भारत में बेरोजगार श्रमिक (लाखो मे)

मद	कुल	ग्रामीण	नगरीय
कुल बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या	187	161	26
कुल श्रम-शक्ति	1803·7	1483 7	32 0
बेरोजगार श्रम-शक्ति के प्रतिशत रूप में	10·4	10·9	8·1

समिति ने सन् 1971 की जनसंख्या में अल्प-रोजगार प्राप्त लोगों का भी अनुमान लगाया था। यह अनुमान राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण (NSS) के 19वें दौर में अल्प रोजगारों के प्रतिशतों पर आधारित है। इस अनुमान का संक्षेप इस प्रकार है–

(लाखों में)

सप्ताह में काम के घण्टे	1971 की जनसंख्या में अल्प-रोजगार व्यक्ति		
	पुरुष	स्त्रियाँ	योग
ग्रामीण (1—14 घण्टों तक)	44 04	40 02	84 06
नगरीय (1—14 घण्टों तक)	7 08	5 01	12 09
योग	52 02	45 03	97 05

जहाँ तक शिक्षित वर्ग में बेरोजगारों की संख्या का सम्बन्ध है, एक अध्ययन के अनुसार सन् 1951 में यह संख्या लगभग 2 4 लाख थी जो सन् 1972 में 32 8 लाख हो गई अर्थात् इसमें 13 गुना से भी अधिक वृद्धि हुई। सन् 1970-72 के बीच शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में लगभग 14 6 लाख की तीव्र वृद्धि हो हुई।

रोजगार कार्यालयों के आँकड़े

वर्ष	पञ्जीकृत बेरोजगार
1961	18 लाख
1966	26 लाख
1971	51 लाख
अक्तूबर, 1975	93 लाख
दिसम्बर, 1976	98 लाख
मार्च, 1977	102 लाख

रोजगार कार्यालयों के आँकड़ों की कुछ कमियाँ हैं। इनमें सभी बेरोजगार व्यक्ति अपना नाम दर्ज नहीं करा पाते और कुछ व्यक्ति वर्तमान काम से अच्छा काम पाने की आशा में भी अपना नाम लिखा देते हैं।

प्रो. राजकृष्ण के अनुमान

प्रो राजकृष्ण ने अपने अध्ययन में बेरोजगारों के जो अनुमान प्रस्तुत किए हैं उनमें बेरोजगार लोगों के साथ-साथ उन अल्प रोजगार प्राप्त लोगों को भी शामिल किया गया है जो अतिरिक्त काम के लिए उपलब्ध होते हैं। उन्होंने सन् 1971 में बेरोजगारों की संख्या के लिए दो अनुमान प्रस्तुत किए हैं—

प्रथम अनुमान के अनुसार, सन् 1971 में 185 लाख व्यक्ति बेरोजगार थे। इनमें 91 लाख व्यक्ति पूर्णतया बेरोजगार थे और 94 लाख व्यक्ति अल्प रोजगार के शिकार थे। उन्हें सप्ताह में 28 घण्टे या और भी कम समय के लिए काम मिल पाता था।

द्वितीय अनुमान के अनुसार सन् 1971 में 293 लाख व्यक्ति बेरोजगार थे जिनमें 91 लाख व्यक्ति पूर्ण बेरोजगारी और 202 लाख व्यक्ति गम्भीर अथवा

साधारण अल्प-रोजगारी की स्थिति में थे। साधारण रूप से बेरोजगारी की स्थिति में प्रो. राजकृष्ण ने उन लोगों को माना है जिन्हें सप्ताह में 28 घण्टों से अधिक किन्तु 42 घण्टों से कम काम मिल पाता है। गम्भीर अल्परोजगारी से ग्रस्त लोगों को सप्ताह में 28 घण्टे अथवा और भी कम समय के लिए ही काम मिल पाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के अनुमान

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संघ (I. L. O) के एशिया सम्बन्धी एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में सन् 1962 में 9·0 प्रतिशत बेरोजगारी विद्यमान थी, किन्तु सन् 1972 में कुल श्रम-शक्ति के अनुपात के रूप में 11 प्रतिशत व्यक्ति बेरोजगार थे। अतः स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संघ का यह अनुपात भगवती समिति के अनुमान के अनुरूप ही है।

चिन्तामणि देशमुख एवं अन्य अर्थ-शास्त्रियों के अनुमान

भारत के एक भूतपूर्व वित्तमन्त्री चिन्तामणि देशमुख के अनुसार देश में लगभग एक करोड़ 50 लाख व्यक्ति बेकार हैं, लेकिन एक अन्य अर्थशास्त्री के अनुसार इस समय लगभग आठ करोड़ व्यक्ति बेरोजगार है। इस संख्या में ऐसे लोगों को भी सम्मिलित किया गया है जो अर्द्ध-बेकार हैं। किन्तु साधारणतया करीब 4 करोड़ 50 लाख व्यक्तियों को बेकारी की सूची में सम्मिलित किया जा सकता है।

आज शायद ही कोई ऐसा परिवार हो जिसमें कोई बेरोजगार न हो। देश में बेरोजगारी की जो स्थिति है उसकी अब और उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह हमारी गरीबी का जीता जागता प्रमाण है। 31 मार्च, 1977 को पंजीकृत शिक्षित और अशिक्षित बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या एक करोड़ दो लाख थी। वास्तव में लोगों को रोजगार प्रदान करने की समस्या काफी वर्षों तक हमारे साथ रहेगी। इसका कारण यह है कि जिन व्यक्तियों को 1990 में तथा 1990 से प्रारम्भ होने वाली दशाब्दी में रोजगार प्रदान करना होगा वे देश में जन्म ले चुके हैं। अतः आगामी दो दशाब्दियों तक काफी कठिनाइयों का सामना करना होगा। गरीबी भारत का दुर्भाग्य है तो देश में फैली बेरोजगारी एक अभिशाप। विश्व के अन्य राष्ट्रों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट है कि लगभग सभी देश इस समस्या से पीड़ित हैं। अमेरिका जैसे सम्पन्न राष्ट्र में भी जनसंख्या का लगभग पाँचवाँ भाग अभी भी गरीब है। पर भारत में तो समस्त जनसंख्या का 40 प्रतिशत भाग ही ऐसा है जो निर्धनता रेखा को पार करता है, अन्यथा अधिकांश जनता इस रेखा से नीचे ही जीवन-यापन करने को विवश है।[1]

पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान रोजगार-विनियोग अनुपात

रिजर्व बैंक के विनियोग और रोजगार के अनुमान के अनुसार प्रथम योजना के दौरान एक नई नौकरी कायम करने के लिए औसतन 5,854 रुपये का विनियोग

1. योजना 7-21 मार्च 1978 (श्री नारायण व्यास का लेख : बेरोजगारी की समस्या और समाधान), पृष्ठ 22.

करना पड़ा और द्वितीय योजना मे एक अतिरिक्त नौकरी कायम करने के लिए 7,031 रुपये का विनियोग करना पड़ा। तृतीय योजना मे एक अतिरिक्त नौकरी कायम करने के लिए औसतन 6,939 रुपये का विनियोग हुआ। प्रथम तीन योजनाओं के 15 वर्षों मे कुल 315 लाख नई नौकरियाँ कायम की गई, जिनमे से 225 लाख अर्थात् लगभग 72% गैर-कृषि क्षेत्र मे कायम की गई। प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओं के दौरान रोजगार और विनियोग का यह चित्र निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट है[1]—

पचवर्षीय योजनाओ के दौरान रोजगार और विनियोग

मद	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना
1 स्थापित अतिरिक्त रोजगार (लाखो मे)			
(क) गैर कृषि क्षेत्र	55	65	105
(ख) कृषि-क्षेत्र	15	35	40
कुल (क+ख)	70	100	145
2 कुल विनियोग (करोड रुपये)	3,300	6,750	11,370
3. 1960-61 के मूल्यो पर विनियोग का सूचकांक	82	96	118
4 1960 61 के मूल्यो पर विनियोग (करोड रुपये)	4 098	7 031	10 062
5 रोजगार विनियोग अनुपात	1 5854	1 7031	1 6939

भारत मे ग्रामीण बेरोजगारी
(Rural Unemployment in India)

भारत मे ग्रामीण बेरोजगारी के सम्बन्ध मे तथ्य न तो स्पष्ट है और न यथार्थ ही। ग्रामीण बेरोजगारी के सम्बन्ध मे रहस्य अब भी बना हुआ है, परन्तु कई बातें अब बिल्कुल स्पष्ट हो गई हैं[2]—

(क) परम्परागत अर्थ मे इतनी बेरोजगारी नही है जितनी कि हम कल्पना करते हैं। सम्भवत हम ऐसी परिस्थिति मे हो, जबकि बेरोजगारी तो कम हो, परन्तु रोजगार मे आमदनी का स्तर बहुत निम्न हो।

(ख) परम्परागत बेरोजगारी और गरीबी सम्भवत इतने घनिष्ठ रूप मे सम्बद्ध न हो, जैसाकि विशुद्ध तार्किक दृष्टि से लगता है—यह एक ऐसी सम्भावना है जिसके सत्य होने की स्थिति मे बहुत दूरगामी परिणाम हो सकते है।

(ग) ग्रामीण अर्थ व्यवस्था मे रोजगार और बेरोजगारी के स्वरूप की तह मे जाने और छान-बीन करने की आवश्यकता अब भी बनी हुई है और हम यह मान कर चलना होगा कि हम इस समस्या को मात्र 'श्रम-शक्ति' की धारणा से, चाहे वह कितनी ही परिष्कृत हो, नही सुलझा सकेंगे।

1 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया बुलेटिन, दिसम्बर 1969—रुद्रदत्त एव सुन्दरम से उद्धत, पृ 646
2 योजना—22 मार्च, 1973—बेरोजगारी पर व्यावहारिक आर्थिक अनुसन्धान की राष्ट्रीय परिषद के निदेशक श्री आई. जैड. भट्टी का लेख।

रोजगार सृजन की योजनाएँ

ग्रामीण बेरोजगारी के सम्बन्ध मे छान-बीन तो जारी है, परन्तु सरकार ने ग्रामीण रोजगार के लिए ग्रनेक योजनाएँ चालू की हैं, जिनमे से निम्नलिखित अधिक महत्त्वपूर्ण हैं—

1. ग्रामीण रोजगार योजना—यह योजना सन् 1971-72 में एक तीन वर्षीय योजना के रूप मे ग्रारम्भ की गई थी। इस योजना का उद्देश्य श्रम-प्रधान परियोजनाएँ चलाकर देश के प्रत्येक जिले मे रोजगार के नए ग्रवसर पैदा करना और स्थानीय विकास योजनाओं के माध्यम से टिकाऊ परिसम्पत्तियाँ पैदा करना है। योजना आरम्भ करते समय इसका लक्ष्य प्रत्येक जिले मे प्रति वर्ष 300 दिनो के लिए कम से कम एक हजार व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराने का था। देश में कुल 355 जिले हैं और इस प्रकार 3,55,000 लोगो को 300 दिनों के लिए अर्थात् 10,65,00,000 जन-दिनों का रोजगार देने का लक्ष्य रखा गया। योजना को पूर्णतया केन्द्रीय क्षेत्र योजना का रूप दिया गया और इसके लिए 50 करोड़ रु. की राशि का प्रावधान रखा गया।

ग्रामीण रोजगार योजना, जो सन् 1971-72 में एक तीन वर्षीय योजना के रूप मे प्रारम्भ की गई, काफी प्रभावशाली सिद्ध हुई। सन् 1973-74 तक की प्रगति का ब्यौरा निम्न सारणी से स्पष्ट है[1]—

निधि का ग्रावटन, व्यय और रोजगार

वर्ष	निधि का आवटन (लाख रु. में)	दी गई राशि (लाख रु. में)	किया गया वास्तविक व्यय (लाख रु. में)	पैदा किया गया रोजगार (लाख जन-दिनों में)
1971-72	5,000·00	3,373·43	3,116·58	789·66
1972-73	4,885·00	4,711·395 (बाद मे 5 040·745 हो गया)	5,339·57	1322 51
1973-74 (30-9-73 तक)	4,745·55	1,595 74	976·13	256·31

ग्रामीण रोजगार की प्रभावशाली योजना से क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं को ग्रामीण विकास के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रमो के अन्तर्गत बेरोजगार जन-शक्ति का उचित उपयोग करने तथा उन्हे उत्पादक और निर्माणात्मक कार्यों में लगाने की दिशा मे सफल अनुभव हुआ है। असम, मेघालय, तमिलनाडु, केरल, ग्रान्ध्र प्रदेश, गुजरात, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के 40 से अधिक जिलों का पर्यवेक्षण यही सिद्ध करता है कि ग्रामीण रोजगार योजना काफी सफल रही है और इसे समाप्त न करके अधिक प्रभावी रूप में आगे भी जारी रखना चाहिए।

1. कुरुक्षेत्र—अप्रैल, 1974—'ग्रामीण रोजगार योजना' पर श्री टी. सी. पाण्डे का लेख।

2. छोटे किसानों की विकास एजेन्सी—इस योजना का लक्ष्य थोड़ी सहायता देकर छोटे किसानों को अपने पैरों पर खड़ा होने के योग्य बनाना है। छोटे किसानों के अन्तर्गत वे किसान आते है, जिनके पास 2 5 से 3 एकड सिंचित (या सिंचाई के योग्य) या 7 5 एकड तक असिंचित भूमि है। यह सहायता आदानों या ऋण के रूप में होती है ताकि किसान नए बीजो और खादों का पूरा-पूरा लाभ उठा सके।[1]

3. सीमान्त कृषक और कृषि श्रमिक एजेन्सी—इस योजना के भी वही लक्ष्य हैं, जो छोटे किसानों की विकास एजेन्सी के हैं। अन्तर केवल इतना है कि यह योजना छोटे किसानों की विकास एजेन्सी के अन्तर्गत न आने वाले छोटे किसानों और कृषि-श्रमिको के लिए है। इसलिए यह छोटे किसानों की विकास एजेन्सी की पूरक है। ग्रामीण कार्यों के माध्यम से कृषि-श्रमिको को अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध कराना और छोटे किसानों को उसी प्रकार ऋण, आदान तथा आर्थिक सहायता उपलब्ध कराना, जिस प्रकार वे छोटे किसानों की विकास एजेन्सी के अन्तर्गत उपलब्ध कराई जाती हैं, इस योजना का लक्ष्य है।

4. सूखाग्रस्त क्षेत्रों के लिए कार्यक्रम—ग्राम्य निर्माण-कार्यक्रम नामक योजना के लिए यह नया नाम है, जो 54 सूखाग्रस्त जिलो तक सीमित है। इस योजना का लक्ष्य 'उत्पादन-प्रधान' ऐसे निर्माण कार्यों को हाथ मे लेना है जिनमे श्रम-प्रधान तकनीको का प्रयोग हो, ताकि सूखे के कारण पैदा होने वाली कमी की भीषणता को कम किया जा सके।

उपरोक्त विभिन्न रोजगार-सृजन-योजनाएँ काफी उपयोगी सिद्ध हुई हैं। व्यावहारिक आर्थिक अनुसंधान की राष्ट्रीय परिषद् के निदेशक श्री आई जैड. भट्टी ने 22 मार्च, 1973 के योजना-अंक मे तर्क प्रस्तुत किया है कि यदि हम परम्परागत बेरोजगारी के स्थान पर रोजगार की प्रभावशीलता पर विचार करें तो ग्रामीण बेरोजगारी सम्बन्धी रहस्य काफी मात्रा तक लुप्त हो जाएगा और हम गरीबी की समस्या से भी अधिक अच्छी तरह निपटने मे समर्थ होंगे। उपचार की दृष्टि से हम स्वय उत्पादन के सृजन पर उतना बल नहीं देंगे जितना कि ससाधनों के विकास पर। उपरोक्त सरकारी योजनाओं मे यद्यपि दोनों ही तत्त्व हैं, तथापि ससाधनों का विकास वस्तुत इनमे गौण महत्त्व रखता है। श्री भट्टी के अनुसार गाँवो की गरीबी की समस्या का सही दर्शन हमे इस बात के लिए प्रेरित करे कि हम ससाधनों के विकास और तत्काल ही संस्थापक ढांचे के विकास पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। इसके लिए नीति-सम्बन्धी कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तन करने होंगे।

ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करने के उपाय

ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करने और ग्रामीण जन शक्ति का समुचित उपयोग करने के लिए सरकारी क्षेत्र मे योजनाओं द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रमों के अन्तर्गत

1 योजना, दिनांक 22 मार्च, 1973—'बेरोजगारी' पर आई जैड भट्टी (व्यावहारिक आर्थिक अनुसंधान की राष्ट्रीय परिषद् के निदेशक) का लेख, पृष्ठ 6

भवन कृषि-कार्यों में मजदूरों का उपयोग करना, निर्माण-सुविधाओं को बढ़ाना, गाँवों में लघु और ग्राम्य उद्योगों को संगठित करना आदि अनेक कार्य सम्मिलित हैं। सरकार की यह नीति रही है कि जहाँ तक हो सके मानव-श्रम-क्षमता का पूर्ण उपयोग किया जाए तथा आधुनिक मशीनों और यन्त्रों का उपयोग केवल उन्हीं क्षेत्रों में किया जाए जहाँ मानव-श्रम विकास-कार्यक्रमों को पूरा करने में समर्थ न हो। लेकिन इन सब बातों के बावजूद ग्रामीण बेरोजगारी कम होने के स्थान पर ही है। अतः आवश्यक है कि पूरी ग्रामीण शक्ति का उचित उपयोग करने के लिए विशाल पैमाने पर कार्य किए जाएँ। इसके लिए कुछ उपयोगी सुझाव निम्नलिखित हैं—

1 ग्राम-पंचायतों के अन्तर्गत जो विभिन्न कार्यक्रम (नालियाँ खुदवाना, तालाब खुदवाना, सड़कें बनाना, छोटे-छोटे पुल बाँधना, भवन-निर्माण करना आदि) चल रहे हैं, उन्हें अधिक व्यापक स्तर पर और अधिक प्रभावी रूप में आगे भी जारी रखा जाए।

2. पंचायतों को सौंपे गए कार्यों के अतिरिक्त स्थायी रूप से चलने वाले अन्य रोजगार-साधन भी गाँवों में प्रारम्भ किए जाने चाहिएँ तथा इनके लिए सेवा-सहकारी संस्थाओं को उत्तरदायी बनाया जाए। देश का समस्त ग्रामीण-क्षेत्र सेवा-सहकारी संस्थाओं से सम्बद्ध है। उनका उपयोग कृषि-ऋण वितरण के लिए तो किया ही जाता है, किन्तु इनके अतिरिक्त ग्रामीण उद्योगों जैसे पशुपालन, दुग्ध व्यवसाय, मछली पालन, मुर्गीपालन, टोकरी बनाना, साबुन बनाना, मिट्टी के बर्तन बनाना, बुनकर उद्योग, लुहारी, सुनारी, आदि के लिए साख की पूर्ति तथा अन्य सुविधाओं की व्यवस्था भी की जानी चाहिए। इन ग्रामीण उद्योगों एवं व्यवसायों का व्यापक रूप से विस्तार किया जाए। अधिक से अधिक ग्रामीण जन-शक्ति का स्थायी उपयोग उन्हें इन उद्योगों में लगाकर ही किया जा सकता है। इससे गाँव में रोजगार के साथ ही उत्पादन में भी वृद्धि होगी।

3 सहकारी संयुक्त कृषि समिति या सामूहिक सहकारी कृषि समिति, मछली पालन समिति, सिंचाई समिति, श्रम-निर्माण समिति, औद्योगिक एवं बुनकर समिति आदि की स्थापना अलग से भी गाँवों में करना उपयोगी है। इन समितियों द्वारा गाँवों में रोजगार की व्यवस्था की जा सकती है।

4. गाँवों के 10 से 18 वर्ष तक के बच्चों को इस प्रकार के काम देने चाहिए, जिन्हें वे अपने विद्या-अध्ययन करने के साथ-साथ कर सकें। इससे उन्हें और उनके परिवार को अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकेगी। पाठशाला भवन की सफाई, उसकी मरम्मत, उसमें फूलों का बाग लगाना, गाँव में मन्दिरों तथा पंचायत-घर आदि के आस-पास बाग बगीचा लगाना, मिट्टी के खिलौने बनाना, काष्ठ की वस्तुएँ एवं खिलौने बनाना, कढ़ाई, ड्राइंग, सिलाई, कटाई, महिला एवं बच्चों के बचत बैंक खोलना, पाठशाला में सहकारी उपभोक्ता भण्डार खोलना एवं उसका संचालन करना आदि अनेक कार्य हैं, जो विद्याध्ययन के साथ-साथ किए जा सकते हैं।

5 भूमि के चकबन्दी कार्यक्रम को तेजी से अमल म लाया जाए ताकि किसान उसमे कुआ बनाकर डीजल-इजन या बिजली की मोटर से सिंचाई कर सके। सिंचाई की व्यवस्था होने से किसान वर्ष मे दो या तीन फसल तैयार करके अपने बेकार समय का पूरा उपयोग कर सकेंगे। साथ ही, एक जगह सारी भूमि इकट्ठी होने से भूमि की देखभाल अच्छी तरह हो सकेगी।

6 सरकार ऋण प्रणाली को सुगम बनाए। सरकार ने कृषि की उन्नति के लिए ऋण व्यवस्था तो की है परन्तु उनकी विधि इतनी पचीदा, उलझनपूर्ण और जटिल है कि साधारण कृषक 6 माह तक अथक परिश्रम करने के पश्चात् भी ऋण प्राप्त नही कर सकता। अत सरकार को चाहिए कि ऋण स्वीकार करने की विधि को अधिक सरल बनाया जाए। प्रत्येक पचायत स्तर पर एक ऐसा चलता-फिरता कार्यालय बनाया जाए जो निश्चित तिथि पर गाँव मे जाए और पटवारी, ग्राम-सेवक तथा सहकारी समितियो से आवश्यक सूचना एकत्रित करके, ऋण उसी स्थान पर स्वीकार करे। किसान को उसकी जमीन सम्बन्धी जानकारी के लिए पास बुक दी जाए, जिसमे ऋण, यदि कोई लिया हो, तो वह भी लिखा जाए।

7 शिल्पी वर्ग जिसमे लुहार, खाती बुनकर, चर्मकार आदि सम्मिलित हैं, बहुत दयनीय अवस्था मे है। इस वर्ग के लोगो के अपने धन्धे बन्द होते जा रहे हैं फलस्वरूप ये लोग शहरो मे जाकर नौकरी की तलाश म भटकते फिरते हैं या गाँवो म रहकर अपना निर्वाह बडी ही दुखद स्थिति मे करते हैं अत आवश्यक है कि इस वर्ग के लोगो को उचित ट्रेनिंग देकर उनकी अपनी सहकारी समितियाँ बनवाई जाएँ तथा उनके धन्धो का आधुनिकीकरण करने मे उन्हे धन और आवश्यक साज-सामान की सुविधा दी जाए।

8 जो ग्राम शहरो के पास स्थित हैं, जहाँ आवागमन के साधन सुलभ हैं, वहाँ मुर्गी पालन और डेरी उद्योग को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। भारत सरकार द्वारा गठित भगवती समिति ने भी अपनी सिफारिश म यह सुझाव दिया था।

शिक्षित बेरोजगारी
(Educated Unemployment)

भारत जैसे अर्द्ध विकसित किन्तु विकासशील देश म जहाँ 3/4 जनसख्या अशिक्षित है, सामान्य लिखने-पढने वाले व्यक्ति को भी शिक्षित कहा जा सकता है। लेकिन शिक्षित बेरोजगारी के अन्तर्गत वे ही व्यक्ति माने जाएँगे जिन्होने कम से कम मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करली हो। भारत म अधिकांश शिक्षित व्यक्ति बेरोजगारी के किसी न किसी रूप से पीडित है। सरकार के पास इतने साधन नही हैं कि वह अल्पकाल मे सभी शिक्षितो को अथवा शिक्षित बेरोजगारो को रोजगार या पर्याप्त बेकारी भत्ता आदि दे सके। उपलब्ध आँकडो के अनुसार सन् 1972 मे लगभग 32 8 लाख शिक्षित बेरोजगार थे। सन् 1970 म लगभग 63 हजार इजीनियर बेरोजगार थे। कुछ वर्षों पूर्व प्रकाशित पुस्तक 'भारत मे प्रशिक्षितो की बेरोजगारी' मे यह बताया गया है कि मार्च, 1970 मे 34 5 लाख शिक्षित व्यक्ति रोजगार की तलाश मे

थे जिनकी संख्या मार्च, 1971 तक 44·4 लाख हो गई अर्थात् 1 वर्ष मे 22·2% की वृद्धि हो गई। इस पुस्तक के अन्तिम अध्याय मे चेतावनी देते हुए लिखा गया है, "हमारे शिक्षित युवकों मे बढती हुई बेरोजगारी हमारे राष्ट्रीय स्थायित्व के लिए जबरदस्त खतरा है। उसे रोकने के लिए यदि समयोचित कदम नही उठाया गया तो उथल-पुथल का अन्देशा है।"[1]

शिक्षित बेरोजगारो को दूर करने के उपाय

देश मे शिक्षित बेरोजगारो की समस्या को दूर करने के लिए सरकार यद्यपि विभिन्न तरीको से प्रयत्नशील है, तथापि निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते है—

1. देश मे शिक्षित व्यक्तियो के लिए रोजगार के अवसर तब तक नही बढ सकते जब तक कि द्रुत औद्योगिक विकास नही हो। यद्यपि सरकार औद्योगिक विकास के लिए सचेष्ट है, लेकिन उच्च-स्तर के कराधान की नीति इस मार्ग मे एक बडी बाधा है। अधिक कराधान से बचत को प्रोत्साहन नही मिलता और जब तक बचत नही होगी तथा उसका उचित विनियोग नही होगा, तब तक रोजगार नहीं बढ़ेगा। अत आवश्यक है कि कराधान दर को कम करके औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन दिया जाए।

2 देश मे उत्पादन-क्षमता का हाल ही के वर्षों मे ह्रास हुआ है। उत्पादन-क्षमता तो विद्यमान है, लेकिन विभिन्न कारणों से उसका पूरा उपयोग नही हो पाता। साथ ही, उसमे उदासीनता की प्रवृत्ति भी बढ रही है। अत इस प्रकार के उपाय किए जाने चाहिए कि उत्पादन-क्षमता के अनुसार पूरा उत्पादन हो सके ताकि अतिरिक्त रोजगार के अवसर उपलब्ध हो। देश मे अनेक ऐसे औद्योगिक संस्थान है जिनमे पूर्ण उत्पादन नही हो रहा है। सार्वजनिक-क्षेत्र इस रोग का सबसे बुरा शिकार है।

3. देश मे लघु एव कुटीर उद्योगो का विकास अपेक्षित गति से नही हो पा रहा है, जबकि इन उद्योगो की रोजगार-देय-क्षमता काफी अधिक होती है। जापान जैसे देश मे लघु उद्योगो मे लगभग 70% लोगों को रोजगार मिलता है तो भारत जैसे विशाल देश मे, जहाँ इन उद्योगो के प्रसार की गुंजाइश है, बहुत बड़े प्रतिशत मे रोजगार के अवसर बढाए जा सकते है।

4 इलैक्ट्रोनिक उद्योग का विकास भारत के लिए नया है। यदि इसका विस्तार किया जाए तो हजारो इजीनियरों या डिप्लोमा होल्डरो को रोजगार मिल सकता है।

5. तकनीकी विशेषज्ञों के लिए सेवा-क्षेत्र, रोजगार के पर्याप्त अवसर प्रदान कर सकता है। वर्तमान मे ट्रांजिस्टरों, टेलीविजनो, डीजल-इंजनो, वाहनो, रैफ्रिजरेटरों आदि क्षेत्रों मे उपयुक्त सेवा एवं सुधार की व्यवस्था उपलब्ध नही है। अत. इस सेवा-क्षेत्र को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

1. योजना, 22 मार्च, 1972 : जी. सी. अग्रवाल का लेख 'शिक्षित बेरोजगारों की समस्या राष्ट्रीय स्थायित्व के लिए खतरा है?' पृष्ठ 18.

6 रोजगार की दृष्टि से वनों का समुचित प्रयोग नहीं किया जाता है। अन्य राज्यों को चाहिए कि वे भी पश्चिमी बगाल राज्य के समान वन्यगहन प्रशिक्षण, जंगली जड़ी-बूटी की खोज, पशुपालन एव चिकित्सा जैसे कार्यों को प्रोत्साहन देकर शिक्षित व्यक्तियों के लिए अधिक से अधिक रोजगार के अवसर प्रदान करें।

7 सरकार सभी शिक्षित लोगों को न तो नौकरी प्रदान कर सकती है और न ही बेरोजगारी का भत्ता दे सकती है। अत विभिन्न क्षेत्रों के तकनीकी विशेषज्ञों को चाहिए कि वे अपना रोजगार स्वय खोजें तथा अन्य संस्थाओं से पूँजी तथा कच्चे माल की व्यवस्था करें।

8 19वी शताब्दी की शिक्षा प्रणाली को यथाशीघ्र बदला जाए, क्योंकि यह नौकरशाही वर्ग को पैदा करने वाली है जो वर्तमान स्थिति मे निष्क्रिय सिद्ध हो चुकी है। नवीन शिक्षा पद्धति म श्रम की महत्ता प्रतिष्ठित की जानी चाहिए तथा नौकरियों के पीछे दौडने वाली शिक्षा को तिलांजलि दी जानी चाहिए।

9 एक परिवार मे जितने कम बच्चे होंगे, उनकी शिक्षा दीक्षा का उतना ही उचित प्रबन्ध हो सकेगा तथा उचित नौकरी मिल सकेगी। जहाँ बच्चे अधिक होंगे, वहाँ शिक्षा अपूर्ण होगी और अल्प शिक्षित लोग शिक्षित बेरोजगारों की सख्या को बढाएँगे। अत परिवार सीमित होना आवश्यक है।

10 शिक्षित बेरोजगारों द्वारा स्वय के उद्योग धन्धे चालू करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। इस कार्य के लिए उन्हे कम ब्याज-दर पर बैंक एव अन्य संस्थाओं से ऋण दिलाए जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए। सरकार द्वारा उन्हे सुविधाएँ भी दी जानी चाहिए, जैसे आयकर की कुछ छूट, कच्चे माल की सुविधा, लाइसेंस की व्यवस्था आदि।

11 देश मे कृषि शिक्षा का प्रसार किया जाना चाहिए, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों मे, ताकि शिक्षित लोग कृषि-व्यवस्था की ओर अग्रसर हो सकें।

12 सरकार द्वारा चालू किए गए कार्यक्रमों की उपलब्धियों से सम्बन्धित पर्याप्त आँकडे एकत्रित किए जाने चाहिएँ और उनके आधार पर भविष्य के लिए इस समस्या से सम्बन्धित कार्यक्रम तैयार किए जाने चाहिएँ तथा उन्हे कार्यान्वित किया जाना चाहिए।

यदि इन विभिन्न उपायों पर प्रभावी रूप मे अमल किया जाए और जो उपाय किए जा रहे हैं उन्हे अधिकाधिक व्यावहारिक तथा प्रभावशाली बनाया जाए तो शिक्षित बेरोजगारी की समस्या दूर की जा सकती है।

बेरोजगारी के कारण
(Causes of Unemployment)

भारत मे फैली व्यापक बेरोजगारी के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. जनसख्या-वृद्धि की तुलना मे अल्प आर्थिक विकास—देश मे प्रतिवर्ष 2 5% की दर से जनसख्या बढ रही है, लेकिन द्रुत आर्थिक विकास न हो पाने के

कारण जनसख्या-वृद्धि के अनुपात में रोजगार की सुविधाओं में वृद्धि नही हुई है। परिणामस्वरूप, श्रम-शक्ति के बाहुल्य की समस्या उत्पन्न हो गई। स्वतन्त्रता से पूर्व कई दशाब्दियो तक देश की अर्थ-व्यवस्था के स्थिर रहने, परम्परागत उद्योगों का पतन होने और साथ ही आधुनिक ढंग के विस्तृत पैमाने के उद्योगों के विकसित न हो सकने के कारण देश मे बेरोजगारी बढती गई। स्वतन्त्रता के पश्चात् यद्यपि पंचवर्षीय योजनाओ के माध्यम से देश के आर्थिक विकास के प्रयत्न किए गए हैं, लेकिन आर्थिक विकास की गति बहुत धीमी रही है। साथ ही, योजनाओं मे रोजगार प्रदान करने के सम्बन्ध मे कोई व्यापक एवं प्रगतिशील नीति अपनाई जाने सम्बन्धी कमी भी रही है। फलस्वरूप, देश मे बेरोजगारी का निरन्तर विस्तार हुआ है। आयोजित विकास कार्यक्रमो के अन्तर्गत बढ़ रहे रोजगार के अवसर श्रमिक सख्या मे हो रही वृद्धि की तुलना मे कम हैं, अत बेरोजगारी कम नही हो पाती, वरन् निरन्तर बढ़ती जाती है। जनसख्या-वृद्धि का एक प्रभाव यह हुआ है उपभोग-व्यय मे भारी वृद्धि होने लगी है और पूंजी निवेश के लिए बचत आवश्यकतानुसार उपलब्ध नही हो पा रही है।

2. दोषपूर्ण योजना—रोजगार की दृष्टि से भारतीय आयोजन मुख्यत दो प्रकार से दोषपूर्ण रहा है। प्रथम, रोजगार नीति से सम्बन्धित है और द्वितीय, परियोजनाओ का चयन। पचवर्षीय योजनाओ मे एक व्यापक, प्रभावी और प्रगतिशील रोजगार नीति का बहुत बडी सीमा तक अभाव रहा है। प्रारम्भ मे यह विचार प्रबल रहा कि आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप रोजगार मे वृद्धि होगी, अत. विकास-नीतियाँ बनाते समय रोजगार के उद्देश्य को लेकर अलग से विचार नही किया गया और न ही इस बात के लिए कोई नीति निर्धारित की गई कि योजनावधि मे कितने लोगो को रोजगार दिए जाने हैं। रोजगार को योजना के मूल उद्देश्यों मे अवश्य सम्मिलित किया गया, लेकिन इसे उच्च प्राथमिकता नही दी गई। रोजगार को केवल परिणाम के तौर पर समझने और मापने की नीति रही। केवल योजना-कार्यक्रमो के फलस्वरूप उपलब्ध होने वाले रोजगार के अनुमान लगाए गए। यह सोचकर नही चला गया कि योजनाओं के माध्यम से इतनी सख्या मे लोगो को निश्चित रूप से रोजगार दिया जाना है। अब आगे चलकर द्वितीय योजनावधि मे लघु उद्योगो पर जोर दिया गया तो रोजगार के अवसर बढने लगे, लेकिन इस योजना के दौरान भी मूलतः रोजगार-उद्देश्य को सामने रखकर इन उद्योगो को महत्त्व नही दिया गया। आयोजन की दूसरी गम्भीर त्रुटि परियोजनाओ के चयन सम्बन्धी रही। कुछ विशेष उद्योगो को छोडकर, जहाँ पूंजी-प्रधान तकनीक को अपनाया जाना अनिवार्य था, अन्य बहुत से उद्योगो के सम्बन्ध मे वैकल्पिक उत्पादन-तकनीकों के बीच चयन करने की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। विदेशी तकनीकों पर निर्भरता बनी रही और कम श्रम-प्रधान उत्पादन-विधियो को मान्यता दी जाती रही। चतुर्थ योजना काल से सरकार ने रोजगार नीति मे स्पष्ट और प्रभावी परिवर्तन किया। लघु उद्योगों को प्रोत्साहन दिया गया और ऐसी योजनाएँ

चालू की गई, जिनकी रोजगार देय क्षमता अधिक हो। रोजगार के लक्ष्य निर्धारित करके निवेश-कार्यक्रम तैयार किए जाने और उसे कार्यरूप देने की दिशा में सक्रिय कदम उठाए गए। पाँचवी योजना को मुख्यत रोजगार सवर्द्धक बनाने की चेष्टा की गई है।

3 दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति—भारतीय शिक्षा पद्धति, जो मूलतः ब्रिटिश देन है, दफ्तरी 'बाबुओं' को जन्म देती है। यह शिक्षा-पद्धति छात्रों को रचनात्मक कार्यों की ओर नहीं मोड़ती तथा स्वावलम्बी बनने की प्रेरणा भी नहीं देती। यह शिक्षा-पद्धति 'कुर्सी का मोह' जाग्रत करती है, इस प्रकार की भावना पैदा नहीं करती कि सभी प्रकार का श्रम स्वागत योग्य है।

4. कृषि का पिछड़ापन—भारत एक कृषि-प्रधान देश है, लेकिन यहाँ की कृषि पिछड़ी हुई है और कृषि-उत्पादन अन्य देशों की अपेक्षाकृत बहुत कम है। कृषि-व्यवसाय में ग्रामीण-क्षेत्रों में लगभग 70% लोग लगे हुए हैं, और दूसरे व्यवसायों से प्राय दूर भागते है। इस प्रकार भूमि पर ही लोगों की आत्म-निर्भरता बढ़ती जा रही है फलस्वरूप देश में अल्प रोजगार, प्रच्छन्न बेरोजगारी आदि में काफी वृद्धि हो रही है।

बेरोजगारी के उपरोक्त मूलभूत कारणों में ही अन्य सहायक अथवा गौण कारण निहित है। अतिवृष्टि अथवा अनावृष्टि, अन्य प्राकृतिक प्रकोप, लोगों में आलसीपन की प्रवृत्ति, सयुक्त परिवार प्रणाली, 'घर से चिपके रहने' की बीमारी, आदि कारण भी बेरोजगारी के लिए उत्तरदायी हैं।

बेरोजगारी के लिए मुख्यत समाज जिम्मेदार

एडवोकेट श्री द्वारकादास कावरा ने जून, 1977 की योजना में प्रकाशित अपने एक लेख में यह युक्तिसगत विचार प्रकट किया है कि देश में बढ़ती हुई बेरोजगारी के लिए यद्यपि शिक्षा और समाज दोनो उत्तरदायी है, तथापि समाज विशेष रूप से जिम्मेदार है। श्री कावरा ही के शब्दो मे—

"यों तो शिक्षा पर ही समाज का निर्माण आधारित है। पर जब शिक्षा में सदियों तक कोई विशेष परिवर्तन न हो, शिक्षा जीवन से सम्बद्ध न हो, शिक्षा जब एक स्वस्थ समाज की रचना में समर्थ हो, जीने का जोश और काम करने की लागत न दे सके तो शिक्षा बेरोजगारी के लिए जिम्मेदार नहीं। क्या पढाएँ, क्या पढ़ें, क्यों पढ़ाएँ सभी का निर्णय पढ़ने और पढ़ाने वाले के अतिरिक्त कोई और करता है। शिक्षक, शिक्षार्थी एव अभिभावक की भूमिका इसमें नगण्य है। शिक्षा केवल मात्र 'टूल' बन कर रह गई है, लक्ष्य नहीं। अब शिक्षा का लक्ष्य वाँछित जीवन मूल्यों का अभिस्थापन अथवा जीवदर्शन का विकास या चरित्र का निर्माण नहीं, केवल पाठ्यक्रम की पूर्ति एव प्रमाणपत्र अथवा डिग्री की प्राप्ति तक ही सीमित रह गया है। शिक्षा का स्वरूप स्वतन्त्र नहीं, शिक्षक स्वतन्त्र नहीं, शिक्षा में प्रयोग नहीं, शिक्षक प्रयोगवादी नहीं। ऐसी स्थिति में शिक्षा को बेरोजगारी के लिए कहाँ तक

जिम्मेदार ठहराया जाए ? आज देश मे लाखो शिक्षित बेकार है। सहज ही विचार आता है कि बेरोजगारी का कारण अशिक्षा ही है। यह आम दलील दी जाती है कि शिक्षा व्यवसायोन्मुखी नहीं है, किसी रोजगार के लिए तैयार नहीं करती है तभी तो बेरोजगारी है। पर जब हजारों इंजीनियर, डॉक्टर, प्रशिक्षित व्यक्ति भी बेकार पड़े है तो यह तर्क भी कमजोर पड जाता है। अमेरिका जैसे शैक्षणिक दृष्टि से विकसित राष्ट्र मे भी बेकारी बढ रही है। वहाँ इस समय 75 लाख व्यक्ति बेकार हैं। इस वर्ष पिछले वर्ष से दस लाख व्यक्ति से ज्यादा बेकार हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि न औद्योगीकरण और न शिक्षा ही इस समस्या को हल कर सकते है। निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाए तो शिक्षा और समाज दोनो ही इसके लिए जिम्मेदार है।"

बेरोजगारी के लिए समाज कैसे जिम्मेदार है—इसके पक्ष मे श्री बाबरा ने अपने लेख मे निम्नलिखित कारण प्रस्तुत किए हैं—

1. समाज में श्रम मूल्यों के प्रति आस्था की कमी—आज समाज की श्रम मूल्यो मे आस्था नहीं है। शारीरिक श्रम से कौन जी नही चुराता ? कितने मनुष्य साधन मिलने पर भी पैदल चलते हैं। कहने को तो हम कह देते हैं कि आज की शिक्षा छात्रों को श्रम से दूर ले जाती है पर किसी भी पाठ्यक्रम मे ऐसी कोई बात नही और न ही कभी कोई शिक्षक श्रम से पलायन की बात कहता है। पर अकर्मण्य एव प्रमादी समाज के परिवेश मे इस प्रदूषण से बचना मुश्किल है और बदनाम हो जाती है बेचारी शिक्षा और शिक्षक। यदि कोई ग्रेजुएट पान की दूकान लगाता है तो सभी कहने लगते है, अरे भाई इतनी पढ़ाई फिर क्या भाड़ झोंकने के लिए की थी। ग्रेजुएट को खेत मे काम करते देखकर प्रशसा के स्थान पर आलोचना होती है—देखो आज की शिक्षा, बेचारे को इतना पढकर भी काम नही मिला। मानो कि खेत पर काम करना तो काम ही नही। ये सामाजिक मान्यताएँ हैं। क्या इस वातावरण मे सहज ही कोई शिक्षित युवक कोई छोटा स्वतन्त्र कार्य करने का हौसला कर सकता ?

2. समाज का सरकारोन्मुख होना—माहेश्वरी समाज, अग्रवाल समाज, जैन समाज इत्यादि सभी वर्ग व समुदाय अपने उत्सव, त्यौहार व जयन्तियाँ मनाते हैं, बडे-बडे मन्दिर बनाते है, लाखो रुपये के यज्ञ कराते हैं। पर क्या किसी भी समाज मे बेरोजगारी से निपटने के लिए कोई ठोस कार्यक्रम है ? यदि नही तो क्यों ? क्योंकि हमारी आदत हो गई है कि प्रत्येक सहायता एवं साधन प्राप्ति के लिए सरकार की ओर ताकना। क्या समाज का अपना कोई दायित्व ही नही और दुहाई देने है स्वस्थ है। प्रगतिशील व प्रजातन्त्र की, जिस प्रजातन्त्र मे जनता चुनावो के तत्काल पश्चात् अपने को निष्क्रिय, श्रीहीन एव लक्ष्यहीन मान बैठती है। यह कैसा प्रजातन्त्र है ? और अन्तत सरकार ही हमे जगा रही है कुछ करने को नए समाज के नवनिर्माण की दिशा मे बढने को। क्यों नही समाज-स्तर पर भी परिवार नियोजन एव रोजगार नियोजन कार्यक्रमों मे सहयोग किया जाए ?

3. वर्तमान पूंजीवादी आर्थिक ढांचा—भारतीय आर्थिक ढाँचे की यह विशेषता नहीं है कि यहाँ बड़े व्यवसायो एवं उद्योगों के सामने छोटे उद्योग सहज ही

नही पनप सकते । जापान मे बेरोजगारी सबसे कम है, क्योकि वहाँ घर घर मे उद्योग है पर यहाँ तो बडे के सामने छोटा पनप ही नही सकता । इस दिशा मे सरकारी सहायता के साथ ही साथ समाज का स्वागतपूर्ण, उत्साहवर्द्धक दृष्टिकोण भी अपेक्षित है । खादी उद्योग से लाखो पलते हैं पर यह उद्योग केवल सरकारी सहायता एव सरकारी खरीद पर आश्रित है । कुटीर उद्योगो को अपनाने से तथा पोषण देने से ही अधिकाँश जनता को रोजगार मिल सकेगा । यन्त्रवाद की ओर भागती सामाजिक प्रवृत्ति भी बेरोजगारी के लिए कम जिम्मेदार नही है ।

4. मनोवैज्ञानिक व्यवस्था का अभाव समाज अथवा सरकार की ओर से इस प्रकार की कोई व्यवस्था नही है जिससे कि बेरोजगार व्यक्ति का मनोबल ऊँचा रह सके, उसे अन्तरिम राहत मिल सके । उसे उत्साहित किए जाने की अपेक्षा उसे अपने घर तक मे असहानुभूति अमैत्रीपूर्ण व्यवहार, बेरुखी एव तिरस्कार का सामना करना पडता है । जाने क्यो अधिकाश व्यक्ति स्वतन्त्र व्यवसाय करना नही चाहते । शिक्षित तो प्राय बाबूगिरी ही पसन्द करते है । जितने छात्र सही शिक्षा समाप्त कर निकलते है उतनी नौकरियाँ तो कभी नही जुटाई जा सकती है और इस प्रकार नौकरियो की कमी तो रहती ही । इस प्रकार एक मात्र अच्छी बात यही है कि ऐसा जनमानस तैयार किया जाए ऐसी सम्मानजनक पृष्ठभूमि तैयार की जाए जिसमे कि लोग नौकरी की ओर ही आकृष्ट न हो ।

5 सयुक्त परिवार प्रणाली का पतन—सयुक्त परिवार प्रथा से बडा लाभ यह था कि पारिवारिक व्यवसाय म आवश्यकतानुसार परिवार के एक से अधिक व्यक्ति भी काम कर सकते थे और परस्पर सभी का मिलजुल कर निर्वाह हो जाता था । पर अलग-अलग होने से प्रत्येक को अपना-अपना व्यवसाय ढूंढना होता है ।

बेरोजगारी उपाय और नीति
(Unemployment : Measures and Policy)

बेरोजगारी की समस्या के निदान हेतु आर्थिक एव राजनीतिक क्षेत्रो से विभिन्न सुझाव दिए जाते रहे हैं और सरकार द्वारा भी निरन्तर प्रयत्न किए जाते रहे हैं । ग्रामीण बेरोजगारी और शिक्षित बेरोजगारी निवारण के सन्दर्भ मे निम्नलिखित सुझाव विचारणीय है—

1 *अधिकतम आय स्तर पर* अधिकतम रोजगार की व्यवस्था करने के लिए जनसख्या-वृद्धि पर तेजी से और कठोरता स नियन्त्रण लगाना पडेगा । इस सम्बन्ध मे परिवार नियोजन सम्बन्धी कार्यक्रमो को व्यापक बनाना और कठोरतापूर्वक लागू करना होगा । यह भी उचित है कि कानूनी रूप से तीन से अधिक सन्तान उत्पन्न करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाए ।

2 लघु एव कुटीर उद्योगो के तीव्र विकास के साथ ही मिश्रित कृषि को अपनाया जाए अर्थात् कृषि के साथ साथ पशुपालन और मुर्गीपालन आदि उद्योग भी अपनाए जाएँ ।

3. मानवीय श्रम पर अधिकाधिक बल दिया जाए, जहाँ मशीनीकरण से कोई विशेष बचत न होती हो, वहाँ मानवीय श्रम का अधिकाधिक प्रयोग किया जाए।

4. अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रो मे किसी बड़े विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन के बाद भी यदि बेरोजगार व्यक्ति बचे रहें तो उन्हें एक बड़ी संख्या में काम सिखा कर उन क्षेत्रो मे भेजा जाए, जहाँ ऐसे प्रशिक्षित कारीगरो की कमी हो। इसके लिए प्रशिक्षण एव मार्ग-दर्शन योजनाएँ प्रारम्भ की जानी चाहिए।[1]

5. ग्रामीण औद्योगीकरण एवं विद्युतीकरण का तेजी से प्रसार किया जाए। प्रत्येक क्षेत्र मे औद्योगिक विकास का एक-एक केन्द्र कायम किया जाए और इन्हें परिवहन तथा अन्य समुचित सुविधाओ के माध्यम से एक कड़ी के रूप मे जोड़ दिया जाए। ऐसे केन्द्र उन शहरो या गाँवो मे स्थापित किए जाएँ जो कुशल कारीगरों तथा उद्योगपतियों को खींच सकें और उन्हें बिजली तथा अन्य सुविधाएँ दी जा सकें।

6. शिक्षा-पद्धति को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाए जिससे कर्मचारियों की आवश्यकताओं के बदलते हुए ढाँचे से उसका मेल बैठ सके। कुछ चयनित क्षेत्रों मे जन-शक्ति सम्बन्धी अध्ययनो का आयोजन और तकनीकी शिक्षा-क्षेत्रो का विस्तार करने की नीति पर तेजी से अमल किया जाए।

7 कृषि-क्षेत्र मे वृद्धि की जाए। भारत मे लाखो एकड़ जमीन बंजर और बेकार पडी है जिसे अल्प प्रयास से ही कृषि योग्य बनाया जा सकता है। इससे एक ओर तो श्रमिको को रोजगार मिलेगा तथा दूसरी ओर कृषि-क्षेत्र मे वृद्धि होकर कृषि-उत्पादन बढ़ेगा।

8 आयोजन के निवेश-ढाँचे मे, रोजगार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से, मुख्यत. दो प्रकार के परिवर्तन लाना आवश्यक है—(क) उद्योगो का चयन-आधारमूलक ढाँचे पर अब तक काफी निवेश हो चुका है और अब आवश्यकता इस बात की है कि अन्य उद्योगो—विशेष रूप से उपभोक्ता-वस्तु-उद्योगो को प्रोत्साहन दिया जाए। ऐसे उद्योगो की रोजगार देय क्षमता अधिक होती है। इनके अन्तर्गत उत्पादन के अतिरिक्त वस्तुओ के वितरण आदि सेवाओ मे भी रोजगार के अवसर बढ़ते हैं। (ख) तकनीक का चयन-रोजगार-दृष्टि से श्रम-प्रधान तकनीको के चयन को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इन दोनों प्रकार के परिवर्तनों द्वारा निवेश-ढाँचे को प्रभावित करने के लिए यह आवश्यक है कि सरकार की विकास-नीति को मोड़ दिया जाए। उत्पादन पर बल देने की नीति के साथ ही साथ रोजगार बढ़ाने वाले उद्योगों और तकनीकी को प्रोत्साहन देने की नीति अपनाई जाए।

9. रोजगार को प्रोत्साहन देने के लिए संसाधनों का अधिकाधिक प्रयोग करने के लिए तेजी से कदम बढ़ाए जाएँ। अल्प रोजगार मे लगे लोगों के काम-काज को बढ़ाया जाए ताकि पहले से लगे ससाधनो का अधिक उत्पादक प्रयोग सम्भव बन

1. योजना, दिनांक 22 मार्च, 1973 में चन्द्रप्रकाश माहेश्वरी का लेख 'बेरोजगारी की समस्या पर एक विहगम दृष्टि', पृष्ठ 25.

जाए। कृषि सम्बन्धी उद्योगो का प्रोत्साहन दिया जाए तथा स्व नियोजित व्यक्तियो के लिए अधिक काम काम की व्यवस्था की जाए ताकि उनकी अल्प रोजगार की स्थिति को दूर किया जा सके।

10 विकेन्द्रित उद्योग नीति अपनाई जाए ताकि बडे-बडे शहरो की ओर बेरोजगार लोगो का जाना रुके अथवा कम हो। यह उचित है कि गाँवो और छोटे-छोटे शहरो के आस पास उद्योगो का विकास किया जाए। उद्योगो के विकेन्द्रीकरण के फलस्वरूप दो बाते मुख्य रूप मे होगी—प्रथम, श्रमिकों का स्थानान्तरण रुकेगा और द्वितीय, अल्प-रोजगार मे लगे उन श्रमिको की स्थिति सुधरेगी, जो बाहर नही जाते।

मार्च 1978 की योजना मे श्री नारायण व्यास ने बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए कुछ उपयोगी सुझाव प्रस्तुत किए है जो आगे क्रमश इस प्रकार है

11 आवश्यक है कि आगामी योजना मे छोटी छोटी परियोजनाओ को प्रारम्भ करने की व्यवस्था हो, ताकि गरीबी के स्तर से नीचे रहने वाले वर्ग को उत्पादक गतिविधियो द्वारा ऊपर उठाया जा सके। ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि देश के सभी (लगभग 380) जिलो के अन्तर्गत ब्लाक स्तर पर निर्माण कार्य तथा उत्पादन क्षेत्र चुन कर उनमे से 40 से 50 प्रतिशत नौकरियाँ स्थानीय बेरोजगारो को भी दी जाएँ। इससे केवल रोजगार ही नही बढेगा वरन् उत्पादन क्षमता मे भी वृद्धि होगी। इस सन्दर्भ मे यह भी आवश्यक है कि योजना आयोग एक नियत कालिक रिपोर्ट प्रकाशित किया करे जिसमे नौकरियो एव ऐसे लाभकारी रोजगार धन्धो की सूचना हो जिनसे निर्धन बेरोजगार वर्ग अपनी आय बढा सकें।

12 लोगो को अधिक से अधिक रोजगार उपलब्ध कराने के लिए औद्योगिक सस्थानो की क्षमता को बढाना होगा। साथ ही उत्पादन के साधनो का बेरोजगार लोगो के हित मे पुनर्वितरण किया जाए और ऐसी व्यवस्था भी की जाए कि उपभोक्ता वस्तुएँ शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरजन तथा सचार एव बिजली की सुविधाएँ उन लाखो व्यक्तियो को सस्ती तथा सुगम तरीके से प्राप्त हो सकें, जो कि वास्तव मे गरीब और बेरोजगार हैं।

13 भारत जैसे अत्यधिक जनसख्या वाले गरीब और विकासशील देश के लिए यह आवश्यक ही है कि आयोजन न केवल धन के आधार पर हो, वरन् आदर्श व्यवस्था भी इसके क्रियान्वयन मे एक सही भूमिका निभाए। दुर्भाग्य से पिछली योजनाओ मे इस ओर कम ध्यान दिया गया। साथ ही हमारे यहाँ यह मानकर आयोजन होता रहा कि भारत एक साधन-सम्पन्न देश बनना चाहता है। क्या वास्तव मे भारत गरीब है ? नही। क्योकि अभी देश मे ऐसे प्राकृतिक साधन मौजूद हैं जिनसे देश के विकास की तीव्र गति प्राप्त हो सकती है। लेकिन एक आदर्श तथा कुशल श्रम-व्यवस्था के अभाव मे अतुल प्राकृतिक सम्पदा उपेक्षित पडी है। इसलिए यह भी अनिवार्य हो जाता है कि हमारी आगामी योजना मे प्राकृतिक ससाधनो के उपयोग

को अत्यधिक महत्त्व देते हुए श्रम शक्ति का एक विस्तृत बजट तैयार करके विकास कार्यक्रम चलाया जाए।

14. अनुमान है कि श्रम शक्ति यानी काम करने योग्य व्यक्तियों की संख्या सन् 1971 के 18 करोड़ से बढ़कर सन् 1981 में 26 करोड हो जायेगी, अर्थात् इस दशक मे लगभग 8·6 करोड़ की वृद्धि श्रम शक्ति मे होगी। इतनी बड़ी श्रम शक्ति को रोजगार प्रदान करने के लिए आगामी योजना मे युद्ध स्तर पर काम करने की आवश्यकता होगी। योजना-विनियोजन में सर्वाधिक महत्त्व उत्पादक रोजगार की वृद्धि को दिया जाना चाहिए।

15. बेरोजगारी से सम्बन्धित विश्वसनीय आँकड़े तथा सूचनाएँ तभी प्राप्त हो सकती है जबकि बेरोजगारों के लिए अपना पंजीयन कराना उसी प्रकार अनिवार्य कर दिया जाए, जैसे कि जन्म एव मृत्यु की सूचना दर्ज करवाना अनिवार्य होता है। परन्तु इसके लिए बेरोजगारी की स्पष्ट परिभाषा देना आवश्यक होगा।

16. भविष्य मे शिक्षित बेकारी की सख्या को नियन्त्रित करने के लिए, शिक्षा एव व्यावसायिक प्रशिक्षण के कार्यक्रम रोजगार उन्मुख होने चाहिएँ। इसके लिए आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था के विकास की गति एव प्रक्रिया के आधार पर विभिन्न खण्डो के लिए श्रम शक्ति सम्बन्धी व्यापक अनुमान लगाए जाएँ। उदाहरणार्थ आने वाले दस या पन्द्रह वर्षों मे जितने डॉक्टरो, इजीनियरो या फोरमैनो की आवश्यकता हो सकती है, उसके अनुमान के आधार पर ही शिक्षा तथा प्रशिक्षण की सुविधाएँ प्रदान करने की योजना बनानी चाहिए, तभी भविष्य मे बेकारी की सम्भावना को कम किया जा सकता है। इसके साथ ही उच्च सैद्धान्तिक शिक्षा केवल प्रतिभावान छात्रो के लिए ही उपलब्ध होनी चाहिए तथा अन्य मध्यम और निम्न श्रेणियो के विद्यार्थियो को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। इससे युवक-युवतियो मे स्वरोजगार की भावना पैदा की जा सकती है। बेरोजगार अपने लिए रोजगार का अवसर स्वय बना लेंगे बेरोजगारी-उन्मूलन का पथ प्रशस्त होगा।

17 ग्रामीण क्षेत्रो मे कृषि एव गैर-कृषि, दोनो क्षेत्रो मे रोजगार के अवसर बढाने की आवश्यकता है। कृषि क्षेत्र मे रोजगार के अवसर बढाने के लिए कृषि साधनो की पूर्ति मे पर्याप्त वृद्धि करने तथा उन्हे निर्धन एव सीमान्त कृषको के हित मे वितरित करने की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। कृषि भूमि मे सीमाँकन का कार्य, शीघ्र-से-शीघ्र पूर्ण किया जाना चाहिए। गैर-कृषि क्षेत्रो मे रोजगार बढाने के लिए विकास केन्द्रो का विस्तार करना आवश्यक होगा। विकास केन्द्रो मे कृषि-औजारो, सेवाओ तथा कृषि उत्पादन एव पशु उत्पादन के विक्रय आदि की उचित व्यवस्था करनी होगी।

श्री व्यास ने ठीक ही लिखा है कि गत 27 वर्षों के अनुभव से हमे यह सीख लेना चाहिए कि बढ़ती हुई कीमतो के चक्र, घाटे की वित्त व्यवस्था तथा असाधारण मूल्य-वृद्धि तभी समाप्त की जा सकती है जबकि हम ससाधनो के प्रयोग के लिए अगली योजना मे रोजगार प्रणाली को उत्पादन प्रणाली से इस प्रकार जोड़े कि

उसमे श्रम-प्रधान तकनीक के उपयोग के साथ-साथ ग्राम जरूरत की वस्तुओ का उत्पादन भी बढे। इसके लिए क्षेत्रीय उत्पादकता को महत्त्व प्रदान करते हुए लघु एव कुटीर उद्योगो को प्रधानता देनी होगी। इससे ग्राम उपभोग की वस्तुओ की पूर्ति बढेगी तथा अधिक उत्पादन से मूल्य-वृद्धि पर रोक लग सकेगी। रोजगार के अधिक अवसर प्राप्त होगे और साथ ही उपभोग वस्तुओ की बढती हुई मांग की पूर्ति भी हो सकेगी। परिणामत समस्या का आंशिक समाधान किया जा सकेगा। रोजगार की सम्भावनाओ को ग्रामीण तथा शहरी एव शिक्षित तथा अशिक्षित लोगो की दृष्टि से नवीन आधार प्रदान करने की आवश्यकता है, वरना इस समस्या से निपट पाना पहले की तरह मुश्किल बना रहेगा। स्वतन्त्रता का कोई अर्थ नही यदि देश के प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक न्याय मिलने की आशा न हो। बेरोजगारी और अर्द्ध-बेरोजगारी से ग्रस्त आठ करोड लोगो की आशा भरी निगाहे आर्थिक विकास के आगामी कार्यक्रमो पर लगी हुई है।

बेरोजगारी के सम्बन्ध में 'भगवती समिति' की सिफारिशें (Recommendations of Bhagwati Committee)

भारत सरकार ने बेरोजगारी के सम्बन्ध मे दिसम्बर, 1970 मे जो 'भगवती समिति' नियुक्त की थी, उसने अपनी अन्तरिम रिपोर्ट मे आगामी दो वर्षो मे सभी क्षेत्रो मे 49 लाख व्यक्तियो को रोजगार देने की विभिन्न योजनाओ के लिए 20 अरब रुपये की व्यवस्था का सुझाव दिया था। इस विशेषज्ञ समिति ने अन्तरिम रिपोर्ट मे जो प्रमुख सिफारिशें की वे बेरोजगारी-निवारण की दिशा मे आज भी महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शक यन्त्र है। इन प्रमुख सिफारिशो का सारांश मार्च, 1972 के योजना अक म श्री केदारनाथ गुप्त के एक लेख मे दिया गया है, जो निम्न है—

1. छोटे किसानो और भूमिहीन मजदूरो की दुग्धशालाओ, मुर्गीपालन और सूअर पालन केन्द्रो के उत्पादनो के विपणन और हाट व्यवस्था के लिए आवश्यक सगठन बनाए जाने की आवश्यकता पर राज्यो को विचार करना चाहिए।

2. किसानो को सहायता देने वाली सस्थाओ को बटाईदारो और पट्टेदारो को कृषि और अन्य सहायक उद्योगो के लिए अल्प अवधि के और मध्यावधि कर्ज दिलाने मे सहायता करनी चाहिए।

3. प्रत्येक जिले के गाँवो मे रोजगार के अधिक अवसर पैदा करने वाले कार्यक्रमो के लिए राशि, उसकी जनसख्या वहाँ कृषि विभाग की स्थिति और अन्य महत्त्वपूर्ण बातो को ध्यान मे रख कर नीति पुनर्निर्धारित की जानी चाहिए।

4. कुछ चुने हुए जिलो मे प्रायोगिक परियोजनाएँ शुरु की जानी चाहिए ताकि उस क्षेत्र का बहुमुखी विकास हो सके।

5. कृषि-सेवा-केन्द्रो की स्थापना को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, क्योकि इनमे बहुत से इन्जीनियरो को काम मिलेगा।

6. लघु सिंचाई योजनाओ मे अनेक लोगो को रोजगार मिल सकता है, अत अधिकाधिक अनिश्चित भूमि योजना के अन्तर्गत लाई जानी चाहिए। समिति का

सुझाव था कि आगामी दो वर्षो मे एक अरब रुपये की लागत से 5 लाख हैक्टेयर अतिरिक्त-भूमि योजना के अन्तर्गत लाई जाना अपेक्षित है। यह योजना चतुर्थ योजना मे निर्धारित कार्यक्रम के अतिरिक्त होनी चाहिए।

7. समिति ने सुझाव दिया कि चतुर्थ योजना मे निर्धारित लक्ष्यों से अतिरिक्त 37 हजार और गाँवो मे बिजली एव 3 लाख नल-कूपो को बिजली दी जानी चाहिए।

8. गाँवो मे बिजली लगाने के कार्यक्रम को इस प्रकार लागू किया जाना चाहिए ताकि अपेक्षाकृत पिछडे राज्यो मे अधिक विकास हो सके और वे राष्ट्रीय स्तर पर लाए जा सकें।

9. राज्य सरकार सडक-निर्माण-कार्य के लिए निर्धारित रकम उसी काम मे खर्च करे और उस रकम को अन्य मदो मे व्यय न करे।

10 अन्तर्देशीय जल-परिवहन योजना से भी अनेक लोगो को रोजगार मिलेगा, अत सरकार को चाहिए कि वह अन्तर्देशीय जल-परिवहन-समिति की सिफारिशो पर अमल करे।

11. गाँवो मे आवास की विकट समस्या को देखते हुए सरकार को तेजी से भवन-निर्माण कार्यक्रम शुरू करना चाहिए।

12. सरकार को गाँवो मे मकान बनाने के लिए व्यापक कार्यक्रम शुरू करना चाहिए तथा प्रचार साधनो के माध्यम से इस कार्यक्रम को प्रोत्साहन देना चाहिए।

13. प्रत्यक राज्य मे एक ऐसी एजेन्सी होनी चाहिए, जो ग्रामीण क्षेत्रो मे वह कार्य करेगी जो कार्य इस समय आवास-मण्डल नगरो मे कर रहे हैं। ये कार्य है—भूमि का अधिग्रहण और विकास करना तथा आवास योजनाएँ तैयार करके उन्हे क्रियान्वित करना।

14. जीवन बीमा निगम को भी गाँवो मे आवास-कार्यक्रमो के लिए सहायता देनी चाहिए।

15. गाँवो मे पेयजल सप्लाई करने की चालू योजनाओ को तुरन्त क्रियान्वित करना चाहिए तथा इनको अधिकाधिक क्षेत्रो मे लागू करना चाहिए।

16. प्रत्येक राज्य मे एक ग्रामीण आवास वित्त-निगम बनाया जाना चाहिए जो सहकारी समितियो, पचायती-राज-सस्थाओ तथा व्यक्तियो को मकान बनाने के लिए वित्तीय सहायता देगा।

17. प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए एक व्यापक कार्यक्रम जल्दी ही प्रारम्भ करना चाहिए।

18. जन-साक्षरता के लिए जल्दी ही एक कार्यक्रम प्रारम्भ किया जाना चाहिए।

19. औद्योगिक-क्षेत्र मे व्यक्तियों को रोजगार देने के लिए कारखानो की वास्तविक उत्पादन-क्षमता को अधिकतम सीमा तक बढाना अत्यन्त आवश्यक है।

20. आर्थिक दृष्टि से अक्षम मिलो के बन्द होने की समस्या से निपटने हेतु सरकार को एक संस्था बनानी चाहिए, जो बन्द हो जाने वाले कारखानो की आर्थिक

स्थिति तथा अन्य पहलुओं की जाँच करे। इस संस्था को एक ऐसी विधि अपनानी चाहिए, जिसके अन्तर्गत कारखाने के बन्द होने के सम्बन्ध मे समय-समय पर सूचना दी जा सके।

21 बैंको को भी चाहिए कि वे अपना धन्धा स्वयं शुरू करने वाले लोगो को वित्तीय सहायता दे। बैंक अधिकारियो को चाहिए कि वे अधिक रोजगार देने वाली योजनाएँ शुरू करे और बैंक की प्रत्येक शाखा के लिए निश्चित लक्ष्य निर्धारित करे, जो उन्हे पूरा करना होगा। अतिरिक्त साधनो का काफी हिस्सा इन योजनाओ के लिए निर्धारित कर देना चाहिए। बढे हुए कुल साधनो की 25 से30% राशि इन योजनाओं के लिए निश्चित की जा सकती है।

22 बैंकों को स्वयं धन्धा शुरू करने वाले लोगो की वित्तीय सहायता करने मे अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए ताकि किसी भी श्रेणी के व्यक्ति को अपना धन्धा अथवा व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिए ऋण लेने म कठिनाई न हो।

23 विशेष वित्तीय सहायता का अधिकाधिक लाभ उठाया जा सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि ब्याज-दर, धन लौटाने की अवधि आदि ऋण की शर्तें और अधिक उदार बनाई जाएँ। इसके अतिरिक्त ऐसे ऋण लेने वाले की आवश्यकता तथा उनकी मजबूरियो को भी ध्यान मे रखा जाना चाहिए। समिति का विचार है कि सम्बन्धित अधिकारियो को पृथक् ब्याज-दरो से सम्बद्ध समिति की सिफारिशे तुरन्त लागू करने की दिशा मे प्रयास करने चाहिएँ।

24 उद्योगपतियो को विशेष क्षेत्र या उद्योग मे कच्चे माल के सम्बन्ध मे जिन कठिनाइयो का सामना करना पडता है, उनको दूर करने के लिए उद्योगपति अपने संघ बना सकते है, जो लघु उद्योगो की कच्चे माल, धन, उत्पादित-वस्तुओ की बिक्री आदि समस्याओ का समाधान कर सकते हैं तथा आवश्यकता पडने पर मामले को उपयुक्त अधिकारियो के पास ले जा सकते हैं। सरकार को भी इस तरह के संगठन बनाने की दिशा मे प्रोत्साहन देना चाहिए।

25 बेरोजगार व्यक्तियो के लिए आवेदन पत्र नि शुल्क होना चाहिए। यात्रा-व्यय देने के सम्बन्ध मे भी विशेष परिस्थितियो पर ध्यान रखा जाना चाहिए। केवल उस मामले मे जहाँ चुनाव के लिए साक्षात्कार आवश्यक है, बेरोजगार व्यक्तियो को यात्रा व्यय दिया जाना चाहिए, ताकि वे साक्षात्कार के लिए उपस्थित हो सकें। हाँ यदि चुनाव के सम्बन्ध मे सभी प्रार्थियो के लिए प्रतियोगिता परीक्षा आवश्यक है, तो सभी उम्मीदवारो को यात्रा-व्यय देना आवश्यक नही है।

भगवती समिति की अन्तिम रिपोर्ट, 1973
(Final Report of the Bhagwati Committee, 1973)

भगवती समिति ने 16 मई, 1973 को अपनी अन्तिम रिपोर्ट भारत सरकार के समक्ष प्रस्तुत कर दी जिसमे आँकडो के आधार पर सन् 1971 म बेरोजगार व्यक्तियो की संख्या 187 लाख आँकी गई। इनमे से 90 लाख व्यक्ति तो ऐसे थे जिनके पास कोई रोजगार नही था और 97 लाख व्यक्ति ऐसे थे जिनके पास 14

घण्टे प्रति सप्ताह का कार्य उपलब्ध था अर्थात् वे बेरोजगार–से ही थे। अन्तिम रिपोर्ट के अन्तर्गत बेरोजगारी की समस्या को दूर करने के लिए मुख्यतः निम्नलिखित सुझाव दिए गए[1]—

1 बेरोजगारों को काम की गारण्टी देने के लिए एक राष्ट्रीय कार्यक्रम लागू किया जाए। जो व्यक्ति रोजगार मे संलग्न हैं उन्हे रोजगार की हानि (Loss of Employment) की स्थिति मे बीमा-व्यवस्था उपलब्ध कराई जाए।

2 कार्याधिकार योजना (Right to work Scheme) सम्पूर्ण देश में लागू की जाए।

3. देहातों के विद्युतीकरण, सडक-निर्माण, ग्रामीण मकानों और लघु सिंचाई योजनाओं को आगामी दो वर्षों मे तेजी से लागू किया जाए। रोजगार कार्यक्रमों के लिए अतिरिक्त साधन जुटाने में कोई हिचक न की जाए और यदि आवश्यक हो तो विशेष करों तथा चालू करों मे वृद्धि का मार्ग अपनाया जाए।

4. काम के घण्टों को सप्ताह मे 48 से घटा कर 42 किया जाए और फैक्टरियों को सप्ताह मे पूरे 7 दिन तक प्रभावी रूप मे चालू रखा जाए ताकि रोजगार में वृद्धि हो।

5. रोजगार एवं श्रम-शक्ति-नियोजन पर एक राष्ट्रीय आयोग गठित किया जाए।

6 विवाह-आयु लड़कों के लिए 21 वर्ष और लडकियों के लिए 18 वर्ष करदी जाए।

भगवती समिति ने अपनी सिफारिशों मे लघु सिंचाई और ग्रामों के विद्युतीकरण के कार्यक्रमों को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। समिति का विचार था कि इन कार्यक्रमों और सडक-निर्माण, ग्रामीण आवास आदि की योजनाओं से ग्रामीण बेरोजगारी तथा अल्प रोजगार की समस्याओं पर गहरा प्रभाव पडेगा। समिति ने सुझाव दिया कि श्रम-प्रधान उद्योगों के लिए करों मे छूट और रियायत की व्यवस्था की जाए तथा बडे-बड़े नगरों से उद्योगों का विकिरण किया जाए। यह सिफारिश भी की गई कि कृषि-क्षेत्र मे श्रम बचाने वाली भारी मशीनों के प्रयोग पर नियन्त्रण लगाया जाए, विशाल पैमाने पर ग्रामीण निर्माण कार्यक्रमों का सचालन किया जाए (जिसका सकेत ऊपर किया जा चुका है), कानूनों द्वारा इन्जीनियरों एवं तकनीकी श्रमिकों के लिए रोजगार की व्यवस्था की जाए। समिति का एक महत्वपूर्ण सुझाव यह भी था कि शिक्षा एवं प्रशिक्षण के क्षेत्र मे वार्षिक दर से 5 लाख नौकरियों के लिए प्रबन्ध किया जाए। रोजगार एव राज्य-स्तर पर ऐसे पृथक् विभाग खोले जाएँ, जिनका कार्य केवल रोजगार एव श्रम शक्ति-नियोजन सम्बन्धी कार्यों की देखभाल हो। जो पिछडे इलाके हैं उनके लिए पृथक् विकास-मण्डल (प्रादेशिक विकास बोर्ड) बनाए जाएँ। बेरोजगारी पर विभिन्न समितियों और अध्याय मे दिए गए अन्य सुझावों पर ध्यान देने तथा उन्हें आवश्यकतानुसार प्रभावी रूप मे अमल मे लाने पर ग्रामीण एवं शहरी बेरोजगारी की समस्या का प्रभावी समाधान सम्भव है।

1. The Economic Times, May 17, 1973.

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना और बेरोजगारी
(Fifth Five Year Plan & Unemployment)

सन् 1951 के पश्चात् प्रथम बार देश की इस योजना मे बेरोजगारी दूर करने पर विशेष बल दिया गया है और विकास के अतिरिक्त अधिक रोजगार उपलब्ध करने के उद्देश्य को एक मूल उद्देश्य माना गया है। पाँचवी योजना मे रोजगार के महत्त्व को ठीक परिदृश्य मे रखते हुए इस तथ्य को स्पष्टत स्वीकार किया गया कि बेकार श्रम-शक्ति को समुचित रूप मे प्रयोग मे लाने पर विकास-क्षेत्र मे पर्याप्त मदद मिलेगी। योजना के दृष्टिकोण पत्र मे रोजगार-विषयक महत्त्वपूर्ण पहलू सक्षेप मे अग्रानुसार है[1]—

1 देश को रोजगार के इच्छुक लोगो की बढती हुई सख्या की भीषण समस्या से निपटने के लिए योजना बनानी होगी। ताकि विकास के मार्ग मे यह भयकर खतरा न बने और इनका देश की प्रगति तथा खुशहाली के सशक्त सहायक के रूप मे उपयोग किया जा सके।

2 विकास की गति बढाने तथा असमानताएँ घटाने के लिए उत्पादक रोजगार का विस्तार करना बहुत महत्त्वपूर्ण है। बेकार जन शक्ति बेरोजगार, अपूर्ण रोजगार कर रहे तथा केवल अशकालीन रोजगार कर रहे लोग, विकास का ऐसे सक्षम साधन है जिनका यदि उचित उपयोग किया जाए तो द्रुत विकास किया जा सकता है। इसके साथ साथ असमानताओ का मुख्य कारण व्यापक बेरोजगारी, अपूर्ण रोजगार का विस्तार कर उसे उचित आय स्तरो पर सुलभ किया जाए। रोजगार ही एक ऐसा निश्चित तरीका है, जिसके द्वारा गरीबी के स्तर से नीचे जीवन-निर्वाह करने वालो का स्तर ऊँचा उठाया जा सकता है। आय का पुन बँटवारा करने के लिए जो प्रचलित कर-नीतियाँ हैं वे स्वय मे इस समस्या पर कोई विशेष प्रभाव नही डाल सकती।

3 रोजगार नीति इस प्रकार की होनी चाहिए, जिससे वेतन पर मिलने वाला रोजगार तथा अपना धन्धा आरम्भ करने का रोजगार, इन दोनो का विस्तार हो सके और उनकी उत्पादकता बढे।

4 उत्पादन प्रणाली को चुन कर ही विशेष विकास की दर पर रोजगार का विस्तार किया जा सकता है। परन्तु यह प्रणाली श्रम-सघन होनी चाहिए अथवा ऐसी प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जाना चाहिए, जो दुर्लभ पूँजी या श्रम द्वारा कृषि करने का स्थान ले। इन तथ्यो को ध्यान मे रखते हुए चतुर्थ योजना मे अनेक रोजगारोन्मुख कार्यक्रमों का सूत्रपात किया गया। इन स्कीमों को पाँचवी योजना मे ऐसा रूप दिया जाएगा जिससे अधिकाधिक स्थायी उत्पादक परिसम्पत्तियो के निर्माण के साथ-साथ इनमे सुलभ होने वाले रोजगार के अवसरो मे कमी न आए।

1 (अ) भारत सरकार, योजना आयोग पाचवी योजना के प्रति दृष्टिकोण, 1974-79, पृष्ठ 3 8

(ब) योजना, दिनांक 22 दिसम्बर, 1973 (पाँचवीं योजना प्रारूप विशेषांक), पृष्ठ 36

5 निर्माण कार्य मे बहुत अधिक मजदूर कार्य करते हैं। अतः रोजगार वृद्धि के दृष्टिकोण से निर्माण को महत्वपूर्ण क्षेत्र मानना चाहिए। निर्माण कार्यकलाप का विस्तार कुल नियतकालीन पूंजी-निर्माण के विस्तार से सम्बन्धित है।

6 वेतन वाले रोजगार के अवसरो मे वृद्धि की जाएगी तथा अपना धन्धा शुरू करने के लिए अधिक व्यापक स्तर पर सुविधाएँ प्रदान की जाएँगी। समस्त कृषि-क्षेत्र के विकास पर बल दिया जाएगा और अतिरिक्त स्व-रोजगार की सम्भावनाओ का विकास किया जाएगा। बढती हुई श्रम-शक्ति को कृषि-क्षेत्र मे ही रोजगार पर लगाए जाने का प्रयास किया जाएगा।

7 कृषि तथा सम्बद्ध कार्यकलापो के लिए भूमि उत्पादन का बुनियादी आधार है, परन्तु इसे बढाया नही जा सकता। अत जिन लोगो के पास अल्पतर भूमि है उन्हे भूमि देने का एक ही तरीका है कि जिनके पास बहुत अधिक भूमि है या जो अन्य काम कर रहे हैं, उनसे भूमि लेकर इन लोगों को दे दी जाए। इस तथ्य को ध्यान मे रखते हुए उच्च प्राथमिकता के आधार पर भूमि-सुधार पर बल दिया गया है। दूसरे, यह निश्चय किया गया है कि जो बेकार भूमि प्राप्त हो उसे भूमिहीन खेतिहर मजदूरो को देने के काम को प्राथमिकता दी जाए। तीसरे, जिन लोगो को भूमि दी जाए उन्हे भरपूर सगठन, ऋण, निवेश तथा विस्तार की सुविधाएँ प्रदान की जाएँ ताकि वे कृषि-कर्म सफलतापूर्वक कर सकें।

8 योजना मे बडी, मझोली और छोटी सिचाई, उर्वरक, कीटनाशक, अनुसन्धान और विस्तार, फसल की कटाई के बाद के काम तथा नई प्रौद्योगिकी को समर्थन प्रदान करने और उसका विस्तार करने के लिए पर्याप्त व्यवस्था की गई है। पशुपालन, दुग्ध-उद्योग और मछलीपालन जैसे जिन कामो के लिए भूमि होनी आवश्यक नही है, को बढावा देने पर बल दिया जाएगा। आशा है कि कृषि-क्षेत्र मे रोजगार को प्रोत्साहन देने को ध्यान मे रखते हुए अनाप-शनाप यन्त्रीकरण नही किया जाएगा। केवल इस प्रकार यन्त्रीकरण को प्रोत्साहित किया जाएगा, जो केवल श्रम की बचत करने की अपेक्षा भूमि के प्रति एक समस्त उत्पादन मे वृद्धि करेगा।

9 कतिपय विशेष कार्यक्रम, जैसे—लघु कृषक-विकास अभिकरण और नाममात्र कृषि-श्रमिक-परियोजनाएँ, ग्रामीण रोजगार की त्वरित स्कीम और सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम चतुर्थ योजना मे आरम्भ किए गए। कुल मिलाकर, इन कार्यक्रमो को पृथक्-पृथक् तैयार किया गया तथा इनका सचालन भी स्थिति के अनुसार छितरा पड़ा रहा। पाँचवी योजना मे, न केवल इन कार्यक्रमो के कार्यान्वयन मे तेजी लानी होगी बल्कि विशिष्ट सरचनात्मक सुधार भी करने होगे। इन कार्यक्रमो से प्राप्त अनुभव यह बताता है कि यदि प्रभाव परिलक्षित करना है, तो सामान्यतया विकास कार्यक्रम और विशेष रूप से विशेष कार्यक्रमो को एक साथ मिलाना होगा। इन क्षेत्रीय लघु और सीमान्त कृषक तथा कृषि-श्रमिको की अर्थ-व्यवस्था मे सुधार लाने के लिए यह आवश्यक होगा कि समेकित-क्षेत्र विकास की दिशा मे प्रयत्न किया जाए।

10. कतिपय क्षेत्रों मे, शारीरिक श्रम करने वालो को रोजगार की गारन्टी देने की दिशा मे छोटा-सा प्रयास किया गया है।

11 ग्रामोद्योग और लघु उद्योग, सडक परिवहन, फुटकर व्यापार व सेवा व्यवसाय ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जिनमे अपना धन्धा आरम्भ करने की सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। अत जनसख्या के महत्त्वपूर्ण अश अर्थात् शहरी जनसख्या, शिक्षित व तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षित, ग्रामीण कारीगर और ग्रामीण क्षेत्र मे अन्य भूमिहीन तत्त्व ऐसे हैं जिनके लिए पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करने के लिए उपर्युक्त क्षेत्रो मे रोजगार का विस्तार करना होगा।

12 अर्थ व्यवस्था मे यदि रोजगार के साधन तथा अन्य क्षेत्रो के मध्य बेढगा विकास होता रहा, तो इससे रोजगार बढने की अपेक्षा रोजगार कम होगा। अत रोजगार और अन्त क्षेत्रीय सन्तुलन मे तालमेल होना चाहिए। सुविचारित रोजगार-उन्मुक्त योजना के रोजगार-सघन तथा पूँजी-सघन क्षेत्रो के मध्य ठीक प्रकार का तालमल अपेक्षित है।

13 रोजगार वृद्धि की सामान्य नीतियो को विशिष्ट कार्यक्रमो के साथ जोडकर उनका तालमेल बिठाना होगा ताकि शिक्षित बेरोजगारो को उत्पादन कार्य पर लगाया जा सके। इस प्रयोग के लिए कुशलता प्राप्त तथा अन्य सामान्य वर्गों मे अन्तर करना होगा।

14 द्रुत औद्योगिक विकास करने और उत्पादक अनुसन्धान तथा विकास कार्यकलापो को कारगर ढग से आगे बढाने से वैज्ञानिको, इन्जीनियरो—और—तकनीकियो को पूर्ण रोजगार दिया जा सकेगा। यदि परिकल्पित औद्योगिक विकास की दर और प्रणाली सही उतरती है और अनुसन्धान और विकास के कार्यकलाप सम्भावना के अनुरूप विस्तार करते हैं तो इन्जीनियरो, तकनीशियनो—और सुयोग्य वैज्ञानिको को रोजगार देने की समस्या नही रहेगी। प्राकृतिक ससाधनो के सर्वेक्षण के लिए जो कार्यक्रम बनाया जा रहा है उससे भी रोजगार के अवसर सुलभ होने की सम्भावना है।

15 सार्वजनिक सेवाएँ, प्रशासनिक सेवाएँ तथा समाज सेवाएँ शिक्षित व्यक्तियों को रोजगार देने के मुख्य केन्द्र हैं। पाँचवी योजना के दौरान समाज सेवाओ मे तीव्र विस्तार करने का विचार है। परन्तु इस पर कि इस अवधि के दौरान रोजगार के इच्छुक शिक्षित लोगो की सख्या इससे काफी अधिक होगी। यह मानना अव्यावहारिक होगा कि रोजगार की स्थिति मे केवल सार्वजनिक सेवाओ के विस्तार से कोई सुधार किया जा सकता है, क्योकि अर्थ व्यवस्था के सामग्री तथा सेवा क्षेत्रो मे भी समुचित सन्तुलन बनाए रखना जरूरी है। अत विशेष प्रशिक्षण द्वारा कुशलता प्रदान कर तथा अन्य नीति सम्बन्धी परिवर्तन कर, इन्हे समान बनाने वाले क्षेत्रो मे काम देना होगा।

16 दीर्घकालीन सम्भावनाओ के अनुसार, नौकरी के इच्छुक व्यक्तियो की समस्या का निदान केवल माँग पक्ष से विचार कर नही किया जा सकता। जहाँ तक कुशल कर्मचारियो का सम्बन्ध है, प्रशिक्षण प्रदान करने वाले संस्थानो मे प्रवेश की सख्या घटानी पड रही है, ताकि समस्या को सुलझाया जा सके। जहाँ तक ग्राम

लोगों का सम्बन्ध है, इस बारे में और भी तीव्रता से कार्यवाही करनी होगी ताकि समस्या पर काबू पाया जा सके। विश्वविद्यालय की शिक्षा को इस प्रकार विनियमित करना होगा जिससे उतनी ही संख्या में शिक्षा प्राप्त कर लोग विश्वविद्यालय से निकलें, जितने लोगों को रोजगार पर लगाया जा सके। इसके लिए न केवल विश्वविद्यालय शिक्षा पर रोक लगानी होगी बल्कि माध्यमिक शिक्षा को अधिक विविधता प्रदान कर उसे व्यावसायिक बनाना होगा ताकि उच्च शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं में प्रवेश की भीड़ भाड़ को घटाया जा सके। इसके अतिरिक्त वे सभी नियमित उपाय अन्यायपूर्ण है जो समान शिक्षा अवसर सुलभ करने से इन्कार करते हैं। समतल गतिशीलता प्रदान करने में शिक्षा, शक्तिशाली तत्त्व के रूप में कार्य कर सकती है। वर्तमान शिक्षा इस सम्बन्ध में कारगर न होने के कारण यह आवश्यक हो गया है कि ठोस निर्णय लेकर उचित रीति-नीतियाँ अपनाई जाएँ।

सितम्बर 1976 में, लगभग तीन वर्ष बाद, राष्ट्रीय विकास परिषद की पुनः बैठक हुई और पाँचवी पंचवर्षीय योजना संशोधित रूप में अन्तिम रूप से स्वीकार की गई। इस संशोधित योजना में पाँचवी योजना के दौरान रोजगार की सम्भावनाओं और जीवन स्तर के बारे में जो कहा गया वह इस प्रकार है—

"योजना बनाने वालों और नीति-निर्माताओं के सामने रोजगार की समस्या एक गम्भीर चिन्तन का विषय है। अर्थ-व्यवस्था के स्वरूप से सम्बन्धित विशेषताओं को देखते हुए इस समस्या का आकार कुछ इस प्रकार का है कि उसमें से कुछ विचार और आँकड़ों से सम्बन्धित कठिनाइयाँ उभर कर सामने आती हैं। बेरोजगारी के अनुमानों से सम्बन्धित विशेषज्ञ समिति ने सुझाव दिया था कि इस सम्बन्ध में एक बहुमुखी नीति अपनाई जानी चाहिए। राष्ट्रीय प्रतिदर्श संगठन ने 27वें दौर में समिति की सिफारिशों के अनुसार आँकड़े एकत्र किए हैं। अब तक प्रथम दो उप दौर के परिणाम प्राप्त हुए हैं। ीम अवधि के प्रबन्ध के माध्यम से वर्तमान गतिविधि के स्तर के स्वरूप को समझकर तथा बेरोजगारी की दर की व्यवस्था करके ग्रामीण क्षेत्रों में इस समस्या के गुणात्मक स्तर पर विचार करना सम्भव है। आँकड़ों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उपलब्ध करने की तत्काल आवश्यकता है। किन्तु इस समस्या के सही स्वरूप को तभी समझा जा सकता है जब यह समझ लिया जाए कि शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या ग्रामीण क्षेत्र में इसकी व्यापकता का ही परिणाम है। इसके अतिरिक्त इस बात का भी पता चलता है कि यह समस्या अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग मात्रा में है।"

"चौथी योजनावधि में संगठित क्षेत्र के अन्तर्गत रोजगार में लगभग 3% वार्षिक दर से वृद्धि होने का अनुमान है। वैचारिक कठिनाइयाँ निहित होने पर भी अन्तर जनगणना की तुलनाओं और राष्ट्रीय प्रतिदर्श संगठन के विभिन्न दौरों के परिणामों से यह संकेत मिलता है कि घरेलू, विनिर्माण क्षेत्र में, जिसमें कुटीर उद्योग को भी शामिल किया गया है, रोजगार की मात्रा अपेक्षित परिमाण में नहीं

घटी है। जिस अवधि में कृषि उत्पादन में वृद्धि की दर कम रही थी (1961-62 से 1973-74 तक), उस अवधि में 1960-61 के आधार पर प्रमुख घरेलू विनिर्माण उद्योगों के कुल मूल्य में वृद्धि की दर भी कम रही थी, अर्थात् खाद्य, पेय व तम्बाकू के पदार्थ में (1 83% प्रति मिश्रित वर्ष), सूती वस्त्रों की सिलाई और चमड़े के जूते चप्पल में (2 09 प्रतिशत), चमड़ा और चमड़े की बनी वस्तुएँ (–1 62%) वैसे यह कमी रसायन और इंजीनियरी क्षेत्र में ऊँची वृद्धि की दर से (3 से 6% के बीच) के कारण पूरी हो गई थी।'

"एक उपयुक्त नीति तैयार करने के लिए यह जरूरी है कि उन घटकों का पता लगाया जाए जो ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार का क्षेत्रीय आधार पर प्रभावित करते हैं। योजना आयोग ने रा प्र स के क्षेत्र का उपयोग करते हुए कुछ अध्ययन किए हैं। उत्पादन के प्रति एक रूपों में अन्य घटकों जैसे प्रति हैक्टर उत्पादन, प्रति हैक्टर उर्वरक का प्रयोग ट्रैक्टरों का प्रयोग, सिंचाई विनियोजन, स्तर और जोत के आकारों में असमानता के स्तर की तुलना में रोजगार के अश के सम्बन्ध में अनुसन्धान किए गए है। उत्पादक के प्रति रुपये और प्रति हैक्टर भूमि पर रोजगार का अश सिंचाई में होने वाले परिवर्तनों पर निर्भर है, जैसे प्रति हैक्टर भूमि में लगाए गए पम्प सैटों की संख्या। इसी प्रकार पाँच एकड़ (2 हैक्टर) के या इससे कम आकार के जोतों के साथ रोजगार की दर जुड़ी हुई है। विकसित वाणिज्यिक कृषि क्षेत्रों तथा शेष क्षेत्रों में इस सम्बन्ध पर अलग और अधिक विचार किया गया। इससे प्राप्त हुए परिणाम लगभग वे ही थे जो पूरे देश के सम्बन्ध में प्राप्त हुए थे। इसके अलावा यह भी ज्ञात हुआ कि प्रति हैक्टर उर्वरकों का प्रयोग, नई कृषि तकनीकी का विस्तार भी वाणिज्यिक क्षेत्रों में रोजगार से निश्चित रूप से जुड़ा हुआ था।"

उपयुक्त कार्यनीति और रोजगार नीति तैयार करने की दृष्टि से तीन बातें आपस में सम्बन्धित हैं जिनका ध्यान रखा जाना चाहिए। पहली बात में इस बात पर जोर दिया गया है कि एक ऐसा कार्यक्रम कार्यान्वित करने की आवश्यकता है जिसमें सिंचाई अधिक उपज देने वाली किस्मों के सम्बन्ध में कृषि विस्तार कार्य आदि जैसे योजना में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कार्यनीति को अमल में लाया जाए। दूसरी बात इस सम्बन्ध में है कि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन का कार्य स्थानीय विकास से सम्बन्धित कार्यनीति से जुड़ा होना चाहिए और तीसरी व अन्तिम और सबसे महत्त्वपूर्ण बात पट्टेदारी प्रथा में सुधार के उपायों से ग्रामीण काश्तकार वर्ग में सुरक्षा तथा छोटे काश्तकारी की उपज को लाभकारी बनाने से सम्बन्धित है।

उपर्युक्त रीति विधान के निष्पादन से कई परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। पहला तो यह है कि इसका अर्थ होगा महत्त्वपूर्ण निवेश उपलब्धता सुनिश्चित करना और उसका प्रभावी रूप से उपयोग करना योजना के उत्पादन और विनियोजन पक्ष के अन्तर्गत इस बात का ध्यान रखा गया है। दूसरा यह है कि कृषि के माध्यम से रोजगार की योजना का स्वरूप क्षेत्र विशिष्ट से सम्बन्धित होना चाहिए और

इसलिए इस सम्बन्ध मे बहुस्तरीय नीति अपनानी होगी। प्रत्येक क्षेत्र की मिट्टी और कृषि-जलवायु को ध्यान मे रखकर सिचाई की सुविधाओं की उपलब्धता के विस्तृत अनुमान तैयार किए जाने चाहिएँ जो भूतल और भूमिगत दोनो प्रकार के जलस्रोतो से सम्बन्धित हो। पिछले अनुभव, क्षेत्र विशिष्ट मे विशिष्ट फसल उगाने की प्रवृत्ति और योजना मे स्पष्ट की गई माँग की रूपरेखा को देखते हुए प्रत्येक उप-क्षेत्र की सफल फसल प्रणाली को निर्धारित करना होगा। सिचाई के अन्तर्गत क्षेत्रो तथा निश्चित वर्षा वाले क्षेत्रो और यथा सम्भव शुष्क क्षेत्रो मे नई किस्मे के विस्तार की सम्भावनाओ के व्यावहारिक अनुमान लगाने होगे। इसलिए प्रत्येक क्षेत्र की उत्पादन-क्षमता का अनुमान सावधानीपूर्वक लगाना होगा और उसके लिए अपेक्षित सगठनात्मक और निवेश सम्बन्धी सुविधाएँ सुनिश्चित करनी होगी। इस बात का ध्यान रखना होगा कि इस काम मे विसगतियाँ उत्पन्न न होने पाएँ। निस्सन्देह यह एक कठिन कार्य है। इन प्रयासो से प्राप्त होने वाले युक्तियुक्त आश्वासन के बगैर कोई गम्भीर और उपयोगी रोजगार योजना नही बनाई जा सकती।

अध्ययनो द्वारा क्षेत्रीय योजना के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। इनसे यह ज्ञात होता है कि कुछ ससाधनो की अलोच, जो राष्ट्रीय स्तर पर एक बन्धन रहती है, स्थानीय स्तर पर उतनी ही कठोर नही रह पाती जिसके फलस्वरूप, यदि जनसहयोग और स्थानीय ज्ञान का उपयोग किया जा सके और आयोजन मे पहल करने की भावना हो तो उपलब्ध भौतिक और जन-ससाधनो मे वृद्धि हो सकती है और उनका अधिक कुशलता से उपयोग किया जा सकता है। इस सबके लिए राज्य तथा स्थानीय स्तर पर योजना तन्त्र को बढाने की आवश्यकता पडेगी। यह इतना महत्त्वपूर्ण कार्य है कि राष्ट्रीय आयोजन के साथ सुसगत तालमेल स्थापित किया जाना चाहिए।

सफल स्थानीय योजना के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि 20 सूत्री कार्यक्रम में भूमि सुधार के कार्यों को प्राथमिकता दी जाए और इसे लागू करने के लिए उपाय किए जाएँ। छोटे-छोटे किसानो को और बँटाइदारो को सम्पत्ति के अधिकार देने या पट्टेदारी के अन्तर्गत सुरक्षा प्रदान करने और इसके साथ ही कृषि कार्यक्रम विशेषत· ल क बी ए और ना कि भू श्र कार्यक्रम के माध्यम से उत्पादन में सहायता देने की स्कीमे बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। व्यापक क्षेत्रीय नीति के आधार पर बनाई गई कृषि योजना के अन्तर्गत पशुपालन, पारस्परिक बेकार वस्तुओ आदि जैसी सहायक गतिविधियो के द्वारा अतिरिक्त रोजगार सृजित करने मे काफी मदद मिल सकती है।

पांचवी पचवर्षीय योजना मे श्रम की पूर्ति के अनुमानो के अनुसार पाँचवी योजनावधि मे कृषि क्षेत्र बल की सख्या मे 162 लाख और छठी योजना में 189 लाख वृद्धि होगी। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के 27वें दौर द्वारा अनुमानित श्रम बल की दर मे 5 से 14 वर्ष के बच्चो को शामिल कर लिए जाने पर औ

सर्वेक्षण के लिए उपयोग मे लाए गए विविध परिकल्प के कारण यह दर बढ जाएगी। फिर भी रा प्र स. के परिकल्पनो पर आधारित अनुमानो के अनुसार पांचवी पचवर्षीय योजनावधि मे श्रम बल की सख्या मे वृद्धि लगभग 182 6 लाख से 189 6 लाख तक होगी और छठी योजना मे 195 7 लाख से 203 9 लाख तक होगी। जैसी भारत की अर्थ व्यवस्था है, ऐसी अर्थ-व्यवस्था मे श्रम बल की पूर्ति के अनुमान अस्थिर रहते हैं। ऊपर वर्णित किए गए लक्ष्यो को सफलतापूर्वक पूरा कर लेने पर श्रम बल की वृद्धि को पांचवी योजनावधि मे काम पर लगाया जा सकता है और छठी योजनावधि मे पहले से ही बेरोजगार व्यक्तियो को काम देने के लिए उपयोगी प्रयास किए जा सकते हैं।

पजीकृत विनिर्माण क्षेत्र के अन्तर्गत रोजगार और उत्पादन के परस्पर सम्बन्धो पर 20 औद्योगिक समूहो मे अन्वेषण किया गया था। इस विश्लेषण मे क्षमता के उपयोग के परिवर्तनो का भी ध्यान रखा गया है। भावी योजना मे प्रमुख बल सरकारी विनियोजन और सम्पूर्ण विनियोजन पर दिया गया है और यह लक्ष्य पूरा हो जाने पर पांचवी योजनावधि मे पजीकृत विनिर्माण क्षेत्र मे विनिर्माण कार्यों मे रोजगार मे वृद्धि दर चौथी योजनावधि की दर से काफी अधिक रहने की सम्भावना है। आने वाले समय मे इस वृद्धि की प्रवृत्ति को और तेज करना होगा। यदि खान, खनन, निर्माण उद्योग, बिजली, रेलवे तथा अन्य परिवहन और अन्य सेवाओ के क्षेत्रो मे भी लक्ष्य पूरे किए जा सकें तो रोजगार की सुविधाओ मे काफी वृद्धि हो सकती है।

अपजीकृत क्षेत्र मे, जिसके अन्तर्गत घरेलू क्षेत्र आता है, पिछले दशक की रोजगार की प्रवृत्तियो को पलट देने की आवश्यकता है। पांचवी पचवर्षीय योजना मे कुटीर उद्योग क्षेत्र के प्रस्तावित कार्यक्रमो के लिए परिव्यय मे काफी वृद्धि की गई है। यह वृद्धि हाथ करघा, नारियल रेशे, गलीचे बुनने और प्रशिक्षण तथा अन्य क्षेत्रों के योजना कार्यक्रमो के क्षेत्र मे विशेष रूप से की गई है। यह सम्भावना है कि घरेलू क्षेत्र की कृषि पर आधारित पूर्ति पर ज्यादा कठोर नियत्रण नही रहेगा। इस क्षेत्र से सम्बन्धित कर, ऋण और उत्पादन सहायता नीतियो का ठीक प्रकार से प्रयोग करना अनिवार्य है ताकि और अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जा सकें। श्रम बहुलता वाले प्रौद्योगिक सुधार करने और उनका प्रसार करने की भी आवश्यकता है। पांचवी योजना के प्रारूप मे बताई गई रूपरेखा के अनुसार पांचवी पचवर्षीय योजनावधि मे कृषि से इतर क्षेत्र मे श्रम बल की सख्या मे 85 लाख और छठी योजना मे 91 लाख की वृद्धि होने का अनुमान लगाया गया है। भावी योजना मे बताए गए उत्पादन लक्ष्यो का पूरा करना नितान्त आवश्यक है, तभी कृषि से इतर क्षेत्र मे रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जा सकेंगे। भावी योजना के उत्पादन लक्ष्यो को पूरा करने और ऊपर स्पष्ट की गई नीतियो, विशेषत अपजीकृत क्षेत्र से सम्बन्धित नीतियो को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने से पांचवी पचवर्षीय योजनावधि में कृषि से इतर क्षेत्र के अन्तर्गत श्रम बल मे हुई वृद्धि की पांचवी योजनावधि मे

उत्पादक कार्यों में लगाया जा सकता है और उसके बाद पहले से चली आ रही बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए छठी योजना में गम्भीरतापूर्वक प्रयास करने होंगे।

दीर्घकालीन भावी योजना के अन्तर्गत सुझाई गई रोजगार नीति में सरकारी विनियोजन दर बढ़ाने पर बल दिया गया है ताकि योजनाओं में निर्धारित किए गए उत्पादन के अनुमानों को पूरा किया जा सके, कृषि योजना नीति को विशेष रूप से उसके स्थानीय स्वरूप को व्यापक और उन्नत किया जा सके, 20-सूत्री कार्यक्रम में दिए हुए भूमि सुधार लक्ष्यों को पूरा किया जा सके। छोटे-छोटे किसानों को उत्पादन में सहायता दी जा सके और अन्त में, अपंजीकृत क्षेत्र में एक उपयुक्त नीति के अन्तर्गत रोजगार के अवसर फिर से सर्जित किए जा सकें। जब एक बार, उपलब्ध श्रम बल को लाभदायक कार्यकलापों में लगाने की नीति सफल हो जाएगी तो उसके बाद रोजगार की स्थिति की गुणवत्ता से सम्बन्धित पहलू में परिवर्तन किया जाना चाहिए।

जहाँ तक रहन-सहन का सम्बन्ध है, पाँचवीं योजना के प्रारूप में बताए गए रीति विधान का प्रयोग ऊपर वर्णित रोजगार की सम्भावनाओं के साथ उपभोग के स्तरों का एकीकरण करने के लिए किया गया है। उत्पादन के वस्तुपरक अंश में यथोचित संशोधन कर दिए गए हैं और उसे भावी योजना में अनुमानित उत्पादन के आकार में मिला दिया गया है।

जनता सरकार की नई राष्ट्रीय योजना (1978-83) में बेरोजगारी से युद्ध

मार्च, 1977 में कांग्रेस शासन का पराभव हो गया और जनता पार्टी सत्तारूढ़ हुई। जनता सरकार ने समुचय अर्थ-व्यवस्था के प्रति एक नया और अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया और पाँचवीं पंचवर्षीय योजना को समय से एक वर्ष पूर्व ही 31 मार्च, 1978 को समाप्त कर 1 अप्रैल, 1978 से नई छठी राष्ट्रीय योजना लागू कर दी और योजना प्रणाली को 'अनवरत अथवा आवर्ती योजना प्रणाली' (Rolling Plan System) का रूप दिया गया। राष्ट्रपति श्री नीलम संजीव रेड्डी ने 20 फरवरी, 1978 को संसद् के समक्ष अपने अभिभाषण में कहा—

"इस सरकार को विरासत में ऐसी अर्थ-व्यवस्था मिली जिसमें घोर गरीबी और बेरोजगारी थी, खास तौर से ग्रामीण क्षेत्रों में, जहाँ अधिकतर लोगों को पिछले 30 सालों में हुए विकास का लाभ नहीं मिला था। इस सम्बन्ध में ग्रामीण क्षेत्रों की उपेक्षा को दूर करने के लिए तथा गरीबी और बेरोजगारी की पुरानी समस्या को सुलझाने के लिए सरकार ने विकास प्रक्रिया को सही दिशा देने का निर्णय किया है। इसीलिए, पाँचवीं पंचवर्षीय योजना को इस साल समाप्त कर अप्रैल, 1978 से एक नई पंचवर्षीय योजना शुरू की जा रही है। इस योजना में विकास के लक्ष्य निर्धारण सम्बन्धी सरकार की नई विचारधारा का समावेश होगा। बेरोजगारी और बड़े पैमाने पर अल्प रोजगारी को कम से कम समय में दूर करना,

इसी अवधि मे निम्नतम आय वाले वर्ग के लोगो के लिए अधिक से अधिक मात्रा मे आवश्यक वस्तुएँ और सेवाएँ उपलब्ध कराना, आय और सम्पत्ति की असमानता म महत्त्वपूर्ण कमी करना और तकनीकी आत्म-निर्भरता म लगातार प्रगति करना इस योजना के प्रमुख उद्देश्य होगे। इसलिए अगली पचवर्षीय योजना मे कृषि और उससे सम्बन्धित गतिविधियो, कुटीर और लघु उद्योगो, सिचाई और बिजली, प्रौढ शिक्षा, सभी के लिए बुनियादी शिक्षा, गाँव म पानी और सडको की व्यवस्था करने पर खास तौर से जोर दिया जाएगा। अर्थ-व्यवस्था के लिए आवश्यक आधारभूत सामग्री जैसे तेल, कोयला, धातुएँ, उर्वरक सीमेट आदि के उत्पादन पर भी बल दिया जाएगा।"

"सरकार ने नई औद्योगिक नीति की घोषणा की है जिसमे कुटीर और लघु उद्योगो के विकास को पूरे देश म अच्छी तरह फैलाने पर जोर दिया गया है। इससे रोजगार के अवसरो मे तेजी से वृद्धि करने के हमारे लक्ष्य का प्राप्त करने मे सहायता भी मिलेगी। इस नीति के अन्तर्गत सरकारी क्षेत्र और वृहद् उद्योग, स्वदेशी और विदेशी तकनीक, विदेशी निवेश, कामगारो की भागीदारी और उससे सम्बन्धित मामले भी आते हैं, और इससे इस दिशा मे किसी भी प्रकार की अनिश्चितता को दूर करन म और फिर से पूंजी निवेश करने में काफी सहायता मिलेगी।"

प्रो एल के मुलाहकर ने भारत सरकार की विशेष लेखमाला म अपने एक लेख 'बेरोजगारी की समस्या का निराकरण' दिनाँक 20 अगस्त, 1977 मे लिखा है कि सरकार की ऐसी योजना है जिसके अन्तर्गत देश के सभी काम करने वाले लोगो के लिए रोजगार देने का कार्य विभिन्न चरणो मे आगामी दस वर्षो मे पूरा किया जाएगा। श्री मुलाहकर ने आगे लिखा है– "इस बात पर आम सहमति है कि हर प्रकार के राजनीतिक विवादो से ऊपर उठकर एक समयबद्ध कार्यक्रम के अन्तगत बेरोजगारी की समस्या को खत्म करना है। अनेक लोगो की यह माँग है कि लोगो के रोजगार के अधिकार को सांविधानिक रूप दिया जाए। इस बात पर सभी सहमत हो कि बेरोजगारी की समस्या से आज जो भयानक स्थिति बन रही है वह कभी भी विस्फोटक रूप ले सकती है। भारत की सबसे बडी सम्पदा उसके तीस करोड लोगो की कार्य शक्ति है। इस जन शक्ति क भरपूर उपयोग की दिशा म एक सुझाव यह है कि रोजगार के लिए पाँच अरब रुपये की व्यवस्था अलग स की जाए। रोजगार योजनाओ पर चलने वाली बहस से एक बात साफ झलकती है कि बेरोजगारो को भत्ता देने की नीति व्यावहारिक रूप से लागू नही की जा सकती, क्योकि एक तो इससे सरकारी कोष पर चालीस अरब रुपये का व्यय भार बढेगा और दूसरे लोगो मे काम न करने की प्रवृत्ति ही बढेगी।" श्री मुलाहकर ने आगे यह भी लिखा है कि "दुनियाँ के विकसित देशो के अनुभवो से पता चलता है कि केवल आर्थिक विकास की दर म वृद्धि मात्र से बेरोजगारी को समाप्त नही किया जा सकता। यह महसूस किया जा रहा है कि देश की बेरोजगारी की समस्या का समाधान अर्थ-व्यवस्था मे

बुनियादी संरचनात्मक परिवर्तन लाने की सरकार की राजनीतिक इच्छा पर निर्भर करता है। पिछले तीन वर्षों तक देश में पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था को अपनाया गया और इससे बेरोजगारी में लगातार वृद्धि हुई।" श्री मुलाहकर का कहना है कि "भारत ने विज्ञान और टेक्नोलोजी के क्षेत्र में बहुत तरक्की की है और देश में बड़ी संख्या में तकनीकी व्यक्ति उपलब्ध हैं। देश में आधुनिक तरीकों से आर्थिक विकास के लिए समुचित अवस्थापना भी निर्मित हो चुकी है। सरकारी रोजगार योजनाएँ इसी परिप्रेक्ष्य में तैयार की जानी चाहिए। देश का वर्तमान वैज्ञानिक आधार इतना व्यापक और सबल है कि यह कृषि और उद्योगों के मिले-जुले आर्थिक समाज के निर्माण के लिए तैयार किए जाने वाले विविध विकास कार्यों को वहन कर सकता है और उन्हें समुचित गति दे सकता है। देश के सभी लोगों के लिए रोजी-रोटी की व्यवस्था करने के लिए यही सर्वोत्तम मार्ग है।

12 अप्रेल, 1978 को लोकसभा में प्रधान मन्त्री श्री मोरारजी देसाई ने बताया कि छठी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक शिक्षित बेरोजगारों की संख्या काफी कम हो जाएगी और संगठित क्षेत्र में 19.5 लाख अतिरिक्त लोगों को काम मिल सकेगा।

भारत के संगठित क्षेत्र में रोजगार (1975–76)
(Employment in the Organised Sector)

इस सम्बन्ध में भारत सरकार के प्रकाशन 'आर्थिक समीक्षा—1976–77' का विवरण इस प्रकार है—

"सन् 1975–76 में संगठित रोजगार के अवसरों में 5·20 लाख अथवा 2·6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। यह वृद्धि मुख्य रूप से सरकारी क्षेत्र में 4.7 लाख रोजगार के अवसर बढ़ जाने के कारण हुई। इससे यह पता चलता है कि सरकारी क्षेत्र में रोजगार, गैर-सरकारी (निजी) क्षेत्र में 0.6 प्रतिशत के मुकाबले 3·6% बढ़ा। परन्तु समय-समय पर कुछ गैर-सरकारी औद्योगिक एककों को सरकारी क्षेत्र में ले लिए जाने की वजह से तुलना करने पर गैर-सरकारी क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि कम मालूम होती है। सन् 1975–76 में इन सभी बड़े उद्योगों (थोक और खुदरा व्यापार तथा वित्त पोषण और बीमा आदि समूहों को छोड़कर) में रोजगार में वृद्धि हुई। सेवाओं के क्षेत्र में, जहाँ कुल रोजगार का लगभग 2/5 भाग उपलब्ध है, रोजगार में 3·0 प्रतिशत वृद्धि हुई। इसी तरह विनिर्माण उद्योग समूह में रोजगार में काफी वृद्धि (2·9 प्रतिशत) हुई। इस प्रकार सेवाओं तथा विनिर्माण दोनों उद्योग समूहों में संयुक्त रूप से जिनमें कुल रोजगार का लगभग 64 प्रतिशत भाग उपलब्ध है, सन् 1975–76 में संगठित क्षेत्र में रोजगार में हुई वृद्धि में 72 प्रतिशत अंश तक योगदान किया गया। जहाँ तक भवन आदि के निर्माण में रोजगार देने का सम्बन्ध है, कुल मिलाकर स्थिति यह रही है कि इस क्षेत्र में रोजगार बहुत मामूली सा बढ़ा, क्योंकि सन् 1975 में इस प्रकार का निर्माण कार्य कम हुआ। लेकिन वर्ष

के ग्रन्त मे सरकारी क्षेत्र के भवन ग्रादि के निर्माण से सम्बन्धित कार्यकलापो के बारे मे सरकार द्वारा कई प्रकार की छूट दिए जाने के कारण कुल मिलाकर सन् 1975–76 मे इस क्षेत्र मे 37,000 ग्रौर ज्यादा व्यक्तियो को रोजगार मिला। जहाँ तक गैर-सरकारी क्षेत्र मे भवन ग्रादि के निर्माण कार्य से रोजगार मिलने का सम्बन्ध है, मार्च, 1975 के इस क्षेत्र मे रोजगार कम होने लगा था पर बाद मे सितम्बर, 1975 ग्रौर मार्च, 1976 के बीच इस क्षेत्र मे भी 7,000 ग्रौर ग्रधिक लोगो को रोजगार मिला।

दिसम्बर, 1976 के ग्रन्त मे, देश के रोजगार कार्यालयो की पजियो मे नौकरी के लिए नाम लिखवाने वालो की सख्या लगभग 97 7 लाख थी जबकि इससे पिछले वर्ष के दिसम्बर के ग्रन्त मे इनकी सख्या लगभग 93 3 लाख थी। इसका मतलब यह है कि इस ग्रवधि के दौरान नौकरी के लिए नाम लिखवाने वालो की सख्या मे 4 8 प्रतिशत की बढोत्तरी हुई। सन् 1975 मे नौकरी के लिए नाम लिखवाने वालो की सख्या मे जो 10 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी उसके मुकाबले ग्रालोच्य वर्ष के दर ग्राधे से भी कम है क्योकि सन् 1976 मे इससे पहले वर्ष के मुकाबले 24 0 प्रतिशत ग्रधिक खाली पदो को ग्रधिसूचित किया गया था ग्रौर 23 0 प्रतिशत ज्यादा नौकरियाँ दी गई थी। शिक्षित बेरोजगारो की कुल सख्या भी 48 05 लाख से बढकर 51 05 लाख हो गई। परन्तु शिक्षित बेरोजगारो की सख्या मे हुई यह वृद्धि सन् 1975 मे हुई 6 58 लाख की वृद्धि की तुलना म बहुत कम थी। रोजगार के ग्रवसरो मे ग्रौद्योगिक उत्पादन बढ जाने के कारण वृद्धि हुई है। इससे 'ग्रन्य क्षेत्र' का विस्तार भी हो सकता था। तब भी नौकरी तलाश करने वाले जिन लोगो का नाम रजिस्टरो मे दर्ज है उससे भारी चिन्ता के ग्रलावा ग्रौर कुछ नही हो सकता क्योकि यह बात स्वीकार करनी होगी कि कुल मिलाकर बेरोजगारी की समस्या पर इस वृद्धि का जो प्रभाव पडा है वह बहुत मामूली है।

वास्तव मे रोजगार कार्यालयो के जरिये जितने ग्रधिक पद भरे गए हैं उनको देखने से यह पता चलता है कि सन् 1972 ग्रौर 1973 मे ग्रर्थात् ग्रर्थव्यवस्था के कुछ छोटे-छोटे ग्रौद्योगिक क्षेत्र मे मन्दी की स्थिति दिखाई देने से पहले भी जितने खाली पद भरे गए थे लगभग उतने ही खाली पद ग्रालोच्य वर्ष मे भरे गए। इसके ग्रलावा इन ग्रांकडों से न यह पता चलता है कि देहातो मे बेकारी कितनी है ग्रौर कम रोजगारी कितनी है। जो भी सकेत उपलब्ध है उनसे यही पता चलता है कि समस्या गम्भीर है ग्रौर वह हर साल भयावह होती जा रही है। इसलिए न केवल नए लोगो को रोजगार देने के लिए बल्कि पहले के बेकारो को रोजगार देने के लिए यदि रोजगार के ग्रवसर बढाना है तो इस दिशा मे काफी कुछ करने की ग्रावश्यकता है। खास तौर पर पचवर्षीय ग्रायोजनाग्रो को जिनमे रोजगार को ग्रब तक विकास प्रक्रिया का गौण ग्रग समझा जाता रहा, नया रूप देना होगा ग्रौर उनमे रोजगार को विकास का एक ग्रभिन्न ग्रग मान कर उसे प्रमुख स्थान देना होगा।

राष्ट्रीय रोजगार सेवा
(National Employment Service : N.E.S.)

राष्ट्रीय रोजगार सेवा 1945 में शुरू की गई थी। इसके अन्तर्गत प्रशिक्षित कर्मचारियों द्वारा चलाए जाने वाले अनेक रोजगार कार्यालय खोले गए हैं। ये रोजगार कार्यालय रोजगार की तलाश में सभी प्रकार के व्यक्तियों की सहायता करते हैं, विशेषकर शारीरिक रूप से बाधित व्यक्तियों, भूतपूर्व सैनिकों, अनुसूचित जातियों और जन-जातियों, विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों तथा व्यावसायिक और प्रबन्धक पदों के उम्मीदवारों की। रोजगार सेवा अन्य कार्य भी करती है जैसे रोजगार सम्बन्धी सूचनाएँ एकत्र और प्रचारित करना तथा रोजगार और धन्धो-सम्बन्धी अनुसंधान के क्षेत्र में सर्वेक्षण और अध्ययन करना। ये अनुसंधान तथा अध्ययन ऐसे आधारभूत आँकड़े उपलब्ध कराते हैं, जो जन-शक्ति के कुछ पहलुओं पर नीति-निर्धारण में सहायक होते हैं।

रोजगार कार्यालय अधिनियम 1959 (रिक्त स्थान सम्बन्धी अनिवार्य ज्ञापन) के अन्तर्गत 25 या 25 से अधिक श्रमिकों को रोजगार देने वाले मालिकों के लिए रोजगार कार्यालयों को अपने यहाँ के रिक्त स्थानों के बारे में कुछ अपवाद के साथ ज्ञापित करना और समय-समय पर इस बारे में सूचना देते रहना आवश्यक है।

31 दिसम्बर, 1974 को देश में 535 रोजगार कार्यालय (जिनमें 54 विश्वविद्यालय रोजगार तथा मार्ग दर्शन ब्यूरो भी शामिल हैं) थे।[1] निम्नलिखित सारणी में रोजगार कार्यालयों की गतिविधियों से सम्बन्धित आँकड़े दिए गए हैं—

रोजगार कार्यालय तथा अभ्यर्थी

वर्ष	रोजगार कार्यालयों की संख्या	पंजीकृत संख्या	रोजगार पाने वाले अभ्यर्थियों की संख्या	चालू रजिस्टर में अभ्यर्थियों की संख्या	रोजगार कार्यालयों का लाभ उठाने वाले मालिकों का मासिक औसत	ज्ञापित रिक्त स्थानों की संख्या
1956	143	16,69,985	1,89,855	7,58,503	5,346	2,96,618
1961	325	32,30,314	4.04,707	18,32,703	10,397	7,08,379
1966	396	38,71,162	5,07,342	26,22,460	12,908	8,52,467
1971	437	51,29,857	5,06,973	50,99,919	12,910	8,13,603
1972	453	58,26,916	5,07,111	68,96,238	13,154	8,58,812
1973	465	61,45,445	5,18,834	82,17,649	13,366	8,71,398
1974	481	51,76,274	3,96,898	84,32,869	12,175	6,72,537

1 India 1976 p. 343.

नवम्बर, 1956 से रोजगार कार्यालयो पर दैनिक प्रशासनिक नियन्त्रण क. कार्य राज्य सरकारो को सौपा गया है। अप्रैल, 1969 से राज्य-सरकारो को जन-शक्ति और रोजगार योजनाओ से सम्बद्ध वित्तीय नियन्त्रण भी दे दिया गया। केन्द्रीय सरकार का कार्य क्षेत्र अखिल भारतीय स्तर पर नीति-निर्धारण, कार्य-विधि और मानको के समन्वय तथा विभिन्न कार्यक्रमो के विकास तक सीमित है।

229 रोजगार कार्यालयो तथा सारे विश्वविद्यालय रोजगार सूचना तथा मार्ग-दर्शन ब्यूरो मे युवक युवतियो (ऐसे अभ्यर्थी जिन्हे काम का कोई अनुभव नही है) और प्रौढ व्यक्तियो (जिन्हे खास खास काम का ही अनुभव है) को काम-धन्धे से सम्बद्ध मार्ग दर्शन और रोजगार सम्बन्धी परामर्श दिया जाता है।

शिक्षित युवक-युवतियो को लाभदायक रोजगार दिलाने की दिशा मे प्रवृत्त करने के लिए रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय के कार्य-मार्गदर्शन और आजीविका परामर्श कार्यक्रमो को विस्तृत और व्यवस्थित किया गया है। रोजगार सेवा अनुसधान और प्रशिक्षण के केन्द्रीय सस्थान मे एक आजीविका अध्ययन केन्द्र स्थापित किया गया है जो युवक-युवतियो तथा अन्य मार्गदर्शन चाहने वालो को व्यवसाय सम्बन्धी साहित्य देता है।

1977 मे बेरोजगारो की संख्या मे 11 6 प्रतिशत वृद्धि[1]

देश मे पजीकृत बेरोजगारो की सख्या मे 1977 मे 11 40 लाख या 11 6 प्रतिशत बेरोजगारो की वृद्धि हुई। रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशक की 1977–78 की रिपोर्ट मे बताया गया कि रोजगार कार्यालयो के रजिस्टरो के अनुसार बेरोजगारो की सख्या 1976 मे 97 84 लाख स 19 6 प्रतिशत बढकर 1977 मे 109 24 लाख हो गई। रिपोर्ट के अनुसार रोजगार कार्यालयो द्वारा 1977 मे कम बेरोजगारो, 4 62 लाख को नौकरियाँ दिलाई जा सकी जबकि पूर्व वर्ष मे 4 97 लाख बेरोजगारो को काम दिलाया गया था।

महिला बेरोजगारो की सख्या 1977 मे बढकर 14 10 लाख हो गई जो 1976 मे 12 31 लाख थी। 1977 मे पूर्व वर्ष की तुलना मे कम महिलाओ को रोजगार दिलाया जा सका। 58,049 महिलाओ की तुलना मे 1977 मे 52,026 महिलाओ को रोजगार दिलाया जा सका।

सगठित क्षेत्र मे मार्च, 1977 मे कर्मचारियो की सख्या बढकर 207 15 लाख हो गई जो 31 मार्च, 1976 को 202 07 लाख थी।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो मे 1975–76 मे 133 63 लाख व्यक्तियो को रोजगार मिला हुआ था जबकि 1976 मे यह सख्या बढकर 138 49 लाख हो गई।

रोजगार दिलाने वाली सेवाओ का विस्तार किया जा रहा है और उनमे विविधता लाई जा रही है जिससे श्रम, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति, भूतपूर्व सैनिको तथा कुछ अन्य वर्गों के व्यक्तियो को रोजगार दिलाया जा सके।

1 हिन्दुस्तान दिनांक 14 अप्रैल, 1978

12 राजस्थान में आर्थिक-नियोजन का संक्षिप्त सर्वेक्षण

(A BRIEF SURVEY OF ECONOMIC-PLANNING IN RAJASTHAN)

गुलाबी नगर जयपुर राजधानी वाला राजस्थान भारत संघ के उन्नत राज्यों की श्रेणी में आने के लिए योजना-बद्ध आर्थिक विकास के मार्ग पर अग्रसर है। राजस्थान का क्षेत्रफल 3,42,214 वर्ग किलोमीटर और जनसंख्या सन् 1971 की जनगणना के आधार पर 2,57,65,806 है। भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना के साथ ही सन् 1951 मे राजस्थान राज्य मे भी आर्थिक नियोजन का सूत्रपात हुआ। राजस्थान राज्य अब तक चार पचवर्षीय योजनाएँ और तीन वार्षिक योजनाएँ पूरी कर चुका है। 1 अप्रेल, 1974 से राज्य मे पाँचवी पचवर्षीय योजना लागू हो चुकी है। सन् 1974–75 से जो एकवर्षीय योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही है, वे राज्य की पाँचवी योजना के अग रूप मे हैं।

राजस्थान मे आर्थिक नियोजन के सर्वेक्षण को निम्न शीर्षको मे विभाजित किया जा सकता है—

(1) राजस्थान की प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाएँ,
(2) राजस्थान की तीन वार्षिक योजनाएँ,
(3) राजस्थान की चतुर्थ पचवर्षीय योजना,
(4) राजस्थान की पाँचवी पचवर्षीय योजना और वार्षिक योजनाएँ (1974–75, 1975–76, 1976–77)
(5) राजस्थान मे सम्पूर्ण योजना-काल मे आर्थिक प्रगति।

राजस्थान में प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाएँ

राजस्थान की तीनो पचवर्षीय योजनाओ की प्रस्तावित और वास्तविक व्यय राशि इस प्रकार रही—

योजना	प्रस्तावित व्यय-राशि (करोड रुपये में)	वास्तविक व्यय-राशि (करोड रुपये में)
1. प्रथम योजना	64 50	54·14
2. द्वितीय योजना	105·27	102·74
3. तृतीय योजना	236·00	212·63

पूर्वोक्त सारणी से स्पष्ट है कि योजना-व्यय की राशि उत्तरोत्तर बढती गई। प्रथम योजना मे सार्वजनिक-क्षेत्र मे व्यय की राशि लगभग 54 करोड रुपये से बढकर द्वितीय योजना मे लगभग 103 करोड रुपये और तृतीय योजना मे लगभग 213 करोड रुपये हो गई।

तीनो योजनाओ मे सार्वजनिक-व्यय की स्थिति

राजस्थान की प्रथम तीनो योजनाओ मे विकास के विभिन्न शीर्षको पर सार्वजनिक व्यय की स्थिति (संख्या और प्रतिशत दोनो मे) निम्न सारणी से स्पष्ट है—

(करोड रुपये मे)

विकास के शीर्षक	प्रथम योजना		द्वितीय योजना		तृतीय योजना	
	रुपये (वास्तविक)	कुल व्यय से %	रुपये (वास्तविक)	कुल व्यय से %	रुपये (वास्तविक)	कुल व्यय से %
1	2	3	4	5	6	7
1 कृषि एवं सामुदायिक विकास	6 99	12 90	25 45	24·77	40 65	19 11
2 सिंचाई	30 24	55 86	23 10	22 57	76 23	35 85
3 शक्ति	1 24	2 27	15 15	14 74	39 64	18 64
4 उद्योग तथा खनिज	0 46	0 85	3 38	3 29	3 31	1 50
5 सडकें	5 55	10 25	10 17	9 90	9 75	4 59
6 सामाजिक सेवाएँ	9 12	16 84	24 31	23 67	42 03	19 77
7 विविध	0 55	1 01	1 09	1 06	1 02	0 48
योग	54 14	100 00	102 74	100 00	212 63	100 00

उपरोक्त आँकडो से स्पष्ट है कि राजस्थान की आर्थिक योजनाओ मे सर्वोच्च प्राथमिकता सिंचाई एवं शक्ति को दी गई है। प्रथम योजना मे कुल व्यय का लगभग 58% द्वितीय योजना मे लगभग 37% और तृतीय योजना मे कुल व्यय का लगभग 54% सिंचाई एवं शक्ति पर व्यय किया गया है। प्रथम योजना मे द्वितीय प्राथमिकता सामाजिक सेवाओ को रही, जिस पर कुल वास्तविक व्यय का लगभग 17% खर्च किया गया। द्वितीय योजना मे इस मद पर लगभग 24% व्यय हुआ और इस दृष्टि से यह व्यय कृषि एवं सामुदायिक विकास मे किए गए व्यय (लगभग 25%) के सन्निकट रहा। तृतीय योजना मे भी सामाजिक सेवाओ और कृषि एवं सामुदायिक विकास पर लगभग बराबर व्यय किया गया। सामाजिक सेवाओ पर 20% से कुछ कम तथा कृषि एवं सामुदायिक विकास पर 19% से कुछ अधिक व्यय किया गया। सार्वजनिक व्यय के इस आवंटन से स्पष्ट है कि राजस्थान अपनी तीनो योजनाओं

मे एक ओर तो सिंचाई एव विद्युत-विकास का पूरा प्रयत्न किया और दूसरी ओर वह जन-कल्याण के लिए सामाजिक सेवाओ के विस्तार को भी ऊँची प्राथमिकता देता रहा। परिवहन मे प्रथम दोनो योजनाओ मे सड़कों के विकास पर काफी बल, दिया गया और तृतीय योजना मे भी कुल-व्यय का 6% से कुछ कम इस कार्यक्रम पर व्यय किया गया।

प्रथम तीनो योजनाओ मे आर्थिक प्रगति

राजस्थान की तीनो पचवर्षीय योजनाओ मे अर्थात् नियोजन के 15 वर्षों मे (सन् 1951–66) हुई कुल उपलब्धियो का सामूहिक सिंहावलोकन करना अध्ययन की दृष्टि से विशेष उपयुक्त होगा। इन तीनो योजनाओं मे सिंचाई एव शक्ति को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई और उनके बाद प्राथमिकता मे सामाजिक सेवाओ, कृषि कार्यक्रमों,सहकारिता एव सामुदायिक विकास, यातायात एव सचार तथा उद्योग और खनिज का क्रमश· द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पचम् एव षष्ठम् स्थान आता है।

इन प्राथमिकताओ पर आर्थिक विकास व्यय से अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो का विकास निम्न तथ्यो से स्पष्ट है—

राज्य की आय एव प्रति व्यक्ति आय—राजस्थान राज्य की सन् 1954-55 मे कुल आय (सन् 1961 के मूल्यो के आधार पर) 400 करोड रुपये थी। वह प्रथम योजना की समाप्ति पर 456करोड रु द्वितीय योजना की समाप्ति पर 636 6करोड रु और तृतीय योजना के अन्त मे बढ़कर 841 8 करोड रु हो गई। प्रति व्यक्ति आय क्रमश: 260 रु, 323 रु और 381 रु हो गई। सन् 1966-67 मे राज्य की कुल आय 1,015 करोड तथा प्रति व्यक्ति आय 449 रु हो गई।

कृषि-विकास—कृषि-विकास को भी इन तीनो योजनाओ मे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। भूमि-व्यवस्था मे क्रान्तिकारी एव प्रगतिशील सुधारो के परिणामस्वरूप जमींदारी तथा जागीरदारी प्रथा का उन्मूलन हुआ। छोटे-छोटे और बिखरे खेतो की समस्या के लिए कानून तथा 18 81 लाख हैक्टेयर भूमि की चकबन्दी का कार्य पूरा किया गया।

कृषि उत्पत्ति मे वृद्धि के लिए सुधरे बीज, रासायनिक खाद तथा वैज्ञानिक कृषि को प्रोत्साहन मिला। राज्य मे 50 बीज-विकास-फार्म स्थापित किए गए और 30 29 लाख हैक्टेयर मे सुधरे बीजो का प्रयोग होने लगा। नए औजारों और यन्त्रीकरण को प्रोत्साहन देने के लिए कृषि-मन्त्रालय की स्थापना और रूस की सहायता से सन् 1956 मे सूरतगढ मे कृषि-फार्म, जेतसार मे कृषि-फार्म का दूसरे प्रयास योजनाओं की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ रहीं।

कृषि के लिए प्रशिक्षित अधिकारियो व कर्मचारियो के लिए उदयपुर मे कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर मे कृषि-महाविद्यालय का विस्तार, बीकानेर मे पशु-चिकित्सालय प्रशिक्षण सस्थाओ की स्थापना आदि कृषि-विकास की दिशा मे लाभदायक कदम रहे।

पशु-धन के विकास के लिए 17 केन्द्रीय ग्रामखण्ड स्थापित किए गए। जहाँ राजस्थान के निर्माण के समय पशु-धन के रोगों की रोकथाम के लिए राज्य में 57 औषधालय, 88 चिकित्सालय और 2 चल चिकित्सालय थे, वहाँ उनकी संख्या तृतीय योजना के अन्त में क्रमशः 204, 129 और 24 हो गई।

सारांशतः राजस्थान के आर्थिक नियोजन के 15 वर्षों में राजस्थान में खाद्यान्न की उत्पादन-क्षमता लगभग दुगुनी, तिलहन की तिगुनी, कपास की दुगुनी हो गई। राजस्थान में जहाँ सामान्य समय में भी 50 हजार से एक लाख टन खाद्यान्न का अभाव रहता था, वहाँ अब आत्मनिर्भर होकर अन्य राज्यों को निर्यात करने की क्षमता हो गई। पशु-रोग-निवारण, विकास तथा बीजों के सुधार की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति की गई।

सिंचाई एवं शक्ति—राज्य के आर्थिक नियोजन में सिंचाई साधनों के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। तीनों योजनाओं के कुल वास्तविक व्यय 369 58 करोड़ रुपयों में से 129 66 करोड़ रु केवल सिंचाई पर व्यय किया गया। फलस्वरूप, सिंचाई-क्षेत्र 11 74 लाख हैक्टेयर (1950-51) से बढ़ कर तृतीय योजना के अन्त तक 20 80 लाख हैक्टेयर तक पहुँच गया।

शक्ति के साधनों पर कुल व्यय की गई राशि 56 62 करोड़ रु के बराबर थी। सन् 1950-51 में विद्युत-उत्पादन-क्षमता 7 48 मेगावाट थी, जो 1967-68 में बढ़कर 163 मेगावाट हो गई। 1950 में केवल 23 बिजली-घर थे जो 1967-68 में 70 हो गए। प्रति व्यक्ति बिजली का उपभोग भी 1965-66 तक 3 06 किलोवाट से बढ़कर 15 37 किलोवाट हो गया।

सहकारिता एवं सामुदायिक विकास—राजस्थान में जनता के सर्वांगीण विकास और जनसहयोग वृद्धि के लिए 2 अक्तूबर, 1962 को सामुदायिक-विकास-कार्य प्रारम्भ हुआ। अब राज्य की समस्त ग्रामीण जनसंख्या सामुदायिक विकास की परिधि में आ गई। राज्य में 1965-66 तक 232 विकास-खण्डों की स्थापना हो चुकी थी। इनमें 83 प्रथम चरण खण्ड, 95 द्वितीय चरण खण्ड और 66 उत्तर द्वितीय चरण विकास-खण्ड थे।

विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत योजनाओं की समाप्ति पर 26 जिला परिषदें, 232 पंचायत समितियाँ और 7,382 ग्राम-पंचायतें काम कर रही थीं।

सहकारिता का क्षेत्र भी बहुत बढ़ा है। जहाँ सन् 1950-51 में राज्य में सहकारी समितियों की संख्या 3,590 थी और सदस्य संख्या 1 45 लाख थी, वहाँ 1965-66 में क्रमशः 21,571 तथा सदस्य संख्या 14 33 लाख हो गई है। तृतीय योजना के अन्त तक 33% ग्राम्य परिवार सहकारिता आन्दोलन के अन्तर्गत लाए जा चुके थे जबकि सन् 1950-51 में यह 1 5% ही था।

प्रशिक्षण के लिए जयपुर में सहकारिता प्रशिक्षण स्कूल तथा कोटा, डूँगरपुर व जयपुर में प्रशिक्षण केन्द्र शुरू किए गए।

सामाजिक सेवाएँ—तीनों पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत सामाजिक सेवा

क्षेत्र पर 75·46 करोड़ रु. व्यय किए गए अर्थात् कुल व्यय का 20·42% भाग शिक्षा, चिकित्सा व श्रम कल्याण आदि पर व्यय किया गया। फलस्वरूप, शिक्षण-संस्थाओं की संख्या 6,029 (वर्ष 1950-51) से बढ़ कर 32,826 (वर्ष 1965-66) हो गई। इसी प्रकार, चिकित्सालयों व डिस्पेन्सरियों की संख्या भी 366 से बढ़कर 535 हो गई। जल-पूर्ति की योजनाएँ भी 72 ग्रामीण और शहरी केन्द्रों में पूरी की गई। इसके अतिरिक्त, राज्य में 3 विश्वविद्यालय, 5 मेडिकल कॉलेज, 3 इंजीनियरिंग कॉलेज और 4 कृषि-कॉलेज भी स्थापित हुए। लगभग 10 स्थानों पर पंचायती राज प्रशिक्षण केन्द्र कार्य करने लगे और 5 ग्राम सेवक प्रशिक्षण केन्द्र भी कार्यरत हुए।

योजनाकाल में गृह-निर्माण के कार्यों में काफी प्रगति की गई। अल्प-आय-गृह-निर्माण-योजना के अन्तर्गत 7,162 गृह-निर्माण किए गए। औद्योगिक गृह-योजना के अन्तर्गत 3,974 मकान बनाए गए।

पिछड़े वर्ग की जनसंख्या राज्य की जनसंख्या का लगभग 1/4 भाग है। एकीकरण के समय इनकी स्थिति आर्थिक और सामाजिक, दोनों दृष्टियों से बहुत पिछड़ी हुई थी। इनकी स्थिति सुधारने के लिए छात्रवृत्तियाँ, गृह-निर्माण, आवास व्यवस्था और अन्य प्रकार की वित्तीय सहायता प्रदान की गई। तृतीय योजना के अन्त में इस क्षेत्र के अन्तर्गत 1 रिमांड होम, एक प्रमाणित-शाला, 1 आफ्टर केयर होम, 1 वृद्ध एवं दुर्बलों के लिए एवं 3 रेस्क्यू होम काम कर रहे थे। इसके अतिरिक्त 19 परिवीक्षा अधिकारी भी परिवीक्षा सेवाएँ कर रहे थे।

परिवहन एवं संचार—राज्य के बहुमुखी विकास के लिए सड़क-निर्माण पर ध्यान देना बहुत आवश्यक था, क्योंकि राज्य के पुनर्गठन के समय प्रति 100 वर्ग मील पर 5·35 मील लम्बी सड़कें थीं। सन् 1951 में कुल मिलाकर सड़कों की लम्बाई 18,300 किलोमीटर थी, वह तृतीय योजना की समाप्ति पर बढ़कर 30,586 कि.मी. हो गई। प्रथम, द्वितीय और तृतीय योजनाओं में क्रमशः 5·5 करोड़ रु., 10·2 करोड़ रु. और 9·7 करोड़ रु. व्यय से प्रत्येक योजना के अन्त में सड़कों की कुल लम्बाई सन् 1955-56 में 22,511 किलोमीटर, सन् 1960-61 में 25,693 किलोमीटर और तृतीय योजना के अन्त में सन् 1965-66 में 30,586 किलोमीटर हो गई, अर्थात् तीन योजनाओं में 25·4 करोड़ रु. के विकास व्यय से सड़कों की कुल लम्बाई में 12,000 किलोमीटर से अधिक वृद्धि हुई। प्रति 100 वर्ग किलोमीटर पर 9 किलोमीटर लम्बी सड़कें हो गईं। इस प्रकार लगभग कुछ तहसील मुख्यालयों को छोड़कर सभी तहसील मुख्यालयों को जिला मुख्यालयों से जोड़ दिया गया।

केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत रेल परिवहन में फतहपुर–चूरू उदयपुर–हिम्मतनगर और गंगानगर-हिन्दूमल कोट रेल लाइनें बनाई गईं।

उद्योग—तीनों योजनाओं की अवधि में उद्योग एवं खनन् पर 7·15 करोड़ रु. व्यय किए गए। योजना के दौरान कई औद्योगिक नगरों, जैसे—कोटा, गंगानगर, जयपुर, उदयपुर, भीलवाड़ा, भरतपुर, डीडवाना, खेतड़ी आदि का विकास हुआ।

रजिस्टर्ड फैक्ट्रियों की संख्या जहाँ प्रथम योजना के अन्त में 368 थी वहाँ द्वितीय योजना के अन्त में 856 और तृतीय योजना के अन्त में 1564 हो गई। राज्य में औद्योगिक इकाइयों की कुल संख्या नियोजन अवधि में लगभग 76% बढ़ी।

रोजगार—प्रत्येक योजना का प्रमुख उद्देश्य प्रत्यक्ष रूप से अपनी मानव-शक्ति का पूर्ण उपयोग करने का होता है। राजस्थान की पंचवर्षीय योजनाओं में भी इस उद्देश्य की ओर उचित ध्यान देने की चेष्टा की गई है। द्वितीय योजना में 3 77 लाख व्यक्तियों को और तृतीय योजना में 6 50 लाख व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार प्रदान किया गया।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजस्थान ने विभिन्न कठिनाइयों के बावजूद भी आर्थिक नियोजन के 15 वर्षों में महत्त्वपूर्ण प्रगति की। नियोजन काल में की गई सर्वांगीण प्रगति के आधार पर ही राजस्थान क्रमश तेजी से आर्थिक व सामाजिक समृद्धि के मार्ग पर बढ रहा है। यह आशा है कि निकट भविष्य में राजस्थान औद्योगिक एव सामाजिक दृष्टि से विकसित होकर देश के अन्य उन्नत राज्यों की श्रेणी में आ खड़ा होगा।

राजस्थान की तीन वार्षिक योजनाएँ (1966-69)

तृतीय पंचवर्षीय योजना की समाप्ति के उपरान्त, विकट राष्ट्रीय संकटों और भारत-पाक संघर्ष आदि के कारण चतुर्थ पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1966 से लागू नहीं की जा सकी, किन्तु नियोजन का क्रम न टूटने देने के लिए, सन् 1966 69 की अवधि में तीन वार्षिक योजनाएँ कार्यान्वित की गईं। तीनों वार्षिक योजनाओं में कुल व्यय लगभग 137 करोड़ रुपये हुआ। पहले की भाँति सिंचाई एव शक्ति को प्राथमिकता दी गई और कुल व्यय का लगभग 61% इस मद पर खर्च हुआ। सामाजिक सेवाओं पर लगभग 15 5% व्यय हुआ और इस प्रकार प्राथमिकता की दृष्टि से इस मद का द्वितीय स्थान है। कृषि-कार्य पर कुल व्यय का लगभग 15% व्यय हुआ। परिवहन, संचार आदि पर लगभग 3% व्यय किया गया। इन वार्षिक योजनाओं में कृषि, सिंचाई व शक्ति को पहले से दी जाने वाली प्राथमिकता में और भी वृद्धि कर दी गई, जबकि सामाजिक सेवाओं पर किया गया प्रतिशत व्यय द्वितीय और तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं की अपेक्षा कम रहा। वास्तव में साधनों के अभाव में वार्षिक योजनाओं की प्राथमिकताओं में कुछ परिवर्तन करना स्वाभाविक था।

विभिन्न कठिनाइयों के बावजूद वार्षिक योजनाओं में कुछ क्षेत्रों में प्रगति जारी रही। सन् 1968-69 के अन्त में विद्युत-उत्पादन 174 मेगावाट तक जा पहुँचा। खाद्यान्नों के उत्पादन में प्रथम वार्षिक योजना में स्थिति आशानुकूल नहीं रही, द्वितीय वार्षिक योजना में खाद्यान्नों का उत्पादन लगभग 66 लाख टन हुआ, किन्तु तृतीय वार्षिक योजना में खाद्यान्नों का उत्पादन प्रथम वार्षिक योजना के लगभग 43 5 लाख टन से भी घटकर केवल 35 5 लाख टन पर आ गया। सामाजिक सेवा क्षेत्र में प्रगति हुई, परिवार-नियोजन कार्यक्रम आगे बढ़ा और ग्रामीण तथा शहरी जल-पूर्ति कार्यक्रम भी सन्तोषजनक रूप में आगे बढ़े।

राजस्थान की चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-74)[1]

राज्य की चतुर्थ पचवर्षीय योजना की अवधि 1 अप्रेल, 1969 से आरम्भ हो गई, लेकिन कुछ कारणों से इसे अन्तिम रूप नहीं दिया जा सका। योजना आयोग ने पाँचवें वित्त-आयोग की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए देश के विभिन्न राज्यों की योजनाओं का पुनर्मूल्यांकन किया और 21 मार्च, 1970 को राजस्थान राज्य की सशोधित पचवर्षीय योजना का आकार 302 करोड रुपये निर्धारित किया जबकि राज्य-सरकार ने 316 करोड रुपये की योजना प्रस्तुत की थी। पर योजना-समाप्ति पर वास्तविक आँकडे कुछ और भी बदल गए। राजस्थान बजट अध्ययन 1978–79 के अनुसार चौथी योजना मे विभागवार अन्तिम उद्व्यय (Outlay) और व्यय (Expenditure) इस प्रकार रहा—

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969–74)

(करोड़ रुपये में)

विभाग		उद्व्यय (Outlay)	व्यय (Expenditure)
1. कृषि एव सम्बन्धित सेवाएँ		25·10	22·55
2. सहकारिता		8·20	8 12
3. सिंचाई एव शक्ति		178·83	186·95
4. उद्योग तथा खनन		7 95	8·55
5. यातायात एव सचार		9 78	10 00
6. सामाजिक सेवाएँ		73 38	71·65
7. विविध		2 97	0 97
	योग	306 21	308 79

स्रोत राजस्थान आय व्ययक अध्ययन 1978–79, पृष्ठ 33.

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि चतुर्थ योजना मे सर्वोच्च प्राथमिकता सिंचाई एव शक्ति को दी गई और दूसरे स्थान पर सामाजिक सेवाएँ रही। कृषिगत कार्यक्रम का स्थान इनके बाद रहा और इन पर कुल व्यय का लगभग 7·3% व्यय करने की व्यवस्था की गई। चतुर्थ योजना समाप्त होने के पश्चात् जब इसके व्यय और उपलब्धियों का अन्तिम मूल्यांकन किया गया तो योजना के प्रारम्भिक प्रस्तावित व्यय तथा वास्तविक व्यय मे कोई विशेष अन्तर नहीं था।

1. चतुर्थ योजना का यह विवरण मुख्य रूप से चार स्रोतों पर आधारित है—(क) पाँचवी योजना का प्रारूप जो जुलाई, 1973 में राज्य सरकार द्वारा तैयार किया गया, (ख) वित्त मन्त्री राजस्थान का बजट भाषण 1973-74, (ग) वित्त मन्त्री का बजट भाषण 1974-75, तथा (घ) राजस्थान बजट अध्ययन 1978-79.

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना मे आर्थिक प्रगति

राज्य की आय-वृद्धि—चतुर्थ योजना में किए गए विभिन्न प्रयत्नों से राज्य की आय मे वृद्धि हुई। 1971-72 के मूल्यों के अनुसार योजना समाप्ति के समय प्रति व्यक्ति आय 600 रुपये अनुमानित की गई। 1971 एव 1974 के बीच राज्य की जनसंख्या मे 8 51 प्रतिशत तक की दर से वृद्धि होने का अनुमान लगाया गया है।

कृषिगत कार्यक्रम—चतुर्थ योजना के दौरान कृषिगत कार्यक्रमो को आगे बढाया गया। अधिक उन्नत किस्मो के बीजों, रासायनिक उर्वरको और लघु सिंचाई के माध्यम से कृषि-कार्यक्रमो को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। 1971-72 के अन्त मे अधिक उपज वाली फसलो की किस्म का क्षेत्रफल 8 लाख हैक्टेयर था जो 1972-73 के अन्त तक लगभग 12 34 लाख हैक्टेयर तक और 1973-74 मे लगभग 13 20 लाख हैक्टेयर पहुँच गया। उर्वरको का वितरण 1971-72 मे 2 89 लाख टन था जो 1972-73 मे लगभग 3 18 लाख टन तक पहुँच गया। कृषि-विनियोजन से 1972-73 तक की समाप्ति तक 5 75 लाख टन खाद्यान्नो, 0 36 लाख टन तिलहन एव 90 लाख टन कपास की अतिरिक्त उत्पादन-क्षमता बढने की आशा थी। 1973-74 मे 71 लाख टन खाद्यान्न उत्पन्न होने का अनुमान था जबकि चौथी योजना के प्रारम्भ मे उत्पादन क्षमता का आधार-स्तर 63 लाख टन था। चतुर्थ योजनावधि मे दुग्ध उत्पादन भी 22 70 लाख टन से बढकर 23 70 लाख टन तक हो गया। पौध सरक्षण की व्यवस्थाओ एव गतिविधियो को विस्तृत किया गया। भूमि समतलन सम्बन्धी कार्य भी हाथ मे लिए गए। 1968-69 की तुलना मे सहकारी साख मे दुगुने से भी अधिक वृद्धि हो गई।

सिंचाई एव बिजली—चतुर्थ योजनावधि की समाप्ति तक 7 मध्यम सिंचाई योजनाएँ अर्थात् पारबती, मेजा, मोरेल, बेडच (बडगाँव) बेडच (वल्लभनगर), घोराई एव खारी फीडर लगभग पूरी हो गई। इसके अतिरिक्त 30 अन्य लघु सिंचाई योजनाओ पर भी कार्य प्रारम्भ हो गया। सिंचित क्षेत्र मे काफी वृद्धि हुई। 1968-69 मे जो सिंचित क्षेत्र 21 18 लाख हैक्टेयर था, वह 1973 74 मे बढकर लगभग 25 67 लाख हैक्टेयर हो गया। राजस्थान नहर क्षेत्र मे बडी तेजी से प्रगति हुई और योजना की समाप्ति तक इस नहर परियोजना पर कुल व्यय लगभग 104 करोड रुपये का हुआ। 1968-69 मे इसकी सिंचाई-क्षमता केवल 1 64 लाख हैक्टेयर थी जो योजना की समाप्ति तक बढकर लगभग 2 80 लाख हैक्टेयर हो गई।

शक्ति अर्थात् विद्युत् उत्पादन के क्षेत्र म भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई। जवाहर-सागर परियोजना एव राणाप्रताप सागर अणु विद्युत् शक्ति प्लान्ट की यूनिट एक का काम पूरा हो गया। अत स्थायी विद्युत्-उत्पादन जो 1968-69 मे 174 मेगावाट था, बढकर 1973-74 मे 400 मेगावाट तक हो गया। योजनावधि मे प्रति व्यक्ति के पीछे खर्च होने वाली बिजली के आँकडे 26 किलोवाट प्रति व्यक्ति

निकलता है कि ईश्वर ने विश्व को धनी और गरीब दो भागो मे विभाजित किया है, एक गरीब देश इसलिए गरीब है क्योंकि इसके प्राकृतिक साधन कम हैं और उसे आर्थिक स्थिरता के उसी निम्न स्तर पर रहना है किन्तु अब यह नही माना जाता है कि इन निर्धन देशो के प्राकृतिक साधन भी कम हैं और यही इनकी निर्धनता का मुख्य कारण है। इसके अतिरिक्त 'निर्धनता' केवल देश की प्रति व्यक्ति निम्न आय को ही इंगित करती है, अर्द्ध-विकसित देश की अन्य विशेषताओं को नही। इसीलिए 'निर्धन' एव 'पिछड़े हुए' शब्दो का प्रयोग अलोकप्रिय हो गया है। इसी प्रकार 'Undeveloped' शब्द भी अर्द्ध-विकसित देश का समानार्थक माना जाता है, किन्तु दोनो मे भी यह स्पष्ट अन्तर किया जाता है कि अविकसित देश वह होता है जिसमे विकास की सम्भावनाएँ नही होती। इसके विपरीत अर्द्ध-विकसित देश वह होता है जिसमे विकास की पर्याप्त सम्भावनाएँ हो। अन्टार्कटिक, आर्कटिक और सहारा के प्रदेश अविकसित कहला सकते हैं क्योंकि वर्तमान तकनीकी ज्ञान एव अन्य कारणो से इन प्रदेशो के विकास की सम्भावनाएँ सीमित हैं किन्तु भारत, पाकिस्तान, कोलम्बिया, युगांडा आदि अर्द्ध-विकसित देश कहलाएँगे क्योंकि इन देशो मे विकास की पर्याप्त सम्भावनाएँ हैं। इसी प्रकार अविकसित शब्द स्थैतिक स्थिति का द्योतक है। वस्तुत किसी देश के बारे मे यह धारणा बना लेना कठिन है कि उस देश मे निरपेक्ष रूप मे साधनो की स्वल्पता है क्योंकि साधनो की उपयोगिता तकनीकी ज्ञान के स्तर, माँग की दशाएँ और नई खोजो पर निर्भर करती है। वस्तुत इन देशो मे प्राकृतिक साधन, तकनीकी ज्ञान और उपक्रम के इन साधनो पर उपयोग नही किए जाने के कारण अधिकांश मे अविकसित दशा मे होते हैं पर इनके विकास की पर्याप्त सम्भावनाएँ होती हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ की एक विशेष राय के अनुसार, 'सब देश चाहे उनके प्राकृतिक साधन कम ही हो, [illegible] ज्ञान म अपने इन साधनो से अधिक अच्छे उपयोग के द्वारा अपनी आय को वड़ी मात्रा म वढ़ा सकने की स्थिति मे है।'

अत 'अविकसित' शब्द के स्थान पर 'अर्द्ध-विकसित' शब्द का उपयोग किया जाने लगा है। ये अर्द्ध-विकसित देश आजकल आर्थिक विकास का प्रयत्न कर रहे हैं जिनके परिणामस्वरूप इन्हे 'विकासशील' (Developing) देश भी कहते हैं, किन्तु सामान्यतया इन सब शब्दो को लगभग समान अर्थ मे प्रयुक्त किया जाता है।

अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था की विशेषताएँ या लक्षण (Characteristics of Under-developed Economies)

अर्द्ध-विकसित विश्व विभिन्न प्रकार के देशों का समूह है। इन देशों की अर्थव्यवस्था मे विभिन्न प्रकार के अन्तर पाए जाते हैं। किन्तु इतना सब होते भी इन अर्द्ध-विकसित देशो मे एक आधारभूत समानता पायी जाती है। यद्यपि किसी एक देश को प्रतिनिधि अर्द्ध-विकसित देश की संज्ञा देना कठिन है, किन्तु फिर भी कुछ ऐसे सामान्य लक्षणों को बताना सम्भव है जो कई अर्द्ध-विकसित देशों मे आमतौर से पाए जाते हैं। यद्यपि ये सामान्य लक्षण सब अर्द्ध-विकसित देशो मे समान अर्थों मे नही पाए जाते और न केवल ये ही अर्द्ध-विकसित देशों के लक्षण होते हैं, किन्तु ये

तक राज्य मे कुल सडको की लम्बाई लगभग 33,880 किलोमीटर हो जाने की आशा थी।

सामाजिक सेवा--चतुर्थ योजना-काल मे सामाजिक सेवाओ और सुविधाओ मे पर्याप्त वृद्धि हुई। राज्य मे 2,100 से अधिक प्राथमिक शालाएँ, 3,000 मिडिल स्कूल, 290 माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक विद्यालय तथा 7 नए कॉलेज खोले गए। सन् 1968–69 मे ग्राम जल-प्रदाय योजना 225 ग्रामो मे चालू थी, किन्तु सन् 1973–74 मे उनकी सख्या बढकर 1,427 हो गई। राजस्थान आवासन बोर्ड के तत्त्वावधान मे ग्रह-निर्माण काय मे भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। सन् 1974 के अन्त तक 2,655 भवनो का निर्माण-कार्य पूरा हो जाने की आशा वित्त मत्री महोदय ने अपने वजट भापण मे व्यक्त की।

रोजगार—बेरोजगारो को रोजगार देने की दिशा मे भी काफी प्रयत्न किए गए। योजनावधि मे लगभग 8 लाख लोगो को रोजगार की सुविधाएँ प्रदान की गई। *ग्रामीण क्षेत्रो के लिए एव शिक्षित युवको के लिए रोजगार प्रदान करने वाले* अनेक कायत्रमो को हाथ मे लिया गया, जिनमे से अधिकांश कायत्रम भारत सरकार की सहायता से प्रारम्भ हुए। सन् 1973–74 मे भारत सरकार द्वारा आवटित 2 76 करोड रुपये की राशि से एक 'हाप-ए-मिलियन जाब्स प्रोग्राम' प्रारम्भ किया गया जिसके अन्तर्गत 20 हजार शिक्षित व्यक्तियो को रोजगार दिया जा सकेगा।

अत स्पष्ट है कि चतुर्थ योजनावधि मे राज्य मे विभिन्न क्षेत्रो मे प्रगति हुई। तथापि योजना-काल के अन्तिम दो वर्षों मे राज्य को एक नाजुक आर्थिक स्थिति के दौर से गुजरना पडा, क्योकि देश की समूची अर्थ-व्यवस्था मे मुद्रा-स्फीति का दबाव बढ गया। जबरदस्त सूखे के कारण अन्न-उत्पादन को और विद्युत्-उत्पादन मे कमी के कारण औद्योगिक उत्पादन को भारी आघात पहुँचने, विश्व मे तेल मूल्यो मे असाधारण वृद्धि होने तथा अन्य सकटो के कारण देश की समूची अर्थ-व्यवस्था पर भारी दबाव व असर पडता रहा।

राजस्थान की पाँचवीं पंचवर्षीय योजना का प्रारूप एव 1974-75 की वार्षिक योजना

राजस्थान सरकार के नियोजन विभाग द्वारा जुलाई, 1972 मे राज्य की पाँचवी पचवर्षीय योजना का दृष्टिकोण-पत्र प्रकाशित किया गया। इस दृष्टिकोण-पत्र मे पाँचवीं योजना मे अपनाई जाने वाली आधारभूत नीतियो, विनियोग की मात्रा, विकास-दर आदि के सम्बन्ध मे कतिपय प्रस्ताव रखे गए। विकास-दर 7% वार्षिक प्रस्तावित की गई। सावजनिक क्षेत्र मे व्यय के लिए 775 करोड रुपये प्रस्तावित किए गए जिनमे स 600 करोड रुपये की राशि केन्द्रीय सहायता के रूप मे प्राप्त की जानी थी। दृष्टिकोण पत्र मे सिंचाई व शक्ति को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए कुल प्रस्तावित राशि 775 करोड रुपये का 60% निश्चित किया गया। कृषि-कार्यक्रमो के लिए 13%, उद्योग एव खनन् के लिए 4 5% तथा सामाजिक सेवाओ के लिए 15%

व्यय नियत किया गया। दृष्टिकोण-पत्र में आर्थिक विषमताओं को दूर करने के सम्बन्ध में कोई ठोस सुझाव नही दिए गए और वित्तीय साधनों के अभाव की समस्या पर भी समुचित ध्यान नही दिया गया।

जुलाई, 1973 मे राज्य सरकार द्वारा पाँचवी पचवर्षीय योजना का प्रारूप (Draft) तैयार किया जाकर योजना आयोग के समक्ष प्रस्तुत किया गया। दृष्टिकोण-पत्र मे सार्वजनिक क्षेत्र मे व्यय के लिए 775 करोड रुपये का प्रावधान था, किन्तु प्रारूप मे योजना का आकार 635 करोड रुपये ही रखा गया। राजस्थान राज्य के आय-व्यय का अध्ययन सन् 1976–77 के अनुसार पाँचवी योजना का कुल परिव्यय (Outlay) 691 47 करोड रुपये रखा गया पर चूंकि केन्द्रीय जनता सरकार ने पाँचवी योजना को एक वर्ष पूर्व ही 31 मार्च, 1978 को समाप्त कर 1 अप्रैल, 1978 से नई छठी राष्ट्रीय योजना (1978–83) लागू कर दी अतः राजस्थान की पाँचवी पचवर्षीय योजना का परिव्यय (Outlay) राजस्थान बजट अध्ययन सन् 1978–79 के अनुसार 529 59 करोड रुपये रहा।

पाँचवी योजना (1974–79) पिछली योजनाओं की तुलना मे अधिक व्यावहारिक और देश मे समाजवादी ढाँचे के समाज की स्थापना के लक्ष्य के अधिक अनुकूल थी।

पाँचवी योजना के उद्देश्य और मूल नीति

प्रमुख रूप से पाँचवीं योजना के उद्देश्य इस प्रकार थे—

(1) आर्थिक विषमता कम से कम रहे।
(2) प्रत्येक को जीवन-यापन का साधन मिले।
(3) सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा हो।
(4) क्षेत्रीय असमानता मे कमी हो।
(5) मानव-मूल्यों का विकास हो।

पाँचवी योजना का स्वरूप

राजस्थान की पाँचवी पचवर्षीय योजना के प्रारूप मे योजना का आकार 635 करोड रुपये रखा गया जो राज्य के सन् 1976–77 के आय-व्यय के अध्ययन के अनुसार 691 57 करोड रुपये रहा और सन् 1978–79 के बजट अध्ययन के अनुसार 529 51 करोड रुपये ही रह गया। क्योंकि 1 अप्रैल, 1978 से नई योजना लागू करदी गई। राज्य के बजट अध्ययन 1976–77 मे कृषि एवं सम्बन्धित सेवाओं पर 73 92 करोड रुपये, सहकारिता पर 8 30 करोड रुपये, सिंचाई एवं शक्ति पर 327 47 करोड़ रुपये, उद्योग तथा खनन पर 27 99 करोड रुपये, यातायात एवं संचार पर 57 77 करोड रुपये, सामाजिक सेवाओं पर 189 27 करोड रुपये और अन्य पर 6 75 करोड रुपये का उद्व्यय दर्शाया गया था। राजस्थान राज्य आय-व्ययक अध्ययन 1978–79 मे पाँचवी पचवर्षीय योजना (जिसकी अवधि 1974–78 ही करदी गई है) के परिव्यय अथवा उद्व्यय (Outlay) तथा 1977–78 के परिव्यय एवं सम्भावित व्यय की राशियाँ इस प्रकार दिखाई गई हैं—

पंचम पंचवर्षीय योजना (करोड रुपये मे)

विभाग	उद्व्यय (1974-78)	उद्व्यय	सम्भावित व्यय
कृषि एव सबधित सेवाएँ	50 83	20 43	21 45
सहकारिता	5 17	1 73	1 83
सिचन एव शक्ति	313 60	119 05	120 91
उद्योग तथा खनन	16 53	4 31	5 63
यातायात एव सचार	32 41	12 64	14 59
सामाजिक सेवाएँ	101 52	27 68	32 38
विविध	2 45	0 63	0 77
योग	529 51	186 47	197 56

जनता पार्टी की सरकार की वार्षिक योजना 1978–79
(Annual Plan 1978–79 of the Janta Government)

राज्य मे जनता पार्टी की सरकार ने सन् 1978–79 की जो वार्षिक योजना (छठी पचवर्षीय योजना के अग के रूप म) बनाई है वह पिछली योजनाओ की तुलना मे काफी यथार्थवादी है और कई दृष्टियो से नवीनता लिए है। राज्य के वित्त मत्री मास्टर आदित्येन्द्र ने अपने बजट भाषण मे इस योजना की जो विस्तृत रूपरेखा खीची, उसका सारांश आगे प्रस्तुत किया जा रहा है[1]—

वर्ष 1978–79 की वार्षिक योजना का आकार 235 करोड रुपये से भी अधिक का रखा गया है। इस प्रकार यह योजना पिछली सरकार द्वारा बनाई हुई चालू वर्ष की योजना से 40 46% तथा सशोधित अनुमानो की तुलना मे 18 61% बड़ी होगी। इसके अतिरिक्त 'कार्य हेतु अनाज' योजना के अन्तर्गत 1978–79 की योजना म 10 करोड रुपये तक की वृद्धि और की जा सकेगी। योजना व्यय का मदवार संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है—

(करोड रुपये म)

मद	वार्षिक योजना व्यय 1977-78	सशोधित योजना व्यय 1977-78	वार्षिक योजना व्यय 1978-79	प्रतिशत वृद्धि मूल योजना पर	प्रतिशत वृद्धि सशोधित योजना पर
1 कृषि एव सम्बद्ध सेवाए	18 45	21·35	25 86	40 16	21 12
2. सहकारिता	1 78	2 00	2 11	18 54	5 50
3 सिचाई एव विद्युत विकास	105 85	121 05	139 35	31 65	15 12
4 उद्योग एव खनिज	4 31	5 57	8 19	90 02	47 04
5 परिवहन एव सचार	9 87	15 36	18 04	82 78	17 45
6 सामाजिक एव सामुदायिक सेवाएँ	27·11	32 55	41 05	51 42	26 11
7 अन्य	0 63	1·06	1 37	117 46	29 24
योग	168 00	198 94	235 97	40 46	18 61

1 वित्त मन्त्री द्वारा सोमवार, 6 मार्च, 1978 को दिए गए बजट (1978–79) भाषण से

की तुलना में 1978–79 में इस योजना के लिए 2 90 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है।

(iv) लघु सिंचाई योजनाएँ—1978–79 में लघु सिंचाई योजनाओं पर कुल 14 43 करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान है जिसमें संस्थानिक वित्तीय सहायता भी सम्मिलित है।

(v) कृषि मण्डियाँ—कृषि पुनर्वित्त एवं विकास निगम द्वारा प्रदत्त 6·46 करोड़ रुपये की सहायता से सन् 1977–78 में 17 कृषि मण्डियों का निर्माण कार्य चलाया गया। 1978–79 में 11 नई मण्डियों के लिए निगम से 6 78 करोड़ रुपये की सहायता प्राप्त होने की आशा है।

(vi) लघु एवं सीमान्त कृषक विकास—लघु एवं सीमान्त कृषकों तथा कृषि श्रमिकों की सहायतार्थ स्थापित अभिकरणों में मिलने वाले लाभ को सन् 1977-78 में राज्य के समस्त जिलों में उपलब्ध करा दिया गया। 1978–79 में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 7 20 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है, जिससे एक लाख 23 हजार व्यक्ति लाभान्वित होंगे।

(vii) सिंचित क्षेत्रों का सघन विकास—राजस्थान नहर और चम्बल क्षेत्र में सघन कृषि विकास कार्यक्रम विश्व बैंक की सहायता से चल रहे हैं। इसमें नहरें, सड़कें बनाने, वनरोपण तथा डिग्गियों आदि के निर्माण के लिए क्रमश लगभग 11 करोड़ तथा 6 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। इनके अतिरिक्त सन् 1977–78 के वित्तीय वर्ष में कृषि पुनर्वित्त एवं विकास निगम की सहायता से दो और परियोजनाएँ—उत्तर-पश्चिम भाखरा तथा गग नहर प्रारम्भ की गई जिन पर कुल व्यय लगभग 12 करोड़ रुपये होगा।

राजस्थान नहर परियोजना सिंचित क्षेत्र के लिए 1978–79 में 7 30 करोड़ रुपये की सहायता से 50,000 हैक्टेयर क्षेत्र में भूमि-विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किए जाने का प्रस्ताव है।

(viii) पशुधन—पशु चिकित्सा के साधनों का विस्तार करने के उद्देश्य से 1978–79 में जयपुर, अजमेर, जोधपुर तथा उदयपुर में चार पोलीक्लीनिक्स खोलने का प्रस्ताव है, जिनके लिए 8 43 लाख रुपये का प्रावधान किया गया है। इन पोली क्लीनिक्स से एक ही स्थान पर पशुओं के लिए उत्तम उपचार एवं सभी मूलभूत आवश्यक सेवाएँ उपलब्ध हो सकेंगी। 1978–79 में एक मूला रोग नियन्त्रण यूनिट भी 7 10 लाख रुपये की लागत से स्थापित करने का प्रस्ताव है जिसके अन्तर्गत जोधपुर, बाड़मेर, जैसलमेर, सीकर व बीकानेर में पाँच उप नियन्त्रण दल होंगे।

(ix) दुग्ध उत्पादन—राज्य में दुग्ध उत्पादन कार्यक्रमों का विस्तार उत्साहवर्धक रहा है। सन् 1978–79 में जोधपुर तथा बीकानेर की डेयरियों की क्षमता को 1 लाख लीटर से बढ़ाकर 1 5 लाख लीटर करने का प्रस्ताव है। पोकरण, पाली

बालोतरा, मेटनासिटी, लूणकरणसर, सरदारशहर और मालपुरा स्थित चिलिंग सेण्टरो का विस्तार कार्य सन् 1977–78 मे लगभग पूर्ण हो गया। सन् 1978-79 मे झुंझुनूं चिलिंग केन्द्र का कार्य भी पूर्ण हो जाने की आशा है। अजमेर डेयरी की क्षमता को 25 हजार लीटर से बढ़ाकर 1 लाख लीटर प्रतिदिन करने का कार्य भी प्रगति पर है। दो नई डेयरियाँ–अलवर और जयपुर मे स्थापित की जा रही हैं। इनकी क्षमता क्रमश 1 लाख व 1 5 लाख लीटर प्रतिदिन होगी। इस योजना को सवाईमाधोपुर, टोंक एव सीकर जिलो मे भी लागू किए जाने का प्रस्ताव है। सन् 1978-79 मे बाड़मेर, फलौदी, राजगढ़, ब्यावर, विजयनगर, दौसा, कोटपूतली, तिजारा, नदबई, हिन्डौन एव बाँसवाड़ा मे भी नए चिलिंग केन्द्र स्थापित करने का प्रस्ताव है। परिणामत सन् 1977-78 मे दुग्ध उत्पादन का दैनिक औसत जो 3 लाख लीटर है, वह सन् 1978–79 मे बढ़कर 4 लाख लीटर हो जाएगा, तथा इस कार्यक्रम से लाभान्वित परिवारो की संख्या 80,000 से बढ़कर 1 लाख हो जाएगी। सन् 1978–79 मे इन योजनाओ पर कुल 11 29 करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान है।

(x) वन विकास—सरकार ने अवरकोटि के वनो के पुनरुद्धार एव पुनर्रोपण का व्यापक कार्यक्रम हाथ म लिया है। इसके अतिरिक्त ग्राम्य वनो के कार्यक्रम भी केन्द्रीय सहायता से अधिक व्यापक रूप से चालू किए जा रहे है। सन् 1978–79 मे सूखा सम्भावित क्षेत्रो मे वन विकास लगभग 1 करोड रुपये की राशि व्यय की जाएगी तथा क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम मे 1·91 करोड रुपये व्यय किए जाने का अनुमान है। मरु विकास योजना के अन्तर्गत भी वृक्षारोपण कार्यक्रम के लिए समुचित प्रावधान रखा गया है। सन् 1978–79 मे वन विकास योजनाओ पर 12 करोड़ रुपये से भी अधिक की राशि व्यय किए जाने का अनुमान है।

सहकारिता

सहकारिता वर्ष 1977–78 मे 75 करोड रुपये के अल्पकालीन, 7 करोड रुपये के मध्यकालीन एव 15 करोड रुपये के दीर्घकालीन ऋण वितरित करने का लक्ष्य रखा गया था। इनकी तुलना मे सन् 1978–79 मे 95 करोड रुपये के अल्पकालीन व 5 करोड रुपये के मध्यकालीन तथा 20 करोड रुपये के दीर्घकालीन ऋण दिए जाने की सम्भावना है।

सहकारिता वर्ष 1977–78 मे राज्य के 68% परिवारो को सहकारिता के अन्तर्गत लाए जाने का प्रयास किया गया तथा इस हेतु सदस्यता अभियान भी चालू किया गया। सन् 1978–79 मे राज्य के शत-प्रतिशत गाँवो को सहकारिता कार्यक्रम के अन्तर्गत लाए जाने का कार्य पूरा कर लिया जाएगा।

सन् 1977–78 मे 62 ग्रामीण गोदाम व 13 मण्डी स्तर के गोदाम बनाए जाने का कार्य चला। सन् 1978–79 मे 200 ग्रामीण गोदाम व 10 मण्डी स्तर के गोदाम बनाए जाने के लिए आवश्यक वित्तीय प्रावधान किया गया है। सन् 1977–78 मे 50 जनता दुकानें खोली गई व सन् 1978–79 मे 15 बड़ी व 50 छोटी जनता दुकानें और खोलने का लक्ष्य रखा गया है।

गृह निर्माण हेतु राजस्थान राज्य सहकारी गृह-निर्माण फाइनेंस सोसाइटी के माध्यम से कमजोर वर्गों के तथा अनुसूचित जाति एवं जन-जाति के सदस्यों द्वारा गठित गृह-निर्माण सहकारी समितियों को दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराया जाता है, जिसके लिए सन् 1977–78 में रखे गए 1 50 करोड रुपये को बढ़ाकर सन् 1978–79 में 2 50 करोड रुपये की ऋण राशि उपलब्ध कराए जाने का अनुमान है।

जल एवं विद्युत विकास

सन् 1978-79 की योजना में जल एवं विद्युत विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। सिंचाई एवं बाढ नियन्त्रण के लिए सन् 1977-78 में 64 47 करोड रुपये के परिव्यय को बढाकर सन् 1978–79 में 69 08 करोड रुपये कर दिया गया है। आशा है कि सन् 1978–79 में डीया, भाडोल व लसाडिया की मध्यम सिंचाई परियोजनाएँ पूर्ण हो जाएँगी। सन् 1977-78 में राजस्थान नहर के लिए 2 करोड रुपये की अग्रिम योजना सहायता को शामिल करते हुए 30 करोड रुपये का प्रावधान रखा गया तथा सन् 1978-79 में भी इतना ही व्यय करने का प्रस्ताव है।

अब तक सिंचाई साधनों की जो क्षमता सृजित हो चुकी है उसका अधिकतम उपयोग करने की दृष्टि से वर्तमान नहर प्रणालियों के नवीनीकरण के लिए सन् 1978 79 में पहली बार प्रयत्न किए जाएँगे। इस प्रयोजनार्थ सन् 1978-79 के बजट में लगभग 2 करोड रुपये का प्रावधान किया गया है। सिंचाई सर्वेक्षण एवं अनुसधान कार्य के लिए भी 49 लाख रुपये का प्रावधान किया गया है।

विद्युत के लिए सन् 1977-78 के 53 25 करोड रुपये के प्रावधान को बढाकर सन् 1978-79 में 70 करोड रुपये कर दिया गया है। राज्य में विद्युत वितरण हेतु लाइनों का जाल बिछाने सब-ट्रान्समिशन एवं वितरण प्रणाली को अधिक सक्षम करने व ट्रान्समीशन लाइनों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए सन् 1977-78 में 6 करोड रुपये के मुकाबले सन् 1978 79 में 12 करोड रुपये का प्रावधान किया गया। ग्रामीण विद्युतीकरण पर लगभग 14 80 करोड रुपये व्यय होने का अनुमान है जिससे 1 800 नई बस्तियों तथा 25 000 नए कुओं का विद्युतीकरण किए जाने का अनुमान है।

उद्योग एवं खनिज

सन् 1978 79 में इस मद के अन्तर्गत कुल 8 19 करोड रुपये का प्रावधान प्रस्तावित है जिसमें से 3 12 करोड रुपये राजस्थान औद्योगिक एवं खनिज विकास निगम के माध्यम से व्यय किए जाएँगे। औद्योगीकरण की दृष्टि से पिछड़े हुए 16 जिलों में उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए सन् 1978 79 में 15 50 लाख रुपये का प्रावधान रखा गया है। शिक्षित बेरोजगारों को मार्जिन मनी देने के लिए भी 20 लाख रुपये की राशि आवंटित की गई है। राजस्थान वित्त निगम ने लघु उद्योगों को प्राथमिकता देने की नीति अपनाई है। सन् 1977-78 में निगम द्वारा स्वीकृत

कुल 5·40 करोड़ रुपये के ऋणों में से 4 74 करोड़ रुपये के ऋण 283 लघु उद्योग इकाइयों को स्वीकृत हुए, सन् 1978-79 में निगम ने 9 करोड़ रुपये के ऋण देने का लक्ष्य निर्धारित किया है।

सरकार खादी उद्योग के विकास को सर्वाधिक महत्त्व देती है। सन् 1977-78 में ऊनी खादी के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। सन् 1976-77 में 4·74 करोड़ रुपयें की ऊनी खादी का उत्पादन हुआ था। सन् 1977-78 में यह उत्पादन लगभग 7 करोड़ रुपये का हो जाने का अनुमान था। सन् 1978-79 में 9·25 करोड़ रुपये के मूल्य की ऊनी खादी के उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है।

सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाएँ

(i) **शिक्षा**—1977–78 तक सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में जो कदम उठाए उनके फलस्वरूप वर्ष के अन्त तक 500 या उससे अधिक की आबादी वाले लगभग सभी गाँवों में प्रारम्भिक शिक्षा की सुविधा उपलब्ध हो गई है, किन्तु 300 या उससे अधिक की आबादी वाले सभी गाँवों में प्रारम्भिक शिक्षा सुविधा के राष्ट्रीय लक्ष्य के स्तर से राज्य अभी भी काफी दूर है। प्रारम्भिक शिक्षा जैसे बुनियादी एवं महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में राज्य स्तर व राष्ट्रीय स्तर के मध्य वर्तमान अन्तराल को यथाशीघ्र कम करने की दिशा में प्रभावी प्रयत्न करने की दृष्टि से सन् 1978–79 में 845 नई प्राथमिक शालाएँ एवं 100 नई उच्च प्राथमिक शालाएँ खोलने का प्रस्ताव है। प्रवेश संख्या में वृद्धि तथा शाला जाने हेतु प्रोत्साहन देने के लिए 3 लाख रुपये आवंटित किए जाने का प्रस्ताव है, जिससे 12,000 बालक लाभान्वित होंगे। प्रौढ शिक्षा एवं अनौपचारिक अंशकालीन शिक्षा कार्यक्रम के लिए सन् 1978–79 में 41 लाख रुपये की राशि आवंटित की गई है।

(ii) **चिकित्सा**— चिकित्सा के क्षेत्र में भी सरकार की नीति ग्रामीण क्षेत्रों को प्राथमिकता देने की है। सन् 1977–78 से काफी संख्या में उपकेन्द्र, एड पोस्ट व डिस्पेंसरियाँ खोली गई तथा कतिपय प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों का रेफरल अस्पताल के रूप में क्रमोन्नत भी किया गया। सन् 1978–79 की योजना में 296 उपकेन्द्र खोलने का प्रस्ताव है। इसके फलस्वरूप प्रति दस हजार व्यक्तियों पर एक उपकेन्द्र खोलने का पाँचवी योजना का निर्धारित लक्ष्य प्राप्त हो जाएगा। अगले वर्ष पाँच और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों को रेफरल अस्पतालों के रूप में क्रमोन्नत किया जाएगा तथा आदिवासी क्षेत्रों में 4 उपकेन्द्रों को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में क्रमोन्नत किया जाएगा।

राज्य सरकार मेडिकल काउन्सिल ऑफ इण्डिया द्वारा निर्धारित पैटर्न के आधार पर शिक्षकों के पद सृजित करने का प्रयास कर रही है और इस प्रयोजनार्थ 1978-79 में राज्य के विभिन्न चिकित्सा कॉलेजों में विभिन्न विषयों के लिए 92 पद सृजित किए जाएँगे। चिकित्सा शिक्षा को ग्रामोन्मुख बनाने के लिए चालू वित्तीय वर्ष में मेडिकल कालेज, जयपुर द्वारा 3 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों को चुना गया है

तथा 1978-79 मे यह सुविधा अन्य अनेक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रो पर उपलब्ध कराने का प्रस्ताव है।

(iii) पेय जल की व्यवस्था—राज्य के ग्रामीण क्षेत्रो मे विद्यमान जल समस्या की गम्भीरता को समझकर केन्द्र सरकार के 1977–78 मे 2 50 करोड रुपये सहायता के रूप मे दिए तथा 1978–79 मे भी इससे दुगुनी धनराशि प्राप्त होने की सम्भावना है। सन् 1978–79 मे 350 ग्रामो मे जल प्रदाय योजना पूर्ण करने का लक्ष्य रखा गया है जिससे करीब साढे तीन लाख ग्रामीणजनो के लिए पेय जल की व्यवस्था हो जाएगी। शहरी जल प्रदाय योजनाओ के पुनर्गठन के लिए भी आवश्यक प्रावधान रखा गया है। सन् 1978–79 के बजट मे पेय जल व्यवस्था के लिए 13 45 करोड रुपये का प्रावधान किया गया है जिसमें से 9 करोड रुपये ग्रामीण जल प्रदाय योजनाओ पर व्यय होगे। वातावरण प्रदूषण व कच्ची बस्तियो की समस्याओ के समाधान हेतु भी सन् 1978–79 मे 87 97 लाख रुपये का प्रावधान किया गया है।

(iv) समाज कल्याण—*समाज कल्याण कार्यक्रमो एव अनुसूचित जातियो,* अनुसूचित जन-जातियो व पिछडे वर्गो के कल्याण कार्यक्रमो के लिए सन् 1978–79 की योजना मे 86 35 लाख रुपये की राशि व्यय किए जाने का अनुमान है।

केन्द्र प्रवर्तित योजनाएँ तथा सास्थानिक वित्तीय विनियोजन

राज्य योजनाओ के अतिरिक्त जिनके लिए 235 97 करोड रुपय का प्रावधान किया गया है, अनेक केन्द्र प्रवर्तित योजनाएँ भी हैं, जिनके लिए ऋण अथवा अनुदान के रूप मे सामान्यतया शत-प्रतिशत सहायता केन्द्र द्वारा उपलब्ध कराई जाती है। इन योजनाओ के लिए सन् 1977–78 मे 40 59 करोड रुपये तथा सन् 1978–79 मे 41 55 करोड रुपये प्राप्त होने का अनुमान है। राज्य योजना तथा केन्द्र प्रवर्तित योजनाओ के अतिरिक्त विभिन्न वित्तीय सस्थाओ द्वारा दिए जाने वाले ऋणो से भी राज्य म चल रही योजनाओ मे विनियोजन हो रहा है। सन् 1977–78 मे 183 59 करोड रुपय के इस प्रकार के विनियोजन की तुलना मे सन् 1978–79 मे लगभग 190 करोड रुपये के विनियोजन की आशा है।

विकास व्यय

केवल योजनागत प्रावधानो के आधार पर ही विकास पर होने वाले व्यय का सम्पूर्ण स्वरूप सामने नही आता है क्योंकि विकास के लगभग हर मद मे पिछली योजनाओ पर किया हुआ व्यय, योजना भिन्न व्यय बन जाता है और भविष्य की योजनाएँ इन्ही सम्मिलित प्रावधानों के कधो पर आगे बढती हैं। विकासोन्मुख शासन विकास व्यय म वृद्धि करता है और विकास भिन्न व्यय के प्रतिशत को कम करता है। यही प्रगतिशील शासन की एक सुपरिचित कसौटी है। सन् 1977-78 एव 1978-79 मे सम्भावित विकास व्यय तथा विकास भिन्न व्यय की तुलनात्मक स्थिति इस प्रकार है—

(करोड़ रुपये में)

	परिवर्तित बजट प्रावधान 1977-78	संशोधित अनुमान 1977-78	बजट प्रावधान 1978-79
(क) विकास व्यय			
(i) सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाएँ	201·70	204·13	214 66
(ii) आर्थिक सेवाएँ	249 26	268 81	293·18
योग-क	450·96	472·94	507 84
(ख) विकास भिन्न व्यय			
(i) सामान्य सेवाएँ			
(अ) ब्याज भुगतान	61·55	58·14	67·00
(ब) अन्य व्यय	92 58	97 10	103·85
	154 13	155 24	170 85
(ii) ऋणों का भुगतान	44·73	48 74	46·38
योग-ख	198 86	203·98	217·23
कुल योग	649·82	676·92	725·07

ग्राम विकास

सन् 1978-79 के बजट अनुमानों में ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों पर अपेक्षाकृत अधिक प्रावधान किया गया है। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(करोड़ रुपये में)

	चालू वर्ष परिवर्तित अनुमान	अगले वर्ष के अनुमान
1 ग्रामीण सड़कें	9 04	10 10
2 ग्रामीण विद्युतीकरण	12·25	14 80
3. ग्रामीण पेय जल व्यवस्था आदि	12·83	11 62
4 ग्रामीण शिक्षा	56 43	59·51
5 ग्रामीण स्वास्थ्य	3·75	4 45
6 अन्त्योदय	0·25	2·00
7. ग्रामीण आर्थिक एवं कृषि विकास	185·70	215 09
योग	280·25	317 57

उपरोक्त अनुमानों के अतिरिक्त 1978–79 में ग्रामीण जल प्रदाय योजनाओं के लिए 5 करोड़ रुपये, ग्रामीण सड़कों के लिए 2·5 करोड़ रुपये तथा सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याण योजनाओं के लिए 2 करोड़ रुपये और मिलने का अनुमान है। तदनुसार सन् 1978–79 में ग्रामीण विकास के क्षेत्र में कुल प्रावधान 327·07 करोड़ रुपये हो जाएगा। इस प्रकार कुल विकास व्यय का 64·40 प्रतिशत ग्रामीण विकास पर खर्च किया जाएगा।

रोजगार

इस वर्ष वित्त मन्त्री ने सन् 1978–79 के अपने बजट भाषण में यह आशा प्रकट की कि विकास के विभिन्न मदों पर होने वाले अतिरिक्त व्यय के फलस्वरूप लगभग 3 लाख 40 हजार व्यक्तियों को नए रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे। इसके अतिरिक्त लघु और सीमान्त कृषकों की योजनाबद्ध सहायता द्वारा तथा अन्त्योदय योजना के अन्तर्गत कुल मिलाकर लगभग 3 लाख व्यक्तियों को आर्थिक स्वावलम्बन प्राप्त करने में मदद मिलेगी।

शिक्षित बेरोजगारों के लिए भी पर्याप्त संख्या में रोजगार के अवसर उत्पन्न होंगे। विभिन्न तकनीकी स्नातकों के लिए 716 डिप्लोमा होल्डर्स के लिए 514, कृषि स्नातकों के लिए 480, पशु चिकित्सकों के लिए 85 डॉक्टरों के लिए 120, कला विषयों में स्नातकों के लिए 1,565, मेट्रिकुलेट्स के लिए 6,540 और आई टी आई शिक्षा प्राप्त लोगों के लिए 3,000 के लगभग स्थान मिलने की सम्भावनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षित बेरोजगारों के लिए 'मारजिन मनी' देने की योजना के अन्तर्गत भी अनेक व्यक्ति लाभ उठाकर अपनी जीविका का साधन जुटा सकेंगे।

विकेन्द्रीकरण

पिछली सरकारें पंचायतों को केवल 25 पैसे प्रति व्यक्ति के आधार पर अनुदान देती थीं। सन् 1978–79 में इसे बढ़ाकर ढाई रुपया प्रति व्यक्ति कर दिया गया है। इस प्रकार अब इन संस्थाओं को 53 लाख रुपये प्रति वर्ष के स्थान पर लगभग 5 करोड़ 30 लाख रुपए प्रति वर्ष अनुदान दिया जाएगा। आशा है कि पंचायत संस्थाएँ इतनी ही राशि अपने प्रयत्नों से भी जुटाएँगी। इस प्रकार लगभग नौ-दस करोड़ रुपया प्रति वर्ष पंचायतों के द्वारा ग्राम विकास कार्यक्रमों में व्यय किया जा सकेगा।

अन्त्योदय

यह सर्वविदित है कि योजनाओं के आकार के विस्तार मात्र से निर्धनता का निवारण अपने आप नहीं हो जाता क्योंकि जैसा कि पिछले वर्षों का अनुभव रहा है कि इन पर किए गए व्यय का अधिकांश लाभ अपेक्षाकृत समृद्ध लोगों तक ही सीमित रहता रहा है। इसी प्रकार सभी ग्राम भी सारी योजनाओं से एकसार लाभान्वित नहीं होते। समाज व प्रदेश की न्यूनतम इकाइयाँ अर्थात् गरीब व ग्राम योजनाओं के क्रियान्वयन की पचीदा वीथियों में बहुधा अदृष्ट रह जाते हैं। इस स्थिति में सुधार करने के लिए राज्य सरकार (जनता पार्टी की) ने एक नया प्रयोग 'अन्त्योदय' योजना प्रारम्भ कर प्रत्येक ग्राम के निर्धनतम पाँच व्यक्तियों को प्रचलित विभिन्न विकास योजनाओं की धाराओं से जोड़कर स्वावलम्बी बनाने का सकल्प किया था।

सन् 1977–78 में इस योजना के अन्तर्गत 31,196 ग्रामों में ग्राम सभाओं आदि की सहायता से 1 लाख 54 हजार गरीब परिवारों को छाँटा जा चुका है व उन्हें स्वावलम्बी बनाने का कार्यक्रम प्रगति पर है। इस योजना के क्रियान्वयन व

प्रथम 5 महीनो मे फरवरी, 1978 के अन्त तक लगभग 45,000 व्यक्तियो के लिए कुछ न कुछ जीविकोपार्जन के साधन जुटा दिए गए है ।

राज्य सरकार का यह प्रयत्न होगा कि अब तक चयन किए हुए सारे लोगों को निर्वाह करने लायक रोजगार सन् 1978–79 मे अवश्य उपलब्ध करवा दिए जाएँ । सन् 1978–79 मे इस कार्यक्रम के विस्तार के अनुरूप वित्तीय प्रावधान भी 25 लाख रुपये से बढाकर 2 करोड़ रुपये रखा गया है ।

समग्र ग्रामोदय

पूरे ग्राम के विकास के लिए एक संश्लिष्ट और व्यापक योजना बनाने और उसे क्रियान्वित करने की अब तक कोई पद्धति नही रही है । अत अनेक ग्राम विकास योजनाओ की धाराओ से अपेक्षाकृत अछूते ही रह रहे हैं ।

अत सन् 1978–79 मे ग्रामो के विकास को भी पिछड़े हुए व्यक्तियो और वर्गों के विकास की तरह तत्परता, एकाग्रता व उत्तरदायित्व के साथ सम्पादित करने के ध्येय से 'समग्र ग्रामोदय योजना' प्रारम्भ करने का प्रस्ताव है । जिसके अन्तर्गत उपलब्ध साधनो के आधार पर प्रत्येक ग्राम के विकास की एक बहुमुखी विस्तृत योजना बनाई जाएगी । इस योजना का लक्ष्य निर्धारित अवधि मे इन ग्रामो मे बेरोजगारी को समाप्त करना, ग्राम के सभी निर्धन व्यक्तियो को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाना तथा ग्राम की प्रति व्यक्ति औसत आय मे निश्चित वृद्धि करना होगा ।

इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक जिले मे ऐसे 4 ग्रामो को जिनकी जनसख्या 500 से ऊपर हो, सर्वांगीण विकास और उन्नति के कार्यक्रम चलाने के लिए चुना जाएगा । समग्र ग्रामोदय योजना को सम्पादित करने के लिए इसे प्रचलित विभिन्न योजनाओ की धाराओ से जोडना होगा । यदि वर्तमान वित्तीय प्रावधान इसके लिए अपर्याप्त रहे तो आवश्यकतानुसार अतिरिक्त धनराशि सुलभ कराई जाएगी । आशा है कि सन् 1978–79 मे 104 ग्रामो की समग्र विकास योजनाएँ तैयार होकर क्रियान्वित होने लगेंगी ।

राजस्थान राज्य की आर्थिक समीक्षा (1977–78)

राज्य सरकार की 1978–79 की वार्षिक योजना की रूपरेखा पर हम प्रकाश डाल चुके हैं । राज्य के आर्थिक विकास के सन्दर्भ मे यह उपयुक्त होगा कि हम राज्य सरकार द्वारा प्रकाशित सन् 1977–78 की आर्थिक समीक्षा के मुख्य पहलुओं का अवलोकन करें—

सन् 1977–78 में जलवायु की प्रतिकूल स्थिति एवं बाढ ने खरीफ फसल को कुप्रभावित किया, आपात्कालीन स्थिति हटाने से श्रमिक अशान्ति रही तथा मूल्यों में वृद्धि होने की प्रवृत्ति दृष्टिगत हुई, किन्तु इन बाधाओ से घिरे रहने पर भी बेरोजगारी समस्या के समाधान, आवश्यक वस्तु व सेवाओ की निम्न आय वर्ग के व्यक्तियों को उपलब्ध कराने तथा निर्धन व्यक्तियो की आय बढाने हेतु विभिन्न योजनाएँ

चालू की गई। इस वर्ष शुद्ध राज्य घरेलू उत्पादन मे स्थिर (1960–61) कीमतो पर 4.05% की वृद्धि अनुमानित हुई। यद्यपि भारी वर्षा व बाढ के कारण राज्य के कई जिलो मे खरीफ फसल नष्ट हो गई थी लेकिन रबी फसल का उत्पादन सन् 1976–77 की अपेक्षा अच्छा होने की सम्भावना है एव तिलहन, कपास व गन्ने के उत्पादन मे और अधिक वृद्धि होने की आशा है। कुल मिलाकर वर्ष 1977–78 मे कृषि उत्पादन का मूल्य सन् 1976–77 से अधिक होगा। ऐसा अनुमान है कि खाद्यान्नो का उत्पादन वर्ष 1977–78 म 71.41 लाख मैट्रिक टन होगा जिसमे 16.52 लाख मैट्रिक टन दालें भी सम्मिलित हैं। आलोच्य वर्ष मे मुख्यत दालो के उत्पादन मे कमी हुई है। खनिज उत्पादन म भी गिरावट की प्रवृत्ति रही किन्तु श्रमिक अशान्ति, जो माह अप्रेल, 1977 मे सर्वाधिक थी, के उपरान्त भी विनिर्माण अनुभाग (पजीकृत व अपजीकृत दोनो सहित) मे पिछले वर्ष की तुलना से इस वर्ष 6% की वृद्धि अकित हुई। यद्यपि श्रमिक स्थिति अनुवर्तित माहो मे धीरे-धीरे सुधरती गई।

सन् 1977 म थोक एव खुदरा भावो मे गत वर्ष की अपेक्षा सामान्यत वृद्धि हुई, परन्तु इसमे दो विशेषताएँ परिलक्षित हुईं— (अ) मार्च, 1977 के पश्चात् गत वर्ष के सवादी तैमासो की तुलना मे इस वर्ष प्रतिशत वृद्धि कम रही तथा (ब) आलोच्य वर्ष मे आवश्यक वस्तुओ के मूल्यो मे गिरावट की प्रवृत्ति दृष्टिगत हुई। राज्य सरकार ने पूर्ति को वितरण प्रणाली द्वारा चालू रखा। आलोच्य वप म 90 हजार मैट्रिक टन गेहूँ व 20 हजार मैट्रिक टन मोटा अनाज उचित मूल्य की दुकानो के द्वारा वितरित करवाया गया। केन्द्र सरकार ने आवश्यक वस्तुओ की उपलब्धि को बढाने व उचित मूल्यो पर आसानी से आवश्यक वस्तुएँ जनता को उपलब्ध करान हेतु कई उपाय किए जिनमे गेहूँ, चावल व धान पर स अन्तर्राज्यीय रोक को हटाना, लेवी रहित शक्कर की मात्रा को बढाना व तेलो का आयात इत्यादि करना मुख्य है।

क्षेत्रीय विकास जैसे नहर अधिकृत क्षेत्र (राजस्थान नहर अधिकृत क्षेत्र एव चम्बल नहर अधिकृत क्षेत्र) आदिवासी क्षेत्र, मरुस्थल क्षेत्र तथा सूखा सम्भावित क्षेत्र के विकास को अधिक महत्त्व दिया गया। इन प्रयत्नो के साथ-साथ अन्य कार्यक्रमो जैसे दुग्ध विकास कार्यक्रम सीमान्त कृषक एव खेतिहर श्रमिक कार्यक्रम लघु कृषक विकास अभिकरण तथा लघु सिचाई योजनाओ ने ग्रामीण क्षेत्र मे रोजगार बढाने तथा निर्धनो के आय स्तर बढाने हेतु बडे पैमाने पर सहायता की है।

लघु कृषक विकास अभिकरण तथा सीमान्त कृषक एव खेतिहर मजदूरो के कार्यक्रम सन् 1976–77 तक केवल 5 जिलो मे ही चलाए जा रहे थे, परन्तु वर्ष 1977–78 से लघु कृषक विकास अभिकरण जैसी सुविधाओ को राज्य के सभी 26 जिलो मे बढा दिया गया है। सहकारी अनुभाग मे अमूल योजना की भाँति दुग्ध विकास वृहद् कार्यक्रमो के अन्तर्गत वर्ष 1977–78 के अन्त तक दुग्ध उत्पादन के लगभग चार लाख लीटर तक बढने की आशा है।

ग्रर्थ-व्यवस्था मे हुई प्रगति को प्रतिबिम्बित करने हेतु कुछ सूचकाँक निम्न तालिका मे प्रस्तुत किए गए हैं—

मद	गत वर्ष से वृद्धि या कमी (प्रतिशत मे)				
	1973-74	1974-75	1975-76	1976-77	1977-78
1. राज्य आय					
(अ) प्रचलित कीमतों पर	38 40	8 39	11·δ9	1 17	—
(ब) स्थिर(1960-61)कीमतों पर	15·62	(-) 7 43	17 03	3.15	4 05
2. प्रति व्यक्ति आय					
(अ) प्रचलित कीमतो पर	34 68	5 64	8·98	(-) 1·45	—
(ब) स्थिर(1960-61)कीमतो पर	12 54	(-) 9 74	14·03	0 63	1·25
3. कृषि उत्पादन सूचकाँक	28 85	(-) 8 82	17 18	4·98	—
4 खाद्यान्न उत्पादन	30 29	(-)25·93	55 40	(-) 3·29	(-) 4·54
5 विद्युत उत्पादन एवं क्रय	23 00	8 54	(-) 12·08	32·90	+ 15·47
6. थोक भाव सूचकाँक	24 07	34 73	(-) 1·94	(-)14 08	14·34
7. उपभोक्ता भाव सूचकाक					
(i) जयपुर	19·23	19 44	1 56	(-) 5·52	11 04
(ii) अजमेर	18 45	29 10	—	(-) 6·67	12·58

ग्रक कलेण्डर वर्ष से सम्बन्धित है। ग्रनुमानित प्रावधानिक

कृषि उत्पादन

बाढ ग्रौर प्रतिकूल जलवायु ने समस्त खरीफ मौसम की फसलो के उत्पादन को प्रभावित किया। इस वर्ष खाद्य फसलो का ग्रनुमानित उत्पादन 25·81 लाख मैट्रिक टन ग्रौर खरीफ तिलहन का उत्पादन 2 14 लाख मैट्रिक टन होने का ग्रनुमान है जबकि पिछले वर्ष खरीफ खाद्यान्नो तथा तिलहनो का उत्पादन क्रमश. 33·50 लाख मैट्रिक टन तथा 2 50 लाख मैट्रिक टन था। सशोधित ग्रनुमानो के द्वारा भी यह इगित होता है कि रबी खाद्यान्नो का सम्भावित उत्पादन 45 60 लाख मैट्रिक टन तथा रबी तिलहनो का 2 50 लाख मैट्रिक टन होगा। इस प्रकार वर्ष 1977–78 मे खाद्यान्नो का कुल उत्पादन 71 41 लाख मैट्रिक टन तिलहनो का 4 64 लाख मैट्रिक टन, गन्ने का 20 00 लाख मैट्रिक टन तथा कपास का 4 11 लाख गाँठें (प्रत्येक गाँठ 170 कि ग्राम) होने का ग्रनुमान है।

कृषि उत्पादन के सूचकाँक (ग्राधार सन् 1967–68 से 1969-70=100) की प्रवृत्ति सुधार की ग्रोर उन्मुख है। यह सन् 1976 मे समाप्त हुए त्रिवर्षीय ग्रवधि के सूचकाँक 159 से बढकर सन् 1977 मे समाप्त हुए त्रिवर्षीय ग्रवधि मे 166 हो गया। इसी प्रकार की प्रवृत्ति खाद्यान्नो तथा ग्रखाद्यान्नो दोनो के उत्पादन के सूचकाँकों मे देखी गई। कृषि उत्पादन सूचकाँक विभिन्न वर्षों के लिए निम्न तालिका मे दिए गए हैं— (ग्राधार : सन् 1967–68 से 1969–70=100)

वर्ष	उत्पादन के सूचकांक		
	खाद्य	अखाद्य	समस्त फसलों के
1965-68	98	111	103
1966-69	96	89	95
1967-70	100	100	100
1968 71	115	145	121
1969 72	132	185	14'
1970 73	135	221	151
1971-74	120	239	144
1972 75	113	280	146
1973 76	127	323	159
1974-77	135	325	166

औद्योगिक उत्पादन

राज्य सरकार द्वारा औद्योगिक नीति को उदार बनाए रखते हुए उद्योगपतियों को नए उद्योग लगाने हेतु एव पुराने उद्योगों के विस्तार कार्यक्रम को बनाए रखते हुए औद्योगिक विकास हेतु विशेष सुविधाएँ एव प्रोत्साहन देने का कार्य इस वर्ष 1977-78 मे भी चालू रखा गया। सन् 1977-78 मे राज्य सरकार द्वारा वृहद् औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित करने हेतु 77 आवेदन पत्र सिफारिश के साथ भारत सरकार को आशा पत्र जारी करने के लिए भेजे गए। 15 विभिन्न निर्माणियों को आज्ञा-पत्र स्वीकृत किए गए जैसे राजस्थान राज्य औद्योगिक एव खनिज विकास निगम जयपुर को लो डेन्सिटी पोलीथिलीन वाइड विड्थ फिल्म्स एव इण्डस्ट्रियल एक्सप्लोसिव्ज, हिन्दुस्तान जिंक लि को रोल्ड जिंक शीट्स प्लेटस एण्ड स्लेलोट्स तथा 5 दुग्ध उत्पादन सहकारी समितियाँ जो क्रमश बीकानेर, जोधपुर, अजमेर, जयपुर एव अलवर मे स्थित हैं, को मक्खन, घी, स्किम्ड मिल्क पाउडर, बच्चों के लिए दुग्ध आहार एव केसिन, जे के सिन्थेटिक, नई दिल्ली को कोटा मे डी एम. टी. मीन स्थोलीन, नेशनल एमर प्रोडक्ट्स, नई दिल्ली को अलवर मे लाइट मीडियम स्ट्रक्चरल्स अलोय स्टील सेक्शन आदि हिन्दुस्तान शुगर मिल्स लिमिटेड, बम्बई को कोटा मे पोर्टलैण्ड सीमेण्ट, अलकोवेक्स मेटल प्रा लि., जोधपुर को कोपर एण्ड कोपर अलोय्जसेमिस, वास ट्यूब्स आदि, जे. के स्टील एण्ड इण्डस्ट्रीज लि, कलकत्ता को राजस्थान मे स्टील टायर कोर्ड एव साइकिल्स टायर व मोटो टायर बनाने हेतु कोड वायर, जे के सिन्थेटिक, कानपुर को कोटा मे पोलिस्टर स्टेपिल फाइबर तथा सुनील साइकेम लि नई दिल्ली को अलवर मे, ओसिन व गेलेटिंग के उत्पादन हेतु आशय-पत्र स्वीकृत किए गए। भारत सरकार द्वारा 17 नई निर्माणियों को उद्योग स्थापित करने हेतु आज्ञा-पत्र दिए। ये निर्माणियाँ सूती धागा, सिन्थेटिक फाइबर, रसायन, कीटनाशक दवाएँ, सीमेन्ट, मशीनरी तथा इन्जीनियरिंग सामान के उत्पादन से सम्बन्धित हैं।

केन्द्र सरकार द्वारा ग्रौद्योगिक दृष्टि से पिछड़े जिलो (ग्रलवर, जोधपुर, भीलवाड़ा, उदयपुर, नागौर व चुरू) मे नई निर्माणियो को नए उद्योग स्थापित करने के लिए 15% केन्द्रीय अनुदान योजना के अन्तर्गत विशेष रूप से चुना गया है। ग्रालोच्य वर्ष मे, राज्य सरकार ने इस योजना को राज्य के ग्रौद्योगिक क्षेत्र मे पिछड़े ग्रन्य 10 जिलो जालौर, पाली, बांसवाडा, झुंझुनूं, जैसलमेर, बाड़मेर, डूंगरपुर, टोंक, झालावाड ग्रौर सिरोही मे भी लागू किया है। इसके अन्तर्गत राजस्थान मे (31–12–77 तक) 4 63 करोड़ रुपये ग्रनुदान के रूप मे 650 इकाइयो को स्वीकृत किए जा चुके है। यह ग्रनुदान भूमि, भवन, मशीनरी के रूप मे लगाई गई स्थायी पूँजी पर दिया जाता है। राजस्थान वित्त निगम द्वारा इन पिछड़े जिलों मे ऋण स्वीकृति की न्यूनतम सीमा 10,000 रुपये से घटाकर 5,000 रुपये कर दी है।

ग्रामीण उद्योग परियोजना भारत सरकार द्वारा राज्य के पांच ग्रौद्योगिक क्षेत्र मे पिछड़े जिलो नागौर, झालावाड़, चूरू, टौंक ग्रौर बांसवाड़ा मे चालू की गई है। इस पांचो जिलो का सर्वेक्षण हो चुका है। ग्रामीण ग्रौद्योगिक विकास हेतु इन जिलो मे निम्नलिखित रियायते स्वीकृत की गई हैं—

1 ग्रासान शर्तों पर ऋण।
2 सुधरे हुए ग्रौजारो एव यन्त्रो हेतु ग्रनुदान।
3 कच्चे व तैयार माल के परीक्षण हेतु ग्रनुदान।
4 सहकारी समितियो द्वारा चलाई जाने वाली इकाइयो की व्यवस्था हेतु ग्रनुदान।
5 इमप्लाण्ट प्रशिक्षण हेतु ग्रनुदान।

राज्य के पांच चयनित जिलो (जयपुर, जोधपुर, ग्रजमेर, बीकानेर ग्रौर उदयपुर) मे उद्योग विभाग द्वारा स्वय सेवी सस्थानो के माध्यम से घरेलू उद्योग योजना को क्रियान्वित किया जा रहा है। इस योजना के ग्रन्तर्गत सन् 1974–75 से दिसम्बर, 1977 तक मध्यम एव ग्रल्प ग्राय वर्ग के 2188 व्यक्तियों (विशेषकर ग्रसहाय महिलाग्रो तथा कमजोर वर्ग के व्यक्तियो) को विभिन्न घरेलू ग्रौद्योगिक व्यवसायो का प्रशिक्षण दिया गया, जिनमे से 769 घरेलू उद्योगो के रूप मे कार्य कर रहे हैं। सन् 1977-78 मे 1204 व्यक्तियो को जो कपडो की सिलाई, होजरी, गलीचा बुनाई, गोटा ग्रारी तारी, लकडी के खिलौने ग्रादि घरेलू उद्योगों मे लगे हैं उनको प्रशिक्षण दिए जाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। वर्तमान मे 482 प्रशिक्षणार्थियो को प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

उद्योग विभाग द्वारा लघु उद्योगो को ऋण देने के लिए 15,000 रुपये प्रति इकाई तक का ऋण जिला स्तर पर जिला ऋण समिति के माध्यम से स्वीकृत किया जाता है एवं 25,000 रुपये तक प्रति इकाई ऋण विभागीय मुख्यालय से स्वीकृत किया जाता है। ग्रालोच्य वर्ष मे इस योजना क ग्रन्तर्गत 1·00 लाख रुपये के ऋण

देने का प्रावधान था जिसमे से 84 हजार रुपये के ऋण 16 लघु इकाइयो को दिसम्बर, 1977 तक स्वीकृत किए जा चुके हैं।

इस वर्ष राज्य सरकार ने उद्योग लगाने वाले शिक्षित बेरोजगारो को मार्जिन-मनी ऋण देने हेतु एक योजना लागू की है। इस योजना के अन्तर्गत नए लघु उद्योग लगाने हेतु इच्छुक शिक्षित बेरोजगार व्यक्तियो को स्थायी पूँजी के लिए 15% तक एव कार्यशील पूँजी के लिए 10% तक मार्जिन मनी-ऋण उपलब्ध कराया जाता है। इस ऋण पर ब्याज 4% की दर से लिया जाएगा। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए आलोच्य वर्ष मे 50 00 लाख रुपये का प्रावधान रखा गया।

भारतीय मानक सस्थान का एक कार्यालय जयपुर मे स्थापित किया गया है जो मानकीकरण की सुविधाएँ उपलब्ध कराएगा।

राजस्थान वित्त निगम द्वारा सन् 1977 मे 516 इकाइयो को 510 38 लाख रुपये के ऋण स्वीकृत किए गए जबकि गत वर्ष 282 इकाइयो को 429 22 लाख रुपये के ऋण स्वीकृत किए गए थे।

सन् 1977-78 मे राज्य के औद्योगिक उत्पादन मे मिश्रित प्रवृत्ति पाई गई। औद्योगिक उत्पादन के अन्तर्गत अधिकतम वृद्धि सल्फ्यूरिक एसिड के उत्पादन मे हुई जो गत वर्ष की तुलना मे 184% अधिक है। आलोच्य वर्ष मे जिन अन्य मदो के उत्पादन मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई है वे हैं केडमियम फिनिस्ड प्रोडक्ट्स (131·86%), सिंगिल सुपर फास्फेट (112 33%), जिंक स्लेब्स (99 45%), नमक (68 17%), पी वी सी कम्पाउण्ड (37 14%), सभी प्रकार की स्प्रिट्स (34 75%), सीमेंट (24 10%), वेजीटेबिल घी (22 37%), सोपस्टोन पाउडर (14 85%), पी वी सी. रेजिन (9 34%), केलशियम कारबाइड (7 70%), चीनी (2 89%), यूरिया (2 75%), नाइलोन धागा (0 73%) तथा सूती वस्त्र (0 16%) तथापि विद्युत की कमी के कारण विद्युत मीटर्स के उत्पादन म काफी गिरावट (64 77%) हुई। इसी प्रकार मास्को इन्सूलेटिंग ईंटो के उत्पादन म भी असाधारण गिरावट (53 51%) खानो के क्षेत्र म अत्यधिक वर्षा एव कच्चे माल की कमी के कारण हुई। इसके अलावा सोडियम सल्फेट (43 83%), समस्त प्रकार के रेलवे वेगन्स (36 68%), लेपित एव पुनर्लेपित पत्थर (31 23%), पानी के मीटर्स (17·92%), सूती धागा (14 68%), रेडियेटर्स (13 15%), रेयन टाइप फाइबर्स (12 58%) के उत्पादन मे प्रतिवेदित किया गया। कास्टिक सोडा एव बाल बियरिंग के उत्पादन मे 2 से 7% तक की कमी हुई। कच्चे माल, ईंधन एव विद्युत की कमी, यान्त्रिक विभग एव श्रमिक हड़तालो के कारण औद्योगिक उत्पादन मे कमी हुई।

कुछ मुख्य वस्तुओ के उत्पादन के समक राज्य की प्रतिवेदित निर्माणियो की मासिक सूचना, जो उत्पादन की प्रवृत्ति दर्शाती है, के आधार पर निम्न तालिका मे दिए गए हैं—

मद	इकाई	वर्ष 1976	वर्ष 1977	सन् 1977 मे उत्पादन मे वृद्धि या ह्रास 1976 की तुलना मे
1 चीनी	हजार मै. टन	34 20	35·19	(+) 2·89
2 स्प्रिट (समस्त प्रकार की)	,, लीटर्स	3156·92	4254·01	(+) 34·75
3 वनस्पति घी	,, मै. टन	14·44	17 67	(+) 22·37
4 नमक	,, ,,	226·37	380 68	(+) 68 17
5 वस्त्र उद्योग				
(अ) सूती वस्त्र	लाख मीटर	680 01	690·09	(+) 0 16
(ब) सूती धागा	हजार मै. टन	380·66	331·41	(—) 14·68
6 उर्वरक				
(अ) यूरिया	हजार मै. टन	260 46	267 63	(+) 2 75
(ब) सिंगल सुपर फास्फेट	,, ,, ,,	20 35	43·21	(+) 112·33
7 सीमेंट	,, ,, ,,	1677 52	2081·75	(+) 24·10
8 शाइका इस्यूलेटिंग ब्रिक्स	हजार संख्या	1497	696	(—) 53·51
9 जिंक स्लैब्स	हजार मै. टन	12·73	25·29	(+) 99 45
10 केडमियम फिनिस्ड प्रोडक्टस	,, ,, ,,	14·25	33·04	(+) 131·86
11 रेलवे के डिब्बे				
(समस्त प्रकार)	संख्या	1592	1000	(—) 36 68
12 बाल बियरिंग्स	लाख संख्या	75·85	73·85	(—) 2 68
13 पानी के मीटर	हजार संख्या	9 54	7·83	(—) 17·92
14 रेडियेटर्स	,, ,,	8·67	7 53	(—) 13·15
15 लेपित एव पुनर्लेपित पत्थर	,, वर्ग मीटर	213 00	146·48	(—) 31·23
16 विद्युत् मीटर	,, संख्या	219 35	77·28	(—) 64·77
17 कृत्रिम रेशे				
(अ) नायलोन धागा	,, मै. टन	4·10	4·13	(+) 0·73
(ब) रैयन किस्म धागा	,, ,,	4 16	4·03	(—) 12 58
18 रसायन				
(अ) कास्टिक सोडा	,, ,,	31 88	29·96	(—) 6 02
(ब) केल्शियम कारबाईड	,, ,,	20 39	21 96	(+) 7·70
(स) पी. वी. सी. कम्पाउण्ड	,, ,,	3·50	4 80	(+) 37·14
(द) पी. वी. सी. रेसिन	,, ,,	14 45	15·80	(+) 9·34
(य) गधक का तेजाब	,, ,,	12·77	36·32	(+) 184 42
(र) सोडियम सल्फेट	,, ,,	2·93	1·47	(—) 49·83
19 सोप स्टोन पाउडर	,, ,,	16·50	18·95	(+) 14 85

खनिज उत्पादन

वर्ष 1977 मे खनिज उत्पादन की मिश्रित प्रवृत्ति पाई गई। अधिकां धात्विक खनिजों मे कच्चा ताम्बा, रन आफ माईन और सांद्र शीशा, सांद्र जस्त और चाँदी के उत्पादन मे वृद्धि दिखाई दी, केवल कच्चे लोहे के उत्पादन

8 57% की कमी पाई गई। वर्ष 1976 की अपेक्षा वर्ष 1977 मे अधात्विक खनिजो के अन्तर्गत केलसाईट, चीनी मिट्टी, डोलोमाईट, फायरक्ले, पन्ना, चूने का पत्थर, मेगनेसाइट, पाइरोफिलाइट, सीलिकासैण्ड, स्लेटस्टोन, वेसेनाइट और बालक्ले का उत्पादन अधिक रहा, लेकिन शेष अधात्विक खनिजो के उत्पादन मे गिरावट आई।

वर्ष 1977 मे कुल विक्रय मूल्य 4145 13 लाख रुपये रहा जो वर्ष 1976 के विक्रय मूल्य 4230·69 लाख रुपये की तुलना मे कम रहा। दैनिक मजदूरो की औसत संख्या वर्ष 1976 मे 24049 से घट कर सन् 1977 मे 21937 रह गई। मुख्यता चालू वर्ष मे दैनिक मजदूरो की औसत सख्या मे कमी ऐसबेस्टस सोप स्टोन, लाइम स्टोन व केलसाइट आदि खनिज मे हुई। इस कमी का कारण इस वर्ष भारी वर्षा का लम्बे समय तक होते रहना था।

विद्युत

वर्ष 1977-78 मे अनुमानित 2494 मि किलोवाट विद्युत का उत्पादन हुआ एव अनुमानित 1270 4 मि किलोवाट विद्युत का क्रय राजस्थान राज्य एव बाहर के राज्यो से किया गया। 3944 0 मि किलोवाट लक्ष्य के स्थान पर 3764 4 मि किलोवाट विद्युत का उत्पादन एव क्रय किया गया। वर्णित वर्ष मे 281 4 मि किलोवाट विद्युत का अधिक उत्पादन हुआ जबकि पिछले वर्ष (1976-77) मे उक्त उत्पादन 2212 6 मि किलोवाट का हुआ था। पिछले वर्ष की तुलना म 223 मि किलोवाट विद्युत का क्रय भी अधिक था। राजस्थान का अधिकांश विद्युत उत्पादन हायड्रो प्लांट से होता है। जिसमे वर्ष 1977-78 मे 1824 मि किलोवाट (73 14%) विद्युत उत्पादन हुआ जबकि सन् 1976-77 मे 1513 9 मि किलोवाट था। साधारणतया विद्युत उत्पादन एव क्रय का अनुपात 2 1 है।

सदर्भित वर्ष मे 2700 4 मि किलोवाट विद्युत का उपभोग किया गया जिसका 61 30% औद्योगिक शक्ति मे, 18 09% सिचाई एव कृषि जलदाय मे, 6 26% घरेलू कार्य मे, 5 45% सार्वजनिक जलदाय एव गटर कार्य पर, 4 66% वाणिज्यिक कार्य मे तथा अन्य सार्वजनिक बिजली वितरण एव विक्रय अनुमति-पत्र हेतु उपभोग किया गया।

गत वर्ष औद्योगिक क्षेत्र मे 58 63% विद्युत का उपभोग किया गया जबकि कुल विद्युत उपभोग 2084 3 मि किलोवाट था। कुल विद्युत उपभोग 29 56% बढ गया एव वितरण प्रणाली के अन्तर्गत भी औद्योगिक शक्ति लाभान्वित हुई। विद्युत क्षति मे कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ। जहाँ वर्ष 1976-77 मे यह 24 57% था वहाँ सदर्भित वर्ष मे 24 20% रहा।

रोजगार नियोजन

वर्ष 1977–78 के विनियोजन के अनुसार अनुमान है कि राज्य में 3 86 लाख व्यक्तियो को नियमित रूप से रोजगार उपलब्ध कराया जा सकेगा जबकि

श्रम शक्ति मे अनुमानित वृद्धि केवल 2 75 लाख की होगी। इस प्रकार किसी सीमा तक बकाया बेरोजगारी की समस्या को हल किया जा सकेगा।

नियोजन कार्यालयों की सुविधाओं का लाभ इस वर्ष गत वर्ष की अपेक्षा अधिक प्राप्त किया गया। इस वर्ष मे सन् 1976 की तुलना मे पजीकरण में 8 35% की वृद्धि हुई जबकि वर्ष 1976 मे वर्ष 1975 की तुलना मे केवल 2·61% की वृद्धि हुई थी। नियोजन कार्यालय के अतिरिक्त जनशक्ति विभाग द्वारा रोजगार प्राप्त करने के इच्छुक बेरोजगार डिप्लोमा प्राप्त एव इजीनियरिंग स्नातकों का पंजीयन किया जाता है जो इनकी नियुक्तियों की विभिन्न सरकारी, अर्द्ध-सरकारी एवं *स्वशासित सस्थाओ के कार्यालयो मे व्यवस्था करती हैं। वर्ष 1977 मे गत वर्ष की* तुलना मे नियुक्तियो मे 7 06% की कमी रही जो कि आंशिक रूप से अधिसूचित रिक्तियो की 19 64% की कमी के कारण रही। नियोजन कार्यालयों मे जीवित पजिका पर प्रार्थियो की सख्या इस वर्ष के अन्त तक गत वर्ष की तुलना मे 4·27% अधिक रही।

बचत

विभिन्न बचत योजनाओ के अन्तर्गत वर्ष 1976–77 मे डाक घर बचत बैंक योजना एव डाकघर सामयिक योजना के द्वारा 86% की शुद्ध प्राप्ति हुई। वर्ष 1975–76 मे शुद्ध बिक्री 1359·71 लाख रुपये की अपेक्षा सन् 1976–77 मे 1710 98 लाख रुपये हुई। वर्ष 1975–76 की तुलना मे वर्ष 1976–77 मे शुद्ध विक्रय मे 25·8% की वृद्धि हुई।

सहकारिता

राज्य मे सहकारिता आन्दोलन के अन्तर्गत ग्रामीण आर्थिक विकास मे निरन्तर वृद्धि हो रही है। वर्ष 1977–78 मे सहकारिता आन्दोलन की गुणात्मक एव सख्यात्मक दृष्टि से अधिक सुदृढ करने हेतु प्रयास किए गए। गत वर्ष 1976-77 के 60% के विरुद्ध 68% ग्रामीण कृषि परिवार सहकारिता के अन्तर्गत आने की सम्भावना है। अब तक 98% गांव सहकारिता मे सम्मिलित किए जा चुके हैं जबकि वर्ष 1978-79 तक सभी गाँवों को सहकारिता आन्दोलन मे सम्मिलित करने का लक्ष्य है।

यातायात एवं सचार

वर्ष 1977–78 के अन्त तक राज्य मे कुल सडकों की लम्बाई 3929[illegible] किलोमीटर होगी जबकि वर्ष 1976–77 के अन्त तक यह 38883 किलोमीट[illegible] थी। मुख्य रूप से सडकों की लम्बाई मे वृद्धि ग्रामीण सडकों मे हुई।

वर्ष 1976 मे 186758 वाहन सड़को पर थे जो बढकर वर्ष 1977 [illegible] (अगस्त, 1977 तक) में 202658 हो गए। वर्ष 1977–78 के अन्त तक करीब 35% बस मार्गों का राष्ट्रीयकरण किया जाएगा।

मूल्य नीति

आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धि में सुधार लाने एव मूल्यों को नियन्त्रण [illegible] रखने हेतु केन्द्रीय सरकार द्वारा कई कदम उठाए गए। इनमे से कुछ निम्न हैं—

1. गेहूँ, धान एवं चावल के अन्तर्राज्यीय आवागमन पर से रोक हटाई गई।

2. अप्रेल, 1977 से नोन-लेवी चीनी का बँटन मात्रा मे पर्याप्त वृद्धि की गई। परिणामस्वरूप केवल चीनी की उपलब्धि मे ही सुधार नही हुआ बल्कि इसके मूल्यो मे भी गिरावट आई तथा इसका प्रभाव गुड के मूल्यो पर भी पडा।

3. अप्रेल, 1977 एव उसके पश्चात् सीमेंट के निर्यात पर रोक लगादी गई।

4. जुलाई-सितम्बर, 1977 की त्रैमासिक अवधि मे वनस्पति उद्योग मे आयातित खाद्य तेल का उपयोग 75% से बढाकर 90% कर दिया गया ताकि देशी तेलो के सीधे उपयोग करने हेतु उपलब्धि की स्थिति मे सुधार हो सके।

5. सरसो के तेल की कीमतो मे कमी लाने के लिए सरकार ने इसका अधिकतम खुदरा मूल्य 10 रुपये प्रति किलो निर्धारित करने हेतु एक अध्यादेश निर्गमित किया।

6. आवश्यक वस्तु अधिनियम को अधिक प्रभावशाली तरीके से लागू करने के लिए कदम उठाए गए।

इन उपायो द्वारा राज्य में न केवल आवश्यक वस्तुओ की उपलब्धि मे सुधार हुआ बल्कि कीमतो पर भी अनुकूल प्रभाव पडा।

वितरण प्रणाली

राजस्थान मे उचित मूल्य की दुकानो की सख्या दिसम्बर, 1977 मे 8995 थी, जबकि जुलाई, 1977 मे इनकी सख्या 8934 थी। दिसम्बर, 1977 में उचित मूल्य की दुकानो मे सहकारी दुकानो की सख्या 3901 थी, जबकि जुलाई, 1977 मे यह सख्या केवल 3840 थी। इन उचित मूल्यो की दुकानो के माध्यम से 90 हजार टन गेहूँ तथा 20 हजार टन मोटा अनाज वितरित किया गया।

क्षेत्रीय विकास

राज्य सरकार ने विश्व बैंक से 'कमाण्ड एरिया डवलपमेंट' क्षेत्र मे दो योजनाओ—सिंचाई व कृषि के सघन विकास के लिए स्वीकृति प्राप्त करली है। राजस्थान नहर परियोजना के लिए कुल 139 20 करोड रुपये व चम्बल योजना के लिए 73 20 करोड रुपये की राशि की आवश्यकता थी जिसमे से 66 40 करोड रु राजस्थान नहर के लिए अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी व चम्बल के लिए 41 60 करोड रुपये विश्व बैंक से प्राप्त होंगे।

इस परियोजना को पूरा करने के लिए राज्य सरकार के साथ केन्द्रीय सरकार से भी धन प्राप्त होना है। इस योजना के कार्यक्रमों को समन्वित करने हेतु राज्य सरकार ने राज्य स्तर पर कमाण्ड एरिया व जल उपयोग विभाग एव क्षेत्रीय स्तर पर उच्च स्तरीय क्षेत्रीय विकास प्राधिकरण की स्थापना राजस्थान नहर परियोजना के लिए क्षेत्रीय विकास आयुक्त, बीकानेर मे एव चम्बल के लिए कोटा मे स्थापित किए। इन दो योजनाओ के अतिरिक्त दो और योजनाएँ —नार्थ वेस्ट भाखरा व गग केनाल भी, ए आर डी सी की सहायता से राज्य मे चल रही हैं। सन् 1978-79 के लिए 4·10 करोड रुपये राज्य की ओर से एव 3 72 करोड रुपये केन्द्र सरकार के भाग को मिलाकर कुल 7 82 करोड रुपये का प्रावधान इस हेतु रखा गया है।

इन बजट प्रावधानों और ए. आर. डी. सी. द्वारा दिए विशेष ऋण के अतिरिक्त सन् *1978-79* में वित्तीय संस्थानों की राशि *9·89* करोड़ रुपये की होगी जबकि यह राशि सन् *1977-78* में 5 करोड़ रुपये की थी। 1·17 करोड़ रुपये का प्रावधान उत्तर-पश्चिमी भाखरा एवं गंग नहर क्षेत्र में पानी के धोरों को पक्का करवाने हेतु रखा गया है।

लघु कृषक विकास एजेंसी, सीमान्त कृषक एवं कृषि श्रमिक–लघु कृषक विकास एजेंसी, सीमान्त कृषक एवं कृषक श्रमिक की योजनाएँ विशेष रूप से ग्रामीण जन समुदाय की अल्प बेरोजगारी और आर्थिक दशा को सुधारने में बहुत सहायक रही हैं। ये योजनाएँ प्रारम्भ में सन् *1976-77* तक 5 जिलों में शुरू की गई थी, वे हैं अलवर, भरतपुर, उदयपुर, चित्तौड़गढ़ एवं भीलवाड़ा। लेकिन सन् 1977-78 में ये योजनाएँ समस्त 26 जिलों में शुरू करदी गई—6 जिले केन्द्रीय प्रवर्तित योजना के अन्तर्गत चलने वाली लघु कृषक विकास एजेंसी और सीमान्त कृषक एवं श्रमिक कार्यक्रम में सम्मिलित किए गए।

राज्य योजना में दिसम्बर, 1977 से लघु एवं सीमान्त कृषक एजेंसी जिन जिलों में स्थापित की गई वे हैं श्रीगंगानगर, झुंझुनूं सीकर, जयपुर, टौंक, सवाई-माधोपुर, बूँदी, कोटा, झालावाड़ एवं सिरोही। उपरोक्त जिलों में सहायता राशि के रूप में *दिए गए 30 लाख रुपये लघु कृषक विकास एजेंसी योजना में कृषि*, लघु सिंचाई, पशु पालन एवं सहकारी समितियों पर सन् 1977-78 में खर्च किए जाएँगे।

सूखा सम्भावित सहायता कार्यक्रम (डी. पी. ए. पी.)—सूखा सम्भावित सहायता कार्यक्रम में पाली, बाड़मेर, जैसलमेर, जालौर, बीकानेर, चूरू, बाँसवाड़ा, डूंगरपुर एवं साथ में जोधपुर और नागौर (विश्व बैंक सहायता कार्यक्रम) और छः तहसीलों में जिनमें उदयपुर जिले की खेरवाड़ा, भीम, देवगढ़, अजमेर जिले की ब्यावर एवं झुंझुनूं जिले की चिड़ावा एवं झुंझुनूं इस योजना में सम्मिलित *किए गए हैं। इस योजना को चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त में* शुरू किया गया था। सन् 1974-75 के बाद साल दर साल आवंटन राशि बढ़ती गई। सन् 1978-79 के लिए 12·00 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया, साथ ही 4·00 करोड़ रुपये राज्य का अंशदान रखा गया। इसके अतिरिक्त सन् 1976-77 एवं सन् 1977-78 के 2·52 करोड़ रुपये केन्द्र सरकार से 100% सहायता के रूप में दो मध्यम सिंचाई योजनाओं सेई डिवीजन एवं मोम कागदार के लिए प्राप्त होंगे। *इस कार्यक्रम के अन्तर्गत मुख्य योजनाएँ* ट्यूबवैल के निर्माण द्वारा भूमि जल विकास, मेड़ विकास, पशु एवं दुग्ध विकास है। ग्रामीण जल प्रदाय योजनाएँ बाड़मेर, चूरू एवं बीकानेर जिलों में कार्य कर रही हैं। सन् 1978-79 में दुग्ध मार्गों में निर्माण का कार्यक्रम भी रखा गया है।

Appendix—1

औद्योगिक नीति के सम्बन्ध मे श्री जार्ज फर्नांडिस का वक्तव्य (25 दिसम्बर, 1977)[1]

उद्योग मन्त्री श्री जार्ज फर्नांडिस ने आज ससद् मे औद्योगिक नीति के सम्बन्ध मे निम्नलिखित वक्तव्य दिया—

प्रस्तावना

विगत 20 वर्षों से उद्योग के क्षेत्र मे सरकारी नीति औद्योगिक नीति सकल्प, 1956 से शासित हो रही है। यद्यपि उस सकल्प की कुछ बाते औद्योगिक विकास के वांछनीय स्वरूप के सम्बन्ध मे तो आज भी मान्य हैं, किन्तु औद्योगिक क्षेत्र मे इन्ही नीतियो का जो वास्तविक परिणाम निकला वह आशा के अनुरूप अथवा घोषित उद्देश्यो के अनुसार नही रहा है। विगत 10 वर्षों मे प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय मे लगभग 1 5% वार्षिक वृद्धि हुई है जो एक विकासशील अर्थ व्यवस्था की जरूरतो को पूरा करने के लिए स्पष्ट ही अपर्याप्त है। बेरोजगारी बढ गई है, गाँवो और शहरो के बीच असमानताएँ बढी हैं तथा वास्तविक निवेश दर मे रुकावट उत्पन्न हो गई है। विगत दस वर्षों मे औद्योगिक उत्पादन के सम्बन्ध मे औसतन 3 या 4% से अधिक की वार्षिक वृद्धि नही हुई है। औद्योगिक क्षेत्र मे सकटग्रस्तता फैली है जिससे कुछ प्रमुख उद्योगो पर तो बडा ही बुरा असर पडा है। औद्योगिक लागत तथा मूल्यो का स्वरूप विशृ खलित हुआ है तथा उद्योगो को बडे-बडे शहरो से हटाकर उन्हे फैलाने की गति बहुत ही धीमी रही है।

2 अत अतीतकाल मे हुई विशृ खलताओ को दूर करने की दिशा मे नई औद्योगिक नीति को एक मोड देना है ताकि लोगो की आर्थिक विकास की स्वाभाविक आकांक्षाओ को एक समयबद्ध कार्यक्रम के अन्दर पूरा किया जा सके।

3 अर्थ-व्यवस्था मे कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रो में और अधिक परस्पर सम्बन्धो पर अधिक जोर देने की आवश्यकता रही है। हमारा अधिकांश औद्योगिक उत्पादन कृषीय कच्ची सामग्री पर आधारित है। इसी प्रकार आधुनिक तकनीक को अनुकूलित करके तथा हमारा अपनी परिस्थितियो के अनुरूप कृषि प्रणालियो को

1 भारत सरकार प्रेस विज्ञप्ति दिनांक 23 दिसम्बर, 1977.

अपनाकर कृषि के क्षेत्र मे उत्पादकता बढाने के लिए महत्त्वपूर्ण निवेश औद्योगिक क्षेत्र से ही मिलते है। विद्युत शक्ति के प्रजनन और पारेषण (ट्रांसमीशन) को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। हमारे हाल के अनुभव यह बताते हैं कि पर्याप्त विद्युत शक्ति का न मिलना कृषि तथा उद्योग के विकास मे एक बडी भारी बाधा बन गई है। इसी प्रकार हमारी सिंचाई की परियोजनाओ का निर्माण करने के लिए आवश्यक सीमेंट तथा इस्पात, हल चलाने व जमीन तैयार करने के उपकरण, ऊँची किस्म के बीजो का परिष्करण करने के उपकरण, उर्वरक, कीटनाशी पदार्थ, तेल, बिजली जैसे सभी औद्योगिक उत्पाद हमारे कृषीय उत्पादन को बढाने के लिए अत्यधिक जरूरी हैं। गाँवो मे कृषि तथा अन्य सम्बन्धित वस्तुओ के उत्पादन की वृद्धि का आधार लेकर समृद्धि तथा आय का जो स्वरूप बनेगा उससे खपत की वस्तुओ का उत्पादन करने की आधारभूत माँग की बात सामने आती है। अतएव कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र की इसी अन्तर-क्रिया की प्रणाली से गाँवों के उन बहुसंख्यक लोगो को जो कृषि के क्षेत्र मे खपाए नही जा सकते हैं, रोजगार दिया जा सकता है।

4 आज खाद्यान्न तथा संचित विदेशी मुद्रा के रूप मे हमारे पास पर्याप्त परिसम्पत्तियाँ हैं, परन्तु और अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमारे ग्रामीण क्षेत्र के काम करने के उत्सुक लोग, बहुत बडी संख्या मे उच्च शिक्षा प्राप्त वैज्ञानिक, इंजीनियर तथा तकनीशियन जो आज के विश्व के कार्यकुशल लोगो का तीसरा बडा दल है, हमारी सबसे अधिक बहुमूल्य परिसम्पत्तियाँ है। अब हमारे सामने बड़े-बडे अवसर हैं और भारी चुनौतिया हैं किन्तु इनका लाभ कायरतापूर्ण तथा बेमन से बनाई गई नीतियो के माध्यम से नही उठाया जा सकता। हमारे राष्ट्रीय जीवन के अनेक क्षेत्रो मे एक नया दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। इस नए दृष्टिकोण का असर न केवल हमारे विपुल साधनो तथा सम्पन्नता मे ही प्रतिबिम्बित होना चाहिए अपितु हमारे बहुसंख्यक लोगो के जीवन की रहन-सहन की स्थितियो मे सुधार करने के लिए भी इन साधनो तथा सम्पन्न स्थिति का उपयोग विशेष रूप से दिखाई देना चाहिए। इसके पश्चात् योजना तथा परियोजनाओ और स्कीमो के कार्यान्वयन मे अब मनुष्य की नई औद्योगिक नीति केन्द्र बिन्दु प्रदान करेगी।

लघु उद्योग

5. औद्योगिक नीति के सम्बन्ध मे अभी तक मुख्य रूप से बडे उद्योगो पर ही बल दिया जाता रहा है, कुटीर उद्योग की पूर्णतः उपेक्षा की गई है और लघु उद्योगों को नगण्य स्थान दिया जाता रहा है। मौजूदा सरकार की नीति इस प्रकार की धारणा को बदल देने की है।

6. अतएव नई औद्योगिक नीति की प्रमुख भूमिका सभी ओर फैले हुए कुटीर तथा लघु उद्योगो का ग्रामीण क्षेत्रो तथा छोटे-छोटे नगरो मे प्रभावशील सवर्द्धन करना होगा। सरकार की यह नीति है कि जिस वस्तु का उत्पादन लघु तथा कुटीर उद्योगो मे किया जा सकता है, वह किया ही जाना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए उन वस्तुओ का पता लगाने के लिए जिन्हे लघु उद्योग क्षेत्र मे स्थापित किया

अथवा उनका विस्तार किया जा सकता है, औद्योगिक उत्पादों का विशद् विश्लेषण किया गया है। केवल लघु उद्योग क्षेत्र के लिए ही आरक्षित किए जाने वाले उद्योगों की सूची में उल्लेखनीय वृद्धि की गई है जिसमें अब पहले की लगभग 180 वस्तुओं की अपेक्षा 500 से अधिक वस्तुएँ शामिल की जाएँगी। यह सूची भी सभा पटल पर रखी जाती है। यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि इस क्षेत्र में किया गया उत्पादन किफायती तथा स्वीकार्य कोटि का होता है। लघु क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की सूची की निरन्तर समीक्षा की जाती रहेगी ताकि अर्थ-व्यवस्था के लिए आवश्यक क्षमता उत्पन्न करने में देरी न हो। यह सुनिश्चित करने के लिए कि लघु उद्योगों के लिए किया गया आरक्षण कुशलतापूर्वक कार्य करता है नए उत्पादों के रूप में उसका निरन्तर विस्तार होता जाता है तथा लघु क्षेत्र में निर्माण की जा रही नई प्रक्रियाओं का पता लगाया जाता है, आरक्षित उद्योगों की समीक्षा प्रतिवर्ष की जाएगी।

बहुत छोटा उद्योग

7 लघु उद्योग क्षेत्र की विद्यमान परिभाषा तो बनी रहेगी लघु क्षेत्र के अन्तर्गत बहुत छोटे क्षेत्र यथा, जिनमें मशीनों और उपकरणों पर किया गया विनियोजन एक लाख रु तक है और जो सन् 1971 की गणना के आंकडों के अनुसार 50,000 से कम जनसंख्या वाले नगरों और गाँवों में स्थापित किए गए हैं उन पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता रहेगा। लघु क्षेत्र के बहुत छोटे एककों साथ ही कुटीर तथा घरेलू उद्योगों के लिए सीमान्त धन की व्यवस्था करने की योजनाएँ भी बनाई जाएँगी।

कुटीर उद्योगों के लिए विधान

8 लघु क्षेत्र के लिए आरक्षण तो रहा है, कुटीर तथा घरेलू उद्योग क्षेत्र के लिए कोई विशेष संरक्षण नहीं दिया जाता रहा है। सरकार कुटीर तथा घरेलू उद्योगों के हितों को संरक्षण देने हेतु विशेष विधान बनाने पर विचार करेगी जिसका लक्ष्य यह सुनिश्चित करना होगा कि हमारे औद्योगिक विकास में इन गतिविधियों को जो बहुसंख्यक लोगों के लिए स्वयं रोजगार में लगने की व्यवस्था करती है यथोचित मान्यता मिल जाती है।

संवर्धनात्मक उपाय

9 पहले ऐसी योजनाओं, अभिकरणों तथा संगठनों की वृद्धि करने की प्रवृत्ति रही है, जिनसे औसत दर्जे के लघु तथा ग्रामीण क्षेत्र के उद्योगों को प्रोत्साहन तथा सहायता मिलने की अपेक्षा वह और भी भ्रम में पड जाया करता था। अब लघु क्षेत्र एवं कुटीर विकास केन्द्रों को बड़े शहरों व राज्य की राजधानियों से हटाकर जिले के मुख्यालयों में ले जाने का विचार किया गया है। लघु तथा ग्रामोद्योगों की सभी आवश्यकताओं के बारे में कार्यवाही करने के लिए प्रत्येक जिले में एक अभिकरण होगा। इसे जिला उद्योग केन्द्र कहा जाएगा। केवल एक ही जिला उद्योग केन्द्र से लघु तथा ग्रामीण उद्यमियों के लिए अपेक्षित सभी सेवाएँ तथा

लिए खादी एव ग्रामोद्योग आयोग विस्तृत योजनाएँ तैयार करेगा। जूतो तथा साबुन के उत्पादन के लिए विशेष कार्यक्रम बनाए जाएँगे ताकि देश मे इन वस्तुओ के उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि होती रहे और कुल उत्पादन मे इनका अंश बढाया जा सके। आयोग के कार्यक्रम के अन्तर्गत इस समय आने वाली मदो की सूची का काफी विस्तार किया जाएगा तथा आयोग के सगठन मे राज्य एव राष्ट्रीय स्तर पर सुधार किया जाएगा ताकि इसे सौंपा गया कार्य अधिक प्रभावशाली ढग से पूरा किया जा सके।

13 ग्रामोद्योग विकास कार्यक्रम मे खादी सवर्धन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सूती रेशो के साथ पोलिएस्टर रेशो की कताई और बुनाई करके खादी के क्षेत्र मे एक नया मोड आता दिखाई दे रहा है। अब तक किए गए प्रारम्भिक कार्य से पोलिएस्टर खादी के लिए एक विस्तृत बाजार विकसित होने तथा उत्पादकता मे सुधार होने और खादी बुनकरो और कताई करने वालो की आय मे वृद्धि होने की आशा बँधी है। 'नई खादी' मे कार्यक्रम को बडे पैमाने पर कार्यान्वित करने के लिए खादी और ग्रामोद्योग अधिनियम मे सशोधन किया जा रहा है। सरकार खादी कार्यक्रम के सवर्धन के लिए आवश्यक अधिकतम वित्तीय और विपणन सहायता देने के लिए वचनबद्ध है।

14 खादी के साथ-साथ जन साधारण की वस्त्र सम्बन्धी आवश्यकता हथकरघा क्षेत्र के विकास द्वारा तेजी से पूरी की जा सकती है जो कि वस्त्र-निर्माण मे लगे बहुत अधिक लोगो को आजीविका प्रदान करता है। सरकार सगठित मिल तथा विद्युत करघा क्षेत्र मे बुनने की क्षमता मे किसी प्रकार के विस्तार की अनुमति नही देगी। हथकरघा क्षेत्र के लिए धागे की पर्याप्त सप्लाई प्रदान करने के लिए सरकार इस बात को सुनिश्चित करेगी कि सगठित क्षेत्र मे धागे लपेटने के कार्य के लिए हथकरघा क्षेत्र को प्राथमिकता दी जाए। यदि कोई कमी होती है तो सरकार बुनाई की क्षमता को बढाने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाने का सुनिश्चय करेगी। इसके अलावा हथकरघा उत्पादो के लिए तैयार बाजार के लिए इस बात का सुनिश्चय किया जाएगा कि सगठित मिल क्षेत्र और हथकरघा क्षेत्र मे अनुचित प्रतियोगिता न होने पाए। कुछ वस्त्रों का उत्पादन हथकरघा क्षेत्र के लिए पहले से ही आरक्षित है। फिर भी यह आरक्षण अधिक प्रभावशाली नही रहा है। सरकार विद्यमान आरक्षण को लागू करेगी तथा अन्य मदो को भी इसके अन्तर्गत ले आएगी।

समुपयुक्त प्रौद्योगिकी

15 हमारी सामाजिक आर्थिक स्थितियो के अनुरूप विकास तथा तकनीक को लागू करने की तरफ अभी पर्याप्त ध्यान नही दिया गया है। इसके पश्चात् यह नीति का एक अभिन्न अग होगा तथा सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाए। लघु तथा ग्रामीण उद्योगो मे लगे कर्मचारियो की उत्पादकता और अर्जन क्षमता मे सुधार करने के लिए उपयुक्त छोटे तथा साधारण किस्म की मशीनें और उपकरणो का विकास तथा ज्यादा प्रयोग करने हेतु प्रभावी

और समन्वित व्यवस्था सुनिश्चित करने का विशेष प्रबन्ध किया जाएगा। इसके अलावा सरकार उत्पादन की इस प्रकार की तकनीकों को सर्वांगीण ग्रामीण विकास के कार्यक्रम के साथ समन्वय करने का प्रयास भी करेगी।

बड़े उद्योगो की भूमिका

16. भारत मे छोटे और ग्रामीण उद्योगो के अलावा बडे उद्योगो की भी एक स्पष्ट भूमिका है। फिर भी, सरकार जटिल प्रकार की कुशलताओं के मात्र प्रदर्शन के लिए अथवा बड़े उद्योगो को असगत विदेशी प्रौद्योगिकी के स्मारको के रूप मे स्थापित करने के पक्ष मे नही है। बड़े उद्योगो की भूमिका लघु और ग्रामोद्योगों के व्यापक प्रसार और कृषि क्षेत्र को सुदृढ करके जनता की मूल आवश्यकताओ को पूरा करने वाले कार्यक्रमो के साथ जुडी होगी। लघु तथा ग्रामोद्योगो को दूर-दूर तक फैला कर तथा कृषि क्षेत्र को मजबूत बनाकर बडे उद्योग जनता की बुनियादी न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी करने के कार्यक्रम मे हाथ बँटा सकते है। सामान्य रूप से बडे पैमाने के उद्योगो के लिए ये क्षेत्र होगे—(क) आधारभूत उद्योग जो अवस्थापना सम्बन्धी तथा छोटे और ग्रामोद्योगो जैसे—इस्पात, अलौह धातुएँ, सीमेंट, तेल शोधन कारखानो जैसे उद्योगो का विकास करने के लिए जरूरी है, (ख) बुनियादी उद्योगों के साथ लघु उद्योगो की मशीनो की आवश्यकता पूरी करने के लिए पूँजीगत वस्तु उद्योग, (ग) उच्च प्रौद्योगिकी वाले उद्योग जिनमे बडे पैमाने पर उत्पादन करने की आवश्यकता होती है तथा जो कृषि और लघु स्तर के औद्योगिक विकास जैसे खाद, कीटाणुनाशक दवाइयो तथा पैट्रो-रसायन आदि से सम्बन्धित है, तथा (घ) लघु क्षेत्र के लिए आरक्षित मदो की सूची से बाहर रखे गए अन्य उद्योग और जिन्हे अर्थ-व्यवस्था का विकास करने के लिए जरूरी समझा जाता है, जैसे मशीनी औजार, कार्बनिक और अकार्बनिक रसायन उद्योग।

बड़े औद्योगिक गृह

17. पिछले अनुभव से पता चलता है कि सरकार की नीतियो को बडे औद्योगिक गृहो के अनुपात से अधिक वृद्धि पर नियत्रण रखने मे सफलता नही मिली है। मौजूदा उद्यमो की कुछ सीमा तक वृद्धि होना अपरिहार्य है तथा इन उद्यमो का निरन्तर लाभ पर चलते रहना भी आवश्यक है। बड़े औद्योगिक गृहो का विकास उनके द्वारा उत्पन्न आन्तरिक साधनो के अनुपात से अधिक रहा है और यह वृद्धि मुख्य रूप से बैंको तथा सार्वजनिक वित्तीय संस्थानो से उधार ली गई निधियो पर आधारित है। इस प्रक्रिया को अवश्य बदला जाना चाहिए।

18 भविष्य मे बडे औद्योगिक गृहो का विस्तार निम्नलिखित मार्गदर्शी सिद्धान्तो के अनुसार किया जाएगा—

(क) विद्यमान उपक्रमो का विस्तार तथा नए उपक्रमो की स्थापना एकाधिकार तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापार अधिनियम के उपबन्धो के अनुसार किया जाता रहेगा। प्रभावशाली उपक्रमों के उपबन्धो सहित इस अधिनियम के उपबन्धो पर कारगर ढग से अमल किया जाएगा।

(ख) जो उद्योग इस समय क्षमता की स्वत वृद्धि करने के योग्य है उनके अलावा विद्यमान उपक्रमो द्वारा नई वस्तुओ का उत्पादन करने तथा बडे गृहो द्वारा नए उपक्रमो की स्थापना करने के लिए सरकार के विशिष्ट अनुमोदन की आवश्यकता होगी ।

(ग) बडे औद्योगिक गृहो को अपनी नई या विस्तार सम्बन्धी परियोजनाओ की वित्त-व्यवस्था करने के लिए अपने यहाँ उत्पन्न किए गए साधनो पर निर्भर रहना होगा । कुछ उद्योगो जैसे—उर्वरक, कागज, सीमेंट, जहाजरानी तथा पेट्रो रसायन जैसे उद्योगो के मामले मे जो पूँजी प्रधान है, उपयुक्त ऋण इक्विटी के लिए अनुमति दी जाएगी, बशर्ते कि ऋण एव इक्विटी मे अनुपात कम पूँजी-प्रधान वाले उद्योगो अथवा कम सूक्ष्म उद्योगो के बीच इस प्रकार निर्धारित किया जाए कि बडे गृहो द्वारा उत्पन्न किए गए साधनो का अधिकाधिक उपाय हो सके ।

19 अपनी लाइसेंसिंग नीति मे सरकार बडे औद्योगिक गृहो के कार्यकलापो को, देश के सामाजिक आर्थिक उद्देश्यो के अनुरूप लाने के लिए विनियमित करेगी । जहाँ बडे एकक हैं भले ही वे बडे औद्योगिक गृहो से सम्बन्धित हो या नही यदि वे पहले से ही छोटे पैमाने के क्षेत्र के लिए आरक्षित वस्तुओ के बनाने मे लगे है तो उनकी क्षमता मे कोई विस्तार नही किया जाएगा । दूसरी ओर इन उपक्रमो को इन वस्तुओ के लिए कुल क्षमता मे अशदान लगातार कम किया जाएगा जबकि लघु व कुटीर क्षेत्र का विस्तार किया जाएगा । बडे उद्योगो, विशेष रूप से बडे औद्योगिक गृहो से सम्बन्धित एकको के लिए लाइसेंस देने मे सरकार इन एकको द्वारा इन वस्तुओ के कुल घरेलू उत्पादन के विद्यमान अश की ओर पूरा ध्यान देगी । सरकार की यह सुनिश्चित करने की नीति होगी कि किसी भी एकक अथवा व्यापारी वर्ग का बाजार मे प्रभुत्व अथवा एकाधिकार न होने पाए । बडे औद्योगिक गृहो के वर्तमान औद्योगिक कार्यकलापो की जाँच पडताल की जाएगी ताकि निर्माण सम्बन्धी आन्तरिक सम्बन्धो से उत्पन्न अनुचित तरीको को रोका जा सके ।

20 समाज के प्रति जिम्मेदारी निभाने का सुनिश्चय करने के लिए बडे उद्योगो की स्थापना तथा उन्हे चलाने के लिए महत्त्वपूर्ण समर्थन देने वाले वित्तीय सस्थानो से ऐसे उपक्रमो के कार्यकलापो की देखभाल करने मे और अधिक कारगर भूमिका निभाने की आशा की जाएगी ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि प्रबन्ध को अधिकाधिक उद्यमपरक बनाया जाता है तथा वह राष्ट्रीय प्राथमिकताओ के अनुरूप होता है ।

21 भारत मे सरकारी क्षेत्र काफी समय से कार्य करता रहा है । महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो मे उत्पादन के साधनो का सामाजीकरण करने के अतिरिक्त सरकारी क्षेत्र बडे औद्योगिक गृहो की वृद्धि करने तथा गैर-सरकारी क्षेत्र के बीच सतुलनकारी शक्ति रहा है । अनेक क्षेत्रो मे सरकारी क्षेत्र को बढती हुई भूमिका निभानी होगी । इस क्षेत्र मे न केवल बुनियादी किस्म की महत्वपूर्ण वस्तुओ का ही उत्पादन किया जाएगा अपितु इसका उपयोग जन-साधारण के लिए आवश्यक वस्तुओ का सभरण बनाए रखने के लिए एक स्थायी शक्ति के रूप मे भी कारगर ढग से किया जाएगा ।

विविध प्रकार के सहायक उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन देने का दायित्व भी सरकारी क्षेत्र का होगा और अलग-अलग एककों के कार्य-निष्पादन का निश्चय लघु, छोटे और ग्रामीण क्षेत्र के उद्योगो के संवर्धन मे उनकी भूमिका के संदर्भ मे किया जाएगा। सरकारी क्षेत्र से यह भी अपेक्षा की जाएगी कि वह लघु और ग्रामीण उद्योग क्षेत्रो के समर्थन कार्यक्रमो के लिए प्रौद्योगिकी और प्रबन्ध-व्यवस्था की अपनी विशेषज्ञता प्रदान करके विकेन्द्रित उत्पादन की वृद्धि करने मे योगदान करे। सरकार की यह भी कोशिश होगी कि सरकारी क्षेत्र के उद्यमो को लाभ पर चलाया जाए और उनका कुशल संचालन किया जाए ताकि इन उद्योगो मे किए गए निवेश से समाज को पर्याप्त लाभ मिलना सुनिश्चित किया जा सके। सरकार सरकारी क्षेत्र के प्रबन्धकों का एक व्यावसायिक संवर्ग बनाने को उच्च प्राथमिकता देती है, उन्हे आवश्यक स्वायत्तता प्रदान की जाएगी और इस प्रकार के उपक्रमो को दक्ष और गतिशील प्रबन्ध-व्यवस्था प्रदान करने का दायित्व उनका होगा।

देशी और विदेशी प्रौद्योगिकी

22. देश मे वैज्ञानिक संस्थानो का सुविकसित ढाँचा है। भविष्य मे भारतीय उद्योगो का विकास जहाँ तक सम्भव हो सके देशी प्रौद्योगिकी पर निर्भर होना चाहिए। यद्यपि देशी प्रौद्योगिकी के विकास के लिए व्यापक क्षेत्र प्रदान किया जाएगा फिर भी यह आवश्यक है कि भारतीय प्रौद्योगिकी का विकास उच्च और कुशल उत्पादन के उद्देश्यो के अनुरूप हो और यह अपने आप मे समाज के लिए तत्काल जरूरी वस्तुओं का उत्पादन करने मे विलम्ब का कारण न बने। हमारी विशाल जनता के जीवन-स्तर के सुधार मे विज्ञान और प्रौद्योगिकी का योगदान होना चाहिए।

23 प्रौद्योगिकीय आत्मनिर्भरता को बढावा देने के लिए सरकार जटिल और उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रो मे, जिनमे भारतीय कौशल और प्रौद्योगिकी का पर्याप्त विकास नही हुआ है, देश मे प्रौद्योगिकी के निरन्तर अपनाए जाने की आवश्यकता समझती है। ऐसे क्षेत्रो मे सरकार उपलब्ध सर्वोत्तम प्रौद्योगिकी को सीधे खरीद लेने को प्राथमिकता देगी और तब देश की आवश्यकता के अनुरूप ऐसी प्रौद्योगिकी को अनुकूलित करेगी। जिन भारतीय कम्पनियो को विदेशी प्रौद्योगिकी का आयात करने की अनुमति दी जाती है उनके लिए यह आवश्यक होगा कि उपयुक्त मामलों मे वे पर्याप्त अनुसंधान एव विकास सुविधाएँ स्थापित करे ताकि आयातित प्रौद्योगिकी को ठीक प्रकार से अनुकूलित किया जा सके तथा उसे आत्मसात् किया जा सके। सरकार विदेशी विनियोजन बोर्ड के सचिवालय मे विदेशी सहयोग की एक राष्ट्रीय रजिस्ट्री की भी स्थापना करेगी ताकि इन प्रयत्नो को जारी रखा जा सके।

विदेशी विनियोजन

24. सरकार भारतीय औद्योगिक विकास मे विदेशी निवेश और विदेशी कम्पनियो की सहभागिता सम्बन्धी नीति को भी स्पष्ट करना चाहेगी। जहाँ तक विद्यमान विदेशी कम्पनियों का सम्बन्ध है विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम के प्रावधानों को

सख्ती से लागू किया जाएगा। इस अधिनियम के अधीन विदेशी इक्विटी के कम करने की प्रक्रिया पूरी कर लिए जाने के बाद 40% से अधिक प्रत्यक्ष अन्यत्रवासी निवेश न रखने वाली कम्पनियों को विशेष रूप से अधिसूचित मामलों को छोड़कर भारतीय कम्पनियों के समान समझा जाएगा और उनका भावी विस्तार उन्हीं सिद्धान्तों से विनियमित होगा जो भारतीय कम्पनियों पर लागू है।

25 भारत के औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक विदेशी निवेश और प्रौद्योगिकी का अधिग्रहण करने की केवल उन्हीं शर्तों पर अनुमति दी जाएगी जो भारत सरकार द्वारा राष्ट्रहित में निश्चित की गई है। जिन क्षेत्रों में विदेशी प्रौद्योगिकीय जानकारी की आवश्यकता नहीं है विद्यमान सहयोग करारों का पुनर्नवीकरण नहीं किया जाएगा और ऐसे क्षेत्रों में कार्य कर रही विदेशी कम्पनियों को विदेशी मुद्रा विनिमय अधिनियम के ढांचे के अन्तर्गत राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुरूप अपने रूप और कार्यकलाप में संशोधन करना होगा। उद्यमियों का मार्गदर्शन करने के लिए सरकार उन उद्योगों की एक सूची जारी करेगी जिनमें देशी प्रौद्योगिकी पूर्ण रूप से विकसित हो जाने के कारण विदेशी सहयोग वित्तीय अथवा तकनीकी सहयोग आवश्यक नहीं है।

26 सभी स्वीकृत विदेशी निवेशों के लिए लाभों, रायल्टियों, लाभांशों तथा पूंजी के स्वदेश प्रत्यावर्तन/प्रेषण की पूर्ण स्वतन्त्रता सभी पर लागू नियमों और विनियमों के अनुसार होगी। नियमानुसार, स्वामित्व में बहुलभाग और प्रभावी नियन्त्रण भारतीय हाथ में होना चाहिए हालांकि उच्च निर्यातपरक और/अथवा जटिल प्रौद्योगिकी वाले क्षेत्रों में सरकार अन्यथा भी कर सकती है। शत-प्रतिशत निर्यात वाले मामलों में सरकार पूर्ण विदेशी स्वामित्व वाली कम्पनी पर भी विचार कर सकती है।

विदेशों में संयुक्त उपक्रम

27 भारतीय उद्यमियों द्वारा अनेक विकासमान देशों में स्थानीय सहयोगियों की सहायता से कई संयुक्त उपक्रम स्थापित किए गए हैं। देश के औद्योगिक विकास की विद्यमान स्थिति में, भारत से पर्याप्त पूंजी निर्यात न तो सम्भव होगा और न उचित ही। अतः भारतीय उद्यमकर्त्ताओं का विदेशों में संयुक्त उपक्रमों में योगदान मुख्य रूप से संयंत्र और उपकरणों ढांचों तथा तकनीकी जानकारी एवं प्रबन्ध विशेषज्ञता के रूप में किया जा सकेगा। जिन मामलों में इसके अलावा कुछ नकद विनियोजन आवश्यक समझा जाएगा, सरकार इस उद्देश्य के लिए ऐसे विनियोजनों पर निर्धारित न्यूनतम सीमा तक गुणावगुण के आधार पर विचार करने को तैयार होगी।

आयात उदारीकरण

28 देश की औद्योगिक और आर्थिक नीति का सर्वोच्च उद्देश्य आत्मनिर्भरता की प्राप्ति बना रहना चाहिए। हाल में अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में घटी घटनाओं से यह प्रकट हुआ है कि विदेशी झटकों और परिवर्तनशील अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के समायोजन का मुख्य बोझ देश को स्वयं बर्दाश्त करना पड़ता है। अतः हमारी

ग्रौद्योगिक नीति एव ग्रौद्योगिक ग्राधार तैयार करने के उद्देश्य के ग्रनुरूप पर्याप्त विविधता वाली तथा ग्रधिक सुदृढ होनी चाहिए, ताकि वह ग्रन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ग्रौर सहायता सम्बन्धी कूटनीति मे ग्रडिग बनी रह सके। एक सुदृढ ग्रौर विविधीकृत ग्रौद्योगिक वस्तुग्रो के ग्रयातकर्त्ता/निर्यातकर्त्ता दोनो ही रूपो मे ग्रन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे भाग नही लेना चाहिए ग्रथवा लेने की ग्रावश्यकता नही है। यह हमे करते रहना होगा। वास्तव मे हमारी विदेशी मुद्रा की स्थिति मे जो ग्रनुकूल परिवर्तन हुए हैं तथा ग्रौद्योगिक क्षेत्र मे जो प्रगति हमने की है उससे हमे प्रशुल्को के माध्यम से प्राप्त सरक्षण को बनाए रखते हुए ग्रब ग्रायात के कोटो से ग्रौर मात्रा सम्बन्धी प्रतिबन्धों से चयनात्मक ग्राधार पर युक्त होने मे समर्थ होना चाहिए। किन्तु मात्रा सम्बन्धी ग्रायात नियन्त्रण मे ढील हमारी समग्र योजना प्राथमिकताग्रों के ग्रनुरूप होनी चाहिए। ऐसी छूट उन क्षेत्रो मे होगी जहाँ विद्यमान मात्रा सम्बन्धी प्रतिबन्ध उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों की भावी विकास मे सहायता करने की बजाय हानि कर रहे हैं। उदाहरणस्वरूप महत्त्वपूर्ण परियोजनाग्रो के कार्यान्वियन मे ग्रनावश्यक विलम्ब करके ग्रथवा जहाँ देशी उद्योग इस प्रकार के प्रतिबन्धो का लाभ लागत ग्रौर मूल्य मे ग्रनुचित वृद्धि करके उठा रहे है। भारतीय उद्योग को नि सन्देह ग्रपनी प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति ग्रौर प्रौद्योगिकी मे सुधार करने के लिए सभी सहायता प्रदान की जाएगी। ग्राज ग्रनेक भारतीय कम्पनियां ग्रन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे प्रतिस्पर्धा करने की सफल स्थिति मे है ग्रौर ग्रब उन्हे कोटा द्वारा सरक्षण प्राप्त करने की बिल्कुल ग्रावश्यकता नहीं है।

उत्पादो का निर्यात

29. उत्पादो का निर्यात हमारे निर्यात व्यापार का एक प्रमुख ग्रौर विकासशील तत्त्व है। सरकार निर्यातपरक उत्पादो की क्षमता ऐसे क्षेत्रो मे स्थापित करने के प्रस्तावों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगी जिनमे ग्रप्रत्यक्ष कराधान के ढाँचे मे राहत देने के लिए सीमा शुल्क ग्रौर उत्पादन शुल्क प्रभारो ग्रौर इसी प्रकार की ग्रन्य लेवी की व्यवस्था करने के बाद ऐसा विनियोजन ग्रन्तर्राष्ट्रीय स्पर्द्धा के योग्य हो। पूर्णत. निर्यातपरक गतिविधियो के प्रकरण मे सरकार उन निवेशो पर सीमा शुल्क/उत्पादन शुल्क मे राहत देने के प्रश्न पर विचार करने के लिए भी तैयार होगी बशर्ते कि निर्यात उत्पादो के शुद्ध मूल्य मे पर्याप्त वृद्धि हो रही हो तथा साथ ही ऐसे उत्पादन से प्रत्यक्ष ग्रौर ग्रप्रत्यक्ष रूप से रोजगार के ग्रौर ग्रधिक ग्रवसर बढने की सम्भावना हो।

ग्रनिवार्य निर्यात

30. परियोजनाग्रो द्वारा ग्रपेक्षित कच्चे माल ग्रौर पूंजीगत वस्तुग्रो के ग्रायात के लिए भुगतान भावी निर्यात के माध्यम से करना सुनिश्चित करने की ग्रावश्यकता को ध्यान मे रखकर नई ग्रौद्योगिक क्षमता स्थापित करने के लिए स्वीकृति देते समय ग्रनेक मामलो मे ग्रनिवार्य निर्यात दायित्व लगाए गए हैं। मात्र परियोजना की विदेशी मुद्रा राशि को सुनिश्चित करने के लिए ग्रनिवार्य निर्यात दायित्व पर ग्रब जोर नही डाला जाएगा। साथ ही, भविष्य मे 5 वर्ष की सीमित ग्रवधि के लिए

निर्यात वचनबद्धता को औद्योगिक लाइसेंस नीति मे ढील देने के लिए पहले जैसा महत्त्व नही दिया जाएगा। फिर भी, जिन मामलो म विशेष रूप से निर्यात को ध्यान मे रखकर औद्योगिक नीति मे ढील दी गई है, उनमे अनिवार्य निर्यात दायित्व पर्याप्त लम्बी अवधि तक लगे रहेगे। विगत समय मे जहाँ निर्यात दायित्व लगाए गए थे इस बात को सुनिश्चित करने की ओर कि वचनबद्धता को वस्तुत पूरा किया जाता है अथवा नही, बराबर ध्यान नही दिया जाता था। इस बात को सुनिश्चित करने के लिए कि अनिवार्य निर्यात दायित्वो को वस्तुत पूरा किया जाता है पर्यवेक्षण और निगरानी करने वाले तन्त्र को सुदृढ बनाने का विचार है।

उद्योगो का स्थापना स्थल

31 सरकार देश मे सन्तुलित क्षेत्रीय विकास को बहुत अधिक महत्त्व देती है ताकि भिन्न-भिन्न क्षेत्रो के बीच विकास स्तर की असमानताओ को प्रगामी रूप से कम किया जा सके। सरकार ने इस तथ्य को काफी चिन्तापूवक देखा है कि हमारे देश मे स्वाधीनता प्राप्ति के बाद अधिकतर औद्योगिक विकास महानगरीय क्षेत्रो और बडे शहरो के आस-पास ही सीमित रहा है। इसके फलस्वरूप लोगो की विशेष करके बडे शहरो मे काम करने वाले वर्ग के रहन-सहन की स्थिति मे तथा स्लमो और वातावरण प्रदूषण आदि की उपस्थिति स्थिति मे तेजी से गिरावट आई है। सरकार ने निश्चय किया है कि सन् 1971 की जनगणना के अनुसार 10 लाख से अधिक की आबादी वाले बडे महानगरो की कुछ निश्चित सीमाओ और 5 लाख से अधिक की आबादी वाले शहरी क्षेत्रो म नए औद्योगिक उपक्रम स्थापित करने के लिए और अधिक लाइसस जारी नही किए जाने चाहिए। राज्य सरकारो और वित्तीय सस्थानो से भी इन क्षेत्रो म उन नए उद्योगो को जिन्हे लाइसेंस की आवश्यकता नही होनी स्थापित करने मे समर्थन न देने का अनुरोध किया जाएगा। भारत सरकार घनी आबादी वाले महानगरो मे स्वीकृत पिछडे क्षेत्रो मे अपना उद्योग स्थानान्तरित करने के इच्छुक विद्यमान बडे उद्योगो को सहायता देने पर भी विचार करेगी।

मूल्य निर्धारण नीति

32 एक सुदृढ मूल्य नीति का उद्देश्य मूल्यो म उचित अशो तक स्थिरता रखना और कृषि तथा औद्योगिक उत्पादो के बीच उचित समता बनाए रखना होता है। औद्योगिक उत्पादो के मूल्यो का विनियमन इस प्रकार करने की प्रवृत्ति रही है कि विकास की जरूरत वाले उत्पादो के मूल्य इस ढग से निर्धारित किए जाते रहे हैं कि सम्पन्न वर्ग की आवश्यकता पूरी करने वाली वस्तुओ के निर्माण की अपेक्षा जरूरत वाली वस्तुओ का उत्पादन कम आकर्षक हो गया। यह सुनिश्चय करना सरकार की नीति होगी कि जिन प्रकरणो म मूल्य नियन्त्रण होगा नियन्त्रित मूल्य म निवेशकर्ता को पर्याप्त लाभ प्राप्त हो सके। यह भी प्रावधान है कि जो उद्योग अपनी क्षमता का काफी अधिक उपयोग कर रहे हैं तथा प्रौद्योगिकीय दृष्टि से प्राप्तव्य प्रतिमानो के अनुसार है, उन्हे पर्याप्त लाभ कमाने की अनुमति होगी, ताकि वे अशधारियो को समुचित लाभांश दे सकें और आधुनिकरण और वृद्धि के लिए पुनर्नियोजन हेतु राशि

अर्जित कर सकें। उसके साथ ही सरकार उन उद्योगों को काफी लाभ कमाने की अनुमति नही देगी जो अपनी क्षमता से कम उत्पादन कर रहे हैं अथवा जो एकक एकाधिकारी परिवेश में काम कर रहे हैं।

कर्मचारियो की सहभागिता

33 किसी देश का अत्यन्त महत्वपूर्ण एकमात्र स्रोत उसकी जनता की कुशलता और परिश्रम है। हमारे भारतवर्ष मे परिश्रम का सम्भरण पर्याप्त है जो शीघ्र ही नवीन प्रवीणता प्राप्त करने मे सक्षम है तथा तकनीकी और प्रबन्धकीय कार्मिको का भण्डार है। इन स्रोतो का ऐसे परिवेश मे प्रभावी रूप से उपयोग किया जा सकता है जिसमे कारीगरो तथा प्रबन्धको मे उपक्रम के काम मे अपनेपन की भावना हो। व्यापार पर परिवारो का नियन्त्रण विशेष रूप से बडे पैमाने के उद्योगो मे एक कालदोष है, सरकार की यह नीति रहेगी कि वह प्रबन्ध मे व्यावसायिकता पर जोर देगी। साथ ही सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्रो के कारीगर अपने एकक को कुशलतापूर्वक चलाने मे पूर्ण दम लगा दें। इस भावना का उनमे निर्माण करने के लिए साधन और उपाय ढूंढने होगे। सरकार औद्योगिक एककों की अंशपूंजी (इक्विटी) मे सहभागिता और कर्मशाला स्तर से बोर्ड स्तर तक कारीगरो का निर्णय करने मे सहबद्ध होना उद्योग मे कारीगरो की सार्थक सहभागिता के लिए एक आवश्यक परिवेश का निर्माण कर सकेगा।

उद्योगो मे संकट

34 हाल के वर्षों मे उद्योगों मे औद्योगिक क्षेत्र मे बडे और छोटे दोनो प्रकार के एकको मे संकटग्रस्तता की घटनाओं की बढती हुई प्रवृत्ति नजर आई है जो उद्विग्न करने वाली है। कुछ प्रकरणो मे जैसे सूती और जूट वस्त्र या चीनी उद्योग मे तो उद्योग का बहुलांश संकटग्रस्त हुआ है, परिणामत सरकार को रोजगार की स्थिति सुदृढ बनाए रखने के लिए बहुत से ऐसे एकको को अपने हाथ मे लेना पडा है। सरकार इस प्रकार के विद्यमान रोजगारो की सुरक्षा की आवश्यकता की अपेक्षा नही कर सकती है साथ ही ऐसे रोजगारो के बनाए रखने के व्यय को भी नजरअन्दाज नही किया जा सकता है। अनेक प्रकरणो मे तो जनता के रुपये की बडी राशि सरकार द्वारा अपने हाथ मे लिए गए संकटग्रस्त एकको मे लगानी पडी है फिर भी उनमे हानि होती रही ह जिसकी पूर्ति सरकारी राजकोष से करनी पडती है।

35 भविष्य मे सरकार एककों की चयनात्मक आधार पर तथा उन्हे पुन जीवित करने के लिए आवश्यक कदमो पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद ही अपने हाथ मे लेगी। एकको को पुन स्थापित करने तथा उनका पुन निर्माण करने के लिए सप्रभावी कदम शीघ्र उठाना तथा ऐसे एकको का निरन्तर आधार पर व्यावसायिक प्रबन्ध निश्चित करना भी सरकार की नीति रहेगी। यदि उद्योग की संकटग्रस्तता से बचने की लागत उस हालत मे बडी ही मुकर हो जाती है। इस हेतु सरकार ने रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के सहयोग से औद्योगिक एकको की प्रारम्भिक संकटग्रस्तता का पता लगाने के लिए प्रबन्ध किए हैं, जिससे कि प्रबन्धकीय या वित्तीय अथवा

तकनीकी कमजोरी के पता चलते ही सुधार के उपाय किए जा सकें। सरकार ऐसे ग्रम्युपायो पर भी विचार कर रही है जिसके द्वारा ऐसे प्रबन्धको या मालिको को जो किसी एकक को सकटग्रस्त बनाने के लिए जिम्मेदार हैं अन्य एकको मे ऐसी भूमिका ग्रदा करने से रोका जा सके।

प्रक्रिया का सुप्रवाही बनाना

36 सरकार के प्रयत्न रहेंगे कि वह औद्योगिक स्वीकृतियो की प्रक्रिया में ग्राने वाली असुविधाएँ जो औद्योगिक विकास की बाधाएँ हैं उन्हे हटाएगी। क्योकि इस कार्य मे देरी होने का देश को बहुत मूल्य चुकाना पडता है। हमारा देश जो स्वय अपने काय म लगने को कटिबद्ध हो रहा है देरी सहन नही कर सकता है। जल्दी का रास्ता ही हमारा नारा है, प्रशासकीय प्रबन्ध को सुधारने का प्रत्येक उपाय किया जाएगा ताकि मात्र गतिवान और सुव्यवस्थित स्वीकृति प्रक्रिया ही न हो बल्कि आशय पत्र और औद्योगिक लाइसेंसो के परिणाम उत्पादन क रूप मे सामने ग्राएँ। औद्योगिक लाइसेंसीकरण तथा ग्रायात निर्यात की प्रक्रिया ग्रौर नीति को सुप्रवाही तथा सरल बनान के लिए सरकार न एक उच्चस्तरीय समिति की स्थापना की है जो अपना प्रतिवेदन शीघ्र ही प्रस्तुत करेगी।

निष्कर्ष

37 औद्योगिक विकास एक जटिल प्रक्रिया है। इसके लिए प्रभावी पारस्परिक कायवाहियो ग्रौर समाज के सभी वर्गो के सहयोग की ग्रावश्यकता पडती है। यदि नई औद्योगिक नीति म, औद्योगिक वृद्धि की गति को बढाना, रोजगार के स्तर, उत्पादकता ग्रौर औद्योगिक कारीगरो की ग्राय मे तीव्र वृद्धि क उद्देश्यो को प्राप्त करना है ग्रौर लघु ग्रौर ग्रामोद्योगो का विस्तृत छितराव करना है तो औद्योगिक कर्मचारियों, ट्रेड यूनियनो, प्रबन्धको, उद्यमियो, वित्तीय सस्थानो ग्रौर सहायता योजनाग्रो को कार्यान्वित करने वाले विभिन्न सरकारी प्राधिकरणों का स्वेच्छापूर्ण सहयोग ग्रावश्यक है। प्रयत्न मुख्यतया प्रबन्धको ग्रौर औद्योगिक कर्मचारियो की ग्रोर से किए जाने हैं वे प्रवीणता ग्रौर कुशलता की दृष्टि स किसी से कम नहीं हैं। सरकार इन सभी वर्गों से गम्भीरतापूर्वक निवेदन करना चाहती है कि वे समर्पण की भावना से एकजुट हाकर इस राष्ट्रीय हित के काय म लग जाएँ। ग्रपनी प्रवीणता ग्रौर ग्रपने प्रयत्नों स ही हम ग्रपने देश की बहुसख्यक समस्याग्रो का समाधान कर सकते हैं।

38 1977 का वर्ष ऐतिहासिक परिवर्तन का वर्ष रहा है। राजनीतिक ग्रौर ग्रार्थिक क्षेत्र म जनता की ग्राशा ग्राकांक्षाएँ महान है। देश की औद्योगिक नीति को जो नवीन दिशा प्रदान की गई है इससे ग्राशा की जाती है कि एक ऐसे निष्पक्ष ग्रौर समान समाज का निर्माण करने म मदद करेगी जिसमे औद्योगिक विकास के लाभ समस्त जनता को प्राप्त हो सकें।

नई आर्थिक नीति किसके हित में?[1]

जनता पार्टी की आर्थिक नीति क्या है, इसकी दशा क्या है और वह किन वर्गों पर आधारित है, किन नए वर्गों को सगठित करके जनता पार्टी अपना राजनीतिक आधार बनाना चाहती है। ये सब महत्वपूर्ण सवाल है, लेकिन इनका निश्चयात्मक उत्तर देना कठिन है, क्योंकि जनता पार्टी की स्वय की रूपरेखा अभी बहुत स्पष्ट नही है। यह कहना अन्याय नहीं होगा कि उसका जन्म नकारात्मक उद्देश्यो को लेकर हुआ। जन्म समय से उसका उद्देश्य था कि अधिनायकवादी रुझान वाले शासन और राजनीति को समाप्त करना। अधिनायकत्व विरोध को एक सकारात्मक और व्यापक आर्थिक दर्शन का रूप जनता पार्टी अभी नही दे पायी है।

आपात्काल की विकृतियो के कारण जो समस्याएँ पैदा हुई उन्होंने सभी वर्गों को प्रभावित किया था। लगभग सभी वर्ग कांग्रेस से रुष्ट हो गए थे। इस पृष्ठभूमि मे जनता पार्टी का जन्म हुआ, उसकी सरकार भी बन गई, लेकिन आर्थिक नीति निरूपित होने मे पूरे 8 महीने लग गए। नवम्बर मे या उसके बाद जो आर्थिक नीति सम्बन्धी बयान प्रकाश मे आए हैं वे परस्पर विरोधी विचारधाराओ के सामजस्य के रूप मे या समझौतावादी वक्तव्य के रूप मे देखे जा सकते है।

आर्थिक नीति के दो पहलू होते हैं। एक तो ऐसे कार्यक्रम होते है जिन्हें तात्कालिक रूप से लागू करना आवश्यक होता है क्योंकि कुछ समस्याएँ तात्कालिक होती हैं। उदाहरण के लिए महँगाई कैसे कम करें, उत्पादन किस प्रकार बढ़ाया जाए कि देश आत्मनिर्भर बने और जरूरत की चीजे बड़ी मात्रा मे उपलब्ध हो और अर्जित आय का वितरण किस तरह हो। 30 वर्ष के अनुभव से यह स्पष्ट हो गया है कि कुछ चीजें हर पार्टी करना चाहेगी, चाहे वह वामपथी हो, दक्षिणपथी हो या मध्यमार्गी हो, तात्कालिक समस्याओ से निपटने के लिए कुछ काम उसे करने ही होगे और वे लगभग एक जैसे होगे। उन्हे हम राष्ट्रीय नीति या नीतियाँ कह सकते हैं जिन्हे सारे राष्ट्र का समर्थन प्राप्त होना चाहिए।

कुछ समस्याएँ दीर्घकालिक होती हैं, जैसे, विकास की दिशा क्या हो, समाज का ढाँचा पूंजीवाद की दिशा मे होगा या समाजवादी। हमारा समाज मुख्यत. औद्योगिक समाज होगा या खेती प्रधान ही बना रहेगा। हम अपनी अर्थरचना को नगरोन्मुख बनाना चाहते हैं या ग्रामोन्मुख ही रखना चाहते हैं, बड़े और छोटे उद्योगो मे कैसे सतुलन होगा, खेती किस तरह की होगी, फार्मों का आकार क्या होगा, और

1 डॉ. पूरणचन्द्र जोशी, आर्थिक विकास सस्थान, दिल्ली (दिनमान, जनवरी, 1978)।

कैसी प्रौद्योगिकी अपनाई जाएगी ? इन प्रश्नो पर प्राय मतभेद होता है। जनता पार्टी मे भी तरह-तरह के रुझान मौजूद है। एक वर्ग पुरानी कांग्रेस की नीतियो से भिन्न नही है। भिन्नता केवल नीतियों के कार्यान्वयन मे है। जो लोग जनसघ मे थे, उनकी सोची हुई आर्थिक नीति अधिक स्पष्ट नही रही है—अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि उनका समाजवादी विचारधारा से मेल नही है। जयप्रकाश नारायण से प्रेरित गांधीवादी समाजवादी लोग भी जनता पार्टी मे हैं जो पश्चिम के औद्योगिक समाज की धारणा के पोषक नही हैं और जो एक समग्र क्रान्ति के आकांक्षी और समर्थक है। लेकिन समग्र क्रान्ति के सिद्धान्त को भी ठोस आर्थिक दर्शन की दिशा अभी जयप्रकाश जी और उनके समर्थक नही दे पाए है। इनके अलावा जनता पार्टी मे एक वर्ग समाजवादियो का भी है जो समाजवाद के सिद्धान्तो को भारतीय परिस्थितियो मे लागू करने के इच्छुक तो हैं, लेकिन उनके प्रयासो ने भी ठोस रूप नही लिया है। इन सब विचारधाराओ मे जनता पार्टी के भीतर समन्वय की कोशिश तो दिखाई पड रही है, लेकिन अभी एकरसता पैदा नही हुई है। इन अन्तर्विरोधो का समाधान कैसे होना है, यह भविष्य ही बताएगा।

आर्थिक नीति को ऐतिहासिक सदर्भ मे देखने की भी आवश्यकता है। इसके लिए जनता पार्टी किन राजनीतिक, सामाजिक सदर्भो मे पैदा हुई है, इसका विश्लेषण भी जरूरी है। पिछले आम चुनाव के बाद एक नए युग का, यानी जनता युग का उदय हुआ है। मैं इस युग को और जनता पार्टी को पूर्ण रूप से एक नही मानता। वह एक भी है और अलग-अलग भी है और इन दोनो मे विरोध भी है। जनता युग के नए उभार के साथ जो आकांक्षाएँ, प्रेरणाएँ और सम्भावना जुडी हुई है उनमे और जनता पार्टी के ढाँचे मे एक जबर्दस्त अन्तर्विरोध भी है। इसे समझने के लिए थोडा पीछे जाना होगा और अर्थशास्त्र की कुछ धारणाओ की कसौटी पर विकासशील देशो की सरकारो के चरित्र का अध्ययन करना होगा। दूसरे विश्वयुद्ध मे उपनिवेशवाद के अन्त के साथ तीसरी दुनिया के देशो मे जो शासनतत्र सत्ता मे आए उनमे विविधता रही है। चीन, वियतनाम और क्यूबा जैसे देशो मे पूर्णरूपेण क्रान्तिकारी सरकारें स्थापित हुई। पाकिस्तान, इडोनेशिया, मलयेशिया जैसे देशो मे दक्षिणपथी सरकारें आई। भारत मे जो सरकार बनी उसे दरम्यानी शासन व्यवस्था (इटरमीडिएट रेजीम) कहा जा सकता है। भारत मे जो सरकार बनी उसकी शक्ति का स्रोत एक ही वर्ग नही था—न वह शुद्ध उच्चवर्ग से शक्ति प्राप्त करती थी और न अकेले निम्नवर्ग से। कहा जा सकता है कि वह मध्यवर्ग की और दरम्यानी प्रवृत्तियो की सरकार थी। अत दरम्यानी कांग्रेस ने चुने हुए क्षेत्रो म राष्ट्रीयकरण किया और निजी क्षेत्रो को भी बढने का मौका दिया। उसने मिश्रित अर्थ-व्यवस्था, ससदीय लोकतन्त्र, मुक्त समाज, कल्याणकारी राज्य पर आस्था व्यक्त की और बीच का रास्ता अपनाया। उसने कहा कि पुराने तबको, बडे व्यापारियो और जमीदारो को खत्म नहीं करेंगे और उनकी पूरी सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण नही होगा। अत मध्यवर्गी भूमि सुधार कार्यक्रम अपनाया गया। अन्य क्षेत्रो मे भी एक सतुलन बनाने की कोशिश की गई। श्री नेहरू और श्रीमती गांधी की सरकारें ऐसी ही थी।

उनका सकट यह था कि ये न तो ऊपरी वर्गों को पूरी तरह सन्तुष्ट कर पाई और न नीचे वाले वर्गो को ही। सम्पन्न वर्ग नाराज था कि उसके स्वार्थों पर चोट होती है, लेकिन नीचे वाले वर्ग भी परेशान थे कि जितना सुधार वे करना चाहते थे, वह भी नही हो पाया। उदाहरणत. भूमि सुधारो से बहुत कम जमीन का बटवारा हुआ। अर्थशास्त्रियो का कहना है कि भूमि सुधार एक मायने मे कामयाब ही नही हुए। भूमि सुधार की घोषणा से जमीदार और किसानो के बीच परम्परागत भाईचारे पर आधारित सम्बन्ध (जमीदार गरीबो को अपनी प्रजा समझ कर थोडा बहुत सरक्षण देते थे और बदले मे काश्तकार उनकी सेवा टहल करते थे) टूट गए। इस तरह पुरानी सुरक्षा चली गई, लेकिन नई सुरक्षा की व्यवस्था नही हुई—न तो गरीब किसान और खेतिहर मजदूर को जमीन मिली और न ही नई सुरक्षा व्यवस्था बनी। पुराने कर्ज माफ करने और बधुआ मजदूरी की मुक्ति सम्बन्धी कानून और घोषणाओ मे भी कर्ज देने और लेने वालो के बीच तनाव तो पैदा हो गया लेकिन जरूरतमदो को न तो नए कर्ज मिले और न नया रोजगार ही। दूसरी तरफ जमीदार और साहूकार इसलिए नाराज हो गए कि उनकी पुरानी शोषण व्यवस्था पर चोट हो रही थी। उन्हे डर हो गया कि काँग्रेस सरकार उनकी हस्ती ही मिटा देना चाहती है। वे भयकर रूप मे काँग्रेस-विरोधी हो गए। इसी तरह जब काँग्रेस ने कहा कि वह निजी व्यापार अपने हाथ मे ले लेगी या खुद मूल्यो का निर्धारण करेगी, तो व्यापारी वर्ग भी नाराज हो गया। उसने बदला लेने के लिए बार-बार कृत्रिम अभाव की स्थिति पदा करने की कोशिश की। शहरी उपभोक्ता और गरीब किसान इसलि दुखी और नाराज थे कि वाजिब दाम पर चीजें सुलभ होने की कोई व्यवस्था नही हो पाई। सक्षेप मे काँग्रेस की नीतियो और परस्थितियो ने मिलकर ऐसे परिणा उत्पन्न किए कि ऊपर और नीचे के तबको मे काँग्रेस का समर्थन घटने लगा। आ बढने की ओर चेष्टा के ढीलेपन और राजनीतिक मनोबल के अभाव ने वह परिस्थि पैदा की जिसे अग्रेजी मे बैकलैश कहते हैं, यानी लहर का पीछे पलटना। मेरी अपन राय मे आपात्कालीन स्थिति की घोषणा इसी पृष्ठभूमि मे हुई, क्योकि देश व लोकतन्त्रीय ढाँचा सभी वर्गों के घोर असन्तोष के कारण चरमराने लगा था औ काँग्रेस का शासन डगमगा रहा था। इसी परिस्थिति मे अपने डगमगाते शासन स्थिरता के लिए श्रीमती इन्दिरा गाँधी के गुट ने आपातस्थिति की घोषणा की।

यह समझना गलत होगा कि आपात्स्थिति के कारण ही देश मे राजनीति सकट पैदा हुआ। वह तो आर्थिक नीतियो के परिणामस्वरूप पहले ही आ चुका थ आपात्स्थिति ने उसे विस्फोटक रूप दे दिया।

आपात् स्थिति के प्रति विरोध ने जिन राजनीतिक तत्त्वो और प्रवृत्तियो जन्म दिया वे एक साथ ही अग्रगामी हैं और प्रतिगामी भी। इस धारा मे वे लोग हैं जो आर्थिक विकास और पुरानी अर्थरचना मे परिवर्तन की प्रक्रिया को त करना चाहते हैं। जैसे जयप्रकाश जी का नेतृत्व स्वीकार करने वाले तत्त्व या पु समाजवादी और वामपंथी नेहरूवादी काँग्रेसी, लेकिन उसमे ऐसे व्यक्ति और तत्त्व

भी मौजूद है जो उन सुधारो को भी स्वीकार नही करते जिन्हे कांग्रेस ने अपने प्रस्तावो मे जगह दी थी, भले ही उन्हे कार्यरूपेण परिणत न किया हो। जनता पार्टी की अर्थनीति इन दो परस्पर विरोधी तत्वो और प्रवृत्तियो के तनाव से मुक्त नही है। दूसरे शब्दो मे, यो कहिए कि जिन भावनाओ, आकाँक्षाओ और प्रेरणाओ से सचालित होकर जनता ने पिछले चुनाव मे कांग्रेस को पराजित करके जनता पार्टी को सत्तारूढ किया है वे एक ऐसे राजनीतिक सन्तुलन को जन्म देने मे सफल नही हुई जिनमे उनकी पूर्ति हो सके। इस दृष्टि से जनता पार्टी को एक सक्रमणात्मक (ट्राजीशनल) सन्तुलन मानना ही ठीक होगा—एक स्थिर और गत्यात्मक सन्तुलन नही, जो विकास और परिवर्तन को आगे बढा सकता है।

चूंकि विशाल मेहनतकश जनता की विद्रोही और समाज परिवर्तन की आकांक्षा और प्रेरणा के कारण जनता पार्टी सत्ता मे आई है, इसलिए उसे जनता का समर्थन बनाए रखने के लिए एक ऐसा अग्रगामी कार्यक्रम उपस्थित करना ही होगा जो कांग्रेस के अधकचरे कार्यक्रम से कही आगे हो। एक ओर यह तकाजा है तो दूसरी ओर भूमि सुधार विरोधी स्वतन्त्र पार्टी तथा अन्य गुटो के लोग भी जनता पार्टी मे जमा हो गए है। जनता पार्टी अग्रगामी और प्रतिगामी तत्वो तथा प्रेरणाओ को एक साथ कैसे निभा पाएगी। यह पार्टी के नेतृत्व की सबसे बडी चुनौती है। एक ही पार्टी मे भूमिहीन मजदूर, गरीब किसान, अमीर किसान और जमीदारो के प्रतिनिधि किस प्रकार एक सयुक्त कार्यक्रम स्वीकार कर पाएँगे। यह वास्तव मे बहुत बडी समस्या है। जनता पार्टी की आर्थिक नीति के वक्तव्य न इसी समस्या से जूझने की कोशिश की है।

देश की अधिकाँश जनता गांवो मे रहती है और यह जरूरी है कि जनता पार्टी गांवो की जनता का समर्थन प्राप्त किए रहे। जनता पार्टी के नेताओ न इसका रास्ता यह निकाला है कि गांवो के अन्दरूनी सघर्षों और अन्तर्विरोधो को, जिनसे टकराव और विघटन पैदा होता है, अभी न छुआ जाए, बल्कि ऐसे प्रश्नो को उठाया जाए कि जिन पर गांवो की अधिकाँश जनता एकमत हो सके। इसलिए जनता पार्टी ने शहरो और गांवो के अन्तर्विरोध को प्रमुखता दी है और ग्रामीण जनता के असन्तोष को स्थानीय शासको के विरुद्ध मोडा है। इसमे सन्देह नही कि विदेशी शासको और कांग्रेस की नीतियो के कारण भारत मे शहर और गांवो के बीच की खाई अधिकाधिक चौडी होती रही है। गांवो के गरीब और अमीर मे जो अन्तर है उसके मुकाबले गांवो और शहरों के अमीरो के बीच बहुत अधिक अन्तर है। इसलिए देश के अनेक भागो मे गांवो की जनता के असन्तोष को किसी हद तक शहरो के विरोध मे मोडा जा सकता है। गांवो के धनी वर्ग स्थानीय जनता के असन्तोष को यह कहकर दूसरी दिशा दे सकती है कि देश की खुशहाली का अधिकतर हिस्सा शहरो के निवासियो और विशेषकर शहर के धनिकों की सुख सुविधा और भोगविलास मे लगा दिया जाता है। गांवो की न सिर्फ उपेक्षा की जाती है बल्कि जी-तोड मेहनत करके गांव वाले अपनी आमदनी थोडी बहुत जो बढाने की कोशिश

करते हैं उसे भी शहर के लोग देश के विकास के नाम पर करो आदि के द्वारा हड़प लेना चाहते हैं। वह ग्रामीण जनता से यह भी कह सकते हैं कि शहर वाले हम गांव वालो को आपस मे भी लडाना चाहते हैं, जिससे कि हम मे एकता न रहे और हमे लड़ाकर सदियो से हमारा शोषण किया जा सकता है। गांवो मे पीने के लिए कीटाणुरहित स्वच्छ पानी की भी कमी है लेकिन ऐशोआराम के सभी साधन शहरो मे उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए बिजली, साफ पानी, मोटर कार, हवाई जहाज, होटल, नए मकान, टेलीफोन, रेफ्रीजरेटर आदि सभी चीजें तो वहाँ हैं। धनी किसान यह भी कहते हैं कि शहरो के मामूली प्रोफेसर और वकील को थोडा सा काम करके जो तनख्वाह या उजरत मिलती है उसका एक चौथाई हिस्सा भी किसान और उसके बेटो को दिन रात, धूप, बरसात, जाड़े मे जी-तोड मेहनत करने पर भी नसीब नही होता। *संक्षेप मे ग्राम और नगर का अन्तर्विरोध इतना बुनियादी और* ज्वलन्त है कि इसे उभार कर जनता पार्टी चाहे तो कुछ समय तक गांवो के अन्दरूनी अन्तर्विरोधो को दबाने और भूमि सुधार जैसे कार्यक्रमो को टालने मे कई जगह अवश्य सफल हो सकती है।

इस सन्दर्भ मे जनता पार्टी के अन्दर जो अग्रगामी तत्त्व हैं उन्हे 'ग्राम नगर अन्तर्विरोध' के प्रश्न को गरीब ग्रामीणो के साँस्थानिक परिवर्तन से जोड़ने मे राजनीतिक दक्षता और सगठन शक्ति का परिचय देना पडेगा।

ग्राम नगर अन्तर्विरोध की विचारधारा और राजनीति के दोनो ही पहलू हैं—अग्रगामी भी और प्रतिगामी भी। अगर गाँवो के विकास को प्राथमिकता मिले तो यह देश के हित मे होगा, लेकिन देखना यह है कि गाँवो के विकास के नाम पर गाँवो के भीतर सुख सुविधा का प्रसार सभी वर्गों के लिए होता है या केवल ऊपरी या मध्य वर्ग के लिए। यदि 'ग्राम को प्राथमिकता दो' का नारा गाँवो की मेहनतकश जनता की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति नही कर सकता तो गाँवो के केवल मुट्ठी भर लोगो का ही फायदा होगा, इसलिए ग्राम और नगर के अन्तर्विरोध का नारा इन्दिरा गाँधी के 'गरीबी हटाओ' नारे के मुकाबले अधिक चतुराई से भरा हुआ नारा है क्योकि यह भी अमीर-गरीब के सवाल का तीखापन कुन्द कर देता।

'ग्रामो को प्राथमिकता दो' के साथ 'खेती का प्राथमिकता दो' का भी नारा जुडा हुआ है। इस नारे मे भी बडी चतुराई है। यह नारा विकास के प्रश्न को वर्गहीन या वर्गनिरपेक्ष रूप मे प्रस्तुत करता है। प्राथमिकता छोटे किसानो को दो, या बडे किसानो को, काश्तकार को दो या भूमिधर को, भूमिहीन को दो या भूमिहीनो के मालिको को, ये सभी सवाल 'खेती को प्राथमिकता दो' के कुहासे मे ढक जाते हैं। खेती के विकास के लिए किस तकनीक का इस्तेमाल हो? वह ट्रेक्टर और ट्यूबवेल का ही रूप ले, जिसे बडे भूमिधर और किसान ही उपयोग मे ला सकते हैं, या ऐसी सिंचाई व्यवस्था हो तथा ऐसे औजारो का निर्माण हो जिनका इस्तेमाल गरीब किसान भी कर सकें, ये प्रश्न वर्गनिरपेक्ष योजना से नही सुलझते। इन्हें तो साफ तौर पर और स्पष्ट रूप से शोषित वर्गों के हित मे उठना ही पड़ेगा।

जैसा कि जनता पार्टी कहती है, यह सही है कि सत्ता का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए, लेकिन विकेन्द्रीकरण वर्गनिरपेक्ष रूप ले सकता है जिससे वर्तमान निहित स्वार्थो का ही लाभ हो या ऐसा रूप ले सकता है जिससे मेहनतकशो का फायदा हो। विकेन्द्रीकरण को आर्थिक परिवर्तन के साथ जोडा न गया हो तो विकेन्द्रीकरण निहित स्वार्थों का ही साधन बनेगा।

यह जनता पार्टी की आर्थिक नीति की खूबी है कि उसने उसे ऐसा वर्ग-निरपेक्ष रूप देने की कोशिश की है जिससे वह सभी वर्गो मे यह आशा (या भ्रान्ति) पैदा कर सके कि वह उन्ही के विशेष हित मे है। यह जनता पार्टी के अग्रगामी तत्वो का कर्त्तव्य होगा कि वे वर्गनिरपेक्षता के इस कुहासे को भेदकर आर्थिक नीतियो को कमजोर वर्गो के हित से जोडे।

जनता पार्टी ने एक दूसरा नया मोड जो अर्थनीति को दिया है वह है खेती के मुकाबले औद्योगीकरण मे कमी। बडे उद्योगो के मुकाबले छोटे और मध्यम दर्जे के उद्योगो के विकास की वकालत की गई है। यह नारा भी एक साथ अग्रगामी भी हो सकता है और प्रतिगामी भी। एशियाई देशो मे जहाँ विपुल जन-शक्ति का अभी उपयोग नही हो रहा है वहाँ अन्धाधुन्ध मशीन का उपयोग जनता की गरीबी ही बढाएगा। इसलिए जरूरी है कि भारत की परिस्थितियो के अनुकूल जन-शक्ति के इस्तेमाल की दृष्टि से औद्योगीकरण की एक नई दिशा दी जाए। जनता पार्टी के कुछ तत्वो का यह रुझान अवश्य विचारणीय है, लेकिन इसका यह मतलब नही कि भारत को खेतिहर देश ही बने रहना चाहिए। इस रुझान को यदि अपनाया गया तो भारत के लाखो शिक्षित स्नातको को सरकारी नौकरी के अलावा न तो कोई और रोजगार मिलेगा और न तेजी से बढती आबादी से उत्पन्न विकट समस्याओं का कारण खेती का ही विकास हो पाएगा। आधुनिक अर्थ-विज्ञान बताता है कि खेती का ही और आधुनिकीकरण दोनो का चोली दामन का सम्बन्ध है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री आस्कर लांगे ने यहाँ तक कहा है कि "मेरी परिभाषा के अनुसार औद्योगिक रूप से,विकसित देश वही है जहाँ खेती का पूर्ण रूप से विकास हुआ हो।"

शिक्षा की मिसाल लीजिए गाँवो मे शिक्षा की कमी है। इसे दूर करने के लिए एक व्यापक अशिक्षा और निरक्षरता निवारण आन्दोलन शुरू किया जा सकता है, जिससे अधिकांश जनता अशिक्षा के अन्धकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर बढे। लेकिन अगर शिक्षा प्रसार के नाम पर उच्च शिक्षा के ही सस्थान गाँवो मे भी खोले गए तो वे अशिक्षा के सागर मे कुछ चमकते हुए टापुओ की तरह नजर आएँगे।

जनता पार्टी की अर्थनीति मे औद्योगीकरण की दिशा का स्पष्ट सकेत नहीं है। जिस व्यक्ति का जैसा रुझान हो वह इस उद्योग नीति की उसी रूप मे व्याख्या कर सकता है। अग्रगामी विचारो के लोग यदि उसे औद्योगीकरण की नई दिशा समझेंगे तो प्रतिगामी विचारो के लोग औद्योगीकरण की रफ्तार को अवरुद्ध करने का प्रयास करते है। "जाकी रही, भावना जैसी प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।"

उद्योग नीति वक्तव्य एक ओर जब यह कहता है कि आर्थिक विकास की दर 7 प्रतिशत सालाना होगी तब औद्योगीकरण के बारे मे आशा पैदा होती है लेकिन दूसरी ओर देश के अन्दर वित्तीय साधनों के संग्रह को उचित महत्व न देकर यह वक्तव्य इस आशा को ठोस आधार से वंचित कर देता है।

जनता पार्टी ने छोटे उद्योगों की बात बड़े जोर से उठाई है। लेकिन उन कारणों पर तनिक ध्यान नहीं दिया है जिनकी वजह से उनके विकास के लिए कांग्रेस द्वारा किए गए प्रयत्न नाकामयाब साबित हुए थे। उसने यह भी नहीं माना है कि बहुत से उद्यम जो छोटे उद्योग के रूप मे पंजीकृत हुए हैं बड़े उद्योग समूहों की ही शाखाएँ मात्र हैं। जैसे जूतों के अनेक कारखाने, साथ ही कई बार रोजगार के अवसर बढ़ाने के नाम पर गैर आर्थिक उद्योगों की स्थापना होती है। जैसे चीन मे घर-घर मे लोहा गलाने की भट्टियाँ बनाई गईं, जिन्हें बाद मे तोड़ देना पड़ा।

किसी भी आर्थिक व्यवस्था के संचालन के लिए ऐसे तत्त्वों की आवश्यकता है जो नैतिक रूप से स्वस्थ और 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' मन्त्र से वास्तव मे जुड़े हों। कांग्रेस शासन के विरुद्ध असन्तोष के मुख्य कारणों मे अर्थ-सत्ता के केन्द्रीकरण से पैदा हुआ भ्रष्टाचार और नैतिक पतन था। नौकरशाही और राजनीतिक पार्टियों के भ्रष्ट तत्त्वों के अनाचार के विरुद्ध जनता के सुलगते असन्तोष को जयप्रकाश और नेताओं के सिंहनाद ने एक नई दिशा दी। भ्रष्टाचार निवारण की इस व्यापक भावना का प्रकाशन भी जनता युग में हुआ है और इसके कारण जनता पार्टी को व्यापक जन-समर्थन भी मिला है। किन नए उपायों को अपनाकर जनता पार्टी एक नैतिक पुनर्जागरण की ओर बढ़ेगी जो आर्थिक विकास की एक अनिवार्य शर्त है, यह अभी स्पष्ट नहीं है। इस समस्या का यह पहलू सम्पत्ति और असमर्थता के विकेन्द्रीकरण से जुड़ा है तो दूसरा पहलू केवल भौतिक प्रोत्साहनों से हट कर नैतिक प्रोत्साहनों (इन सेंटिव्ज) से जुड़ा है, यह प्रश्न पाश्चात्य समाज के 'कनज्यूमरिज्म' यानी उपयोग की संस्कृति के स्थान पर नई सांस्कृतिक मान्याओं के सृजन से भी जुड़ा है। जनता पार्टी के कुछ नेता तो इस प्रश्न को उठाते हैं, लेकिन क्या जनता पार्टी इसमे जागरूक है ?

पिछड़े हुए देशों में आर्थिक विकास के प्रश्न राजनीतिक ताकतों के लिए जबर्दस्त चुनौती प्रस्तुत करते हैं। लोकतन्त्रीय ढांचे के अन्दर यह चुनौती और भी गम्भीर हो जाती है। आर्थिक विकास सभी वर्गों पर बोझ डालता है। लेकिन लोकतन्त्रीय व्यवस्था सभी वर्गों को खुश करने के सिद्धान्त पर चलती है। इस दृष्टि से राजनीतिक दल के अल्पकालिक हितों और देश के विकास के दीर्घकालिक हितों मे टकराव पैदा हो जाता है। कांग्रेस पार्टी इसी टकराव के कारण आर्थिक विकास को गति देने मे असफल रही या आंशिक रूप से ही सफल रही। क्या जनता पार्टी जो लोकतन्त्रीय उफान की ही देन है, आर्थिक विकास की कठिन चुनौतियों से जूझ जाएगी ?

Appendix—3

जनगणना 1971 तथ्य एक दृष्टि में[1]

भारत की जनसख्या	कुल	54 80 करोड़
	पुरुष	28 40 करोड़
	स्त्रियाँ	26 40 करोड़
दशवार्षिक वृद्धि (1961-71)	24 80 %	
जन-घनत्व[2]	178 प्रति वर्ग कि मी	
स्त्री-पुरुष अनुपात	930 स्त्रियाँ प्रति 1000 पुरुष	
साक्षरता दर (0-4 आयु वर्ग मिलाकर)	व्यक्ति	29 45 %
	पुरुष	39 45 %
	स्त्रियाँ	18 70 %

कुल जनसख्या मे शहरी जनसख्या का अनुपात 19 91 प्रतिशत

कुल जनसख्या मे कामगारो का प्रतिशत (केवल मुख्य धन्धा)

	व्यक्ति	32 92
	पुरुष	52 50
	स्त्रियाँ	11 85
कामगारों के वर्ग	कुल कामगारो का प्रतिशत	
(1) काश्तकार	कुल	43·34
	पुरुष	38 20
	स्त्रियाँ	5 14
(2) कृषि मजदूर	कुल	26 33
	पुरुष	17 57
	स्त्रियाँ	8 76

1 India 1975, pp 16-17

2 घनत्व जम्मू और कश्मीर के आँकड़े छोड़कर निकाला गया है क्योंकि युद्ध विराम रेखा के उस पार के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

(3) पशुधन, वन, मत्स्य पालन, शिकार ग्रौर बागान, फल उद्यान तथा सम्बद्ध धन्धे	कुल	2·38
	पुरुष	1 95
	स्त्रियाँ	0·43
(4) खनन ग्रौर खदान	कुल	0 51
	पुरुष	0 44
	स्त्रियाँ	0·07
(5) उत्पादन, उपयोगीकरण सेवाएँ (सर्विसिंग) ग्रौर मरम्मतें		
(क) घरेलू उद्योग	कुल	3·52
	पुरुष	2·78
	स्त्रियाँ	0 74
(ख) गैर घरेलू उद्योग	कुल	5·94
	पुरुष	5·46
	स्त्रियाँ	0·48
(6) निर्माण	कुल	1·23
	पुरुष	1 12
	स्त्रियाँ	0 11
(7) व्यापार ग्रौर वाणिज्य	कुल	5·57
	पुरुष	5 26
	स्त्रियाँ	0·31
(8) परिवहन, भण्डारण ग्रौर संचार	कुल	2·44
	पुरुष	2·36
	स्त्रियाँ	0·08
(9) ग्रन्य कामगार	कुल	8·74
	पुरुष	7·50
	स्त्रियाँ	1·24

Appendix 4

विभिन्न मदों पर प्रति व्यक्ति व्यय (1977–78)

(रुपयों में)

राज्य	सामान्य सेवाएँ	सामाजिक सेवाएँ	आर्थिक सेवाएँ	पूँजीगत लागत	योग
आन्ध्र प्रदेश	40·94	59·00	41·75	42·38	184·07
असम	36·29	39·84	32·26	53·97	162·36
बिहार	n.a.	n.a.	n.a.	n.a.	n.a.
गुजरात	48·64	64·93	38·94	37·32	189·83
हरियाणा	52·90	55·77	83·98	51·57	244·22
हिमाचल प्रदेश	63·61	91·07	77·16	56·86	288·70
जम्मू एवं कश्मीर	115·45	93·07	159·73	143·57	511·82
कर्नाटक	48·30	64·82	51·39	31·01	195·52
केरल	49·43	88·01	34·15	26·27	197·86
मध्यप्रदेश	38·69	50·10	37·12	27·30	153·21
महाराष्ट्र	82·72	67·28	55·68	29·26	234·94
नागालैण्ड	354·40	286·80	336·40	233·00	1210·60
उड़ीसा	43·04	50·98	41·76	25·39	161·17
पंजाब	47·94	77·53	67·00	26·10	218·62
राजस्थान	44·51	56·31	38·01	25·87	164·70
तमिलनाडु	n.a.	n.a.	n.a.	n.a.	n.a.
उत्तरप्रदेश	33·78	34·11	28·12	25·06	121·07
पश्चिमी बंगाल	40·64	52·87	32·33	17·94	143·78

Source : Rajasthan Budget Study, 1978-79.

Appendix 5

(क) सकल राष्ट्रीय उत्पाद तथा निबल राष्ट्रीय उत्पाद अर्थात् राष्ट्रीय आय

(Gross National Product and Net National Product i.e. National Income)

वर्ष	सकल राष्ट्रीय उत्पाद (करोड़ रुपये)		निबल राष्ट्रीय उत्पाद (करोड़ रुपये)		प्रति व्यक्ति निबल राष्ट्रीय उत्पाद (करोड़ रुपये)		निबल राष्ट्रीय उत्पाद का सूचक अंक		प्रति व्यक्ति निबल राष्ट्रीय उत्पाद का सूचक अंक	
	मौजूदा कीमतों के आधार पर	1970-71 की कीमतों के आधार पर	मौजूदा कीमतों के आधार पर	1970-71 की कीमतों के आधार पर	मौजूदा कीमतों के आधार पर	1970-71 की कीमतों के आधार पर	मौजूदा कीमतों के आधार पर	1970-71 की कीमतों के आधार पर	मौजूदा कीमतों के आधार पर	1970-71 की कीमतों के आधार पर
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
1970–71	36654	36654	34412	34412	636	636	100·0	100·0	100·0	100·0
1971–72	39194	37202	36728	34871	663	629	106·7	101·3	104·2	98·9
1972–73	43159	36788	40391	34323	714	606	117·4	99·7	112·3	95·3
1973–74	53704	38701	50498	36183	874	626	146·7	105·1	137·4	98·4
1974–75	63203	38889	59417	36455	1007	618	172·7	105·9	158·3	97·3
1975–76	64996	42200	60596	39026	1008	659	176·1	115·2	158·5	103·6
1976–77	69047	42887	64279	40164	1049	655	186·8	116·7	164·9	103·0

Source : Economic Survey, 1977-78.

(ख) वार्षिक विकास दर
(Annual Growth Rates)

वर्ष	सकल राष्ट्रीय उत्पाद (करोड़ रुपये)		निवल राष्ट्रीय उत्पाद (करोड़ रुपये)		प्रति व्यक्ति निवल राष्ट्रीय उत्पाद (करोड़ रुपये)	
	मौजूदा कीमतों के आधार पर	1970-71 की कीमतों के आधार पर	मौजूदा कीमतों के आधार पर	1970-71 की कीमतों के आधार पर	मौजूदा कीमतों के आधार पर	1970-71 की कीमतों के आधार पर
1	2	3	4	5	6	7
1971-72	6 9	1 5	6 7	1 5	4 2	1 1
1972-73	10 1	(—) 1 1	10 0	(—) 1 6	7 7	(—) 3 7
1973-74	24 4	5 2	25 0	5 4	22 4	3 3
1974-75	17 7	0 5	17 7	0 8	15 2	(—) 1 3
1975-76	2 8	8 5	2 0	8 7	0 1	6 6
1976-77*	6 2	1 6	6 1	1 4	4 1	(—) 0 6

* तुरन्त अनुमान

Source : Economic Survey, 1977-78

Appendix—7

घरेलू बचत एवं घरेलू पूँजी निर्माण
(Domestic Saving & Domestic Capital Formation)

वर्ष	बाजार मूल्य पर सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत		बाजार मूल्य पर निवल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत	
	सकल घरेलू बचत	सकल घरेलू पूँजी निर्माण	निवल घरेलू बचत	निवल घरेलू पूँजी निर्माण
1	2	3	4	5
1960 61	13 7	16 9	9 3	12 7
1961 62	13 1	15 3	8 4	10 3
1962 63	14 5	17 1	9 6	12 3
1963-64	14 4	16 6	9 8	12·1
1964 65	13 6	16 2	9 2	12 0
1965 66	15 7	18 2	11 2	13 8
1966 67	16 3	19 7	11 8	15 4
1967 68	13 9	16 5	9 6	12 3
1968 69	14 1	15 4	9 5	10 8
1969 70	16 4	17 1	11 8	12 5
1970 71*	17 0	17 9	12 1	13 1
1971 72*	17 2	18 3	12 2	13 4
1972 73*	16 9	17 5	11 8	12 5
1973 74*	17 5	18 2	12 8	13 5
1974-75*	18 1	19 0	13 4	14 4
1975-76*	19 7	19 6	14 6	14 4
1976 77**	21 1	19 2	15 9	13 9

* संशोधित

** तुरन्त अनुमान

Source Economic Survey 1977 78

सरकारी क्षेत्र में रोजगार
(Employment in the Public Sector)

	मार्च 1561	मार्च 1971	मार्च 1975	मार्च 1976	मार्च 1977 (Provisional)
1	2	3	4	5	6
क-सरकारी क्षेत्र के वर्गों के अनुसार					
1. केन्द्रीय सरकार	20·90	27·71	29·88	30·47	30·78
2. राज्य सरकार	30·14	41·52	47·48	49 39	51·00
3. अर्द्ध-सरकारी	7·73	19·29	31·92	33·92	36·55
4. स्थानीय निकाय	11·73	18·78	19·49	19·85	19·85
योग	70·50	107·31	128·63	133·63	138·19
ख-औद्योगिक वर्गीकरण के अनुसार संक्षिप्त ब्यौरा	1·80	2·76	3·40	4·01	4·74
ग-कृषि, शिकार आदि					
1. खनन और उत्खनन	1·29	1·82	6·94	7·19	7·49
2. और 3 विनिर्माण	3·69	8·06	10·19	11·13	12·22
4. बिजली, गैस, जल आदि	2·24	4·35	5·07	5·36	5·54
भवन आदि निर्माण	6·03	8·80	9·56	9·92	10·10
6. थोक तथा खुदरा व्यापार आदि	0 94	3·28	0·53	0·56	0·77
7. परिवहन, सग्रहण और सचार	17·24	22·17	23·63	24·18	24·65
8. वित्त-व्यवस्था, बीमा, जमीन-जायदाद आदि	—	—	4·92	4 90	5·30
9. सामुदायिक, सामाजिक और वैयक्तिक सेवाएँ	37·27	56·07	64·44	66·39	67·39
योग	70·50	107·31	128·68	133·63	138·19

Source : Economic Servey, 1977-78.

> Appendix—9

गैर-सरकारी क्षेत्र में रोजगार

(*Employment in the Private Sector*)

उद्योग-प्रभाग संक्षिप्त ब्योरा	मार्च 1961	मार्च 1971	मार्च 1975	मार्च 1976	मार्च 1977
1	2	3	4	5	6
(ग) कृषि, शिकार आदि	6 70	7 98	8 18	8 27	8 37
1. खनन और उत्खनन	5 50	4 04	1·23	1 32	1 30
2. और 3 विनिर्माण	20 20	39 55	41 08	41 58	41·57
3. बिजली, गैस और जल आदि	0 40	0 46	0 39	0 35	0 35
4 भवन आदि निर्माण	2 40	1 39	1 27	0 94	0 82
5 थोक तथा खुदरा व्यापार आदि	1 00	3 04	3 09	2 87	2 73
6 परिवहन, संग्रहण और संचार	0 80	0 96	0 79	0·74	0 71
7. वित्त-व्यवस्था, बीमा तथा जमीन-जायदाद आदि	—	—	1 68	1 83	1 86
8 सामुदायिक, सामाजिक और वैयक्तिक सेवाएं	2 80	10 00	10 32	10 55	10 82
योग	50 40	67 42	68 04	68 44	68 54

Source : Economic Survey, 1977-78.

Appendix—10

कुल विदेशी सहायता

(Overall External Assistance)

	रिण (Loans)	अनुदान (Grants)	जोड़	पी.एल. 480/665 आदि सहायता — रुपये में चुकाई जाने वाली	पी.एल. 480/665 आदि सहायता — परिवर्तनीय मुद्रा में चुकाई जाने वाली	कुल जोड़
1	2	3	4	5	6	7
(क) दी गई विदेशी सहायता तीसरी आयोजना के अन्त तक	3808·8	392·0	4200·8	1510·8	—	5711·6
1966–67	1034·1	79·7	1113·8	392 7	—	1506·5
1967–68	398·5	16 8	415·3	235·9	67 6	718·8
1968–69	753·1	68·4	821·5	71 6	53·7	946 8
1969–70	421·8	26·0	447 8	73·6	112·9	634·3
1970–71	705·4	56·5	761·9	—	—	761·9
1971–72	774·5	36·0	810·5	22·5	96·2	929 2
1972–73	639 6	36·6	676·2	—	—	676 2
1973–74	1129 5	41·1	1170·6	—	—	1170 6
1974–75	1481 4	189·8	1671·2	—	—	1671·2
1975–76	2192·8	440·7	2633·5	—	20 0	2653·5
1976–77	806 7	386·1	1192·8	—	93 6	1286 4
योग	14146 1	1769 7	15915·9	2307·1	444 0	18667 0
(ख) उपयोग की गई विदेशी सहायता तीसरी आयोजना के अन्त तक	2768·7	336·9	3105 6	1403·2	—	4508·8
1966–67	674·7	97·1	771·7	359·6	—	1131·4
1967–68	793·2	60 7	853·9	310·9	30·8	1195 6
1968–69	679 8	65 1	745·0	84 5	73 1	902·6
1969–70	660·7	26·1	686·8	107·5	62·0	856·3
1970–71	658 9	43·5	702·4	37·7	51·3	791·4

1	2	3	4	5	6	7
1971-72	671 7	50 5	722 2	8 8	103 1	834 1
1972-73	649 9	12·0	661 9	—	4 3	666 2
1973-74	1015 0	20 7	1035 7	—	—	1035 7
1974-75	1220 4	93 9	1314 3	—	—	1314·3
1975-76	1464 9	283 3	1748 2	—	92 3	1840 5
1976-77	1285 3	245 8	1531 1	—	67 8	1598 9
योग	12543 2	1335 7	13878 9	2312 2	484 7	16675 8

Source Economic Survey 1977-78

टिप्पणियाँ

1-विदेशी मुद्रा को रुपयों म बदलने की विनिमय दरें तीसरी आयोजना के अन्त तक अवमूल्यन पूर्व विनिमय की दर (1 डालर=4 7619 रुपये) और उसके बाद 1970-71 तक अवमूल्यन के बाद की विनिमय दर (1 डालर=7 50 रुपये के) अनुसार है। प्राप्त सहायता और उसमें से उपयोग की गई सहायता के आँकडों के सम्बन्ध म 1971-72 के लिए मई, 1971 से पूर्व की विनिमय दरें अपनाई गई हैं। 1972-73 के लिए रुपयों के आँकड केन्द्रीय दरों के आधार पर निकाले गए हैं जो दिसम्बर, 1971 में मुद्रा क पुनर्मूल्यन के बाद प्रचलित थीं। 1973-74 के लिए उपयोग की गई रिण सहायता की रकम को रुपयों में परिवर्तित करने के लिए औसत तिमाही आंकड़ो के सम्बन्ध म रिण सहायता देने वाले देश की मुद्रा और रुपये के बीच की विनिमय दर के तिमाही औसत को आधार बनाया गया है। उपयोग की गई सहायता के 1974-75 के और उसके बाद के आकड़ों को वतमान दर के आधार पर निकाला गया है जो कि रिण सहायता देने वाले देशों की मुद्रा और रुपये के बीच की मासिक औसत विनिमय दर है। *जहाँ तक दी गई सहायता का सम्बन्ध है, उसको रुपयों में आँकने के लिए 1973-74 और* उसके बाद के वर्षों के सम्बन्ध मे सहायता देने वाले देश की मुद्रा के साथ रुपयों की लागू वार्षिक विनिमय दर को आधार माना गया है।

2-रिण सम्बन्धी रकमों में, वापस किए गए, पूरे कर दिए गए और रद्द किए गए रिण की रकमें शामिल नहीं हैं। पी एल 480 के मामल में व्यक्तिगत करारों की रकमें शामिल नहीं हैं।

3-उपयोग की गई सहायता के आँकडा म सम्भरक रिण शामिल हैं जो स्वीकृत सहायता के आँकडों में पूरी तरह से नहीं दिखाए गए हैं।

4-सम्भव है, पूर्णांकन के कारण इन मदों का जोड दिए गए जोड स मेल न खाए।

Appendix—11

1977-78 में विदेशी सहायता

(करोड़ रुपये में)

क्र. सं.	स्वीकृत सहायता देश/संस्था	अप्रैल—दिसम्बर 1977 तक किए गए सहायता करार		
		परियोजना, भिन्न सहायता जिसमें रिण-राहत शामिल है	परियोजना सहायता	जोड़
1	2	3	4	5
1.	आस्ट्रिया	2 4	—	2·4
2.	कनाडा	44·2	0·7	44·9
3.	पश्चिम जर्मनी	40 2	97 7	137 9
4.	जापान	68 0	30 6	98 0
5.	नीदरलैण्ड	68·0	—	68 0
6.	स्वीडन	46.3	—	46·3
7.	ब्रिटेन	4·6	—	4·6
8.	अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक	—	214·7	214 7
9.	आई डी. ए.	—	547·4	547·4
10.	सोवियत रूस	—	250·0[1]	250·0[1]
11.	सऊदी अरबिया फंड	—	100·3	100·3
12.	ओ.पी.ई.सी. विशेष फंड	—		
13.	यूरोपीय आर्थिक समुदाय	10 7	—	10 7
	योग	284 4	991 4[2]	1275 8[2]

सहायता का स्वरूप	भुगतान[3]
जोड़ जिसमे	1585
(i) परियोजना भिन्न सहायता	710
(ii) परियोजना सहायता	875

टिप्पणी : स्वीकृत सहायता के आँकड़े भारत के रुपये तथा सहायता देने वाले देशों की अलग-अलग मुद्रा के बीच की नौ महीने की औसत विनिमय दर के आधार पर निकाले गए है। रिण-उपयोग के आँकड़े तत्सम्बन्धी तारीखों को रुपये और सहायता देने वाले देश की मुद्रा के बीच प्रचलित वास्तविक दैनिक विनिमय दरों पर आधारित है।

1 *मिलियन रूबल्स में।*

2 इसमें 250 मिलियन रूबल्स की रूसी परियोजना सहायता शामिल नहीं है।

3 1977-78 के लिए अनुमान।

विदेशी ऋण और ब्याज आदि का भुगतान

(करोड़ रुपये)

अवधि	रिण परिशोधन	ब्याज का भुगतान	कुल रिण परिशोधन
1	2	3	4
पहली आयोजना	10 5	13 3	23 8
दूसरी आयोजना	55 2	64·2	119 4
तीसरी आयोजना	305 6	237 0	542 5
1966–67	159 7	114 8	274 8
1967–68	210 7	122 3	333 0
1968–69	236 2	138 8	375 0
1969–70	268 5	144 0	412 5
1970–71	289 5	160 5	450 0
1971–72	299 3	180 0	479 3
1972–73	327 0	180 4	507 4
1973–74	399 9	195 9	595 8
1974–75	411 0	215 0	626 0
1975–76	462 7	223 6	686 3
1976–77	502 6	258 1	760 7

Appendix—13

विमुद्रीकरण और काले धन का साम्राज्य

16 जनवरी की रात को जनता सरकार की सिफारिश पर एक से दस हजार रुपये तक बड़े नोटो के विमुद्रीकरण का अध्यादेश प्रकटत चौंकाने वाला था। एक तो इसलिए कि आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र मे उसकी नीतियां क्रियान्वयन या ठोस प्रभाव के मामले मे प्रभावोत्पादक नही साबित हो रही थी किन्तु इस घोषणा मात्र से काले धन पर हलकी ही सही, लेकिन गहरी चोट पड़नी निश्चित थी। चौंकाने का दूसरा कारण सतही था कि अप्रत्याशित रूप से केवल बड़े नोटों का चलन बन्द करने का फैसला ही किया गया, 100 रुपये के नोटो का नही। विमुद्रीकरण और अवमूल्यन जैसे फैसले पहले से बताकर नही किए जाते, इसलिए 'अप्रत्याशित' होना उसका स्वाभाविक गुण होता है। 100 रुपये के नोटों का विमुद्रीकरण प्रचुर पूर्व तैयारी और व्यय (या अपव्यय) की अपेक्षा करता है, जिसका साहस इंदिरा गांधी की सरकार ने जनता और विशेषज्ञो की मांग पर भी नही किया। इसलिए जब भूतपूर्व वित्तमन्त्री चह्वाण ने घोषणा की अनुशंसा करते हुए कहा कि 100 रुपये के नोटो का भी विमुद्रीकरण होना चाहिए था, तो आश्चर्य ही हुआ।

घोषणा मे साफ कहा गया था कि यह सोचने के कारण कि बड़े नोटों के कारण 'राष्ट्रीय अर्थरचना के लिए हानिकर लेन-देन मे सहूलियत होती है' और इस मासूम वाक्य से यह ध्वनि निकल रही थी कि इस अध्यादेश का मुख्य उद्देश्य सारे काले धन को नष्ट करना हो नही हो सकता, क्योंकि बहुत-सा काला धन स्वर्ण आभूषण और अचल सम्पत्ति की शकल अख्तियार कर चुका है, लेकिन आंशिक रूप से काले धन पर और सटोरियेपन पर असर अवश्य पड़ेगा। जैसा कि बाद में कुछ दबे ढके बयानो से स्पष्ट हुआ। सरकार को आधिकारिक सूत्रो से आभास मिला था कि कुछ राजनीतिज्ञो के पास बड़े नोटो की शक्ल मे प्रचुर धनराशि जमा है जिसका उपयोग आगामी विधान सभा चुनावो मे किया जाएगा। यदि ऐसा हो तो जाहिर है कि यह धन भी उस विपुल भण्डार का एक हिस्सा ही है जो नम्बर दो या खाते के बाहर का है। यह नहीं कहा जा सकता कि अध्यादेश का मुख्य उद्देश्य काले धन के धनी राजनीतिज्ञो को आर्थिक रूप से अपंग करने का ही था, क्योंकि घोषणा के तीन चार दिन बाद यह स्पष्ट हुआ कि विमुद्रीकरण का भावों पर भी स्पष्ट असर पड़ा—सरसों, मूंगफली के तेल और अनाजो के भाव, जो अच्छी फसल की खबरो के बावजूद मजबूती पकड़े हुए थे, टूट गए। स्पष्टत काले धन के लेन-देन मे रुकावट का असर भावो मे परिलक्षित हुआ।

कुछ राजनीतिक हलकों मे खासी खामोश सनसनी फैली होगी। सबसे बड़ा प्रकट कारण यह है कि बड़े नोटो के प्रसार का सीधा सम्बन्ध पिछली सरकार के उन निर्णयों से था जिसने इन नोटो का परिचलन बढ़ाने का फैसला किया। फैसला क्यो किया गया ? या इसके बारे म अटकले कितनी सही है ? यह कहना मुश्किल है, लेकिन प्रचलन सम्बन्धी कुछ तथ्य काफी मजेदार है।

10 हजार रु के नोटो का अधिकतर लेन-देन बैंको के बीच मे होता है, ऐसा अनेक बैंक अधिकारियो का कहना है। मार्च, 1975 मे 10,000 रु के जो नोट प्रचलन मे थे उनका कुल मूल्य 22 करोड रु था। मार्च, 1976 मे उनका मोल घटकर केवल 1 26 करोड रुपया रह गया, लेकिन आश्चर्य की बात है कि आपात्काल के अन्तिम वर्ष मे वह 24 करोड रुपये तक पहुँच गया। इस पर कौन रोशनी फैक सकता है ?

आपात्काल की घोषणा से पूर्व मार्च, 1975 मे 35 करोड रु के नोट एक-एक हजार वाले थे, लेकिन उसके बाद उनकी सख्या तजी से बढ़ती चली गई। मार्च, 1976 मे उनका मोल 88 करोड रु और मार्च, 1977 मे उनका मोल 1 अरब 5 करोड रुपये हो गया। दो वर्षो मे तीन गुनी वृद्धि के कारण या रहस्य केवल रिजर्व बैंक के गवर्नर, तत्कालीन बैंकिंग विभाग के मन्त्री या तत्कालीन प्रधान मन्त्री ही बता सकते है। 5000 रु के नोटो की सख्या मे विशेष घट बढ नही हुई, मार्च, 1977 मे केवल 19 करोड रुपय के नोट प्रचलन मे थे।

जुलाई, 1977 मे 167 करोड रुपये के बड़े नोट प्रचलन मे थे। बैंको के पास 19 जनवरी तक केवल 16–17 करोड रुपये के बड़े नोट थे—जैसा कि अध्यादेश के निर्देश के अनुसार उन्होने रिजर्व बैंक को सूचित किया है जाहिर है कि कोई 150 करोड रुपये से भी कुछ ज्यादा के बड़े नोट जनता के पास थे।

स्रोत दिनमान जनवरी-फरवरी, 1978

ग्रामीण विकास में सहकारी समितियों की भूमिका[1]

—सुरजीतसिंह बरनाला, केन्द्रीय कृषि एवं सिंचाई मन्त्री

भारत जैसे देश में जहाँ आयोजना का मुख्य उद्देश्य तेजी से आर्थिक विकास हो तो उसमे सम्पत्ति और आय के बीच समानता मे कमी, अवसरो की समानता, गरीबी उन्मूलन तथा देश मे अधिकतम लोगो की जीवन स्तर को बेहतर बनाने जैसी कुछ बातो पर अधिक से अधिक ध्यान देना होगा। सतुलित आर्थिक विकास का उद्देश्य समतावादी समाज की स्थापना होना चाहिए जिसका विकास सामाजिक न्याय पर आधारित हो।

इन उद्देश्यो को पूरा करने के लिए सहकारी ढग के सगठन तुरन्त सहायता पहुँचा सकते हैं। लगभग न्यायसगत आर्थिक गतिविधियाँ एक सहकारी सस्थान के ढग पर सगठित की जा सकती हैं। विकेन्द्रीकृत आर्थिक इकाइयो के संगठन के लिए भी सहकारी ढाँचा सुविधाजनक है और साथ-साथ प्रत्येक सदस्य भी उचित स्तर पर उत्पादन करने के लिए अपने-अपने साधनो को सहकारी समितियों के माध्यम से एक स्थान पर इकट्ठा कर सकता है। ग्रामीण क्षेत्रो मे जहाँ उत्पादन इकाइयाँ स्वाभाविक रूप से छोटी, अधिक और बिखरी हुई हैं, वहाँ तब तक और सार्थक रूप से कोई आर्थिक कार्यक्रम नही चलाया जा सकता जब तक कि सिद्धान्त और आपसी मदद की भावना के आधार पर व्यक्तिगत प्रयास न किए जाएँ। इस प्रकार सहकारी प्रणाली मे सस्थागत ढाँचे की व्यवस्था है तथा इससे समाज के कमजोर वर्गों और छोटे उत्पादको को विकास की मुख्य धारा मे शामिल करने मे सहायता मिलती है ताकि वे आर्थिक विकास के लाभ के भागीदार बन सके।

इसलिए सहकारी ढग के सगठन मे आम आदमी के लिए स्वतन्त्रता और अवसर का लाभ तो है ही, साथ ही व्यापक प्रबन्ध और सगठन का भी लाभ उसे मिलता है। ऐच्छिक प्रयास, जन-सहयोग, सामाजिक नियन्त्रण, स्थानीय लोगो के उत्साह और साधनों का लाभ उठाने और इन सबसे ऊपर विभिन्न आर्थिक माँगो का सस्थाकरण, विभिन्न आवश्यक वस्तुओ की माँग और पूर्ति को प्रतिबिम्बित करने जैसे कई अन्य कारणो से भी सहकारिता के आदर्शों से आयोजको और सरकार के योजना उद्देश्यो को प्राप्त करने मे मदद मिलती है।

1. कृषि समीक्षा, नवम्बर 1977.

सहकारिताओं के विरुद्ध समय-समय पर की जाने वाली शिकायतों, उनके कार्यों के बारे में तथा जनता की आशाओं के अनुकूल काम करने में तथाकथित असफलता के विरोध में उठाई जाने वाली आवाजों के बावजूद कृषि, पशुपालन, मछलीपालन, आवास, आवश्यक वस्तुओं के सार्वजनिक वितरण जैसे अर्थ-व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों तथा चीनी, रूई और हाथकरघा वस्त्रों जैसे उद्योगों के लिए सहकारी समितियों की भूमिका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होगी।

यदि ग्रामीण क्षेत्रों के कमजोर वर्गों की समस्याओं के व्यापक रूप को देखा जाए तो स्थिति की अनिवार्यता का आसानी से पता लग सकता है। देहाती इलाकों में कमजोर वर्ग की परिभाषा के अन्तर्गत भूमिहीन खेतिहर मजदूरों की संख्या 4 करोड 75 लाख थी जबकि खेत जोतने वाले 7 करोड 82 लाख व्यक्ति थे। 80% खेतिहर के पास दो हेक्टेयर से भी कम जमीन है। आँकडे इस प्रकार हैं—

आकार वर्ग	खेती योग्य (लाख जोतें)	कुल जोतों का प्रतिशत	कुल क्षेत्र (लाख हेक्टेयर	प्रतिशत क्षेत्र
1	2	3	4	5
सीमान्त (एक हेक्टयर से कम)	35 7	51	14 5	9
लघु (1 से 2 हक्टयर तक)	13 4	;19	19 3	12
कुल योग	70 5	100	162 1	100

समस्या यह है कि 70% खेतिहर परिवारों के पास केवल 21% भूमि है तथा इससे सम्बन्धित अनेक लोगों के होने के कारण यह समस्या और भी विकट हो गई है। हमें अपने योजना प्रयास इस हानि उठाने वाले वर्ग को लाभ पहुँचाने के लिए करने होंगे।

इन कमजोर वर्गों की उपेक्षा करने वाली कोई भी योजना केवल थोडे से लोगों को खुशहाली दे सकेगी। यदि विकास के लाभ ग्रामीण समुदाय के अधिकांश वर्गों को मुहैया न किए जाने का सिलसिला जारी रहा और खुशहाली चंद लोगों तक ही सीमित रही तो इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न सामाजिक, आर्थिक तनाव से न केवल ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के व्यवस्थित और शान्तिपूर्ण परिवर्तन में बाधा पड सकती है बल्कि कृषि उत्पादन बढाने के राष्ट्रीय प्रयास पर भी बुरा प्रभाव पड सकता है। जनसंख्या म तेजी से वृद्धि को ध्यान में रखकर देहाती इलाकों में व्यापक बेरोजगारी और आय के गलत वितरण प्रणाली की समस्या पर विशेष ध्यान देना जरूरी है। तथापि कमजोर वर्गों के लोगों का जीवन बेहतर बनाने की सभी योजनाओं को समुचित प्रशासनात्मक व्यवस्था तथा लाखों ग्रामीणों को संगठित करने वाली ग्रामीण संस्थाओं के अभाव की कठिनाई का सामना करना पडेगा। वास्तव में ये लोग किसी भी निर्णय लेने में अपना योगदान तथा अपनी राय तभी प्रकट कर सकते हैं जब वे अपना एक संगठन बना लें जिससे न केवल उनके आर्थिक हितों की रक्षा होगी

बल्कि तेजी से बदलते हुए ढांचे मे उत्पादक और उपभोक्ता के नाते वे अपनी जरूरतों को बता सकेंगे। सहकारिता समयानुकूल समाधान है।

इस पृष्ठभूमि में अब हमे मौजूदा ग्रामीण विकास कार्यक्रम पर विचार करना चाहिए। इनमे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लघु कृषक विकास करने वाली एजेंसी कार्यक्रम, सूखाग्रस्त कार्यक्रम और कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम है। इस समय लघु कृषक विकास एजेंसी कार्यक्रम के लिए 160, सूखाग्रस्त क्षेत्रो के लिए 54 और 61 परियोजनाएँ कमान क्षेत्र के विकास के लिए चालू हैं। इनके अतिरिक्त आदिवासी क्षेत्रो मे विशेष परियोजनाएँ भी शुरू की गई हैं। इस समय सरकार एक समन्वित ग्रामीण विकास योजना शुरू करना चाहती हैं जिसका उद्देश्य ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के सभी पहलुओ का विस्तृत विकास है; जिसमे लघु और सीमान्त किसान, भूमिहीन खेतिहर मजदूर, ग्रामीण कारीगर, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित कमजोर वर्गों के व्यक्ति शामिल हो। यह जान लेना चाहिए कि इन सभी कार्यक्रमो मे कृषि विकास का प्रमुख स्थान है। ऐसा इसलिए है कि अधिकांश ग्रामीणों को कृषि और सम्बन्धित कार्यों पर लम्बे समय तक निर्भर रहना पड़ेगा।

इन भी कार्यक्रमो मे अन्य बातो के अलावा बुनियादी सुविधाओ के विकास पर अधिक बल दिया गया है जिससे आगम और पूर्ति के लिए वितरण प्रणाली की व्यवस्था होगी और साथ-साथ उत्पाद के लिए उचित लाभ मिल सकेगा। इस दिशा मे सहकारी संस्थाओ को महत्त्वपूर्ण भूमिका सौंपी गई है। वास्तव मे लघु कृषक विकास एजेंसी परियोजनाओ मे विकास के लिए अन्य आवश्यक वस्तुओ के साथ ऋण सुविधाओ का भी समुचित प्रयोग किया जाता है और अधिकतर यह कर्जा सहकारी ऋण संस्थाओ में मिलता है। इसी प्रकार विपणन, अनाज तैयार करने और भण्डारण के मामले मे भी सहकारिता की भूमिका कम नही है। काफी हद तक इन कार्यक्रमो की सफलता इन संस्थानो के बीच समन्वय तथा इसके विकास प्रक्रिया मे लगी अन्य एजेंसियो के सहयोग से काम करने पर निर्भर करती है।

हमारी सामाजिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए हमारी ऐसी समन्वित सहकारी ग्रामीण सेवाएँ काफी लाभदायक सिद्ध हो सकती हैं। परन्तु मौजूदा ढांचे मे सहकारी सेवाओ को व्यापक बनाने भर से ही काम नही चलेगा। ग्रामीण समुदाय की कुल जरूरतो को पूरा करने की दृष्टि मे सारी प्रणाली का पूरी तरह से पुनर्गठन करना होगा जिसका झुकाव कमजोर वर्गों को अधिक लाभ पहुँचाने की ओर हो। इस प्रणाली को विशेषकर सूखाग्रस्त और आदिवासी क्षेत्रो जैसी दैवी आपदा के शिकार इलाको के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है। ऐसे इलाको मे सहकारी ढांचा कमजोर है क्योंकि संस्था केवल क्षेत्रीय अर्थ-व्यवस्था की स्थिति की द्योतक है। इन क्षेत्रो मे सहकारिताओ का कार्य वास्तव मे चुनौती भरा है।

सहकारी आन्दोलन के विभिन्न क्षेत्रो की उपलब्धियो को कम करके बताने की मेरी मंशा नहीं है। अल्प अवधि और मध्यम अवधि के सहकारी ऋण जो सन् 1951 मे 23 करोड़ रु थे सन् 1976-77 मे बढ़कर 989 करोड रु हो गए। इसी

प्रकार लम्बी अवधि के सहकारी ऋण भी जो प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में 6 करोड़ रु थे पांचवीं योजना में बढ़कर 780 करोड़ रु तक पहुँच गए। कृषि विपणन, अनाज तैयार करने, भण्डारण और वितरण के क्षेत्र में भी सहकारी समितियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। तथापि हमें इस समय यह देखना है कि विकास के कार्य और समाज के कमजोर वर्गों की मदद के उद्देश्य में ये संगठन कहाँ तक सफल हुए हैं। यदि ऋण के पहलू को देखा जाए तो गत पाँच वर्षों के दौरान दिए गए कुल कर्जे का लगभग एक-तिहाई ऋण ही समाज के कमजोर वर्गों को मिल पाया है। यह स्थिति तब है जबकि इस अवधि के दौरान कमजोर वर्गों के लिए बहुत सी छूट दी गई। छोटे किसानों की सेवा के लिए विशेष रूप से स्थापित की गई किसान सेवा समिति को मिलाकर बहुत से संगठनात्मक परिवर्तन किए गए हैं। सहकारियों की सदस्यता की सार्वभौमिकता से सम्बन्धित बहुत से राज्यों ने हाल ही में कानून बनाए हैं और इस दिशा में दूसरा कदम है।

छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान विभिन्न क्षेत्रों के विकास के कार्यक्रमों की सफलता के लिए सहकारी संगठनों में अपेक्षित कुल सहायता का जल्दी ही अनुमान लगाना होगा। राष्ट्रीय कृषि आयोग जैसे निकायों द्वारा लगाए गए कुछ अनुमान पहले ही उपलब्ध हैं। इस प्रकार के संकेत हैं कि सहकारिताओं के समक्ष बहुत महान् काम हैं। फिर भी हम यह आशा कर सकते हैं कि उनके लिए निर्धारित लक्ष्य पहले की तरह ही प्राप्त कर लिए जाएँगे। लक्ष्यों को वास्तव में प्राप्त करने के लिए *ग्रामीण विकास की समस्याओं के प्रति समन्वित दृष्टिकोण रखना होगा।* संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस दृष्टिकोण का अर्थ ऋण, कृषि के लिए आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति, संसाधन, विपणन विस्तार सेवाएँ, कम कीमत, कम प्रोत्साहन जैसे विभिन्न कार्यों को एक साथ करना होगा। उपयुक्त प्रौद्योगिकी और पर्याप्त प्रबन्ध कुशलता भी इस कार्य के लिए महत्त्वपूर्ण होगी। इन विभिन्न समस्याओं के लिए काफी मजबूत संस्थाओं की आवश्यकता होगी। अभी तक तो इस दिशा में मामूली सी ही शुरुआत की गई है।

एक पहलू और भी है जिसका उल्लेख मैं करना चाहता हूँ, वह यह है कि संस्थाएँ बदलती हुई स्थितियों और राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुसार अपने आप को नहीं ढाल पातीं। इनमें से बहुत सी संस्थाएँ कठोर रवैया अपना लेती हैं जिससे मौजूदा बुनियादी सुविधाएँ किसी भी विकास कार्यक्रम के लिए अनुकूल नहीं बन पातीं। यह कहा जाता है कि संस्थागत ढाँचे में धीरे धीरे परिवर्तन होने चाहिएँ खासकर उस समय जबकि वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी और जानकारी में तीव्र प्रगति हो रही हो। जब तक संस्थाएँ आधुनिकीकरण की माँग और राष्ट्रीय प्राथमिकताओं की जरूरतों को पूरा करने के लिए डाली गई जिम्मेदारी को निभाने के लायक नहीं बनेंगी तब तक किसी भी बढ़िया कार्यक्रम की शुरुआत खटाई में पड़ सकती है। यह एक खतरा है जिसके प्रति हमें सचेत रहना है।

Appendix—15

प्रश्न-कोश

(QUESTION BANK)

खण्ड–1. आर्थिक विकास के सिद्धान्त

अध्याय 1

1 आर्थिक विकास की परिभाषा दीजिए। आर्थिक विकास की प्रकृति एवं उसके मापदण्ड के बारे में बताइए।

Define economic growth Mention the nature and measurement of economic growth.

2 "आर्थिक विकास के तीन पहलू हैं—समग्रीकृत राष्ट्र के कुल और प्रति व्यक्ति उत्पादन में निरन्तर वृद्धि; संरचनात्मक-विकास प्रक्रिया के दौरान अर्थव्यवस्था में जो विचरण (अथवा परिवर्तन) आते हैं; अन्तर-राष्ट्रीय देश में बदलती हुई संरचना के साथ ही साथ, इसके, और शेष विश्व के बीच आर्थिक प्रवाहों का अनुक्रमिक प्रतिरूप बनाना।" उदाहरणों सहित व्याख्या कीजिए। (1972)

"Economic growth has three aspects—the aggregative : sustained increase in a nation's total and per capita product; the structural : the shifts that occur in any economy during the growth process, the international : the changing domestic structure is supplemented by a sequential pattern of economic flows between it and the rest of the world" Elaborate with the help of illustrations.

3 आर्थिक विकास के तत्वों की और उनके तुलनात्मक महत्त्व की विवेचना करो। आप आर्थिक विकास की दर किस प्रकार मापोगे ? (1973)

Discuss the factors that are responsible for economic growth and their relative importance. How would you measure the rate of growth.

4 आर्थिक वृद्धि, आर्थिक विकास और आर्थिक प्रगति में भेद कीजिए। आर्थिक विकास की माप-हेतु आय-समंकों का प्रयोग किस सीमा तक किया जा सकता है ?

Distinguish between economic growth economic development and economic progress How for Income Data may be used to measure economic growth ?

5 "हम आर्थिक विकास की परिभाषा एक प्रक्रिया के रूप में करंगे जिससे कि किसी देश के प्रत्येक व्यक्ति की वास्तविक आय दीर्घकालीन अवधि में बढ़ती है।" (मेयर) स्पष्ट कीजिए।
(1975, 76)

"We shall define economic development as the PROCESS whereby the REAL PER CAPITA INCOME of a country increases over a long period of time " (Meier) Elucidate

6 "आर्थिक विकास में आर्थिक कारकों से गैर-आर्थिक कारक ज्यादा महत्वपूर्ण हैं।" व्याख्या कीजिए। (1976)
"Non-economic factors are more important than economic factors in economic development." Comment

7 आर्थिक विकास से आप क्या समझते हैं ? क्या केवल आधुनिक तकनीक ही आर्थिक विकास के लिए एकमात्र शर्त है ? (1976)
What do you understand by economic growth ? Is modern technology a sufficient condition for economic growth ?

अध्याय 2

1 अर्द्ध-विकसित अर्थ व्यवस्था के मुख्य लक्षण लिखिए। एक अर्द्ध-विकसित और एक विकसित राष्ट्र के आयोजन में क्या भिन्नताएँ होती है ? (1975)
Critically examine the characteristic features of an undeveloped economy. How economic planning in an under-developed country differs from that of a developed country ?

2 आपकी राय में भारत जैसे अल्प-विकसित देश के आर्थिक विकास में कौनसी मुख्य बाधा है पूँजी की कमी, तकनीकी परिवर्तन और नवीनीकरण प्रक्रिया की धीमी दर अथवा उपयुक्त संस्थागत और सामाजिक ढाँचे का अभाव ? उदाहरण दीजिए। (1972)
What would you consider the main barrier to economic development of a less developed country such as India paucity of capital, slow rate of technological change and innovation or absence of an appropriate institutional and social structure ? Give illustrations

3 अर्द्ध विकसित अर्थव्यवस्था की क्या विशेषताएँ हैं ? ऐसी अर्थव्यवस्था में आधारभूत समस्याएँ क्या होती हैं ? इनकी विवेचना भारत के सन्दर्भ में करो। (1973)
What are the main characteristics of an under-developed economy ? What are the basic problems to planning in such an economy? Discuss them with reference to India

4 "अल्पविकसित देशों से सम्बन्धित आँकड़ों एवं वर्णनात्मक जानकारी का अध्ययन करने से प्रकट होता है कि राष्ट्रीय निर्धनता एवं देश की अर्थव्यवस्था के अन्य लक्षणों में अवश्य ही सहसम्बन्ध है।" (हिगिंस) ये अन्य लक्षण क्या हैं ? (1974)
"Examination of statistics and descriptive information pertaining to under developed countries reveals that there is indeed a correlation between national proverty and other features of the country's economic and social organization " (Higgins) What are these other features ?

5 विकसित, अविकसित तथा अर्द्ध-विकसित देशों में उनके आर्थिक विकास की दशाओं में क्या अन्तर पाया जाता है ? प्रत्येक का उपयुक्त उदाहरण देते हुए समझाइए।
Describe low states of economic development in developed, undeveloped and under-developed countries differ from one another, giving suitable examples of each

6 अर्द्ध-विकसित देशों की समस्याओं की परीक्षा कीजिए।
Examine the problems of under-developed countries

7 "आर्थिक प्रगति की वास्तविक आधारभूत समस्याएँ गैर-आर्थिक हैं।" विवेचना कीजिए।
"The really fundamental problems of economic development are non-economic" Comment

8 अल्प-विकसित देशों के आर्थिक विकास में साहस (उद्यम) के स्थान को समझाइए। (1977)
Explain the role of entrepreneurship in economic development of under-developed countries.

अध्याय 3

1 विकास के अन्तर्गत सरंचनात्मक परिवर्तन से आप क्या समझते हैं ? उत्पादन के सगठन में परिवर्तनों की व्याख्या कीजिए।
What do you understand by 'structural changes under development' ? Explain changes in the composition of production

2 विकास के अन्तर्गत सरंचनात्मक परिवर्तन को समझाते हुए उपभोग में परिवर्तन की व्याख्या कीजिए।
Explain 'Structural changes under development' and show how do you understand by the changes in consumption

3 रोजगार, निवेश और व्यापार के सगठन में विकास के दौरान सरंचनात्मक परिवर्तन की विवेचना कीजिए।
Discuss the structural changes in the composition of employment, investment and trade

4 "आधुनिक युग में, मुख्य सरंचनात्मक परिवर्तनों का लक्ष्य कृषि मदों के स्थान पर औद्योगिक मदों का उत्पादन (औद्योगीकरण की प्रक्रिया), ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में जनसख्या वितरण (शहरीकरण की प्रक्रिया), लोगों की सापेक्ष आर्थिक स्थिति में परिवर्तन (रोजगार की स्थिति तथा आय-स्तर आदि के द्वारा) और माँग के अनुरूप वस्तुओं एवं सेवाओं का वितरण रहा है।" क्या आप कुजनेट्स से सहमत हैं ?
"In modern times the main structural changes have been in the movement from agricultural towards non-agricultural production (the process of industrialization), in the distribution of population between the countryside and the cities (the process of urbanization), in the shifting relative economic position of groups within the nation (by employment states, level of income per capita, etc), and in the distribution of goods and services by use " Do you agree with Simon Kuznets ?

5 आर्थिक विकास की प्रक्रिया में समस्त उत्पादन, रोजगार एवं उपभोग के ढांचे में और उद्योगों के ढांचे में सरंचनात्मक परिवर्तनों के बारे में कुजनेट्स ने क्या निष्कर्ष निकाले हैं ? व्याख्या कीजिए। (1976)
What are 'Kuznets' findings on changes in the structure of aggregate production, employment and consumption and in the structure of industries in the course of economic growth ? Explain

6 आर्थिक विकास की प्रक्रिया में क्या सरंचनात्मक परिवर्तन होते हैं ? रोजगार और उपभोग के सन्दर्भ में समझाइए। (1977)
What structural changes take place in the process of economic development ? Explain with reference to employment and consumption.

7 आर्थिक विकास की प्रक्रिया में श्रमिकों की औद्योगिक सरचना व राष्ट्रीय उत्पादन में होने वाले परिवर्तनों के सम्बन्ध में कुजनेट्स के क्या विचार हैं ? (1974)

What are Kuznet's findings on changes in industrial structure of labour force and national production course of economic growth ?

8 "आधुनिक आर्थिक विकास सारभूत रूप से औद्योगिक व्यवस्था को लागू करना अर्थात् आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के बढ़ते हुए प्रयोग पर आधारित उत्पादन की एक व्यवस्था को लागू करना है, किन्तु इसका अर्थ संरचनात्मक परिवर्तनों से ही है ।" (साइमन कुजनेट्स) विवेचना कीजिए।

"Indeed, modern economic growth is, in substance, an application of the industrial system, is a system of production based on increasing use of modern scientific knowledge *But this also means structural change......*" (Simon Kuznets) Discuss

9 "किसी भी युग में आर्थिक वृद्धि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन का मात्र विषय नहीं है, अपितु कतिपय संरचनात्मक परिवर्तनों का विषय भी है।" (साइमन कुजनेट्स) विवेचना कीजिए।

· Growth during any era is a matter not only of change in the economy as a whole, but also of structural shifts " (Simon Kuznets) Discuss

10 आर्थिक विकास की प्रक्रिया में होने वाले संरचनात्मक परिवर्तनों का वर्णन कीजिए और उन्हें समझाइए।

State and explain the structural shifts observed in the process of economic development

1 "एक अद्धविकसित अर्थव्यवस्था की सर्वांगीण विकास दर उसके कृषि के विकास पर मूलत निर्भर करती है जब तक कृषि अथवा खनिज उत्पादन में आकस्मिक उन्नति की आशा न हो तब तक विकास दर में 5 प्रतिशत की वृद्धि की धारणा करना अवास्तविक है।" इस कथन का अर्थ बताते हुए अध्ययन कीजिए। (1976)

"The over-all growth rate of an underdeveloped economy depends primarily on the rate of growth of agriculture... .....Unless a break through is expected in agriculture or mining, it is unrealistic to assume a growth rate of 5% ' Explain and examine the statement

अध्याय 4

1 किसी देश के आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले घटकों की विवेचना कीजिए।

Examine the factors which influence the economic development of a country

2 आर्थिक विकास में गैर-आर्थिक घटकों के महत्त्व की समीक्षा कीजिए।

Discuss the importance of non-economic factors in economic development

3 आर्थिक विकास के कारकों की सापेक्षिक देन की विवेचना कीजिए।

Discuss the relative contribution of the factors of economic growth

4 कब एक अर्थ-व्यवस्था आत्म-स्फूर्ति की अवस्था को पहुँचती है ? एक अविकसित राष्ट्र में इस अवस्था को पहुँचाने के मार्ग में क्या कठिनाइयाँ आती हैं ?

When does an economy reach the stage of take-off ? What, in your view, are the obstacles for an under-development country to reach it ?

5 रोस्टोव के आर्थिक विकास की अवस्थाओं के सिद्धान्त का विश्लेषण कीजिए तथा इसकी सीमाएँ बताइए।

Elucidate Rostow's *Theory of economic growth* and pointout its limitations

6 स्वचालित विकास क्या है ? इसकी सीमाएँ क्या हैं ?
What is self sustained growth ? What are its problems ?

7 आर्थिक वृद्धि की परिभाषा दीजिए। रोस्टोव के अनुसार आर्थिक वृद्धि के विभिन्न काल क्या है?
Define 'economic growth' What are according to Rostow the different stages of economic growth ?

8 आर्थिक विकास की पूर्व आवश्यकताएँ क्या हैं ? आर्थिक विकास के अध्ययन ने आधुनिक समय में विशेष महत्त्व क्यों प्राप्त किए हैं ?
What are the pre requisites of economic growth ? Why has the study of economic growth assumed special importance in modern times ?

9 "आर्थिक विकास कोई जादू नहीं है, वह एक निश्चित गणित पर आधारित होना चाहिए।" भारतीय अनुभव के आधार पर टिप्पणी कीजिए।
"Economic development is not a miracle It is based on a definite arithmatic". Comment in the light of Indian experience

10 विकास-दर के विभिन्न तत्त्वों के योगदान पर डेनिसन के विश्लेषण का विवरण दीजिए।
Examine Denison's estimates of the contribution of different factors to the growth rate

11 डेनिसन द्वारा विभिन्न तत्त्वो के विकास में योगदान के अनुमानों पर आपत्ति उनके अनुमान प्राप्त करने की विधि के कारण उठाई गई है। व्याख्या कीजिए। (1976)
Denison's estimates about the role of different factors in the process of growth have been questioned because of the methodology used by him Explain

12 विकासशील देशो मे शिक्षा के महत्त्व पर कोई शका नहीं परन्तु वास्तविक समस्याएँ हैं। किस प्रकार की शिक्षा उचित हैं और उसके लिए कितने साधनों की आवश्यकता है ? इन सन्दर्भों में आर्थिक विश्लेषण का क्या योगदान है ?
The importance of education in the developing countries cannot be doubted but the real issues are about the types of education required and the quantity of resources that should go into them What is the contribution of economic analysis towards these issues?

13 (क) पूँजी और (ख) शिक्षा के विकास में योगदान के डेनिसन द्वारा क्या निष्कर्ष निकाले गए हैं ? आपके विचार मे विकासशील अर्थव्यवस्था में शिक्षा की क्या भूमिका होनी है ? (1976)
What are Denison's findings about the role of (a) capital and (b) education in the process of growth ? What in your view is the role of education in the developing economies ?

अध्याय 5

1 आर्थिक विकास का विश्लेषण कीजिए और महत्त्वपूर्ण मॉडलो को बताइए।
Analyse economic growth and point out important growth models

2 आर्थिक विकास के 'लेविस मॉडल' की परीक्षा कीजिए।
Examine 'Lewis Model' of economic growth

3 लेविस के असीमित श्रम-पूर्ति के वृद्धि-सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। बताइए कि अल्पविकसित देशों में असीमित श्रम पूर्ति के द्वारा पूँजी-निर्माण सम्भव भी है और लाभदायक भी
Discuss Lewis theory of growth with unlimited labour supply Do yo agree that Capital formation with unlimited supplies of labour is possibl and projectable in under-developed countries ?

4 "हैराड-डोमर मॉडल स्वय में विश्लेषण का एक अधूरा और काम-चलाऊ साधन है और इससे बहुत अपेक्षा नहो रखनी चाहिए।" (मु चक्रवर्ती) अल्पविकसित देशो के [ए नीति सम्बन्धी तत्त्वो की दृष्टि से हैराड-डोमर मॉडल की सगतता एव सीमाओ को समझाइए।

या

असीमित श्रम-पूर्ति की परिस्थिति में आर्थिक विकास की प्रक्रिया को निरूपित कीजिए।

(1974, 75, 76)

"Harrod-Domar Model is a very rough tool in itself and not too much should be expected from it" (S Chakravarty) Explain the relevance and limitations of Harrod-Domar model in relation to its policy implications for under-developed countries.

OR

Outline the process of economic development under conditions of unlimited labour supply

5 अल्प-विकसित देशो की आर्थिक विकास की समस्या के लिए हैराड डोमर विश्लेषण के महत्त्व का विवेचन कीजिए।

Discuss the significance of Harrod-Domar analysis for the problem of economic development of under developed countries

6 महालनोबिस क नियोजित विकास के माडल की व्याख्या कीजिए। महालनोबिस के आर्थिक वृद्धि के सकाय माडल क मुख्य दोष क्या हैं ?

Explain the Mahalanobis Model of planned development What are the important flaws in the operational model of economic growth by Mahalanobis ?

7 उस सैद्धान्तिक ढाँचे को पूरी तरह समझाइए और उसका आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए जो कि भारत की दूसरी पचवर्षीय योजना का आधार था।

Explain fully and evaluate critically the theoritical framework which formed basis of India s Second Five year Plan

8 हैराड-डोमर माडल का विवरण दीजिए। विकास की समस्याओ के विश्लेषण में इस माडल की उपयोगिता बतलाइए। (1976)

Describe the Harrod Domar model of growth What is its usefulness in the analysis of the problem of development

9 लविस माडल मे विकास की प्रक्रिया के मुख्य लक्षण क्या है ? 'मोड़-बिन्दु' (turning point) कब आता है ? (1976)

What are the main features of the deve opment process in the Lewis model ? When does the turning point occur ?

10 महालनोबिस के दो सेक्टर माडल के मुख्य पहलुओ को समझाइए। यह डोमर के मॉडल से किन बातो मे भिन्न है ? (1977)

Explain the salient features of the two-sector model of Mahalanobis In what respects does it differ from the Domar model

11 लेविस के स्टूल के दो पैर हैं। प्रथम वह प्रस्तावना है कि सीमान्त बचत बति लाभ में अन्य आय की अपेक्षा अधिक होनी है। दूसरी प्रस्तावना यह है कि राष्ट्रीय आय म लाभ का अश बढ़ सकता है क्योकि निर्वाह-क्षेत्र से श्रम-अतिरेक के फलस्वरूप वास्तविक मजदूरी बढ़ाए बगैर श्रम की अधिक आपूर्ति प्राप्त की जा सकती है।" क्या ये प्रस्तावनाएँ तर्क एवं तथ्यो के आधार पर सही हैं ? क्यों ? (1976)

"Lewis's stool has two legs The first is the proposition that marginal propensity to save is higher out of profits than out of other incomes. The second is the proposition that the profit share in national income can swell because the existence of surplus labour in the subsistence sector makes it possible to obtain successive supplies of labour without raising real wages " Are these prepositions logically and empirically true ? Why ?

12 महालनोबिस मॉडल में पूँजीगत वस्तुओ के निर्माण में विनियोग के अनुपात (AK) की भूमिका वैसी ही है जैसी कि हैराड-डोमर मॉडल मे बचत की सीमान्त दर (a) की व्याख्या कीजिए। (1976)
The role of the proportion of investment going into the capital goods sector (AK) in the Mahalanobis model is similar to the role of the marginal rate of savings (a) in the Harrod-Domar model Explain

13 आर्थिक विकास के हैराड-डोमर मॉडल की व्याख्या कीजिए। क्या अर्द्ध-विकसित देशों के लिए इसका कोई महत्त्व है ? (1976)
Explain clearly Harrod-Domar model of economic growth Has it any relevance for under-developed countries ?

अध्याय 6–9

1 'आर्थिक विकास के लिए नियोजन' पर आलोचनात्मक निबन्ध लिखिए।
Write a critical essay on 'Planning for Economic Development'

2 एक नियोजन अर्थ-व्यवस्था के पक्ष और विपक्ष मे दिए गए तर्कों की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिए।
Critically examine the agreements advanced for and against a planned economy.

3 नियोजित अर्थ-व्यवस्था मुक्त अर्थ-व्यवस्था से श्रेष्ठतर क्यो मानी जाती है? विवेचना कीजिए।
Why is 'planned economy' considered superior to 'Free enterprise—economy' ? Discuss fully

4 एक अर्द्धविकसित देश के सन्दर्भ मे विकास के लिए नियोजन मे कीमत-यन्त्र के स्थान का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए। (1977)
Critically appraise the place of market mechanism in planning for growth with special reference to an underdeveloped country

5 गरीब देश की विकास सम्भावनाएँ किन तत्त्वों से निर्धारित की जाती है ? यह कहना कहाँ तक उचित है कि विकास में भौतिक बाधाएँ, वित्तीय बाधाओं से प्रमुख होती है। (1976)
What factors need to be taken into account in determining the growth possibilities of a poor country ? How far is it correct to say that physical constraints are more important than financial constraints ?

6 बचत-दर को प्रभावित करने वाले तत्त्वो की विवेचना कीजिए।
Discuss the factors, affecting the saving rate

7 सम्पूर्ण विकास दर को प्रभावित करने वाले तत्त्वो की विवेचना कीजिए।
Discuss the factors affecting the over-all growth rate.

8 "विकास-योजना केवल एक हद तक अर्थशास्त्रीय कला है, एक महत्त्वपूर्ण हद तक यह राजनैतिक समझौते का प्रयोग है।" (लुइस) व्याख्या कीजिए। (1974)
"Development planning is only in part an economic art; to an important extent it is also an exercise in political compromise." (Lewis) Elucidate.

9 किसी विकास-योजना में वृद्धि दर किस प्रकार निर्धारित की जाती है ? वृद्धि दर को परिसीमित करने वाले तत्त्व कौन-कौन से हैं ? पूरी तरह समझाइए। (1974)
How is the rate of growth determined in a development-plan ? What are the constraints on the rate of growth ? Explain fully.

10 साधनों की गतिशीलता से आप क्या समझते हैं ? गतिशीलता को निर्धारित करने वाले कारणों की विवेचना कीजिए।
What do you understand by 'Resource Mobilisation'

11 मानवीय पूँजी निर्माण से आप क्या समझते हैं ? आप इस मत से कहाँ तक सहमत हैं कि विकासशील अर्थव्यवस्था में भौतिक पूँजी निर्माण की अपेक्षा मानवीय पूँजी निर्माण का महत्त्व अधिक है ? (1976)
What do you understand by human capital formation ? To what extent do you agree with the view that human capital formation is more important than material capital formation ?

12 एक घरेलू बचत की दर एक नियोजित अर्थव्यवस्था में कैसे ज्ञात की जाती है ? एक अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था में बचत को बढ़ाने के तरीके सुझाइए। (1976)
What factors determine the rate of domestic savings in a developing economy ? Suggest methods to increase the savings rate in a developing economy

13 'बचत बढ़ाने के प्रयत्नों में एक बड़ा प्रयत्न सार्वजनिक बचत की दर बढ़ाने का होना चाहिए।' (चतुर्थ पंचवर्षीय योजना का मध्यावधि मूल्यांकन) इस मत की पुष्टि करने वाले तर्क समझाइए और बताइए कि यह कार्यनीति कहाँ तक सफल रही है। (1976)
"A major thrust of savings efforts must be towards raising the rate of public savings." (Mid-Term Appraisal of the Fourth Plan) Explain the arguments which substantiate this view and state how far this strategy has been successful

14 विकास हेतु वित्तीय साधन जुटाने के लिए उपयुक्त उपाय सुझाइए। (1976)
Suggest suitable measures for mobilisation of financial resources for development

15 किसी देश की बचत दर एवं सम्पूर्ण विकास दर को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए। (1976)
Discuss the factors affecting the saving rate and the overall growth rate of a country

16 उपभोक्ता और मध्यवर्ती (Intermediate) वस्तुओं की माँग का प्रक्षेप आप कैसे करेंगे ? (1976)
How would you project the demand for consumption and intermediate goods ?

17 'वस्तु सन्तुलन', 'औद्योगिक सन्तुलन' तथा 'वित्तीय सन्तुलन' से आप क्या समझते हैं ? योजना की समरूपता (Consistency) के लिए ये क्यों महत्त्वपूर्ण हैं ? (1976)
What do you understand by 'commodity balance', 'industrial balance' and 'financial balance' ? *Why are they important for Consistency of the Plan ?*

18 आदा-प्रदा विश्लेषण (Input-Output analysis) की तकनीक कुशल आर्थिक नियोजन के लिए कहाँ तक उपयुक्त है ? क्या भारत में इस तकनीक के प्रयोग में कोई व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं ?

Discuss how far the technique of 'input-output' analysis is suitable for efficient economic planning. Are there any practical difficulties in applying this technique in India ?

19 'नियोजित अर्थव्यवस्था उपलब्ध साधनों की पूर्णतम गतिशीलता एवं समुचित आवंटन और अधिकतम परिणामों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।" विवेचना कीजिए। (1976)
'Planned economy is necessary for the fullest mobilisation of available resources and their proper allocation to secure optimum results" Discuss.

20 आन्तरिक साधनों और बाह्य साधनों के विभिन्न रूपों की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
Critically examine the various forms of internal reasons and external resources

21 'योजना के लिए वित्तीय साधनों की गतिशीलता' पर निबन्ध लिखिए।
Write an essay on 'Mobilisation of Financial Resources'.

22 उपभोक्ता वस्तुओं और मध्यवर्ती वस्तुओं के लिए मांग के अनुमान से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट रूप से व्याख्या कीजिए।
What do you understand by the demand projections for consumptions goods and intermediate goods ? Explain fully

23 मांग के अनुमानों से आदा प्रदा गुणांकों के उपयोग को समझाइए।
Explain the use of the input-output co-efficients.

24 बताइए कि आदा प्रदा विश्लेषण की तकनीक कुशल आर्थिक नियोजन के लिए कहाँ तक ग्रहणीय है ? क्या भारत में इस तकनीक के प्रयोग में कोई व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं ?
Discuss how far the technique of input output analysis is adoptable for efficient economic planning Are there any practical difficulties in applying this technique in India ?

अध्याय 10–16

1 विभिन्न क्षेत्रों के सन्तुलित उत्पादन लक्ष्य निर्धारित करने की विधि समझाइए। असन्तुलित विकास के पक्ष में क्या तर्क हैं ? (1973)
Explain the method of determining balanced growth targets for different sectors What are the arguments for unbalanced growth ?

2 विभिन्न क्षेत्रकों के उत्पादन लक्ष्य कैसे निर्धारित किए जाते हैं ? (1977)
How are the targets of sectoral outputs determined ?

3 आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने के लिए विनियोग के अन्तर क्षेत्रीय आवंटन के महत्त्व का विश्लेषण कीजिए। इस सम्बन्ध में बचत की सर्वोत्तम दर की धारणा की विवेचना कीजिए।
Analyse the significance of inter-sector allocation of investment for promoting economic growth. Discuss in this connection the concept of the 'Optimum' rate of savings.

4 आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने के लिए विनियोग के अन्तर-क्षेत्रीय (Inter-Sectoral) आवंटन की कसौटियों की विवेचना कीजिए। *(1976)*
Discuss the criteria for inter-sectoral allocation of investment for promoting economic growth

5 वे कौन से सिद्धान्त हैं जिनके अनुरूप विनियोग करने योग्य कोषों को एक नियोजित अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में वितरण करना चाहिए ?
What are the principles in accordance with which investible funds should be distributed among the various sectors of a planned economy ?

6 एक योजना बनाते समय कुल विनियोग का क्षेत्रीय आवटन आप कैसे निश्चित करेंगे ।
(1973, 76)

How would you determine the sectoral allocation of investment in making a plan ?

7 किसी योजना मे विनियोग की प्राथमिकताओ और तरीके का निश्चय करने मे किन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए ? क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि भारतीय योजना निर्माताओं ने भारी और पूँजीगत उद्योगों शक्ति तथा यातायात को बहुत अधिक ऊँची प्राथमिकता दी है तथा सामाजिक सेवाओ को बहुत कम प्राथमिकता दी है ।

What considerations should be kept in view in deciding the priorities and pattern of investment in a plan ? Do you think that Indian planners have given too much high priority to heavy and capital goods industries, power and transport and too low priority to social services ?

8 अर्द्ध विकसित देशों के आर्थिक विकास की योजनाओं मे प्राथमिकता के निर्धारण के मानदण्ड की विवेचना कीजिए ।

Discuss the criteria for determination of priorities in plans for the economic development of developed countries

9 "वस्तु सन्तुलन', एव 'वित्तीय सन्तुलन' योजनाओं को समरूप (Consistent) बनाने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।" व्याख्या कीजिए । (1976)

'Commodity balance' and financial balance' are very important for making a plan consistent " Discuss

10 भारत जैसी नियोजित विकासशील अर्थव्यवस्था मे 'मूल्य नीति' एव वस्तु नियन्त्रण' की प्रकृति एव उसके परिणामो का विश्लेषण कीजिए । (1976)

Discuss the nature and consequences of 'price policy' and 'commodity controls' in a planned developing economy like India

11 परियोजना मूल्यांकन के विभिन्न मानदण्डो की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए । (1976)

Discuss critically the various criteria for evaluation of projects

12 इस बात की जांच कैसे की जा सकती है कि प्रस्तावित वृद्धि दर के लिए आवश्यक धन उपलब्ध है या नहीं ?

How can one check whether the required funds are available to finance the postulated rate of growth ?

13 किसी योजना को बनाते समय आप विभिन्न क्षेत्रो मे विनियोग के आवटन का निर्धारण कैसे करगे ?

How would you determine the sectoral allocation of investment in making a plan ?

14 "राजनैतिक दृष्टि से कर लगाने के स्थान पर मुद्रास्फीति आरम्भ करना आसान हो सकता है लेकिन मुद्रास्फीति का नियन्त्रण करने उसकी उपादेयता अधिक से अधिक करने और उसकी हानियाँ कम से कम करने के लिए आवश्यक उपाय निर्धारित और लागू करना करों मे वृद्धि से अधिक आसान नही है ।" (लुइस) समझाइए । (1976)

'It may be easier politically to start an inflation than to tax but the measures which control inflation maximize its usefulness and minimize its disadvantage are no easier to adopt or administer than would be an increase in taxation " Explain

15 "अनेक कारणो से लाभ कई बार किसी प्रयोजना के सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति में योगदान को नापने का ठीक पैमाना नहीं हो सकता। ...लेकिन लाभ को इस स्थिति से विस्थापित करना हो तो निर्णय के लिए कोई अन्य आधार उसके स्थान पर स्थापित करना होगा।" (लिटल और मिरलीज) यह अन्य आधार क्या है? इसकी मुख्य विशेषताएँ समझाइए।

(1976)

"There are many reasons why profits may not be a very good measure of a project contribution to social ends........But if profits are to be detnroned, some other guide to decision making must be put in their place" (Little and Mirrlees). What is the other guide? Explain its salient features

16 एक अर्द्ध-विकसित देश के आर्थिक विकास में 'विनियोग चुनावों और व्यूह-रचनाओं' पर एक निबन्ध लिखिए।

Write an essay on 'Investment Choices and Strategies' in the economic developments of an under developed country

17 'उत्पादन लक्ष्यों के निर्धारण' पर आलोचनात्मक निबन्ध लिखिए।

Write a critical essay on 'Determination of out-put Targets'.

18 'विनियोग विकल्प की आवश्यकता' की व्याख्या कीजिए। अर्द्ध-विकसित देशो को विनियोजन सम्बन्धी विशिष्ट समस्याएँ क्या हैं?

Explain 'Need for Investment Choice' What are special investment problems in under-developed countries?

19 'विनियोग मानदण्ड' और उसकी व्यावहारिक उपयोगिता की विवेचना कीजिए।

Discuss 'Investment Criterion' and its practical utility.

20 बाजार-यन्त्र के अभाव में एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे विभिन्न उद्योगो के बीच साधनों के आवटन का निर्धारण किस प्रकार होता है? क्या इस मामले मे सन्तुलनकारी दशाएँ उन दशाओं से आधारभूत रूप में भिन्न होती हैं जो एक प्रतियोगी पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था मे पायी जाती हैं?

How is the allocation of resources between different uses determined in a *socialist economy in the absence of a market machanism? Are the equilibrium* conditions in this case basically different from those in a competitive capitalist economy?

21 अर्द्ध विकसित देशों मे आर्थिक विकास को वित्तीय प्रबन्ध देने वाले विभिन्न तरीको का वर्णन कीजिए। क्या आप एक नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे हीनार्थ प्रबन्धन को अनिवार्य मानते हैं?

Describe the various methods of financing development in under-developed *countries Do you consider deficit financing in a planned economy*

22 ऐसा क्योंकर है कि अनेक अर्द्ध-विकसित देशों के मूल्य-स्तर में अत्यधिक वृद्धि भी छिपे स्रोतों को समुचित रूप से गतिशील बनाने मे असफल रही है? पूर्ति-लोच में सुधार के लिए राज्य द्वारा क्या कदम उठाए जा सकते हैं?

How is it that even a tremendous rise in the price level of many under-developed countries has failed to mobilize adequately the hidden resources? *What steps can be taken by the state to improve the supply elasticity?*

23 किसी देश को किन आधारों पर अपने दुर्लभ साधनों का विभिन्न उद्योगो मे वितरण करना चाहिए?

On what basis should a country distribute its scarce resources among different industries?

24 भारत में लोक क्षेत्र की क्या मूल समस्या है ? इसे अधिक लाभपूर्ण बनाने के उपाय सुझाइए ।
What are the basic problems of the public sector in India ? Suggest measures for improving its profitability

25 एक दृष्टिकोण यह है कि नियन्त्रित मूल्य व्यवस्था कीमतों को नीचा रखने तथा अधिक लाभों को रोकने के अपने दोनों मुख्य उद्देश्यों में अधिकांशतः स्वयं असफल रहती है । क्या हाल ही का भारतीय अनुभव इसे सिद्ध करता है ?
There is a point of view that a controlled price system is largely self-defeating in two of this principal objectives keeping costs low and preventing excess profits Does recent Indian experience bear this out ?

26 टिप्पणी लिखिए—
(अ) बढ़ते हुए मूल्यों के दुष्प्रभाव ।
(ब) तृतीय योजना की मूल्य नीति ।
Write a note on —
(a) Implications of Rising Prices
(b) Price Policy for the Third Plan

27 ' मूल्य केवल साधनों का आवंटन ही नहीं करते, आय के वितरण का निर्धारण भी करते हैं ।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? इस कथन के प्रकाश में उस कृषि मूल्य नीति का पुनर्मूल्यांकन कीजिए जो देश में हाल ही के वर्षों में अपनाई गई है ।
' Price not only allocate resources, they also determine the distribution of incomes " Do you agree ? In the light of this statement review the Agricultural price policy pursued in the country in recent years

28 एक विकासशील अर्थ व्यवस्था में मूल्य नीति के विशिष्ट लक्षणों को बताइए ।
Mention the salient features of price policy in a developing economy

29 एक नियोजित विकासशील अर्थ व्यवस्था में मूल्य नीति के विभिन्न मुख्य सिद्धान्तों को लिखिए ।
Write the various principles of price policy in a planned developing economy

30 व्यष्टिवादी और समष्टिवादी अध्ययन से क्या अभिप्राय है ? एक विकासशील अर्थ-व्यवस्था में मूल्य नीति में व्यष्टिवादी और समष्टिवादी पहलुओं को स्पष्ट कीजिए ।
What is meant by micro and macro studies ? Mention clearly the micro and macro aspects in price policy in a developing economy

31 मिश्रित अर्थ व्यवस्था में मूल्य नीति के सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए ।
Discuss the principles of price policy in a mixed economy

32 'मूल्य-नीति और पदार्थ नियन्त्रण' पर एक निबन्ध लिखिए ।
Write an essay on 'Price Policy and Commodity Control'

33 विदेशी विनिमय की महत्ता और आवश्यकता की विवेचना कीजिए ।
Discuss importance and necessity of foreign exchange

34 भारतीय नियोजन में विदेशी विनिमय के आवंटन की परीक्षा कीजिए ।
Examine allocation of Foreign exchange in Indian planning

35 उपयुक्त उदाहरणात्मक उदाहरण की सहायता से समझाइए कि आप किसी योजना का वित्तीय संगति की दृष्टि से परीक्षण कैसे करेंगे । (1974)
Explain with the help of suitable illustrations how you will test a plan for financial consistency

36 सकल लाभदायक विश्लेषण को सामाजिक लागत-लाभ विश्लेषण में बदलने के लिए कौन से सुधार आवश्यक हैं ? (1974)
What modifications must be made to turn gross profitability analysis into a social cost benefit analysis?

Miscellaneous

1 "आर्थिक विकास बहुत हद तक मानवीय गुणों, सामाजिक प्रकृतियों, राजनीतिक परिस्थितियों और ऐतिहासिक संयोगों से सम्बन्ध रखता है।" विवेचना कीजिए।

"Economic development has much to do with human endowments, social attitudes, political conditions and historical incidents." Discuss.

2 "यदि बचाना चाहे, तो कोई राष्ट्र इतना दरिद्र नहीं होता कि अपनी राष्ट्रीय आय का 12 प्रतिशत न बचा सके, दरिद्रता ने राष्ट्रों को युद्धों का सूत्रपात करने से अथवा दूसरी तरह अपनी सम्पत्ति लुटाने से कभी नहीं रोका है।" व्याख्या कीजिए।

"No nation is so poor that it could not save 12% of its national income if it wanted to : poverty has never prevented nations from launching upon wars or from wasting their substances in other ways." Discuss

3 प्रदर्शनकारी प्रभाव से आप क्या समझते हैं ? यह अल्प-विकसित देशों में पूँजी-निर्माण पर कैसे बुरा प्रभाव डालता है ?

What do you mean by the demonstration effect ? How it affects adversely capital formation in under-developed countries ?

4 इस बात की जाँच कैसे की जा सकती है कि प्रस्तावित वृद्धि-दर के लिए आवश्यक धन उपलब्ध है या नहीं ? (1975)

How can one check whether the required funds are available to finance the postulated rate of growth ?

5 "राजनीतिक दृष्टि से कर लगाने के स्थान पर मुद्रा-स्फीति आरम्भ करना आसान हो सकता है लेकिन मुद्रा-स्फीति का नियन्त्रण करने, उसकी उपादेयता अधिक से अधिक करने और उसकी हानियाँ कम से कम करने के लिए आवश्यक उपाय निर्धारित और लागू करना करों में वृद्धि से अधिक आसान नहीं है।" (लुइस) समझाइए। (1975)

"It may be easier politically to start an inflation than to tax but the measures which control inflation, maximize its usefulness and minimize its advantages are no easier to adopt or administer than would be an increase in taxation" (Lewis) Explain

6 लीबन्स्टीन के 'क्रान्तिक-न्यूनतम प्रयत्न' सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। 'प्रबल प्रयास' सिद्धान्त और इस सिद्धान्त में क्या अन्तर है ?

Discuss Liebenstein's 'Critical Minimum Thesis'. What is the difference between this theory and the 'Big Push' theory.

7 आर्थिक विकास के सिद्धान्त पर हर्शमैन के दृष्टिकोण की विवेचना कीजिए।

Discuss Hirchman's approach to the theory of development.

8 'सन्तुलित विकास' पर नर्क्स और लेविस के विचारों के विशेष सन्दर्भ में प्रकाश डालिए।

Elucidate the concept of 'Balanced Growth' with special reference to Nurkse and Lewis

9 आर्थिक विकास के सिद्धान्त पर मिन्ट के दृष्टिकोण की समीक्षा कीजिए।

Examine Myint's approach to the theory of development.

10 निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—

(अ) निर्धनता का दुश्चक्र।

(ब) सन्तुलित विकास।

(स) श्रम-गहन बनाम पूँजी-गहन तकनीकें।

(द) भारत में मानवीय शक्ति का नियोजन।

Write notes on the following :—

(a) Vicious Circle of Poverty.

(b) Balanced Growth

(c) Labour-intensive v/s Capital-intensive Techniques.

(d) Man Power Planning in India.

11 निम्नलिखित में से किन्हीं तीन का विवेचन कीजिए—
(क) प्राथमिकताओं का निर्धारण।
(ख) आन्तरिक लागत (return) दर।
(ग) योजनाओं में विदेशी मुद्रा का आवटन।
(घ) उपभोक्ता वस्तु की माँग का प्रक्षप। (1977)
Discuss any three of the following —
(a) Fixing of priorities
(b) Internal rate of return
(c) Allocation of foreign exchange in plans
(d) Projection of demand for consumption goods

12 टिप्पणियाँ लिखिए—
(अ) आय की असमानताएँ और बचत।
(ब) बचत की इष्टतम दर।
(स) जबरन बचत और आर्थिक विकास। (1976)
Write short notes on any two '—
(a) Inequalities of income and savings
(b) Optimum rate of savings
(c) Forced savings and economic development

13 यदि प्रत्याशित सवृद्धि दर और नैसर्गिक सवृद्धि दर बराबर हैं तो सब कुछ कुशल है किन्तु यदि दरें भिन्न भिन्न हों तो क्या होगा ? (1976)
If the warranted rate of growth and the natural rate of growth(n+m)equal each other people live happily ever after but what if rates differ

14 विकास की प्रक्रिया में निम्न में से किन्हीं तीन का बनावट से हो रहे परिवर्तनों का विश्लेषण कीजिए—
(क) उत्पादन, (ख) उपभोग (ग) रोजगार (घ) विनियोग, (च) व्यापार। (1976)
Analyse the changes taking place in the composition of three of the following in the process of development —
(a) Production (b) Consumption (c) Employment (d) Investment
(e) Trade

15 किन्हीं दो पर टिप्पणियाँ लिखिए— (1976)
(क) आर्थिक विकास में कृषि का महत्त्व।
(ख) विकासशील अर्थ व्यवस्था में आर्थिक नियोजन की उपयोगिता।
(ग) विकास के लिए विदेशी साधन।
(घ) महालनोबिस का 4 क्षत्रीय मॉडल।
Write notes on any two —
(a) The role of agriculture in econom c development
(b) Usefulness of economic planning in developing economies
(c) Foreign resources for development
(d) Mahalanobis 4-sector mode

16 मुख्य सवृद्धिकारक निम्नलिखित कहे जा सकते हैं— (1976)
(अ) उत्पादन फलन पर गति।
(ब) उत्पादन फलन का खिसकना।
पूर्णत समझाइए।
Major growth factors can be indentified as —
(a) Movement along the production function
(b) Shifts in the production function
Explain fully

खण्ड-2. भारत में ग्रार्थिक नियोजन

ग्रध्याय 1 से 9

1 स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में आर्थिक नियोजन के विचार की मुख्य प्रवृत्तियों का संक्षेप में पुन: निरीक्षण कीजिए।

Briefly review the main trends of thought on economic planning in India before Independence.

2 भारत में आर्थिक नियोजन के विकास को बतलाइए।

Trace the evolution of economic planning in India.

3 जनता सरकार ने जो अनवरत योजना' अपनाई है, उसके बारे में आप क्या जानते हैं?

What do you know about 'The Rolling Plan' introduced by the Janata Government.

4 भारत की द्वितीय और तृतीय पचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों तथा उपलब्धियो की तुलना कीजिए और उनमे अन्तर कीजिए। (1969)

Compare and contrast the objectives and the achievements of India's *Second and Third Five Year Plans*

5 तृतीय योजनावधि मे भारतीय अर्थ-व्यवस्था की धीमी प्रगति के कारणों पर प्रकाश डालिए। (1968)

Account for the slow growth of India's economy during the Third Plan Period.

6 प्रथम तीन योजनाओ के उद्देश्यो, लक्ष्यों, वित्तीय स्रोतो और दोषो तथा उपलब्धियों को बताइए।

Point out the objectives, targets, resources and defects and achievements of the First Three Plans

7 भारत की तृतीय पचवर्षीय योजना की उपलब्धियो और कठिनाइयों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। (1967, 69)

Examine critically the achievements and difficulties of India's Third Five Year Plan

8 चतुर्थ योजना पिछली योजनाओं से किन अर्थों में भिन्न थी? इस योजना की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

In what way the Fourth Plan was different from previous plans? Critically examine the Fourth Plan

9 भारत में चतुर्थ पचवर्षीय योजना-काल में वित्त साधनों की व्यवस्था का मूल्यांकन कीजिए। ऐसे कौन से वित्त साधन स्रोत हैं जिनका अभी उपयोग नहीं किया गया है? (1973)

Make an appraisal of resources mobilisation during the Fourth Five Yeai Plan in India What are the main sources of additional development fund: which have not been utilised so far?

10 चतुर्थ योजना के उद्देश्य, लक्ष्य एव वित्तीय साधनों की सक्षेप में आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।

Critically examine the objectives, targets and resources of the Fourth Five Year Plan.

11 तृतीय व चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाओं में विनियोग के आवंटन पर संक्षेप में मत व्यक्त कीजिए। (1975)
Comment briefly on the allocation of investment funds in the Third and Fourth Five Year Plans

12 निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर टिप्पणियाँ लिखिए—
(i) विनियोग प्राथमिकताएँ, (ii) दोहरी आर्थिक व्यवस्था,
(iii) बड़े धक्के का सिद्धान्त, (iv) बैकवाश' प्रभाव।
Write short notes on any two of the following —
(i) Investment Priorities, (ii) Economic Dualism,
(iii) The Big Push (iv) Backwash Effect

13 चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में सर्वांगीण विकास की दर को बढ़ाने एवं सेक्टर के पारस्परिक असन्तुलन को मिटाने के लिए क्या-क्या सुझाव दिए गए थे? (1976)
What measures were initiated in the Fourth Five Year Plan of India to push up the over-all rate of growth and to correct intersectoral imbalance?

14 चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य और पूँजी लगाव के ढंग का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
Briefly explain the targets and capital outlay of the Fourth Five Year Plan

15 चार पंचवर्षीय योजनाओं में क्षेत्रीय आवण्टन का सिंहावलोकन कीजिए। इससे आर्थिक विकास के गतिवर्द्धन में किस सीमा तक मदद मिली है? (1974)
Review the sectoral allocation in the Four Five Year Plans How far has it been helpful in accelerating the pace of economic development?

16 बचत बढ़ाने के प्रयत्नों में एक बड़ा प्रयत्न सार्वजनिक बचत की दर बढ़ाने का होना चाहिए। (चतुर्थ पंचवर्षीय योजना का मध्यावधि मूल्यांकन)। इस मत की पुष्टि करने वाले तर्क समझाइए और यह बताइए कि यह कार्यनीति कहाँ तक सफल रही है। (1975)
"A major thrust of savings efforts must be towards raising the rate of public savings (Mid term Appraised of the Fourth Plan) Explain the arguments which substantiate this view and state how far this strategy has been successful

17 प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं में 'विकास बचत एवं विनियोग दरें—नियोजित तथा वास्तव में प्राप्त" की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
Critically examine the growth rates and saving (investment) rates planned and achieved in the first three Five Year Plans

18 प्रथम तीन योजनाओं में वित्तीय आवण्टन की परीक्षा कीजिए।
Critically examine the financial allocation in the first three Five Year Plans

19 प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं में क्षेत्रीय लक्ष्यों की विवेचना कीजिए।
Discuss the sectoral targets in the first three Five Year Plans

20 प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं की उपलब्धियों की विवेचना कीजिए।
Discuss the achievements of the first three plans

21 "निर्धनता पर विशेष असर डाल सकने में योजना की असफलता का एक कारण अपर्याप्त वृद्धि दर रही है।" (एप्रोच टू फिफ्थ प्लान) क्या आप सहमत हैं? योजना की पिछली दो दशाब्दियों के निर्धनता पर पड़े प्रभाव की विवेचना कीजिए और इस मामले में असफलता के कारण बताइए। (1974)

"One reason for the failure of planning to make a major dent on poverty has been the inadequate rate of growth." (Approach to the Fifth Plan) Do you agree ? Discuss the impact that the last two decades of planning has had on the poverty in India and give reasons for our failure on this front.

22 भारतीय योजनाओं में विनियोग-वृद्धि के उपाय बतलाइए।
Suggest measures to increase investment in Indian plans

23 भारतीय नियोजन के सन्दर्भ में उत्पादकता-सुधार के उपाय बतलाइए।
Suggest measures to improve productivity with reference to Indian Planning

24 "भारत के गत दो दशकों में आर्थिक नियोजन की उपलब्धियाँ" विषय पर एक आलोचनात्मक निबन्ध लिखिए।
Write a critical essay on 'Economic Planning in India during the last two Decades"

25 'पाँचवीं पंचवर्षीय योजना' के प्रमुख तत्त्वों की विवेचना कीजिए। क्या आप इस योजना को पूर्ववर्ती योजनाओं की तुलना में अधिक अच्छा और व्यावहारिक समझते हैं ?
Discuss the main features of the Fifth Five Year Plan Do you regard it more effective and practical in comparison to the previous plans ?

26 चौथी पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की पूर्ति से कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है ? पूर्णतया विवेचना कीजिए। (1976)
What measure of success has been achieved in realising the major objectives and targets of the Fourth Five Year Plan ? Discuss fully

27 भारतीय योजनाओं में वित्तीय साधनों के आवण्टन की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिए। (1977)
Critically examine the allocation of financial resources in Indian plans.

28 भारत में योजना की सफलताएँ एवं असफलताएँ बताइए। (1976)
Point out the achievements and failures of Planning in India.

29 भारत में योजना नियोजन के प्रशासनिक तन्त्र का वर्णन कीजिए। (1976)
Describe the administrative machinery for Plan formulation in India

30 "सम्भावित अथवा असम्भावित कठिनाइयों के बावजूद प्रत्येक क्षेत्र में, विशेषकर उद्योगों में, प्राप्त प्रगति ने हमारी विकास व्यूह-रचना को सही सिद्ध किया है और इसने अपनी अर्थ-व्यवस्था को सक्रियता एवं मजबूती प्रदान की है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? तर्क दीजिए। (1977)
"Despite expected or unexpected difficulties, progress achieved in very sector specially industries, has proved the correctness of our strategy. And this has activised and strengthened our economy" Do you agree with this statement ? Give arguments

31 भारत के सन्दर्भ में निम्नलिखित निवेश-कसौटियों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए—
(क) सामाजिक सीमान्त उत्पादकता कसौटी,
(ख) सीमान्त प्रति व्यक्ति पुनर्निवेश कसौटी,
(ग) पुनर्निवेश-अतिरेक की कसौटी। (1977)
Critically examine the following investment criteria with special reference to India :—
(a) The social marginal productivity criterion,
(b) The marginal per capita re-investment criterion,
(c) The re-investible surplus criterion.

32 एक पंचवर्षीय योजना में उत्पादन लक्ष्य निर्धारित करने की रीतियों को समझाइए। (1977)
Explain the method or methods of fixing output targets in a five year plan

33 सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रत्ययों (Concepts) का विवेचन कीजिए—
(क) छाया कीमतें (ख) बाह्य प्रभाव, (ग) सामाजिक बट्टा दर,
(घ) परियोजना की आयु, (ङ) जोखिम।
Discuss the following concepts in relation to the social cost benefit analysis
(a) Shadow prices (b) external effects, (c) social discount rate,
(d) life of the project, (e) risk.

34 भारत में योजना निर्माण एवं मूल्यांकन के प्रशासनिक तन्त्र का वर्णन कीजिए। इसके कार्य का मूल्यांकन कीजिए।
Describe the administrative machinery for plan formulation and evaluation in India Evaluate its performance

35 "विकास के साधन समूचे देश में बराबर वितरित नहीं किए जाने चाहिए।" क्या आप इस मत से सहमत हैं? अपने विचार व्यक्त कीजिए। (1977)
"Development funds should not be spread evenly all over the country" Do you agree with this view? Give your own comments

36 आर्थिक नियोजन में आदा-प्रदा सारणी के निर्माण एवं उपयोग के लिए कौन-सी सूचनाएं आवश्यक हैं? क्या ये भारत में उपलब्ध हैं? भारत की किसी पंचवर्षीय योजना से उदाहरण दीजिए। (1976)
What information is essential for preparing and using input-output tables for economic planning? Is it available in India? Give illustrations from any Five Year Plan of India

37 भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार नीति की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। (1976)
Give a critical account of employment policy in India under the different Five Year Plans

38 जनता सरकार की छठी राष्ट्रीय पंचवर्षीय योजना (1978-83) की मोटी रूपरेखा बताइए।
Draw major outlines of the Sixth National Five Year Plan (1978-83) of introduced by the Janta Government.

39 वर्ष 1978-79 की वार्षिक योजना की मोटी रूपरेखा बताइए।
Draw major outlines of the Annual Plan for 1978-79

40 योजना आयोग के बदलते गठन, स्वरूप और भूमिका पर प्रकाश डालिए।
Explain the changing composition, nature and role of the Planning Commission

41 भारतीय नियोजन जिस रूपरेखा पर आधारित है उसकी व्याख्या कीजिए तथा नियोजनतन्त्र की तकनीक में जो परिवर्तन हुए हैं उनकी व्याख्या कीजिए।
Explain the plan frame underlying plans in India and trace the developments in the techniques of plan formulation that have been introduced recently

42 भारतीय नियोजन आयोग को 'सुपर केबिनेट' कहा गया है। क्या यह आलोचना सही है? नियोजन आयोग और केबिनेट के मध्य आदर्श सम्बन्ध क्या होना चाहिए?

India's Planning Commission has been described as a Super Cabinet. Is this criticism correct ? What would be the ideal relationship between the Planning Commission and the Cabinet ?

43 संक्षेप में उस तरीके का उल्लेख कीजिए जिसके अनुसार केन्द्र मे भारतीय योजना का निर्माण होता है। क्या आप राज्यो के लिए पृथक नियोजन-आयोगों की स्थापना का समर्थन करेंगे ?
Indicate briefly the manner in which the Indian plan at the centre is formulated. Would you advocate establishment of separate Planning Commissions for the states

44 भारतीय योजना तन्त्र में क्या दोष है ? इन दोषों को दूर करने हेतु सुझाव दीजिए।
What are the defects of Indian Planning Machineries? Give suggestions for the removal of these defects

45 केन्द्रीय तथा प्रादेशिक प्रशासनो के (अ) योजना बनाने तथा (ब) उन्हें कार्यान्वित करने के सापेक्ष कार्य बताइए। वर्तमान व्यवस्था मे आप किन सुधारो का सुझाव देंगे ?
Discuss the relative roles of the Union and State Government in the formulation and implementation of plans in India What improvements would you suggest in the existing relationship

अध्याय 10 एवं 11

1 भारत में गरीबी की समस्या का रूपांकन कीजिए। (1975, 76)
Delineate the problem of poverty in India

2 भारत में गरीबी एव असमानता के लिए हरित क्रान्ति के निहितार्थों पर विचार कीजिए। (1975, 76)
Discuss the implications 'Green Revolution' for poverty and inequality in India

3 भारत में गरीबी एव असमानता की समस्या का विश्लेषण कीजिए। इन पर भारतीय योजनाओं की व्यूह-रचना एव नीतियो का क्या प्रभाव पड़ा है ? (1976 77)
Analyse the problem of poverty and inequality in India What has been the impact of the strategy and policies of the Five Year Plans on these ?

4 भारत में बेरोजगारी समस्या के स्वभाव की व्याख्या कीजिए। भारत सरकार द्वारा हाल में अपनाई गई विभिन्न रोजगार नीतियों का परीक्षण कीजिए। (1976)
Discuss the nature of unemployment problem in India. Examine the various employment policies which have been adopted by the Government of India recently

5 भारत में गरीबी के मुख्य कारण क्या हैं ? इस स्थिति को सुधारने के लिए, अल्पकालीन एव दीर्घकालीन, क्या उपाय किए जा सकते हैं ? (1976)
What are the main causes of poverty in India ? What steps, short-term and long-term, can be taken to improve the situation

6 भारत की पचवर्षीय योजनाओं में रोजगार नीति की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। (1976)
Critically examine the employment policy under Five Year Plans in India

7 क्या भारत में विकास दर को अधिकतम करने और रोजगार को अधिकतम करने के उद्देश्यों में अन्तर्विरोध है ? कारण बताइए। समस्या से निबटने के लिए आप किन रोजगार नीतियों का सुझाव देंगे ?

Is there a contradiction between the goal of maximising growth rate and maximising employment in India ? Give reasons What employment policies would you suggest to tackle the problem ?

8 चौथी योजना में अधिकाधिक रोजगार-अवसर पैदा करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया था। इस दिशा में कौन से कदम उठाए गए और उनमें कहां तक सफलता प्राप्त हुई। (1972)
The Fourth Plan has laid emphasis on the need for generating more and more employment opportunities. What steps have so far been taken and with what success to achieve this orientation ?

9 रोजगार के क्षेत्र में पंचवर्षीय योजनाओं की उपलब्धियों का आंकलन कीजिए। (1974)
Assess the achievements of Five Year Plans in respects of employment

10 भारत में बेरोजगारी की समस्या की प्रकृति पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिए। आप रोजगार नीतियों के सन्दर्भ में क्या सुझाव देंगे।
Write a critical essay on the nature of unemployment problem in India What would you like to suggest regarding the employment policies ?

अध्याय 12

1 राजस्थान में औद्योगीकरण की प्रगति का वर्णन कीजिए। इसकी गति बढ़ाने के सुझाव दीजिए।
Discuss the progress of industrialisation in Rajasthan Suggest measures for its acceleration

2 राजस्थान की अर्थ व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं की विवेचना कीजिए। क्या आप राजस्थान के सन्तुलित विकास के लिए उपाय सुझाएंगे ?
Discuss different aspects of Rajasthan's Economy What measures would you suggest for her balanced development

3 राजस्थान की पंचवर्षीय योजनाओं की उपलब्धियों की विवेचना करो। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के विकास में इन्होंने क्या योगदान दिया है ?
Discuss the achievements of Rajasthan's Five Year Plans What has been the contribution of the public sector industries to the development of the state ?

4 "राजस्थान की आर्थिक विकास योजनाओं में औद्योगिक विकास की सर्वथा उपेक्षा की गई है।" क्या आप इस आरोप को ठीक मानते हैं ? अपने उत्तर के कारण बताइए।
"Industrial development has been grossly neglected in the development plans for Rajasthan " Would you ag ee with this charge ? Give reasons for your answer

5 "राजस्थान की पंचवर्षीय योजनाएँ अधिकतर आर्थिक ऊपरी ढांचा बनाने में लगी रही हैं।" आप इस पर बल देने को कहां तक उपयुक्त मानते हैं ?
"Rajasthan's Five Year Plans have been largely concerned with the creation of economic overheads "How far do you think that this emphasis was justified

6 राजस्थान में योजना की दो दशाब्दियों की उपलब्धियों की विवेचना कीजिए। (1974)
Discuss the achievements of the two decades of planning in Rajasthan

7 राजस्थान की तृतीय एवं चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की प्राथमिकताओं का समालोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए। (1974)

Give a critical appraisal of the priorities in Rajasthan's Third and Fourth Five Year Plans.

8 राजस्थान की तीसरी व चौथी पंचवर्षीय योजनाओं के क्षेत्रीय आवण्टन का समालोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए। (1975, 76)
Critically evaluate the sectoral allocation in the Third and Fourth Five Year Plans of Rajasthan

9 पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान राजस्थान में कृषि सुधार के प्रयत्नों का वर्णन कीजिए। (1975, 76)
Describe the efforts for agricultural improvement made in Rajasthan during the Five Year Plans

10 राजस्थान की अर्थ-व्यवस्था की मुख्य समस्याएँ क्या है ? उनको हल करने के प्रयासों का मूल्यांकन कीजिए।
What are the main problems of the development of Rajasthan's economy? Evaluate the attempts to solve them.

11 "हमारी योजनाएँ योजनाएँ नहीं है, वे तो इच्छित खर्च के कार्यक्रम मात्र है।" राजस्थान में योजना के आधार पर इस कथन की परीक्षा करो। (1976)
"*Our plans are no plans, they are merely programmes of desired expenditure.*" Examine the statement in the light of planning in Rajasthan.

12 राजस्थान में आर्थिक नियोजन की सफलताओं एवं असफलताओं की व्याख्या कीजिए। (1976)
Discuss the achievements and failures of economic planning in Rajasthan.

13 योजनाओं के दौरान, राजस्थान सरकार द्वारा, औद्योगिक विकास के लिए जो प्रयत्न किए गए उनका वर्णन दीजिए एवं आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए। (1976)
Describe and critically evaluate the efforts made by Government of Rajasthan for Industrial development during the plans.

14 *25 वर्षों के आर्थिक आयोजन के बावजूद राजस्थान देश के सबसे कम विकसित राज्यों में से* क्यों है ? योजनाओं की नीतियों की इस सन्दर्भ मे समीक्षा कीजिए। (1977)
Why is Rajasthan one of the least developed States of India despite 24 years of planning ? Appraise the policies of the Five Year Plans in this context.

Miscellaneous

1 निम्नलिखित में से किन्हीं तीन पर टिप्पणियाँ लिखिए—
(क) विदेशी मुद्रा के आवण्टन की कसौटियाँ।
(ख) भारत की योजनाओं में बचत-दरें।
(ग) भारत मे बेरोजगारी एवं गरीबी में सम्बन्ध।
(घ) भारत मे वस्तु-नियन्त्रण सम्बन्धी हाल की नीति।
(ङ) आगत-निर्गत विश्लेषण की सीमाएँ। (1977)
Write short notes on any three of the following :—
(a) Criteria for allocating foreign exchange.
(b) Saving rates in Indian plans
(c) Relation between unemployment and poverty in India
(d) Recent policy regarding commodity controls in India.
(e) Limitations of input-output analysis.

2 निम्नलिखित मे से किन्हीं दो पर स॑ ित टिप्पणियाँ लिखिए—

(क) विदेशी विनिमय आवण्टन ।

(ख) राजस्थान की पाँचवी पंचवर्षीय योजना ।

(ग) भारत मे उत्पादकता बढाने के लिए उपाय । (1976)

Write short notes on any two of the following .—

(a) Foreign exchange allocation.

(b) Fifth Five Year Plan of Rajasthan.

(c) Measures to improve productivity in India

3 (क) भारत में उत्पादकता बढाने,

(ख) बचत और विनियोग बढ़ाने, और

(ग) कीमतों के स्थिरीकरण,

के लिए हाल ही मे उठाए गए कदमो की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिए । (1977)

Critically examine the recent steps to—

(a) Raise productivity,

(b) Increase savings and investment, and

(c) Stabilize prices in India.

4 निम्नलिखित मे से किन्ही दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

(क) भारत मे उत्पादकता बढ़ाने के लिए हाल मे किए गए उपाय,

(ख) माँग प्रक्षेप की विधियाँ,

(ग) रोजगार की 'क्रैश' एव 'अप्रेन्टिस' योजनाएँ,

(घ) 'बचत की इष्टतम दर' की धारणा ।

Write short notes on any three of the following :—

(a) Recent measures to improve productivity in India

(b) Techniques of demand projection

(c) 'Crash' and 'Apprenticeship' programmes for employment

(d) Concept of 'optimum role of saving'

5 " विकास कोष समस्त देश मे बराबर वितरित नहीं किए जाने चाहिए, सर्वाधिक विकास की सम्भावनाओ वाले क्षेत्रों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए (लेविस)"। इस कथन की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिए । (1976)

"Development funds should not be spread evently all over the country, areas with the greatest potential should have priority " (Lewis). Critically examine the above statement

6 अपने जिला मुख्यालय पर एक दुग्ध-डेयरी की स्थापना के बारे में प्रोजेक्ट का मूल्यांकन कैसे करेंगे ? (1976)

How would your evaluate the project on establishment of a modern Dairy at your district headquarters

7 किन्ही दो पर टिप्पणियाँ लिखो—

(क) निजी और सार्वजनिक क्षेत्रो के मध्य वितरण की कसौटियाँ,

(ख) छाया-कीमतें ।

(ग) आर्थिक विकास में मूल्य नीति । (1976)

Write short notes on any two —

(a) Criteria of allocation between private and public sectors

(b) Shadow prices.

(c) Price policy in Economic Development.

Appendix 16

(क) छठी योजना (1978-83) में प्रमुख वस्तुओं के उत्पादन अनुमान

क्रम संख्या	मद	इकाई	1977-78	1982-83
1.	खाद्यान्न	10 लाख टन	121·00	140 48 से 144 48
2	गन्ना	10 लाख टन	156 90	188·00
3.	कपास	लाख गाँठें (प्रत्येक 170 कि.ग्रा.की)	64·30	81·50 से 92 50
4	तिलहन (प्रमुख)	लाख टन	92·00	112·00 से 115 00
5.	कोयला	10 लाख टन	103·20	149 00
6.	कच्चा पेट्रोलियम	10 लाख टन	10 77	18 00
7.	कपड़ा मिल क्षेत्र	10 लाख मीटर	4200 00	4600 00
	विकेन्द्रित क्षेत्र	10 लाख मीटर	5400 00	7600 00
8.	नाइट्रोजनीय उर्वरक (एन)	हजार टन	2060 00	4100 00
9.	फास्फेटिक उर्वरक (पी. ओ.)	हजार टन	660·00	1125·00
10.	कागज और गत्ते	हजार टन	900 00	1250·00
11.	सीमेंट	10 लाख टन	19·00	29 00 से 30 00
12.	मृदु इस्पात	10 लाख टन	7·73	11 80
13.	अल्यूमीनियम	हजार टन	180 00	300 00
14.	वाणिज्यिक वाहन	हजार संख्या	40 00	65 00
15.	बिजली उत्पादन	जी डब्ल्यू.एच.	100 00	167 00

(ख) क्षेत्रीय विकास का स्वरूप 1977-78 से 1982-83

क्रम संख्या	क्षेत्र	बढ़ाए गए मूल्य का भाग 1977-78	बढ़ाए गए मूल्य का भाग 1982-73	विकास दर का प्रतिशत बढ़ाए गए मूल्य	विकास दर का प्रतिशत उत्पादन
1.	कृषि	42·50	38·71	2·76	3·98
2.	खनन और विनिर्माण	18 47	18·76	5 03	6 92
3.	बिजली	1·71	2·14	9·55	10 80
4.	निर्माण कार्य	5 74	7 64	10 09	10 55
5.	परिवहन	4·97	4·96	4 65	6·24
6.	सेवाएँ	26·61	27·79	5·61	6 01

स्रोत : योजना 22 अप्रेल-21 मई, 1978, पृ. 5.

(ग) 1978-83 की पंचवर्षीय योजना के लिए संसाधन

संसाधन	(करोड़ रुपये)
1. सरकारी क्षेत्र से बचत	27,444
2. वित्तीय संस्थाओं से बचत	1,973
3. गैर-सरकारी निगमित क्षेत्र से बचत	9,074
4 आन्तरिक बचत	62,354
5 कुल आन्तरिक बचत	100,855
6 निम्नलिखित से कुल प्राप्ति—	
(क) विदेशी सहायता	3,955
(ख) विदेशी मुद्रा संचय से धन निकाल कर	1,180
7. चालू विकास परिव्यय के लिए बजट व्यवस्था	10,250
परिवार के श्रम द्वारा निर्मित सम्पत्तियों को छोड़ कर योग	116,240

(घ) सरकारी क्षेत्र परिव्यय

सरकारी क्षेत्र में 69,380 करोड़ रुपये का परिव्यय रखा गया है। इसके लिए वित्तीय व्यवस्था निम्नलिखित ढंग से की जाएगी—

परिव्यय	(करोड़ रुपये)
1. 1977-78 की कराधान की दरों पर केन्द्रीय और राज्य सरकारों के संसाधन	12,889
2. 1977-78 के किराए और भाड़ों की दरों पर सरकारी प्रतिष्ठानों का अंशदान	10 296
3. अतिरिक्त संसाधनों को जुटाना	13,000
4. सरकार, सरकारी प्रतिष्ठानों आदि द्वारा बाजार से लिया गया रिण (सकल)	15,986
5. छोटी बचत	3,150
6. राज्य भविष्य निधि	2,953
7. वित्तीय संस्थाओं के सावधिक रिण (सकल)	1,296
8. विविध पूँजीगत आय (सकल)	450
9. विदेशी सहायता (सकल)	5,954
10. जमा विदेशी मुद्रा का उपयोग	1,180
जोड़	67,154
11. अपूरित अन्तर (घाटे की अर्थ-व्यवस्था)	2,226
केवल सकल भुगतान : मद एक में ब्याज शामिल है। कुल जोड़	69,380

स्रोत : योजना 22 अप्रैल-21 मई, 1978, पृष्ठ 8.

Appendix 17

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की एक तस्वीर[1]

पिछले पच्चीस वर्षों में राष्ट्र को सन्तुलित आर्थिक प्रगति और जनसामान्य के बीच चीजो के न्यायोचित वितरण के लिए, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों मे भारी पूँजी लगायी गई है।

हमारे घोषित सामाजिक-आर्थिक लक्ष्यो के सन्दर्भ मे इस पूँजी निवेश की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है—यह ऐसी चीज है जो प्रारम्भ मे कुछ त्याग चाहती है—ऐसा त्याग जिसके बदले मे, बाद मे लाभ होने वाला हो। किसी पूँजी निवेश की 'कीमत' और उसके लाभ हमे समय के विभिन्न चरणों मे ही ज्ञात हो पाते है, इसीलिए समय के सन्दर्भ मे भी इनका मूल्य हमे आँकना पड़ता है।

सार्वजनिक क्षेत्र का कोई उद्योग सामाजिक स्तर पर लाभदायक है या नही, यह जाँचने के लिए यही देखा जाता रहा है कि वह कुल समाज के काम का है या नही, और यह कि वह किसी क्षेत्र के विकास की गति को कितनी अच्छी तरह तीव्र करता है। इसलिए किसी योजना की सामाजिक उपादेयता की जाँच के लिए एक ओर जहाँ यह जरूरी होता है कि हम उससे होने वाले आर्थिक लाभ के पक्ष को देखें, वही उसकी अप्रत्यक्ष लागत और लाभ को भी ध्यान मे रखना जरूरी होता है। बहरहाल इस सिलसिले मे कुछ दूसरे दृष्टिकोण भी हैं जो जोर देकर यह कहते है कि सामान्यत विकास मे सहायक होने के अलावा किसी सरकारी उद्योग के लिए यह भी जरूरी है कि वह समय के एक दौर मे होने वाले आर्थिक और व्यावसायिक लाभो की ओर भी पूरा ध्यान दें। लेकिन सार्वजनिक सस्थानो की समिति ने सार्वजनिक सस्थानो की भूमिका और उपलब्धियो पर अपनी रिपोर्ट मे कहा है कि सार्वजनिक सस्थानो के काम को जाँचते हुए केवल आर्थिक लाभ या हानि को प्रमुख आधार नही बनाना चाहिए बल्कि सार्वजनिक राजस्व मे उसके योगदान को भी अपेक्षित जगह दी जानी चाहिए।

अतीत मे हुई इस तरह की बहसें पिछले कुछ वर्षों मे नही सुनाई पड़ती रही तो इसीलिए कि बहुतेरे सार्वजनिक सस्थाओ की कार्यक्षमता मे (और उनके नतीजों) मे काफी वृद्धि हुई है। फिर भी यह आलोचना तो होती है कि सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयो की कार्यक्षमता मे हुई वृद्धि, उनमे निवेशित पूँजी के हिसाब से पर्याप्त लाभ नही दे सकी। इस तरह की शिकायतें इतना सकेत तो करती ही हैं कि सार्वजनिक सस्थानो के काम के तटस्थ मूल्यांकन के लिए और बेहतर मापदण्ड बनाए जाने की जरूरत है। केन्द्रीय सरकार के 145 औद्योगिक और व्यावसायिक सस्थानो मे 1976-77 वर्ष मे हुए काम का विश्लेषण करने पर हर इकाई की स्थिति का अलग से, और सबकी स्थिति का सामूहिक रूप से भी साफ पता चलता है। यहाँ दी गई सामग्री से पिछले तीन वर्षों मे सार्वजनिक संस्थानो की सामान्यत. जो आर्थिक तस्वीर रही है वह उभरती है।

1. दिनमान अप्रेल-मई, 1978 (आर. वेंकटवारी का लेख)।

1976–77 मे 145 सस्थानो का पूँजी निवेश (चुक्ता पूँजी और लम्बी अवधि के ऋण) रु 11,097 करोड था, पिछले वर्ष पूँजी निवेश (1974-75 मे 129 सस्थान और रु 3836 करोड) मे रु 2,124 करोड की वृद्धि हुई थी। पूँजी निवेश मे प्रति वर्ष हुई वृद्धि इस प्रकार है—1975-76 के बाद 1976-77 मे यह वृद्धि 23 67 प्रतिशत रही जबकि 1975-76 और 1974-75 मे यह क्रमश 24 8 प्रतिशत और 16 प्रतिशत रही थी।

इन सस्थानो मे से 135 कार्यरत सस्थानो की, टैक्स गणना के पूर्व कुल आय 1975–76 मे 476 17 करोड रु थी और 1974–75 मे 165 64 करोड रु थी। टैक्स अदायगी के बाद 135 कार्यरत सस्थानो की कुल आय 1976–77 मे 239 59 करोड रु, 1975–76 मे 129 11 करोड रु और 1974–75 मे 183 55 करोड रु थी। मगर निवेशित पूँजी के आधार पर उपलब्ध लाभ की दर जाँची जाए तो इस प्रकार होगी—31 मार्च, 1977 तक लगाई गई पूँजी 10,861 करोड रु और मूल्य ह्रास और राजस्व के खर्चों को बाद देकर कल आय थी 1053·57 करोड रु, जिसका मतलब है कि उपलब्ध लाभ दर 9 70 प्रतिशत रही। लेकिन चुकता पूँजी पर सैकडे की दर से कर के बाद वास्तविक लाभ 4 6 प्रतिशत रहा। 1975–76 मे यह लाभ था 2 9 प्रतिशत और 1974–75 मे चुकता पूँजी पर लाभ के अर्जन की दर थी 4 9 प्रतिशत (देखें तालिका 1)।

तालिका—1. सार्वजनिक सस्थानो के पाँच वर्षों की तस्वीर

	1972–73	1973–74	1974–75	1975–76	1976–77
1. पूँजी निवेश करोड रु मे	5571	6237	7261	8973	11097
2 व्यवसाय करोड रु. मे	5299	6777	10217	11688	14542
3 कुल लाभ(ब्याज और करों से पहले) करोड रु. में	245	273	559	668	1054
4 वास्तविक लाभ (करों से पहले)	83	149	312	306	476
5 वास्तविक लाभ (करों के बाद)	18	64	184	129	240
6 आन्तरिक साधनो से (करोड रु.)	260	387	580	526	719
7. पूँजी (प्रतिशत) केफल	5 1	5 2	8 4	7 6	9 7
8 चुकता पूँजी केफल (प्रतिशत)	0 6	1 9	4 9	2 9	4 6
9. रोजगार (न. 1 लाख)	9 32	13·14	14 08	15 05	15 75
10. कर्मचारियों पर खर्च					
(ए) वेतन मजदूरी (करोड रु.)	541	749	1060	1352	1408
(बी) सामाजिक सुविधाओं और आवास पर (करोड रु)	41	53	73	89	95
	582	802	1133	1441	1503

बिक्री से हुए व्यवसाय में 24 4 प्रतिशत की वृद्धि 1975–76 में हुई (14,542 रु.)। दरअसल 145संस्थानों द्वारा किए गए व्यवसाय मे चुकता पूंजी पर यह सैकड़ावार 1976–77 मे 139·9 थी, जबकि 1975–76 में 132·4 प्रतिशत। उत्पादन उद्योगो के समूह मे उनकी क्षमता के उपयोग मे प्रशसनीय प्रगति देखने को मिली। 1976–77 मे 76 सस्थानो ने क्षमता का 75 प्रतिशत अधिक उपयोग किया, इससे पहले के वर्ष मे यह 69 प्रतिशत था। 1976–77 मे 34 इकाइयों मे कार्यक्षमता का उपयोग 50 से 75 प्रतिशत के बीच था। इससे पहले के वर्ष मे यही उपयोग 28 प्रतिशत था। केवल 17 इकाइयां 1976–77 मे 50 प्रतिशत से कम का उपयोग कर रही थी। इससे पहले के वर्ष मे यह प्रतिशत 15 था।

स्टील, कोयला, यातायात के उपकरणों, पैट्रोलियम और रसायनों के उत्पादन संस्थानो ने अपनी कार्यक्षमता का अधिकतम उपयोग किया।

सस्थानो के विभिन्न समूहो मे काम करने वाले कर्मचारियो की सख्या 1976–77 मे 15 75 लाख थी जबकि 1975–76 मे यह संख्या 15 05 लाख थी। रोजगार के इन आँकडो मे नेशनल टेक्सटाइल कॉरपोरेशन और उसके सहयोगी सस्थानो के कर्मचारियो की सख्या शामिल नही है जो 2 लाख है।

1976-77 और 1975-76 मे नौकरियों मे हुई वृद्धि क्रमशः 4 65 प्रतिशत और 5·1 प्रतिशत थी। 1975-76 मे वेतन, मजदूरी और बोनस समेत दूसरी अन्य सुविधाओं के अन्तर्गत वितरित राशि 1351 79 करोड रु. थी जो कि 1976-77 मे बढकर 1407·51 करोड़ रु हो गई। इस तरह अपने पहले के वर्ष से यह वृद्धि 4·12 प्रतिशत रही।

चौथी योजना की अवधि मे 1973-74 की समाप्ति पर लाभांश, ब्याज, आयकर और उत्पादन शुल्क के रूप मे राजस्व मे सस्थानो का योगदान 3120 करोड़ रु था। राजस्व मे इनका योगदान 1974-75, 1975-76, 1976-77 मे क्रमश. 1130 करोड रु, 1368 करोड रु. और 1597 करोड रु. था। 1976-77 मे 145 सस्थानो की निर्यात क्षमता मे भी काफी बढोत्तरी हुई। 1976-77 में माल के निर्यात से 2248 08 करोड़ रु की विदेशी मुद्रा की आय हुई जबकि 1975-76 मे यह आय 1535 83 करोड रु और 1974-75 में 1113·48 करोड़ रु. थी।

लाभ की दृष्टि से, करों से पूर्व जो पांच सस्थान सबसे ऊपर रहे, वे है—इण्डियन ऑयल कॉर्पोरेशन (106 41 करोड़ रु), हिन्दुस्तान स्टील (79·46 करोड रु.), भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स (59 62 करोड रु.), एम. एम. टी. सी (49·05 करोड रु) और ओ. एन जी सी (38 02 करोड़ रु)।

पूंजी निवेश की दृष्टि से ये पांच सस्थान सबसे ऊपर हैं—

बोकारो स्टील	(1341 करोड़ रु)
हिन्दुस्तान स्टील	(1209 करोड़ रु)
फर्टीलाइजर कॉर्पोरेशन	(1110 करोड़ रु.)
शिपिंग कॉर्पोरेशन	(503 करोड़ रु.)
फूड कॉर्पोरेशन	(429 करोड़ रु.)

तालिका 1976-77 में व्यवसाय की दृष्टि से सबसे ऊपर रहे 10 संस्थान

संस्थान का नाम	कुल बिक्री (करोड़ रुपयों में)	जोड़ का प्रतिशत
1 इण्डियन आयल कार्पोरेशन	2670 54	18 4
2 फूड कार्पोरेशन ऑफ इण्डिया लि	2175 05	15 0
3 हिन्दुस्तान स्टील लि	1076 90	7 4
4 स्टेट ट्रेडिंग कार्पोरेशन	1037 94	7 1
5 एम एम टी सी लि	843 49	5 8
6 भारत पैट्रोलियम कार्पोरेशन लि	522 09	3 6
7 हिन्दुस्तान पैट्रोलियम कॉर्पोरेशन	511 35	3 5
8 भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लि.	470 19	3 2
9 एयर इण्डिया	272 27	1 9
10 सिविल कार्पोरेशन ऑफ इण्डिया	258 75	1
दस संस्थानों का जोड़	9838 57	67 7
सभी संस्थानों का जोड़	1,4542 23	100

कुल मिलाकर 135 कार्यरत संस्थानों (20 बन रहे संस्थानों, 7 इंश्योरेंस कम्पनियों और कम्पनी एक्ट 1965 की धारा 25 के अन्तर्गत रजिस्टर्ड तीन संस्थानों और नेशनल टैक्सटाइल कार्पोरेशन और सहयोगी संस्थानों के अलावा) ने करों के पूर्व 476 17 करोड़ रु का वास्तविक लाभ अर्जित किया। 92 संस्थानों ने करों से पहले 602 19 करोड़ रु का घाटा दिखाया। फलस्वरूप सभी कार्यरत संस्थानों का अर्जित लाभ 1976-77 में 476 17 करोड़ रु रहा जबकि 1975-76 में यह 305 65 करोड़ रु था।

लाभ अर्जित करने के मामले में पहले वर्ष की तुलना में हिन्दुस्तान स्टील, इण्डियन ऑयल कॉर्पोरेशन, भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स, एम एम टी सी ने वृद्धि दिखायी।

कार्यरत सार्वजनिक संस्थानों की एक समीक्षा यही बताती है कि इनके कामों में गुणात्मक परिवर्तन के और कार्यक्षमता को अधिकतम करने के शुभ चिह्न दीख पड़ रहे हैं।

Appendix 18

ग्रन्थ-कोश

(BOOK-BANK)

खण्ड–1

1. *Agarwala & Singh (Eds)* : Economics of Under-development
2 *Adelman* Theories of Economic Growth & Development
3. *Bright Singh, D* : Economics of Development
4 *Bauer, P. T and Yamey, B. S* : The Economics of Under-Developed Countries.
5. *Baljeet Singh and V B Singh* : Social and Economic Change
6. *Bonne, Alfred* Studies in Economic Development
7. *Baran, Paul* : The Political Economy of Growth
8 *Baumol* : Economic Dynamics
9 *Chakrawarti, S* ; Logic of Investment Planning
10. *Coale and Hoover* : Population and Economic Development in Low Income Countries
11. *Domar, Evsey* : Essays in the Theory of Economic Growth
12. *Das, Nabagopal* . The Public Sector in India.
13 *Durbin, E F M* : *Problems of Economic Planning*
14 *Edward, F. Denison* : Sources of Post War Growth in Nine Western Countries.
15. Five Year Plans
16. Five Year Plans of Rajasthan
17. *Gupta, K. R.* · Economics of Development.
18. *Ghosh, Alak* : New Horizons in Planning
19. *Higgins, B* : Economic Development
20. *Hirschman, A O.* : The Strategy of Economic Development
21. *Harrod, R F* : Towards Dynamic Economics
22. *Hoselitz, B F* : Theories of Stages of Economic Grqwth
23. *Hoselitz, Berl, F* : Sociological Aspects of Economic Growth.
24. *Hanson, A. H* : Public Enterprise and Economic Development.
25. *Heyek, F A.* : Collectivist Economic Planning.
26. *Hussian, I. Z* : Economic Factors in Economic Growth.
27. *Henderson, P. D* : Investment Criteria for Public Enterprises in Public Enterprises edited by R. Turvey.
28. *Jacob Viner* : Economics of Development.
29. *Kaldor, N.* : Essays of Economic Stability and Growth.
30. *Kalecki* : Theory of Economic Dynamics.

31 Kindleberger C P — Economic Development
32 Leibenstein Harvey — Economic Backwardness and Economic Growth
33 Lewis W A — The Theory of Economic Growth
34 Lewis W A — Development Planning
35 Lester W A — The Theory of Economic Growth
36 Little and Mirrless — Social Cost Benefit Analysis
37 Mishan E J — Cost Benefit Analysis
38 Meier G M and Baldwin R E — Economic Development
39 Meier G — Leading Issues in Development Economics
40 Myrdal Gunnar — Economic Theory and Under developed Regions
41 Mehta J K — Economics of Growth
42 Meade J E A — A Neo classical Theory of Economic Growth
43 Marx Black (Ed) — The Social Theories of Talcott Parsons
44 Nag D S — Problems of Under developed Economy
45 Nurkse Ragner — Some Problems of Capital Formation in Under developed Countries
46 Ncaer s Paper — Price Policy and Economic Growth
47 Publication U N — Measures for the Economic Development of Under-developed Country
48 Publication U N — Development Decade
49 Publication U N — Determinants and Consequences of Population Trends
50 Rostow W W — The Process of Economic Growth
51 Robinson — (i) Exercises in Economic Analysis
(ii) The Accumulation of Capital
(iii) An Essay on Marxian Economics
52 Reddaway — The Development of the Indian Economy
53 Singh V B — Theories of Economic Development
54 Stanely Bober — The Economics of Cycles and Growth
55 Simon Kuznets — Economic Growth and Income Inequality
56 Steiner G A — Government s Role in Economic Life
57 Seth M L — Theory and Practice of Economic Planning
58 Sen, A K — The Choice of Techniques
59 Singh V B — Essays in Indian Political Economy
60 Simon Kuznets — Six Lectures on Economic Growth
61 Simon Kuznets — Modern Economic Growth
62 Tinbergen J — The Design of Development
63 Ursulla Kicks — Learning about Economic Development
64 U N Startistical Year Book
65 U N Economic Survey of Asia and Far East
66 S K R S Rao — Essays in Economic Development
67 World Economic Survey
68 Williamson H F and Buttrick J A — Economic Development Principles & Patterns
69 आर्थिक समीक्षा
70 योजना
71 भारत 1976, 77 (Eng)

खण्ड–2

1. *Bhagwati, Jagdish & Desai, Padma* : Indian Planning for Industrialisation.
2. *Bhattacharya K N.* : Indian Plans.
3. *Bhattacharya, K. N* . India's Fourth Plan, Test in Growthmanship
4. *Brij Kishore and Singh, B P.* : Indian Economy through the Plans
5. *Chatterji, Amiya* The Central Financing of State Plans in the Indian Federation
6. *Gadgil, D R.* : Planning and Economic Policy in India.
7. Indian Planning Commission : Basic Statistics Relating to Indian Economy 1950-51 to 1968-69.
8. Indian Planning Commission : Five Year Plans.
9. Indian Planning Commission : Fourth Plan : Mid-term Appraisal.
10 Indian Planning Commission Draft Fifth Five Year Plan, 1974-79.
11 *Iyenger, S. K* : Fifteen Years of Democratic Planning
12. India 1975, 1976, 1977.
13. *Mehta, Asoka* · Economic Planning in India.
14 *Maleubaulm* : The Crisis of Indian Planning.
15. *Paranjape, H K* : Re-organised Planning Commission.
16. Planning Depts. Govt. of Rajasthan : Five Year Plans (Rajasthan).
17. Planning Depts. Govt. of Rajasthan : Draft-Fifth Five Year Plan, 1974-79.
18. *Venkatasubbiah, Hiranyappa* : Anotomy of Indian Planning.
19. The Economic Times.
20 The Illustrated Weekly.
21. Press Releases of the Govt. of India.
22. Economic Survey, 1976 to 78.
23. योजना
24. राजस्थान विवरण
25. हिन्दुस्तान
26. साप्ताहिक हिन्दुस्तान
27. राजस्थान आय-व्ययक अध्ययन, 1976-77 to 78-79
28. भारत सरकार योजना मन्त्रालय रिपोर्ट, 1975-76 to 78-79.